महामहोपाध्याय-श्रीमदमृतनाथझाविरचितः

कृत्यसारसमुच्चयः

'विमला'-संस्कृत-हिन्दी-मैथिलीव्याख्या-विमर्शादिसहितः



व्याख्याकारः

आचार्य जगदीशचन्द्रमिश्रः

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
३१९

महामहोपाध्याय-श्रीमदमृतनाथझाविरचितः

कृत्यसारसमुच्चयः

'विमला'-संस्कृत-हिन्दी-मैथिलीव्याख्या-विमर्शादिसहितः

व्याख्याकारः
आचार्य डॉ० जगदीशचन्द्रमिश्रः
साहित्याचार्य, व्या० शा०
एम० ए० (द्वितय), पी-एच्० डी०, डिप्-इन-एड्०

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के० 37/117, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० 1129, वाराणसी 221001
फोन : 335263, 333371

संस्करण २००४ ई०
मूल्य १५०/-

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहरनगर
पो० बा० नं० 2113
दिल्ली 110007
फोन : 3956391

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो० बा० नं० 1069, वाराणसी 221001
फोन : 320404

कम्प्यूटर टाइप सेटर :
चित्तरंजन कम्प्यूटर वर्क्स
नई दिल्ली

मुद्रक :
ए. के. लिथोग्राफर
दिल्ली

The
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
319

KṚTYASĀRASAMUCCAYAḤ

of

ŚRĪ MADAMṚTANĀTH JHĀ

with

'Vimalā' Sanskrit, Hindi and Maithili Commentaries

Edited & Translated by
Dr. JAGADISH CHANDRA MISHRA
Sahityacharya, M.A., Ph.D., Dip-in-Ed.

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

Publishers:

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

(Oriental Publishers & Distributors)

K. 37 / 117, Gopal Mandir Lane

Post Box No.1129

VARANASI 221001

Telephone : 335263, 333371

First Edition

2000

Also can be had of

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar

Post Box No. 2113

DELHI 110007

Telephone : 3956391

*

CHOWKHAMBA VIDYA BHAWAN

CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)

Post Box No. 1069

VARANASI 221001

Telephone : 320404

प्राक्कथन

'कृत्यसारसमुच्चय' श्रुति–स्मृति प्रतिपादित सुन्दर विचारों का संग्रहात्मक एक निबन्ध ग्रन्थ है । यह विद्वज्जनों के बीच परमादरणीय ग्रन्थ है । इसमें निबन्धकार ने चैत से लेकर फागुन महीने तक का व्रत द्वैतनिर्णय, सदाचार, विचार, समयशुद्धि विवेक, श्राद्धीय विषयों की समीक्षा, अशौचनिर्णय, तीर्थ, धर्म, धर्मशास्त्र, जाति, वर्ण, अधिकार, संस्कार, आचार-विचार, यज्ञ, दान, काल आदि का विवेचन करते हुए सामाजिक परम्परा एवं उनकी उपलब्धियों का आवश्यक आकलन प्रस्तुत किया है ।

आज समाज के तथाकथित विचारक आधुनिक भारतीय कुप्रथाओं का सम्पूर्ण दायित्व जातिप्रथा एवं धर्मशास्त्र में निर्दिष्ट जीवन शैली पर डालते हैं । किन्तु इस विचार से सर्वथा सहमत होना बड़ा कठिन है, क्योंकि विश्व की सम्पूर्ण मानव जाति का स्वभाव साधारणतः एक जैसा ही है । सम्पूर्ण मानव जाति में सुप्रवृत्तियाँ और दुष्प्रवृत्तियाँ भी प्रायः समान रूप से ही पाई जाती हैं । प्रारम्भिक कोई भी विचार किसी भी स्थान विशेष या समाज विशेष में शतशः लाभप्रद सिद्ध होते हैं । किसी प्रकार के आचार सर्वप्रिय होते हैं किन्तु, आगे चलकर उन्ही आचार-विचारों का सम्प्रदायों में दुरुपयोग होता है और क्रमशः उनमें विकृतियाँ आने लगती हैं । चाहे कोई देश हो या समाज, किसी न किसी रूप में जातिप्रथा या उनसे भिन्न किसी न किसी प्रथा से आबद्ध रहते आये हैं । इस सन्दर्भ में आज के राजनीतिज्ञों का चरित्र इस देश में बेमिसाल है । ग्राम पंचायतों के चुनाव में जातिगत आधार खोजा जाता है । नगर निगम, विधान सभा और सांसदों के चुनावों के समय राजनैतिक दलों का सबसे बड़ा आधार जातिगत समीकरण ही हो गया है । एक ओर जाति एवं धर्म की समीक्षा हो रही है, जातिप्रथा और अन्धविश्वासों को मिटाने का अथक प्रयास किया जा रहा है और दूसरी ओर धर्म और जाति के आधार पर सत्ता बाँटने के लिए हमारे राजनेता बेताब हो रहे हैं । आज लेबनान का ताजा इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । अमेरिका जैसे देश में भी भारत जैसी जातियाँ भले न हों, पर 'हिस्पेनिक' समुदाय की स्थिति भारतीय हरिजनों से बदतर है ।

परमतार्किक, परमतपस्वी, ऋषिकल्प महामहोपाध्याय पण्डित अमृतनाथ झा जी ने आज से लगभग दो सौ साल पहले लोकहित के लिए इस ग्रन्थ का निर्माण किया था । उस समय की सामाजिक पृष्ठभूमि में लोकहित की दृष्टि से इस ग्रन्थ की जो ख्याति एवं उपलब्धि थी, उससे कहीं और अधिक आज के इस विकृत समाज में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है ।

स्पष्ट है व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । य संस्कार दो तरह के होते हैं—बाह्य और आभ्यन्तर । आज का समाज बाहरी संस्कारों

में, ऊपरी दिखावे में, चाकचिक्य और तड़क-भड़क में जितना अधिक प्रवीण है, उतना ही अधिक खोखला भीतर से है । आज के इस वैज्ञानिक युग में लोग अपने को अतिसभ्य, संवेदनशील, समृद्ध और विचारवान् मानते हैं तथा पुराने जमाने के सुसंस्कृत एवं विचारशील लोगों को परम्परावादी, रुढ़िग्रस्त, पुराणपन्थी एवं दकियानूस कहकर उनकी खिल्ली उड़ाते हैं । उनका कहना और मानना है कि आज का मनुष्य अतिसभ्य, अधिक विचारशील और अधिक समृद्ध हो गया है । अगर इसे मान भी लिया जाय तो भी थोड़ा सा विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस भौतिकवादी वैज्ञानिक युग में मनुष्यों की भौतिक वस्तुओं की समृद्धि तो अवश्य ही बढ़ गई है पर, मनुष्य की समृद्धि नहीं बढ़ी है, मनुष्य तो और भी अधिक दरिद्र हो गया है । आज का मनुष्य बाहरी भौतिक समृद्धि को बढ़ाने की पागल दौड़ में भीतरी संस्कार को ही बिल्कुल भूल गया है । बाहरी समृद्धि को बढ़ाने की होड़ में वह यह भूल ही गया है कि उसके पास एक और प्रकार की भी समृद्धि है जो बाहर नहीं, उसके भीतर ही उपलब्ध है । इसी संस्कार के उद्‌बोधन हेतु इस मान्य ग्रन्थ का समग्र उपक्रम है ।

बाहरी समृद्धि तो वस्तुओं का मात्र संग्रह है और भीतरी समृद्धि मानवता का विकास है, आत्मा का संस्कार है, परिष्कृत चेतना का विश्वास है । बाहरी वस्तुएँ सुविधा दे सकती हैं, किन्तु भीतरी संस्कार आत्मतोष और आचरण की पवित्रता प्रदान करता है । उसी अन्तःआचार की पवित्रता की विधि का विधान इस ग्रन्थ में अभिव्यक्त है ।

अन्तर्निहित संस्कार की अभिव्यक्ति के अभाव में ही मनुष्य अनिर्दिष्ट होकर पथभ्रष्ट हो जाता है । यदि मनुष्य अपने आचरण पर नियंत्रण नहीं रक्खे तो वह सहज ही पशु से भी पतित हो जाता है । आज का यह विकृत तथाकथित मानव समाज इसी भीतरी संस्कार के अभाव में भटक रहा है । इसलिए भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारी सत्ता में जागरण हो, हमारा आचार नियन्त्रित हो, हमारे विचार में शुचिता का प्रभाव हो, तभी हम व्यवस्थित कर्म का प्रतिपादन कर सकते हैं । भीतर का प्रबुद्ध संस्कार ही बाहरी भौतिक सम्पत्ति अर्जन की इस अराजक भीड़ में आत्मनिष्ठ आचारवान् व्यक्ति का निर्माण कर सकता है, प्रतिकर्म की जगह कर्म का निष्पादन कर सकता है । आत्मनिष्ठ आचारवान् व्यक्ति ही बहुचित्तता की जगह चैतन्य चिन्तन को स्थिर आयाम दे सकता है । अनिर्दिष्ट एवं उच्छृंखल व्यक्ति की जगह शुचिता सम्पन्न व्यक्तित्व को प्रादुर्भूत कर सकता है ।

धर्म की भी मूल जिज्ञासा प्रज्ञा की उपलब्धि ही तो है । मनुष्य के भीतर जो चिन्तनशक्ति है, वह विषययुक्त होते ही प्रज्ञा बन जाती है । इस प्रज्ञा की उपलब्धि अन्तश्चेतना के जागरण से ही संभव है और अन्तश्चेतना की जागृति के लिए शुचिता, संस्कार, व्रत, नियम, निष्ठा और सदाचार जैसे मानवीय गुणों का विकास अत्यावश्यक है । इस दिशा में इस ग्रन्थ का मार्गनिर्देश और कर्म व्यवस्था अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि, बिना आत्मनियन्त्रण के संस्कार सम्पन्न व्यक्तित्व का निर्माण असंभव है । इसीलिए बाहरी सम्पत्ति और आन्तरिक सम्पत्ति के होने में बहुत बड़ा भेद है । बाहर की सम्पत्ति, शक्ति और सुरक्षा सभी हमारी उस आन्तरिक शक्ति की और सम्पत्ति की छाया मात्र है जो आत्मचरित्र और सद्विचार से अनुप्राणित एवं प्रोद्भासित है ।

आँखें तो सब के पास हैं, लेकिन, आँखों के होते हुए भी अधिकांश व्यक्ति युग धर्म के प्रवाह में, मदहोशी की स्थिति में अन्धे बने रहते हैं । जिसने अपने भीतर कभी झाँक कर देखा नहीं, आत्म संस्कार को पहचाना नहीं, सद्विचार से अनुस्यूत अपने भीतर बैठी उस पवित्र मानवता को पहचाना नहीं, उसने अपनी आँखों का कभी सही उपयोग ही नहीं किया है । चरित्रनिष्ठ एवं आचारवान् व्यक्ति ही केवल कह सकता है कि मैं आँखों वाला हूँ । जो व्यक्ति अपने आप को ठीक ढंग से नहीं देख पाया है, वह और क्या देख पायेगा ?

आज के सन्दर्भ में इस निबन्ध संग्रह की उपयोगिता और अधिक इसलिये भी बढ़ जाती है कि यह प्रसुप्त मानव चेतना में जागरूकता का मन्त्र फूँक देती है । क्योंकि आज का मनुष्य तथाकथित भौतिक समृद्धि के बीच पलकर भी सदैव अपने को अकेला ही अनुभव करता है । वह सद्विचार और सद्चरित्र के बिना निश्चय ही अकेला है । आत्म परिचय के अभाव में, सहजीवन के अभाव में अपनों के बीच भी वह अपने आपको अजनबी महसूस करता है । आत्म समृद्धि के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति स्वयंकेन्द्रित एक अणुमात्र है, जिससे दूसरे तक न कोई द्वार है, न सेतु है । युगधर्म के प्रवाह में आज के मनुष्य के साथ कुछ ऐसा ही हुआ है । मानवता सिमटकर व्यक्ति की सीमा में आबद्ध हो गयी है ।

आज का व्यक्ति आचारविहीन होकर संस्कृति और प्रकृति से विकृति की ओर जा रहा है । लगता है मनुष्य के भीतर का नैतिक आधार ही टूट गया है । उसके भीतर का कोई बहुत ही अनिवार्य जीवन स्नायु ही टूट गया है । अत: आज का मनुष्य संस्कृति में नहीं विकृति में जीने को विवश है । इस विकृति और विघटन का परिणाम व्यक्ति से समष्टि तक फैल गया है । परिवार से लेकर पृथ्वी की समग्र परिधि तक उसकी बेसुरी प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ रही हैं ।

जैसे झील में एक जगह पत्थर गिरने से लहर वृत्त दूर कूल किनारे तक फैल जाते हैं, ठीक उसी प्रकार एक व्यक्ति के मन में उठी विकृति समग्र मानवता के अन्तस्तल को आन्दोलित कर देती है । मनुष्य जो एक व्यक्ति प्रतीत होता है, वह एक ही व्यक्ति नहीं है, उसकी जड़ें समष्टि तक फैली हैं । इसीलिए विकृतिरोग अत्यधिक संक्रामक हो गया है । इसी संक्रामक रोग से पीड़ित आज का मानव समाज आत्मघात एवं विनाश में लगा प्रतीत होता है । इस रोग से निस्तार पाने के लिए हमें संयमित जीवन व्यतीत करने के लिए, आत्मनियन्त्रण करना पड़ेगा । सद्विचार एवं सदाचार को अपनाना होगा । इस संक्रामक रोग का मूल निदान श्रुति-स्मृति प्रतिपादित

मनुष्य का नैतिक चरित्र ही है । वैसे जन्म तो सभी लेते हैं पर जीवन केवल वही पाते हैं जो अपने और पराये के बीच एक ही परमतत्त्व का अनुभव करते हैं । आज की अनैतिकता और अराजकता का मूल कारण इसी अनुभूति का अभाव है । आज नैतिकता नहीं नैतिक जीवन का आधार ही समाप्त हो गया है । सम्यक् नैतिक जीवन के लिए हमें नया आधार खोजना पड़ेगा । वह आधार भी सदा से कृत्यसार जैसे आत्म-नियंत्रक एवं व्रत-विधायक धर्मग्रन्थों में उपस्थित हैं । किन्तु, बलपूर्वक किसी व्यक्ति को नैतिक या चरित्रवान् नहीं बनाया जा सकता है । भौतिक समृद्धि और शक्ति बटोरने में व्यस्त व्यक्ति के सामने अनैतिक होने के अतिरिक्त और कोई अन्य विकल्प शेष नहीं रह जाता । आज के मानव की बौद्धिक प्रौढ़ता, सहज-स्फुरित सहपरिचर्या या आत्मबोध से ही नैतिक और चारित्रिक जीवन स्वीकार कर सकती है अन्यथा नहीं ।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के संचालक मान्यवर श्री नवनीतदासजी गुप्त ने 'कृत्यसारसमुच्चय' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी एवं मैथिली भाषा में अनुवाद लिखने का गुरुतर भार मुझ जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति के दुर्बल कन्धों पर सौंप दिया । मैंने भी इसे ईश्वरेच्छा मानकर ही स्वीकार कर लिया । पर, जैसे-जैसे व्याख्या क्रम में आगे बढ़ने लगा तपःपूत, तार्किक प्रवर निबन्धकार के जटिल एवं गम्भीर आवर्त्ती शब्दसागर में गोता खाने लगा । निबन्धकार ने धर्म, नैतिक, नियम एवं संयमित जीवन की प्रकृति, आचारनिष्ठ लोकजीवन और श्रौत-स्मार्त्त साहित्य के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ तार्किक शब्दों की गति, प्रकार और शक्ति को हृदयङ्गम कर जिन धार्मिक सिद्धान्तों का निष्पादन किया है उनसे आचार साहित्य का स्वरूप संयमित सा हो गया है । विवेचन के क्रम में कहीं तार्किक क्लिष्ट एवं श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग, कहीं लोप तो कहीं आगम, कहीं शेष तो कहीं छान्दस प्रयोग, कहीं प्रहेलिका तो कहीं सांकेतिक शब्द प्रयोग, कहीं शास्त्रीय न्याय तो कहीं शब्दाङ्क पद्धति, कहीं वैदिक गणितसूत्र तो कहीं छान्दस उक्तियों का यथेच्छ प्रयोग किया गया है । ननु, न च की शाब्दिक प्रक्रिया में शास्त्रीय सिद्धान्त का निष्पादन भी अपने ढंग का अद्वितीय है । ऐसी स्थिति में इस निबन्ध में प्रयुक्त ऐसे सांकेतिक शब्दों के अर्थ का निश्चय, व्याकरण की व्युत्पत्ति, उपमान, शब्दकोश, आप्तवाक्य तथा लोक में अर्थों के व्यवहार की परम्परा देखकर ही किया है । फिर भी भाषान्तर में अनुवाद के स्वरूप को स्थिर रखने में घोर कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है । इस क्रम में कहीं भाषा दुर्बल हुई है और टूट गई है, कहीं वाक्य संयोजन शिथिल हो गया है ।

निबन्ध में प्रयुक्त तकनीक शब्दों के भोंडे अनुवाद की अपेक्षा उन्हें उसी रूप में रख देना उचित समझ कर जैसे के तैसे रख दिया गया है । संकल्प वाक्य और विशेष मन्त्रों को मूल रूप में ही रक्खा है । अनुवाद करते समय मेरा ध्यान सदैव स्थिर रहा है कि हिन्दी और मैथिली के माध्यम से निबन्धकार के मूल विचार को किसी भी तरह से जनसामान्य तक पहुँचा दिया जाय । विमर्श लिखते समय मैंने जिन ग्रन्थों या

विद्वानों के निबन्ध से सहायता ली है उनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ । कृत्यसारसमुच्चय जैसे महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट संस्कृत निबन्ध ग्रन्थ का हिन्दी एवं मैथिली में अनुवाद लिखने का मेरा प्रायः पहला ही दुष्प्रयास है । अतः त्रुटि के लिए विद्वत्समाज से क्षमा प्रार्थी हूँ । हर तरह के सहयोग एवं श्रम के बावजूद इस ग्रन्थ में होने वाली कमियों, विसंगतियों, चूकों और उपेक्षाओं से मैं पूर्ण परिचित हूँ । अतः इन सारी खामियों के प्रति कृपालु होने के लिए सहृदय विद्वानों से पुनः पुनः प्रार्थना करता हूँ ।

श्रीमतामाश्रवः

जगदीश चन्द्रः

श्री सरस्वती-सदन,
प्रोफेसर्स कालोनी
पो० रिफाइनरी टाऊनशिप
बेगूसराय ८५१११७

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

महामहोपाध्याय श्रीअमृतनाथझाविरचितः

कृत्यसारसमुच्चयः

विमला-संस्कृत-हिन्दी-मैथिलीव्याख्या-विमर्शादिसहितः

मङ्गलाचरणम्

वामाङ्गासक्तकान्ताकचकुसुममयो भालनेत्रानलार्चिः
पीनोष्मा मौलिचञ्चत्सुरनगरनदीनीररम्यः सदा नः ।
स्फीतोत्तंसेन्दुकान्तिर्द्विरदवृतिदृढच्छादनाव्यक्तशीतः
शम्भुर्भस्मास्थिकुन्दप्रकरपरिवृतः पातु सर्वर्त्तुमूर्त्तिः ॥ १ ॥
तार्किकामृतनाथशर्मवुधो हि कृत्यसमुच्चयं
व्यातनोति विलोक्य पूर्वनिबन्धग्रन्थचयानमुम् ।
मैथिलव्यवहारसिद्धसुकर्मकाण्डविराजितं
धीधनादिमुदप्रदं सरलोक्तितो वहुयत्नतः ॥ २ ॥

विमला

नमो वुध्न्याय ब्रह्माय विघ्नेशाय च ब्रह्मणे ।
सर्वस्फूर्त्तिस्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः ॥१ ॥
निगमागमश्रुतिसाराविणमविचारानपि सन्चिन्त्य ।
सिद्धान्तसारभूतेर्विवरणविषये मतिस्थैर्यमीयात् ॥ २ ॥
क्व चास्य ग्रन्थस्य गम्भीरज्ञानं क्व चास्य मन्दस्य मतिर्मदीया ।
प्रशस्त संशोधित सारतत्त्वं गृह्णन्तु सर्वत्र स्वतः मनीषिभिः ॥ ३ ॥
कृत्यसारस्य व्याख्येयं कीर्त्तिनाथस्य सूनुना ।
मिश्रजगदीशचन्द्रेण यत्नात् क्रियतेऽधुना ॥४ ॥
वाणाङ्कनिधि चन्द्रेऽब्दे मधुनन्दाऽसितेशनौ ।
नेत्रज्योतिष्पुनः प्राप्य ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥५ ॥

हिन्दी—ग्रन्थारम्भ के मङ्गलश्लोक में आचार्य ने भवानीपति भगवान् शिव की प्रतीकात्मक मूर्त्ति का विशिष्ट अनुचिन्तन किया है । वर्षारम्भ से लेकर वर्षपर्यन्त चक्रीयगति से चलने वाली छः ऋतुओं के स्वरूप का शिव-शक्ति की माङ्गलिक मूर्त्ति में क्रमशः आकलन किया गया है ।

भगवान् शिव के वामाङ्ग में विराजित भगवती भवानी हैं । रंग-विरंगे, आकर्षक फूलों के गुच्छों से सजी-धजी उनकी केश कवरी में बसन्त ऋतु की कल्पना की गई है । शिव की ललाट पर मौजूद उनकी तीसरी आँख से निकलने वाली आग की लपटों में इतनी अधिक ऊष्मा है कि वह ग्रीष्म ऋतु का मूर्त्तिमन्त रूप प्रस्तुत करती हैं । इनकी जटा में उलझी गंगा की जलधारा से अनवरत छहरने वाले जल की बूँदें वर्षा ऋतु का बोध कराती हैं । शिव के सिर पर चमकने वाले अर्द्धचन्द्र की चञ्चल चाँदनी अपनी श्वेत आभा बिखेरकर शरदऋतु की याद दिलाती हैं । काले मजबूत गजचर्म से ढकी शिव की गोरी देह में हेमन्त ऋतु का आरोप किया गया है । नर खोपड़ी, हड्डी और भस्मावृत्त श्वेत शरीर में हिमाच्छादित ठिठुराने वाली शिशिर ऋतु का प्रत्यारोपण कर शिव की षड्ऋतुमयी मूर्त्ति की कल्पना की गई है, भगवान् शिव की षड्ऋतुमयी यह मूर्त्ति हम लोगों की रक्षा करे ।। १ ।।

न्यायशास्त्र के विद्वान् श्री अमृतनाथ शर्मा ने पण्डितों के लिए आनन्द दायक, मैथिलों के व्यवहारसिद्ध कर्मकाण्ड से सम्वन्धित सारे निबन्धों का अध्ययन करने के वाद ही कृत्यसारसमुच्चय नामक इस ग्रन्थ की रचना की है । निवन्ध की भाषा को सर्वत्र सरल एवं सुबोध वनाने की सफल चेष्टा की गई है ।। २ ।।

मैथिली—वर्षभरि में षड्ऋतुक अलग अलग से स्वरूप एवं क्रमिक प्रभाव होयत छैक, तकर सामासिक आकलन अर्द्धनारीश्वर भगवान् शिवक स्वरूप में कराल गेल अछि । मुदा सब ठाम एतना ध्यान राखल गेल अछि जे स्वतन्त्र रूप से सबटा ऋतुक प्रस्फुट रूप भिन्न-भिन्न होय तो वर्षभरि में भौगोलिक पृष्ठभूमि में ग्रहनक्षत्रक प्रभावानुकूल एकरूपता भगवान् शङ्कर शिवशक्तिक प्रतीक छथि, तें अहि मङ्गलश्लोक में हुनकर ई दिव्यमूर्त्तिक अनुचिन्तन कयल गेल अछि ।। १—२ ।।

संस्कृत—सर्वतन्त्रस्वतन्त्रविद्वद्वरिष्टपरमाचार्यस्तत्रभवान् महाधीमान् मैथिलविद्वत् कुलचूड़ामणि: प्राज्ञजनस्तुत्यजनि: चूड़ान्तप्रतिभाविकास: महामहोपाध्यायश्रीमदमृतनाथसत्कृत्यस्य सर्वजनाभिलाषविषयचतुर्वर्गफलप्राप्तिहेतुतया पार्वतीपरमेश्वरयोरनवद्य भव्य-स्वरूपवर्णनव्याजेन पवित्रमतिशयरूच्यं धर्मशास्त्रसमर्थितं 'कृत्यसारसमुच्चयाख्यं' कर्मकाण्डनिवन्धग्रन्थं चिकिर्षु: ज्ञानं महेश्वरादिच्छेदिसिद्धान्तमनुसरन्त: अर्द्धनारीश्वरं शिवं नमस्कृत्य तदनुषड्ऋतुस्वरूपं शक्तियुक्तं शिवमनुस्मृत्य प्रस्तुतविषयानुकूलमाशीर्वादात्मकं मङ्गलं निर्दिशति—

तच्च वामार्धाङ्गसङ्गिन्या: पार्वत्या: केशगुम्फितकुसुमसमूहेन **वसन्त:** । ललाटतट-वर्त्तिनेत्रानलशिखोष्मणा **ग्रीष्म:** । जटामण्डलभ्रमितसुरधुनीधारया **प्रावृट्** । भालस्थचन्द्र-

चन्द्रिकया **शरत्** । गजचर्मदृढ़ाच्छादनने **हेमन्तः** । भस्मास्थिकपालादिधवलधाम्ना हिम-कुन्दादिनेव **शिशिरः** । एवं सर्वेषामृतूनां मूर्त्तिरिव मूर्त्तिर्यस्य सः शिवः पात्विति ।।१ ।।

मिथिलायाः लोकाचारेषु प्रचलितान् व्यवहारान् तत्सम्बन्धितकर्मकाण्डग्रन्थसमूहान् अवलोक्य, धीधनादिमुदप्रदं सरलभाषया बहुप्रयासेन झोपाख्य तार्किकमौलिमणिः श्रीमद-मृतनाथशर्मा धार्मिककृत्यमधिकृत्य भूयसो धर्मनिबन्धनान् ज्योतिषनिबन्धांश्चानुसन्धाय निबवन्धान्वर्थनामानमुम् **कृत्यसारसमुच्चयः** ।। २ ।।

'धर्मस्य निर्णयो ज्ञेयो मिथिलाव्यवहारतः ।।'

—याज्ञवल्क्यस्मृतिः ।

विमर्श—विजानन्त्येव विपश्चितः संसारेऽस्मिन् धर्मार्थकाममोक्षाख्येषु चतुर्विध-पुरुषार्थेषु धर्म एव प्रथम निर्दिष्ट इति । तत्र कश्चिदुपलभ्यमान देवमूलको धर्मः कश्चिच्च श्रुत्यनुमापक स्मृतिमूलकश्च, स्मृतयोऽपि परस्परं विगीयमानानान्योन्यकलहमुत्सारयितुं प्रभन्तीत्यनुष्ठान लक्षणमप्रामाण्यं स्मृतिष्वापन्नमिति, तदुक्तमुदयनाचार्यैं न्यायकुसुमाञ्जलौ —'परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः' तदेतदालोच्य देशकालाधिकारिभेदेन व्यवस्थां कुर्वद्भिः विद्वद्वरैरमिता धर्मशास्त्रनिबन्धा व्यरचिषत । तेषु च निबन्धग्रन्थेषु केचिदज्ञान-मूलकाः, केचिच्च पक्षपातमूलका बहवो विरुद्धा निर्णयाः सन्तीति पुनरप्रामाण्यशङ्का-कलङ्कपङ्कमग्ना एव स्मृतयोऽतो—'धर्मस्य निर्णयो ज्ञेयो मिथिलाव्यवहारतः' इति याज्ञवल्कीयवचनमनुसृत्य पूर्वोक्तदोषमपाकुर्वन्तः कतिपयनिबन्धग्रन्थरचयितारो मैथिलान-न्याँश्च धार्मिकानुपचक्रुरिति ।

तत्र सत्स्वपि श्रीमन्महेशठक्कुरादिनिर्मितेषु संग्रहग्रन्थेषु नतेषु केनाप्येकेनावदात-सर्वपर्वनिर्णयसंभव इति विचार्य, लुप्तप्रायं प्रतिग्रामं प्रतिपर्वं विद्वद्वन्दानपि विवदमानाँश्चा-वलोक्य श्रीमदमृतनाथशर्मणा मैथिलविद्वद्वरेण कृत्यसारसमुच्चाख्यं ग्रन्थरत्नमिदं निरमायि।

अत्र यद्यपि रूपान्तरिताम् गीर्वाणगुरूणामपि गुरूत्वमलङ्कुर्वाणैः श्रीमदमृतनाथेन सर्वथा स्वतन्त्र कर्मकाण्डीयग्रन्थं निर्माय प्रचारयितुमपि शक्यते स्म । तथापि सनातनि शिरोमणिभिः पूर्वाचार्यान् श्रद्दधानेन तेन तथा नाकारि । किच्च, तत्तत्कर्मकाण्डीय-धर्मशास्त्रविषयकसर्वमान्य मूलग्रन्थायमानाः सन्दर्भग्रन्थास्तादृश्यो व्यरचिष्यत् । तस्यैषा-पंक्तिरेकैका निबन्धग्रन्थ इति ।

यद्यपि परस्परं विवदमानेषु कतिपयस्थलेषु बहवो विवेचकाः तारतम्यं निरीक्ष्यन्ते, तथापि नात्र किमप्यहं युक्तायुक्तत्वादि विवेचयितुमात्मानमुचितं मन्ये । आस्तां वा विवरणमतस्यैव युक्तत्वम्, परीक्ष्यतां वा श्रीमदमृतनाथस्यैव निर्दिष्टवैशिष्ट्यम्, न चैतावता तत्रैकमपि कर्मकाण्डिनामास्थया भवितव्यम्, अन्यथा विवादितोपहास एवं पर्यवसेत् ।।१—२ ।।

अथ मासनिरूपणम्

तत्र मासकृत्ये निरूपणीये मासानिरूपणे तत्कृत्यनिरूपणासम्भवान् मासस्तावदादौ निरूप्यते । तत्र मासश्चतुर्विधः । तथा हि ज्योतिषे—

'सौरश्च सावनश्चैव चान्द्रो नाक्षत्र एव च ।।' इति ।

तत्र एकसंक्रमणमारभ्यापरसंक्रमणपूर्वं यावत् सौरः । अनियतत्रिंशद्दिवसात्मकः सावनः । दर्शानन्तरप्रतिपदादिमारभ्यामावास्यान्तश्चान्द्रः । तथा हि ज्योतिषे—

दर्शाद्दर्शश्चान्द्रस्त्रिंशद्दिवसस्तु सावनो मासः ।
रविसंक्रान्तिसुचिन्हः सौरोऽपि निगद्यते सद्भिः ।।

संस्कृत—दर्शादर्शमित्यवधेः शुक्लप्रतिपदादिरमान्तः शुक्लादिचान्द्रः **'चान्द्रशुक्लादि दर्शान्त इति'** वाक्यात् । कृष्णादिरपि कृष्णपदादिशुक्लपूर्णिमान्तो मासश्चान्द्रश्चन्द्रकला घटिततिथिमयत्वात् । ब्रह्मपुराणे तिथिकृत्ये कृष्णादेरेव मासस्य कथनात् कृत्यमहार्णवे मासमीमांसायामपि च तथैव। पितृविवेकादिप्रामाणिकग्रन्थसिद्धः व्यवहारसिद्धश्च, सर्वत्राब्दिके तिथिकृत्ये च कृष्णादिमासोल्लेख एव शास्त्रतात्पर्यमिति गोकुलनाथोपाध्यायलिखिता च अन्यत्रास्मिन्विचारे शुक्लादिरेव व्यवस्थेति । तथा च कृत्यशिरोमणौ— **'दर्शावधिं चान्द्रमुषन्तिमासं सौरश्च संक्रान्त्यवधिर्यतोऽतः'** इति संक्रान्त्यवधिकः सौरोमासः । इन्द्रोदशद्वयान्तर तदर्कसावनं दिनमिति सावनत्रिंशद्दिनैः सावनोऽपि मासः । भवावसरस्तु मभ्रमइत्येभिरपि त्रिंशद्दिनैर्नाक्षित्रो मासः ।

हिन्दी—अब महीने का स्वरूप बतलाते हैं—महीने का निर्धारण किये बिना, महीने में किये जाने वाले कर्मों का निर्धारण असंभव है । अतः इस अवसर पर पहले महीने का ही निर्धारण करते हैं । ज्योतिषशास्त्र के अनुसार महीने चार तरह के होते हैं—सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र ।

सूर्य की एक राशि संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति पर्यन्त सौर मास कहलाता है । अनिश्चित रूप से अर्थात् (सूर्योदय से सूर्योदय तक) तीस दिनों का एक सावन महीना होता है । दर्शान्त से दर्शान्तपर्यन्त अर्थात् प्रतिपदा से लेकर अमावास्या पर्यन्त तीस दिनों का एक चान्द्रमास कहलाता है । जैसा कि ज्योतिषशास्त्र में लिखा है—

दर्शान्त से दर्शान्त पर्यन्त चान्द्र महीना, तथा तीस तिथियों का सावन महीना होता है । रवि की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति पर्यन्त तीस तिथियों के एक महीने को सज्जनों ने सौर महीना कहा है ।

मैथिली—मासक निरर्धारण कराने बिना मासपर्यन्त कृत्यक निर्धारण असंभव अछि । तोय सर्वप्रथम मासक निर्धारण करव उचित अछि । ज्योतिषशास्त्रक अनुसार चाहिर तरहक मास होयत छैक । यथा—सौर, सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र ।

रविक एक राशिक संक्रान्ति से दोसर संक्रान्ति पर्यन्त सौर मास कहवैत छैक । अनियंत्रित रूपे रविक उदय सँ दोसर रविक उदय पर्यन्त तीस तिथिक एक सावन मास होयत अछि । दर्शान्त से दर्शान्त पर्यन्त अर्थात् प्रतिपदा से लऽक अमावास्याधरि तीस दिनक एक चान्द्रमास कहवैत अछि । एेमां ज्योतिषशास्त्र में उल्लिखित छैक—

दर्शान्त से दर्शान्त पर्यन्त चान्द्रमास तथा तीस तिथिक सावन मास होयत अछि । रविक एक संक्रान्ति सें दोसर संक्रान्ति पर्यन्त तीस दिनक एक मास कें सज्जन लोकनि सौरमास कहैत छथि ।

विमर्श—अथात: वर्षकृत्ये निरूपणीये वर्षस्य मासघटितस्याच्छुद्धमासस्तावन्त्रि-रूप्यते । तत्र निर्णयसिन्धौ यथा—'मासश्चतुर्धा—सावन:, सौर:, चान्द्रो नाक्षत्र । त्रिंशद्दिन: सावन: । अर्कसंक्रान्ते: संक्रान्त्यवधि: सौर इत्यादि ।' एवं दिनमपि सौर सावन नाक्षत्र चान्द्रभेदेन चतुर्विधं भवति । तथोक्तं ज्योतिषरत्नमालायाम्—

'मासश्चतुर्विध: सौरश्चान्द्रश्चार्क्षश्च सावन: ।
सौरो मासस्तु सूर्यस्य संक्रमात् संक्रमावधि:।।
दर्शादर्शानिधिश्चान्द्र: सावन: खत्रिवासरै: ।
भदिन त्रिंशतामासो नाक्षत्र: परिकीर्त्तित: ।।

तत्र यावता कालेनैकमंशमर्कर्भुनक्तितावत्सौरदिनमेकम् । तन्मितैस्त्रिंशद्भिर्दिनैरेक: सौरोमास: । तथा च सूर्योदयद्वयान्तर काल: सावनं दिनम् । तादृशैस्त्रिंशत्संख्यकैर्दिनैरेक: सावनोमासोऽनियताद्यन्त: दिनात्मक: । एवमप्येक तिथि भोगकालश्चान्द्रदिनम्, तत्त्रिंशद्-भिरेकश्चान्द्रमास: । यस्यस्वीया गतिर्नकेवलं प्रवहवेगेन भ्रमणम्, तदुदय द्वयान्तर कालो-नाक्षत्र दिनम् । तत्राश्विन्यादिरेवत्यन्त सप्तविंशति नक्षत्र भोगकालो नाक्षत्र मास इति ।

'दर्शाद्दर्शमवधीकृत्य तेन दर्शानन्तरप्रतिपद इत्यर्थ: । चान्द्रस्य शुक्लप्रतिपदारम्भकत्वे वचनान्तरमपि । तथा हि—

'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादि: स प्रकीर्तित: ।' इति ।

एतद्व्याख्यानं मलमासप्रकरणे वक्ष्यते । कृष्णप्रतिपदमारभ्य पूर्णिमान्तो अपि चान्द्र एव । अत्र प्रमाणानि—

'अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे' । इति स्मृतिः ।

'अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं देयं दिने दिने ।।'

इति मनुवचनं कृष्णादिरपि चान्द्रेवेति कृत्यमहार्णवलेखनं च । नाक्षत्रस्तु अश्विन्यादिरेवत्यन्तः 'नाक्षत्रमिन्दोर्भगणभ्रमाच्च ।' इति रत्नमालायाः ।।

अथ कर्मविशेषे मासविशेषमाह । ज्योतिषे—

'विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः स्मृतः ।
शेषे कर्मणि चान्द्रः स्यादेष मासविधिः स्मृतः ।।'

विवाहादावित्यादि-पदादुपनयनादिसंस्कार-राशिविशेष-विहितस्नानादि-नवान्नश्राद्धादि-जन्ममासनिषिद्ध-क्षौरादिकर्मपरिग्रहः । यज्ञादिपदादशौचपरिग्रहः शेषे कर्मण्येकोद्दिष्टपार्वणाष्टकातिथिकृत्यादौ । तथा हि—'पार्वणे त्वष्टका-श्राद्धे चान्तमिष्टं तथाश्विकम् ।' इति वाक्येऽष्टकासाहचर्येण कृष्णादिचान्द्र-स्यैवाब्दिकनिमित्तकस्यावसायादिति मासमीमांसायां गोकुलनाथोपाध्यायाः । तिथिकृत्ये तु कृष्णादिव्रते शुक्लादिरेव च इति ब्रह्मपुराणम् । संकल्पादावपि कृष्णादिरेव मासो ग्राह्यः, तथैव शिष्टाचारात् । अत्र नाक्षत्रस्तु जातक विषये इति रत्नमाला । 'चित्रापूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत्संवत्सरस्य ।' इत्यादि श्रुतेः ।।

हिन्दी—दर्शान्त से दर्शान्तपर्यन्त तीस तिथियों का एक चान्द्रमास होता है । इसीलिए दर्शान्तर से शुक्लप्रतिपदा का बोध होता है । चान्द्रमास का प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा से होता है । इस सन्दर्भ में दूसरा वचन भी कहा गया है—'जिस तिथि में इन्द्र और अग्नि का हवन हो वही मासादि तिथि कहलाती है ।'

इस कथन की व्याख्या मलमास प्रकरण में करेंगे । कृष्ण प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक तीस तिथियों का एक चान्द्रमास होता है।

इसके प्रमाण हैं—'स्मृतिकार के अनुसार कलियुग भादों महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में कृष्णाष्टमी व्रत होता है ।'

मनु के अनुसार अश्विनी नक्षत्र युक्त कृष्णपक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध देय है।

कृत्यमहार्णव लेख के अनुसार—कृष्णादि भी चान्द्रमास ही है । इसी तरह अश्विनी नक्षत्र से लेकर रेवती नक्षत्र तक **नाक्षत्रमास** कहलाता है । अचक्र (नक्षत्र मण्डल) का एक भ्रमण (अर्थात् क्षितिज में नक्षत्र के उदय से द्वितीय उदय पर्यन्त) एक नाक्षत्र दिन कहलाता है । ऐसा ज्यौतिष रत्नमाला का वचन है ।

अब कर्मविशेष के लिए मास विशेष का निरूपण करते हैं । ज्यौतिष शास्त्र के अनुसार—'विवाह आदि के लिए सौर, यज्ञादि के लिए सावन तथा शेषकर्म के लिए चान्द्रमास विहित है' ।

विवाहादि पद में आदिपद से विवाह के अतिरिक्त उपनयनादिसंस्कार समूह, विशेषरूप से विहित स्नान दानादि, नवान्न ग्रहण, श्राद्धादि कर्म, तथा जन्ममास में निषिद्ध क्षौरकर्मादि का है । यज्ञादि पद से अशौच का ग्रहण किया गया है । शेष कर्मों से एकोद्दिष्ट, पार्वण, अष्टका तिथि कृत्य आदि का ग्रहण है । इसी भाँति—'पार्वण में अर्थात् सभी पितरों के निमित्त आहुति देने के सामान्य संस्कार में तथा अष्टका श्राद्ध में अन्तिम कर्म अभिलषित है । उसी प्रकार आश्विन अर्थात् वह महीना जिसमें चन्द्रमा अश्विनी नक्षत्र के निकट हो—अभिप्रेत है ।' इस वाक्य में अष्टका (पूर्णिमा के पश्चात् सप्तमी से प्रारम्भ करके आने वाले तीन सप्तमी, अष्टमी और नवमी दिन) के साहचर्य से कृष्णपक्षीय चान्द्रमास का ही वार्षिक प्रयोजन की उदासीनता से तात्पर्य है—ऐसा गोकुलनाथ उपाध्याय का अभिमत मास मीमांसा में व्यक्त किया गया है । तिथिकृत्य में तो कृष्णादिव्रत में शुक्लादि का ही बोध होता है—ब्रह्मपुराण का भी यही अभिमत है । संकल्पादि में भी कृष्णादि महीने ही ग्राह्य हैं । यही शिष्टाचार भी है । जहाँ तक नाक्षत्र महीने का प्रश्न है—इसका उपयोग जातक विषय में ही होता है—ऐसा ज्यौतिष रत्नमाला में कहा गया है । श्रुति में भी इसका उल्लेख है—

'चित्रा पूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एव तत् संवत्सरस्य ।'

चान्द्रमास के चौदहवें नक्षत्र को चित्रा कहा गया है ।

मैथिली—दर्शान्त सँ दर्शान्त पर्यन्त (स्पष्ट सूर्य एवं चन्द्रमाक संयोग पूर्वापरान्तराभाव दर्शान्त कहवैत अछि, ओकरे अमानतो कहल जायत छैक । तीस तिथिक एक चान्द्रमास होयत छैक । अतः दर्शान्तर सँ शुक्ल प्रतिपक्षक बोध होयत छैक । चान्द्रमासक प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा सँ मानल गेल अछि । अहि संदर्भक वचन छैक—जाहि तिथि में इन्द्र एवं अग्निक हवन होय सेह तिथि मासादि होयत छैक ।

प्रस्तुत कथनक व्याख्या मलमास प्रकरण में करव । कृष्णाप्रतिपदा सँ पूर्णिमा पर्यन्त तीस दिनक एक चान्द्रमास होयत छैक । एकर प्रमाण छैक—'स्मृतिकारानुसार—कलियुग में भादव मास में कृष्ण पक्षक अष्टमी तिथि में कृष्णाष्टमीक उल्लेख अछि ।

'मनुक अनुसार अश्विनी नक्षत्र युक्त कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन और्ध्वदैहिक आहुति देवाक चाही ।'

कृत्यमहार्णवक लेखानुसार कृष्णादि चान्द्रमास होयत अछि । अहिना अश्विनी नक्षत्र से लऽके रेवती नक्षत्र पर्यन्त एक नाक्षत्रमास होयत अछि । भचक्र (नक्षत्र मण्डल) क एक भ्रमण अर्थात् (क्षितिज में नक्षत्रक उदय सँ द्वितीय नक्षत्रक उदय धरि) एक नाक्षत्र दिन होयत अछि । ज्योतिष रत्नमाला में एकर उल्लेख भेटैत अछि ।

आव कर्मविशेषकलेल मासविशेषक निरूपण करैत छी । ज्योतिषशास्त्र क अनुसार विवाहादिक लेल सौरमास, यज्ञादिक लेल सावन मास तथा शेष कार्यक लेल चान्द्रमास प्रशस्त छैक ।

विवाहादि में आदिपदेन—विवाह अतिरिक्त उपनयनादि संस्कार समूह, विशेषरूपेण विहित स्नान दानादि, नवान्नग्रहण, श्राद्धादि और्ध्वदेहिककर्म तथा जन्म मास में निषिद्ध क्षौरकर्मादिक परिग्रह अछि । यज्ञादि पद सँ अशौचक ग्रहण कयल गेल अछि । शेष कर्म में एकोद्दिष्ट, पार्वण, अष्टका तिथि कृत्य आदिक ग्रहण कयल गेल अछि । अहिना पार्वण में अर्थात् पितर निमित्तक आहुति देवाक सामान्य संस्कार में तथा अष्टका श्राद्ध में अन्तिम कर्म अभीष्ट अछि । अहि रूप आश्विन कर्म अर्थात् ओमास जकरा में चन्द्रमा अश्विनी नक्षत्रक निकटवर्त्ती होछि—ई अभिप्रेत अछि ।' अहिना प्रस्तुत वाक्य में—अष्टका (अर्थात् पूर्णिमाक पक्ष व सप्तमी सँ प्रारंभकय आगक तीन तिथि—सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी, अष्टका होयत छैक) एकर साहचर्य सँ कृष्णपक्षीय चान्द्रमासक वार्षिक प्रयोजनजन्य उदासीनता सँ मात्र तात्पर्य अछि ।' ई गोकुलनाथ उपाध्याय अभिमत मासमीमांसा में व्यक्त अछि । तिथिकृत्य एवं ब्रह्मपुराणक अनुसार कृष्ण व्रत पदेन शुक्लादि पदक बोध विहित अछि । संकल्पादि में सेहो कृष्णादिमास ग्राह्य अछि । शिष्टाचार से ही एतावने छैक । अतऽ धरि नाक्षत्रमासक प्रश्न छैक—ज्यौतिषरत्नमालाक अनुसार एकर उपयोग जातक कर्म में विहित छैक । श्रुतिवचनक सेहो एकरो समर्थन छैक । यथा—'चित्रापूर्णमास दीक्षेरन्, मुखं वा एतत्संवत्सरस्य ।' चान्द्रमासक चौदहमनक्षत्र चित्रा कहवैत अछि ।

विमर्शः—तथा चोक्तं ज्यौतिषे—

वर्षायनर्त्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात् ।
यत्कृच्छ्रसूतक चिकित्सितवासराद्यं तत्सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात् ।।

— ❖ —

अथ चैत्रकृत्यम्

तत्र वारुण्यादिनिर्णयः । मासेषु चैत्रस्य, प्राथम्यादादौ चैत्रकृत्यमित्येव निरूप्यते। अथ चैत्रकृष्णत्रयोदशी शतभिषायुक्ता वारुणी वरुणदेवता शतभिषा-नक्षत्रयोगात् । अत्र गंगास्नाने फलमाह स्कान्दे—

वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा ।। इति

शतभिषायुक्ता सा त्रयोदशी महावारुणी तथा हि स्कान्दे—

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ।
गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ।।

सा चैत्रकृष्णा त्रयोदशी शतभिषायुक्ता, शतभिषाशुभयोगशनिवारयोगे महामहावारुणी । तदुक्तं स्कान्दे—

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।
महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलरुद्धरेत् ।।

हिन्दी—इस अवसर पर वारुण्यादि योग का निर्णय करते हैं । महीनों में चैत्र महीने की प्राथमिकता के कारण चैत्र महीने में किये जाने वाले व्यावहारिक कृत्यों का निरूपण करते हैं । जल के देवता वरुण का शतभिषा नक्षत्र के साथ संयोग होने के कारण, शतभिषा नक्षत्रयुक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी तिथि को 'वारुणी' कहा जाता है । इस अवसर पर गङ्गा में स्नान का फल स्कन्दपुराण में कहा गया है—

'वारुणीयुक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी में यदि गंगा स्नान किया जाय तो स्नान करने वाले को सौ सूर्यग्रहण में स्नान करने का फल मिलता है ।'

शतभिषा नक्षत्रयुक्त यदि चैत्रकृष्ण त्रयोदशी हो तो उसे स्कन्दपुराण में महा वारुणी कहा गया है । ऐसा ही स्कन्दपुराण में कहा गया है—

'चैत्रकृष्ण त्रयोदशी यदि शनिवार के दिन हो तो उसे महावारुणी कहा गया है । महावारुणी में गङ्गा स्नान करने वाले को एक करोड़ सूर्यग्रहण में स्नान का फल मिलता है ।'

वह चैत्रकृष्ण त्रयोदशी यदि शतभिषा नक्षत्र, शुभयोग और शनिवार युक्त हो तो वह महामहावारुणी कहलाती है । स्कन्दपुराण में कहा गया है—

शुभयोग, शनिवार और शतभिषा नक्षत्र से युक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी महामहावारुणी के नाम से विख्यात है । उसमें गंगा स्नान करने वाले तीन करोड़ कुल का उद्धार कर देते हैं ।

मैथिली—अहि अवसर पर सर्वप्रथम वारुण्यादि योगक निर्णय करैत छी । मास समेक बीच चैतक प्रधानताक कारण, अहिमासक कृत्यक निरूपण करैत छी । शतभिषा नक्षत्रक साथ वरुणदेवक योग रहवाक कारण शतभिषानक्षत्र युक्त चैतकृष्ण त्रयोदशी तिथिकें वारुणी कहल जाइत अछि । अहि वारुणी में गंगास्नानक फल स्कन्द पुराण मे निम्न रूपेण वर्णित अछि ।

'वारुणी युक्त चैत कृष्ण त्रयोदशीक यदि गंगा में स्नान कयला सँ शत सूर्यग्रहण में स्नानक फल भेटैंत छैक ।'

स्कन्दपुराण में शतभिषा नक्षत्रयुक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी के महावारुणी कहल गेल अछि ।

'शतभिषा नक्षत्र युक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी यदि शनिक दिन होय तॅा गंगा स्नान करनिहार व्यक्ति के अइ महावारुणी स्नानक फल एक करोड़ सूर्य ग्रहण में स्नान क फल भेटैत छैक ।'

ई चैत्रकृष्ण त्रयोदशी यदि शतभिषानक्षत्र, शुभयोग, तथा शनिवार समन्वित हो तँऽ ओ महामहावारुणी कहवैत अछि । अहि महामहा वारुणी में गंगा स्नानक फल स्कन्दपुराण में वर्णित अछि—

शुभ योग, शनिवार तथा शतभिषा नक्षत्र सँ युक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी महामहा वारुणीक नाम सँ विख्यात अछि । अहि पुण्यकाल में गंगा में स्नान करनिहार तीन करोड़ कुलक समुद्धर्त्ता होयत छैथि ।

विमर्शः—चैत्रकृष्ण प्रतिपदि कृत्यम्, तत्रादौ वसन्तोत्सवः । चैत्रे मासि महापुण्या निर्मिता प्रतिपत्पुरा, तस्यां यः श्वपचं स्पृष्टा स्नानं कुर्यात् सचैलकम् न तस्य दुरितं किञ्चित् नाधयो व्याधयो न च, भवन्ति कुरु शार्दूल तस्मात्सम्यग्समाचरेत्—पद्मपुराणम् ।

तत्र हेमाद्रौ भविष्ये च—चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने ।
यस्तत्र श्वपचं स्पृष्टा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ।।
न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयोव्याधयोनृप ।
प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ।।
कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवता ।
वन्दयेत् होलिका भूमिं स्व दुःखोपशान्तये ।।

अन्यच्च— प्रभाते विमले जाते ह्यङ्गे भस्मं च कारयेत् ।
सर्वाङ्गेच ललाटे च क्रीडितव्यं निशाचवत् ।।
सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्चैव धूलिभिर्धूसरो भवेत् ।

गीतं वाद्यं च नृत्यञ्च कुर्याद्रथ्योपसर्पणम् ।।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः ।
एकीभूय प्रकर्त्तव्या क्रीडा या फाल्गुणैः सदा ।
बालकैः सह गन्तव्यं फाल्गुने च युधिष्ठिरः ।।

इति कुलं पुरुष इति याज्ञवल्क्यदीपकलिका चैत्रकृष्णत्रयोदश्यामेवेतादृशयोगे महामहावारुणीति तस्या उपक्रम एवैतल्लेखनात् । अत्र योगत्रये गङ्गायामेव फलमन्यत्रानुक्तेः इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ महेशठक्कुराः । अत्र रात्रौ वारुण्यादिस्नानं न कर्तव्यम्, राहुदर्शनादिप्रतिप्रसूतेतरसर्वकर्मणि पर्युदस्तत्वादाचार्यचूडामणिः । अन्ये तु महाफलश्रुते रात्रावपि स्नानं कर्तव्यमेव ।

महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् ।
तस्यां स्नानं न कुर्वीत काम्यनैमित्तिकादृते ।।

इति देवलोक्तेः । एतद्योगत्रये स्त्रिया अपि स्नानं कर्तव्यमेव । न च

स्नानं कुर्वन्ति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषाङ्गते ।
सप्तजन्म भवेयुस्ता दुर्भगा विधवा ध्रुवम् ।।

इति प्रचेतोवचनात्तन्निषेध इति वाच्यम् । तस्या रागप्राप्तस्नानविषयत्वेनैव महेशठक्कुरादिनिबन्धकृद्भिर्व्याख्यातत्वात् । चैत्रशुक्लप्रतिपद्देवीपूजादौ परयुतैव ग्राह्या तच्चाश्विनकृत्ये वक्ष्यते ।

संस्कृत—होलिकोत्सवे भस्मधारणमन्त्रः—

ॐ वसन्तारम्भ सम्भूते सुरासुर नमस्कृते ।
संवत्सरकृतं पापं क्षमस्व मम होलिके ।।
वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च ।
अतस्त्वां धारयिष्यामि विभूते भूतिदा भव ।।

अथ चैत्रप्रतिपन्निर्णयः—भविष्यपुराणानुसारेणेयं प्रतिपदौदयिकी ग्राह्या तद्यथा—

प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ।
कृत्वाचावश्यकार्याणि गन्तव्यं पितृदेवता ।।

दिनद्वये तु औदयिकीत्वे पूर्वैव, तथाहि वृद्धवशिष्ठः—

वत्सरादौ वसन्तादौ वलि राज्ये तथैव च ।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या प्रतिपत् सर्वदा बुधैः ।।

अथ वारुण्यादियोगः—चैत्रकृष्ण त्रयोदशीयदा शतभिषा नक्षत्रयुक्ताभवत्तदा वारुणी भवेत् । सैव वारुणी यदा शनियुक्ता चेत्तदा महावारुणी भवेत् । महावारुणी यदि शुभ योगयुक्ता चेत्तदा महामहावारुणी भवेत् ।।

हिन्दी—याज्ञवल्क्यदीपकलिका में कहा गया है कि 'त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्' वाक्यगत कुल पद पुरुषवाचक है । चैत्रकृष्ण त्रयोदशी में ही

महामहावारुणी योग की संभावना है इस लेख से इसी का प्रारम्भ है । महेश ठाकुर की तिथिचिन्तामणि के अनुसार वारुणी महावारुणी एवं महामहावारुणी में गंगास्नान का ही फल, कहीं अन्यत्र स्नान का नहीं, रात में वारुणी स्नान का निषेध है । आचार्य चूड़ामणि के अनुसार राहुदर्शनादि प्रसूता से भिन्न सभी कृत्यों में इसका निषेध किया गया है । अन्य आचार्यों ने महाफल प्राप्ति के कारण वारुण्यादि योग में रात्रि स्नान को भी प्रशस्त माना है ।

रात का बिचला भाग छः घण्टे तक 'महानिशा' कहलाती है । किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन से किये जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त किसी भी स्थिति में महानिशा में स्नान नहीं करना चाहिए । ऐसा देवल का कहना है ।

'वारुण्यादि योगत्रय में स्त्रियों को भी स्नान करना चाहिए ।' यदि आप कहे प्रचेता के निम्नलिखित वचन से इसका खण्डन हो जाता है—

'शतभिषा नक्षत्र में चन्द्रमा के रहने पर जो औरतें स्नान करती हैं, वे सात जन्म तक फूटी किस्मत वाली तथा विधवा होती हैं । यह निश्चित है ।' तो प्रचेता के इस कथन की व्याख्या करते हुए महेश ठाकुर ने अपने निबन्ध में लिखा है कि यह वचन रागप्राप्त स्नान विधि में ही लागू होता है । देवी पूजा में चैत्रशुक्ल प्रतिपदा परयुता ग्राह्य है । आश्विन कृत्य में इसका वर्णन करेंगे ।

मैथिली—'त्रिकोटिकुलमुद्धरेत' वाक्यगत कुलपद पुरुष वाचक अछि, ई याज्ञवल्क्य दीपकलिका में कहलगेल अछि । चैत्रकृष्ण त्रयोदशी में एहन योगक संभावना में महामहावारुणी होयत अछि । महेश ठाकुरक तिथिचिन्तामणिक अनुसार, वारुण्यादि योगत्रय में गंगा स्नानक फल अछि अन्य स्नानक नहि । राति में वारुण्यादि योगों में स्नान विहित नहि अछि, राहु दर्शनादि प्रसूताभिन्न सर्वकर्म में निषद्ध होयत अछि, ई आचार्य चूड़ामणिक सिद्धान्त छैन्हि । आन आचार्यक मत में महान फलप्राप्ति निमित्तक स्नान रातियों में विहित अछि । मध्य रातुक दुई प्रहर महानिशा कहवैत अछि । विशेष प्रयोजन छोड़ीकय मध्यनिशा में स्नान नहि करवाक चाही ।' देवलक ई वचन अछि । किन्तु वारुण्यादि योगत्रय में स्त्रियो लोकनिक स्नान करवाक चाही । यदि अहाँ कही—

'जे स्त्री शतभिषा नक्षत्रगत चन्द्र में स्नान करैत छथि से सात जन्म धरि निश्चितरूप सँ दुर्भगा एवं विधवा होयत छथि ।' प्रचेताक वचनानुसार ई स्नान निषिद्ध अछि । तऽ महेश ठाकुर अपन निबंध ग्रन्थ में इकर व्याख्या कराने छथि । जे रागप्राप्त स्नान विषय में ई वचन लागू होयस, अन्य मा नहि । चैत्रशुक्ल प्रतिपद् देवी पूजा में परयुता ग्राह्य अछि । आगे आश्विन कृत्य में ई वात हम कहव ।

विमर्शः—रात्रौ स्नाननिषेध प्रसङ्गे भारतोक्त्या—**'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन'** इति दिने एव चेच्चैत्र कृष्णत्रयोदशीशतभिषाशुभयोगशनिदिनानां योगे योगोऽयम् । रात्रौ योगसम्भावेऽपि न योगविषयतेति ज्ञेयम् । अन्यच्च—

शीतगौ वरुणदैवते यदि स्नानमाचरति वामलोचना ।
जन्म जन्म विधवाऽतिदुर्भगास्याद्ध्रुवं मुनिवरैरिति स्मृतम् ।।

इति वारुण्यादियोगभिन्नकालिके शतभिषानक्षत्रस्नानपरकविषयः ।

चैत्रशुक्लाष्टम्यां ब्रह्मपुत्रस्नानम् । स्कान्दे तथा हि—

'चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः ।
स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ।।'

लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः । तत्र सङ्कल्पः—ॐ अद्येत्यादि सर्वपापक्षयपूर्वक-ब्रह्मपदगमनकामो ब्रह्मपुत्रस्नानमहं करिष्ये इति ।

'ॐ ब्रह्मपुत्र ! महाभाग ! शन्तनोः कुलसम्भव ! ।
आमोघागर्भसम्भूत ! पापं लौहित्य ! मे हर ।।'

इति पठित्वा स्नायात् । अत्राशोककलिकापानं, तन्मन्त्रो यथा—

त्वामशोककराभीष्टं मधुमाससमुद्भव ! ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ।।

इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ ठक्कुराः । तत्र सम्पूर्णचैत्रस्नाने—

'चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः ।
लौहित्यतोये यः स्नायात्स कैवल्यमवाप्नुयात् ।।'

ॐ अद्येत्यादि कैवल्यप्राप्तिकामश्चैत्रमासं व्याप्य ब्रह्मपुत्रस्नानमहङ्करिष्ये इति तत्र सङ्कल्पः ।।

हिन्दी—चैत्रशुक्ल अष्टमी में ब्रह्मपुत्र में स्नान का फल स्कन्दपुराण में लिखा है—

जो व्यक्ति चैत्रशुक्ल अष्टमी के दिन ब्रह्मपुत्र नदी के जल में स्नान करता है, वह ब्रह्मपद प्राप्त करता है । श्लोकगत लौहित्य का अर्थ ब्रह्मपुत्र है। इसका संकल्प यह है—ऊँ आज मैं इत्यादि हर तरह के पापों का विनाशपूर्वक ब्रह्मपद प्राप्ति का इच्छुक ब्रह्मपुत्र स्नान करुँगा । इति ।

ऊँ हे ब्रह्मपुत्र ! हे अतिशय भाग्यशालिन् ! हे महाराजशन्तनु कुल में उत्पन्न ! ओ अमोघा (अटूटशक्ति सम्पन्ना) के गर्भ से उत्पन्न ! हे ब्रह्मपुत्र ! मेरा पाप हरण करो ।

यह पढ़कर स्नान करे । अशोक की कली का पीना तथा उसे पीने का मन्त्र जैसे—

मधुमास में उत्पन्न यह तुम्हें अत्यन्त प्रिय एवं शोकरहित करने वाली है । अत: शोकसंतप्त होकर मैं इसे पीता हूँ; मुझे सदैव शोकरहित बनाओ । तिथितत्त्व–चिन्तामणि में महेश ठाकुर ने ऐसा लिखा है । यहाँ सम्पूर्ण चैत्र स्नान में—

पवित्र एवं नियन्त्रित मन से जो व्यक्ति पूरे चैत्र के महीने भर ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान करता है उसे इस संसार से मुक्ति मिल जाती है ।

ऊँ अद्येत्यादि मैं अमुक व्यक्ति ब्रह्मपद प्राप्ति की कामना से पूरे चैत महीने भर ब्रह्मपुत्र में स्नान करुँगा । यह संकल्प करे ।

मैथिली—चैत्र शुक्ल अष्टमीक दिन ब्रह्मपुत्र में स्नानक फल । स्कन्दपुराण में लिखल अछि । जे व्यक्ति अष्टमीक दिने ब्रह्मपुत्र में स्नान करैत छथि, इनका ब्रह्म पद प्राप्त होयत छहि । श्लोकगत लौहित शब्दक अर्थ ब्रह्मपुत्र होयत अछि ।

एकर संकल्प—ऊँ इत्यादि पढेत हम अमुक व्यक्ति ब्रह्मपद प्राप्ति हेतु ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान करव । 'ऊँ हे ब्रह्मपुत्र हे महाभाग, हे शन्तनुकुल समुद्भूत, हे अमोघाक गर्भ सँ उत्पन्न ब्रह्मपुत्र हमार पापक हरेण कर। ई मन्त्र पढैत स्नान करी ।

अहि ठाम आशोकक कलीक पीव क विधान अछि—एकर मन्त्र अछि जेना चैत्रमास में उत्पन ई अशोकक कली अहाँकें अत्यन्त प्रिय एवं अशोककर अछि । शोक संवप्रभकऽहम ई पीवि रहल छी । अहाँ हमरा शोक रहित करु । महेश ठाकुर एकर उल्लेख तिथितत्त्वचिन्तामणि में कयने छथि । चैत्र सम्पूर्णमास ब्रह्मपुत्र स्नान क सम्बन्धों नियंत्रित मन से पवित्रभऽके चैत में मासभरि जे स्नान करैत छथि, हुनका, संसार सँ मुक्ति भेटिजयत छैन्हि । एकर संकल्प—ऊँ अद्येत्यादिक छैत–मोक्षप्राप्तिक हेतु सम्पूर्ण चैतमास में हम ब्रह्मपुत्र स्नान करव ।'

विमर्श:—चैत्रशुक्लाष्टम्यां ब्रह्मपुत्रस्नानमशोककलिकापानञ्च कर्त्तव्यम् । तत् फलमुक्तं स्कान्दे—

मीने मधौ शुक्लपक्षे अशोकाख्या यथाष्टमी ।
पिबेदशोक कलिका: स्नायाल्लोहितवारिभि: ।।

चैत्रशुक्लाष्टम्यां ब्रह्मपुत्र स्नानार्थ संकल्पवाक्यम्—ऊँ अद्येत्यादि सकल-पापक्षयपूर्वकसर्वतीर्थस्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिपूर्वकब्रह्मपदगमनकामो ब्रह्मपुत्रे स्नानमहं करिष्ये । इति संकल्प्य ।

ॐ ब्रह्मपुत्र महामाग शन्तनो: कुल संभव ।
अमोघागर्भसंभूत पापं कौषिक मे हर ।।

इत्युच्चार्य स्नानायात् । चैत्र शुक्लाष्टम्यामशोककलिकापानं कर्त्तव्यम् । तत्र लिङ्गपुराणे—— अशोककलिकाचाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोक मवाप्नुयुः ।।

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्याः उत्पत्तिः । इयञ्चाष्टमी नवमीविद्धा ग्राह्या, तथाहि ब्रह्म वैवर्त्ते——'अष्टमी नवमीविद्धा नवमी चाष्टमीयुता ।' इति ।

काशीखण्डे—— भवानी यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मघौ नरः
न जातुशोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ।। इति ।

अथ रामनवमी । चैत्रशुक्लनवम्यां रामपूजा तद्व्रतं च । ब्रह्मपुराणे——

कृत्वैव ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते ध्रुवम् ।
बहुना किमिहोक्तेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।।

तस्य रामपूजाव्रतकर्तुः । अकरणे दोषमाह स्मृतिः——

यस्तु रामनवम्यां वै मोहाद्भुङ्क्ते नराधमः ।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ।।

इयं च नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । तत्र स्मृतिः——

चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ।।

उभयदिने मध्याह्नयोगे परैव ग्राह्या । 'अष्टमीविद्धा सनक्षत्रापि नोपोष्या' इति माधवः । गौडास्तु——

'नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।।'

इति वचनाद् व्यवस्थापयन्ति । स्कान्दे——

'जनकस्य महर्षेस्तु कूपः परमधार्मिकः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च पुनर्जन्म न विद्यते ।।' इति ।।

हिन्दी——चैत्रशुक्ल नवमी के दिन राम की पूजा तथा व्रत होता है । ब्रह्मपुराण में लिखा है——ब्रह्महत्या जैसे घोर पाप करके भी मनुष्य राम की पूजा और रामनवमीव्रत कर ब्रह्महत्यादि जैसे पापों से मुक्त हो जाता है । अधिक कहने से क्या? मुक्ति तो इनके हाथ में है ।

राम की पूजा एवं व्रत करना चाहिए । नहीं करने पर स्मृतिकारों ने दोष लिखा है——मोहवश जो अधम व्यक्ति रामनवमी के दिन भोजन करते हैं वे घोर कुम्भीपाक नरक में पड़ते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

यह नवमी मध्याह्नव्यापिनी ही ग्राह्य है । स्मृतिकार का वचन है——

चैत्रशुक्ल नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्र युक्त हो और मध्याह्नव्यापिनी हो तो वह उत्कृष्ट पुण्य फल देने वाली होती है ।

माधव के मत में यदि मध्याह्नव्यापिनी नवमी हो तो परविद्धा ग्राह्य है । गौड़ ने लिखा है—

'नवमी यदि अष्टमी विद्धा हो तो वैष्णव जनों को उसे छोड़ देना चाहिए यह वचन व्यवस्था देता है । स्कन्दपुराण में लिखा है—

महर्षिजनक का कूप परमधार्मिक है । इस कूप के जल से जो स्नान करता है तथा यह जल पीता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता है । इति ।

मैथिली—चैत्रशुक्लपक्षक नवमीतिथि में रामक पूजा एवं हुनक व्रत करवाक विधान छैक । ब्रह्मपुराण में लिखल अछि—

ब्रह्महत्यादि सन घोर पाप कयलो उत्तर रामनवमीव्रत करनिहार व्यक्ति ओई पाप सँ मुक्त भय जायत छैथि । विशेष कहला सँ की, एहन व्यक्तिक हाथे में मुंक्ति छैक । तोय रामक पूजा एवं व्रत करवाक चाही । नहि कयला पर दोष होयत छैक । स्मृति कारक मते—

'मोहवश जे अधम व्यक्ति रामनवमी क दिन भोजन करैत छथि ओ घारे कुम्भीपाक नरकगामी होयत छथि । अहि मे कोनो सन्देहु नहि अछि ।'

ई नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्य छैक । स्मृतिक वचन अछि—

यदि चैत्रशुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्र युक्त होय तथा मध्याह्नव्यापिनी होय तऽ ओ अत्यन्त्य पुण्यतमा कहल गेल अछि ।

यदि दुहू दिन मध्याह्न में नवमी हो तो पर दिनक नवमी ग्राह्य अछि । माधवाचार्यक विचारे पुनर्वसुनक्षत्र युक्त नवमी रहलो उत्तर अष्टमी विद्धा उपास्य न हि अछि । गौड़ाचार्यक मत में—'अष्टमी विद्धा नवमी विष्णु भक्त क लेल उपास्य नहि अछि । ऊपर लिखल वचन छय सँ परविद्धा नवमी ग्राह्य अछि । ई व्यवस्था भेल ।

स्कन्दपुराणक अनुसार—महर्षि जनकक कूप परम धार्मिक मानल जाइत अछि । जे व्यक्ति अहि कूपक जल में स्नान करैत छथि तथा एकरा जल पिवैत छथि; हुनक पुनर्जन्म नहि होयत छैन्हि ।

विमर्शः—रामनवमीनिर्णयस्तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम्—

चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवापुण्ये पुनर्वसौ ।
उदये गुरुगौरांशे स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चच्चके ॥
मेषे पूषरि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ।
आविरासीत्स कलया कौशल्यायां नरः पुमान् ॥

तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यमुपवासव्रतं सदा ।
तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि ।। इति ।

तत्र निर्णयसिन्धौ—— इयञ्च मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।
चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ।
सैवमध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ।।

तथाच—— चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्ष संयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ।।
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिकाः ।।

तथा——केवलापिसदोपोष्या नवमीशब्द संग्रहात् ।
तस्मातसर्वात्मनासर्वैः कार्यं वै नवमी व्रतम् ।

पूर्वेद्युरेवमध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या । दिन द्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वस्वृक्षयुक्ताऽपि त्यक्त्वा परैव कार्या । तदुक्तं माधवीयेऽगस्ति-संहितायाम्—— 'नवमी चाष्टमीविद्धात्याज्याविष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्याच्च दशम्याञ्चैव पारणम् ।। इति ।
अष्टमीविद्धा सऋक्षापि नोपोष्येति माधवः ।'

रामार्चनचन्द्रिकायामपि——

विद्धैवचेदृक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत् ।
विद्धा निषेधश्रवणानवमी चेतिवाक्यतः।
वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णु परैरपि ।।
दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद् विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ।
वदन्त्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् ।। इति ।।

अत्र दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्, इति तदन्येषामिति च वचनात् यदाप्रातस्त्रिमुहूर्त्ता नवमी, दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात्प्रागेव समाप्यते, तदा स्मार्त्तानां तत्रैव एकादशी विमित्तो पवासात् नवमी व्रताङ्गपारणा लोपः स्यात् । अतोऽष्टमीविद्धैव स्मार्त्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणालोप प्रसङ्गः, इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति । दशमीवृद्धाभावेऽष्टमीविद्धायाः एव मध्याह्न व्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्येत्यर्धसिद्धम् । इदं च व्रतं संयोग पृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यञ्च तदुक्तं हेमाद्रावगस्ति संहितायाम्——

उपोषणं जागरणं पितृनुद्दिश्य तर्पणम् ।
तस्मिन् दिनेसु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभिप्सुभिः ।।
सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्ति मुक्तैक साधनः ।
अशुचिर्वाऽपि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् ।
पूज्यः स्यात् सर्वभूतानां यथारामस्तथैव सः ।।

तथा—अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ।
व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् ।।

अत्र केचित्तदुपासकानामेवेदं व्रतं नित्यं, नत्वन्येषामित्याहुः । अन्ये तु अकरणे दोषश्रवणात् 'तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमी व्रतम् ।' इति पूर्वोक्त वचनाच्च जन्मष्टम्यादि वदिदमपि सर्वेषां नित्यम् । तथा च कृत्यशिरोमणौ—

नवमीवसुसंयुक्ता नोपोष्या द्विजसत्तम ।
महापापकरी प्रोक्ता नक्षत्र सदिवाऽपि च ।।

'सनक्षात्राऽपि नवमी नाष्टमीयुतोपोष्येत्यर्थः सर्वनिबन्धस्वरसात् । तिथिनिर्णय-प्रकरणे विस्तरतो द्रष्टव्यम् । तत्र सर्वनिबन्धस्वरसान्नवमीक्षये अष्टमी विद्धोपोष्या, नान्यथाष्टमीविद्धाकार्या, दशमी विद्धैवोपोष्येति सिद्धान्तः ।'

राजनाथमिश्रकृंत तिथिनिर्णये रामनवमीविषये निष्कर्षः—

नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां तु दशम्यामेव पारणम् ।।

अत्र विष्णु परायणैरिति तु विष्णुपरायणत्वेन भवितव्यमित्युपदेशपरं न तु कर्त्तृविशेषणं विधिद्वय कल्पनापत्तेः । एतेन वैष्णवैर्दशमीविद्धोपोष्या तदतिरिक्तैरष्टमी-विद्धेति व्यवस्थाद्वयेव विधिद्वय कल्पनायामतिगौरवात् । एचञ्च सर्वैरेवोदयिकी ग्राह्या । पारणन्तु दशम्यामेवेति सिद्धम् । मध्याह्नयोगः प्रशंसार्थः पुनर्वसुयोगवत् । दिनद्वये, उदयव्यापिन्यां पूर्वैव तिथिमलस्याकर्मण्यत्वात् । केवलं पारणयोग्यदशम्यो व्रतोत्तरदिने अलाभे नवम्याः क्षये चाष्टमीविद्धैव सर्वैरूपोष्येति सिद्धान्तः ।'

निष्कर्षस्वरूपेणेयं नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये मध्याह्नव्यापिनी चेत् पुनर्वसुनक्षत्रयुक्ताऽपि त्यक्त्वापरैव कार्या । अत्र 'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्' इति वचनात् यदा प्रभाते मुहूर्त्ताऽपि नवमी, दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात्प्रागेव समाप्यते, तदा स्मार्त्तानां तत्रैव एकादशीनिमित्तोपवासान्नवमी व्रताङ्गपारणलोपः स्यादतः अष्टमीविद्धैव-स्मार्त्तः कार्या । वैष्णवादीनां तु अरुणोदय विद्धैकादश्याः हेयत्वात् न नवमी व्रताङ्ग-पारणालोपप्रसङ्ग इति दशमीविद्धैव वै कार्येत्यवसेयम् । 'त्याज्याविष्णुपरायणैः' इत्यनेन कर्मकाल शास्त्रस्यैवबाध इति तदाशु दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत इत्यत्र दशमीवृद्धिः अरुणोदयकाले सूर्यादयोत्तरं वा दशमी सत्वम् । यदातु मुहूर्त्तमात्रा द्विमुहूर्त्तावा नवमी, दशमी तु अरुणोदयात् प्रागेव समाप्यते तदा मुहूर्त्त मात्रा नवम्युपवासे द्वितीय दिने वैष्णवानामप्येकादश्युपवासप्राप्तेर्नवमीव्रताङ्गपारणालोप प्रसङ्गो भवत्येवेति वैष्णवैरप्यष्टमी विद्धैवो पास्येति निर्णयः ।

अथ वैशाखकृत्यम्

ब्रह्मपुराणे—एकभुक्तमथो नक्तमयाचितमतन्द्रितः ।
माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ।।

स्कान्दे— प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका ।
उपानद्व्यजनं छत्रं सूक्ष्मवासांसि चन्दनम् ।।
जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च ।
पात्रकाणि च चित्राणि द्राक्षारम्भफलान्यपि ।।

तिथितत्त्वे—ददाति यो हि मेषार्के सक्तूनम्बुघटान्वितान् ।
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैर्विमुच्यते ।।

तथा— वैशाखे यो घटं पूर्णं संभोज्यं वै द्विजन्मने ।
ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमाङ्गतिम् ।।
मेषादौ सक्तवौ देया वारिपूर्णा च गर्गरी । इति ।

अथात्र त्याज्यानाह—

कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकं कोद्रवं तथा ।
शाकं मधुं परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।।

अत्र वारिपूर्णघटदानविधिः—ॐ वारिपूर्णघटाय नमः ।३। कुशोपरि ॐ ब्राह्मणाय नमः ।३। घटं सिक्त्वा ॐ अद्येत्यादि मेषार्कसंक्रमणप्रयुक्त-पुण्याहे पुण्यकाले वा अमुकगोत्रस्य श्री अमुकशर्मणो मम स्वर्गकामो मेषार्कं व्याप्य प्रत्यहं घटपरिमितजलं वरुणदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे । ततो दक्षिणां दत्त्वा पठेत् ।

एष धर्मघटो नित्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
अस्य प्रसादात् सकला मम सन्तु मनोरथाः ।। इति ।

अथ अक्षयतृतीया—वैशाखशुक्लतृतीया अक्षयतृतीया, सा चतुर्थी-युक्ता ग्राह्या । तथा हि पक्षधरीयतिथिचन्द्रिकायां गोभिलः—

वैशाखस्य तृतीयायां पूर्वविद्धां करोति यः ।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ।।

ब्रह्मवैवर्ते—रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम ।
अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ।।' इति ।

गणयुक्ता चतुर्थीयुक्ता चतुर्थीयुताया अलाभे तु द्वितीयायुतापि ग्राह्या ।

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी ।
पूर्वविद्धाऽपि कर्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि ।।

इति ब्रह्मवैवर्तात् । इयं युगादिः, तत्र श्राद्धकरणे फलमाह मात्स्ये—

हिन्दी—वैशाख महीने में किये जाने वाले कृत्य—

ब्रह्मपुराण के अनुसार—बिन माँगे, जागरूक होकर दिन–रात में केवल एक बार रात के समय जो वैशाख महीने में भोजन करता है, उसे सारी अभिलषित वस्तु आनायास मिल जाती हैं ।

स्कन्दपुराण के अनुसार—वैशाखमहीने में जूते, छाते, पंखा, महीन कपड़ा, चन्दन, जलपात्र फूलों का घर, वर्तन, वासन, रुचिकर चित्र, दाख, अंगूर तथा केले दान करना चाहिए । यथा संभव प्याऊ बनवाना चाहिए । छोटे–बड़े वर्तन की पेंदी में छेदकर देवमूर्त्ति पर लगातार पानी की बूँदे टपकानी चाहिए ।।

तिथितत्व के अनुसार—मेषादि संक्रान्ति काल में पितरों को उद्देश्य कर वैशाख महीने में जो व्यक्ति सत्तू और सजलघट ब्राह्मणों को दान करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

तथा—वैशाख महीने में जल से भरा घड़ा तथा खाने योग्य अन्न जो ब्राह्मणों को दान करता है, हे सुर राजेन्द्र! वह व्यक्ति परम गति को प्राप्त करता है ।

अब यहाँ त्याज्य वस्तुओं का उल्लेख करते हैं—

जस्ता या कांसे के वर्त्तन, मांस, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, दूसरों का अन्न, दुहराकर भोजन तथा सहवास का वैशाख महीने में परित्याग करना चाहिए ।

अब सजलघट दान की विधि बतलाते हैं—ऊँ जलपूर्ण घड़े को नमस्कार है । कुश पुण्यदिन एवं पुण्यकाल में यथा नाम गोत्रवाला मैं अमुकशर्मा मैं स्वर्ग पाने की कामना से मेषार्कव्याप्य संक्रान्ति काल में प्रतिदिन जलपूर्ण घड़ा वरुण देव निमित्तक यथा नामगोत्र ब्राह्मण को देता हूँ । इसके बाद ब्राह्मण को दक्षिणा देकर बोले—

यह धर्मघट निरन्तर दुःख हरने वाला ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप हैं। इसकी कृपा से मेरे सारे मनोरथ पूरे हों । इति ।

अब अक्षय तृतीया के सम्बन्ध में—वैशाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं । यह चतुर्थी युक्त ग्राह्य है । पक्षधर की तिथिचन्द्रिका में गोभिल का वचन है कि 'जो व्यक्ति पूर्व विद्धा वैशाखशुक्ल तृतीया करता है, उसके द्वारा प्रदत्त हव्य न तो देवता ग्रहण करते हैं और न कव्य पितर स्वीकार करते हैं ।

रम्भानामक तृतीया को छोड़कर, हे द्विजवर अन्य सभी कार्यों में चतुर्थीयुक्ता तृतीया ही प्रशंसनीय है । इति ।

गणयुक्ता अर्थात् चतुर्थीयुक्ता, ऐसा नहीं मिलने पर द्वितीया युक्त भी ग्राहय है ।

एकादशी, तृतीया, षष्ठी, तथा त्रयोदशी यदि पर विद्धा उपलब्ध न हो तो पूर्व विद्धा भी करनी चाहिए । यह ब्रह्मवैवर्त से लिया गया **है । यह युगादि** है । इसमें श्राद्ध करने का फल मत्स्य पुराण में कहा गया है—

मैथिली—वैशाख मासक कृत्य—

वैशाखमासक राति में जे व्यक्ति सावधान भय, अप्रार्थित एक भुक्तकरैत छथि हुनक सम्पूर्ण अभीलाषक सम्पूर्त्ति हायत छैन्हि । एकर उल्लेख ब्रह्मपुराण में अछि ।

स्कन्द पुराण में कहल गेल अछि जे वैशाखमास में प्यासल लोकसभकलेल धर्मार्थ पनिसला (पौसला) क व्यवस्था करवाक चाही, जलपूर्ण कलसीक नीचलाभाग में छेदकय देवमूर्त्ति पर सदिखन जलश्यकैत रहय, एकर व्यवस्था करवाक चाही । पनही, पंखा, छाता, मलमल, चामन, जलपात्र, फूलक घर, वर्त्तन-वासन, चित्र, दाख, केरा तथा अन्य फल दान करवाक चाही ।

तिथितत्त्व में लिखल गेल अछि—पितरक उद्देश्य सँ जे व्यक्ति मेषसंक्रान्ति में सातु तथा जलपूर्ण घट दान करैत छथि ओ सबतरहक पाप सँ मुक्त भयजायत छैथि ।

तथा—वैशाख मास में जे व्यक्ति ब्राह्मण के जलपूर्ण घट एवं भोज्य पदार्थ दान करैत छथि, हे देवराज, ओ व्यक्ति परमगतिक प्राप्त करैत छथि । मेष संक्रान्ति में सातु एवं जलपूर्णघट दान करवाक चाही । इति ।

वैशाख मे त्याज्य वस्तु—

जस्ता एवं कांसा क वर्त्तनक उपयोग, मांस, मसूर, चना, कोप्ते, तथा, शाक, मधु, परान्नभोजन, पुनर्भोजन एवं सहवासक प्रयोग नहि करकाक चाही ।

सजल घट दानक विधि—ॐ वारिपूर्ण घड़ा क नमस्कार ।३। कुशक ऊपर – ब्राह्मण देवता को नमस्कार ।३। घट कें अभिसिञ्चित कय ओं

अद्येत्यादि—मेषराशिगत सूर्यक संक्रमण प्रयुक्त पुण्य दिन एवं काल में अमुक गोत्रक, अमुक शर्मा हम मेषार्क व्याप्य प्रतिदिन जलपूर्णघट वरुण देवता क निमित्त यथा नाम गोत्र ब्राह्मण कय दान करैवछी । तकरवाद दक्षिणा दऽकें ई श्लोक पढी——

ई नित्य धर्मघट ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवक स्वरूप छैथि । हिनक कृपासँ हमर, सकल मनोरथक सिद्धि हो । इति ।

आब अक्षय तृतीया पर कहव——वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षय तृतीया कहवैत अछि । ई तृतीया चतुर्थी युक्ता ग्राह्य अछि । पक्षधरीय तिथि चन्द्रिका में गोभिलक कथन अछि——

जे व्यक्ति पूर्व विद्धा वैशाखक तृतीया करैत छथि हुनक देवता हव्य एवं पितर कव्य ग्रहण नहिक रैव छथि ।

ब्रह्मवैवर्त्त में——हे ब्राह्मण, रम्भानामक तृतीया के छोहि अन्यसभकार्य में चतुर्थी विद्धा तृतीया ग्राह्य अछि । गणयुक्ताक अर्थ चतुर्थीयुक्ता अछि । यदि चतुर्थीयुक्ता तृतीया उपलब्ध नहि होय तऽ द्वितीया युक्त तृतीया सेहो ग्राह्य अछिं ।

एकादशी, तृतीया, षष्ठी त्रयोदशी, यदि परविद्धा उपलब्ध नहि होयतऽ पूर्व विद्धा से हो करवाक चाही । ई ब्रह्मवैवर्त्तक वचन अछि । ई युगादि व्रतवैत अछि अहि में श्राद्ध करवाक फल मत्स्यपुराण में कहल गेल अछि——

विमर्शः——कृत्यशिरोमणौ यथा——मेषसंक्रान्तौ प्राणपरादशघटिकाः पुण्यकालाः। रात्रौनिशीथात् प्राक् संक्रमणं तदा तद्दिनार्द्धमपरं पुण्यम् । निशीथात् परं चेत्तदा परदिने पूर्वार्द्धे पुण्य इति तिथितत्त्वचिन्तामण्यादौ । राजमार्तण्डे——

'निशार्कचारान्त्रिकरं दिनार्द्धं दिवार्कचारान्त्रिकटाष्टिघट्यः ।'

इत्येवमेव मिथिलायां व्यवहारः । कृत्यचिन्तामणौ——

मसूरं निम्बपत्रं च योऽत्ति मेघगते रवौ ।
अपि रोषान्वितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति ।।

मेषसंक्रमणे पूर्वाः पराश्च दशघटिकाः पुण्यकालः । यद्यर्द्धरात्रात्प्राक् संक्रान्तिस्तदा पूर्वदिनस्योत्तरार्द्धे पुण्यकालः । यद्यर्द्धरात्रादुपरि संक्रान्तिस्तदोत्तर दिनस्य पूर्वार्द्धे पुण्यकालः । तथाहि वृद्धवसिष्ठः——अर्कसंक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्न प्रकीर्त्तितया रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयः अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरिक्रिया । ऊर्ध्वसंक्रमणे चोर्द्धमुदयात् प्रहरद्वयम् ।

स्कान्दे—— सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति माधवेनेन दानतः ।।

भविष्योत्तरे—— वसन्त ग्रीष्मयोर्मध्ये यः पानीयं प्रयच्छति ।
पले पले सुवर्णस्य फलमाप्नोति मानवः ।।

गलन्तिका—तुलसीशिवलिङ्गयोरुपरि, शनैः शनैः शश्वज्जलपतनार्थं सकुश-सूक्ष्मापरिछिद्रयुक्तघटादिः स्तम्भाद्याधार द्वारा यत् स्थाप्यते सा गलन्तिकेत्युच्यते ।

'कृतं श्राद्धविधानेन मन्वादिषु युगादिषु ।
हायनादि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत् ॥'

अत्र श्राद्धं पूर्वाह्ण एव कर्तव्यम् इति शूलपाणिः । अयमेव मैथिल-स्मार्तपक्ष इति ठक्कुराः । एततृतीयामभिधाय ब्रह्मपुराणे—

'तस्यां कार्यो यवैर्यज्ञोः यवैर्विष्णुं प्रपूजयेत् ।
यवान् दद्याद् द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् ॥'

पूजादि विधायातिशयिताक्षययवदानजन्यफलप्राप्तिकामनया यवान् दद्यात् । तद्वाक्यमेतत्फलानुसारेणोह्यं करणीयम् द्रव्यान्तरदानेऽपि अक्षयफल-प्राप्तिकामनया इत्यादिवाक्यम् । नारदीये—

'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च ।
गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥

ॐ अद्येत्यादि सर्वकिल्बिषविमुक्तिकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये, इति गङ्गास्नानसङ्कल्पः । कौशिकीस्नानप्रकरणे, रामायणे आदिकाण्डे—

वैशाखे मासि काकुत्स्थ! तृतीया या भवेत्तिथिः ।
शुक्लपक्षे नरः स्नात्वा अश्वमेधफलं लभेत् ॥
कृत्तिकाऋक्षसंयुक्ता राका या कार्तिके भवेत् ।
कोकामुखे तु कौशिक्यां स्नात्वा स्वर्गे वसेन्नरः ॥

ॐ अद्येत्यादि अश्वमेधफलप्राप्तिकामः कौशिक्यां स्नानमहङ्करिष्ये इति तृतीयायां संकल्पः । वैशाखपूर्णिमामभिधाय विष्णुपुराणे—

कृष्णाजिनन्तिलान् कृष्णान्हिरण्यं मधुसर्पिषी ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥ इति ।

अस्यां गंगास्नाने ॐ अद्येत्यादि गङ्गास्नानजन्यफलसहस्रगुणाधिक—फलप्राप्तिकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये ॥

हिन्दी—जिसने विधि पूर्वक मन्वादि एवं युगादि में पितरों का श्राद्ध किया, वह श्राद्ध दो हज़ार वर्षों तक पितरों को तृप्ति देने वाला होता है ।

शूलपाणि के विचार से यह श्राद्ध दिन के पहले पहर में ही करना चाहिए । यही मैथिल स्मार्त्तों का भी पक्ष है—ऐसा ठाकुरजी का अभिमत है । तृतीया को सामने रखकर ही ब्रह्मपुराण में कहा गया है—इस तृतीया में जौ से यज्ञ करना चाहिए, जौ से भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए । ब्राह्मणों

को जौ दान देना चाहिए । नियंत्रित होकर पवित्र पूर्वक उन्हें यवान्न भोजन कराना चाहिए ।

ब्राह्मणों की पूजादिकर जौ दान करने से उत्कृष्ट एवं अनश्वर फल पाने की कामना से जौ दान करना चाहिए । दानवाक्य का निर्माण फलानुसार ही करना चाहिए । द्रव्यान्तरदान में भी अक्षय फलप्राप्ति कामना से इत्यादि वाक्य जोड़ना चाहिए । नारद पुराण में—

वैशाखशुक्ल तृतीया के दिन गंगा में स्नान कर मनुष्य हर तरह के पाप से मुक्ति पा लेता है ।

ऊँ अद्येत्यादि सब तरह के पापों से मुक्ति पाने की इच्छा से मैं गंगा स्नान करुँगा—कौशिकी स्नान प्रकरण में, रामायण के आदिकाण्ड में लिखा है—

हे राम, वैशाखशुक्ल तृतीया के दिन कोशी नदी में स्नानकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । कार्त्तिक पूर्णिमा यदि कृत्तिका नक्षत्र युक्त हो तो प्रात: काल कौशिकी नदी में स्नान करने पर मनुष्य का स्वर्ग में वास होता है ।

ऊँ अद्येत्यादि अश्वमेध यज्ञ का फलपाने की इच्छा से वौशिकी में स्नान करुँगा—वैशाखपूर्णिमा के सन्दर्भ में विष्णु पुराण में लिखा है—

वैशाखपूर्णिमा के दिन जो व्यक्ति कालामृगचर्म, काले तिल, सोना, मधु एवं घी ब्राह्मणों को दान देता है । वह हर तरह के पाप एवं नीच कर्मो से पार उतर जाता है ।

इस तिथि को स्नान के लिए संकल्प—ओं अद्य गंगास्नान जन्यफल से हजार गुना अधिक फल पाने की इच्छा से मैं गंगा में स्नान करुँगा ।

मैथिली—मन्वादि एवं युगादि में जे विधि विधानक साथ श्राद्ध करैत छथि ओ श्राद्ध हुनक पितर के दुइ हजार वर्ष धरि तृप्ति दैव छन्हि ।

शूलपाणिक अनुसार ई श्राद्ध पूर्वाह्णे में कर्त्तव्य अछि । महेश ठाकुरक कथन छैन्हि ब्राह्मणकय स्मार्त्त लोकनिक से दो पक्ष एतवहि छैन्हि । ई तृतीयाक संदर्भ में ब्रह्मपुराण में—

वैशाखशुक्ल तृतीया में यव लडकें यज्ञकरी, यव सँ भगवान् विष्णु क पूजाकरी, ब्राह्मणकय यवदानकरी, नियंत्रितएवं पवित्र भय यवान्न सँ ब्राह्मण भोजन करावी ।

ब्राह्मणक पूजादिकय यवदानजन्यअक्षय वं उत्कृष्ट फ़ल प्राप्तिक इच्छा से

यवदानकरी । फलानुसार दानार्थ वाक्य रचनाकरी । द्रव्यान्तर दानों में अक्षय फलक प्राप्तिक कामनासँ ई वाक्य क रचना करी । नारदपुराणक अनुसार—

वैशाखशुक्ल तृतीया दिन जे व्यक्ति गंगा स्नान करैत छथि, ओ सब तरहक पापसँ मुक्तभया जाय छथि ।

गङ्गास्नानक संकल्प—ओमद्येत्यादि सब तरह क पाप सँ मुक्त होयवाक इच्छा सँ हम गंगा स्नान करव । कौशिकी स्नानक प्रसंग में रामायणक आदिकाण्ड में लिखल अछि—

हे राम, वैशाखशुक्ल तृतीया विधि में कौशिकी में जे व्यक्ति स्नान करैत छथि हुनका अश्वमेध यज्ञक फल भेटैत छन्हि । कार्तिक पूर्णिमाक दिन यदि कृत्तिका नक्षत्र पडैत होय तऽ कौशिकी में प्रातः स्नान करनिहार व्यक्तिक निवास स्वर्ग मे होयत छन्हि ।

कौशिकी स्नानक संकल्प यथा—ओमद्येत्यादि, हम अश्वमेध यज्ञजन्य फल प्राप्तिक कामना से कौशिकी स्नान करव ।

वैशाखक पूर्णिमाक संदर्भ में विष्णुपुराण में लिखल अछि—

कृष्णमृगचर्म, कारीतिल सुवर्ण, मधु, घृत जे व्यक्ति ब्राह्मण के दान करैत छथि । ओ सब तरहक पाप सँ मुक्तभय आयत छथि—

अहि अवसर पर गङ्गास्नानक संकल्प—ओ अद्येत्यादि हम गंगा स्नान जन्य फलक सहस्रगुणाधिक फल प्राप्तिक इच्छा सँ गंगास्नान हम करव । इति ।

विमर्शः—एतदक्षयतृतीयामभिधाय निर्णयसिन्धौ—वैशाखशुक्ल तृतीया अक्षयतृतीयोच्यते । सा पूर्वाह्ण व्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेऽपि तद् व्याप्तौ परैव ।

तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता ।
दुर्लभाबुधवारेण सोमेनापि युता तथा ।।
रोहिणी बुधयुक्ताऽपि पूर्वविद्धा विवर्जिता ।
भक्त्या कृताऽपि मान्धातः पुण्यं हन्ति पुराकृतम् ।।
गौरीविनायकोपेता रोहिणी बुधसंयुता ।
विनाऽपि रोहिणी योगात् पुण्यकोटिप्रदा सदा ।।

इयञ्च युगादिरपि, सान्वोक्ता रत्नमालायाम्—

माघे पञ्चदशीकृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।
तृतीयामाधवे शुक्ला नवम्यूजे युगादयः ।। इति ।

अनन्तभट्टस्तु—सवैधृतिव्यतीपातो युग्म मन्वादयस्तथा ।
सम्मुखा उपवासेस्युर्दानादावन्तिमाः स्मृताः । इति स्मृतिः ।

सम्मुखाः पूर्वान्विता, उपवासे । दानादाविति दानश्राद्धादादौदियकी ग्राह्येति निर्णयः । द्वैतनिर्णयादौ वाचस्पतिमिश्रोऽपि तथैव ।

कृत्यमहार्णवेऽपि युगादिरियं तृतीया—

'वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयायां युगं भवेत् ।' इति वचनात् ।

अत्राप्युदयंगामिन्यां योगकालवत्यां स्नानदानादिदैवं कर्म पूर्वाह्णे कर्त्तव्यमिति सन्देह बीजाभावात् । उभयतिथिवेधे तृतीयायामुभयत्र कालालाभे उत्तरः ।

युगाद्यामर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।
सूर्योदयमपेक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ।। इति देवी पुराणतः ।

युगाद्या इति । कृत्यशिरोमणावपि श्राद्धे तु तद्योग्यकालव्यापिनी तृतीया ग्राह्या, दिनद्वये मध्याह्णे तल्लाभे पूर्वदिने ग्राह्या । एवमुदयद्वये दैवकर्मानुष्ठानयोग्य तृतीयालाभे दैवं कर्म प्रथमोदयगामिन्यामेव तृतीयायां कपालाधिकरणन्यायात् कार्यम् ।

यत्तु—गौडाः—'माषस्य पौर्णिमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम् ।' इतिब्रह्मोक्तेः, वैशाख मासस्य या तृतीया, नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे, त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।' इति विष्णुपुराणे चकारेण तमिस्रपक्षानुषङ्गेऽपि पूर्वानुरोधात् पौर्णमास्येव ज्ञेया । द्वे शुक्ले इत्यादिकं तु निर्मूलमाहुः । तत्र 'दर्शेतु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम् । इति भविष्य विरोधात् । एतेन ब्राह्मानुसारात् पूर्णिमायामेव युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः । तेन कल्पभेदात्युगभेदात् वा व्यवस्थेति तत्त्वम् ।

अथैकभुक्तमाह—स्कन्दपुराणे—रात्रि भोजनाभाव विशिष्टैकवार भोजनम् ।

तत्तु— दिनार्धं समयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् ।
एकभुक्तमिति प्रोक्तं रात्रौ तन्न कदाचन ।।

नक्तव्रतं तु—दिवाभोजनाभावविशिष्टैकवारभोजनं रात्रिभोजनम् । एतदेव प्रबोधिन्यादौ शिष्टमैथिलेषु व्रतं प्रचलितम् । संस्कारदीपके प्रथा यथा—

प्रपेयं सर्व सामान्य भूतेभ्यः प्रतिपादिता ।
एतद्दानेन पितरः प्रीतिं यान्तु पितामहाः ।। इति ।

अथ ज्येष्ठकृत्यम्

ज्येष्ठामावास्यायां वटमूले सावित्रीपूजनं वटप्रदक्षिणं च स्त्रियः कुर्युः । इयममावास्या पूर्वयुतैव ग्राह्या । तदुक्तम्—

स्कान्दे—'कृष्णाष्टमी चतुर्थी च सावित्री वटपैतृकी ।
शुक्ला त्रयोदशी रम्भा नोपोष्याः स्युः परान्विताः' ।। इति ।

स्मृतिश्च—'शिवा च शिवदुर्गा च दूर्वा चैव हुताशनी ।
गोपूजा च वटच्छाया कर्त्तव्या प्रथमे दिने ।।' इति ।।

अथ तिथीनां वेधविचारः—तत्र प्रातःकाले द्विमुहूर्तवेधः ।

'द्विमुहूर्त्तोऽपि वेधः स्याद्यातिथिर्वृद्धिगामिनी ।'

इति दक्षोक्तेः सायंकाले त्रिमुहूर्त्तवेधः ।

'पक्षद्वयेऽपि तिथयः तिथिपूर्वां तथोत्तराम् ।
त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ।।'

इति पैठीनसिवचनात् ।

'यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः ।
सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत् ।। इति ।

स्कान्दोक्तेश्च । इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ ठक्कुराः ।

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां पञ्चाग्निव्रतं राजमार्तण्डे—

'भद्रे कुरु प्रयत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् ।
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा ।।'

हिन्दी—जेठ महीने की अमावस्या तिथि में बरगद के पेड़ की जड़ में सावित्री की पूजा करनी चाहिए । बरगद पेड़ की प्रदक्षिणा औरतों को करनी चाहिए । यह अमावस्या पूर्वविद्धा ही मान्य है—इस प्रकार स्कन्दपुराण में—

कृष्णाष्टमी, चौथ, बरगदमूलक सावित्रीव्रत, शुक्लात्रयोदशी तथा तृतीया व्रत परविद्धा नहीं करना चाहिए । और स्मृति में भी—

शिवा, शिवदुर्गा, दूर्वा, फाल्गुन पूर्णिमा, गोपूजा और सोमवारी अमावस्या पूर्वविद्धा ही करनी चाहिए ।

अब तिथियों का वेध विचार—प्रभातवेला में दो मुहूर्त्त अर्थात् एक घण्टा छत्तीस मिनट का वेध होता है और सायंकाल में तीन मुहूर्त्त अर्थात् दो

घंटें चौबीस मिनट का बेध होता है । दो मुहूर्त्त का बेध भी उसी तिथि में होता है जिस तिथि की वृद्धि होती है—यह दक्ष की उक्ति है ।

दोनों पक्षों में तिथियाँ चाहे पूर्वविद्धा हो या परविद्धा, बेध तीन मुहूर्त्त का होता है, यह सामान्य नियम उल्लिखित है । यह पैठीनसि का वचन है ।

'जिस तिथि में सूर्य का अस्त होगा, उस दिन की वही तिथि मानी जायेगी । तीन मुहूर्त्त का वेध उसी तिथि में होगा ।' स्कन्द पुराण की यह मान्यता है, साथ ही म.म. महेश ठाकुर ने तिथितत्त्वचिन्तामणि में भी इसका उल्लेख किया है ।

जेठशुक्ल तृतीया में पञ्चाग्निव्रत का उल्लेख राजमार्त्तण्ड में किया गया है । यथा—

'हे कल्याणि, जेठशुक्ल तृतीया के दिन नियमबद्ध होकर स्नानोपरान्त प्रयासपूर्वक रम्भा नामक उत्तम व्रत करो ।'

मैथिली—जेठ मासक अमावस्याक दिन वटमूल में स्त्रीलोकनिवें सावित्रीक पूजा करवाक चाही संगहि वट वृक्षक प्रदक्षिणा सेहो करवाक चाही । ई अमावस्या पूर्वविद्धे ग्राह्य अछि । जेना स्कन्दपुराणक वचन अछि—

'कृष्णाष्टमी, चतुर्थी, सावित्रीव्रत, शुक्लपक्षीय त्रयोदशी तथा तृतीया व्रत परविद्धा नहि करवाक चाही ।'

स्मृतिक वचन अछि—'गौरी, शिवदुर्गा, दूर्वा, फाल्गुन पूर्णिमा, गोपूजा एवं सोमवारी व्रत पूर्वविद्धे करवाक चाही ।'

आव तिथिक वेध विचार—प्रातः काल में दुई मुहूर्त्तक वेध होयत अछि । दक्षक कथनानुसार वृद्धिगामिनी जे तिथि होयत छैक ओकरा में दुई मुहूर्त्तक वेध होयत छैक । तथा सायंकाल में तीन मुहूर्त्तक बेध होयत छैक ।

दुहू पक्षक तिथिक पूर्व एवं उत्तर खण्ड में तीन मुहूर्त्तक वेध होयत छैक । ई सामान्य विधि उल्लिखित अछि । पैठिनसिक ई कथन अछि ।

जाहि तिथि में सूर्यक अस्त होय ताहि दिनक सेहो तिथि मान जायत अछि । ओही तिथि में तीन मुहूर्त्तक वेध होयत छैक । स्कन्दपुराणक ई वचन अछि ।

म.म. महेश ठक्कुरक तिथितत्त्वचिन्तामणि में सेहो एकर उल्लेख अछि—

'हे कल्याणि, जेठशुक्ल तृतीयाक दिन नियम तत्परभय स्नानोपरान्त रम्भा नामक उत्तम व्रत करू ।'

विमर्श:—अथ कृत्यशिरोमणौ यथा—

'ज्येष्ठेमासे च यत्कृत्यं व्रतादिविधि निर्णयम् ।
तिथिद्वैधात्तु संकृष्य स्मृतित: संग्रहीष्यते ।।'

अथ वृषसंक्रान्तौ पूर्वा: षोडशघटिका: पुण्यकाला: पूर्वार्द्धरात्रिमध्ये यदि संक्रमणस्तदा पूर्वदिवसस्योत्तरार्द्धं पुण्यं परार्द्धं रात्रौ त्वपरदिवसस्य पूर्वार्द्धं पुण्य सम्पूर्णार्द्धं रात्रौ यदि उदग्दक्षिणायणातिरिक्त संक्रमण कालस्तदा पूर्वदिवसस्योत्तरार्द्धं परदिवसस्य पूर्वार्द्धं पुण्यं स्यात् । पूर्व दिवसादन्यातिथिर्यदिस्यात्तदा परदिनस्य पूर्वार्द्धं पूर्वदिनस्यपिपरार्द्धं पुण्यम् । सम्पूर्णार्द्धरात्रौ यथ्युत्तरायण संक्रान्तिस्तदातिथिभेदेऽपि परदिनस्यैव पूर्वार्द्धं पुण्यं दक्षिणायने तु पूर्वदिवसस्य परार्द्धपुण्यं । राजमार्त्तण्डे तु—

निशार्कचारान्निकरं दिनार्द्धं दिवार्कचारा निकटास्यघट्य: ।
ता: कर्कटे प्राक्कथितेतरेर्वाक् पुण्याय विष्वक् घटगोलि सिंहे ।।

मिथिलायाम् अयमेव व्यवहार: ।

अथ सोमवत्यमावास्याव्रतमुक्तं भारते यथा—

अमावास्या यदा पार्थ सोमवारसमन्विता ।
तस्यामस्वस्थमागत्य पूजियित्वाजनार्दनम् ।।
अष्टोत्तरशतं कृत्वा तस्मिन् वृक्षे प्रदक्षिणम् ।
तावत्संख्यानुपादाय रत्नधातुफलानिव ।।
व्रतराजमिदं राजन् विष्णो: प्रीतिकरं परम् ।

स्मृत्यन्तरे— सोमवत्याममायास्तु व्रतं कृत्वा सती भवेत् ।
पतिपुत्रधनै:पूर्णा जन्मजन्मनि निश्चितम् ।।
विधवा चेत्करोतीदं न पुनर्विधवा क्वचित् ।
तस्मास्त्रिया सुभगय: कर्त्तव्यं खलु तद् व्रतम् ।।

मासनियमोऽत्र नास्ति । यदा कदा सोमवारयुक्ताऽमा भवेत्तदैव सोमवतीयोग: । व्रतमिदं दिनान्तर्गतमेव कर्त्तव्यम् । केवल सोमवारव्रतमपि शिवप्रीतिकरमुक्तं मत्स्यपुराणादौ । तद्दिवाऽभोजनपूर्वकरात्रिभोजनरूपम् । तथा च स्कान्दे—

सोमवारे विशेषेण प्रदोषादि गुणैर्युते ।
केवलं वाऽपि ये कुर्यु: सोमवारे शिवार्चनम् ।
न तेषां विद्यते किञ्चिद्दिहामुत्र च दुर्लभम् ।।
ज्योतिष: शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रिय: ।
वैदिकैर्लौकिकैर्वाऽपि विधिवत्पूजयेच्छिवम् ।।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्यावाऽपि सभर्तृका ।
विभर्त्तिका वा सम्पूज्य लभते वरमीप्सितम् ।।

सावित्रीव्रतेष्ट: दशघटिका चतुर्दशी तदा पराग्राह्य:—

पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशीतिथि: ।
नाडयोऽष्टादशभूतस्य स्युश्चेत्तु स्यात्परेऽहनि ।। इति माधवाचार्योक्ते: ।

एवं हि भूतोऽष्टादशनाडिभिर्दूषयत्यपराम् तिथिमित्यस्याप्यन्यव्रते सावकाशत्वादि-विशेषत:—पूर्वविधायकवचनैस्तस्येबाधेनाष्टादशानाडिवेधेऽपि पूर्व युतैवेति मैथिलस्मार्त्त-मात्रसिद्धान्त: ।

ज्येष्ठशुक्लतृतीया रम्भाख्या तत्र पञ्चाग्निव्रतम् । तत्र कृत्यशिरोमणौ शुभङ्करीये—ज्येष्ठ शौक्लिक रम्भा तृतीया व्यतिरिक्ता सर्वाऽपि तृतीया परयुतैव रम्भा तु द्वितीयायुतैव । तदुक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—

'रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां मुनिपुंगव ।
अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यत ।।' इति ।।

तत्त्वचिन्तामणावप्येतदेव । तिथितत्त्वेपि रम्भाव्यतिरिक्ता तृतीया चतुर्थीयुतैव । वाचस्पतिमिश्रतिथिनिर्णये—रम्भां त्यक्त्वा तृतीया चतुर्थीयुतैव । तिथिदीपिकायामपि-रम्भाव्रतेतर दैवकर्मसु चतुर्थीयुतैव । सर्वग्रन्थस्वरसात् रम्भाद्वितीयैवयुतैवेति नियम: । तिथितत्त्वचिन्तामणौ विशेषोऽपि स्कान्दाद्यथा—

'बृहत्तल्पा यथा रम्भा सावित्रीवट पैतृकी ।
कृष्णाष्टमी चतुर्थीच्चकर्त्तव्या संमुखी तिथि ।।' इति ।

निर्णयसिन्धावपि—'रम्भास्थां तृतीया पूर्वविद्धैवग्राह्य: ।'

अन्यच्च—'युग्माग्नि क्रतुभूतानीत्यादि युग्मवाक्यादपि द्वितीयायुतैव ।'

निर्णयामृते यथा—'ज्येष्ठशुक्ल तृतीयायां पतिपुत्रफलार्थिनी ।'

अत: सर्वग्रन्थस्वरसात् मैथिलव्यवहाराच्च रम्भाद्वितीयायुतैव मान्येति निष्कर्ष: ।।

एतद्व्रतोद्यापनं पञ्चवर्षं समाचार: । इयमेव रम्भाख्या तृतीया सा च द्वितीयायुतैव कार्या,

'युग्मा२ग्नि३क्रतु४भूतानि५ षण्६मुन्योे७र्वसु८रंध्रयो:९ ।
रुद्रेण११द्वादशी१२युक्ता चतुर्दश्या१४थ पूर्णिमा१५ ।।
प्रतिपदात्वमावस्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।
व्यस्तमेतन्महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् । इति निगमात् ।
'रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम !
अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ।।' इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् ।।

अथ दशहरा । राजमार्तण्डे—

'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ।
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता: ।।'

कुजहस्तयुतां दशमीमभिधाय तत्रैव 'पुण्यं दद्यादपि दशगुणं वाजिमेधायुतस्य' इति । एतद्दशमीमभिधाय स्कान्दे' ।

यां काञ्चित् सरितं प्राप्य दद्यादर्घ्यतिलोदकम् ।
मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः ।।'

दद्यादिति पितृभ्यः इत्यादि योगाधिक्ये फलाधिक्याद्यत्रैव योगबाहुल्यं तत्रैवेयं ग्राह्या, 'ज्येष्ठे मलमासे सत्यपि तत्रापि दशहरा प्रशंसा न तु शुद्धसमय एव' इति नियमो निबन्धमात्रे । तथा 'दशहराः शुभोत्कर्षाश्चतुर्ष्वपि युगादिषु' इति ऋष्यशृङ्गः । इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ ठक्कुरमहेशालेखनं दश पापान्याह राजमार्तण्डे—

'पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यं चापि सर्वतः ।
असम्बद्धप्रलापञ्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।।
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधम्मतम् ।।
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।।'

अस्यां गङ्गास्नाने सङ्कल्पः—'ॐ अद्येत्यादि दशविधपापक्षयकामो गङ्गायां स्नानमहङ्करिष्ये इति ।' अस्यामेव सेतुबन्धे रामेश्वरदर्शनम् अस्यां स्थापितत्वात् । तथाहि—

'दशयोगे सेतुमध्ये लिङ्गरूपधरं हरम् ।
रामो वै स्थापयामास शिवलिङ्गमनुत्तमम् ।।'

हिन्दी—पांच वर्ष तक रम्भा नामक व्रत लगातार नियमबद्ध होकर पूरा करने के बाद उसका उद्यापन किया जाता है, यही शिष्टाचार है । इसे ही रम्भा नामक तृतीया कहते हैं । यह तृतीया पूर्वविद्धा है अर्थात् द्वितीयायुक्त ही करनी चाहिए । युग्म २, अग्नि ३, क्रतु ४, भूतानि ५, षट् ६, मुन्योः ७, वसु ८ रन्ध्रयोः ९, रुद्रेण ११, द्वादशी १२ युक्ताचतुर्दशी १४, पूर्णिमा १५ । प्रतिपदा एवं अमावास्या दोनों तिथियों का परस्पर सम्बद्धरूप महाफलदायी होता है । इसमें फेरबदल होने पर महापाप होता है । पूर्व जन्मार्जित पुण्य का भी क्षय हो जाता है । यह निगम का वचन है । दूसरे सभी कार्यों में चौथयुक्ता तृतीया ही ग्राह्य है । ब्रह्मवैवर्त का भी यही मत है । अब गंगादशहरा के बारे में राजमार्तण्ड में—

हस्त नक्षत्र युक्त जेठ शुक्ल दशमी दस तरह के पापों को विनष्ट करता है, अतः इसे दशहरा कहा जाता है ।

मंगल दिन एवं हस्त नक्षत्र युक्त दशमी के सम्बन्ध में वहाँ ही— 'अश्वमेध यज्ञ करने के फल से भी दस गुना अधिक फल देने वाली यह दशमी है । इसी दशमी को लेकर स्कन्दपुराण—

जो कोई व्यक्ति जिस किसी नदी में इस दशहरा में स्नानकर तिलमिले जल से अर्घ देता है, वह दश महापातक जैसे पापों से भी मुक्त हो जाता है, । यह अर्घ पितरों को उद्देश्यकर दिया जाता है । योग की अधिकता के कारण ही फल की अधिकता होती है । अत: जहाँ ऐसे योगों की बहुलता है वहाँ ही यह ग्राह्य है । जेठ में मलमास होने पर भी यह दशहरा प्रंशनीय है; इसे शुद्धमास की अपेक्षा नहीं है । यही निबन्धों का नियम है और दशहरा चारो युग के लिए शुभोत्कर्षी है, यह ऋष्यशृंग का कथन है । म.म. महेश ठाकुर ने भी अपनी तिथितत्त्वचिन्तामणि में इसका उल्लेख किया है । राजमार्त्तण्ड में इन् दश पापों का उल्लेख है—

कठोर वचन, झूठ बोलना, सब जगह चुगलखोरी, बेतुकी बकवास, ये चार वाचिक पाप हैं । बिना दिये किसी की वस्तुओं का स्वीकार कर लेना, बिना किसी आयोजन की हिंसा, परायी औरतों के साथ संभोग करना, ये तीन कायिक पाप हैं । दूसरों का धन पाने की प्रबल इच्छा करना, मन से भी दूसरों की अनचाही सोचना, मिथ्या कृतसंकल्प ये तीन मानसिक कुल मिलाकर दश प्रकार के पाप कहे गये हैं ।

दशहरा में गंगास्नान का संकल्प है । ॐ अद्येत्यादि दशविध पापों के क्षय हेतु मैं गंगा में स्नान करुँगा । इसी दशहरा में सेतु बन्ध रामेश्वर के दर्शन करते हैं । इसी दशहरा में रामेश्वरम् की स्थापना की गई है । भारत में लिखा है—

इसी दशहरा में महादेव ने लिङ्ग रूपधारण किया था, जिस सर्वोत्कृष्ट शिवलिङ्ग की स्थापना श्रीराम ने इसी दिन सेतु के बीच की थी ।

मैथिली—पांच वर्षधरि निरवच्छिन्न व्रत करवाक वाद, एक उद्यापन करवाक आचार अछि । रम्भा नामक तृतीया एकरे नाम छैक । ई द्वितीया युता ग्राह्य अछि । द्वितीया, तृतीया, चौथ, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी युक्ता चतुर्दशी एवं पूर्णिमा, प्रतिपदा अमावस्या तिथिक जोड़ी महाफलदायक होऽ करछ । एकर व्यतिक्रम घोरपापक भूल होयत अछि तथा व्रतकर्त्ताक पूर्वजन्मार्जित पुण्यफल नष्ट कय दैत अछि । ई निगमक कथन अछि । ब्रह्मदैवर्त्त में कहगेल अछि—हे द्विजोत्तम, रम्भा नामक तृतीया व्रतके छांडिकय, अन्य सभकार्य में चतुर्थी युक्ता तृतीया सेह प्रशंसित अछि ।

आव दशहराक सम्बन्ध में राजमार्त्तण्ड में कहल गेल अछि—

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी यदि हस्तनक्षत्र युक्तहोयतऽ ओ दश तरहक पाप कय विनष्ट करैत अछि । ताय ओकुर नाम दशहरा छैरू—

ओही ठाम एकरो उल्लेख छैक कि ई दशहरा यदि मंगल दिन हस्त नक्षत्रयुक्त होय सेह अश्वमेध यज्ञक दशगुणा अधिक पुण्य फलदायी होयत अछि । अहि दशहराक सन्दर्भ में स्कन्दपुराण में कहल गेल अछि—

महापातक तुल्य दश तरहक पाप सँ ओ व्यक्ति मुक्त भय जायत अछि, जे कोनो नदी में जेठ शुक्ल दशमीक दिन स्नान कय तिलक संग जलक अर्घ दैत अछि ।

'दद्यात्' पद पितरक लेलछैक । योगाधिक्य में फलाधिक्य होयत छैक तांय जाहि ठाम योग बाहुल्य छैक ताही ठाम ई दशमी ग्राह्य अछि । ओ नात्तऽ मलमासी रहला उत्तर दशहरा प्रशंसनीय होयत अछि, एकरा लेल शुद्ध समयक अपेक्षा नहि होयत छैक । ई सभटा निबन्धक नियम अछि । ऋष्यशृंगक अनुसार ई दशहरा चार युग में शुभोत्कर्षी होयत अछि । म.म. महेश ठाकुरक तिथितत्त्व चिन्तामणि में सेहो एकर पुष्टि कयल गेल अछि । दश तरहक पापक उल्लेख राजमार्त्तण्ड में अछि—

कटुवचन, मिथ्याभाषण, सब ठाम चुगलखोरी, आसंगत अपलाप, ई चारि तहरक वाचिक पाप कहलगेल अछि । विनदल वस्तुक स्वीकरण, विधिहीन हिंसा, एवं परपत्नीक संग संभोग, ई तीन तरहक कायिक पाप तथा दोसरक धनक अभिलाष, मनसँ दोसरक अनिष्ट चिन्तन, निरर्थक आसक्ति ई तीन तरह मानसिक पाप होयत अछि । कुल मिलाकय ई दश तरहक पाप अछि ।

अहि दशहराक अवसर पर गंगास्नानक संकल्प—ॐ अद्येत्यादिक, हम दश तरहक पाप क्षयार्थ गंगास्नान करव । अही अवसर पर सेतुबन्ध रामेश्वर दर्शन करवाक चाही । अही दिन रामेश्वर महादेवक स्थापना भेल छैन्हि । तंहा—

अही दशहराक अवसर पर सेतुक मध्य महादेव लिङ्गक स्वरूप धारण कयने छथि । अछि उत्कृष्ट शिवलिङ्गक स्थापना श्रीराम अहि ठाम कयने छथि ।।

विमर्शः—तत्र तत्त्वचिन्तामणौ । ब्राह्मे—

ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी सम्वत्सरमुखीस्मृता । तस्यां स्नानं हि कुर्वीत दानं चैव विशेषतः, यां कांश्चित्सरितं प्राप्य दद्याद्दर्भैस्तिलोदकम् । मुच्यते दशभिः पापैर्महापातक संज्ञितः । अत्र नदी स्नाने दशविधपाप विनिर्मुक्तिः । एतदेव कृत्यमहार्णवे—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमीहस्त संयुता । हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्मृतः ।

गाङ्गेयाख्ये ज्योतिर्निबन्धे—

ज्येष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्यां
हस्ते शैलान्निरगमदियं जाह्नवी मर्त्यलोकम् ।
पापान्यस्यां हरति च तिथौ सा दशेत्याहुरार्याः
पुण्यं दद्यादपि शतगुणं वाजिमेधायुतस्य ।।

स्कान्दे सेतुबन्धमाहात्म्ये—

ज्येष्ठमासे सितेपक्षे दशमी बुधहस्तयोः ।
गरान्दे व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ।
दशयोगे सेतुमध्ये लिङ्ग रूपधरं हरम् ।
रामो वै स्थापयामास शिवलिंगमनुत्तमम् ।।

अत्र वृषे रवावित्यनेन ज्येष्ठस्य मलमासे तत्रैव वृषादित्यसंभवाच्छुद्ध ज्येष्ठ-शुक्लदशम्यां मिथुनादित्यनिश्चयान्मलमासशुक्लदशम्यामेव दशहरा ।

वाराहेऽपि— दशमीशुक्लपक्षे तु ज्येष्ठेमासिकुजेऽहनि ।
अवतीर्णा यतः स्वर्णात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा ।
हरते दशपापानि तस्माद्दशहरास्मृताः ।। इति ।

स्कान्दे तु दशयोगाः उक्ता—

ज्येष्ठेमासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ।
व्यतीपाते गरानन्दे कन्या चन्द्रे वृषे रवौ ।
दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।'

अथाषाढकृत्यम्

मैथिलस्मार्तमते एकादश्यामेव हरिशयनम् दाक्षिणात्यमते द्वादश्याम् । गौडमते चोभयमिति बोध्यम् । तथा भारते—

'आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
चातुर्मास्यव्रतंकुर्याद्यत्किञ्चिदखिलो नरः ॥'

नित्यमेतद्व्रतम् । दैवादकरणे कार्तिकमात्रेऽपि कर्त्तव्यम् । तथाहि भारते—

'वार्षिक्या चतुरोमासान् वाहयेत्केनचिन्नरः ।
व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरोद्भवम् ॥
असम्भवे तुलार्केऽपि कर्त्तव्यं तत्प्रयत्नतः ॥'

आषाढसित रविवारे पुलिकमूलबन्धनमुक्तम् ज्योतिःसारे—

'शुचिसितदिनकरवारे करमूले बद्धपुलिकमूलस्य ।
नागारेरिव नागाः प्रयान्ति किल दूरतस्तस्य ॥'

तन्मन्त्रोऽप्ययमेव । बृहद्वसिष्ठः—

'अकृत्वा पुलिकैर्बन्धं प्रायश्चित्तीयते नरः ।
चातुर्मास्ये व्यतीते तु मुक्तिस्तस्य कराद् भवेत् ॥'

हिन्दी—मैथिल स्मार्त्तों के मत में एकादशी में ही भगवान् विष्णु का शयन माना जाता है । दाक्षिणात्यमत में द्वादशी तथा गौड़मत में दोनों ही दिन माना गया है । भारत में लिखा है—

आषाढ़ शुक्ल की एकादशी में उपवास कर प्रत्येक व्यक्ति को चातुर्मास्यव्रत अर्थात् आषाढशुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक चौमासा व्रत करना चाहिए ।

यह नित्यव्रत है । दैवयोग से यदि आषाढ छूट जाय तो कार्त्तिक मास में भी करना चाहिए । भारत में लिखा है—

जिस किसी भी व्यक्ति को वर्ष के इस चौमासाव्रत का निर्वाह अवश्य करना चाहिए । अन्यथा वर्षभर होने वाले पापों का वह भागी होता है । असंभव होने पर तुलार्क में भी प्रयास पूर्ववत् यह व्रत करना चाहिए ।

आषाढशुक्लपक्ष रविवार के दिन पुलिक की जड़ बाँधना चाहिए । ज्योतिषसार में कहा गया है—'आषाढशुक्ल रविवार के दिन हाथ में जो

पुलिक की जड़ बाँधता है; नाग अपने शत्रु गरुड़ की तरह इन्हें दूर से देखकर ही भाग जाता है ।'

बाँधने का मन्त्र भी यही है । वृद्धवशिष्ठ—

जो व्यक्ति पुलिक की जड़ नहीं बाँधता है, वह प्रायश्चित्ती होता है । चतुर्मासा बीत जाने पर इसे लोग हाथ से खोल देते हैं ।

मैथिली—मैथिल स्मार्त्तक मते आषाढ शुक्ल एकादशी हरिशयिनी मानल गेल अछि । दाक्षिणात्यक मत में ई द्वादशी तिथि मानल गेल अछि तथा गौड़क मत में दुहूतिथि मान्य अछि ।

तथा भारत में—

आषाढशुक्ल पक्षक एकादशी व्रतक उपवास करैत कार्त्तिक मासोक व्रत करवाई चाही । भारत में कहल गेल अछि—

चौमासाव्रतक निर्वाह सभके करवाक चाही । जे ई व्रत नहि करैत छथि हुनका वर्षभरिक पापक भागी होको पड़ैछ । यदि संभव नहि भय सकय तऽ प्रयासपूर्वक तुलार्को में ई व्रत करवाक चाही ।

आषाढशुक्लपक्ष रविवारक दिन पुलिकमूल बन्धनक संबन्ध में ज्योतिष्सार में कहलगेल अछि—'आषाढशुक्ल रविवारक दिन ताथ में पुलिक मूल जे बाँधैत छथि हुनका साँप अपन जानलेवा गरुड़क ढुरिये सँ देखि भागि जायस छैक । ओकर मन्त्रो येह छैक । बृद्धवशिष्टक मत छैन्हि—

चौमासा बीतलाक बाद हाथ में बांधल पुलिक मूल खोलिकय हटा देवाक चाहि जे व्यक्ति हाथ में पुलिक मूल नहि बाँधैत छथि हुनका प्रायश्चित्त लगैत छन्हि ।

विमर्श—आषाढकृष्णैकादश्यो योगिनीव्रतम् । तत्र तिथितत्वचिन्तामणौ—

'आषाढस्यासितेपक्षे योगिनीनामनामतः ।
एकादशी नृपश्रेष्ठः महापातकनाशिनी ॥'

आषाढशुक्लैकादश्याम् हरिशयनव्रतम् । तत्र कृतिमहार्णवे वामनपुराणे च—

'एकादश्यां जगत्स्वामि शयनं परिकल्पयेद्' इत्यादि ।

ब्रह्मपुराणे—'एकादश्यां तु शुक्लायां आषाढे भगवान् हरिः भुजङ्गशयनेशेते' इत्यादि ।

विष्णुधर्मे—'मैत्राधपादेस्वपतीहविष्णुः पौष्णान्तपादेप्रतिबोधमेतीति ।
यमस्तु—'क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद्धरिः ।'

निद्रां त्यजति कार्त्तिक्यां तयोस्तं पूजयेत्सदेप्याहि च । एवं सर्ववचनाभिप्रायेण एकादश्यामेव हरिशयन व्यवस्था, न पौर्णमास्याम्, मलमासेऽपि चैतत् ।

संस्कृत—कृत्यशिरोमणौ यथा—

'आद्राया: प्रथमेपादे क्षीरमश्नाति यो नर: ।
अपि रोषयुतस्तस्य तक्षक: किं करिष्यति ।।'
क्षीरं परमान्नमश्नातीत्यर्थबलादिति प्रहर्षिका: ।
मूलं तण्डुलवारिणां पिबतिय: प्रत्यङ्गिरा संभवम् ।
निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीति: कुत: ।।
दर्शादिव यदाफणी दशति तं मोहान्वितो मूलपम् ।
स्थानं तेव स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ।।

मात्स्ये— 'पन्नगान् येन हिंसन्ति तान्न हिंसन्ति पन्नगा: ।'

येषु नक्षत्रेषु सर्पेण दष्टो न जीवति तान्याह वशिष्ठ:—

मघाविशाखाऽनलसार्पयाम्यनैऋत्यरौद्रेषु च सर्पदष्ट: ।
सुरक्षितो विष्णुरथेन सोऽपि प्राप्नोति कालस्य मुखं मनुष्य: ।।

अत्र विष्णुरथेन गरुडेन 'नागान्तको विष्णुरथ: सुपर्ण: पन्नगाशन:' इत्यमर: ।

तत्र नवोदक श्राद्धं न करणीयमिति—रघुनन्दनीयाऽष्टाविंशतितत्त्वे लिखितम् । तत्र साधारणतया श्राद्धवर्ज्यतिथिदिननक्षत्राणि त्याज्यानि । शातातप:—

'नवोदके नवान्ने च गृह प्रच्छादने तथा ।
पितर: स्पृहन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ।।'

सर्पदंष्ट्रसन्दर्भे शब्दकल्पद्रुमे यथा—

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीजं त्रिर्भावितं पिप्पलिचूर्णमिश्रम् ।
एषोऽगदो हन्ति विषाणि कीट भुजङ्गलूतोन्दुरुवृश्चिकानाम् ।।

'तूलद्रुपत्रस्य रसं सर्द्धद्वितोलसम्मितम् ।
पाययेत्तद्रसैर्लेपस्तत्पत्रै: सेकबन्धनम् ।।'

'रम्भास्तम्भ रसं पीत्वा सर्पदष्ट: सुखी भवेत् ।'

अथ श्रावणकृत्यम्

राजमार्तण्डे—

'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।।
तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ।।'

सिंहो भाद्रः, कर्कटः श्रावणमासः, मासश्चात्र सौरो ग्राह्यः । द्वैतपरिशिष्टे तथैवाभिधानात् । नद्यश्चाष्टसहस्रधनुःप्रमाणं यासां ताः । तन्न्यूनं गर्तः । तथा हि—

'धनुः सहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते ।
न ता नदीशब्दवाच्या गर्तास्ते परिकीर्तिताः ।।

चतुर्हस्तदण्डो धनुः । तथा हि विष्णुधर्मोत्तरे—

'द्वादशांगुलिकः शंकुस्तद्द्वयं तु शयः स्मृतः ।
तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुः सहस्रिकः ।।' इति ।

शयो हस्तः समुद्रगाः साक्षातप्रत्याभिज्ञायमानसमुद्रगामिन्यः तासु गङ्गा, महानदी, तापी, कृष्णा, वेणी, गोदावरी, तुंगभद्रा, ताम्रपर्णी, कावेरी, रेवा, सिन्धुर्गोमतीत्येकादशाहुस्त एव शिष्टाः ।

'तपनस्य सुता गंगा गोमती च सरिद्वरा ।
रजसा च न दुष्यन्ति ये चान्ये नदसंज्ञकाः ।।

तपनस्य सुता यमुना, कालविशेषेऽपि रजोयोगेऽपि स्नाने दोषाभावमाह देवलः —

उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ।।'

उपाकर्म यज्ञोपवीत संस्कारविशेषः । स च दक्षिणदेशे प्रसिद्धः । नदीतीरवासिनान्तु रजोयोगेऽपि सर्वदा नदीस्नाने दोषाभावमाह निगमः—'न दुष्येत् तीरवासिनाम्' इति । व्याघ्रपादीदोऽपि—

हिन्दी—राजमार्त्तण्ड में लिखा है—

सिंह और कर्कट के बीच सभी नदियाँ रजस्वला हो जाती हैं । इन दोनों महीनों में समुद्र तक पहुँचने वाली नदियों को छोड़कर अन्य नदियों का स्नान वर्जित है ।

सिंह का अर्थ भादों महीना और कर्कट का अर्थ सावन महीना होता है । महीने से तात्पर्य सौरमास है । द्वैत परिशिष्ट में इसी तरह का कथन है। आठ हजार धनुः प्रमाण तक कम से कम जो फैली हैं वे नदियाँ है और इस से जो कम हैं वे या तो गड्ढा हैं या नहर । जैसा कहा गया है—

आठ हजार, धनुष तक जिसकी गति नहीं है वह नदी नहीं कही जा सकती है, वह तो गड्ढा है । चार हाथ दण्ड एक धनु कहलाता है । विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है—बारह अंगुल की मांप का एक शङ्कु होता है और शंकु का एक शय अर्थात् एक हाथ माप होता है । चार हाथ का एक धनुष होता है । एक हजार धनुष का एक कोश होता है । इति । शय एक हाथ होता है । समुद्रगाः से तात्पर्य है जो नदियाँ साक्षात् अपने परिचय के साथ समुद्र में मिलती हैं, इनमें गंगा, महानदी, ताप्ती, कृष्णा, वेणी, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, ताम्रपर्णी, कावेरी, रेवा, सिन्धु और गोमती हैं । शिष्टाजन इन्हीं ग्यारह नदियों को समुद्रगा मानते हैं ।

सूर्यपूत्री यमुना, गङ्गा और गोमती श्रेष्ठ नदियाँ हैं । ये तथा इनसे भिन्न बड़ी नदियाँ रजस्वला होने पर भी दूषित नहीं होती हैं ।

तपन की बेटी यमुना, काल विशेष में रजोयोग होने पर भी स्नान करने पर दोषावह नहीं होता । देवल ने कहा है—

यज्ञोपवीतादि संस्कार में, दानकर्म में, तथा प्रेतस्नान में चन्द्र और सूर्य ग्रहण में नदियों का रजोदोष नहीं होता ।

उपाकर्म यज्ञोपवीत संस्कार विशेष को कहते हैं । यह प्रथा दक्षिण देश में प्रसिद्ध है । नदीतीर के वासियों को नदियों के रजस्वला होने पर भी नदी में सदा स्नान करने के कारण कोई दोष नहीं होता । ऐसा निगम का मत है—'तीर वासियों को दोष नहीं होता । व्याघ्रपाद ने भी कहा है—

मैथिली—सावन मासक शास्त्रविहित कर्म—

राजमार्त्तण्ड में—

सिंह एवं कर्कटक बीच सभटा नदी रजस्वला होयत अछि । समुद्रधरि पहुँचयवाली नदीक छोरि अन्य सब नदी में अहि अवधि में स्नान नहि करवाक चाही—

सिंह भादव एवं कर्क्कट सावन मास भेल । मास पदेन सौर मास ग्राह्य अछि । द्वैतपरिशिष्ट में अहिना कहल गेल अछि । आठ हजार धनुष जेकर आयाम छैक सेह नदी होयत् अछि । एकरा सँ कम जेकर दूरी छैक से या त गढा थिक अथवा नहर ।

कहलगेल अछि—

आठ हजार धनुषधरि जकर गति नहिं छैक ओ नदी शब्दक वाच्य नहि अछि, ओ मात्र गढा कहवैत अछि ।

चारिहाथक एक धनुष होयत अछि । विष्णुधर्मोत्तर में कहलगेल अछि । बारह आंगुरक एक शंकु अर्थात् एक बीत दुई बीतक एक शय अर्थात् एक हाथ कहल जायत अछि' चारिहाथक एक धनुष कहलगेल अछि । हजार धनुषक एक क्रोश होयत अछि । इति । शय हाथ कय कहल जायत अछि । ऊपरक श्लोक में निर्दिष्ट 'समुद्रगाः' शब्दक अर्थ भेल – अपन नाम एवं परिचयक साथ जे नदी समुद्र धरिजाय ओ 'समुद्रगाः' भेल । अहि में गङ्गा, महानदी, तापी, कृष्णा, वेणी, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, ताम्रपर्णी, कावेरी, रेवा, सिन्धु एवं गोमती—शिष्टजन ई ग्यारह नदी के समुद्रगा कहैत छथि ।

यमुना, गंगा, गोमती एवं श्रेष्ठ नदी अछि तथा अन्य जे पैथ नदी अछि से रजोदोष सँ दूषित नहिं होयत छथि ।

तपनस्य सुताक अर्थ भेल यमुना । काल विशेष में रजोयोगो में स्नान कयला पर देवल दोषाभाव कहने छथि—

यज्ञोपवीत्तादिकर्म में, दान में, प्रेतस्नान में तथा चन्द्रसूर्यग्रहणक अवसर पर नदीक रजोदोष नहि मानल जायत अछि ।

उपाकर्म सँ यज्ञोपवीत संस्कार विशेषक बोध होयत अछि । ई व्यवहार दक्षिण देश में प्रसिद्ध अछि । नदी तीरवासी लोकनिकलेल रजोयोगो में सर्वदा नदी स्नान में दोषाभाव निगम में कहलगेल अछि—'तीरवासी दूषित नहि होयत छैथि' इति । व्याघ्र पादोक कथन अछि—

'अभावे कूपवापीनामन्येनापि समुद्धृतः ते ।
रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्राम्यभोगो न दुष्यति ।।' इति

अन्येनेति कुम्भादिनेति स्मार्ताः ।'

इति ठक्कुरधृतवचनात् । इदञ्च परयुतायामेव कार्यमिति दिवोदासः ।

स्मृतिश्च—आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका ।
चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते ।। इति

'रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीया' इत्यादिवचनैः चतुर्थीयुतेयं कार्या ।।

अथ गणेशचतुर्थीनिर्णयः—श्रावणशुक्लचतुर्थीगणेशचतुर्थी । सा च पूर्वविद्धा ग्राह्य । तथा हि—

'तृतीयासंयुता या तु सा चतुर्थी फलप्रदा ।
कर्तव्या व्रतिभिः सा तु गणनाथसुतोषिणी ।।' इति ।

गणनाथं सुतरां तोषयतीति गणेश्वरव्रते तृतीयायुता चतुर्थी विधेया । अनयदेवताव्रते हि—गणनाथसुतोषिणीत्यसङ्गतं स्यात् । तस्माद्विनायकव्रते चतुर्थी तृतीया युतैवोपोष्या । वत्सपूजा धेनुपूजायाः पृथगुपादानादिति तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्राः । बृहस्पतिः 'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते' इति । एतच्चोभयदिने मध्याह्नव्याप्तौ उत्तरदिनमात्रे मध्याह्नव्याप्तौ तु उत्तरदिन एव । 'मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात् परतश्च परेऽहनि ।' इति बृहस्पतेः ।।

अथ नागपञ्चमी—श्रावणशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ षष्ठीयुता अन्य पञ्चम्यस्तु चतुर्थीयुताः कार्याः । तथा हि चमत्कारचिन्तामणौ स्मृतिः—

'पञ्चमी नागपूजादौ कार्या षष्ठीसमन्विता ।
तस्यान्तु तुषिता नागा इतरासु चतुर्थिका ।। इति ।

इतरासु एतद्भिन्नपञ्चमीषु चतुर्थिकेति योगः प्रशस्त इति शेषः । स्मृतिः—

'श्रावणे पञ्चमी शुक्ला सम्प्रोक्ता नागपञ्चमी ।
तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिताः स्मृताः ।।' इति ।

इयञ्च शुक्ला पञ्चमी माण्डरब्राह्मणमात्रपूज्या शूद्रैरपि पूज्याकृष्णा तु पञ्चमी सदसन्मान्यातिप्रशस्तेतिर्वस्मार्तराद्धान्तेति तिथितत्वचिन्तामणौ ठक्कुराः ।

अथ रक्षाबन्धनम्—श्रावणपूर्णिमायां भद्राशून्यायां रक्षार्थं रक्षिकाबन्धनम् । भद्रायां तन्निषेधमाह स्मृतिः—

'भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं हन्ति च फाल्गुनी ।।' इति ।

इयं तु पूर्वाविद्धा ग्राह्या—

'श्रावणी दौर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ।
पूर्वविद्धातु कर्त्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ।।'

इति बृहद्यमवचनात् ।।

हिन्दी—नदियों का जहाँ अभाव हो वहाँ कुआं, बावली या घड़े के रजोदूषित जल से स्नान करने पर ग्रामीणों को दोष नहीं होता है । इति ।

'अन्य' शब्द से स्मार्त्तों के मत में घड़ा अर्थ होता है ।

सावन शुक्ल तृतीया में मधुश्रावणीव्रत—

म.म. महेश ठाकुर धृतवचनानुसार—सावनशुक्ल तृतीया मधुश्रावणीक रूप में जानलजायत अधि' । ई मधुश्रावणी 'परयुता' करवाक चाही । दिवोदास एवम् स्मृतिकारक एह मत छैन्हि—

पहली मधुश्रावणी, कजली, हरितालिका या तीज व्रत, स्त्रियों को चतुर्थीमिश्रित दिनरात में करने का विधान है । 'रम्भा नामक व्रत को छोड़कर तृतीय में' इत्यादि वचनों से चतुर्थीयुतैव करना चाहिए ।

अब गणेश चतुर्थी का निर्णय—श्रावणशुक्ल चतुर्थी गणेशचौथ के नाम से ख्यात है । यह चौथ पूर्वविद्धा ही ग्राह्य है । जैसा कहा गया है—

यह गणेश चतुर्थी तृतीया संयुक्त रहने पर फलदायिनी होती है । हे तात! व्रतियों को यही व्रत करना चाहिए । यही व्रत गणेश को प्रसन्नतादायक होता है । इति ।

गणेश को अपेक्षाकृत अधिक संतोष देने वाली तृतीयायुक्त चतुर्थी का ही विधान है । अन्य देवताओं के व्रत में 'गणेश को अधिक संतुष्ट करने वाला' यह वाक्यखण्ड असंगत है । इसलिए गणेशव्रत में तृतीयायुक्त चतुर्थी ही करनी चाहिए । गाय बछड़े की पूजा का उल्लेख तिथिचन्द्रिका में पक्षधर मिश्र ने किया है । बृहस्पति के अनुसार—गणेश चौथ मातृविद्धा ही प्रशंसनीय है । इति । और ये दोनों ही दिन मध्याह्न व्यापिनी यदि है तो उत्तर दिन का मध्याह्नव्यापी व्रत करना चाहिए । यदि उत्तर दिन ही मध्याह्न व्यापिनी उपलब्ध हो तो फिर भिन्न प्रकार से दूसरे दिन का व्रत ग्राह्य है—ऐसा बृहस्पति का वचन है ।

अब नागपंचमी—श्रावणशुक्ल पंचमी नागपूजा प्रभृति में षष्ठीयुक्त पंचमी ही ग्राह्य है । नागपञ्चमी से भिन्न पञ्चमीव्रत चतुर्थीयुता ही ग्राह्य है । चमत्कारचिन्तामणि स्मृति में लिखा—

नागपूजा में पञ्चमी षष्ठी युक्त करनी चाहिए । इसी में नाग देवता संतुष्ट होते हैं । नागपञ्चमी से भिन्न पञ्चमी चतुर्थी युक्त ही करनी चाहिए । इति ।

इतरासु का अर्थ है नाग पञ्चमी से भिन्न पञ्चमीव्रत, वह तो चतुर्थीयुक्त ही प्रशंसनीय है । स्मृति का कथन है—

श्रावणशुक्ल पंचमी को नागपंचमी कहा जाता है । इसे छोड़कर पंचमी चतुर्थीसहित ही कर्त्तव्य कहा जाता है । इति ।

यह श्रावणशुक्ल पञ्चमी माथुर ब्राह्मण मात्र के लिए पूज्य होता है । शूद्रों के लिए भी यह उतना ही पूज्य है । श्रावणकृष्ण पंचमी तो गलत सही हर स्थिति में प्रशंसनीय है, यह सभी स्मार्त्तों का सिद्धान्त है । म.म. महेश ठाकुर ने अपनी तिथितत्त्व चिन्तामणि में लिखा है ।

अब रक्षाबंधन के सम्बन्ध में—

श्रावणपूर्णिमा में भद्रारहित तिथि में रक्षा के लिए रक्षा बन्धन किया जाता है भद्रा में इसका निषेध किया गया है । स्मृति में इसका वचन है—

भद्रा में श्रावणी और फाल्गुनी दो कर्म नहीं करना चाहिए । भद्रा में श्रावणी कर्म करने पर राजा का विनाश होता है और फाल्गुनी कर्म करने पर ग्राम विनष्ट हो जाता है । इति ।

श्रावणी, दुर्गापूजा की नवमी, दूर्वा और होलिका ये पूर्वविद्धा ही करनी चाहिए । इसी तरह शिवरात्रि एवं गोपूजा भी पूर्वविद्धा ही करना करना चाहिए।

मैथिली—नदीक जतय अभाव अधिक ताहि ठाम कुँआ, वावली या घड़ाक रजोदोष सँ दूषित जल सँ स्नान कयला पर ग्रामीण जन के कोनो तरहक दोषनहि होयत अछि ।'

अन्येन पद सँ घटक बोध होयत अछि—ई स्मृति विहित सिद्धान्त अछि ।

श्रावणशुक्ल तृतीयाक दिन मधुश्रावणी व्रत—

श्रावणशुक्ल तृतीयाक दिन मधुश्रावणी कहलगेल अछि । ई म.म. महेश ठाकुर वचन छैन्हि । ई मधुश्रावणीव्रत परयुता करवाक चाही । ई दिवोदास एवं स्मृतिक वचन अछि—

मुख्यत: स्त्रीलोकनिकलेल मधुश्रावणी, कजली तथा हरितालिका किम्वा तीज चतुर्थी मिश्रिते करवाक विधान अछि । इति ।

'रम्भानामक व्रत छोडिकय तृतीया' इत्यादि वचन सँ चतुर्थी मिश्रिते करवाक चाही ।

आव गणेशचतुर्थीक निर्णय—

श्रावणशुक्ल चतुर्थी गणेश चतुर्थीक कहवैत अछि । गणेश चतुर्थी पूर्व विद्धांग्राह्य अछि । जेना—

'हे तात, तृतीया युक्त जे चतुर्थी होयत अछि सँ अत्यधिक फलप्रद होयत अछि । गणेशजीक अत्यधिक संतुष्ट करवाला ई व्रत व्रती के करवाक चाही । इति ।

गणेश जी कें अपेक्षाकृत अधिक संतुष्ट करऽ वाला ई व्रत तृतीयायुक्त चतुर्थी व्रत करवाक विधान अछि । अन्य देवताक व्रत में 'गणनाथ सुतोसिणी' ई विधान असंगत अछि । तें विनायक व्रत में चौथ तृतीया मिश्रिते करवाक चाही । गायबछड़ाक पूजाक अलग विधान तिथिचन्द्रिका में पक्षधर मिश्र कयने छथि । बृहस्पतिक वचन अछि—गणेश चौथ मातृविद्धे प्रशंसनीय अछि ।' यदि ई दुहू

दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तऽ उत्तरदिन ग्राह्य अछि । मध्याह्न व्यापिनी चतुर्थी उत्तर दिनक ग्राह्य अछि ।' मध्याह्न व्यापिनी चेत्स्यात् परतश्च परेऽह्नि ।' बृहस्पतिक वचन अछि ।

अथ नागपंचमी—

सावन शुक्ल पञ्चमीक दिन नागक पूजादि में षष्ठी युतैव पञ्चमी कर्त्तव्य अछि । नागपञ्चमी सँ भिन्न पञ्चमी चतुर्थी युक्ते करवाक चाही । चमत्कार चिन्तामणि में कहलगेल अछि—

नागपूजा में पञ्चमी षष्ठी समन्वित करवाक चाही । नागदेव अही में संतुष्ट रहैत छथि । अन्य पञ्चमी चतुर्थी समन्विते करवाक चाही ।

इतरासुक तात्पर्य नागपञ्चमी सँ भिन्न पञ्चमी व्रत सँ अछि । आन पञ्चमीव्रत में चतुर्थीयुक्ते प्रशंसनीय अछि । स्मृतिक अनुसार—

सावनशुक्ल पंचमी के नागपञ्चमी कहल जायत अछि । ई पञ्चमी के छाड़ि अन्य पञ्चमी चतुर्थी युक्ते कथित अछि । इति ।

ई शुक्ला पञ्चमी माथुर ब्राह्मण मात्रकलेल पूज्य अछि । शूद्रलोकनिकलेल सेहो ई पूज्य अछि । सावन कृष्ण पञ्चमी तऽ नीक अधलाऽ सभकलेल मान्य एवं सभ स्मृतिकारक सिद्धान्त अछि । ई विधि तत्त्वचिन्तामणि में महेश ठाकुर विचार अछि ।

आव रक्षाबन्धनम्—

भद्रारहित सावनपूर्णिमाक दिन अपन रक्षाक निमित्त रक्षाबन्धन करवाक चाही । स्मृति में भद्रा में रक्षाबन्धनक निषेध कहलगेल अछि—

भद्रा मे दुइटा कर्म नहि करवाक चाही—पहिल रक्षा बन्धन तथा दोसर होलिका दाह । भद्रा में रक्षाबन्धन राजाक विनाशकारक होयत अछि तथा होलिका दहन कयने ग्रामक नाश होयत अछि । इति ।

ई रक्षिकाबन्धन पूर्वविद्धा ग्राह्य अछि—

रक्षिकाबन्धन, दुर्गानवमी, दूर्वाकप्रयोग, होलिकादहन, शिवरात्रि, बलिक दिन ई सब पूर्वविद्धे करवाक चाही ।

ई बृहद् यमक वचन अछि—

विमर्शः— नदीनां रजोदोषः तत्र कृत्यशिरोमणौ—

'यव्यद्वयं श्रावणादिः सर्वानद्योरजस्वला ।
तासुस्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ।।'

अत्र यव्यशब्देन मासस्य बोधो भवति । स च कृष्णादिरितिस्मृतिसारः । शुक्लादिरिति तिथिप्रदीपः, सौर इति रत्नाकरादयः । अत्र सौर एव ग्राह्यः इति द्वैत परिशिष्टे

केशव मिश्रा: । अत्र निर्णयसिन्धुधृतमात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम्——

यावन्नोदेति भगवान् दक्षिणाशाविभूषण: ।
तावद्रजोमहानध: करतोया: प्रकीर्त्तिता: ।।

करतोया: = अल्पतोया: ।

तथा च कात्यायन:—— 'या: शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि ।
तासु प्रावृषि न स्नायाद् पूर्णे दशवासरे ।।'

नूतनकूपादौ योगि याज्ञवल्क्य:——

'अजागावोमहिष्यस्य ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।
भूमेर्नवोदकञ्चैव दशरात्रेण शुध्यति ।।'

महानदीषु तु भविष्ये उक्तम्—— आदौ तु कर्कटेदेवि महानद्यो रजस्वला ।
त्रिदिनञ्च चतुर्थ्येति शुद्धा: स्युर्जाह्नवी तथा ।।

महानद्यश्च ब्राह्मे—— गोदावरी भागीरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।
ताप्ती पयोष्णी विन्धस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिता: ।
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती ।
विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तर संस्थिता ।
द्वादशैता: महानद्यो देवर्षि क्षेत्र संभवा: ।।

मदनरत्ने पुराणान्तरे—— महानद्योदेविका च कावेरी वञ्जरा तथा ।
रजसा तु प्रदुष्टा स्यु: कर्कटादे त्र्यहं नृप ।।

कात्यायन:—— कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासर त्रयम् ।
चन्द्रभागासतीसरयू: सिन्धुर्नर्मदा तथा ।।

इदं गंगाद्यतिरिक्तविषयम् । रजोदुष्टमपि जलं गंगाजलयोगे पावनम्
गंगा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती
रजसानाभिभूयन्ते ये चान्ये मदसञ्चिता ।
शोण सिन्धु हिरण्याख्या कोकलोहितघर्घरा:
शतद्रुश्च नदा सप्त पावना: परिकीर्त्तिता: ।।'

यत्तु——प्रथमं कर्कटे देवि = त्र्यहं गंगा रजस्वला ।' इत्यादि वचनं तज्जाह्नवी भिन्न गोदावर्यादि गंगान्तरपरमिति मदनरत्ने ।

गङ्गाधर्मद्रव: पुण्या: यमुना च सरस्वती ।
अन्तर्गतरजोदोषा: सर्वावस्थासु चामय: ।।' इति निगमोक्ति: ।

श्रावणशुक्ल तृतीयायां मधुश्रावणी व्रतम्——

श्रावणशुक्ल तृतीया मधुस्रावाख्या गुजरेषु तथा मधुश्रावणी इति नाम्ना मिथिलाञ्चलेषु प्रसिद्धा । सा परयुताग्राह्येति दिवोदास: । दैवज्ञवान्धवे, कृतिसागरे च——

'तृतीयानभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृताः' । विद्यापति ठक्कुर धृतवचनादपीयं परयुतैव कार्या । एतदेव तिथितत्त्वचिन्तामणौ, कृत्यशिरोमणौ, स्मृतिसारे, निर्णयसिन्धौ, तथाऽन्य निबन्धग्रन्थेषु चात्र विवादाभावः ।

श्रावणकृष्ण द्वितीयायामऽशून्यशयनव्रतम्—

श्रावणादि मासचतुष्टय कृष्णपक्ष द्वितीयासु अशून्यशयनव्रतम् । तत्र चन्द्रोदय व्यापिनी, दिनद्वये तत्त्वपरेति निर्णयसिन्धुधृत निर्णयामृते । अत्रैवमुच्यते—न शून्यं शयनं पर्यङ्को भवति येनाचरितेन तत्सा तु विद्धा चेत्प्रतिपद्युतैवग्राह्या । तथा चाह संवर्त्तः—

कृष्णाष्टमीवृहत्तल्पा सावित्री वटपैतृकी ।
कामत्रयोदशीरम्भा उपोष्याः पूर्व संयुताः ॥

वृहत्तल्पा अशून्यशयन द्वितीया । एवमेव म०म० वाचस्पति मिश्र कृत तिथिनिर्णये । अत्र विष्णोः प्रार्थना यां पुरुषकर्त्तृक प्रतीत्या स्त्रीरहित पुरुषकर्त्तृकमिदं व्रतमवगम्यते । तथा चोक्तं मत्स्यपुराणे—

यथा न लक्ष्म्याः शयनं तव शून्यं जनार्दन ।
शय्यामयाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि ॥

इत्यादिसाहचर्यात् स्त्रियाऽपि क्रियते । इति कृष्णमोहनठक्कुरः परिशिष्टे ।

अथ गणेश चतुर्थी निर्णयः—

अत्र निर्णयसिन्धौयथा—श्रावणशुक्ल चतुर्थी पूर्वयुताः 'मातृविद्धोगणेश्वरः' इत्यादि वचनात् । तच्च कृत्यशिरोमणिधृत वचनात्—

'श्रावणेबहुलेपक्षे चतुर्थ्यां तु विधूदये ।
गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रार्घ्यं प्रदापयेत् ॥'

तच्च चन्द्रोदय व्यापिन्यां चतुर्थ्यां कार्यम् । चन्द्रोदयास्तसाधनप्रकारः—

तिथिगुणितं रजनीपरिमाणं यम२रहितं सहितं सितपक्षे ।
विषय शशाङ्क१५विभाजित लब्धं भवति विधूदयमस्तमयं च ॥'

इति तिथि दीपिकायां निर्णयसिन्धौ च यथा—सकटचतुर्थी तु चन्द्रोदय व्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये चन्द्रोदय व्याप्तौ पूर्वैवेति केचित् । मुहूर्त्तत्रयादि रूपस्य तृतीयायोगस्या-भावात् परैवेति दाक्षिणात्यः । विद्धायां तृतीया विद्धैव संकट चतुर्थीव्रतं ग्राह्येति तिथिचन्द्रिकायां पक्षधर मिश्रोक्तेः पूर्वैवेतिमैथिलाः ।

अथ नागपञ्चमी—तत्र कृत्यशिरोमणौ यथा—श्रावणकृष्णपञ्चमीयं मौनापञ्चमीति दैवज्ञ बांधवे अत्रैव माणुर ब्राह्मणो शूद्राति रिक्तानां मनसा देवी पूजनम् । माणुर ब्राह्मणशूद्रादीनाञ्च श्रावण शुक्ल पञ्चम्यामेव नागपूजनमिति कृत्यमहार्णवे तिथितत्त्व-चिन्तामणौ च । कृष्णा पञ्चम्यपि नागपंचमी, सा शुद्धाऽहोरात्रव्यापिनी, विद्धा तु षष्ठीयुता ग्राहया । दाक्षिणात्य माधवादिमते चतुर्थीयुतापि विहिता किन्तु मैथिलैर्न क्वचिदाहेति तेन

परित्याज्या: । नागपूजादौ पूर्वयुतैवेति मैथिल स्मार्त्तसिद्धान्त इति ठक्कुरा: । तिथितत्त्वे रघुनन्दनोऽपि वस्तु तस्तु नागपूजादौ शुक्ला—कृष्णा उभयापि षष्ठीयुतैवेति स्मार्त्तेति । तथा चोक्तं विधितत्त्वचिन्तामणौ—

'श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप ।
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्वणा: ।।
पूजयेद्विधिवद्वीर दधिदूर्वाङ्कुरै: कुशै: ।
गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणै: ।।
ये तस्यां पूजयन्तीह नागान्भक्तिपुर:सरा: ।
न तेषां सर्पतो वीर ! भयं भवति कुत्रचित् ।।'

अथ रक्षिकाबन्धनम्—

तत्तु भद्राशून्यायां श्रावणपूंर्णिमायां रक्षिकाबन्धनं कर्त्तव्यम् । इयन्तु पूर्वविद्धेव ग्राह्या । तद्दिने चन्द्रग्रहणेसति भद्रारहितसमये एतेदं रक्षिकाबन्धनम् कार्यम् । ग्रहणस्य-बाधकत्वाभावात् । तथाचोक्तं निर्णयसिन्धौ—

नित्येनैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञ क्रियासु च ।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहदोषो न विद्यते ।।

अत्र ग्रहदोष:—ग्रहणदोषपरक इति ।

।। इति कृत्यसारसमुच्चये श्रावणकृत्यम् ।।

— ❖ —

अथ भाद्रकृत्यम्

भाद्रकृष्णचतुर्थ्यां बहुलापूजा । सा च तृतीयायुता ग्राह्या, परयुक्ताया दोषश्रवणात् । तथा हि दिवोदासः—

गौरी चतुर्थी वटधेनुपूजा दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिका च ।
गोवत्सपूजा शिवरात्रिरेताः परा विनिघ्नन्ति नृपं सराष्ट्रम् ।।' इति ।

अथ बहुलापूजासङ्कल्पः—ॐ अद्येत्यादि सर्वपापक्षयपूर्वकधनधान्य-सुतान्वितगोसमृद्धिपूर्वकदिव्यविमानारोहणगोलोकप्राप्तिकामः अद्यादियावज्जीवं प्रतिभाद्रकृष्ण चतुर्थ्यां बहुलापूजनव्रताचरणमहङ्करिष्ये । इति प्रथमारम्भे संकल्पः । (पूजा) तत्र पञ्चदेवतानां विष्णु गौरीकुलदेवतारोहितपर्वतचन्द्रसेन—सोमिलगोपकामरूपिव्याघ्रसवत्सबहुला एतेषां पूजां कृत्वा कथां श्रुत्वा गोग्रासं दत्वा आचाराद्यवान्नभक्षणं कुर्यादिति ।

अथ भाद्रे गोप्रसवे दोषमाह । नारदः—

'भानौ सिंहगते चैव यस्य गौस्सम्प्रसूयते ।
मरणन्तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ।।'

हिन्दी—भादों कृष्ण चौथ को बहुला पूजा होती है । यह बहुला पूजा तृतीया युक्त ग्राह्य है । परयुक्ता दोषावह कहा गया है ।

दिवोदास ने ऐसा कहा है—

गौरीचौथ, बरगद पूजा, दुर्गापूजा, होलिकादहन, गाय बछड़े की पूजा और शिवरात्रि ये परविद्धा करने पर राज्य सहित राजा को विनष्ट कर देती है।

बहुला पूजा का संकल्प—ओं अद्येत्यादि, मैं अमुक व्यक्ति सभी पापों का क्षयपूर्वक धन, धान्य और पुत्रयुक्त, गायें और सम्पदायें सबों की अभिवृद्धि के साथ दिव्य विमान पर चढ़कर गोलोक प्राप्ति की कामना से आज से लेकर जीवन पर्यन्त प्रत्येक भादों के कृष्ण चौथ को बहुला की पूजा करुँगा । यह जिस दिन से पूजा प्रारम्भ करे—पहली बार का संकल्प है । बहुला की पूजा में क्रमशः पञ्चदेवता, विष्णु पूजा गौरी, कुलदेवता, रोहित पर्वत, चन्द्रसेन, सोमिल, गोप, कामरूपी व्याघ्र सवत्सबहुला की पूजा कर कथासुनकर गोग्रास देकर अपने आचारानुकूल यवान्न भोजन करना चाहिए ।

अब भादों में गाय के बच्चा देने पर नारद ने दोष बतलाया है—

सिंह गतभानु की स्थिति में जिसकी गायें बच्चा देती हैं, छः महीने के भीतर उस व्यक्ति की मृत्यु अवश्यंभावी है, इसमें सन्देह नहीं ।

मैथिली—भादों कृष्ण चौथक दिन बहुलाक पूजा होयत अछि । बहुला चौथ तृतीया युक्ते करवाक चाही, पर विद्धा में दोष कहलगेल अछि । अहि सन्दर्भ में दिवोदास उदाहरण दैत छथि—

गौरीचौथ, बटधेनपूजा, दुर्गापूजा, होलिकादहन, गाय बछड़ाक पूजा, एवम शिवरात्रि जे व्यक्ति परविद्धा करैत छथि, ओकर राजाक राज्य सहित विनाश भऽ जायत छैन्हि ।

आब बहुला पूजाक संकल्प कहैत छी—ओं अद्येत्यादि, हम अमुक व्यक्ति सभ तरहक पापक क्षयपूर्वक अन्न, धन एवं पुत्रादि समन्वित गाय एवं सम्पदाक उपभोग करैत दिव्य विमान पर आरूढभय गोलोक प्राप्तिक कामना सँ आई सँ लऽक जीवन पर्यन्त प्रत्येक भादवक कृष्ण चौथक दिन बहुलाक पूजा करव । ई प्रथमारम्भेक संकल्प कहलगेल अछि । आब पूजाक सम्बन्ध में कहैतछी—क्रमशः पञ्चदेवता, विष्णुपूजा, गौरी, कुलदेवता, रोहितपर्वत, चन्द्रसेन, सोमिल, गोप, कामरूपी व्याघ्र, सवत्सा बहुलाक पूजा कय, कथा सुनि, गोग्रासदय, अपन आचारानुकूल यवान्न भोजन करवाक चाही ।

आव भादों मास में यदि गाय बच्चा दिये तकर दोष नारद कहैत छथि—

सिंहगत सूर्यक स्थिति में जो ककरो गाय बच्चा दिये तऽ छः मासक भीतर ताहि व्यक्तिक मृत्यु अवश्य भयजाय, अहि में सन्देह नहि करवाक चाही—

विमर्शः—भाद्रेमासि सिंहसंक्रान्तौ षोडशघटिकापरा पुण्याः रात्रौ तु निशीथात् प्राक् पूर्वदिन परार्द्ध पुण्यं निशीथादपरार्द्धे परदिन पूर्वार्द्धमिति कृत्यशिरोमणौ—'अनेन कर्क कन्याऽर्क युते भाद्रेऽपि न शेषः ।' तथा च—

जङ्गमे स्थावरं जातं स्थावरे वाऽथजङ्गमम् ।
तस्मिन् योनि विपर्यासे परचक्रागमोभवेत् ।।
त्यागो विवासो दानं वा कृत्वाप्याशु शुभं लभेत् ।।

तथा च—यडवा हस्तिनीगौर्वा यदियुग्मं प्रसूयते ।
वैजात्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैश्च म्रियते ।
वियोनिषु च गच्छन्ति मैथुने देश नाशनम् ।।

'तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ।
ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः ।।
आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ।

सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।।'
वस्त्रयुग्मं यवं चैव समवर्णं प्रदापयेत् ।
इष्टदैवतमन्त्रेण ततः शान्तिर्भवेद् द्विज ।।
तथा सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत् ।
पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा ।।
तदानिष्टं भवेत्किञ्चित्तच्छान्तौ शान्तिकं चरेत् ।
अस्य 'वामेति'सूक्तेन 'तद्विष्णो'रिति मन्त्रतः ।।
जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम् ।
मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथाऽयुतम् ।।
श्रीसूक्तेन तथा स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः ।
मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा ।।
ग्रामे वा स्वगृहे वाऽपि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत् ।।

गार्ग्यपरिशिष्टे— 'माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा ।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकः ।।

तत्रापि शान्तिः कार्या ।।

हिन्दी—ऐसी परिस्थिति में इसकी शान्ति का उपाय बतलाता हूँ जिससे मंगल हो । उस प्रसूता गाय को उसी क्षण ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए । इसके बाद घी मिली काली सरसों से हवन करना चाहिए ।

इसके बाद घी मिली काली सरसों से दस हजार हवन में आहुतियाँ डालनी चाहिए । प्रयासपूर्वक उपवास कर ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए । समान जाति के लोगों को जोड़ा कपड़ा एवं जौ देना चाहिए । हे द्विज, इष्ट देवता के मन्त्र से ही उसके बाद शान्त होती है ।

सिंह राशिगत सूर्य में जिसकी गाय बच्चा दे, पूस महीने में भैंस बच्चा दे और दिन में ही मादा खच्चर, बच्चा दे तो अनिष्ट होने की संभावना होती है । इस संकट को दूर करने के लिए शान्ति करनी चाहिए । वामेति सूक्त एवं 'तद्विष्णोः' इस मत्र से घी और तिल से १०८ आहुतियाँ डालनी चाहिए । फिर, फिर मृत्युञ्जय विधान से दस हजार आहुतियाँ डालनी चाहिए । उसी तरह श्री सूक्त से अथवा फिर शान्तिसूक्त से स्नान करना चाहिए । यदि दो पहर रात में गाय रोए तो गाँव में अथवा अपने घर में इस संकट को दूर करने के लिए पहले की तरह अनुष्ठान करना चाहिए ।

गार्ग्य परिशिष्ट में लिखा है—माघ महीने में बुध दिन यदि भैंस, सावन महीने में दिन में यदि घोड़ी और सिंह राशि में गाय बच्चा दे तो

मालिक के लिए मृत्युदायक होता है । इसके लिए शान्ति का विधान उसी तरह करना चाहिए ।

मैथिली—एहन परिस्थितिकलेल शान्तिक उपाय कहैत छी जकरा से शुभक सम्पादन होयत ताहि प्रसूतागाय के ताही क्षण ब्राह्मण के दान कय देवाक चाही । तकर बाद घीक साथ कारी सरिसों सँ होमकरवाक चाही । दस हजार होमक आहूति घीक देवाक चाही । उपवास करैत प्रयास पूर्वक ब्राह्मण के दक्षिणा देवाक चाही । इष्ट देवताक मन्त्र सँ समान वर्णक लोककें एक जोड़ा वस्त्र एवं यव देवाक चाही तखन अहि दोषक शान्ति होयत अछि; अन्यथा नहि ।

तथा—सिंह राशिगत सूर्यक भेला पर यदि ककरो गाय प्रसूति हुए, पूसमास में महिष बच्चा दिए, दिन में मादा खच्चर बच्चा दिए तखन किछु न किछु अनिष्ट होयके करय, ओकर प्रशमनक हेतु अनुष्ठान करवाक चाही । वामेतिसूक्त से अथवा 'तद्विष्णो:' अहि मन्त्र से तिल एवं घी लऽ कय १०८ आहुति से अधिक हवन करवाक चाही । मृत्युञ्जयक विधान सँ दस हजार आहुतिक हवन करवाक चाही ।

श्रीसूक्त सँ स्नान करवाक चाही अथवा पुन: शान्तिसूक्त सँ स्नान करवाक चाही । मध्यरात्रि में यिद ककरो गाय कानय तऽ ग्राम में अथवा अपनहि घर में ओकर शान्ति पहिलु के जको करवाक चाही ।

गार्ग्य परिशिष्ट में कहलगेल अछि—

माघमासक बुध दिन यदि महिषी, सावन में यदि घोड़ी तथा सिंह राशि में गाय बच्चा दिये तऽ ओकर स्वामीक मृत्यु अवश्य भय जाय ।

अहुमें शान्ति करवाक चाही ।

अथ भाद्रकृष्णाष्टम्यां कृष्णजन्ममाह, तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

'चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् ।
ज्येष्ठशुक्ले तु द्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरि: ।।
चैत्रकृष्णनवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् ।
नरसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके ।।
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरि: ।
राधे कृष्णतृतीयायां रामो भार्गवरूपधृक् ।।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मज: ।
नभस्ये तु द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्धरि: ।।
श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोऽभूल्लोकरक्षक: ।
ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां बौद्ध: कल्की भविष्यति ।।'

श्रावणोऽत्र शुक्लादिश्चान्द्रमास: तेन कृष्णादिरीत्या भाद्र एव इति ।।

हिन्दी—चैत्रशुक्ल पञ्चमी को भगवान् विष्णु ने मीन रूप धारण किया था । ज्येष्ठशुक्ल द्वादशी को कच्छपरूप धारण किया था । चैत्रकृष्ण नवमी में श्री हरि ने वाराह रूप धारण किया था । वैशाखशुक्लपक्ष चतुर्दशी में विष्णु ने नरसिंहावतार लिया था । भादों महीने के शुक्ल द्वादशी तिथि में श्री हरि ने वामन रूप धारण किया था । वैशाखकृष्ण तृतीया को श्रीराम परशुराम के रूप में अवतिर्ण हुए । चैत्रशुक्ल नवमी में श्री राम ने दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार लिया । श्रावणकृष्ण द्वितीय को बलभद्र के रूप में भगवान् ने अवतार लिया । श्रावणकृष्ण अष्टमी धरती के रक्षक के रूप में श्रीकृष्ण ने अवतार लिया । ज्येष्ठशुक्ल द्वितीया में भगवान् बुद्ध कल्की के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे ।

'श्रावणेबहुलेऽष्टम्याम्' में श्रावण शुक्लादि चान्द्रमासपरक है । इसी से कृष्णादि तरीके से यह भादों का महीना ही सिद्ध होता है ।

मैथिली—भादों कृष्णपक्षक अष्टमीतिथि में श्रीकृष्णक जन्म भेल, अहि सम्बन्ध में तिथितत्त्व चिन्तामणि में कहलगेल अछि—

चैत शुक्ल पंचमी तिथि में भगवान् विष्णु मीन रूप धारण कयल । ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी तिथि में श्रीहरि कंच्छप रूप धारण कयल । चैत्र कृष्ण नवमी तिथि में श्री हरि वाराहक रूप धारण कयल । वैशाख शुक्लपक्षक चतुर्दशीतिथि में नरसिंहावतार भेल अछि । भादों मासक शुक्ल पक्षक द्वादशी तिथि में श्री हरि वामनावतार लेने छथि । वैशाख कृष्ण तृतीया में श्री राम परशुरामक रूप में अवतार लेलन्हि । चैत्र शुक्ल नवमी में दशरथक पुत्र श्री रामक रूप में भगवान् अवतार लेलन्हि । सावन कृष्ण द्वितीयाक दिन श्री हरि बलभद्रक रूप में अवतरित भेलाह । श्रावणकृष्ण अष्टमी में संसारक संरक्षक श्री कृष्णक अवतार भेल । ज्येष्ठशुक्ल द्वितीयाक दिन बौद्ध भगवान् विष्णुक दसम अर्थात् अन्तिम अवतार होगत । अयिठाम सावनमासक उल्लेख चान्द्र मासक गणनानुसार भादों कृष्णें होयत अछि । इति ।

अथ भाद्रकृष्णाष्टम्यां कृष्णस्य पूजनं व्रतं च स्त्रीपुंससामान्याधिकारमिति समयप्रदीपः । एतच्च नित्यम् ।

'अकुर्वन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।'[१] इति ।
'नरो वा यदि वा नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति तदा घोरा व्याली भवति कानने ।।'

इति च भविष्यपुराणवचनाभ्यामकरणे दोषश्रवणात् । नित्यतया चात्र सङ्कल्पो नास्तीति व्रतपद्धतिः । वस्तुतस्तु—'अकुर्वन्निरयम्' इत्यादि 'यथेष्टं फलमाप्नुयात्' इति वचनाभ्यां नित्यकाम्यमिदमिति कृत्यमहार्णवः ।

हिन्दी—भादों कृष्ण अष्टमी तिथि में श्रीकृष्ण का पूजन एवं उनका व्रत होता है । स्त्री और पुरुष दोनों के लिए इस व्रत एवं पूजन का समान अधिकार है—ऐसा समयप्रदीप का कथन है यह व्रत एवं पूजन निरन्तर होने वाला कर्म है । जो व्यक्ति श्रीकृष्ण का पूजन एवं व्रत नहीं करते ये जब तक चौदह इन्द्र बदलते हैं तब तक वे नरक भोगते हैं ।' इति । जो पुरुष या नारी श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत नहीं करते वे घोर जंगल में भयङ्कर सापिन होते हैं । भविष्य पुराण के इन दो वचनों के अनुसार नहीं करने पर दोष बतलाया गया है । यह व्रत नित्य होने के कारण, इसका संकल्प नहीं होता है । यह व्रत-पद्धति में लिखा है । सच बात तो यह है कि नहीं करने पर पाप तथा करने पर अभिलखित फल प्राप्त होता है । इन दो वचनों से यह नित्य काम्य है कृत्य महार्णव का यह विचार है ।

मैथिली—भादवकृष्ण अष्टमीक दिन श्री कृष्णक व्रत एवं पूजन होयत अछि । समयप्रदीपक अनुसार नर नारी सम के ई व्रतक समान अधिकार कहलगेल अछि । ई व्रत नित्य कहलगेल अछि । 'ई व्रत नहिकयने चौदह इन्द्र यावत् धरि बदलताइ तावत कास धरि हुनका लेल नरक भोग कहलगेल अछि । इति । पुरुष होथु वा नारी कृष्ण जन्माष्टमी व्रत जे नहि करैत छथि ओ जंगल में भयंकर सापिन भय निवास करवाकलेल बाध्य होयत छथि । भविष्यपुराणक ई दुहु वचन सँ ई सिद्ध होयत अछि जे ई व्रत नित्य काम्य अछि । ई नहि कयने लोग दोष भागी होयत छथि । ई व्रत नित्य अछि, तॉय एक संकल्प नहि होयत अछि ई व्रत पद्धति में लिखल अछि । यथार्थतः नहिकयने पाप तथा कयला पर पुण्यफलक प्राप्ति, ई दुहुवचन से ई व्रत नित्यकाम्य अछि । ई सिद्धहोयत अछि । एकर उल्लेख कृत्यमहार्णव में अछि ।

इयमष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी यदा तदा जयन्तीव्रतम्, उभयदिने चन्द्रोदयव्यापित्वे तूत्तरदिने । तथाहि अग्निपुराणे—

'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तम्या संयुताष्टमी ।
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तम्या संयुता यदि ।।'

पद्मपुराणे—'पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यदूषितम् ।
रविविद्धा तथा त्याज्या रोहिण्याऽपि युताऽष्टमी ।। इति ।

यद्युत्तरदिने चन्द्रोदयव्यापिनी नाष्टमी तदा सप्तमीसंयुता ग्राह्या । तदुक्तं विष्णुपुराणे—

'कार्या विद्धाऽपि सप्तम्या रोहिणीसंयुताष्टमी ।
जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते ।।
कृतोपवासस्तिथ्यन्ते तत्र कुर्यात्तु पारणम् ।।' इति ।

यदा चोदये किञ्चिन्मात्रमष्टमी तदुपरि सकला नवमी, तदा जयन्ती व्रतेऽष्टमी स्वल्पाऽप्युपोष्या । तदुक्तं पद्मपुराणे—

'उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि ।
भवेद्बुधेन संयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ।।
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न वा विभो ।

इति तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्रलिखनम्—

'पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु उदये नवमी दिने ।
मुहूर्त्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत् ।।
कला काष्ठा मुहूर्त्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि ।।'

इति पद्मपुराणाभिधानात् । एवमेव म०म० वाचस्पतिमिश्रद्वैतनिर्णये रुद्रधरवर्षकृत्ये । गौडदाक्षिणात्यग्रन्थमात्रे बहुव्यवस्था बोध्येति शिवम् । तिथितत्त्वचिन्तामणौ महेशठक्कुरलिखनान्नवमीयुक्तायामेवाष्टम्यां जयन्तीव्रतम् ।।

हिन्दी—जब यह अष्टमी चन्द्रोदव्यापिनी होती है तब उसे जयन्ती व्रत कहते हैं । यदि दोनों दिन चन्द्रोदय व्यापिनी अष्टमी हो तो बाद के दिन वाला व्रत करना चाहिए । जैसा कि अग्निपुराण में लिखा है ।

सप्तमीविद्धा अष्टमी प्रयासपूर्वक नहीं करनी चाहिए । कृत्तिका नक्षत्रमण्डल के सात तारे से युक्त रहने पर भी यह अष्टमी सप्तमी संयुता नहीं करनी चाहिए ।

पद्मपुराण में लिखा है—पञ्चगव्य इतना अधिक पवित्र रहने के बावजूद शराब मिल जाने पर अग्राह्य है, उसी प्रकार रविविद्धा (सप्तमी संयुता) रोहिणी युक्त रहने पर भी ग्राह्य नहीं है । यदि उत्तर दिन चन्द्रोदय व्यापिनी अष्टमी नहीं हो तो सप्तमी संयुता भी करनी चाहिए । विष्णु पुराण में कहा गया है—

सप्तमी विद्धा अष्टमी भी करनी चाहिए यदि वह अष्टमी रोहिणी संयुता हो तो जयन्ती और शिवरात्रि क्रमशः भद्रा (सप्तमी और द्वादशी नामक दो तिथियाँ) और जया युक्त करनी चाहिए । उक्त तिथि में उपवास कर तिथ्यन्त में पारण करना चाहिए । इति ।

यदि उदयकाल में थोड़ी भी अष्टमी तिथि हो तथा उसके बाद सारे दिन नवमी हो तो उस जयन्ती व्रत में थोड़ी अष्टमी वाले व्रत करना चाहिए । पद्मपुराण में कहा गया है—

उदय काल में यदि थोड़ी भी अष्टमी हो और सम्पूर्ण नवमी हो बुध दिन हो, प्राजापत्य योग एवं कृत्तिका नक्षत्र समन्वित हो—ऐसा योग सैकड़ों साल बीतने पर ही मिलता है, या नहीं मिलता है । ऐसा तिथि चन्द्रिका में पक्षधर मिश्र का लेख है—

पूर्वविद्धा यदि अष्टमी हो, और सूर्योदय नवमी में हो अगर एक मुहूर्त्त भी उसमें अष्टमी का संयोग हो तो उसी दिन अष्टमी व्रत होगा । एककला (१ मिनट, या ४८ सेकेंड अथवा ८ सेकेण्ड) एक काष्ठा (अर्थात् कला का १/३० भाग) या एक मुहूर्त्त (अर्थात् ४८ मिनट) भी यदि अष्टमी हो तो उसी अष्टमी युता नवमी का व्रत करना चाहिए । सप्तमी संयुता नहीं ।

यह पद्मपुराण का वचन है । इसी तरह म.म. वाचस्पति मिश्र के द्वैत निर्णय एवं रुद्रधर के वर्षकृत्य में उल्लेख मिलता है । गौड़ एवं दाक्षिणात्यों के ग्रन्थों में उसके लिए बहुत तरह की व्यवस्था है । तिथितत्त्व चिन्तामणि में महेश ठाकुर के लेखानुसार नवमीयुता अष्टमी ही जयन्ती व्रत करणीय है ।

मैथिली—एवम ई अष्टमी यदि चन्द्रोदय व्यापिनी होयतऽ ओ जयन्तीव्रत कहवैत अछि । यदि दुहूदिन चन्द्रोदय व्यापिनी अष्टमी होय तऽ उत्तर दिनक व्रत करवाक चाही । अग्निपुराण में कहलगेल अछि—

सप्तमी विद्धा अष्टमीक प्रयासपूर्वक छोड़ि देवाक चाही । कृत्तिका नक्षत्र युक्त रहलो उत्तर सप्तमी विद्धा अष्टमी कथमपि नही करवाक चाही । पद्मपुराणक वचन अछि—

अत्यधिक पवित्र पञ्चगव्य मद्यमिश्रित जेना ग्राह्य नहि होयत अछि, ताहित रहें सप्तमी विद्धा अष्टमी रोहिणी नक्षत्रयुक्त रहलो उत्तर ग्राह्य नहि मानलगेल अछि ।' यदि उत्तर दिन चन्द्रोदय व्यापिनी अष्टमी उपलब्ध नहि होय तखन सप्तमी संयुक्ता अष्टमी करवाक चाही । विष्णुपुराण में कहलगेल अछि— 'रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी सप्तमी विद्धारहको उत्तर करवाक चाही । जयन्ती एवम् शिवरात्रि भद्रा अर्थात् सप्तमी एवं शिवरात्रि जया युक्तो करवाक चाही । उपवासोपरान्त तिथिक अन्त में पारण करवाक चाही ।। इति ।।

यदि उदयकाल में किञ्चिन्मात्रो अष्टमी होय तथा शेष सम्पूर्ण नवमी होय तऽ जयन्ती व्रत में स्वल्पापि अष्टमी ग्राह्य अछि । पद्मपुराण में कहलगेल अछि—

उदयकाल में थोड़वो यद्दि अष्टमी हो एवं सम्पूर्ण नवमी होय, बुधक दिन होय कृत्तिका नक्षत्र होय तथा प्राजापत्य योग हो तऽ सौ सालक वादो ए हल योग भैंटत अछि अथवा नहि । तिथि चन्द्रिका में पक्षधर मिश्रक ई लेख अछि ।

उदयकाल में पूर्वविद्धा अष्टमी होय तथा दिन में नवमी होय तऽ उदयकाल में मुहूर्त्त मात्र अष्टमी सम्पूर्ण अष्टमी मानल जायत अछि । एक कला अर्थात् ४८ या ८ सेकेंड, एक काष्ठा अर्थात् एक कलाक ३०म भाग, एवं एक मुहूर्त्त भी अष्टमी कृष्णाष्टमी मानलगेल अछि । सेह नवमीयुता अष्टमी ग्राह्य अछि, सप्तमी युक्ता अष्टमी कथमपिनहि । ई पद्मपुराण वचनानुसार अछि । अहिना म.म. वाचस्पति मिश्रक द्वैत निर्णय में, रुद्रधरक वर्ष कृत्य में अछि । गौड़ एवं दाक्षिणात्यक ग्रन्थ में बहुव्यवस्था देखल जायत अछि ।

तिथितत्त्वचिन्तामणि में महेश ठाकुरक अनुसार नवमीयुक्ता अष्टमी जयन्ती व्रत मानल गेल अछि ।

विमर्श:—भविष्ये—

भाद्रेमास्यसितेपक्षे याऽष्टमीरोहिणीयुता, तस्मात्तुतामसीरात्रिस्तत्रकृष्णश्चजायत । वसुदेवसुत: श्रीमान् वासुदेव इतिस्मृत: । तत्र तं पूजयेद् भक्त्यागन्धपुष्पाक्षतै: फलै: ।।

जयन्तीव्रतं अस्मिन् दिने रोहिण्याष्टमी योगस्तस्मिन् दिनेकर्त्तव्यम् । तथाहि भविष्यपुराणे रोहिणी च यदाकृष्णे पक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरातिथि: । यत् बाल्ये यच्च कौमार्ये यौवने वार्द्धकेऽपि च । सप्तजन्मकृतं पापम् स्वल्पं वा बहुवायदि । तत् पापं सकलं नश्येत् यामभ्यर्च्य भक्तित: । होमजाप्यादिदानानां फलं च शत सम्मितम् सम्प्राप्नोति न सन्देहो यच्चान्यं मनसेप्सितम् । उपवासस्तु यत्रोक्तौ महापातकनाशन: । तत्र निर्णयसिन्धौ—इयञ्चाष्टमीद्वेधा—जन्माष्टमी जयन्ती चेति । तत्राद्या केवलाष्टमी 'येनकुर्वन्ति जानन्त: कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । तेभवन्तिनरा: प्राज्ञ: व्याला: व्याघ्राश्च कानने। इति स्कान्दात्—दिवा या यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दु संयुतम् । इति पुराणान्तरात्—श्रावणे बहुलेपक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति नरोयस्तु भवति क्रूर राक्षस: ।' इति भविष्योऽक्तेश्च केवलाष्टम्या स पोपोष्यत्वावगते: । सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती, 'कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि । जयन्तीनाम सा प्रोक्ता, उपोष्या सा प्रयत्नत:।' इति अग्निपुराणात् । गौड़ास्तु निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती, नान्यथेत्याहु: । तन्न, 'वासरे वा निशायां वा' इति विरोधात् । योग विशेषाद् गुणात् फलमित्यन्ये । तेऽप्यकरणे दोषश्रुतेरूपेक्ष्या: ।

तत्त्वं तु—अष्टम्या: कर्मकाल व्याप्ते:—'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्तिचेद्रोहिणी कला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दु संयुताम् ।'' इति पूर्वोक्तवाक्यै: रोहिणीयोगा-भावेग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात् कर्मकालव्यापिनीं त्यक्त्वा पूर्वापरानाल्पाऽपि रोहिणी युताग्राह्या माधवमदनरत्ननिर्णयामृतानन्तभट्ट गौड मैथिल ग्रन्थादिषु अप्येवमिति । युक्तं तु—उपवासद्वयं कार्य द्वयोर्नित्यत्वादिति तु वयम् । अन्त्ययो: परैव, सप्तमी संयुताष्टम्यां भूत्वाऋक्षं द्विजोत्तमम् । प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्तार्द्धभवद्यपि । तदाऽष्टयामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभि: पुरा ।' इति स्कान्दात् ।' मुहूर्त्तेनाऽपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमीभवेत् किं पुनर्नवमी युक्ता कुलकोट्यास्तुमुक्तिदा ।। इति पाद्मच्चेति दिक् ।''

अत्र भाद्रकृष्णाष्टम्यां कृष्णाष्टमीव्रतम् तत्पूनञ्चजयन्तीव्रतम् । अत्र कृत्य-शिरोमणौ—'तत्सर्वं बहुतररग्रन्थेषु बहुतरविरुद्धवचनोपलब्धान् मैथिल स्मृतिकार-वाचस्पतिमिश्र महेश ठक्कुरादि सिद्धान्तितमेवलिख्यते । जयन्तीव्रते—रोहिण्यृक्षबुधवार-योगेवानिशीथ व्यापिन्यष्टमीग्राह्या तदभावेसप्तमी युतैव ग्राह्या शुद्धाष्टम्या तु वादाभावः । कृष्णव्रत पूजादौ तु, औदयिकीमुहूर्त्तमात्राऽपिग्राह्या मूहूर्त्तान्यूने तु पूर्वयुतैव सर्वनिबन्ध-स्वरसात् ।

कृत्यशिरोमणिगतटिप्पण्याम्—'श्रीकृष्णाष्टमीव्रतविषये सन्त्यत्येके मतभेदास्तत्र—'अर्द्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदयेसती'ति स्मृत्यार्द्धरात्रे यदा रोहिणी युक्ताऽष्टमी-लाभस्तदा रोहिणीयोग एवं पूजादिकं तिथि नक्षत्रान्ते च रात्रावपि पारणकेचित्तु परे तु नक्षत्रयोगः फलात्तिशयार्थ एव नात्यावश्यकः किन्तु, निशीथे पूजाद्यभिधानान्निशीथ व्यापिन्यष्टमीग्राह्येति । अन्ये तु—'पूर्वाह्न एव कुर्वीत देवतानां तु पूजनमिति वचनात् पूर्वाह्न एव रोहिणीयुक्ताष्टमीलाभः प्रयोजक इति । मैथिलास्तु—अस्मिन् व्रते ''न स्यात् स तत्र सम्पूज्य'' इति पूजायाः प्राधानेन श्रवणात्, 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसहिताष्टमी'' इत्यादिना सप्तमीयोगस्य निन्दनात्, किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटेस्तु मुक्तिदे'' त्यादिभि-र्नवमीयोगस्य प्रशंसनाच्च, उदयगामिनी पूर्वाह्नव्यापिनी चाष्टम्येकेवापेक्ष्यते, नक्षत्रयोगस्य फलातिशयार्धलाभेन' तिथिः शरीरमित्यादिना तयोर्योगे तिथिरेव प्राधान्यबोधनात् ''रात्रौ प्रजागरः कार्य'' इत्यादिना रात्रेः प्रजागरमात्राधारत्वेन बोधनेऽपि तु पूजाधारत्वेनाश्रवणान्नात्र रात्रि योगापेक्षाऽपि चेति, जन्मकालीनोत्सवप्रयुक्तचक्षुर्दानारार्त्तिकादिकार्यन्तु व्रत पूर्व निशीथेऽष्टमी सत्त्वेतदेव, अन्यथा पूजादिनेऽपि तत्पूर्वकाले, पूजापूर्वाङ्गत्वादिताहुः, जयन्ती व्रतं तु न केवलं भाद्र एव किन्तु सर्वमासी यः कृष्णाष्टम्यां रोहिणो योगाद्भवितुमर्हति तदुक्तं भविष्ये—

'रोहिणी च यदा कृष्णे पक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम ।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिरिति ।।'

तदपि पूजानुरोधात् पूर्वाह्न व्यापिन्यामेवेति बहवोमैथिलाः । निशीथव्यापिन्यामिति केचित् । प्रदोष व्यापिन्यामपि केचन् वदन्ति । अष्टमीक्षये तु सप्तमी विद्धैव ग्राह्या, एकादशीवत् । यत्रत्यष्टम्यावृद्धिस्तत्र परदिने नवमीयुक्ताष्टमीलाभेऽपि तिथिमलस्य सर्व-कर्मानर्ह तथा पूर्वदिन एव व्रतं पूजनञ्चेति सर्वमैथिल सिद्धान्त इति ।

अथ महालक्ष्मीपूजनादिविधिः—एतदष्टमीमारभ्याखिलकृष्णाष्टमी यावत् प्रत्यहं महालक्ष्मीपूजाव्रतं कथाश्रवणं च षोडशवर्षपर्यन्तम् ।।

अथ कुशोत्पाटनम्—भाद्रामावस्यां कुशोत्पाटनमाह मरीचिः—

'मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भश्चयो मतः ।
अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ।।' इति ।

नभसि श्रावणे । अत्रापि शुक्लादिश्चान्द्रमासः तेन श्रावणी पूर्णिमोत्तरामा-

वास्यायां कुशोत्पाटनमायाति । कुशोत्पाटनमन्त्रस्तु—

'कुशाग्रे बसते रुद्रः कुशमध्ये तु केशवः ।
कुशमूले वसेद् ब्रह्मा कुशान् मे देहि मेदिनी ।।'

कुशप्रतिनिधीनाह स्नानसूत्रभाष्ये—

कुशाः काशमया दूर्वा उशीराश्च सकुन्दराः' इति । कुशाः कुशकार्यकारिण इति संख्यापरिमाणम् । निषिद्धकुशानाह लघुहारीतः—

'चितिदर्भाः पथिदर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।
स्तरणासनपिण्डेषु षट्कुशान् परिवर्जयेत् ।।
पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ।
मूत्रोच्छिष्टे धृता ये च तेषां त्यागो विधीयते ।।' इति ।

हिन्दी—अब महालक्ष्मी की पूजा आदि की विधि—

इस अष्टमी से प्रारम्भ कर सम्पूर्ण कृष्णाष्टमी पर्यन्त प्रतिदिन महालक्ष्मी की पूजा, उनका व्रत एवं उनकी कथा सोलह साल तक सुननी चाहिए।

अब कुश का उखाड़ना । भादों महीने की अमावास्यातिथि में कुश उखाड़ने के लिए मरीचि ने कहा है—

सावन महीने की अमावास्या तिथि में बिल्कुल ताजे एवं नियंत्रित कुश उखाड़ने का विधान है । इनका उपयोग या प्रयोग बार-बार करना चाहिए ।

नभसि का अर्थ यहाँ सावन नहीं भादों है । यहाँ भी सावन शुक्ल से भादों कृष्ण तक का चान्द्रमास ग्रहण किया गया है । अतः सावन पूर्णिमा के बाद जो अमावास्या होगी उसी में कुश उखाड़ना चाहिए । कुश उखाड़ने का मन्त्र—

कुश के अगले भाग में महेश, मध्यभाग में विष्णु तथा मूल में ब्रह्मा का निवास है । अतः हे कुश मुझे धरती दो ।

स्नानसूत्रभाष्य में कुश के स्नानापन्न अन्य घास के बारे में—

कुश, काश, दूब, वीरणमूल या खस, श्वेत चमेली या खैरा इत्यादि यहाँ परिगणित कुश प्रतिनिधि कुश की जगह काम करने के लिए गिनाये गये हैं । निषिद्ध कुश के बारे में हारीत का कथन है—

चिताभूमि पर उगे कुश, राह पर उगे कुश यज्ञ भूमि में उगे कुश, छितराये कुश, बिछाये गये कुश पिण्ड पर चढ़े कुश उन छः तरह के कुशों का परित्याग कर देना चाहिए । पिण्ड के लिए जो कुश बिछाये गये हों, जिन

कुशों से पितरों का तर्पण किया गया हो, पेशाब से अपवित्र बने कुशों का त्याग कहा गया है । इति ।

मैथिली—आव महालक्ष्मीक पूजा क विधान कहैत छी—

अहि अष्टमी सँ प्रारम्भ करि, आगुक कृष्णाष्टमी पर्यन्त सोलह साल धरि प्रतिदिन महालक्ष्मीक पूजा हुनक व्रत एवं कथा सुनवाक चाही ।

आब कुश उखाड़ वाक सम्बन्ध में—भाद्रकृष्ण अमावास्या तिथि में कुशक मूलोच्छेद करवाक चाही, ई मरीचिक मत अछि—

सावन महीनाक अमावस्या तिथि में कुशक संचय करवाक चाही । अछि तरहक सुन्दर संचित कुशक प्रयोग बार–बार करवाक चाही—

'नभसि' शब्दक अर्थ सावनमास होयत अछि । किन्तु, अहूगम शुक्लादि चान्द्र मासक बोध होयत अछि । अर्थात् सावनक पूर्णिमाक बाद जे अमावास्या होयत ताहि में कुशोत्पाटन करवाक चाही । तॉय ई भादवक अमावास्या स्वतः सिद्ध होयत अछि । कुश उखाड़वाक मन्त्र ई भेल—

कुशक अग्रभाग में रुद्र एवं मध्यभाग में विष्णु तथा मूल में ब्रह्माक निवास होयत अछि । ताँय हे कुश अहाँ हमरा धरती देल जाउ ।

स्नानसूत्रभाष्य में कुशक प्रतिनिधिक सम्बन्ध में कहलगेल अछि—

कुशक स्थान में काश, दूर्वा, (दूभि) खस, या सकुन्दरक प्रयोग कयल जा सकैत अछि । कुश शब्दक प्रयोग अठि ठाम कुषाक कार्य करोवाला अन्य वनस्पतिक तात्पर्य परिगणना सॅ अछि । लघुहारीतक अनुसार निषिद्ध कुशक सम्बन्ध में कहलगेल अछि—

चिताभूमिक कुश, राहक कुश, यज्ञभुमिक कुश, विछावलकुश, आसन कुश एवं पिण्डपरक कुश ई छः तरहक कुशक प्रयोग नहि करवाक चाही ।

पिण्डकलेल विछायल गेल कुश, जाहि कुश सँ पितरक तर्पण कयलगेल होय तथा मूत्रोच्छिष्ट राखल कुशल त्यागक विधान अछि ।

विमर्शः—तत्रकृत्यशिरोमणौ यथा—

शुचिर्भूत्वा शुचौदेशे स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः ।
ओङ्कारेणैव मन्त्रेण कुशान् स्पृष्ट्वा द्विजोत्तम ।।

स्पर्शानन्तरं पठनीयः—

ह्रों विरञ्चिना सहोत्पन्नः परमेष्ठीनिसर्गजः । दहस्व सर्वपापानि दर्भस्वस्तिकरो भव मूलग्रन्थानुसारेण भाद्रीयामावास्योद्धृताः कुशाः त्वर्थपर्यन्तं कर्मयोग्याः भवन्ति । तथा चोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—

मासि मास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव चोदिताः ।।

तथा षड्त्रिशन्मते चास्ति——

मासेन स्यादमावास्या दर्भो ग्राह्यो नवस्मृत ।

तथा यस्मिन् कस्मिन् दिने उद्धृतास्तद्दिनमात्रकर्मयोग्याः, इति पुरोलिखित हारी त वचनबोधितं दैनिककृत्यत्वादिति ।

अथ कुशोत्पाटनेऽन्यस्मृतिलिखित मन्त्रः——

कुशोऽसि कुशपुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।
देवपितृहितार्थाय कुशामुत्पाटयाम्यहम ।।
ॐ विरञ्चिना सहोत्पन्न! परमेष्ठिनिसर्गज !
नुदसर्वाणि पापानि दर्भस्वस्तिकरो भव ।।

अन्य द्वारा शूद्र द्वारा च कुशग्रहणमनुचितमुक्तं हारीतेन——

'समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्मकुर्वन् पतत्यधः ।।

सधवायाः कुशस्पर्शोनिषिद्ध इति ब्राह्मण सर्वस्वे——

नस्पृशेत्तिलदर्भाश्च सधवा तु कथञ्चनेति ।

अर्थात् सधवा दूर्वाक्षत हस्तैव संकल्पं कुर्यादितिभावः ।

अथ हरितालिका——

भाद्रशुक्लतृतीया हरितालिका । तथाहि दिवोदासीये——

'भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका'

सा च परयुता ग्राह्या, तथा हि माधवः——

'मुहूर्त्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे ।
शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ।।'

स्कान्दे——'कला काष्ठा मुहूर्ताऽपि द्वितीया यदि दृश्यते ।
सा तृतीया न कर्त्तव्या कर्त्तव्या गणसंयुता ।।' इति ।

ब्रह्मवैवर्तेऽपि——

'रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयायाम्' इत्यादि ।

पुराणसमुच्चयेऽपि——

द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता ।
सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः ।।' इति ।

संयुक्तमिति तृतीयामिति शेषः । अत्र पार्वतीशिवयोः पूजा ।।

हिन्दी—अब हरितालिका—भादों शुक्ल तृतीया को हरितालिका कहते हैं । दिवोदास ने कहा है—भादों कृष्ण तृतीया को कज्जली तथा शुक्ल तृतीया को हरितालिका कहा जाता है । यह तृतीया परयुता ग्राह्य है । इस सन्दर्भ में माधव का कथन है—

दिन में मुहूर्त्तमात्र भी रहने पर गौरीव्रत परयुक्ता ही करना चाहिए । शुद्धाधिक रहने पर भी चतुर्थी युक्त ही प्रशंसनीय है ।

स्कन्दपुराण में कहा गया है—

एक कला, एक काष्ठा या एक मुहूर्त्त भी यदि द्वितीया रहे तो वह तृतीया नहीं करनी चाहिए । चतुर्थीयुता तृतीया ही करनी चाहिए । इति ।

ब्रह्मवैवर्त्त में भी—'रम्भा नामक तृतीया को छोड़कर तृतीया में इत्यादि।

पुराण समुच्चय में भी—

द्वितीया का थोड़ा अवशेष युक्त भी मोहवश जो तृतीया व्रत करती हैं, वे विधवा होती है ऐसा मनीषियों का कहना है ।

संयुक्ताम में तृतीयाशेष है । इसमें शिव और पार्वती की पूजा होती है।

मैथिली—एकरवाद हरितालिका । भाद्रशुक्ल तृतीया के हरितालिका कहल जायत् अछि । जेना दिवोदासक कथन छैन्हि—

भादवकृष्ण तृतीया कज्जली एवं भादवशुक्ल तृतीया हरितालिका कहवैत अछि । ई दुहू तृतीया परयुताग्राह्य अछि । जेना माधवक कथनानुसार—

मुहूर्त्तमात्रा परयुता यदि तृतीया हो तऽ ताही दिन गौरी व्रत करवाक चाही । चतुर्थीयोगक प्रशंसा सँ शुद्धाधिको में अहि ना मानवाक चाही ।

स्कन्दपुराण में कहलगेल अछि—

एक कला, एककाष्ठा या एको मुहूर्त्त यदि द्वितीया विद्ध तृतीया हो तऽ ओ नहि करवाक चाही । तृतीया सदैव चतुर्थी युतैव करणीय अछि ।

ब्रह्मवैवर्त में—

रम्भानामक तृतीया कें छाड़िकय परयुता तृतीया करवाकचाही,

पुराणसमुच्चय में—

द्वितीया शेष संयुक्त जे मोहवश तृतीया करैत छथि ओ वैधव्य प्राप्त करैत छथि, मनीषीलोकनिक एह कथन अछि । इति ।

'संयुक्ताम्' में तृतीया शेष अछि। अहि में शिवपार्वतीकपूजन होयत अछि।

विमर्श:—तद्यथा निर्णय सिन्धौटिपण्याम्—

हरितालिकेति। एतदान्वर्थक्यम् तु—''आलिभिहरितायस्मात्तस्मात्सा हरितालिका इति वचनाज्ज्ञेयम् । अत्र हि भवानीशिवयो: पूजा, मन्त्रञ्च—'मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालांकितशेखराय । दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नम: शिवायै च नम: शिवाय ।''

माधवीये आपस्तम्ब:—

'चतुर्थी सहिता यातु सातृतीया फलप्रदा ।
अवैधव्यकरा स्त्रीणाँ पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ।।'

तिथितत्त्वचिन्तामणिकृतिसागराद्यवाधुनिकनिबन्धे साचतुर्थयुताग्राह्या । हरितालिका व्रतस्यैव नामान्तरं लोके 'तीज' इति ।

अथ चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनेदोषमाह—मार्कण्डेय:—

'सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् ।
मिथ्याभिशापं कुरुते तस्मात्पश्येन्न तं तदा ।।'

तदेति चतुर्थ्यां न तच्चन्द्रं पश्येदित्यर्थ: । तेन तत्रोदितस्य पञ्चम्यां दर्शने न दोष इति तात्पर्यम् । अत्र चतुर्थ्यामेव दर्शननिषेधस्तस्यामेव चन्द्रपूजनं दर्शनं च व्यवहारसिद्धमतो दोषशान्त्यर्थं 'सिंह: प्रसेनमवधीत्' इत्यादिधात्रेयिका-वाक्यं प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा पठेत् ।

'पठेद्धात्रेयिकावाक्यं प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुख:' ।। इति ।

आर्षवचनात् । प्रदोषव्यापिनीयं ग्राह्या उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ पंचमी-युक्ता 'युगाग्निक्रतुभूतानि' इत्यादि निगमात् ।।

हिन्दी—'सौरभाद्र शुक्ल चतुर्थी में चन्द्र दर्शन से झूठा कलङ्क लगता है । इसलिए चतुर्थीका चन्द्र दर्शन नहीं करना चाहिए ।' चतुर्थी चन्द्रदर्शन का दोष सम्बन्धी यह वचन मार्कण्डेय पुराण का है ।

उस समय अर्थात् भाद्र शुक्ल चतुर्थी में चन्द्रमा को नहीं देखना चाहिए। अत: चतुर्थी में उदित चन्द्रमा के दर्शन पञ्चमी में करने पर दोष नहीं होता यह तात्पर्य है । यहाँ चतुर्थी में ही चन्द्र दर्शन का निषेध किया गया है और चतुर्थी में ही चन्द्र पूजन एवं दर्शन का व्यवहार है । अत: इसके दोष की शन्ति के लिए 'सिंह ने प्रसेन को मारा' इत्यादि धात्रेयिका का वाक्य पूर्व मुख या उत्तर मुख होकर पढ़े ।

'धात्रेयिका वाक्य पूरब या उत्तरमुख होकर पढ़े' इत्यादि ।

यह चतुर्थी प्रदोष व्यापिनी ग्राह्य है । यदि दोनों दिन यह प्रदोषव्यापिनी हो तो पंचमीयुक्ता ही ग्राह्य है। 'युग्माग्निक्रतुभूतानि' इस निगम के वचनानुसार।

मैथिली—चतुर्थी चन्द्रदर्शन में मार्कण्डेय दोष कहैत छथि—

सौरभाद्र शुक्ल चतुर्दशी में चन्द्र दर्शन कयने मिथ्या कलङ्क लागेते अछि । तें चौथ के चन्द्र दर्शन नहि करवाक चाही ।

तदा पदेन चतुर्थीक बोध होयत अछि । तें ताहि में चन्द्रामाक दर्शन नहि करवाक चाही । चौथ में उदित पंचमी में दर्शन करने कोनो तरहक दोष नहि, ई एकर तात्पर्य अछि । किन्तु अहिठाम चतुर्थी में चन्द्रदर्शन निषिद्ध मानलगेल अछि। आओर चतुर्थीतिथि ये में चन्द्रमाकदर्शन एवं पूजन विहित अछि तथा व्यवहार सिद्ध सेहो अछि । अत: एक दोषक शान्ति हेतु—'सिंह ने प्रसेन को मारा' इत्यादि धात्रेयिका वाक्य पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख भय पढ़ी ।

'धात्रेयिका वाक्य पूर्वमुख वा उत्तर मुखभय पढी ।' इति ।

ई चौथ तिथि प्रदोष व्यापिनी ग्राह्य अछि । यदि दुहू दिन प्रदोष व्यापिनी होय तऽ पञ्चमी युक्ता चतुर्थी करवाकचाही ।' युग्माग्निक्रतुभूतानि' निगमक ई बचन सँ प्रमाणित अछि ।

विमर्श:—तत्र निर्णयसिन्धौ गणेशरूपं स्कान्दे च—

'एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
पाषाङ्कुश धरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् ।।'

इयं चतुर्थी रविभौमयोरतिप्रशस्ता—

भाद्रशुक्ल चतुर्थी वा भौमेनार्केणवायुता ।
महतीसात्रविघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नर: ।। 'इति निर्णयामृते वाराहोक्ते: ।

अत्र कृतिमहार्णवे च तथा स्मृति:—

भाद्रशुक्ल चतुर्थ्यां तु पूजयेत् पावर्तीशुभाम् ।
तस्यां वैपूजितायां तु सौभाग्यं न विहन्यते ।। इति ।

अत्रैव कृत्यशिरोमणौ—

तिथितत्त्वप्रदिपेतु पार्वतीपूजने शुक्ला साकार्या पञ्चमीयुता 'भौमवारयुता सा चेदक्षया सा प्रकीर्त्तिता ।' इति वचनात् पञ्चमीयुताऽत्र प्रशस्ता । भाद्रशुक्ल चतुर्थीमेव चन्द्रदर्शन निषेध: तिथि तत्वचिन्तामणौ कृतिमहार्णवे च ।

मूलेसिंहादित्यपदेन सौरभाद्रशुक्ल चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनं दूषितम् । यदा भाद्रपदोऽधि-मासस्तदासितादित्यस्य मलसासे गततत्वाच्छुद्ध भाद्रपदशुक्ले चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शन निषेध-स्तथा चोक्तं पराशरेण—

कन्यादित्ये चतुर्थ्यान्तु शुक्ले चन्द्रस्यदर्शनम् ।
मिथ्याभिदूषणं कुर्यात् तस्मात् पश्येन्न तं तदा ।।

इति तिथितत्वचिन्तामण्यौ । तिथितत्त्वेरघुनन्दनोऽपि शुक्लपक्षे चतुर्थ्यामित्यादिभिः चन्द्रदर्शन निषेधमुक्तं ततश्चान्ते—ऊँ सिंहः प्रसेन जितमवधीत् सिंहोजाम्बवताहतः ।

'सुकुमारकुमारोदीस्तव ह्येषस्यमन्तकः ।' इति गांगेण फलपुष्पादि पक्वान्नपूरित-वंशपात्रं समर्पयेत् । ततो नमः ।

दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवं नमामि शशिनं भक्त्या शम्भोर्मुकुटभूषलम् । दधिपात्रमनेन मन्त्रेण दत्वाऽन्ते—

रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवन्! देहि मे ।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ।।

तिथि युग्मप्रतिपादकवचनस्यार्थः—

द्वितीयातृतीययोः । चतुर्थी पञ्चम्योः । षष्ठीसप्तम्योः । एकदशीद्वादश्योः । चतुर्दशीपौर्णमास्योः । प्रतिपद्दर्शयोर्मेलनम् । अर्थात् द्वितीया व्रतं तू भयदिने द्वितीयायां संत्यां तृतीयायुक्तायां कर्त्तव्यम् । तथा तृतीयाव्रतं तु द्वितीयायुक्तायाम् तृतीयायां कर्त्तव्यम् । यत्रविशेषवचनं न युग्मत्वबाधकं, तत्र तत्र नियमेन युग्मादरः । विशेषवचनस्य-वाधकत्वे न युग्मादरः ।

यथा हरितालिका तृतीया निर्णये—

'कलाकाष्ठा मुहूर्त्ताऽपि द्वितीया यदि दृश्यते ।
सा तृतीया न कर्त्तव्या कर्त्तव्या गणसंयुता ।।'

इति स्कन्दपुराणवचनात् ।

अथ भाद्रशुक्लषष्ठी—सूर्यषष्ठी सा च सर्वमते स्कन्दव्रतातिरिक्ता परयुता ग्राह्या युग्मात् ।

'नागविद्धा न कर्तव्या षष्ठी चैव कदाचन ।।' इति स्कान्दः ।

तत्रैव राधाव्रतं तच्च सप्तमीयोगेन कार्यम् ।।

हिन्दी—इसके बाद भादव शुक्ल षष्ठी को सूर्यषष्ठी कहा जाता है—यह षष्ठी स्कन्दव्रत के अतिरिक्त सर्वसम्मति से परयुता ग्राह्य है । युग्म नियम से । 'पञ्चमीविद्धा षष्ठी कभी भी नहीं करनी चाहिए ।'

स्कन्दपुराण के इस वचन से भी यही सिद्ध होता है । यहाँ ही राधा व्रत भी है । राधाव्रत सप्तमीयोग से करना चाहिए ।

मैथिली—आव भादव शुक्ल षष्ठी अर्थात् सूर्यषष्ठीक सन्दर्भ में—स्कन्दव्रतक अतिरिक्त युग्म तिथि नियमानुसार सर्व सम्मति सँ परयुता मात्रे ग्राह्य होयत अछि । 'षष्ठी व्रत कदापि पञ्चमी विद्धा नहि करबाक चाही ।'

स्कन्दपुराणक ई वचन, से हो उक्त कथनक समर्थन होयत अछि । अही ठाम राधा व्रत सेहो होयत अछि । ओ तऽ सप्तमी योगेन होयत अछि ।

अथ भाद्रशुक्लाष्टमी—दूर्वाख्या सा च पूर्वयुता ग्राह्या तथाहि बृहद् यमः ।

श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशिनी ।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ।। इति ।।

हिन्दी—अब भाद्रशुक्ल अष्टमी—यह दूर्वाष्टमी है । यह अष्टमी पूर्वयुता ग्राह्य है । बृहद्यम में कहा गया है—

श्रावणी पूर्णिमा, दुर्गानवमी, भाद्र शुक्ल अष्टमी (दूर्वाष्टमी), होलिका दहन, शिवरात्रि और बलिदान ये सभी पूर्वविद्धा ही करना चाहिए ।

मैथिली—आब भाद्रशुक्ल अष्टमीक सम्बन्ध में कहैत छी—ई अष्टमी दूर्वाष्टमीक नामे विख्यात अछि । ई अष्टमी पूर्वयुता ग्राह्य अछि । बृहत् यम में कहल गेल अछि —

'सावन पूर्णिमा, दुर्गाक नवमी, भादवशुक्लाष्टमी (दूर्वा), होलिका दहन, शिवरात्रि एवं बलिदान पूर्वविद्धा करवाक चाही ।'

विमर्श:—तद्यथा पुराणसमुच्चये—

'शुक्लाष्टमीतिथिर्यातु मासिभाद्रपदे भवेत्, ।
दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते' ।।

स्कन्दपुराणवचनेनेयं कन्यार्केनिषिद्धा—

'सिंहार्क एव कर्त्तव्या न कन्यार्के कदाचन ।
सिंहस्थे सोत्तमा सूर्येऽनुदिते मुनिसत्तम ।।'

इदं व्रतं स्त्रीणां नित्यमिति पुराणसमुच्चये—

'यान् पूजयते दूर्वा मोहादिह यथाविधि ।
त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः ।
तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः ।।' इति ।

तत्रैव— 'दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या ज्येष्ठामूवर्क्षसंयुता ।'

तथा च मदनरत्ने—

'ऐन्द्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हन्त्यपापानि नान्यथा ।
भर्त्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां वर्जयेत् सदा ।।'

अत्रैव—'अगस्त्य उदितेतात पूजयेदमृतोद्भवान् ।
वैधव्यं पुत्रशोकं च दशजन्मानि पंच चेति ।।

अथ भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम्—सा च 'त्रिमुहूर्त्ताप्यौदयिकी ग्राह्य' इति माधवाचार्यः । तथा हि ।

'उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः ।' इति घटिकामात्रमप्यौदयिकी ग्राह्यमिति निर्णयामृतः । तथा—

'पौर्णमास्यासमायोगाद् व्रतं चानन्तकं चरेत्' ।। इति भविष्ये ।

द्वहेऽप्यौदयिकल्पे पूर्णत्वात्पूर्व विद्धा ग्राह्येति स्मार्त्ताः ।

हिन्दी—'भाद्रशुक्ल चतुर्दशी में अनन्त व्रत होता है ।

यह चतुर्दशी उदयकाल में तीन मुहूर्त्त भी यदि हो तो वही ग्राह्य है । माधवाचार्य का यह विचार है । जैसे—

उदयकाल में तीन मुहर्त्त भी यदि चतुर्दशी हो तो वही अनन्त व्रत के लिए ग्राह्य है । ऐसा निर्णयामृत का सिद्धान्त है । जैसे—

पूर्णिमा के समायोग से अनन्त व्रत करना चाहिए । ऐसा भविष्यपुराण का कथन है । अगर दो दिन औदयिकी चतुर्दशी हो तो पूर्वविद्धा ग्राह्य है—स्मार्त्त वचन है ।

मैथिली—भादवक शुक्ल पक्षक चतुर्दशीतिथि में अनन्तक व्रत होयत अछि । यदि सूर्योदय काल में तीनो मुहूर्त्त अर्थात् दुई घंटा चौबीसो मिनट चतुर्दशी होय तऽ ताहि दिन अनन्त व्रत करवाक चाही । ई माधवाचार्यक मत अछि । जेना आओर ।

'यदि उदयकाल में तीनो मुहूर्त्त चतुर्दशी होय तऽ ताही दिन अनन्तव्रत करवाक चाही । निर्णयामृतक अनुसार घटिकामात्रो यदि उदयकालीन चतुर्दशी होय तऽ सेह अनन्त व्रत कलेल ग्राह्य अछि । जेना कहने छथि—

भविष्यपुराण में—पूर्णिमा संयुक्त चतुर्दशी में अनन्त व्रत करवाक चाही, यदि दुहू दिन उदयकालीन चतुर्दशी होय तऽ पूर्व विद्धे करवाक चाही ई स्मार्त्त मत अछि ।

विमर्शः—अनन्त चतुर्दशीयं उदयव्यापिनी ग्राह्या । तथाहि तिथि चन्द्रिकायां पक्षधरमिश्रा लिलिखुः—

अनन्तस्य व्रते राजन्, घटिकैका चतुर्दशी ।
उदये घटिकैकादूर्ध्वा सैव ग्राह्यामहाफला ।।

स्कान्दे— मुहूर्त्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी ।
सम्पूर्णां तां विजानीयात् पूजयेत् विष्णुमव्ययम् ।।

भविष्ये— तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम ।
पूर्णिमायाः समायोगे व्रत्तं चानृन्तकं चरेत् ।।

दिवोदासः— चतुर्दश्युर्दये किञ्चित्पूर्णिमा सफला यदि ।
तत्र कुर्यादनन्तस्य महाविष्णोः प्रपूजनम् ।।

स्मृतिः—व्रतोपवास नियमे घटिकैका यदाभवेत् ।
सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके ।।

अग्निपुराणे— वारुणेन समायुक्ता स्यादनन्तचतुर्दशी ।
तत्राक्षयफलं प्रोक्तमनन्तार्चन सम्भवम् ।।

'यत्तु मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इतिकथान्तर्गतपद्यमादायमध्याह्नकीतिथिरियम् ग्राह्येति भट्टाः प्राहुस्तन्मन्दम्, 'पूर्वोक्तोवैदेवानामितिस्मृतिविरोधात् । तदुक्तं दिनकरोद्द्योते ''त्रेधाविभक्तदिवसेप्रातःकाले सुरार्चनम्, मध्याह्ने तीर्थकार्यन्च सायंरक्षाकरीक्रिया ।'' एवम् विभिन्न वचनैः पूर्णिमा युक्तायामेव चतुर्दश्यामनन्त व्रतं नक्षत्रलाभात्वधिक एवेति सर्वनिबन्धकाराः घटिकैकाप्यौदयिकानन्तचतुर्दशी ग्राह्येति तिथितत्त्वचिन्तामण्यादिषु नियमितत्वान्मैथिलैरेतदेवादरणीयम् । कृत्यशिरोमणिधृत टिप्पण्यां जयानन्देन च केवल चतुर्दश्याः क्षयावसरे त्रयोदशीयुतायानन्तपूजन मुत्तरन्नोदये तदभावात् । उदय द्वय व्याप्तौ तु परदिने पूर्णिमा योगस्यलाभेऽपि तिथिमलत्वे नानर्हत्वात् पूर्वदिन एवानन्तव्रतं पूजनं चेति सर्वसम्मतः पक्षः ।

अथ भद्रशेषदिनत्रयेऽगस्त्यार्घदानम्—तत्र प्रमाणं ब्रह्मवैवर्ते—

'अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अर्घन्दद्युरगस्त्याय गौडदेशनिवासिनः ।।'

नारसिंहे—'शंखे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणानेन वै दद्याद्दक्षिणाभिमुखः स्थितः ।।'

अनेन शंखपुष्पफलं तोयमिति मन्त्रेण । अत्र दिनत्रये मन्त्रत्रयं यथा—

'कुंभयोनिसमुत्पन्न मुनीनां मुनिसत्तम ।
उदयं ते लङ्काद्वारेऽर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। १ ।।

'शंखं पुष्पं फलं तोयं रत्नानि विविधानि च। उदयन्ते' इत्यादि ।। २ ।।
'काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसम्भव । उदयन्ते लङ्के' इत्यादि ।। ३।।

इति केचित् । रसमालायां तु प्रथमदिने तृतीयमन्त्रः, द्वितीये—प्रथम इति भेदः ।

हिन्दी—भादों महीने के अन्तिम तीन दिन में अगस्त्य के लिए अर्घ देना चाहिए । इसका प्रमाण ब्रह्मवैवर्त्त में—

कन्याराशि में सूर्य के नहीं रहने पर भादो महीने के अन्तिम तीन दिन गौड़देश के निवासियों को अगस्त्य के लिए अर्घ देना चाहिए ।

नरसिंह पुराण में लिखा है—

शङ्ख में जल लेकर उसमें श्वेत पुष्प और अक्षत डालकर, दक्षिणमुख होकर इस मन्त्र से अर्घ देना चाहिए ।

इस मन्त्र से अर्थात् 'शंख, पुष्प, फल एवं जल' इत्यादि मन्त्र से । यहाँ तीन दिन के तीन मन्त्र 'कुम्भ योनि में समुत्पन्न मुनियों में श्रेष्ठतम हे अगस्त्य आपका उदय लंका के द्वार पर है आप हमारा यह अर्घ स्वीकार करें ।। १ ।। (प्रथम दिन का मन्त्र) ।

'शङ्ख, पुष्प, फल, जल और अनेक रत्नों का यह अर्घ, लंका के द्वार पर उदित हे अगस्त्य मुनि आप स्वीकार करें । (दूसरे दिन का अर्घ) ।

'काश के फूल की तरह दिव्य, अग्नि और वायु से समुत्पन्न हे अगस्त्य मुनि लंका के द्वार पर उदित आप मेरा अर्घ स्वीकार करें ।। ३ ।। (तीसरे दिन का अर्घ) ।

यह कुछ लोगों का मत है । रसमाला में—पहले दिन तीसरा मन्त्र और दूसरे दिन पहला मन्त्र का पाठ भेद देखा जाता है ।

मैथिली—भादव मासक अन्तिम तीन दिन में अगस्त्य मुनिकलेल अर्घ देवाक विधान अछि । ब्रह्मवैवर्त्त में एकर प्रमाण अछि—

कन्याराशि गत सूर्यक अप्राप्ति में गौड़ देशवासी लोकनि मुनि अगस्त्यक लेल अर्घदान करथु ।'

नरसिंहपुराण में—शङ्ख में जल राखि, ताहि में श्वेत पुष्प एवं श्वेत अक्षत दय, अहि मन्त्र से दक्षिणाभिमुखभय अगस्त्यकलेल अर्घ दी ।

अहिमन्त्र सँ तात्पर्य अछि—'शङ्ख, पुष्प, फल, जल इत्यादि । अहिठाम तीन दिनकलेल तीन मन्त्रक विधान अछि । जेना—

कुम्भ योनि में समुत्पन, हे अगस्त्य, अहाँ मुनिगणक बीच सर्वोत्तम मुनि छी । अहाँक उदय लङ्काक द्वारि पर अछि । अहाँ हमर अर्घ स्वीकार करु ।। १ ।।

शङ्ख, पुष्प, फल अनेक तरहक रत्न, लंका द्वारि पर उदित हे अगस्त अहाँ हमर ई अर्घ स्वीकार करु ।। २ ।।

कास फूलक तरहे दिव्य श्वेत, अग्नि एवं पवन संभूत, लङ्काक द्वार पर उदित, हे मुनि अगस्त्य अहां हमर अर्घ स्वीकार करु ।। ३ ।।

ई कतिपय लोकनिक विचार अछि । किन्तु, रसमालाक अनुसार, पहिल दिन तेसर मन्त्र आ ओर दोसर दिन प्रथम मन्त्र, अहि तरहे पाठभेद मानल गेल अछि ।

विमर्शः—अनेन सौरभाद्रस्य शेषदिनत्रयेऽर्घदानविधिः सिद्ध्यति । व्यवहारस्तु कृष्णादिचान्द्रमासस्यान्तिमदिनेऽर्घदानस्य दृश्यते । राजमार्तण्डेऽगस्त्यस्यकाशपुष्पप्रतिमां विधायार्घदानविधिविशेषः प्रतिपादितः, स च द्रष्टव्यः परिशिष्टेति ।

ततः प्रार्थयेत्— ओं आतापी भक्षितोयेन वातापी च महाबलः ।
समुद्रः शोषितोयेन समेऽगस्त्यः प्रसीदतु ।।

ततस्तत्पत्न्याऽर्घदानं दद्यात्—तत्र मन्त्रः—

ॐ लोपामुद्रे महाभागे, राजपुत्रि पतिव्रते ।
गृहाण्यर्घं मया दत्तं मैत्रावरुणि बल्लभे ।। इति ।

तत्र कृत्यशिरोमणौ—

जानुभ्यामवनिं गत्वा शिरसि स्थित ताम्रपात्रेणप्रणम्यागस्त्यं ध्यात्वा अर्घोदेय इति कृत्यमहार्णवे । तत्रैव वामनपुराणे—

मासिभाद्रपदेदद्यात् पायसं मधुसर्पिषी ।
ऋषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडोदनम् ।।

तथा स्कन्दपुराणे—

यस्तु भाद्रपदे मासि एकभुक्तं समाचरेत् ।
एतेन कर्मणा देव्यो धनवानभिजायते ।।

देव्य इति सम्बोधन पदम् ।

तत्र निर्णयसिन्धुधृतव्रतहेमाद्रौ— कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वा सप्तमे दिने ।
कन्यायां समनुप्राप्ते ह्यर्धकाले निवर्त्तते ।
तेनोदयोत्तरमपि सप्तमे दिनमध्ये इत्यर्थः ।।

अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये—'काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्त्तिं तु वारुणे ।
प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुम्भे स्वलंकृताम् ।
कुम्भस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः ।।
दध्यक्षतबलिं दत्त्वा रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ।
प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जलाशयम् ।।
निशावसाने तां पश्यन् जलान्ते प्रतिमां मुने ।
अर्घ्यं दद्यात् अगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः ।।'

।। इति कृत्यसारसमुच्चये भाद्रकृत्यम् ।।

अथाश्विनकृत्यम्

तत्र मनुः— अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं देयं दिने दिने ।
त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्द्धमेव वा ।।'

दिने दिने प्रतिदिने, न तु तिथौ तिथौ मुख्यार्थत्यागापत्तेः श्राद्धविवेकादयोऽप्येवम् । तथा च प्रतिपदाद्यमावास्यान्तः पार्वणकालो मुख्यः । तदशक्तस्य पञ्चम्याद्यमावास्यान्तः । तत्राप्यशक्तस्य अष्टम्याद्यमावास्यान्तः । ततोऽप्यशक्तस्य दशम्याद्यमावास्यान्त इति चत्वारः कल्पा इति तात्पर्यम् । एतत्पक्ष चतुष्टयाशक्तेनैकस्मिन्नपि दिने पार्वणं कर्तव्यम् । तथाहि—

'यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे ।
तस्य सम्वत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्' इति ।

अकरणे दोषमाह स्मृतिः—

'सूर्ये कन्याङ्गते श्राद्धं यो न कुर्याद्गृहाश्रमी ।
धनं पुत्राः कुतस्तस्य पितृनिश्वासपीडनात् ।।'

अतो नित्यमिदं पार्वणम् । 'नन्दायां भास्करदिने' इत्यादि नन्दादिश्राद्धनिषेधवचनानि पक्षश्राद्धव्यतिरिक्तविषयाणि बोध्यानीति ठक्कुराः सर्वेष्वप्येषु पक्षेषु चतुर्दशीत्यागः । यथा मनुः ।

'कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
श्राद्धे प्रसिद्धास्तिथयो यथैता न तथेतराः ।।'

अथ शस्त्रादिहतानामेव चतुर्दश्यां श्राद्धम्—तथा हि देवीपुराणे—

'आहवेषु विपन्नानां जलाग्निभृगुपातिनाम् ।
चतुर्दश्यां भवेत्पूजामावास्यायान्तु कामिकी' ।। इति ।।

वायुपुराणेऽपि—

'युवानस्तु गृहे यस्यमृतास्तेषान्तु दापयेत् ।
शस्त्रेण वा हता ये वै तेषां दद्याच्चतुर्दशीम् ।।'

इति शस्त्रहतश्राद्धमेकोद्दिष्टविधिना कर्तव्यम् । तथाहि—

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते ।
तदेकोद्दिष्टविधिना कर्त्तव्यं शस्त्रघातिनाम् ।।' इति ।

युवानः षोडशवर्षमारभ्य त्रिंशद्ववर्षपर्यन्तवयस्का विवक्षिता इति रत्नाकरः । शस्त्रघातिनां शस्त्रेण हतानामित्यर्थः ।।

हिन्दी—अब आश्विन महीने का कर्म—

यहाँ मनु का कहना है—

अश्विनी नक्षत्रयुक्त आश्विनकृष्णपक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध देना चाहिए । पूरे पक्ष का तृतीयांश अर्थात् प्रारंभिक पाँच दिन छोड़कर, या पूरे पक्षभर अथवा पाँच ही दिन या आधा पक्ष श्राद्ध करना चाहिए ।

यहाँ दिने–दिने से तात्पर्य प्रतिदिन का है न कि दिन तिथि परक है । क्योंकि तिथि परक मानने पर मुख्यार्थ बाधित होता है । श्राद्धविवेकादि में भी ऐसा ही कहा गया है । और प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक पार्वण का मुख्य काल है । इसमें जो अशक्त है वह पञ्चमी से लेकर अमावस्या तक पार्वण श्राद्ध करे । ऐसा करने में भी जो अशक्त है, उसे अष्टमी से लेकर अमावस्या तक पार्वण श्राद्ध करना चाहिए । इतना करने में भी जो समर्थ नहीं है उसे दशमी से अमावास्या तक पार्वण श्राद्ध करना चाहिए । ये चार विकल्प बतलाये गये हैं। कहने का तात्पर्य यही है । इन चार विकल्पों में से किसी एक विकल्प के सम्पादन में भी जो समर्थ नहीं है, उसे कम से कम एक दिन भी पार्वण आवश्य करना चाहिए । जैसा कहा गया है—

जो व्यक्ति पितृपक्ष में एक दिन भी श्राद्ध करता है उसके पितर वर्षभर निश्चित रूप से संतृप्त रहते हैं । इति ।

नहीं करने पर स्मृति में दोष कहा गया है—

कन्याराशिगत सूर्य के होने पर जो गृहस्थ यह श्राद्ध नहीं करते, उनके पितरों की लम्बी सांस की दुखी आह से उनका धन और पुत्र विनष्ट हो जाते हैं ।

अतः यह पार्वण नित्य माना गया है । 'नन्दायां भास्कर दिने' इत्यादि वचन के अनुसार नन्दादि में श्राद्ध करने का निषेध किया गया है, वह इस पाक्षिक श्राद्ध के अतिरिक्त समझना चाहिए ऐसा म.म. महेश ठक्कुर का कथन है । जैसे मनु ने कहा है—

कृष्णपक्ष की दशम्यादि तिथि में चतुर्दशी तिथि को छोड़कर श्राद्ध कर्म में जैसी ये तिथियाँ प्रसिद्ध हैं वैसी कोई दूसरी तिथि नहीं है ।

हथियार से मारे गये लोगों के श्राद्ध के लिए चतुर्दशी ही प्रशस्त तिथि है । देवीपुराण में कहा गया है—

युद्ध में मारे गये का, पानी में डूबकर मरने वालों का, आग में जल कर मरने वालों का, पहाड़ की चोटी से फिसलकर गिरने वाले या चट्टान से दबकर मरने वालों का श्राद्ध चतुर्दशी तिथि में ही करना चाहिए, अमावास्या का पार्वण तो इनके लिए ऐच्छिक है । वायुपुराण में भी—

जिनके घर में जवानों की मौत हो या हथियारों से जिनकी मौत हो उनका पार्वण चतुर्दशी के दिन ही होना चाहिए । हथियारों से आहत लोगों का पार्वण एकोद्दिष्ट विधि से ही करना चाहिए । ऐसा कहा गया है—

शस्त्राघात से मरने वालों का श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण एकोद्दिष्ट विधि से ही करना चाहिए ।

सोलह साल से लेकर तीस साल तक की उम्रवालों को रत्नाकर ने जवान कहा है । शस्त्रघातिनां का अर्थ हथियारों से मारे गये लोग होता है ।

मैथिली—आव आश्विन मासक कृत्यक विवेचन करव—

अहिठाम मनुक वचन अछि—

अश्विनी नक्षत्र युक्त आश्विन कृष्णपक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध करवाक चाही । त्रिभागहीनम् अर्थात् पक्षक तृतीयांश छाडिकय अथवा सम्पूर्ण पक्ष भरि वा अन्तिम पाँच दिन अथवा आधा पक्ष पार्वण श्राद्ध करवाक चाही ।

आहेठाम 'दिने दिने' क तात्पर्य प्रतिदिन होयत अछि, प्रतितिथि नहि, एहन अर्थ कयने पंक्तिक मुख्यार्थक त्यागापत्ति भजायत । श्राद्ध विवेकादि म सेहो अहिणा कहल गेल अछि । तँाय पड़िव सँ अमावास्या धरि पार्वण काल मुख्य रूपे मानल गेल अछि । कोनो कारणे जे सम्पूर्ण पक्ष धरि पार्वण करवा में असमर्थ छथि, एहन लोकनि पञ्चमी सँ अमावास्या धरि ई पार्वण करथु । अहू मे जे असमर्थ छथि ओ अष्टमी सँ अमावास्या धरि ई श्राद्ध करथु वाहू में अशक्तलोकनि दशमी तिथि सँ प्रारम्भ करि अमावास्या धरि पाँचा दिनमात्र पार्वण श्राद्ध करथु । पार्वण श्राद्धक एह चारिरा कल्प अछि । ई चारु तरहक विधान में कोनो तरहक कल्प करवा में जे असमर्थ होयथु से कम सँ कम एकोदिन पार्वण अवश्य करथु । जेना—

जे व्यक्ति पितृपक्ष में कम सँ कम एकोदिन पार्वण करैत छथि, हुनक पिता निश्चित रूप सँ सालोभरि सन्तुष्ट रहैत छथि । इति ।

स्मृति में नहिकयने दोष कहल गेल अछि—

कन्या राशिगत सूर्यक स्थिति में जे गृहस्थ श्राद्ध नहि करैत छथि । पितरक नि: श्वास सँ पीड़ित हुनक धन एवं पुत्रक विनाश भऽ जायत छैन्हि ।

तँाय ई पार्वणकें नित्य कहलगेल अछि । 'नन्दायां भास्कर दिने' इत्यादि

नन्दादि में श्राद्धक निषेध वचन उपलब्ध होयत अछि सँ ई पाक्षिक श्राद्ध सँ भिन्न श्राद्ध कलेल कहल गेल अछि । ई ठक्कुरक कथन छैन्हि । अहूँ पक्ष में चतुर्दशीक त्यागक देवाक चाही । मनुक वचन छैन्हि—

आश्विन कृष्णपक्षक दशम्यादि में चतुर्दशी तिथिक त्याग करि श्राद्धक जे प्रसिद्धि अछि से कतहुँ आन ठाम नहि ।

आव शस्त्रादि सँ मारलगेल लोकनिक श्राद्ध चतुर्दशी तिथि में श्राद्ध करवाक चाही । देवी पुराण में—

युद्ध में मारलगेल लोकनिक, पानि में डूबिक मरल लोकक, आगि में जरल लोकनिक, पहाड़क चोटी सँ खसि के मरल या चट्टानक तर दबि धसिक मरल लोकनिक श्राद्ध चतुर्दशी में करवाक चाही, अमावास्याक श्राद्ध ऐच्छिक कहल गेल अछि । वायु पुराणो में यथा—

जकराघरऽ में युवा व्यक्तिक मृत्यु होय अथवा शस्त्राघात में मरल होय ओकर श्राद्ध चतुर्दशी तिथि में होय । अहि तरहें हथियार सँ मारलगेल लोकक पार्वण एकोद्दिष्ट विधि सँ करवाक चाही । तथा—

शस्त्राहत व्यक्ति जकर चतुर्दशी तिथि में श्राद्ध होय या सपिण्डी करण कयल जाय ओकर एकोद्दिष्ट विधि सँ श्राद्ध हयवाक चाही ।

सोलह वर्ष सँ तीस वर्ष धरि अवस्था व्यक्ति कें रत्नाकर युवा मानैत छथि । शस्त्रघातीक अर्थ ओ शस्त्र सँ मारलगेल कथने छथि ।

विमर्श:—श्राद्धपदेनात्र पार्वणश्राद्धम् । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनु:—

आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिता: ।
कांक्षसि पितर: क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम् ।।'

कन्यायोगे पुण्य तमत्वमाह शाट्यायनि:—

कन्यास्थार्कान्वित: पक्ष: सोऽत्यन्तं पुण्यमुच्यते ।' इति ।

अत्र विशेषमाह वृद्धमनु:—

मध्येवा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद् रवि: ।
सपक्ष: सकल: श्रेष्ठ: श्राद्धषोडशकं प्रति ।।

तथा व्रह्माण्डमार्कण्डेययो:—

कन्यां गते सवितरिदिनानिदश पञ्च च ।
पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ।।'

अत्रैव हेमाद्रौ—या तिथिर्यस्य मासस्य मृता हेतु प्रवर्त्तते ।
सा तिथि: पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नत: ।।

निर्णयसिन्धुधृतहेमाद्रिः—षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ तिथि वृद्ध्यापक्षस्य षोडश-दिनात्मकत्वे श्राद्धवृद्ध्यर्थमेकः पक्षः, भाद्रपदपूर्णिमाया सहेति द्वितीयः पक्षः, आश्विन शुक्लप्रतिपदा सहेति तृतीयः । अन्त्य एवतुयुक्तः—

अहः षोडशकं यत्तु शुक्ल प्रतिपदासह ।
चन्द्रक्षयाविशेषेण साऽपि दर्शात्मिका स्मृताः ।। इति देवलोक्तेः पञ्चपक्ष ।

अत्रैव कृत्यशिरोमणौ—

षोडशेति तिथिवृद्ध्यपेक्षया तेन यदा दिवसषोडशके विहितकालेऽपरपक्षीय तिथि प्राप्तिस्तदा दिनषोडशकं भवतीति कल्पतरुस्वरस इति कृत्यमहार्णवे । तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु—तिथिवृद्ध्या पक्षस्य षोडशदिनत्वे प्रथमः पक्षः । भाद्रपूर्णिमासहिते द्वितीयः । शुक्ल-प्रतिपदासहिते तृतीयः । तत्रान्त्य एव श्लाघ्य इति लिखितम् । परन्तु कृतिमहार्णव-कल्पतरुसाहित्यात् प्रथम पक्ष एव सुन्दर इति बहवः । भाद्रपूर्णिमायां पार्वणादिकर्त्तव्यमिति दाक्षिणात्याः । गौड़ मैथिलैर्नाद्रियत इति स्वयमेव तत्र लिखितम् तेन द्वितीयः पक्षोऽपास्तः। तृतीयपक्षस्तु देवीपक्षत्वेनापास्त इति प्रतिभाति तेन प्रथम पक्ष एव वाचस्पति मिश्र लिखितः सुन्दर इति । श्राद्धविवेके तु 'चरमा षोडशांशिका' अनेन वाक्येन प्रशस्यन्ते इत्युक्तं अनेन तु प्रौष्ठपद्या सह षोडशत्वं, श्राद्धं तु प्रौष्ठपद्यां वै कृत्वा क्रतुफलं लभेत्' इति ब्रह्म-पुराणोक्तेः । तत्रापि श्राद्धस्य विहितत्वादित्याहुर्यैवा तैर्वा भवन्तु । आषाढीमवधिमित्यादि जातूकर्णवचनादाश्विनकृष्ण प्रतिपदादिरमान्त एवापरपक्षास्तत्र श्राद्धादिकर्त्तव्यमिति । तत्र दिने दिने सर्वस्मिन्दिने¬ इति कल्पतरौ व्याख्यातम् । त्रिभागहीनं पञ्चम्यादि । त्रिभागं दशम्यादि । अर्द्धमष्टम्यादि कल्पतरुः । भागादिकल्पनं त्वशक्तपरं बोध्यम् । शक्तपक्षे तु सकलं पक्षम् । अशक्तपक्षे एकमपि दिनम् कर्त्तव्यम् । इति—

अन्यच्च तिथितत्त्वचिन्तामणौ वशिष्ठः—

नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां द्विजन्मसु ।
एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ।।

तथा च— भानौ भौमेत्रयोदश्यां नन्दासु च मघासु च ।
पिण्ड दानं मृदास्नानं न कुर्यात्तिल तर्पणम् ।।

तथा हेमाद्रौ वृद्धपराशरः—

युगादिषुमघायां च विषुवत्ययने तथा ।
भरणीषु च कुर्वीत पिण्ड निर्वपणं नहि ।।

वृद्धगर्गः— प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यक्षे भार्गवे तथा ।
यस्तुश्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रोविनश्यति ।।

कृत्यसारसमुच्चयस्थ टिप्पण्यां कृष्ण मोहन ठक्कुरस्तु—'आश्विनस्य मलमासे कन्यास्थ सूर्यस्यावसरो मलमासान्तर्गत एव ।' तत्र शुद्धाश्विन कृष्णपक्षे सिंहादित्य संभवादपि सकलस्मृति सम्मत्या—'कन्यां गच्छत वा न वा' इत्यादिना च श्राद्धं

कर्त्तव्यमित्येवमेव मैथिलसम्प्रदायोऽपि । पितृणां चान्द्रमासमिताहोरात्रस्य कृष्णपक्ष रूपमेव दिनं भवत्यतो रात्रिभोजनापेक्षया दिन भोजनस्य प्राशस्यात्तेषां श्राद्धं कृष्णपक्षे, सर्व-सम्मतम् । तत्रापि तेषां दर्शे दिनार्द्धसमयत्वात्तत्राति प्रशस्तम्—

'पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्यदलं चतेषाम् । इति सिद्धान्त-शिरोमण्युक्तत्वात् ।

अत्र चतुर्दश्यां येऽपमृत्युमन्वस्तेषामेवश्राद्धमुक्तं मरीचिना—

विषशस्त्रश्वापदाहितिर्यग् ब्राह्मणघातिनाम्
चतुर्दश्यां क्रियाकार्या चान्येषां तु विगर्हितम् ।
वृक्षारोहणलाहाद्यैर्विषज्वालाविषाग्निभिः
नखोदंष्ट्री विपण्णानां तेषां शस्ता चतुर्दशी ।।

तथाब्राह्मणेपि— युवानः पितरो यस्य मृता शस्त्रेण चाहताः ।
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ।।' इति ।

अथ महालक्ष्मीपूजनं व्रतञ्च—भाद्रकृष्णाष्टमीमारभ्याश्विनकृष्णाष्टमीं यावन्महालक्ष्मीपूजनं व्रतञ्च । इयमष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या, तत्रैव पूजोक्तेः । परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव, अन्यथा पूर्वैव, तथा च स्मृतिः ।

**'पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा ।
त्रिमुहूर्त्तापि सम्पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी ।।' इति ।।**

हिन्दी—अब महालक्ष्मी का पूजन एवं उनके व्रत के सम्बन्ध में—

भादों कृष्ण अष्टमी से लेकर आश्विन कृष्ण अष्टमी पर्यन्त महालक्ष्मी पूजन एवं व्रत कहा गया है । यह अष्टमी चन्द्रोदय व्यापिनी ग्राह्य है । उसी में महालक्ष्मी की पूजा कही गई है । दूसरे दिन चन्द्रोदय के बाद अगर तीन मुहूर्त्त भी अष्टमी तो परयुता लक्ष्मी व्रत ही करना चाहिए ।

स्मृतिकार का कथन है—

यह अष्टमी पूर्वविद्धा हो या परविद्धा चन्द्रोदय व्यापिनी ही ग्राह्य है दूसरे दिन चन्द्रोदय के बाद तीन मुहूर्त्त भी अष्टमी हो तो वही व्रत करना चाहिए ।

मैथिली—आब महालक्ष्मीक पूजन एवं हुनक व्रतक सम्बन्ध में—

भाद्रपदकृष्ण अष्टमी सँ लऽकें आश्विन कृष्ण अष्टमी धरि महालक्ष्मीक पूजन एवं व्रत कहवैत अछि । ई अष्टमी चन्द्रोदय व्यापिनी ग्राह्य अछि । ताहि समय लक्ष्मीक पूजा कहलगेल अछि । दोसरो दिन यदि चन्द्रोदय व्यापिनी अष्टमी

होय एवं चन्द्रोदयक बाद कम सँ कम तीन मुहूर्त्त धरि अष्टमी होय तऽ परयुताग्राह्य अन्यथा पूर्वयुता पूजा करवाक चाही । स्मृतिक वचन सेहो अछि—

पूर्वविद्धा अष्टमी हो या परविद्धा ई अष्टमी सदिखन चन्द्रोदय व्यापिनी सेह ग्राह्य अछि । दोसरो दिन यदि चन्द्रोदय व्यापिनी अष्टमी भेंटय तथा चन्द्रोदयक वाद कम से कम तीन मुहूर्त्त धरि अष्टमी पावल जाय तखन ई अष्टमी परयुता ग्राह्य होयत अछि ।

विमर्श:—तद्यथा निर्णयसिन्धौ—

आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् । तत्र निर्णयाऽमृते पुराणसमुच्चये—

श्रियोऽर्चनं भाद्रपदे सिताष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये ।
समापयेत्तत्रतिथौ च यावत् सूर्यस्तु पूर्वार्द्ध गतो युवत्याः ।। इति ।

तत्रैव—कन्यागतेऽर्के प्रारभ्य कर्त्तव्यं न श्रियोऽर्चनम् ।
हस्तप्रान्त दलस्थेऽर्के तद्व्रतं न समापयेत् ।।
पूजनीया गृहस्थानामष्टमी प्रावृषि श्रियः ।
दोषैश्चतुर्भिः सात्यक्ता सर्वसम्पत्करी तिथिः ।।

तथा—पुत्र सौभाग्यराज्यायुर्नाशिनी सा प्रकीर्त्तिता ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन त्याज्या कन्यागते रवौ ।।
विशेषेण परित्याज्या नवमी दूषिता यदि ।।'

इति दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम्—

त्रिदिनेचावमेचैव अष्टमीं नोपवासयेत् ।
पुत्रहा नवमीविद्धा स्वघ्नी हस्तार्कगे रवौ ।। इति ।।

त्रिदिमावमदिनलक्षणम् च रत्नमालायाम्—

यत्रैकः स्पृशतिथि द्वयावसानं वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमार्यैः ।
यः स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चात्मां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयञ्चनेष्टम् ।।'

एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारम्भ विषयाः । मध्ये तु सतिसंभवे ज्ञेयाः । व्रतस्य षोडशाब्द साध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात् । इयं चन्द्रोदय व्यापिनी ग्राह्या; तत्रैवंपूजाद्युक्तेः । परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्त्त व्यापित्वे परैव कार्या, अन्यथा पूर्वैव ।

पूर्वावा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदय सदा ।
त्रिमुहूर्त्ताऽपि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनि ।।

इति मदनरत्ने, निर्णयामृते च संग्रहोक्तेः ।

अर्द्धरात्रमतिक्रम्य वर्त्तते योत्तरा तिथिः ।
तदातस्यांतिथौकार्य महालक्ष्मीव्रतं सदा ।।

इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ।

अथ जीवत्पुत्रिकाऽष्टमी—

आश्विनकृष्णाष्टमी जीवत्पुत्रिकाख्या । तथाहि भविष्ये—

इषे मास्यसिते पक्षे चाष्टमी या तिथिर्भवेत् ।
पुत्रसौभाग्यदा स्त्रीणां ख्याता सा जीवपुत्रिका ।।
शालिवाहनराजस्य पुत्रो जीमूतवाहनः ।
तस्यां पूज्यः स नारीभिः पुत्रसौभाग्यलिप्सया ।।'

इयमष्टमी प्रदोषव्यापिन्युपोष्या

'प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः ।
पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्रिकाम् ।।'

इति भविष्यपुराणात्। यद्युभयदिने प्रदोषव्याप्तिस्तदाऽपरेऽहन्येव प्रधान-कालानुरोधात् नवम्यधिकरणकपारणानुरोधाच्च पूर्वदिने व्रते तु वक्ष्यमाण-वचनेन अष्टम्यां पारणे दोषश्रवणेन तदन्ते निशिपारणे निषेधेन च उपवास-द्वयापपत्तिः यदि पूर्वेद्युः प्रदोषव्याप्तिर्न परेद्युरिति तदा पूर्वेद्युरेव प्रदोषानुरोधबोधकपूर्वोक्तवचनात् ।

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा प्रदोषे यत्र चाष्टमी ।
तत्र पूज्यस्सदा स्त्रीभी राजा जीमूतवाहनः ।।

इति विष्णुधर्मोत्तरीयाच्च । तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्रोऽप्येवम् । यत्तु ठक्कुरैः सप्तमीयुताऽष्टमी कर्तव्येत्यभिहितं तदपि गुरुमिश्रैकवाक्यत्वानुरोधेन पूर्वदिनमात्रे प्रदोषव्यापिन्यष्टमीविषयकमेव विधेयम् । पारणन्तु परदिने तिथ्यन्ते कार्यम् ।

'आश्विनस्यासिताष्टम्यां याः स्त्रियोऽन्नञ्च भुञ्जते ।
मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ।।'

इति भविष्यात् । विष्णुधर्मोत्तरे नवम्यां पारणविधानाच्च उभयदिने प्रदोषे तदव्याप्तौ (वा) उदयगामिन्यां (सूर्योदयगामिन्याम्) व्रतम् ।

'लक्ष्मीव्रतञ्चाभ्युदिते शशांके यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे ।
यत्रोदयं वै कुरुते दिनेशस्तदा भवेज्जीवितपुत्रिका सा ।।'

इति दामोदरमिश्रधृतवचनात् । दिनेशः सूर्यः । तथाचोभयदिने प्रदोषेऽ-ष्टम्यलाभे सूर्योदयकालीना यद्दिनेऽष्टमी तद्दिने जीमूतवाहनव्रतमिति तात्पर्यम्। एषैव व्यवस्था परमानन्दठक्कुरकृतवर्षपद्धतावपि, इति तिथिचन्द्रिकायां म०म० पक्षधरमिश्राः ।।

हिन्दी—आश्विन कृष्ण अष्टमी को जीवितपुत्रिका कहते हैं । भविष्य

पुराण में कहा गया है —आश्विन महीने के कृष्ण पक्ष में जो अष्टमी तिथि होती है । वह स्त्रियों के लिए पुत्र और सौभाग्यदायिनी होती है । इसे लोग जीवित पुत्रिका कहते हैं । शालिवाहन नाम का एक राजा था । उनके बेटे का नाम जीमूतवाहन था । पुत्र और सौभाग्य की कामना से औरतें इनकी पूजा करती हैं । यह प्रदोष व्यापिनी अष्टमी का व्रत करना चाहिए ।

'प्रदोष काल (संध्या के समय, प्रदोषोरजनीमुखम् इत्यमर:) रात्रि के प्रारंभ में नारियों के द्वारा जीमूतवाहन पूजनीय हैं । आंगन में चतुरस्त्रिका एवं पुष्करिणी (छोटा जलाशय) बनाकर पूजा करनी चाहिए ।' ऐसा भविष्य पुराण में कथन है—

यदि दो दिन प्रदोष व्यापिनी अष्टमी हो तो प्रधान काल के अनुरोध से दूसरे दिन वाली ही अष्टमी करनी चाहिए नवमी में पारण करना चाहिए इससे भी । यदि प्रथम दिन का व्रत किया जाता है तो आगे आनेवाले वचन के अनुसार अष्टमी में पारण करने से दोष सुना जाता है । यदि नवमी के अन्त में पारण करते हैं तो रात हो जाती है और रात में पारण का निषेध किया गया है । इस तरह पूर्व दिन के व्रत में आपत्ति द्वय सामने आती है । यदि पूर्व दिन ही प्रदोष व्यापिनी अष्टमी है दूसरे दिन नहीं तो प्रदोषानुरोध से पहले दिन की अष्टमी करनी चाहिए, पूर्वोक्त वचन से भी यही सिद्ध होता है ।

पहले दिन हो या दूसरे दिन प्रदोष व्यापिनी अष्टमी जहां हो, उसी दिन व्रत करना चाहिए । प्रदोष व्यापिनी अष्टमी में ही राजा जीमूतवाहन की पूजा नारियों को सदैव करनी चाहिए । विष्णु धर्मोत्तर के ये वचन हैं । तिथि चन्द्रिका में पक्षधर मिश्र भी ऐसा ही कहते हैं । ठक्कुर ने सप्तमीयुता अष्टमी करनी चाहिए ऐसा जो कहा है उसमें भी गुरु मिश्र की एक वाक्यता के अनुरोध से पूर्व दिन मात्र में प्रदोष व्यापिनी अष्टमी का ही विधान है । पारण दूसरे दिन तिथि के अन्त में करना चाहिए । क्योंकि, भविष्य पुराण का वचन है—

'आश्विनकृष्ण अष्टमी में जो औरतें अन्न खाती हैं वे निश्चित रूप से विधवा और अभागिनी होती हैं तथा उसकी सन्तान जीवित नहीं रहती हैं ।'

विष्णु धर्मोत्तर में नवमी में पारण का विधान है । यदि दोनों ही दिन प्रदोष काल में अष्टमी नहीं हो तो जिस दिन सूर्य का उदय अष्टमी में हो उसी दिन जीवितपुत्रिका व्रत करना चाहिए ।

'आश्विन कृष्ण अष्टमी की रात में जिस दिन चन्द्रोदय हो उस दिन लक्ष्मी व्रत होता है और जिस दिन आश्विन कृष्ण अष्टमी में सूर्योदय हो उस दिन जीवितपुत्रिका व्रत होता है ।'

दामोदर मिश्र ने इसका उल्लेख किया है । दिनेश अर्थात् सूर्य । तथा दोनों ही दिन प्रदोषकाल में यदि अष्टमी उपलब्ध नहीं हो तो जिस दिन अष्टमी तिथि में सूर्योदय हो उसी दिन जीमूतवाहन व्रत हो, इस श्लोक का यही तात्पर्य है । परमानन्द ठक्कुर कृत वर्षपद्धति में भी यही व्यवस्था है । तिथि चन्द्रिका में म.म. पक्षधर मिश्र का भी यही अभिमत है ।

मैथिली—आब जीवितपुत्रिका अष्टमीक सम्बन्ध में—

आश्विन कृष्ण अष्टमी जीवितपुत्रिका कहवैत अछि । भविष्यपुराण में—

आश्विन मासक कृष्णपक्ष में जे अष्टमी तिथि होयत अछि ओ स्त्रीगणकलेल अत्यन्त सौभाग्यदा एवं पुत्रदा होयत अछि । ई जीवपुत्रिका अर्थात् जितियाक नामें ख्यात अछि । राजा शालिवाहनक पुत्रक नाम जीमूतवाहन छलैन । पुत्र सौभाग्य प्राप्तिक इच्छा सँ स्त्रीलोकनिकलेल ई परमपूज्य छैथि ।

ई अष्टमी प्रदोष व्यापिनी उपोषणीय अछि—

यदि दुहू दिन प्रदोष व्यापिनी अष्टमी तिथि पावलजाय तऽ प्रधानकालक अनुरोधे दोसर दिनक प्रदोष व्यापिनी अष्टमी करवाक चाही । नवमी में ई व्रतक पारण करवाक अनुरोधो से ई सिद्ध होयत अछि । यदि पहिल दिनक प्रदोष व्यापिनी अष्टमीक व्रत कयल जाय तऽ दोसर दिन अष्टमी में पाणक प्रसंगे दोष सुनल जायत अछि ।

यदि कही तिथिक अन्त में पारण कयल जाय तऽ रात्रि में पारणक निषेध कयलगेल अछि । अहि तरहे उपवास द्वयापत्ति भऽ जायत अर्थात् दुई तरहक दोषभजायत अछि । यदि पहिल दिन प्रदोष व्यापिनी अष्टमी होय तथा दोसर दिन प्रदोषव्यापिनी अष्टमी उपलब्ध नहि होय तऽ एहन स्थिति में पहिल दिनक अष्टमी व्रत कयलेवाक चाही, पूर्वोक्त वचन सँ एववहि सिद्ध होयत अछि ।

'पहिल दिन हो या दोसर दिन, जाहि दिन प्रदोषकाल में अष्टमी पड़ैत होय ताही दिन स्त्री लोकनिंके राजा जीमूतवाहनक पूजा करवाक चाही ।'

ई विष्णु धर्मोत्तरक सेहो वचन अछि । तिथिचन्द्रिका में पक्षधर मिश्रोक सिद्धान्त एत वहि छैन्हि । जतऽधरि महेश ठाकुरक कथन छैन्हि जे सप्तमी युक्त अष्टमी करवाक चाही, तदपि गुरु मिश्रक एक वाक्यत्वक अनुरोध सँ पूर्व दिनमात्र में प्रदोष व्यापिनी अष्टमी विषयकें विधान अछि । मुदा व्रतक पारण दोसर दिन तिथिक अन्त में करवाक चाही ।

'आश्विन कृष्ण अष्टमीक दिन जे नारी अन्न खाइ छथि ओ निश्चित रूपेण अभागलि एवं विधवा होयत छथि । हुनक सन्तान नहि जीवैछन्हि ।' ई भविष्य पुराणक वचन अछि ।

विष्णुधर्मोत्तर में नवमी में पारणक विधान अछि । यदि दुहुदिन में कोनो दिन प्रदोष व्यापिनी अष्टमी नहि होय तऽ जाहि दिन सूर्यक उदय अष्टमी में होय ताही दिन जितियाक व्रत करवाक चाही ।

'आश्विन कृष्ण अष्टमीक जाहि राति में चन्द्रमाक उदय हो, ताही राति में लक्ष्मीक व्रत करवाक चाही । मुदा जाहि दिन अष्टमी में सूर्यक उदय हो ताहि दिन जितियाक व्रत करवाक चाही ।'

दामोदर मिश्रक ई वचन अछि । दिनेशक तात्पर्य सूर्य सँ अछि । अर्थात् दुहुदिन में कोनोदिन प्रदोष काल में यदि अष्टमी उपलब्धनहि होय, तऽ जाहि दिन अष्टमी तिथि में सूर्योक उदय हो ताही दिन जितियाक व्रत करवाक चाही । एत वहि व्यवस्था परमानन्द ठक्कुर कृत वर्ष पद्धतियो में अछि । एकर उल्लेख तिथि चन्द्रिका में म.म. पक्षधर मिश्र कयने छथि ।

विमर्शः—इयञ्चाष्टमी प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तथाहि भविष्ये—

प्रदोष समये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः ।
पुष्करणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्त्रिकाम् ।।

विष्णुधर्मोत्तरेप्यैवम् यत्तु—

'सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतश्चाष्टमी भवेत् ।'

'तत्र व्रतोत्सवं कुर्यात् न कुर्यादपरेऽहनि ।' इति तत्त्वचिन्तामणौ महेश ठक्कुरैरभिमतं तदपि गुरु मिश्रैक वाक्यत्वानुरोधात् पूर्व दिनमात्रे प्रदोष व्यापिन्यष्टमी विषयकमेवेत्यवसेयम् । पारणन्तु परदिने तिथ्यन्ते कार्यम् । उभयदिने प्रदोष व्याप्तौ तु उदय व्याप्त्यनुरोधात् पूर्वाह्ने तिथ्यन्ते पारणानुरोधादुपवासद्वयापत्यनुरोधाच्च परदिन एव व्रत पूजनञ्च । उभयत्र प्रदोषाव्याप्तौ तु यत्रोदयं वै कुरुते दिनेश । इत्यादि स्मृते-रुदव्यापिन्याऽष्टम्यामिति सर्वमतसिद्धोनिर्णयः इति ।

वस्तुतस्तु—'यास्त्रियोऽन्नं च भुज्यते' मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ।'' इति भविष्योक्त वचनस्य वज्रलेपत्वात् पूर्वदिने रात्रौ (ओंगठन) समये वा यदाऽष्टम्याः योगस्तदारभ्यैवान्नाशनाभावो विधेयः । व्रतारम्भस्तु उपर्युक्त रीत्यैव कर्त्तव्य इति । मिथिलायां मैथिल सम्प्रदाये सर्वमान्योऽयं सिद्धान्तः ।

अथ अन्वष्टकाश्राद्धम्—

नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः—

'अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् ।
पित्रादि मातृमध्यञ्च ततो मातामहान्तकम् ।।' इति ।

ब्रह्माणपुराणे—'पितृणां प्रथमं दद्यान् मातृणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहादीनामन्वष्टका इति क्रमः ।।'

तथा च प्रथमं पित्रादित्रयाणां ततो मात्रादितिसृणाम् ततो मातामहादि-त्रयाणामेवं नवपुरुषश्राद्धमन्वष्टकायां भवतीति भावः ।।

हिन्दी—नवमीतिथि में अन्वष्टका श्राद्ध होता है । कात्यायन का कथन है—

अन्वष्टका में नौ पिण्डों से श्राद्ध कहा गया है । आदि में पिता के बीच में माता के और अन्त में मातामह के पिण्ड का विधान है । इति ।

ब्रह्माणपुराण में—

पिता का पहले पिण्ड देना है, फिर माता का और बाद में नाना का, अन्वष्टका श्राद्ध का यही क्रम होता है ।

पहले पित्र्यादि तीन, फिर मात्रादि के तीन इसके बाद मातामहादिके तीन । कुल मिलाकर नौ का अन्वष्टका में श्राद्ध का विधान है ।

मैथिली—आब अन्वष्टका श्राद्धक सम्बन्ध में—

आश्विनकृष्ण नवमी तिथि में अन्वष्टका श्राद्ध होयत अछि ।

अहि सम्बन्ध में कात्यायनक कथन अछि—

अन्वष्टका श्राद्ध में नौटा पिण्ड होयत अछि । आदि में पितृनिमित्तक तीन, बीच में मातृपक्षीय तीन तथा अन्त में मातामहपक्षीय तीन, सबटा मिलाके नौटा पिण्ड होयत अछि ।

ब्रह्माण्डपुराणक वचन अछि—

प्रथमतः पितृनिमित्तक पिण्ड देवाक चाही तदनन्तर मातृनिमित्तक अन्त में मातामह निमित्तक पिण्ड देवाक चाही ।

तथा प्रथम पित्रादि तीन तत्पश्चात मात्रादितीन एवं अन्त मे मातामहादि तीन सभटा नौ पुरुषक अन्वष्टका में श्राद्ध होयत अछि, ई भाव अछि ।

विमर्शः—इयं नवमी पूर्वाह्नव्यापिनी ग्राह्या—'पूर्वाह्णेमातृकं ज्ञेयमिति' तिथि चन्द्रिकायां निर्णीतत्वात् । ('प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति साहचर्यात् प्रातरारभ्य सार्द्ध प्रहरं यावत् पूर्वाह्णम्)

कात्यायनः—अमावास्याव्यतीपातेपौर्णिमान्वष्टकासु च ।
विद्वान्श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपाद्यते ।।

श्राद्धसूत्रे—सर्वासामेवमातृणां श्राद्धं कन्यां गतेरवौ ।
नवम्यामेवकर्त्तव्यम् ब्रह्मलब्ध परा च सा ।

शातातपः—अन्वष्टकासुवृद्धौ च प्रतिसंवत्सरं तथा ।
अत्रमातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्रपतिना सह ।

एक मूर्त्तित्वमायाति सपिण्डीकरणे कृते ।
पत्नीपतिपितृणां तु तस्मातदंशेषु भागिनी ।।

बृहस्पतिरपि— स्वेनभर्त्तासमंश्राद्धं माताभुंक्ते सुधासमम् ।
पितामहो च स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामहो ।।

षड्त्रिंशन्मतेऽपि— एकत्वं सागताभर्त्तुः पिण्डेगोत्रेऽथ सूतके ।
सपृथक् पिण्ड दानन्तुतस्मात्पत्नीषु विद्यते ।।

तथा चतुर्विंशन्मतेऽपि—क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया ।
केचिदिच्छन्ति नारीणा पृथक् श्राद्धं महर्षयः ।।

तथा कात्यायनः— न योषिद्‌भ्यः पृथग् दद्यात् अवसानदिनाद्धते ।
स्वभर्तृपिण्डमात्रेण तृप्तिरासां यतः स्मृताः ।।

आवश्यकं श्राद्धादिविषये येषां पिण्डादिकं पितरो नाश्नन्ति तानाह यमः—

'नाश्नन्ति पिशुने देवा नाश्मन्त्य नृतवादिनि ।
भार्याजितस्य नाश्वन्ति यस्य चोपपतिगृहे ।'
नखरैरूपजातस्य न रक्ताम्बरवाससः ।। इति ।

अत्रदेवा इत्युपलक्षणम्, पितरोप्येवम्, स्मृत्यन्तरेदर्शनात् ।श्राद्धसमये शुक्लवस्त्रं धार्यमित्याह्व प्रचेताः—'श्राद्धकृच्छुक्लवासाः स्यादिति' ।

अन्वष्टकाश्राद्ध कर्मण्येव इयमष्टमी पूर्वाह्ण व्यापिनीग्राह्या । केवलं तन्निमित्तक ब्राह्मण भोजन मात्रे तु मध्याह्न व्यापिन्येवेतिनव्याः । वस्तुतस्तु केवल मात्राद्युदेश्यकं ब्राह्मणभोजनमपि श्राद्ध शब्देन अभिधीयते । तथा हि हेमाद्रिः—

होमश्च पिण्डदानञ्च तथा ब्राह्मण भोजनम् ।
श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिके ।।

एवञ्च मातृनवमीनिमित्तकं केवल ब्राह्मण भोजनमपि पूर्वाह्णे एव कर्त्तव्यम्, इति तत्त्वविदः । व्यवहारोऽपि सर्वत्रायमेव प्राय इति ।

अथ गजच्छाया—कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघायुक्तायां हस्तनक्षत्रगते सूर्ये गजच्छाया भवति । तथाहि वायुपुराणे—

'हस्ते सूर्ये स्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी ।
तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ।।'

अन्यच्च— 'कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुःकरे रविः ।
यदा तदा गजच्छाया श्राद्धं पुण्यमवाप्यते ।।'

अत्र वारनियमो नास्ति प्रापकाभावात्। दिवस एवैतादृशयोगे गजच्छाया न तु रात्रौ । तथा हि महाभारते—

दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन । इति ।

अत्र मधुघृतयुतपायसेन श्राद्धम् । तथा हि—

'सोऽस्माकं कुले जायाद्यो नो दद्यात् त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिभ्यां वर्षासु च मघासु च ॥'

पितृणामुक्तिरियं ब्रह्मपुराणे—

'अश्वयुज्यां तु कृष्णायां त्रयोदश्यां मघासु च ।
प्रावृड्तौ यमः प्रेतान् पितृंश्चापि यमालयात् ॥
विसर्जयति मानुष्ये कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ।
क्षुधार्त्ताः कीर्त्तयन्तश्च दुष्कृतं तु स्वयं कृतम् ॥
पायसं पुत्रपौत्रेभ्यः काङ्क्षन्तो मधुसंयुतम् ।
तस्मात्तत्र विधानेन तर्पयेत्पायसेन च ॥
मध्वाज्यतिलमिश्रेण तथा शीतेन चाम्भसा ।
ग्रासमात्रं परगृहाद् व्यक्तं यः प्राप्नुयान्नरः ॥
भिक्षामात्रेण यः प्राणान् सन्धारयति वा स्वयम्।
यो वा सम्बर्द्धयेद्देहं प्रत्यहं चात्मविक्रयात् ॥
श्राद्धं तेनापि कर्तव्यं तैस्तैर्द्रव्यैः स्वसञ्चितैः ।
नास्मात्परतरः कालः श्राद्धेष्वन्यत्र विद्यते ॥
यत्र साक्षाद्धि पितरो गृह्णन्त्यमृतमक्षयम् ॥'

ज्येष्ठपुत्रवता पिण्डरहितमेव श्राद्धम् कर्त्तव्यम् । 'मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ।' इत्यनिष्टश्रवणात् ज्येष्ठपदमत्र सर्वज्येष्ठपरमिति रसमाला । अत्र मघाधिकरणकश्राद्धमात्रेण पिण्डदाननिषेधः । सपिण्डनदिने मघासत्त्वे सपिण्डनपर्युदासापत्तेः, किन्तु मघानिमित्तके । तथा च मघापुरस्कारेण पार्वणं ज्येष्ठपुत्रिणा पिण्डरहितं कर्त्तव्यमिति शास्त्रार्थः । इति कृत्यमहार्णवः । तथाहि ब्रह्मपुराणे—

'सूतके मृतके चैव ग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः ।
छायायां कुञ्जरस्याथ भुक्त्वा तु नरकं व्रजेत् ।
प्रमादाद् ब्राह्मणो भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥'

एतेन ब्राह्मणस्य तत्र भोजने चान्द्रायणं, क्षत्रियादीनां पादपादहीनं तत्तदेव।

'विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये मतम् ।'

इति बृहद् विष्णुवचनात् । विशेषतो ब्राह्मणस्यैवोपादानाद् ब्राह्मणस्यैव प्रायश्चित्तमिति केचित् । चान्द्रायणप्रकारो मत्कृतप्रायश्चित्तव्यवस्थायाम् अवलोकनीयः ॥

हिन्दी—आश्विन कृष्णपक्ष त्रयोदशी यदि मघानक्षत्र युक्त हो तथा हस्तनक्षत्रगत सूर्य हों तो गजच्छाया होती है । जैसा कि वायुपुराण में कहा गया है—

सूर्य यदि हस्त नक्षत्र में हो तथा मघा नक्षत्र युक्त वह त्रयोदशी हो तो वह तिथि वैवस्वती नाम की होती है और उसे ही गजच्छाया कहते हैं ।

और दूसरा—आश्विन कृष्ण पक्ष त्रयोदशी में मघानक्षत्रगतचन्द्र तथा हस्तनक्षत्रगत सूर्य यदि हो तो गजच्छाया होती है, इसमें श्राद्ध करने से पुण्य की प्राप्ति होती है ।

यहाँ दिन का कोई नियम नहीं है । क्योंकि, उसमें प्रापक अर्थात् प्राप्त करने वाले का अभाव है । दिन में ही पूर्वोक्त योग रहने पर गजच्छाया होती है न कि रात में । महाभारत में लिखा है—

दिन में ही यह योग प्रशंसनीय होता है, रात में कदापि नहीं । इति ।

गजच्छाया में मधु, घी एवं पायस से श्राद्ध होता है । जैसा कहा है—

वर्षाकालीन मघा त्रयोदशी तिथि में मधु और घी मिली खीर जो हमारे कुल में जन्म लिए हैं उन्हें हमें देना चाहिए । पितरों का यह कथन है । ब्रह्मपुराण में—

मघा या अश्विनी नक्षत्र युक्त आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि में वर्षा ऋतु में यमराज प्रेतों को और पितरों को यमगृह से बाहर शून्य में छोड़ देते हैं। वे मनुष्य के आकार में भूख से तड़पते, अपने द्वारा किये गये दुष्कर्मों का वर्णन करते हुए, अपने बेटे, पोते से मधु मिली खीर पाने की कामना रखते हैं । इसलिए आश्विन कृष्ण त्रयोदशी में विधिपूर्वक खीर से उन्हें संतुष्ट करना चाहिए । मधु, घी और तिल मिली खीर तथा शीतल जल से पितरों को संतुष्ट करना चाहिए । जो व्यक्ति साफ तौर पर एक कौर अन्न दूसरे घर से पाता है अथवा भीख मांगकर जो अपना गुजारा करता हो, जो अपने आप को बेचकर अपनी देह का पालन करता हो, उन्हें भी अपने संचित द्रव्य से श्राद्ध करना चाहिए । इससे बढ़कर श्राद्ध का कोई सुन्दर समय और दूसरा नहीं होता । क्योंकि, इस समय पितर साक्षात् अक्षय अमृत ग्रहण करते हैं ।

बड़े बेटे वाले बाप को यहां पिण्ड रहित श्राद्ध करना चाहिए । मघा में पिण्ड दान करने से ज्येष्ठ पुत्र का विनाश सुना जाता है । ज्येष्ठ पद से यहाँ सबसे बड़े बेटे का वारक है ऐसा रसमाला में कहा गया है । मघानक्षत्र से सम्बन्धित हर तरह के श्राद्ध में पिण्ड दान का निषेध है । सपिण्डीकरण के

दिन यदि मघा नक्षत्र पड़ जाय तो सपिण्डीकरण की भी निषेधापत्ति होगी, किन्तु, वह मघा निमित्त ही होगी । और भी, ज्येष्ठ पुत्र वाले पुरुष को मघा नक्षत्र की सहचारिता के कारण पिण्ड रहित पार्वण श्राद्ध करना चाहिए, यही शास्त्र का अर्थ है । कृत्यमहार्णव में ऐसा ही उल्लेख है ।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है—

सूतक लगने पर किसी के मर जाने पर, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के अवसर पर तथा गजच्छाया में जो व्यक्ति भोजन करता है, वह नरकगामी होता है । आलस्यवश यदि ब्राह्मण ऐसे अवसर पर भोजन कर ले तो उसे चान्द्रायण व्रत करना पड़ता है ।

अत: ब्राह्मण यदि ऐसे अवसर पर भोजन करे तो चान्द्रायण व्रत के बाद उसे शुद्धि मिलती है । क्षत्रियादि को एक चरण हीन वही व्रत करना चाहिए ।

'ब्राह्मण को सम्पूर्ण चन्द्रायण करना पड़ता है और क्षत्रियों को एक चरण कम । यह वृहद्विष्णुवचन से प्रमाणित है । खाशकर ब्राह्मणों का उल्लेख होने से ब्राह्मणों के लिए ही यह प्रायश्चित्त कहा गया है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है । चान्द्रायण के भेद मेरे द्वारा रचित प्रायश्चित्त व्यवस्था में देखना चाहिए ।

मैथिली—एकरवाद गजच्छाया—

आश्विनकृष्णपक्षक त्रयोदशी तिथि यदि मघानक्षत्र युक्त हो तथा हस्तनक्षत्र गत सूर्य होय तऽ गजच्छाया योग होयत अछि । वायुपुराण में कहलगेल अछि—

हस्त नक्षत्र स्थित सूर्य होय, मघायुक्त हो तथा त्रयोदशी तिथि होय, तँऽ ओ तिथि 'वैवस्वती' कहवैत अछि, एकरे गजच्छाया कहल जायत अछि ।

दोसरो वचन अछि—

आश्विन कृष्ण पक्षक त्रयोदशी तिथि में मघानक्षत्रगत चन्द्रमा तथा हस्तनक्षत्रगत सूर्य यदि होय तऽ गजच्छाया होयत अछि । अहि अवसर पर पितरक श्राद्ध कयने पुण्यक प्राप्ति होयत अछि ।

प्राप्तकर्त्ताक अभाव भेने अहि में वार अर्थात् दिनक नियम नहि होयत अछि । गजच्छाया श्राद्ध दिने में होयत अछि राति में नहि । महाभारत में कहलगेल अछि—'गजच्छायायोग दिने में प्रशस्त अछि, राति में कथमपि नहि ।' गजच्छाया योग में मधु, घी मिलल खीर सँ श्राद्ध करवाक विधान अछि—

वर्षाऋतु में मघायुक्त आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि में घी एवं मधु मिश्रित खीर जे हमरा कुल में जन्मग्रहण कयने छथि हुनका देवाक चाही ।

पितरक ई उक्ति छैन्हि । ब्रह्मपुराण में—

मघा एवं अश्विनी नक्षत्र युक्त आश्विन कृष्ण त्रयोदशी वर्षा ऋतु में यमराज प्रेतगण एवं पितरलोकनिकें यमपुरी सँ छोडि दैत छथिन । ओ सब मनुष्य भय शून्य में भूख सँ अत्यन्त पीडितभय स्वयंकृत दुष्कर्मक वर्णन करैत पुत्र एवं पौत्र सँ मधुमिश्रित खीरक कामना करैत अपन अपन गांव नगर में भटकैत फिरैत छेथि । तॉय, अहि अवसर पर पितर लोकनिकें विधिपूर्वक मधु एवं घी मिश्रित खीर एवं शीतल पेय जल सँ सन्तुष्ट करवाक चाही । जे व्यक्ति मात्र एक कौर अन्न दोसर व्यक्तिक घर सँ प्राप्त करैत छथि, अथवा भीख मांगिकय अपन प्राणक धारण करैत छथि किम्वा प्रतिदिन अपना के बेचि अपन देहक संवर्द्धन करैत छथि, एहनो व्यक्ति के स्वसञ्चित धन सँ ई श्राद्ध करवाक चाही । श्राद्ध कलेल अहि सँ सुन्दर काल कोनो आन नहिं होयत अछि; कियैत तॅऽ अहि काल में निश्चित रूप सँ पितर स्वयं साक्षात् भय श्राद्धीय द्रव्य स्वीकार करैत छथि ।

जिनक बड़ बेटा छैन्हि हुनका पिण्ड रहित श्राद्ध करवाक चाही, मघा में पिण्ड दान कयने जेठ पुत्रक विनाश भऽ जायत छैक, एहन अनिष्ट सुनल जायत अछि । जेठ पदेन सबसँ जेठ पद अहिठाम लेल गेल अछि ई रसमालाक विचार अछि । अहिठाम मघा सँ सम्बन्धित हर तरहक श्राद्धक निषेध कयल गेल अछि । अहि नियम सँ तऽ सपिण्डीकरणक दिन यदि मघा नक्षत्र होय तऽ ओकरो में पिण्डदानक निषेधापत्ति भऽ जायत । किन्तु, ओ निषेध मघा निमित्त के हैत । जेठ पुत्रक पिता के मघानक्षत्र सह चारिताक कारणे पिण्ड रहिते पार्वण करवाक चाही, शास्त्रक एतवहि अर्थ अछि । ई कृत्यमहार्णवक सिद्धान्त अछि । ब्रह्मपुराण में—

सूतक भेने, ककरो मृत्यु भेला पर, चन्द्र एवं सूर्यग्रहणक अवसर पर गजच्छाया में जे कोनो गोटे अन्नक भक्षण करैत छथि, ओ निश्चित रूपेण नरक जायत छथि । प्रमादवश यदि कोनो ब्राह्मण अन्नभक्षण कयलथि तऽ उनका चान्द्रायण व्रत करवाक चाही ।

एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि ब्राह्मण यदि उक्त अवसर पर भोजन कयलथि तऽ हुनकालेल सम्पूर्ण चान्द्रायणक विधान अछि । क्षत्रियादि के एक चरणकम प्रायश्चित्त होयत छैक ।

'ब्राह्मण के सम्पूर्ण प्रायश्चित्त एवं क्षत्रियकलेल एक चरणहीन ।'

ई वृहद विष्णुक वचन अछि । ब्राह्मणक विशेष उल्लेखक कारणे ब्राह्मण कवेल ई प्रायश्चित्तक विधान अछि । ई कुछ लोकनिक विचार छैन्हि ।

चान्द्रायणव्रतक प्रकारक सम्बन्ध में हमर 'प्रायश्चित्त व्यवस्था' देखवाक चाही ।

विमर्शः—अत्र निर्णयसिन्धुधृतयमवचनानि—

हंसे करस्थिते या तु अमावास्याकरान्विता,
सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोब्रवीत् ।
वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखीभवेत्
गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ।।

भारतेयथा— अजेन सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः ।
हस्तिछायासु विधिवत्कर्ण व्यजन वीजितम् ।। श्राद्धं दद्यादितिशेषः ।

अन्यच्च यथा—इत्येवं पितृ यज्ञस्य यदाकर्त्तु न शक्नुयात् ।
स तदा वाचयेद्विप्रान् शाकल्यात्सिद्धिरस्त्विति ।।
सतिविभवे एवं न कृते वंशधननाशोऽपरत्र दुर्गतिरिति ।

चान्द्रायण व्रतविधानं प्रकारश्च यथा—

तत्र चन्द्रस्य कलाक्रमोपचयापचयवद् ग्रासस्य क्रमवृद्धिह्रासाभ्यामयनं चरणं यस्मिन् तच्चान्द्रायणं व्रतम् । तद्भेद प्रतिपादकानि प्रायश्चित्तमयूखधृत यमवचनानि—

वर्द्धयेत्पिण्डमेकैकं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ।
एतच्चान्द्रायणं नाम यवमध्यं प्रकीर्त्तितम् ।।
एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं शुक्ले च वर्द्धयेत् ।
एतत्पिमिलिकामध्यं चान्द्रायणमुदाहृतम् ।।
त्रींस्त्रीन् पिण्डान् समश्नीयात् नियतात्मा दृढव्रतः।
हविष्यान्नस्य वैमासमृषि चान्द्रायणं स्मृतम् ।।
चतुरः प्रातरश्मीयाच्चतुरः सायमेव च ।
पिण्डानेतद्धि बालानां शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ।।
पिण्डानष्टौ समश्नीयान्मासं मध्यन्दिने रवौ ।
यतिचान्द्रायणं ह्येतत्सर्वकल्मषनाशनम् ।।
यथा कथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतिः समाहितः ।
मासेनाश्नन् हविष्यस्य चन्द्रस्येति सलोकताम् ।।

एभिर्वचनैस्तस्य षड्विधत्वम्-यवमध्य-पिपीलिकामध्य-ऋषिचान्द्रायण-शिशुचान्द्रायण-यतिचान्द्रायण-सामान्यचान्द्रायणभेदात् ।

तथा तद्भेदाः उक्ताः मनुना—

अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान्मध्यन्दिने गते ।
नियतात्मा हविष्याशी यति चान्द्रायणं चरेत् ।।
चतुरः प्रातरश्नीयात् पिण्डान् मध्यन्दिनेगते ।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ।।
यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ।
मासेनाश्नन् हविष्यस्य चन्द्रस्येति सलोकताम् ।।

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ।
उपस्पृशैस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ।।
एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ।।

अत्रादितश्चतुर्भिः श्लोकैः क्रमेण पिपीलिका मध्य-यवमध्य-यति चान्द्रायण-शिशुचान्द्रायणेति चत्वारो भेदाः । परन्तु 'यथा कथञ्चित पिण्डाना'मित्यादि योगि-याज्ञवल्क्यवचनस्यानुसारेण सामान्यचान्द्रायणमित्यर्थः स्यात्तदा मनुमतेनाऽपि पञ्चभेदाः सिद्धाः । विशेषचान्द्रायणव्रतविषये प्रायश्चित्त व्यवस्थायामवलोकनीयः प्रायश्चित्त-मयूखेऽपि च द्रष्टव्यः ।।

अथ श्राद्धकालः—शुक्लपक्षस्य पार्वणं पूर्वाह्ने कृष्णपक्षस्य चापराह्ने । तथा च मार्कण्डेयः—

'शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।
कृष्णपक्षेऽपराह्ने च रौहिणं न तु लङ्घयेत् ।।'

इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ अक्षयतृतीयाप्रकरणं रौहिणामित्येकोद्दिष्ट-परमिति श्राद्धरत्ने लक्ष्मीपतिः ।।

हिन्दी—शुक्लपक्ष में दोपहर दिन के पहले तथा कृष्णपक्ष में दोपहर दिन के बाद पार्वण श्राद्ध करना चाहिए । मार्कण्डेय का वचन है—

बुद्धिमान् व्यक्ति को शुक्लपक्ष के पूर्वाह्ण में श्राद्ध करना चाहिए । इसी तरह कृष्णपक्ष के अपराह्न में श्राद्ध करना चाहिए । किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि रौहिण अर्थात् दिन के नवम मुहूर्त्त का लङ्घन नहीं होना चाहिए ।

ऐसा तत्त्वचिन्तामणि में कहा गया है । अक्षय तृतीया प्रकरण में 'रौहिणम्' का प्रयोग एकोद्दिष्ट परक है— इसका उल्लेख श्राद्ध रत्न में लक्ष्मीपति ने किया है ।

मैथिली—श्राद्धकाल—

शुक्ल पक्षक पार्वण पूर्वाह्ण में तथा कृष्ण पक्षक पार्वण अपराह्न में होयवाकचाही । मार्कण्डेय पुराण में कहलगेल अछि—विचक्षण लोकनि कें शुक्लपक्षक पूर्वाह्ण में तथा कृष्ण पक्षक अपराह्न में पार्वण करवाक चाही । किन्तु अपराह्ण में 'रौहिण' अर्थात् दिनक नवम मुहूर्त्तक लङ्घन नहि होयवाक चाही ।

तिथितत्त्वचिन्तामणि में एकर उल्लेख अछि । अक्षय तृतीया प्रकरण में रौहिण शब्द एकोद्दिष्ट परक मानलगेल अछि । ई श्राद्धरत्न में लक्ष्मीपतिक कथन छैन्हि ।

अथ श्राद्धकालमाह—

'पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धं पराह्णे तु पैतृकम् ।
एकोद्दिष्टं तुं मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ।।'

पूर्वाह्णे इति सार्द्धप्रहरं यावत् । तच्च गोपूजाप्रकरणे वक्ष्यते । मातृकमन्वष्टका पैतृकं पार्वणम् । एकोद्दिष्टमाद्यश्राद्धादीति श्राद्धरत्ने लक्ष्मीपतिः । मध्याह्ने कुतुपे । कुतुपकालमाह—

'द्वौ यामौ घटिकान्यूनौ द्वौ यामौ घटिकाधिकौ ।
स कालः कुतुपो ज्ञेयः पितृणां दत्तमक्षयम् ।।'

विशेषमाह रत्न मालायाम्—

'दिनस्य यः पञ्चदशो विभागो रात्रेस्तथा तद्धि मुहूर्तमानम्' इति । तथा च दिनमानस्य पञ्चदशमो विभागो दिनमुहूर्त एवं रात्रावपीत्यर्थः । तत्राष्टमो मुहूर्तः कुतुपः नवमो रौहिणः । तथाहि—

'अह्नो मुहूर्त्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।
तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः सः कालः कुतुपः स्मृतः ।।

प्रातःकालादिमाह—

'प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव हि ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराहणस्ततः परम् ।।
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।।'

ततः परमिति मुहूर्त्तत्रयमितिशेषः । उभयदिने कुतुपस्यलाभे अथवा पूर्वदिने रौहिणस्योत्तरदिने कुतुपस्तदोभयत्र पूर्वदिन एवैकोद्दिष्टं, विहितत्वा-विशेषात् कपालाधिकरणन्यायात् । यदि च कुतुपमुहूर्त्ते एकस्मिन्नपि दिने क्षयतिथिर्न लभ्यते तदा रौहिणे श्राद्धं रौहिणमुल्लंघ्य न कर्तव्यम् ।

'रौहिणं तु न लङ्घयेत्' इति वचनादिति ।।

हिन्दी—अब श्राद्ध का समय बतलाया गया है—

दिन के पहले पहर में मातृपक्षीय तथा दिन के पिछले पहर में पितृपक्षीय श्राद्ध करना चाहिए । प्रातः वृद्धि निमित्तक दोपहर दिन में एकोद्दिष्ट करना चाहिए । पूर्वाह्न से तात्पर्य है डेढ़ पहर दिन तक अर्थात् सूर्योदय के बाद साढ़े चार घंटे तक । इसे हम गोपूजा प्रकरण में कहेंगे । मातृपक्ष से सम्बन्धित अन्वष्टका, पितरों के सम्मान में अनुष्ठित पार्वण तथा आद्य श्राद्ध से सम्बन्धित एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है । ऐसा श्राद्ध रत्न में लक्ष्मीपति ने

कहा है । दोपहर दिन में कुतुप श्राद्ध कहलाता है । कुतुप काल के सम्बन्ध में कहा गया है ।

दो याम अर्थात् तीन घंटे का एक याम होता है । (सूर्योदय से लेकर १२ घंटे तक का समय) एक घटिका (चौबीस मिनट का समय) कम और दो याम से २४ मिनट अधिक के समय को कुतुप काल कहा गया है । इस समय पितरों के निमित्त दी गई वस्तु अक्षय होती है ।

इस सन्दर्भ में रत्नमाला में विशेप रूप से कहा गया है ।

दिन का १५वाँ भाग उसी तरह रात के १५वों भाग को एक मुहूर्त्त (४८ मिनट) का समय माना गया है तथा सम्पूर्ण दिनमान का १५वाँ विभाग उसी तरह रात्रिमान का १५वाँ विभाग क्रमशः दिन मुहूर्त्त एवं रात्रि मुहूर्त्त होता है, यही इसका अर्थ है । इसका आठवाँ मुहूर्त्त कुतुप् काल होता है । नवम् मुहूर्त्त रौहिण कहलाता है । जैसे—

दिनमान सदैव पन्द्रह मुहूर्त्त (अर्थात् बारह घंटे) का माना गया है । इसका आठवाँ मुहूर्त्त कुतुप काल कहा गया है ।

प्रातः काल्यादि के बारे में कहा गया है—

प्रातःकाल के तीन मुहूर्त्त को सङ्गतकाल कहा गया है । (अर्थात् प्रातः स्नान के तीन मुहूर्त्त बाद का समय जो दिन के पाँच भागों से दूसरा है, और जब गायें दुहने के बाद चरने के लिए ले जाई जाती हैं; उसी समय को सङ्गव काल कहा गया है) तीन मुहूर्त्त का दोपहर होता है, उसके बाद का समय अपराह्न कहलाता है । तीन मुहूर्त्त का सायंकाल होता है । उसमें श्राद्ध नहीं करना चाहिए ।

उसके बाद तीन मुहूर्त्त सायंकाल का अर्थ है । यदि दोनों दिन में कुतुप काल मिले अथवा पहले दिन में रौहिण के बाद दूसरे दिन कुतुप काल हो तब दोनों दिन में पहले दिन ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए । कापालाधिकरण न्याय से यह विहित माना गया है । यदि कुतुप मुहूर्त्त में एक भी दिन में क्षय तिथि उपलब्ध नहीं हो तब रौहिण में श्राद्ध करना चाहिए । रौहिण का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए । ऐसा वचन है—'रौहिणन्तु न लङ्घयेत् ।'

मैथिली—आवश्राद्धकाल कहल गेल अछि—

पूर्वाह्ण में मातृपक्षीय श्राद्धकरवाक चाही तथा अपराह्ण में पितर सम्बन्धी श्राद्ध करवाक चाही । प्रातः वृद्धिनिमित्तक एकोदिष्टश्राद्ध मध्याह्न में करवाक चाही ।

पूर्वाह्ण में डेढ़ पहर धरि श्राद्ध करवाक चाही । अहि सम्बन्ध में गोपूजा प्रकरण में हम कहव । मातृपक्षीय श्राद्ध अन्वष्टका होयत अछि । पितर सम्बन्धी पार्वण श्राद्ध होयत अछि । एकोद्दिष्ट आदिश्राद्ध होयत अछि । श्राद्ध रत्न में लक्ष्मीपतिक ई कथन अछि । आब कुतुपकालक सम्बन्ध में कहैत छी—

दुई याम अर्थात् छः घंटा में एक घटिका अर्थात् २४ मिनट कम एवं २४ मिनट अधिक, ई समय कुतुपकाल कहलगेल अछि । अहि समय पर पितर निमित्तक देल दान अक्षय होयत छैक ।

रत्नमाला में अहि पर विशेषरूप सँ कहलगेल अछि—

दिनक जे पन्द्रहवाँ भाग तथा तहिना रातुक पन्द्रहवाँ भाग एक मुहूर्त्त अर्थात् ४८ मिनटक समय कहवैत अछि । एह मुहूर्त्तमान भेल । अहिना सम्पूर्ण दिनमानक पन्द्रहवाँ विभाग दिन मुहूर्त्त एवं रातुक पन्द्रहवाँ भाग रात्रि मुहूर्त्त कहवैत अछि । ताहि में आठम मुहूर्त्त कुतुप कहवैत अछि तथा नवम मुहूर्त्त रौहिण कहवैत अछि जेना—

सदिखन सब तरहें पन्द्रह मुहूर्त्तक दिन मानलगेल अछि । ताहि पन्द्रह मुहूर्त्तक मध्य आठम मुहूर्त्त कुतुपकाल भेल । आव प्रातः कालादिक विवेचन अहि तरहें कहलगेल अछि—

प्रातः तीन मुहूर्त्त यावतकाल धरि अछि तावते सङ्गव काल होयत अछि । सङ्गवकाल अर्थात् प्रातः स्नानक तीन मुहूर्त्त वादक समय जे दिनक पाँच भाग में दोसर भाग अछि एवं जखन दुहलाक वाद गाय सभके चरऽलेल चरवाहा लय जायत अछि सेह सङ्गवकाल होयत अछि । एकरवाद तीन मुहूर्त्तक मध्याह्न काल होयत अछि । तत्पश्चात् अपराह्ण काल होयत अछि । तकर वाद तीन महूर्त्तक सायंकाल होयत अछि । अहि सान्ध्यवेला में श्राद्ध नहि करवाक चाही ।

'ततः परम्' एकर तात्पर्य मुहूर्त्तत्रय मात्र अछि । दुहू दिन यदि कुतुप भेटात अथवा पहिल दिन में रौहिणक उत्तरवर्त्ती दिन में कुतुपकाल होय तऽ पहिल दिन में एकोद्दिष्ट करवाक चाही । कापालाधिकरण न्याय सं विहितत्त्वाविशेष कहलगेल अछि । यदि कुतुप मुहूर्त्त में एकोदिन क्षयतिथिक प्राप्ति नहि होय तखन रौहिणा में श्राद्ध करवाक चाही । रौहिण के छोड़िकय श्राद्ध नहि करवाक चाही । 'रौहिणन्तु न लङ्घयेत्' एहन वचन अछि ।

विमर्शः—श्राद्धकालमाह—

मार्कण्डेयः— शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्यात् विचक्षणः ।
कृष्णपक्षेऽपराह्णे च रौहिणं न तु लङ्घयेत् ।।

महामहोपाध्यायनरहरिकृतद्वैतनिर्णये—

मुहूर्त्तमात्राह्नः पञ्चदशो पञ्चदशोभागस्तेन पञ्चदशविभक्तस्यान्हि अष्टमो मुहूर्त्त-

स्त्रिंशत् दण्डात्मकदिने चतुर्दशदण्डानन्तरं दण्डद्वयात्मकः कालः कुतुपकालस्तत्रैको दिष्टारम्भोऽनन्तफलद इति तथा चोक्ते ब्रह्माण्डपुराणे—

समाहनि तथा रात्रौ मुहूर्त्ता वै द्विनाडिकाः ।
ह्रासवृद्धित्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमात् ।।

सन्ध्यामुहूर्त्तमात्रस्तु ह्रासवृद्धिस्तु सा स्मृता (अ. २१ श्लो० ११८) ।

एभिः प्रमाणैरिष्टदिनमानस्य पञ्चदर्शोशोमुहूर्त्तः, स च, त्रिंशदधिके दिनमाने दण्डद्वयाधिकः । त्रिंशदल्पे तु दण्डद्वयाल्पो न तन्मानमैकरूपं दिनस्य न्यूनाधिकत्वात् । केवलं सायं विषुवदिने दिनरात्र्योः समत्वात् घटिकाद्वयपरिमितौ भवत्यन्यत्र नेति श्राद्धयात्रादौ एवमेव कर्त्तव्यमिति ।

यदि पूर्वदिने नवम (रौहिण) मुहूर्त्तानन्तरं क्षयतिथिः, परदिने अष्टम (कुतुप) मुहूर्त्तात्प्रागेव विरमति, ततोभय दिनेऽपि कुतुपरौहिणमुहूर्त्तयोः अपतनात् परदिने सङ्गमेऽपि कर्त्तव्यम् । रौहिणं न तु लङ्घयेत्' इत्यनेन रौहिणान्तावध्येव मुख्यश्राद्ध समयकथनात्, तथामुख्यस्य कुतुपस्यालाभे तत्पूर्वकाले गौणोऽपि कर्त्तव्यमेवेति सकलस्मृतिसम्मतिः । तथोक्तं श्राद्धविवेके—'ऊर्ध्वमुहूर्त्तात्कुतुपाद्यं मुहूर्त्तचतुष्टयम् । मुहूर्त्तपञ्चकं चापि स्वधावाचनमिष्यते मुहूर्त्तपञ्चकं कुतुपात्पूर्वं कुतुपात्परं मुहूर्त्तचतुष्टयं कुतुपश्चेत्येवं दशमुहूर्त्ताः श्राद्धकालः । उभयदिने कर्मयोग्यकाललाभे पूर्वदिन एव कार्यम् ।

तथोक्तं स्मृतिसारे—

'दर्शञ्च पौर्णमासं च पितुः साम्वत्सरं दिनम् ।
पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ।।'

अथ निर्णयसिन्धूद्धृतयाज्ञवल्क्यवचनम्—

अमावास्याऽष्टकां वृद्धिः कृष्णपक्षेऽयनद्वयम् ।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत् सूर्यसंक्रमः ।।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।
श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालः प्रकीर्त्तितः ।।'

तत्रैव दक्षवचनम्—

मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च संशयः ।
न जीवत्पिण्डकः कुर्यात् गुर्विणीपतिरेव च ।।

तथा च मात्स्ये— विष्णोर्देहसमुदभूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।
श्राद्धस्य रक्षणायालभेत प्राहुर्दिवौकसः ।।

अथ हस्तार्के खञ्जनदर्शनम्—तत्र दर्शनमन्त्रौ—

'नीलकण्ठ शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद ।
पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ।।

त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्वमदृश्यतामेषि शिखोद्गमेन ।
संदृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां त्वं खञ्जनाश्चर्यं नमो नमस्ते ।।'

दर्शनफलमाह तिथितत्त्वे—

'अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु
राज्यप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु ।
भस्मास्थिकेशतुषलोमनखेषु दृष्टो
दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः ।।

वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं
याम्यामग्निभयं सुरारिकलहो लाभस्समुद्रालये ।
वायव्यां वरमन्नवस्त्रविभवं दिव्याङ्गना चोत्तरे
ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने ।।

ब्रह्मणि आकाशे 'खं ब्रह्म' इति श्रुतेः । शक्रे पूर्वदिशि दर्शन इति शेषः, हुताशेऽग्निकोणे, याम्यां दक्षिणे, सुरारि नैर्ऋत्यकोणः, समुद्रालये पश्चिमे ।।

हिन्दी—अब हस्तनक्षत्रगत सूर्य की स्थिति में खञ्जन के दर्शन । दर्शन के दो मन्त्र—

हे नीलकण्ठ, हे सुन्दर गर्दन वाले, हर तरह की इच्छा की सम्पूर्ति करने वाले, इस धरती पर तुमने अवतार लिया है । हे खञ्जन पक्षी मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

तुम योग से जुड़े हो, मुनिपुत्र हो, तुम्हारे सिर पर चोटी निकल आने के कारण तुम लोक दृष्टि से ओझल हो गये हो । फिर, वर्षा ऋतु के निकल जाने के बाद आश्चर्यजनक ढंग से तुम लोगों को दिखलाई पड़ते हो । हे खञ्जन, तुम्हें नमस्कार है ।

तिथितत्त्व में दर्शन का फल कहा गया है—

कमल पर, गाय पर, हाथी, घोड़ा, बड़े सांप एवं कोमल हरी-हरी घास पर अगर खञ्जन दर्शन हो तो राज्यलाभ हो या हर तरह की कल्याणप्रद वस्तु प्राप्त हो । यही खञ्जन पक्षी यदि राख, हड्डी, कटे केश, अनाज की भूसी, मनुष्य एवं जानवरों की देह पर उगने वाले बाल पर तथा हाथ पैर के कटे नाखून पर दिखलाई पड़े तो अनेक तरह के दुःख देने वाले होते हैं । आकाश में दीखने पर धन, दौलत अनेक तरह की सम्पदायें प्राप्त होती हैं । पूर्व दिशा में दिखलाई पड़े तो कार्य की अतुलनीय सिद्धियाँ मिलती हैं । अग्निकोण में दिखलाई पड़े तो डर लगे । दक्षिण में दीख पड़े तो लाभ हो, वायव्यकोण में

दिखने पर सुन्दर अन्न, वस्त्र एवं वैभव की प्राप्ति होती है । उत्तर दिशा में दिखने पर सुन्दर स्त्री का लाभ हो, ईशान कोण में दिखने पर निश्चित रूप से मरण होता है । खञ्जनदर्शन के ये दिग्लक्षण कहे गये हैं ।

'खम्ब्रह्म' इस श्रुति के आधार पर ब्रह्मणि का अर्थ आकाश में हुआ, शक्रे का अर्थ पूर्व दिशा है । हुताश का अर्थ अग्नि कोण, याम्य का अर्थ दक्षिण, सुरारि का अर्थ नैऋत्य कोण, समुद्रालय का अर्थ पश्चिम दिशा होता है ।

मैथिली—हस्तार्क में खञ्जनक दर्शन । दर्शन करवाक दुईटा मन्त्र—

हे नीलकण्ठ, हे शुभग्रीव, सभ तरहक कामनाक फल देनिहार, अहाँ अहि धरती पर अवतरित भेल छी, हे खञ्जन अहाँ कें हम नमस्कार करैत छी ।

अहाँ योगयुक्त छी, मुनिक पुत्र छी, माथ पर टीक निकललाक कारणे लोक दृष्टि में अहाँ अदृश्य छी । वर्षाऋतु के बीति गेलाक बाद शरदऋतु में आश्चर्य जकाँ अहाँक दर्शन लोक सभकें होयत छैक ताँय अहाँ के हम नमस्कार करैत छी ।

तिथितत्त्व में खञ्जन दर्शनक फल कहलगेल अछि—

कमलक फूल, गाय, हाथी, घोड़ा, एवं पैघ साँप पर बैसल जों खञ्जनक दर्शन होय तऽ ओकरा राज्य भेटय । पवित्र घास पर जो देखि पड़य तऽ कल्याणप्रद मानल जायत अछि । भस्म, हाड़, माथक काटल केश, धानक भुस्सी या अन्नक भुस्सा, लोम, तथा नख पर बैसल खञ्जनक दर्शन भेला पर अनेक तरहक कष्ट भोगऽ पड़ैत छैक ।

आकाश में उड़ैत खञ्जन जो देखी तऽ वित्त भेटय, पूरब दिशि देखने कार्यक अतुल सिद्धि होय । अग्निकोण में देखने भय छोय, दक्खिन दिशि देखने आगिक भय होय, नैऋत कोण में देखने कलह होय, पश्चिम में देखला पर लाभ होय, वायव्य कोण में देखने सुन्दर अन्न, वस्त्र एवं विभव भेंटय, उत्तर दिशि देखने दिव्याङ्गना भेंटय, ईशान कोण में बैसल खञ्जन देखने देखनिहारक मृत्यु निश्चिय रूप सँ होय, ई खञ्जन दर्शनक दिग्लक्षण भेल ।

ब्रह्मणि: = आकाश में, 'खम्ब्रह्म' ई श्रुतिक वचन अछि । शक्रे = पूरब दिशि दर्शन ई शेष बुझवाक चाही । हुताशे = अग्निकोण में, याम्याम् = दक्षिण में, सुरारि = नैर्ऋतकोण, समुद्रालये = पश्चिम में ।

विमर्श:—अथ दुष्टदिक्स्थानदृष्टखञ्जनस्य शान्ति:—

अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं द्विजगुरुसाधुसुरार्चने रत: ।
न नृपतिरशुभं समाप्नुयान्न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक् ॥

नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे खगमवलोक्य महीतले विदध्यात् ।
सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं शुभमभिनन्दति चैवमेति वृद्धिम् ।।

संख्यापरिमाणेऽनिष्टखञ्जनदर्शने कर्त्तव्यतोक्ता—

मांसं न भुञ्जीत शयीत भूमौ स्त्रियं न सेवेत दिनानि सप्त ।
स्नायाज्जपेत्संजुहुयाच्च वह्नौ पैष्टं पुमान् खञ्जनमर्चयेच्च ।।

तत्र खञ्जनदर्शने बृहत्संहितायाम्—

खञ्जनको नामाऽयं यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे ।
प्रोक्तानि यानि मुनिभिः फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ।।

अथखञ्जनस्य चत्वारोभेदाः—

भद्रसम्पूर्णरिक्त गोपीत संज्ञकाः । तल्लक्षणं यथा—

यः स्थूल उन्नतकालः कृष्णग्रीवः सः भद्रसंज्ञः कल्याण करोति । यस्य गलान्मूर्द्ध पर्यन्तं कृष्णवर्णः स सम्पूर्ण संज्ञोदृष्टः सँल्लोकस्याशां पूरयति । यस्य च गले कृष्णः कृष्णो बिन्दुः, करटान्तौ सितौ स रिक्त संज्ञौ रिक्तकृदसावशुभः । यः पीतवर्णः सगोपीसंज्ञको दृष्टः सन्क्लेशकरः ।

अथ कुत्रदृष्टः श्रियं दिशति! मधुर-सुरभि-फल-कुसुम-तरु-जलाशय-करि-तुरग-भुजगानां शिरसि, देवप्रसादोद्यान-हर्म्येषु गो-गोष्ठ-सत्सङ्गस्थल-यज्ञोत्सवभूपविप्रसमीपे गजाश्वशालाच्छत्रध्वजचामरोपरि हेमसमीपसिताम्बर कमलोत्पलपूजितोपलिप्तभूमिषु दधिपात्रधान्यराशिषु दृष्टो लक्ष्मीं ददाति ।

अथ स्थलभेदेन फलभेदाः—

पङ्के स्यादन्नप्राप्तिः । गोमये दुग्ध दधिलाभः । शद्वले वस्त्राप्तिः । शकठोपरि दृष्शादेशभ्रंशकरः । गृहपटले धननाशकरः । चर्मतन्तौ बन्धनम् । अपवित्रस्थले रोगः । अजमेषपृष्ठे प्रियजनसङ्गः। महिषोष्ट्रखरोपरि, अस्थिश्मशानगृहकोणशर्कराट्टप्राकारभस्म-केशेषु दृष्टो मरणरोगभयदो भवति ।

'पक्षौ धुन्वन्नशुभः पिबन् वारि निम्नगानिकटे ।
सूर्योदये प्रशस्तो नेष्टफलः खज्जनोऽस्तमये ।।'

यत्र स मैथुनं करोति, तत्र भूमितलनिधिः । यत्र वमति, तत्र काचोऽस्ति । यत्र मलत्यागं करोति, तत्राङ्गारम् । मृतखञ्जनदर्शने मरणम् । विकले दृष्टेऽङ्गवैकल्यम् । छिन्नशरीरे दृष्टिेऽङ्गच्छेदः । रोगिते रोगः । आलयम् प्रविशन् धनकृत् । वियत्युड्डीयमानेऽवलोकिते बन्धुसमागमो भवेत् । आदौ यस्मिन् दिने तद्दर्शनं जातम्, तत्फलं वर्ष पर्यन्तम्। प्रतिदिनं यद्दर्शन फलं तद्दिनशेषसमय एव भवति इति कश्यपेनोक्तम् ।

प्रथमे दर्शने पाकमावर्षात् प्रवदेद् बुधः ।
प्रतिदैवसिके वाच्यं दर्शनेऽस्तमये फलम् ।।

अथ आश्विनशुक्लप्रतिपदि कलशस्थापनम् । तच्च पूर्वाह्णे उभयदिने पूर्वाह्णे प्रतिपल्लाभे द्वितीयायुक्तायामेव तत्कार्यम्, नत्वमावास्यायुक्तायां प्रतिपदि । तथाहि देवीपुराणे—

'यो मां पूजयते भक्त्या द्वितीयायां गुणान्विताम् ।
प्रतिपच्छारदीं पूजां सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ।।
यदि कुर्यादमायुक्त प्रतिपत्स्थापनं मम ।
तस्मै शापायुतं दत्त्वा तस्य शेषं करोम्यहम् ।।
आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम ।
तस्य सम्पद्विनाशः स्याज्ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ।।'

द्वितीयायां द्वितीयायुतायाम् अमा अमावास्या । तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

'अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।
मुहूर्त्तमात्रा कर्त्तव्या द्वितीयायां गुणान्विता ।। इति ।

द्वितीयायां द्वितीयायुक्तायां, मुहूर्त्तमात्रा मुहूर्त्तान्न्यूना, तत्रैव परदिने प्रतिपदोऽत्यन्तासत्त्वे दर्शयुक्ता पूर्वैव ग्राह्या इति ठक्कुरः । अत्यन्तासत्त्वं मुहूर्त्तोनत्वम् मुहूर्त्तपर्यन्तमपि उत्तरदिने प्रतिपल्लाभे उत्तरदिने एव कार्यम् पूजा तत्र संक्षेपतोऽपि कार्या ।

'सम्यक्कल्पोदिता पूजा यदि कर्त्तुं न शक्यते ।।'

इत्यादि संक्षेपपूजा कथितेत्यन्त कालिकापुराणात् तिथिमले तु न कार्यम् ।

'षष्टिदण्डात्मिकायाश्चतिथेर्निष्क्रमणेऽपरे ।
अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं बिना ।।'

इति वचनात् । अपरे परदिने, निष्क्रमणे तथा च पूर्वदिने षष्टि-दण्डात्मिका भूत्वा परदिने सैव तिथिः किञ्चिद्दण्डात्मिका सैव द्वितीयदिने तिथिमलत्वात्त्याज्येति भावः । द्वितीयायोगनिषेधकानि यानि यानि वचनानि पठन्ति तानि तानि मुहूर्त्तन्यूनप्रतिपद्विषयाणि तिथि मलप्रतिपद् विषयाणि च बोध्यानि, मुहूर्त्तं तु दिनमानस्यपञ्चदशमो भाग इत्युक्तं प्राक् ।

हिन्दी—अब आश्विनशुक्ल प्रतिपदा को कलषस्थापन के सम्बन्ध में—

यह कलश स्थापना पूर्वाहन में ही कर्त्तव्य है । यदि दो दिनों में पूर्वाहन में प्रतिपदा उपलब्ध हो तो द्वितीया युक्त प्रतिपदा माननी चाहिए । अमायुक्त प्रतिपदा नहीं करनी चाहिए । देवीपुराण में कहा गया है—

जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक शरद ऋतु में गुणान्वित द्वितीया युक्त प्रतिपदा को मेरी पूजा करता है वह अक्षय सुख भोगता है ।

यदि अमावास्या युक्त प्रतिपदा से मेरी पूजा प्रारम्भ करता है, तो उसे मैं हजारों श्राप से विनष्ट कर देती हूँ ।

आग्रह पूर्वक जो अमायुक्त प्रतिपदा के दिन कलश की स्थापना करता है उसकी सम्पत्ति विनष्ट हो जाती है । उसका बड़ा बेटा मर जाता है । इति ।

द्वितीयायाम् अर्थात् द्वितीयायुक्त, अमा = अमावास्या । तिथितत्त्व-चिन्तामणि में लिखा है—

अमावास्या युक्त प्रतिपदा में चण्डिका की पूजा नहीं करनी चाहिए । मुहूर्त्तमात्र द्वितीयायुक्त ही प्रतिपदा करनी चाहिए ।

द्वितीयायाम् अर्थात् द्वितीया युक्त रहने पर, मुहूर्त्तमात्र से तात्पर्य है, एक मुहूर्त्त से कम नहीं । ऐसी स्थिति में दूसरे दिन परिवा के अभाव में अमावास्या युक्त पूर्व दिनवर्त्ती परिवा ही ग्राह्य होनी चाहिए ये म. महेशठक्कुर का विचार है । परदिन में यदि एक क्षण अर्थात् अड़तालीस मिनट से भी कम परिवा रहने पर ही अमायुक्त करनी चाहिए, अन्यथा, दूसरे दिन यदि एक क्षण भी परिवा उपलब्ध हो तो उत्तर दिन ही पूजा करनी चाहिए भले ही पूजा संक्षिप्त ही हो ।

'अच्छी तरह यज्ञानुष्ठान एवं दुर्गा पूजा यदि न कर सकें' ।

इत्यादि । कालिकापुराण के अनुसार संक्षिप्त पूजा ही करनी चाहिए । तिथि मल में पूजा नहीं करनी चाहिए ।

'साठ दण्ड की एक तिथि के निकल जाने के बाद दूसरे दिन की वह जब शिष्ट तिथि, तिथिमल कहलाती है । एकादशी को छोड़कर यह तिथिमल किसी भी काम के लिए अयोग्य कहा गया है ।'

इस वचन के अनुसार अपने अर्थात् दूसरे दिन, तथा पहले दिन की तिथि साठदण्ड विताकर दूसरे दिन वही तिथि मात्र कुछ क्षण के लिए यदि बची रहे तो वही तिथि मल होने के कारण किसी कर्म के लिए त्याज्य कहा गया है । यही इसका तात्पर्य हैं द्वितीयायोग निषेधक जो भी कहे गये हैं; वे सभी एक मुहूर्त्त से कम प्रतिपदा विषयक या, तिथिमल प्रतिपदा विषयक ही है । पूरे दिनमान का पन्द्रहवाँ भाग ही मुहूर्त्त कहलाता है; यह पहले कहा जा चुका है ।

मैथिली—आब आश्विनशुक्ल परिवाक कलशस्थापन—

ई कलश स्थापन पूर्वाह्ण में करवाक चाही । दुहूदिन पूर्वाह्ण में यदि परिवा होय, तऽ द्वितीया युक्त प्रतिपदा करवाक चाही अमावास्यायुक्त परिवा नहि करवाक चाही । देवीपुराण में कहलगेल अछि—

द्वितीया युक्त परिवाक दिन जे व्यक्ति भक्तिपूर्वक हमर पूजा करैत छथि से अक्षय सुख प्राप्त करैत छथि ।

जे व्यक्ति अमावास्यायुक्त परिवाक दिन हमर स्थापना करैत छथि हुनक हम अयुतशाप दऽक विनष्ट कयदैत छियैन्हि ।

साग्रह अमायुक्त परिवा में जे हमर कलश स्थापन करैत छथि हुनक सम्पत्ति तऽ नष्ट हमकरि वेधि वैन्ह हुनक जेष्ठ पुत्रक सेहो विनाश भय जायत छैक । इति ।

'द्वितीयायाम्' तात्पर्य द्वितीया युक्त अछि । अमाक अर्थ अमावास्या होयत छैक तिथितत्त्वचिन्तामणि में कहलगेल अछि—

चण्डिकाक पूजा में अमावास्या युक्त परिवा नहिं करवाक चाही । एको मुहूर्त्त परिव यदि द्वितीयाक दिन होय तेऽ सेह करवाक चाही । इति ।

द्वितीयायाम्, द्वितीयायुक्त, मुहूर्त्तमात्र, एकमुहूर्त्त कमनहि, ताहि में परदिन यदि परिवाक नितान्त अभाव होय तऽ अमावास्या युक्त पूर्व दिनक परिवा सेह करवाक चाही, ई म.म. महेश ठाकुरक विचार छैन्हि । मुहूर्त्तक अत्यन्त अभाव सँ तात्पर्य एक मुहूर्त्त से कम परिवा सँ छैक । पर दिन में यदि कम सँ कम एथे मुहूर्त्त परिवा उपलब्ध होय तऽ उत्तर दिनें करवाक चाही । एहन स्थिति में पूजा संक्षिप्तो करवाक चाही ।

'यदि नीकजकों याज्ञिक अनुष्ठान सम्पन्न नहि कय सकी ।' तखन कालिकापुराण अनुसार संक्षिप्तो पूजा करवाक चाही । तिथि मल में नहि करवाक चाही ।

साहि दण्डात्मक तिथि के निकलि गेलाक बाद दोसर दिन जे अवशिष्ट ओ तिथि रहिजाय ओ तिथिमल कहवैत अछि । ई नियम एकादशी के छोड़िकय मानलगेल अछि ।

अहिवचनक अनुसार अपरे अर्थात् दोसर दिन, तथा पूर्व दिन में साहि दण्ड बीतिगेलाक बाद दोसरदिन यदि सेह तिथि वाँचल रहय तऽ ओ तिथि मल भेलाक करणे त्याज्य मानलगेल अछि । द्वितीया योग निषेधक जे सब वचन कहलगेल अछि से सभटा एक मुहूर्त्त सं कम परिवाक सम्बन्ध में तथा तिथि मलक सम्बन्ध में कहलगेल अछि । एक मुहूर्त्त दिनमानक पन्द्रहवाँ भाग अर्थात् अड़तालिस मिनटक समय होयत अछि । एकरा सम्बन्ध में पहिले कहल जा चुकल अछि ।

विमर्श:—तत्र निर्णयसिन्धौ तन्निर्णय:—

तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे—

सुमेधा उवाच— 'शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि चण्डिकापूजनक्रमम् ।
आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सुशुभे दिने ।।'

इत्युपक्रम्य चोक्तम्— शुद्धे तिथौ प्रकर्त्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी ।
आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा षोडशद्वादशापि वा ।
अपराह्णे च कर्त्तव्यं शुद्धसन्ततिकाङ्क्षिभिः ।।

देवीपुराणे डामरतन्त्रे देवीवचः—

अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपत्पूजने मम ।
मुहूर्त्त मात्राकर्त्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता ।।
आद्याः षोड़शनाडीस्तु लब्धा यः कुरुते नरः ।
कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टां जायते ध्रुवम् ।।

मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः—

पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी
नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ।
देशभङ्गो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते
नन्दायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यात् मम पूजनम् ।।

अन्यच्च देवीपुराणे—

न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।
उदये द्विमुहूर्त्ताऽपि ग्राह्या चोदयगामिनी ।। इति ।

अन्यच्च— 'उदिते देवते भानौ द्विमुहूर्त्ता प्रशस्यते ।' इति ।

समयप्रदीपे— 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकाऽपि या भवेत् ।
सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु दैविका ।।'

इति देवलवचनं नवीनवर्द्धमानकृतजीर्णोद्धारे । तत्रापि घटिकामुहूर्त्त इति गौडा इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ । कृतिरत्नाकरे चण्डेश्वरः । मुहूर्त्तपर्यन्तमप्युत्तरदिने प्रति पल्लाभे परयुतैवेति सर्वनिञ्चन्धकाराः । यत्र षष्ठिदण्डात्मकप्रतिपल्लाभं तत्र परदिने तिथिसत्वात् पूर्वदिने एव 'सर्वतिथिमले त्याज्य वर्जयित्वा हरेर्दिनम् इति वचनात् ।

अन्यच्च देवीपुराणे— 'सास्त्रवैधृतियुक्तश्चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।
तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गृहे ।।'

दुर्गोत्सवे कात्यायनः— 'प्रतिपद्याश्विने मासि भवेच्चित्रा च वैधृतिः ।
तयोरन्ते च कर्त्तव्यं प्रारम्भं नवरात्रिकम् ।।'

इदमेवास्य विषयस्य स्वरतत्त्वम् ।

अथ चण्डीपाठफलमाह वाराहीतन्त्रे—

'ईश्वर उवाच'

चण्डीपाठफलं देवि शृणुष्व गदतो मम ।
ग्रहोपशान्त्यै कर्त्तव्यं पञ्चावृत्तं वरानने ।।

महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तमुदीरयेत् ।
अर्क्कावृत्तेः काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते ॥
मन्वावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्रीवश्यतामियात् ।
सौख्यं पञ्चदशावृत्ताच्छ्रेयआमोति मानवः ॥
कलावृत्तात्पुत्रपौत्रधनधान्यादिकं विदुः ।
राज्ञां भीतिविमोक्षायवैरस्योच्चाटनाय च ॥
कुर्यात्सप्तदशावृत्तं तथा द्वादशकं प्रिये ।
महाव्रणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेन्नरः ॥
पञ्चविंशावर्तनाच्च भवेद्बन्धविमोक्षणम् ।
संकटे समनुप्राप्तेदुश्चिकित्सामये तथा ॥
जातिध्वंसे कुलच्छेदे आयुषो नाश आगते।
वैरिवृद्धो व्याधिवधौ धननाशे तथा क्षये ॥
तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके ।
कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुमम् ॥

श्रियो वृद्धिःशतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथा प्रिये—

मनसा चिन्तितं देवि! सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात् ॥
शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते ।
सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ॥
भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान्नरो मोक्षमवाप्नुयात्।

अर्कावृत्तिर्द्वादशावृत्तिः । मनुश्चतुर्दश । कालः षट् ।

यथाश्वमेधः क्रतुराड् देवानां च यथा हरिः ॥
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः ।
अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने ॥
चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ।' इति ।

अत्र पठनश्रवणवत् पाठनश्रावणेकार्ये प्रयोज्जयिता अनुमन्ता कर्त्ता चेति सर्वे स्वर्गनरकभोक्तारो यो भूय आरभते तस्मिन् फलो विशेष इत्यापस्तम्बेनाप्रवृत्तप्रवर्त्तकलक्षणप्रयोजकस्यापि फलश्रुतिरिति तत्रैवेति तिथितत्त्वे स्मार्ताः । द्विजानां पठनश्रवणयोः शूद्रस्य श्रवणमात्रेऽधिकार इत्यपि तत्रैवेति । तिथितत्त्वचिन्तामणौ प्रतिपदादिनवम्यन्तपाठक्रमस्त्वयम् ।

ऋषिच्छन्दोऽन्वितं न्यस्य पठेत्स्तोत्रं विचक्षणः ।
स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् ।
सर्वत्र पाठो विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत् ॥ इति ॥

हिन्दी—ईश्वर ने कहा—

हे देवि, मुझसे कहे गये चण्डीपाठ का फल सुनो । ओ सुन्दरतम मुखवाली, ग्रहों को शान्त करने के लिए दुर्गासप्तशती की पाँच आवृत्ति पाठ करना चाहिए ।

महाभय उपस्थित होने पर सात आवृत्ति पाठ करना चाहिए । दुश्मनों को नुकसान तथा अपनी अभिलषित वस्तु पाने के लिए बारह आवृत्ति पाठ करना चाहिए ।

चौदह आवृत्ति पाठ करने पर दुश्मन वश में आते हैं तथा स्त्रियाँ वशवर्त्तिनी हो जाती हैं ।

पन्द्रह आवृत्ति पाठ करने वाले व्यक्ति सुख और समृद्धि प्राप्त करते हैं । सोलह आवृत्ति पाठ करने वाले को पुत्र, पौत्र धन धान्यादि की वृद्धि होती है । राजभय से मुक्ति पाने के लिए दुश्मनों के उच्चाटन के लिए, हे प्रिये सत्रह और अट्ठारह आवृत्ति पाठ करना चाहिए ।

(कैंसर) जैसे घाव से मुक्ति पाने के लिए बीस आवृत्ति पाठ करना चाहिए । जेल से छुटकारा पाने के लिए पच्चीस आवृत्ति पाठ करना चाहिए ।

मुसीबत आने पर, इलाज बिगड़ जाने पर, जातीय विनाश के अवसर पर, खानदान से अलगाव की स्थिति आने पर, दुश्मन और रोग के बढ जाने पर, धन की बरबादी या घटने पर, दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप होने पर, अत्यन्त पाप लगने पर प्रयत्नपूर्वक एक सौ आवृत्ति पाठ करना चाहिए । इसके बाद पाठकर्त्ता को शुभ होता है ।

सौ आवृत्ति पाठ करने वाले के लिए, लक्ष्मी एवं राज्य की वृद्धि होती है । एक सौ आठ आवृत्ति करने वाले को मन से सोची गई बातों से सिद्धि मिलती । हे सुव्रते, सौ अश्वमेध यज्ञ करने का फल उसे मिलता है । एक हजार आवृत्ति पाठ करने वाले को लक्ष्मी स्वयं आकर वरण करती है । उसके घर में वह स्थिर हो जाती है । उसका हर मनोरथ पूरा होता है और अन्त में उसे संसार से मुक्ति मिल जाती है ।

अर्कावृति का अर्थ बारह आवृत्ति, मनु का अर्थ चौदह, कला का अर्थ सोलह ।

यज्ञों का राजा जैसे अश्वमेघ होता है, देवताओं का राजा, भगवान् विष्णु, उसी तरह स्तोत्रों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण **स्तोत्र दुर्गा सप्तशती है** ।

अथवा हे वरानने, अधिक कहने से क्या लाभ! सौ आवृत्ति दुर्गा पाठ से हर तरह की सिद्धियाँ स्वयं सिद्ध हो जाती हैं ।

पाठ करने और सुनने की तरह पाठ कराने वाले और सुनाने वाले भी इस काम में प्रयोग करने वाले या अनुमति देने वाले सभी स्वर्ग या नरक के हकदार जो व्यक्ति इसे पुनः प्रारम्भ करते हैं उस फल में उन्हें विशेष जो आपस्तम्ब में कहा गया है तथा जिसने प्रारम्भ नहीं किया उसे भी प्रेरित करने वाले लक्षण प्रयोजक के लिए भी यह फलश्रुति है ऐसा तिथितत्त्व में स्मार्त्तों का विचार है । द्विजों को पाठ करने तथा सुनने का दोनों अधिकार हैं शूद्रों को केवल सुनने का अधिकार है, यह भी वहीं लिखा है । तिथितत्त्वचिन्तामणि में परिवा से लेकर नवमी तक का निम्नलिखित पाठक्रम है—

ऋषि और छन्द के साथ स्तोत्र को रखकर विचक्षण व्यक्ति को पाठ करना चाहिए । जहाँ स्तोत्र नहीं दिख पड़े वहाँ प्रणव रखना चाहिए । इसी तरह सब जगह पाठ करना चाहिए अन्यथा पाठ करने का कोई फल नहीं मिलता ।

मैथिली—ईश्वर कहलैन्हि—

हे देवि, चण्डी पाठक फल हमर कहल अहाँ सुनू । हे सुमुखि ग्रहक उपद्रव शान्तिक निमित्त पॉच आवृत्ति दुर्गासप्तशतीक पाठ करवाक चाही ।

महाभय उपस्थित भेलापर सात आवृत्ति पाठकहलगेल अछि । अपन मनोकामनाक सिद्धि एवं शत्रुक हानिकलेल बारह आवृत्ति पाठ करवाक चाही ।

चौदह आवृत्ति पाठ कलया सँ शत्रु एवं स्त्रीक वश में कयल जायत अछि जे व्यक्ति पन्द्रह आवृत्ति पाठ करैत छथि हुनका सुख एवं समृद्धिक प्राप्ति होयक छैन्हि । सोलह आवृत्ति पाठ कयला उत्तर धन, धान्य, पुत्र, पौत्रादिक वृद्धि बुझवाक चाही ।

राजाकभय हरयवाकलेल तथा शत्रुक उच्चाटनक हेतु सत्रह तथा अट्ठारह पाठ करवाक चाही ।

कैंसर प्रभृति जानलेवा घाव सँ मुक्ति पयवाकलेल बीस आवृत्ति पाठ करवाक चाही । जेल सँ मुक्तिकलेल पच्चीस आवृत्ति पाठ करवाक चाही ।

सङ्कट उपस्थित भेला परु, रोगक उपचार बिगड़िभेला पर जातीय बिनाशक स्थिति में, कुल सँ विच्छेदक स्थिति में, आयु नाशक स्थिति में, दुश्मन बढला पय रोग बढला पर, धन नाशक स्थिति में, दैहिक दैविक एवं भौतिक ताप त्रय प्राप्त भेला पर, क्षय तथा अतिविकट पाप शान्तिकलेल प्रयासपूर्वक सै आवृत्ति पाठ करवाक चाही तखन अवश्य कल्याण होयत अछि ।

हे प्रिये, शतावृत्ति पाठकनिहार लोकनिक लक्ष्मीक वृद्धि तथा राज्यक वृद्धि तऽ होयते छन्हि, एक सौ आठ आवृत्ति पाठ करनिहारक मन में सोचल काजक सिद्धि होयत छैन्हि । हे सुव्रते, हिनका सौ अश्वमेध यज्ञक फल प्राप्त होयत छैन्हि । जे व्यक्ति एक हजार आवृत्ति पाठ करैत छथि, लक्ष्मी स्वयं हुनका वरण कय, हुनक संग स्थिर भऽ जायत छथिन । एहन व्यक्ति अपन सब मनोरथ भेगकरैत अन्त में मोक्ष प्राप्त करैत छथि ।

अर्कावृत्तिः = बारह आवृत्तिः । मनुः = चौदह, कला = सोहल ।

जेना चज्ञक राजा अश्वमेध, देवताक राजा भगवान् विष्णु, तहना स्तोत्र सभ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्तोत्र दुर्गा सप्तशती कहलगेल अछि । अथवा हे वरानने, अधिक कहला सँ की लाभ, शतावृत्त चण्डीपाठ करनिहार व्यक्ति के समेत रहक सिद्धिक सिद्धि भऽ जायत छैन्हि ।

पठन, श्रवण अथवा पाठन—श्रावण कार्य में जे अनुष्ठाता, अथवा स्वीकृतिदाता व्यक्ति छथि ओ स्वर्ग भोक्ता होथि किम्वा नरक भोक्ता, ने ई कार्य पुनः प्रारम्भ करैत छथि हुनका फल विशेषक प्राप्ति है वेधरिय करतैन्हि । जिनका अहि कार्य में रुचि नहि छैन्हि हुनका अहि कार्यक दिशि प्रेरित करनिहार लक्षण प्रयोजक व्यक्ति सभके सेहो फलश्रुतिक प्राप्ति है तेन्ह ई कम्यव ताहिठाम तिथितत्त्वचिन्तामणि में स्मार्त्तक कथन अछि । द्विजके पठन श्रवणक तथा शूद्र के मात्र सुनवाकं अधिकार छैन्हि एकरो उल्लेख तिथितत्त्वचिन्तामणि में कहलगेल अछि । पाठक ई क्रम परिवा सँ नवमी धरि रहत ।

बुद्धिमान व्यक्ति ऋषि एवं छन्द युक्त स्तोत्रक पाठ करवाक चाही स्तोत्र में जाहिठाम एकर उल्लेख नहि होय ताहिठाम प्रणवक विन्यास करवाक चाही । अन्यथा पाठ विफल भऽ जायत छैक । इति ।

विमर्शः—अथ शतचण्डीविधानम्—

तत्र दशसंख्यका अर्थज्ञविप्रा निमन्त्रयितव्याः । शिवालयसमीपे वा देवीमन्दिर-निकटे मण्डपं रचयित्वा तं पल्लवकदलीस्तम्भपताकातोरणादिभिर्विभूष्य तथा प्रारम्भः कर्त्तव्यो यथा पक्षान्ते समाप्तिर्वाष्टम्यां नवम्यां भवेत् । तत्रादौ प्रत्येक द्वारेषु तदङ्ग देवता-पूजनं विधाय वस्त्रालङ्करणादिभिर्दशब्राह्मणान् वृणुयात् । प्रथमदिने एकैकामावृत्तिम्। द्वितीय दिने सर्वे द्वे द्वे आवृत्ती, तृतीय दिने तिस्रस्तिस्रः । चतुर्थ दिने चतस्रः, एवं दशभिर्विप्रैः शतावृत्तिपाठो भवति ।

तत्राऽयं विशेषः—पाठादौ पाठान्ते च सर्वैः शतं शतं नवार्णमन्त्रजपः कार्यः । एतद्भिन्नस्तन्मन्त्रस्यायुतसंख्यकजपोऽपि प्रतिदिनं कर्त्तव्य इत्युक्तं मन्त्रमहोदधौ—

शङ्करस्य भवान्या वा प्रासादनिकटे शुभम् ।
मण्डपं द्वारवेद्याढ्यं कुर्यात् सध्वजतोरणम् ।।

तत्र कुण्डं प्रकुर्वीत प्रतीच्यां मध्यतोऽपि वा ।
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा व्रणुयाद्दश वाडवान् ।।
जितेन्द्रियान् सदाचारान् कुलीनान् सत्यवादिनः।
व्युत्पन्नाँश्चण्डिकापाठरतान् लज्जादयावतः ।।
मधुपर्कविधानेन स्वर्णवस्त्रादिदानतः ।
जपार्थमासनं मालां दद्यात्तेभ्योऽपि भोजनम् ।।
ते हविष्यान्नमश्नन्तो मन्त्रार्थगतमानसाः ।
भूमौ शयानाः प्रत्येकं जपेयुश्चण्डिकास्तवम् ।।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं दशकृत्यः सचेतसः ।
नवार्णं चण्डिकामन्त्रं जपेयुश्चायुतं पृथक् ।।

अत्र वाडवा ब्राह्मणाः । पृथगिति सम्पुटीकरणादिति शेषः । अष्टमीनवमीचतुर्दशी पौर्णमासीषु यथा शतावृत्तिसमाप्तिर्भवति तथा आरम्भः कर्त्तव्य इति साम्प्रदायिकाः । अपि चात्राऽन्य कर्त्तव्यमाह—

यजमानः पूजयेच्च कन्यानां नवकं शुभम् ।
द्विवर्षाद्यादशाब्दान्ताः कुमारीः परिपूजयेत् ।। इति ।

अथ साधारणपाठविधिः—

न मानसं पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते ।
पुस्तके वाचनं शस्तं सहस्रादधिकं यदि ।।
ततो न्यूनस्य तु भवेद्वाचनं पुस्तकं विना ।
सकामैः सम्पुटो जाप्यो निष्कामैः सम्पुटं विना ।।
चरितं मध्यमं चैव जपेद्वा चण्डिकाद्वयम् ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ।।
चरितार्द्धं न तु जपेज्जपेच्छिद्रमवाप्नुयात् ।
यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत्सुधीः ।।
यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये ।
पुनरध्यायमारभ्य पठेत् सर्वमुदारधीः ।।
अनुक्रमात् पठेदेवं शिरःकम्पादिकं त्यजेत् ।
पठ्यमानाध्यायमध्ये विरामो यदि वा भवेत् ।।
पुनरध्यायमारभ्य पठेत् सर्वमुदारधीः ।
आधारे स्थापयित्वा तु वाचयेत्पुस्तकं ततः ।
हस्ते संस्थापनाद्देवि हन्त्यर्धं हि फलं यतः ।। इति ।

अत्र नवार्णमन्त्रस्तु—'ओं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।' इति ।
तत्र पाठक्रमस्तूक्तः शिक्षायाम्—

गीतीशीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।।

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थश्च षडेते पाठकागुणाः ।।

पुस्तकविषये तु तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

स्वयञ्च लिखितं यच्च शूद्रेण लिखितं भवेत् ।
अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् ।।

तत्परं देवीपुराणोक्तो वृद्धिपाठक्रमोऽप्यस्ति—

यदाद्ये दिवसे कुर्यात् चण्डिकापूजनादिकम् ।
द्विगुणं तद्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽहनि ।।
नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ।

कैः पठितव्यम्, कैर्नेत्यप्याह तत्रैव—

अध्येतव्यं न चान्येन ब्राह्मणक्षत्रियैर्विना ।
श्रोतव्यमिह शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन ।।

नवरात्रे पूज़ैव प्रधानमुपवासादि तु अङ्गमात्रमिति सूक्ष्मरीत्या विवेकः ।। इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ ।

सरस्वतीपूजाविशेषे रुद्रयामले—

मूल ऋक्षे सुराधीश! पूजनीया सरस्वती ।
पूजयेत्प्रत्यहं देवीं यावद्वैष्णवमृक्षकम् ।।
नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाध्ययीत कदाचन ।
पुस्तके स्थापिते देव! विद्याकामो द्विजोत्तमः ।।

मूलस्य प्रथमे पादे देव्या आवाहनमित्यत्र तिथिनियमो नास्ति यस्यां तिथौ मूलनक्षत्रं तस्यां सरस्वतीमावाहयेत्—'मूलेनावाह्येद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ।' इति स्मृतावुक्तम् । परन्तु नक्षत्रापेक्षया तिथिरेव प्रशस्ता नक्षत्रयोगः प्रायिकः । संग्रहोऽयं कृष्णमोहन ठक्कुरस्येति ।

अथ सप्तमीनिर्णयः—उपवासादौ सप्तमी उदयकालिना ग्राह्या न तु युग्मवाक्यात्पूर्वा—

'युगाद्यावर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।
रवेरुदयमिच्छन्ति न तत्र तिथियुग्मता ।।' इति कृत्यतत्त्वोक्तेः ।

'भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः ।
तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद्बुधः ।।' इति तिथितत्त्वोक्तेश्च

दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां घटिकातो न्यूना परा न 'कार्य्या व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत् ।'

इति देवलोक्तेः । घटिकान्यूना मुहूर्त्तन्यूनेत्यर्थः । पूर्वैकवाक्यत्वात् । पत्रिका नवपत्रिकापूजा पूर्वाह्णे एव न तु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वोक्तेः ॥

हिन्दी—उपवास प्रभृति में सप्तमीतिथि उदयकालीन ग्रहण करना चाहिए । युग्म वाक्य के आदर से पूर्व ग्राह्य नहीं होना चाहिए ।

युगाद्या, वर्णवृद्धि और सप्तमी तिथि भगवती पार्वती को अत्यन्त प्रिय है । ये तीनों सूर्योदय व्यापिनी ही ग्राह्य है । इसमें तिथियुग्मता नहीं मानी जाती है । ऐसा कृत्यतत्त्व में कहा गया है ।

भगवती दुर्गा की स्थापना से लेकर विसर्जन तक की सारी क्रियायें जिन तिथियों में सम्पादित या अनुष्ठित होती है, वे तिथियाँ उदयगामिनी ही मान्य है । बुद्धिमान् व्यक्ति अपना अनुष्ठान इसी क्रम में करते हैं । यह तिथितत्त्व में कहा गया है ।

दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में कहा गया है कि एक घटी (मुहूर्त्त) अर्थात् अड़तालीश मिनट से कम परविद्धा नहीं करनी चाहिए ।

'व्रत और उपवास के नियम में यदि एक घटी हो' ।

ऐसा देवल ने भी कहा है । घटिकान्यूना का अर्थ एक मुहूर्त्त ४८ मिनट से भी कम । पूर्व कथन की एकवाक्यता से पत्रिका पूजा या नव पत्रिका पूजा पूर्वाह्ण में ही होनी चाहिए । न कि मूल नक्षत्र के अनुरोधवश मध्याह्न में । ऐसा कृत्यतत्त्व में कहा गया है ।

मैथिली—उपवास आदि में सप्तमी उदयकालीना ग्राह्य होयत अछि । युग्मवाकयक सम्माने पूर्व ग्राह्य अछि । कृत्यतत्त्व में कहलगेल अछि—

युगाद्या, वर्ष वृद्धि एवं सप्तमीतिथि पर्वतीक अत्यन्त प्रिय दैन्हि ई तीनू सूर्योदयव्यापिनीग्राह्य होयत अछि । एकरा में तिथिक युग्मताक मान्यता नहि होयत अछि ।

भगवतीक प्रवेश सँ लय विसर्जन धरि जे क्रिया होयत अछि से सभ आहि तिथि में जकर विधान होयत अछि सँ तिथि उदयगामिनी विद्वान् लोकनिक द्वारा मान्य होयत अछि । ई तिथितत्त्वक उक्ति अछि । दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में कहलगेल अछि —

मुहूर्त्तमात्रो कम कोनो तिथि परविद्धा नहि करवाक चाही ।

'व्रतोपवासक नियम में कम सँ कम एक मुहूर्त्त जव होय' ई देवलक उक्ति अछि । घटिका न्यूना = एक मुहूर्त्त अर्थात् ४८ मिनट कम ई अर्थ भेल । पूर्ण

कथनक संग एक वाक्यताक कारण सँ । पत्रिका पूजा एम् नव पत्रिकाक पूजा पूर्वाह्ण में होयत अछि न कि मूल नक्षत्रक अनुरोधवश मध्याह्न आदि काल में नहि । ई कृत्यतत्त्वक उक्ति छैकि ।

विमर्शः—अथ षष्ठीतिथिनिर्णयः—

आश्विनशुक्लषष्ठी बिल्वाभिमन्त्रणे सायन्तनी ग्राह्या ।

तथोक्तं देवीपुराणे—ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् ।

महाकालसंहितायाम्—षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेधिवासनम् ।
रजन्यान्ते मुहूर्ते तु षष्ठिकामधिवासयेत् ।।

तथा तिथितत्त्वे—सायं षष्ठ्यां तु कर्त्तव्यं पार्वत्याऽधिवासनम् ।
षष्ठ्याभावेऽपि कर्त्तव्यं सप्तम्यामपि मानद ।।

यदोभयदिने सायन्तनव्यापिनी षष्ठी, तदा युग्मादरेण सप्तमीयुक्तायां षष्ठ्यां अथान्तरदिने बिल्वाभिमन्त्रणं कार्यम् । यदि पूर्वदिने सायंकालादुपरि षष्ठ्याः प्रवृत्ति परदिने सायंकालात् पूर्वमेव विरामस्तदा षष्ठ्याभावेपीति, तिथितत्त्ववचनाद्युग्मादरेण च परदिने सप्तम्या सहिते सायंकाले कार्यम् । तत्र सन्ध्यालक्षणम्—

'अर्धादस्तमनात् सन्ध्या व्यक्तीभूता सतारकाः'।

अत्र देवीपुराणे तु—

ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् ।
सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ।।
पूर्वाषाढयुताष्टम्यां पूजा होमाश्च पोषणम् ।
उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ।।
श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्यविसर्जयेत् ।।

अत्र तिथिनक्षत्रयोगेन मुख्यः कालस्तयोरसंयोगे तिथिरेवग्राह्याः ।

तथोक्तं स्मृत्यन्तरे—

तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् ।
योगाभावेतिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि ।। इति ।

म.म. राजनाथमिश्रकृत तिथिनिर्णयात् । यदिदैवात्पूर्वदिने सायं नक्षत्रयोगः तदा विशेषयोगलाभात् पूर्वदिन एव कर्त्तव्यमिति ।

अथ महाष्टमीनिर्णयः—महाष्टमीव्रतेऽष्टमी नवमी पूजा ग्राह्या ।

'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता ।' इति पाद्मोक्तेः ।

'शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा ।
सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी ।।

जम्भेन सप्तमीविद्धा पूजिता तु महाष्टमी ।
इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः ॥'

इति स्मृतिसंग्रहोक्तेश्च ।

हिन्दी—अब महाष्टमी का निर्णय—

महाष्टमीव्रत से अष्टमी नवमी युता ही ग्राह्य है ।

अष्टमी नवमीयुक्ता और नवमी अष्टमी ग्राह्य है । यह पद्मपुराण की उक्ति है—

शरद ऋतु के नवरात्र में हमेशा अष्टमी नवमी युक्ता ही ग्राह्य है । सप्तमी संयुक्त अष्टमी नित्य ही शोक एवं सन्तापकारिणी है । दानवराज दम्भ ने सप्तमीविद्धा महाष्टमी व्रत किया था । फलतः उस दानवपुङ्गव की हत्या इन्द्र ने कर दी । ऐसा स्मृतिसंग्रह की उक्ति है—

मैथिली—आब महाष्टमीक निर्णय—

महाष्टमीक व्रत में अष्टमी नवमी युक्त ग्राह्य होयत अछि । ई पद्मपुराणक वचन अछि । शारदीय नवरात्र में सदैव अष्टमी नवमी युक्त ग्राह्य होयत अछि । सप्तमी युक्त अष्टमी नित्यशोक एवं सन्ताप कारक होयत अछि । सप्तमीविद्धामहाष्टमी व्रत दानव राजजम्भकयनेछलाह । एकर दोषे ओ इन्द्रक हाथे मारल गेलाह । ई स्मृतिसंग्रहक बात अछि ।

विमर्शः—तिथितत्त्वचिन्तामणौ—महाष्टमी तु नवमी युतैव कार्या शुद्धायां वादाभावः ।

कृत्यशिरोमणिधृतब्रह्मवैवर्त्तवचनम्—

शुक्ल पक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या परसंयुता ॥

तत्रैवस्मृति संग्रहेऽपि—तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सप्तमी मिश्रिताष्टमी ।
वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥

अत्र घटिकामात्राप्यौदयिकी अष्टमी ग्राह्येति सर्वनिबन्धकाराः । मासे नैवाष्टमी-व्रतस्य पारणा । वाचस्पतिमिश्र तिथिनिर्णयेऽपि सामान्यतः शुक्लाष्टमी नवमीयुतैवेति सिद्धान्तः कृतः ।

म.म. राजनाथमिश्रकृततिथिनिर्णये तु—आश्विनशुक्लाष्टमी निशापूजायां महानिशाव्यापिनीग्राह्या । 'कर्मणो यस्येत्यादि' स्मृतेः—

उभयदिने महानिशाव्याप्तौ पराग्राह्या । नवमीयोग प्राशस्त्यात् । यत्र पूर्वदिन एव महानिशाव्यापिनी नोत्तरत्र तत्र पूर्वदिने सप्तमीयुतैव ग्राह्या । यदाह विश्वरूपनिबन्धे—

महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी ।
सप्तम्यासंयुता कार्या मूलेन न विशेषतः ।।
महाष्टम्यां भगवतीभद्रायामपि पूजिता ।
ददाति चायुरारोग्यं यतो भद्रास्वरूपिणी ।।
कुलं पुत्रं धनं धान्यं राज्यमायुस्तथैव च ।
प्रथमाचाष्टमीपूज्या यः कांक्षति सदा शुभम् ।।

उपवासव्रते तूदयव्यापिन्येव ग्राह्या, यदाह विष्णुधर्मोत्तरे—

अष्टम्या नवमीयुक्ता नवम्याचाष्टमीयुता ।
अर्द्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथि ।इति ।
सर्वेषु व्रतकार्येषु अष्टमी परतः शुभा ।।' इति स्मृतेश्च ।

अथ नवमी निर्णयः—नवमी तु व्रतादौ पूर्वविद्धा ग्राह्या ।

'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता' ।इति पद्मोक्तेः ।

'युग्माग्निक्रतुभृतनि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः' ।इति निगमवचनाच्च।

देवीपुराणे— 'भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीं पूजयेन्मुदा ।
वस्त्रालंकारदानैश्च सन्तोष्य प्रतिवासरम् ।।
बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांससंयुतम् ।।' इत्यदि ।

हिन्दी—अब नवमी का निर्णय—

व्रतोपवासादि में नवमी पूर्वविद्धा ही ग्राह्य है ।

पद्मपुराण का वचन है कि अष्टमी नवमी युक्ता और नवमी अष्टमी युक्ता करनी चाहिए । 'युग्माग्नि क्रतुभूतानि' इत्यादि निगम के वचन से भी यही प्रमाणित होता है । देवीपुराण में कहा गया है—

नवमी व्रत में व्रती धरती पर सोये तथा प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक कुमारी को निमंत्रित कर भोजन कराये । वस्त्र और अलङ्कार देकर उन्हें सन्तुष्ट करे । भात और मांस की प्रतिदिन बलि दे । इत्यादि ।

मैथिली—आब नवमीक निर्णय करैत छी—

पूर्वविद्धा अर्थात् अष्टमी संयुता नवमीब्रत करवाक चाहि—

पद्मपुराणक वचन अछि—अष्टमी नवमी युक्त तथा नवमी अष्टमी युक्त उपास्य अछि 'युग्माग्नि' प्रभृति निगमक वचन से सेहो एतवहि प्रमाणित होयत अछि । देवीपुराण में कहलगेल अछि—

ब्रती के धरती पर सुतवाक चाही । प्रतिदिन प्रसन्नता पूर्वक कुमारी कन्या के आमन्त्रित कय भोजन करयवाक चाही । हुनका वस्त्राभूषण दय सन्तुष्ट

करवाक चाही । प्रतिदिन मांस भातक बलि भगवतीक निमित्त देवाक चाही । इत्यादि ।

विमर्श:—म.म. राजनाथमिश्रास्तु तिथिनिर्णये—

'नवमी पूर्वाह्णव्यापिनी चेदष्टमीविद्धा त्रिशूलिनी पूजादौ ग्राह्या । प्रभूततरे बलिदाने तु देवीपुराणे—

अश्वयुक् शुक्लनवमी मुहूर्त्ता वा कला यदि ।
सा तिथि सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याज़यार्थिभि: ।।

भविष्यपुराणे—अश्वयुक् शुक्लपक्षे तु अष्टमीमूलसंयुता ।
सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ।।

सौरधर्मे— सूर्योदये परारिक्ता पूर्णस्यादपरा यदि ।
बलिदानं प्रकर्त्तव्यं तत्र देशे शुभं भवेत् ।।

बलिदानं दशासु चेति निषेधो नवम्ययुक्तासु वेदितव्यम् । इत्याहु: । व्यवहारोऽप्यमेव । पूजाङ्गबलिदानं तु अष्टमीविद्धायामपि कर्त्तव्यमेव । अष्टमीबलिदाननिषेधस्य प्रभूतबलिदानपरत्वात् । नवम्या उदयकालाव्याप्तौ बिसपयित्वादष्टमीविद्धेव ग्राह्या । उदयद्वय व्याप्तौ तु पूर्वैव । उत्तरायास्तिथिमलत्वेनाकर्मण्यत्वात् ।

'अकर्मण्यतिथिमल विद्यादेकादशी विनेति ।'

द्विवर्षमारभ्य दशवर्षान्तं यावत् कुमारीवय: शुभफलजनकम् । तथा चोक्तम्—

एकवर्षा न कर्त्तव्या कन्यापूजाविधानत: ।
अज्ञातां सा तु भोगानां गन्धादीनां तु बालिका ।।
कुमारिका च सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह ।
त्रिमूर्त्तिनी त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका ।।
रोहिणी पञ्चवर्षा च कन्यका षष्ठवार्षिकी ।
चण्डिका सप्तवर्षा च अष्टवर्षा च शाम्भवी ।।
नववर्षा भवेद्दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी ।
प्रतिपदादि नवम्यन्तं क्रमात्ताञ्च प्रपूजयेत् ।।
अत ऊर्ध्वं न कर्त्तव्या कन्या ताश्च विगर्हिता: ।
एभिश्च नामभि: पूजा कर्त्तव्या विधिसंयुतै: ।।

इत्यादि विस्तृतिभीत्या न लिखितम् । विशेष विषयजिज्ञासुभि: कृत्यशिरोमणौ द्रष्टव्यम् ।

अथ विजयादशमी—

दशम्यामपराजितापूजा देवीविसर्जनादि उदयगामिन्यां दशम्यामेकादशीयुतायामेव । तथा हि नन्दिकेश्वरे—

'प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव विसर्ज्जयेत् ।
ततः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्ज्जयेत् ।।'

प्रातरिति मुहूर्त्तान्न्यूनकाल इति शेषः । रत्नकोशे नारदः—

'इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् ।
श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ।।
सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः ।
आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ।।'

नन्दिकेश्वरे 'भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः ।' इत्यादि । तत्रापि सम्यक् पूजाद्ययोग्यमुहूर्त्तन्यूनदशमीप्राप्तावाह कालिकापुराणे—

'सम्यक्कल्पोदिता पूजा यदि कर्त्तुं न शक्यते ।
उपचारांस्तथा दत्तुं पञ्चैतान्वितरेत्तदा ।।
गन्धं पुष्पं च धूपं च नैवेद्यं दीपमेव च ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ।
संक्षेपपूजा कथिता तथा शास्त्रादिकं पुनः ।।

तथा चोदयगामिन्यां मुहूर्त्तान्न्यूनायामल्पकालव्यापिन्यामप्येकादशीयुतायामेव संक्षेपपूजादिभिरपि विसर्ज्जनं कार्यमिति भावः ।

दिनमानस्य पञ्चदशमो भागो मुहूर्त्तमित्यनुपदमेवाभिहितम् । मुहूर्त्तन्यूनदशम्या उत्तरदिने उदयगामिन्यालाभे तु नवमीयुतायामेवापराजितापूजा देवी विसर्जनं च । तथा हि शिवरहस्ये—

'आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेत्ततः ।
एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम् ।। इति

एकादश्यां एकादशी युतायां पूजनमत्र विसर्ज्जनस्याप्युपलक्षणम् । एतद्वचनस्योत्तरदिने मुहूर्त्तन्यूनदशमीलाभे उत्तरदिनकर्त्तव्यतानिषेधकत्वेनैव स्मार्तादिभिस्तिथितत्त्वादिग्रन्थे व्याख्यातत्त्वात्तादृशार्थपर्यवसानमिति । श्रवणेन विसर्ज्जयेदिति श्रवणायोगस्तु रोहिणीयोगवदप्रयोजक इति ठक्कुराः । तेन श्रवणायोगो विसर्जने नावश्यकः 'श्रवणेन विसर्जयेत्' इति वचनस्य श्रवणाप्रशंसकत्वं प्रतीमः । अत्र सर्वत्र नक्षत्रादरान्मुख्यस्तदभावे तिथिरेव ग्राह्या युग्मात् ।

'तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् ।
तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं बिना ।।'

इति विद्यापति ठक्कुराः ।।

हिन्दी—अब विजयादशमी—

दशमी में अपराजिता पूजा देवी विसर्जन आदि उदयगामिनी दशमी एकादशीयुक्त ग्राह्य है । जैसे नन्दिकेश्वर में—

प्रात:काल में ही देवी का आवाहन और विसर्जन करना चाहिए । प्रभात वेला में ही देवी की पूजाकर प्रभातवेला में ही उनका विसर्जन करना चाहिए । प्रात: से यहाँ तात्पर्य एक मुहूर्त्त अर्थात् ४८ मिनट से भी कम समय है । रत्नकोश में नारद का वचन है—

आश्विन शुक्लदशमी पूर्वविद्धा नहीं करनी चाहिए । श्रवणनक्षत्र युक्त रहने पर दशमी में राजा का महाभिषेक करना चाहिए । हे राजन् सूर्योदय काल में यदि दशमी तिथि पड़े और वह आश्विन महीने का शुक्ल पक्ष हो तो वह विजयादशमी तिथि कहलाती है ।

नन्दिकेश्वर के अनुसार भगवती के प्रवेश से विसर्गान्त तक की जो क्रियायें इत्यादि उसमें भी यदि सम्यक् पूजादि के योग्य मुहूर्त्त के अभाव में दशमी प्राप्त हो तो कालिकापुराण में—

अच्छी तरह विहित नियम से सम्पन्न पूजा यदि नहीं कर सके तो निम्नलिखित पञ्चोपचार से पूजा करनी चाहिए । गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा करें । इसका भी अभाव हो तो जल फूल से पूजा करे । इसकी भी कमी हो तो मात्र भक्तिपूर्वक ही पूजा करे । यह संक्षिप्त पूजा कही गई । फिर, शास्त्रादिकी चर्चा करेगें ।

और उदयगामिनी मुहूर्त्तमात्र से भी कम एकायुक्त अल्पकाल व्यापिनी दशमी में संक्षिप्त पूजादि से विसर्जन तक करना चाहिए यही भाव है ।

इससे कुछ पहले मैने कहा है कि दिनमान का पन्द्रवाँ भाग मुहूर्त्त कहलाता है । अगले दिन एक मुहूर्त्त से भी कम उदयगामिनी दशमी यदि नहीं मिले, तो नवमीयुक्त में ही अपराजिता पूजा तथा देवी विसर्जन करना चाहिए । शिवरहस्य में लिखा है—

आश्विन शुक्ल दशमी तिथि में ही देवी पूजा करनी चाहिए । एकादशी युक्त दशमी में अपराजिता पूजा नहीं करती चाहिए ।

'एकादशी में' इसका तात्पर्य एकादशी युक्त दशमी में, यहाँ पूजन का तात्पर्य पूजा और विसर्जन दोनों से है । इस वचन के अनुसार उत्तर दिन में मुहूर्त्त अर्थात् अड़तालीश मिनट से कम दशमी रहने पर उत्तर दिन की कर्त्तव्यता का निषेध होने के कारण स्मार्त्तों के द्वारा तिथितत्त्वादि के ग्रन्थ में

इसकी व्याख्या की गई है । इस व्याख्या के कारण्ध वैसे अर्थ स्वतः खण्डित हो जाते हैं । 'श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करना चाहिए' इस वचन में श्रवणानक्षत्र का योग रोहिणी नक्षत्र की तरह अप्रयोजक है, यह मान्यता म.म. महेश ठक्कुर की है । अतः विसर्जन में श्रवणा योग आवश्यकता नही है । 'श्रवणेन विसर्जयेत्' यह वचन श्रवणा नक्षत्र की प्रशंसा मात्र है । यहाँ हर जगह नक्षत्र आदर परक है; मुख्यरूप से प्रतिपादित है । नक्षत्र के अभाव में युग्मादरेण तिथि की प्रधानता ही ग्राह्य है । विद्यापति ठाकुर ने लिखा है—

'देवता का शरीर तिथि है, तिथि पर नक्षत्र आश्रित है । इसीलिए तिथि की प्रशंसा की गई है । तिथि के बिना नक्षत्र का कोई महत्त्व नहीं है ।'

मैथिली—आब विजयादशमी—

दशमी तिथि में अपराजिता पूजा एवं देवी विसर्जन प्रभृति एकादशी युक्त उदयगामिनी दशमी में करवाक चाही । नन्दिकेश्वर के वचन अछि—

प्रातःकाले देवीक आवाहन एवं विसर्जन करवाक चाही । प्रातःकाल में देवीक पूजा करवाक चाही तथा प्रातःकाल हुनक विसर्जन सेहो करवाक चाही । प्रातः से एक मुहूर्त्त सँ कम समयक बोध होयत अछि । रत्नकोश में नारदक वचन—

आश्विन शुक्ल दशमी तिथि पूर्वविद्धा नहि करवाक चाही । श्रवणनक्षत्र युक्त पूर्वविद्धा दशमी में कोनो राजाक राज्याभिषेक सेहो नहि करवाक चाही । हे राजन् आश्विन मासक शुक्लपक्ष में सूर्योदय काल में जाहि दिन दशमी देखल जाये विद्वान् लोकनि ओकरे विजयादशमी कहैत छथि ।

नन्दिकेश्वरक जे वचन अछि—'भगवतीक पूजादि सँ विसर्जनान्तधरिये किया अछि' इत्यादि ।' अहूवचन में भगवतीक सम्यक पूजा कलेल पर्याप्त दशमी नहि उपलब्ध होय तऽ कालिकापुराणक वचन अछि—

सविधनियमपूर्वक भगवतीक पूजा करवाक यदि समय नहि भेंटय तऽ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य लऽक पञ्चोपचार पूजा कऽ लेलाक चाही । एकरो अभाव होय तऽ जल-फूल लऽके पूजा करी तथा एकरो अभाव में केवल भक्ति पूर्वक प्रणाम कयली । संक्षिप्त पूजा एह भेल पुनः शास्त्रादिक विहित पूजा अछि।

तथा दशमी उदयकालीन हो, मुहूर्त्तो से कम समय हो, ओ अल्पकालव्यापिनी हो, एकादशी युक्त हो तेऽ ताहि अल्पकाल में भगवतीक संक्षिप्त पूजा एवं विसर्जनादि कार्य सम्पन्न करवाक चाही । एववहि पूर्वकथनक भाव अछि ।

सम्पूर्णदिनमानक पन्दरहम भाग एक मुहूर्त्त होयत अछि । ई बात किछु पूर्व हम कहने छी । यदि एक मुहूर्त्त सँ कम दशमी हो, उत्तर दिन में उदयगामिनी नहि

होय तखन नवमी युक्त दशमी में भगवतीक पूजा एवं विसर्जन करवाक चाही । अपराजिता पूजा सेहो अही में करवाक चाही । शिवरहस्यक वचन अछि—

आश्विन शुक्ल पक्षक दशमी में भगवतीक पूजा करवाक चाही एकादशी युक्त दशमी में अपराजिता पूजा नहि करवाक चाही । इति ।

'एकादश्याम्' एकर अर्थ भेल एकादशी युक्त दशमी में । अहिठाम पूजन शब्द विसर्जनक सेहो उपलक्षक अछि । ई वचन सँ आगुण दिन एक मुहूर्त सँ कम यदि दशमी भेंटयत उत्तर दिनक पूजन प्रभृति कार्यक निषेकथा विचारि स्मार्त्त लोकनि तिथितत्त्वादि ग्रन्थ में एकरा जे व्याख्या कयने छथि तकर आधार पर एहन अर्थक महत्ता स्वतः समाप्त भय जायत अछि ।

'श्रवणेन विसर्जयेत्' अहि वचन में श्रवणानक्षत्र योगक महत्त्व रोहिणी नक्षत्रक योग जहाँ अप्रयोजक अछि, ई महेश ठक्कुरक वचन छैन्हि । तांय श्रवणाक योग विसर्जन काल कलेल ततेक आवश्यक नहि मानल गेल अछि । 'श्रवणेन विसर्जयेत्' आदि वचन में श्रवणक उल्लेख मात्र प्रशंसा परक अछि । अहि सभठाम नक्षत्रक समादर मुख्य अछि । उचित नक्षत्रक अभाव में तिथि सेहे ग्राह्य अछि । अहि सम्बन्ध में विद्यापति ठाकुरक कथन छैन्हि—

देववाक शरीर तिथि मानल जायत अछि । तिथि पर नक्षत्र आश्रित अछि । तॉय तिथिक प्रशंसा कयल गेल अछि । तिथिक बिना नक्षत्रक किछु महत्त्व नहि ।

अथ यात्राविजयदशमी—

तत्र यात्रां कृत्वा सीमानं लङ्घयेत् । तथा हि व्रतकाण्डे तु काश्यपः—

'श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः ।
उल्लङ्घयेत्स्वसीमान्तं तद्दिनर्क्षे ततो नराः ॥'

हिन्दी—अब विजयादशमी की यात्रा के संबन्ध में—

विजयादशमी के दिन यात्रा कर अपनी सीमा के बाहर निकलना चाहिए । व्रतकाण्ड में कश्यप मुनि का कहना है—

क्योंकि, श्रवणा नक्षत्र युक्त दशमीतिथि में सर्वप्रथम सूर्यवंशी राजा राम ने यात्रा की थी । उसके बाद ही मनुष्यों का भी श्रवणायुक्त दशमी तिथि में सीमोल्लङ्घन करना चाहिए ।

मैथिली—आव विजयादशमीक सन्दर्भ में—

विजयादशमीक दिन यात्राकय अपन सीमाक उल्लंघन करवाक चाही । व्रतकाण्ड में मुनि कश्यपक कथन छैन्हि—

श्रवणा नक्षत्र युक्त दशमी तिथि में श्रीराम यात्रा कयने छलाह ताँय सामान्य लोकनिक सेहो श्रवणायुक्त दशमी नक्षत्र में अपन सीमाक उल्लंघन कय यात्रा करवाक चाही । (पूर्णाक अर्थ दशमी अछि) ।

अथ शमीग्रहणम्—

पूर्णायां दशम्यां शमीमर्चयित्वा यात्राकरणम् । तत्र मन्त्रः—

'शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका ।'
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियदायिनी ।।
करिष्यमाणा या यात्रा यथाकालं सुखं मया ।
तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ।।'

शमी वृक्षविशेषः लोहितकण्टकयुक्तः प्रागुक्तवचनलिङ्गात्—

'गृहीत्वा मालां शमीमूलगतो (मृद)भृशम् ।
गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत् स्वगृहं प्रति ।।
ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह ।।'

हिन्दी—अब शमीग्रहण—

शमी की पूजाकर यात्रा करनी चाहिए । इसका मन्त्र—

(कहा जाता है कि शमी की लकड़ी के भीतर विशेष प्रकार की आग होती है जो रगड़ने पर निकलती है । इसमें लाल रंग के काँटे होते हैं तथा ये पंजाब में अधिकतर पाये जाते हैं ।)

शमी पापों को शान्त करती है । इसमें लाल काँटे होते हैं । अर्जुन के वाणों को यह धारण करती है । श्री राम की यह प्रियदायिनी है । मैं जो यात्रा करुँगा, वह यथावसर सुखद हो । हे शमी श्री राम ने तुम्हारी पूजा की थी । तुम मेरी यात्रा को निर्विघ्न बनाने वाली बनो ।

शमी एक वृक्ष विशेष है । इसमें लाल रंग के काँटे होते हैं । पहले वचन के प्रमाण से—

रुद्राक्षमाला लेकर शमी पेड़ के पास जाना चाहिए । गीत और बाजे-गाजे के साथ उसे अपने घर ले आना चाहिए । फिर अपने परिजनों के साथ वस्त्राभूषण धारण करना चाहिए । इति ।

मैथिली—आव शमी आनवाक विधि—

शमीक पूजाकय तखन यात्रा करवाक चाही । एकर मन्त्र शमी पापक शमन करैत छथि । शमीक वृक्ष में लाल काँट होयत अछि । अर्जुनक वाण के ई

धारण करैत छथि । रामक प्रियदायिनी छथि । यथावसर हम जे सुखद यात्रा करव ओकरा में अहाँ हमर निर्विघ्न कर्तृकनू अहाँ श्रीराम सँ पूजित करी । शमी एक वृक्ष विशेषक नाम अछि । अहि वृक्ष में लाल लाल काँट होयत अछि । पूर्वक शनक प्रमाण सँ—

रुद्राक्ष माला ग्रहण कय शमी गाछक मूल में जपवाक चाही । पुनः गीनादक संग शमीक अपन घर आनवाक चाही । तकर वाद अपन पारिवारिक लोकनिक संग वस्त्राभूषण धारण करवाक चाही । इति ।

विमर्श:—

तिथितत्त्वचिन्तामणिधृतगोपथब्राह्मणे—

अमङ्गलानां शमनीं दुष्कृतस्य प्रणाशिनीं ।
दु:स्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येहं शमी शुभाम् ।।

अथ कोजागरा—

तिथितत्त्वे— 'कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम् ।
सुगन्धैर्निशि संवेशैश्चाक्षैर्जागरणं चरेत् ।।'

तथा— 'निशीथे वरदा लक्ष्मी: को जागर्त्तीति भाषिणी ।
तस्मै वित्तं प्रदास्यामि अक्षैः क्रीडां करोति यः ।।'

अत्र निशीथ इत्यभिधानाद्रात्रिकृत्यमिदम् । यद्दिने प्रदोषनिशीथोभय व्यापिनी पूर्णिमा तद्दिने कोजागराकृत्यम् । उभयव्याप्त्यनुरोधात् यदा तु पूर्व-दिने निशीथव्याप्ति: परेद्युर्न प्रदोषव्याप्तिस्तदा सुतरां पूर्वदिने तत्कृत्यमिति ।।

हिन्दी—अब कोजागरा कृत्य-तिथितत्त्वानुसार—

आश्विन महीने की पूर्णिमा की चाँदनी रात में महाक्ष्मी तथा ऐरावत हाथी पर सवार देवराज इन्द्र की पूजा करनी चाहिए । सुगन्धित वस्त्रों से सुसज्जित होकर पासा खेलते हुए सारी रात जगना चाहिए ।

तथा—'रात में कौन जगा है' यह कहती हुई लक्ष्मी वरदान देती हैं । वह कहती हैं जो इस रात में पासों से खेलता है उसे मैं वित्त प्रदान करती हूँ । यहाँ निशीथ के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि यह रात्रि कृत्य है ।

यदि प्रदोषव्यापिनी निशीथ दो रात्रि में हो तो पूर्णिमा जिस रात में हो उसी रात में कोजागरा करनी चाहिए । दो दिन व्याप्ति के अनुरोध से । यदि पहले दिन रात में पूर्णिमा हो और दूसरे दिन प्रदोष व्याप्ति नहीं हो तो स्वत: पूर्वदिन ही यह कृत्य होना चाहिए ।

मैथिली—आव कोजागरा—

तिथितत्त्व में—आश्विन पूर्णिमाक चांदनी राति में लक्ष्मी एवं ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्रक पूजा करवाक चाही । राति में सुगन्ध से, सुवस्त्र सें एव चौसर खेलति जागिक वितयवाक चाही ।

तथा—राति में जागल छथि ई बजैत लक्ष्मी जागल लोक के वरदान दैत छथिन । ओ कहैत छथिन जे अक्ष क्रीड़ा करैत जे राति भरि जागल रहैत छथि तिनका हम वित्त प्रदान करैत छी ।

अइठाम रात्रिक उल्लेखे ई रात्रि कृत्य अछि । प्रदोषकालीन निशीथ उभय दिन होय तऽ जाहि दिन पूर्णिमा होय ताही राति में कोजागरा करवाक चाही । उभय व्याप्तिक अनुरोध सँ । यदि पूर्वदिन निर्णय व्याप्ति, दोसर दिन प्रदोष व्याप्ति नहि होय तऽ स्वतः पूर्वदिन में कोजागरा करवाक चाही ।

विमर्शः—

तथोक्तं भविष्ये—

दिवा तत्र न भोक्तव्यं मनुष्यैश्च विवेकिभिः ।
स्त्रीबालवृद्धमूर्खैश्च भोक्तव्यं पूजितैः सुरैः ।।

तथा च प्राणतोषिणीतन्त्रे—

नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षैर्जागरणं निशि ।
तद्विभूतिं प्रयच्छामि को जागर्त्तिम् महीतले ।।

तथैव चोक्तं तिथितत्त्वचिन्तामणौ ठक्कुरैरपि ।

।। इति कृत्यसारसमुच्चये आश्विनकृत्यम् ।।

अथ कार्त्तिककृत्यम्

वायुपुराणे— 'तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते ।
हविष्यं ब्रह्मचर्यञ्च महापातकनाशनम् ।।'

अत्र सौरमासक्रमो बोध्य इति ठक्कुराः । तथा हि—

'दुर्लभः कार्तिको मासो मथुरायां नृणामिह ।
यत्रार्चितो हरी रूपं भक्तेभ्यः स्वं प्रयच्छति ।।'

कार्तिकस्नानमन्त्रस्तु—

'कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ।।'

मया लक्ष्म्या । पद्मपुराणे—

'धात्रीछायासु यः कुर्यात्पिण्डदानं महामुने ।
मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य च ।।
धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलविभूषितः ।
धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ।।
धात्रीच्छायां समाश्रित्य योऽर्चयेच्चक्रपाणिकम् ।
पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।'

नारदीये— 'एकान्तरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोऽपि वा ।
षड्वा द्वादशपक्षं वा मासं वा वरवर्णिनि ।।
एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन मोक्षेण व्रजते परमं पदम् ।।'

हिन्दी—अब कार्त्तिक महीने का कृत्य—

वायुपुराण में—तुला, मकर और मेष राशियों में प्रातः स्नान का विधान है । हविष्यान्न भोजन और ब्रह्मचर्य ये महापातक को विनष्ट कर देते हैं ।

यहाँ कार्त्तिक सौर महीने के क्रम में जानना चाहिए, ऐसी ठक्कुर की मान्यता है । इस संसार में मथुरा में मनुष्यों को कार्त्तिक महीने का निवास

दुर्लभ है; जहाँ भगवान् विष्णु स्वयं भक्तों से पूजित होकर उनहें धन देते हैं ।

कार्त्तिक स्नान के मन्त्र—

हे जनार्दन, कार्त्तिक महीने में मैं प्रात:काल स्नान करता हूँ । हे देवेश हे दामोदर, लक्ष्मी के साथ तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यह स्नान करता हूँ । 'मया' का अर्थ यहाॅ लक्ष्मी के साथ है । पद्मपुराण में—

हे महामुनि, आमले पेड़ों की छाया में जो व्यक्ति कार्त्तिक महीने में पितर निमित्तक पिण्डदान करता है । भगवान् विष्णु की कृपा से उनके पितरों को मुक्ति मिल जाती है । इस महीने में जो धात्री फल का लेप शरीर में लगाता है, धात्री फल से देह को सजाता है, आमले का फल खाता है वह सचमुच नररूप में नारायण है । आमले के पेड़ की छाया में इस महीने में जो भगवान् विष्णु की पूजा बैठ कर करता है; उसके अर्पित एक एक फूल में एक एक अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

नारदपुराण में—एक के बाद आने वाला दिन (अल्टरनेट डे) अर्थात् बीच में एक को छोड़कर दूसरे दिन उपवास करने वाला व्यक्ति पूजा अथवा तीन रात और तीन दिन लगातार व्रत रखने वाला व्यक्ति, अथवा हे सुन्दरि, कार्त्तिक महीने में, पूरे महीना, अथवा एक पक्ष या बारह दिन अथवा छ: दिन जो व्यक्ति केवल रात में ही एक बार भोजन करता हो, किसी से कुछ मांगता नहीं हो, उपवास करता हो, भिक्षाटन करता हो, निश्चय ही वह परम पद पाता है ।

मैथिली—आव कातिक मासक कृत्य—

वायुपुराणक अनुसार—तुल, मकर एवं मेष राशि गत सूर्यक स्थिति में कार्त्तिक मास में प्रात: स्नानक विधान अछि । ब्रह्मचर्यव्रतक पालन करैत व्रतोपयोगी पवित्र पदार्थक भक्षण जे व्यक्ति करैत छथि हुनक कयल महापातक सेहो विनष्ट भऽ जायत अछि ।

अहिठाम कार्त्तिकसौरमास क्रम में बुझवाक चाही ई ठाकुरक सिद्धान्त अछि।

तथा—संसार में मनुष्यकलेल मथराक निवास एवं कार्त्तिक मास दुर्लभ होयत अछि । आहिठाय भगवान् विष्णु स्वयं भक्त सँ पूजितभय धन प्रदान करैत छथि ।

कार्त्तिकस्नानक मन्त्र—

हे जनार्दन, हम कातिक मास में प्रात: स्नान करैत छी । हे देवेश, हे दामोदर महालक्ष्मीक संग अहाँक प्रसन्नवाकलेल हमर ई स्नान अछि । मया सहक तात्पर्य अहिठाम लक्ष्मीक संग अछि ।

पद्मपुराण में—

हे महामुनि, धात्रीक छाया में कातिक मास में जे व्यक्ति पितर निमित्तक श्राद्ध करैत छथि भगवान् विष्णुक कृपा सँ हुनक पितर लोकनिके मुक्ति भेंटि जायत छैन्हि ।

शरीर में धात्री फलक लेपलगौन, धात्री फल सँ सुशोभित अंग प्रत्यङ्ग, धात्री फलक आहारकयने नर साक्षात नारायण होयत छथि । धात्री के छाया में जे चक्रपाणि भगवान् विष्णुक पूजा करैत छथि, हुनक एक एक फूल में एक एक अश्वमेध यज्ञक फल प्राप्त होयत छैन्हि ।

नारदपुराण में कहलगेल अछि—

अहि मास में बीच में एक दिन छोड़ि कय जे उपवास करैत छथि, अथवा तीन दिन एवं तीन राति लगातार व्रत करैत छथि । बिना ककरो सँ किछु मांगने मास भरि केवल राति में जे एक भुक्त करैत छथि, अथवा, उपवास वा भैक्ष्यवृत्ति सँ जे जीवन यापन करैत छथि आ परम पद प्राप्त करैत छथि ।

विमर्शः—नारदीये—

कार्त्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु ।
कार्त्तिके वर्जयेन्मांसं कार्त्तिके शुक्त सन्धितम् ।।

शुक्तम् = आम्लम्, पर्युषितम् वा, सन्धितम् = सम्मिलितम् ।

आकाशदीपदानविधिः—स्कन्दपुराणे यथा—

तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते ।
आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति ।।
महतीं श्रियमवाप्नोति रूपसौभाग्य सम्पदः ।
उच्चैः प्रदीपमाकाशे यो दद्यात् कार्त्तिके नरः ।
सर्व कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोकमवाप्नुयात ।। इति ।।

अस्योद्यापनं तु वृश्चिक संक्रान्तौ शुद्धसमये सति कार्यम् । एकादशी व्रतोद्यापन्त्वैकादश्यां शुद्धे सतीति विज्ञेयम् ।

तथा च—धात्री वृक्षच्छायायां ब्राह्मणभोजने फलमुक्तं कार्त्तिकमाहात्म्ये—

धात्रीच्छायां समाश्रित्य भुङ्क्ते योऽन्नं हि मानवः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु वार्षिकं किल्विषं हरेत् ।।

कार्त्तिककृत्यनिर्णयः—तिथितत्त्वचिन्तामणौ । तुला संक्रमे षोडशघटिकाः प्रागपरा पुण्यकालः । व्यवहारस्तु राजमार्त्तण्डे यथा—

निशार्कचारान्निकटं दिनार्द्धम् । दिवार्कचारान्निकटाष्ट घट्यः । इत्यादि ।

अथ हविष्यविचार:—

हविष्याण्याह भविष्ये—

'हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यमुद्गास्तिलं यवाः ।
कलायं कङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ।।
षष्टिका कालशाकं च मूलकं केम्बुकेतरत् ।
कन्दं सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ।।
पयोऽनुद्धतसारं च पनसाम्रहरीतकी ।
पिप्पली जीरकं चैव नागरं कञ्जुतिन्तिली ।।
कदलीलवलीधात्रीफलान्यगुडमैक्षुवम् ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ।।'

हैमन्तिकं मार्गपौषोत्पन्नं धान्यं तस्यैव विशेषणम् । सितास्विन्नमिति सितं श्वेतम् स्विन्नम् उसिना इति प्रसिद्धम्, तद्भिन्नमस्विन्नम् । कंङ्गुः काउनि इति प्रसिद्धा । नीवार ओइरी इति प्रसिद्धा । षष्टिका शाठी इति प्रसिद्धा । मूलकमित्यस्य विशेषणं केम्बुकेतरत् इति केम्बुकम् केउआ इति प्रसिद्धम् । तद्भिन्नं सैन्धवसामुद्रे इति लवणे इति शेषः । अगुडमिति ऐक्षवमिस्य विशेषणम् । तेन इक्षुसम्बन्धिषु गुडभिन्नं सिताशर्करादिकं सर्वमेव हविष्यमित्यर्थः ।।

अब व्रतादि के अवसर पर खाने योग्य पवित्र पदार्थ (हविष्य) पर विचार हविष्य के सम्बन्ध में भविष्यपुराण से—

हिन्दी—अगहन महीने में उत्पन्न सफेद अरबा चावल, मूँग, तिल, जौ, मटर, कौउनी, तिन्नीधान, वास्तूक, हिलमोचिका (एक प्रकार के जंगली फल) शाठी धान, कालासाग, केउआ से भिन्नमूली, कंद, सिंन्धु नदी के पास से निकलने वाला सेंन्धानमक, गाय के दूध का दही और घी, बिना घी निकाले दूध, कटहल, आम, हर्रे, पिपरामूल, जीरा, नारंगी, कञ्जु, इमली, केला, लवली (एक प्रकार की लता का फल) आमला, गुड़ छोड़कर शक्कर और चीनी, तेल छोड़कर घृत पक्व को मुनिगण हविष्यान्न कहते हैं ।

हैमन्तिकम् = अगहन पौध में उत्पन्न धान, उसी का विशेषण सिता स्विन्न मितिसम् = सफेद, स्विन्नम = उसनाचावल, उससे भिन्न अरबाचावल । कञ्जु = काउनी नीवार = ओदरि अर्थात् तिन्नी; षष्ठिका = शाठी धान, मूलकम् का विशेषण केम्बु केतरत, कम्बुकम् = केउआ, प्रसिद्ध है । उसे छोड़कर, सैन्धव = सिन्धु नदी के पास उत्पन्न नमक इति । 'अगुडम्' यह ऐक्षव का विशेषण है, इससे ईख से सम्बन्धित गुड़ छोड़कर चीनी, शक्कर आदि सभी हविष्य है; यही अर्थ है ।

मैथिली—आव हविष्य केकरा कही ताही पर विचार—

हविष्यक सम्बन्ध में पद्मपुराण में—

अगहन पूसक उपजल धानक अरवा चारु, मूंग, तिल, जौ, केलाय, कउनी, तिन्नीधान, वास्तूक, हिलमोचिका (दुहूजंगली खाद्य) शाठी धान, कारी साग, केउआ रहित मूली, कन्द, सेन्धालवण, गव्य, गायक दही, घी, बिना घी निकालल दूध, कटहल, आम, हर्रे, पीपरि, जीर, नारंगी, कंचु, तेतरि, केला, लताक फल, धात्रीफल, कुशियारक गुड़, नहि मुदा शक्कर चीनी, तेलपक किछु नहि मुदा घृत पक्व वस्तुजात के मुनिगण हविष्यान्न कहैत छथि ।

हैमन्तिक = अगहन युतक धान, तकरे विशेषण सितास्विन्न, अर्थात् सितम् = श्वेत वर्ण, स्विन्नम् = उसिना, तकरा सँ भिन्न, अर्थात् अरवा, कंगुः = काउनि, नीवार = ओइनी, षाष्टिका = शाठी, मूलकम् एकर विशेषण केम्बुकेतरत् अछि, केम्बुकम् = केउआ, एकरा सँ भिन्न सैन्धव = सामुद्रे ई लवणक विशेषण अछि, 'अगुडम्' ई कुशियार सँ उत्पन्न वस्तुक विशेषण अछि । एकरा सँ कुशियार सँ उत्पन्न गुड़ से भिन्न चीनी, शक्कर आदि हविष्यमांगल गेल अछि ।

विमर्शः—अगस्त्यसंहितायाम्—

नारिकेलफलं चैव कदलीं लवलीं तथा ।
आम्रमामलकीञ्चैव पनसं च हरीतकीम् ।।
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधः ।

निर्णयनिबन्धे तु—'यत्नपक्वमपि ग्राह्यं कदलीफलमुत्तमम्' ।

तथा चाह कात्यायनः—

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुव्रीहयोः मताः । माषकोद्रवगौरादीन् सर्वाभावे विवर्जयेत् ।।
यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् । यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ।।
अलाबूं वर्तुलाकारं वार्ताकींकुन्दसन्निभां । अन्न पाचितवार्ताकीं खादन् गोमांसभक्षणम् ।।

कुन्दसन्निभां श्वेताम् ।

कुसुम्भं नालिकाशाकम् वृन्ताकं पूतिकां तथा ।
भक्षयन् पतितः स स्यादपि वेदान्तगो द्विजः ।। कृत्यशिरोमणौ—

यः करोति नरो नित्यं कार्त्तिके पत्रभोजनम् ।
न दुर्गतिमवाप्नोति यावदिन्द्रास्चतुर्दश ।।
भोजनं पद्मपत्रेषु महापातकनाशनम् ।
कार्त्तिके मुक्तिदं प्रोक्तं ब्रह्मपत्रेषु भोजनम् ।।

ब्रह्मपत्रम् = पलाशपत्रम् ।

देवीपुराणे— 'कार्त्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं गङ्गायमुनसङ्गमे ।'

मांस वर्ज्यत्वमुक्तं महाभारते यथा——

मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत्तु शतं समाः । न खादति च यो मांसं सममेतद्युधिष्ठिर ।।
यस्तु वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत्सुदारुणम् । यश्च वै वर्जयेन्मांसं समौ तौ न च संशयः ।।
इत्यादि । तथाच——

कार्त्तिके सकलं मासं नित्यस्नायीजितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुक शान्तः सर्वपापैः विमुच्यते ।।

कार्त्तिके तु राजमाष—पटोल—कदम्ब—शूरण—वृन्ताक मूलक—श्वेतशिम्बि—मांस—मत्स्य—कोद्रव—नालिशाक—तुम्बीफल—कुसुम्भ—पूतिकाः वर्ज्याः ।

अथ आमिषविचारः——

आमिषाण्याह पाद्मे——

'प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम् ।
अयज्ञशिष्टं माषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् ।।
दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामिषम् ।
गोछागीमहिषीदुग्धादन्यद्दुग्धं तु आमिषम् ।।
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अननं पर्युषितं तथा ।
द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ।।
ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् ।
आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ।।'

प्राण्यङ्गचूर्णम् शुक्तिकादिचूर्णम् ।

हिन्दी——अब मांस (आमिष) पर विचार——

पद्मपुराण में मांस कितने तरह के होते हैं? कहा गया है । यथा——

सितुई का चूना, मशक का पानी, चकोतरे (जम्हीरी नींबू), बिजौरा नींबू, यज्ञ को छोड़कर बचा हुआ उरद आदि जो भगवान् विष्णु को अर्पित नहीं किया गया हो, जला हुआ अनाज, मसूर, और मांस ये आठ आमिष कहलाते हैं ।

गाय, बकरी और भैंस के दूध के अलावा अन्य दूध आमिष है । अन्न में मसूर तथा बासी अनाज, ब्राह्मणों से खरीदे गये सारे रस, खनिज नमक, तामे के वर्तन में रक्खे गये गाय के दूध, दही और घी, छोटे तालाब या गड्ढ़े का पानी, तथा केवल अपने लिए पकाया गया अन्न, इन्हें बुद्धिमान लोग आमिष कहते हैं । प्राण्यङ्गचूर्णम् = सितुई आदि के चूर्ण अर्थात् चूने वगैरह ।

मैथिली——आव आमिष अर्थात् मांस पर विचार, आमिष किसे कहते हैं? पद्मपुराण में——

सितुईक चूर्ण, मशककजल, जम्बीरी नींबू, बीज पूरक (नींबूक एक प्रजाति विशेष, विजौरा) विना यज्ञक अवशिष्ट उड़ीद प्रभृति, जे अन्न भगवान् विष्णु के अर्पित कयल नहिं होय, जरल अन्न, मसूर एवं मांस ई आठ तरहक आमिष कहलगेल अछि । गाय, बकरी एवं महिषक दूध छाड़ि आन जीवक दूध सेहो आमिषे मानल जायत अछि । अन्न में मसूरी तथा वासि अन्न, ब्राह्मण सँ कीनल सब तरहक रस, भूमिज लवण, तामाक पात्र में राखल गायक दूध, दही एवं घी तथा पोखरि या गढा में राखल जल केवल अपनालेल राखल अन्न के विद्वान् लोकनि आमिष कहैत छथि । इति ।।

प्राण्यङ्गचूर्ण = सितुआक चूर्ण अर्थात् सितुआक चून ।

अथामावस्यादिकृत्यम्—

'वनस्पतिगते सोमेऽनड्वाहौ यस्तु वाहयेत् ।
नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च ।।'

इति वचनादमावास्यायां वृषवाहने महादोषः तस्येति पिण्डादिकमिति शेषः । स्मृतिः—

'येयं दीपान्विता राजन् रव्या पञ्चदशी भुवि ।
तस्यां देयं न चेद्दत्तं पितॄणां तु महालये ।।' इति ।

दीपान्विता पञ्चदशी कार्त्तिकामावास्या, पितॄणां महालये । तथा च पितृपक्षे महालये, येन श्राद्धं न कृतं तेनात्र श्राद्धं कर्तव्यमिति तात्पर्यम् ।

अन्यच्च— 'कन्याङ्गते सवितरि पितृराजानुशासनात् ।
तात्प्रेतपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम् ।।

ततो वृश्चिक आयाते निराशाः पितरो गताः ।
पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।।' इति

तथा चामावास्यायामप्यकृते श्राद्धे पितरो निराशाः सन्तः दत्त्वा यान्तीत्यतोऽवश्यमेव पार्वणमपरपक्षे येन न कृतं तेनात्र कर्त्तव्यमिति भावः ।।

हिन्दी—अब अमावास्या आदि के कृत्य—

चन्द्रमा के वनस्पतिगत होने पर अर्थात् अमावस्या के दिन जो व्यक्ति बैल को वाहन बनाता है उसके पितर पन्द्रह साल तक उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड ग्रहण नहीं करते हैं ।

इस वचन के अनुसार कार्तिक अमावस्या के दिन बैलों को वाहन बनाने में महादोष होता है । 'तस्य' से तात्पर्य उसकी पिण्डादिक क्रिया से है । स्मृतिकारानुसार—जिसने महालया में पितर निमित्तक पिण्ड दानादिक श्राद्ध

नहीं किया उसे विश्वविख्यात दीप मालिकायुक्त कार्त्तिक अमावस्या में पितर निमित्त श्राद्ध अवश्य करना चाहिए ।

दीपान्विता अर्थात् कार्त्तिक कृष्ण अमावस्या, पितृणाम् = पितर निमित्तक महालये = पितृपक्ष में, और, पितृपक्ष में जिसने श्राद्ध नहीं किया, उसे अमावस्या में श्राद्ध करना चाहिए, यही तात्पर्य है । और भी—

कन्याराशिगत सूर्य के होने पर यमराज के आदेश से सम्पूर्ण प्रेतपुरी तब तक शून्य हो जाती है जब तक सूर्य वृश्चिक राशि में नहीं पहुँच जाय । इस बीच जिसने पितर निमित्तक पिण्ड दान नहीं किया, उसके पितर निराश होकर तथा अपने वंशजों को घोर श्राप देकर पितृलोक लौट जाते हैं । इति ।

और भी—कार्त्तिक अमावस्या में भी जो पितर निमित्तक श्राद्ध नहीं करते उनके पितर निराश होकर शाप देकर लौट जाते हैं । अत: अपर पक्ष में जिसने पार्वण श्राद्ध नहीं किया, उसे कार्त्तिक अमावस्या में अवश्य ही श्राद्ध करना चाहिए । यही भाव है ।

मैथिली—आव कार्त्तिकअमाक कृत्य—

कार्त्तिक अमावास्याक दिन जे व्यक्ति बड़दक सवारी करैत छथि, हुनका द्वारा प्रदत्त पिण्ड पन्द्रह वर्ष धरि हुनक पितर ग्रहण नहिं करैत छथि । अहि वचने अमावस्याक दिन वृषवाहने महादोष होयत अछि । तस्येति पदेन पिण्डादिक होयत अछि ।

स्मृतिक अनुसार—दीपमालिका युक्त जे ई पञ्चदशमी अर्थात् अमावास्या विश्वविरक्त अछि तकरा में स्त्री व्यक्ति जे कोनो कारणे पितृ निमित्तक श्राद्ध महालया में नहि कय सकलैन्हि ओ अहि अमावास्या में अवश्य पिण्डदान करथु ।

दीपान्वितापञ्चदशी अर्थात् कार्त्तिक अमावास्या पितरकलेल, महालये अर्थात् पितृपक्ष में जे श्राद्ध नहि कयलैन्हि हुनका लेव अमावास्या में श्राद्धकरव आवश्यक अछि । अहिकथनक एतवहि तात्पर्य अछि । दोसरो वचन अछि—

यमराजक आदेश सँ सूर्य के कन्याराशिगत भेला उत्तर, यावत् काल धरि सूर्य वृश्चिक राशिगत नहि भऽजायत छथि तावत् काल धरि पितर लोकनि प्रेतपुरी छोड़ि दैत छथि । वृश्चिक राशिगत सूर्य के भेलाधरि जे अपन पितर निमित्त श्राद्ध नहि करैत छथि हुनक पितर निराश भय हुनका दारुण श्राप दय अपन अपन स्थान पर धुरि जायत छैथि—इति ।

कार्त्तिक अमावास्यो में जे श्राद्ध नहि करैत छथि हुनक पितर निराश भय, श्रापदय धुरि जायत छथि । ताय अपर पक्ष में जे श्राद्ध नहि कयने रहैत छथि हुनका अमावास्या में अवश्य श्राद्ध करवाक चाही ।

अथ उल्काभ्रमणम्—स्कान्दे—

'ततः प्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोरमान् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च ।।' इति ।

ज्योतिषे— 'तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ।
उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम् ।।'

एतेन प्रदोषव्यापिन्याममावास्यायामुल्काभ्रमणमिति तात्पर्यम् । उभयदिने प्रदोषव्यापिन्या अमावास्याया लाभेऽलाभे च परदिने एव ।

'दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्याच्चापरेऽहनि ।
तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽन्हि सुखरात्रिका ।।' इति ज्योतिर्वचनात्।

तथा च— दर्शश्राद्धं भवेद्दशऽपराह्णे प्रतिपद्यपि ।
प्रदीपोल्कादिकं कार्यं तत्प्रदोषे न दुष्यति ।।

इति म. म. शुभङ्करठक्कुरधृततिथिनिर्णये ।

'भूताहे ये प्रकुर्वन्ति उल्काग्रहमचेतनाः ।
निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।।

इति वचनाच्च । उत्तरदिने प्रदोषे दर्शाभावे पूर्वदिने एव कर्मकालस्य मुख्यत्वात् । तुलासंस्थे सहस्रांशाविति प्रागुक्तज्योतिर्वचनाच्च । 'भूताहे ये प्रकुर्वन्तीत्यादिवचनस्योभयदिने प्रदोषेऽमावास्याया लाभेऽलाभे च पूर्वदिने कर्तव्यतानिषेधकत्वं तिथितत्त्वे स्मार्तोऽप्येवम् ।

उल्काग्रहणमन्त्रस्तु— 'शस्त्राशस्त्रहतानां च भूतानां भूतदर्शयोः ।
उज्ज्वलज्ज्योतिषा देहं निर्दहे व्योमवह्निना ।।'

भ्रमणमन्त्रस्तु— 'अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।
उज्ज्वलज्ज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम् ।।' इति ।

अथ विसर्ज्जनमन्त्रस्तु—ब्रह्मपुराणे—

'यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये ।
उज्ज्वलज्ज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते ।।' इति ।

हिन्दी—लुक घुमाने की क्रिया के सम्बन्ध में—

स्कन्दपुराण में—इसके बाद प्रदोष वेला में ब्रह्म, विष्णु और शिव मन्दिरों मठों एवं अपने घरों को सुन्दर दीपों से सजाना चाहिए ।

ज्योतिष में—तुला राशि में सूर्य के रहने पर तथा प्रदोष बेला में अमावस्या रहने पर हाथ में लुक लेकर मनुष्यों को पितरों का मार्गदर्शन करना चाहिए । इससे प्रदोष व्यापिनी अमावास्या में उल्का भ्रमण सिद्ध होता है ।

यदि दो दिन प्रदोष व्यापिनी अमावास्या मिले या न मिले तो भी दूसरे दिन ही उल्का भ्रमण करना चाहिए ।

दूसरे दिन रात में यदि एक दण्ड भी अमावास्या उपलब्ध हो तो पहला दिन छोड़कर दूसरे दिन सुखारात्रि मनानी चाहिए । ज्योतिषशास्त्र के इस वचन से भी यही सिद्ध होता है ।

अमाश्राद्ध दूसरे दिन थोड़ी अमावास्या रहने पर प्रतिपदा म भी करना चाहिए । दीप जलाना तथा उल्कों भ्रमण उस दिन प्रदोष काल में करने पर कोई दोष नहीं होता है ।

यह वचन म.म. शुभङ्कर ठक्कुर धृत तिथिनिर्णय में कहा गया है—

अज्ञानतावश पूर्वदिन ही जो उल्का भ्रमण करते हैं उनके पिता उन्हें दारुण श्राप देकर निराश होकर लौट जाते हैं ।

इस वचन से भी । उत्तर दिन प्रदोष काल में अमावास्या के अभाव रहने पर पहले दिन प्रदोष बेला में अमावास्या रहने पर प्रथम दिन, दिन में ही कर्म कलाप की मुख्यता मानी गई है । 'तुलासंस्थे सहस्रांशौ' पहले कहे गये वचन से भी इस कथन की सम्पुष्टि होती है । 'भूताहे ये प्रकुर्वन्ति' इत्यादि वचन में जो दोनों दिन प्रदोष काल में अमावास्या का योग या अयोग की स्थिति में पूर्वदिन में कर्त्तव्यता का निषेध किया गया है । तिथितत्त्व और स्मार्त्त के मत में भी यही है ।

उल्का हाथ में लेने का मन्त्र—हथियार से या बिना हथियार के मारे गये प्राणियों की ज्योतिर्मयी देह कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या में आकाशरूपी अग्नि से जले ।

लुक घुमाने का मन्त्र—मेरे खानदान में जो व्यक्ति अग्नि संस्कार के साथ गये किम्बा बिना मुखाग्नि के गये वे इस उज्ज्वल ज्योति में जलकर परमगति प्राप्त करें ।

विसर्जन मन्त्र बह्मपुराण में—इस मदालया में यमलोक छोड़कर जो यहाँ आये, इस उज्ज्वल प्रकाश से अपनी राह देखते हुए लौट आयँ ।

मैथिली—आव उल्काभ्रमण, स्कन्दपुराण में—

एकरवाद ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवक मन्दिर, मठ तथा अपन घर-आंगन के प्रदोष बेला में सुन्दर दीप जलाकय सजयवाक चाही ।। इति ।

ज्योतिष में—तूल राशिस्थसूर्य रहला पर कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी एवं अमावास्याक प्रदोषकाल में हाथ में लुकलय अपन पितरक मार्गदर्शन लोक सबके करवाक चाही ।

एकरा सँ प्रदोषव्यापिनी अमावस्या में उल्काभ्रमण करवाक चाही ई सिद्ध होयत अछि । दुहू दिन प्रदोषव्यापिनी अमावस्या भेंटय अथवा नहि दोसरे दिन उल्का भ्रमण करवाक चाही ।

दोसर दिन राति में यदि एकोदण्ड अमावस्याक योग होय तऽ पहिल दिन छोड़ि दोसर दिन सुखराति करवाक चाही । ई ज्योतिषक वचन से आओर आनो वचन जेना—

अमावस्याक श्राद्ध अपरान्ह में पड़िव रहलो उत्तर यदि कनिको अमावस्या उपलब्ध हो तऽ वाही में करवाक चाही । दीपमालिका एवं उल्काभ्रमण में प्रदोष काल में दोष नहि होय । ई म.म. शुभङ्कर ठक्कुर कृत तिथिनिर्णयक वचन अछि—

अज्ञानतावश चतुर्दशी में जे उल्का भ्रमण करैत छथि हुनक पितर निराश भय हुनका दारुण शाप दय धुरि जायत छथिन । ई वचन सेहो अछि ।

उत्तर दिन प्रदोष काल में यदि अमावस्याक अभाव होय आ प्रथम दिन प्रदोष वेला में अमावस्या उपलब्ध होय तऽ पहिलु के दिन सब कृत्य करवाक चाही । एकरे प्रमुखता छैक । 'तुला संस्थे सहस्रांशाविति' पछिने जे ई वचन कहलगेल अछि तकरो से सम्पुष्टि होयत अछि । 'भुताहे ये प्रकुर्वन्ति' इत्यादि वचनक दुहूदिन प्रदोष में अमावस्या भेंटय किम्वानहि पूर्वदिन में कर्त्तव्यताह निषेधर ई वचन अछि । तिथितत्त्व एवम् स्मृति सेहो एकर समर्थन करैत छथि—
उल्का ग्रहण मन्त्र—

शस्त्र अथवा बिना शस्त्रक मारलगेल प्राणीक ज्योतिर्मय शरीर कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी एवं अमावस्या में आकाशक आगि में प्रज्ज्वलित होय । लुक घुमयवाक मन्त्र—हमरा कुल में जिनका मुखाग्नि भेंटल छैन्हि अथवा जिनका नहि भेंटल छैन्हि ओ सब गोटे उज्ज्वल ज्योतिरूपी आगि में जलि परम गति प्राप्त करथु ।

ब्रह्मपुराण में विसर्जनक मन्त्र—

यमलोक के छोड़ि महालया में जे पितरलोकनि आयल छथि उज्ज्वल ज्योति में अपन राह देखैत ओ सब थुरिजाथि ।

विमर्श:—

अस्य कर्मण: प्रदोष समय उक्तत्वात् । तद्व्यापिनीग्राह्या, उभयदिने प्रदोष–समयलाभे परदिन एव ।

तथा च मदनरत्ने भविष्ये (ति०त० चिन्तामणौ)—

एवं गते निशीथे तु जने निद्राभ्य लोचने ।
तावन्नगर नारीभि: शूर्पडिण्डिमवादनै: ।।
निष्काश्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मी: स्वगृहाङ्गणात् ।

म.म. पं. राजनाथमिश्रधृत राजमार्त्तण्डे—

दण्डैकं रजनी प्रदोषसमये दर्शे यदा संस्पृशेत्
कर्त्तव्या सुखरात्रिकाऽत्र विधिना दर्शाद्यभावे तदा ।
पूज्या चाब्जधरा सदैव च तिथि: सैवाहनि प्राप्यते
कार्यभूतविमिश्रिता जगुरिति व्यासादिगर्गादय: ।।

अब्जधरा: लक्ष्मी: ।

अमावस्या यदा रात्रौ दिवाभागे चतुर्दशी । पूजनीया तदा लक्ष्मीर्विज्ञेया सुखरात्रिका ।।

अत्रैव निशीथे श्यामापूजामाह कामाख्यातन्त्रे—

शरत्काले च देवेशि ! दीपयात्रादिने तथा । अमावास्यां समासाध्य मध्यरात्रौ विचक्षण: ।।
मृण्मयी पुत्तलीं कृत्वा दीपादिभिरलङ्कृताम् । बलिं नानाविधं दद्यात् वाद्यभाण्डसमन्वितम् ।।
नृत्यं गीतं कौतुकानि यावत्सूर्योदयं चरेत् । प्रात:काले शुद्धतोये स्थापयेदविनाशिनीम् ।।

अत्र मध्यरात्रिश्रवणान्निशीथव्यापिनी श्यामापूजायां ग्राह्या । तथाच भविष्येऽपि—

प्रतिसंवत्सरं कुर्यात्कालिकायां महोत्सवम् ।
कार्त्तिके तु विशेषेण अमावास्या निशार्द्धके ।
तस्यां सम्पूजयेद्देवीं भोगमोक्षप्रदायिनीम् ।।

उभय दिने निशीथव्याप्तौ यत्र प्रदोषे भवेत्तदैव । तथोक्तं कुलसर्वस्वे—

प्रदोषव्यापिनी यत्र महानिशा च सा भवेत् ।
तदैव कालिका पूज्या दक्षिणा मोक्षदायिनी ।।

यदोभयदिने तदा चतुर्दशीयुता ग्राह्या—

अर्द्धरात्रे महेशानि अमावास्या यदा भवेत् ।
चतुर्दशीयुताग्राह्या चामुण्डा पूजने सदा ।। इत्यागमात् ।

तथा— यत्रोभयदिने भूतयुक्तकुह्वां महानिशि ।
इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्त्ती नृपो भवेत् ।।

तदतिरिक्तदिने यदि पूर्वदिने प्रदोषव्यापिनी उत्तरदिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी तदोत्तरैव ग्राह्या । तथा च कुलसर्वस्वे—

महानिशा दिने देवि प्रतिपच्च यदा भवेत् । कालीकैवल्ययोगोऽयं तद्दिनेकालिकार्चनम् ।।

अथ दीपमालिकादानफलमाह—

'य: कुर्यात्कार्तिके मासे शोभनां दीपमालिकाम् ।
घृतेन च चतुर्दश्याममायां च विशेषत: ।।
यावद्दीपप्रसंख्या तु घृतेनापूर्य बोधिता ।
तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।'

हिन्दी—अब दीपमालिका दान का फल—

कार्त्तिक महीने में जो सुन्दर ढंग से दीवाली मनाते हैं । खाश कर कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या को घी के दीये जलाते हैं, वे दीपों की जितनी संख्या होती है उतने हजार वर्ष स्वर्गलोक में वास करते हैं ।

मैथिली—आव दीपमालिका देवाक फल—

जे व्यक्ति कार्त्तिक मास में सुन्दर रीत्या दीपावली मनावैत छथि विशेष रूपे कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी एवं अमावस्याके घीयक दीप जलदैत छथि ओ दीपक संख्या जतेक होयत छैक, तत वहि हजार वर्ष स्वर्ग लोक में वास करैत छथि ।

विमर्शः—कृत्यशिरोमणिधृत देवीपुराणे—

तुलास्थे दीपदानेन पूजाकार्या महाफला ।
दीपवृक्षः प्रकर्त्तव्यो दीपचक्रमथापरम् ।।
दीपयात्रा प्रकर्त्तव्या चतुर्दश्यां कुहूषु च ।
सिनीवाली यदा यत्र तदा कार्या महाफला ।।

अथ गोक्रीडादौ—

प्रतिपदमावास्यायुतैव ग्राह्या । तथा हि नारदः—

'या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप ।
पूजनात् त्रीणि वर्द्धन्ते प्रजा गावो महापतिः ।।'

स्मृतिरपि— 'शिवा च शिवदुर्गा च दुर्भगा च हुताशनी ।
गोपूजा च वटच्छाया कर्तव्या प्रथमे दिने ।।'

देवलोऽपि— प्रतिपद्दर्शसंयोगे गवां वै क्रीडनं भवेत् ।
परविद्धासु करणात् पुत्रदारधनक्षयः ।। इति ।

स एव— प्रतिपद्याग्निकरणं द्वितीयायां गवार्चनम् ।
क्षत्रक्षयं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम् ।। इति ।

नारदोऽपि—'भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति' । इति ।

भद्रायां द्वितीयायुतायाम् । एतच्च द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसम्भावनायाम् । अत एवपुराणसमुच्चयेऽपि—

'गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ।
सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभीपूजकांस्तथा ।।' इति ।

प्रतिपदुत्तरं सूर्यास्तमनकालपर्यन्तं षण्मुहूर्त्तान्न्यूना यदि द्वितीया तदा चन्द्रदर्शनसम्भावना सर्वसम्मता । अत्र यदि प्रतिपदि षण्मुहूर्त्तव्यपिनी द्वितीया तत्र चन्द्रदर्शनसम्भावनात् गोक्रीडनं न कार्यमिति तिथिनिर्णयः । ठक्कुरैरपि या

कुहूरित्यादि पूर्ववचनान्यभिधाय एते विधिप्रतिषेधाः पूर्वदिने प्रतिपदः सायाह्न-व्यापित्वे द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसम्भवे च ज्ञेयाः । दिनद्वये सायाह्नव्यापित्वे परैव ग्राह्येत्यभिहितम् । एवं च द्वितीयदिने यदि प्रतिपदुत्तरं सूर्यास्तमनकाल-पर्यन्तं षण्मुहूर्त्तन्यूनैव द्वितीया तदा चन्द्रदर्शनसम्भावनाया अभावात् द्वितीया-युतैव ग्राह्या । तत्रैव पुराणसमुच्चयः—

वर्द्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्द्धत्रियामिका ।
द्वितीया वृद्धगामित्वादुत्तरा तत्र बोध्यते ।। इति ।

चन्द्रादर्शने तु द्वितीयायुतैव । ग्राह्येति तिथिनिर्णयः ।

'सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम् ।' इति ।

पूर्वाह्णः सार्द्धप्रहरं यावत् । तथा हि तिथिचन्द्रिकायाम्—

पूर्वाह्णः प्रहरं सार्द्धं मध्याह्नः प्रहरं तथा ।
तत्तृतीयोऽपराह्णः स्यात्सायाह्नश्च ततः परम् ।।' इति ।

'कुहूः प्रतिपद्युता यत्र गावस्तत्र न पूजयेत् ।' इत्यादि स्मृतयोऽपि । द्वितीयदिने द्वितीयायाः षण्मुहूर्त्तान्यूनत्वे पूर्वयुक्तायाः कर्तव्यतानिषेधकत्त्वेन व्याख्येया इति सर्वं सुस्थम् । विशाखायां गोपूजानिषेधमाह राजमार्तण्डे—

'विशाखायाममावास्या विशाखा प्रतिपद्युता ।
आयुः पुत्रं धनं हन्ति सुरभीपूजकांस्तथा ।।'

सुरभी गौः ।।

हिन्दी—अब गोक्रीडा में परिवा अमावस्या युक्त ही ग्राह्य है । नारदपुराण में—

हे राजन्, जो परिवा मिली अमावास्या होती है, उसी में गोपूजा करनी चाहिए । इस पूजन से तीन की बृद्धि होती है—गाय, प्रजा और राजा ।

स्मृति में भी—पार्वती, शिव, दुर्गा, दुर्भगा, होलिका, गोपूजा, वट सावित्री, का पूजन पहले दिन ही करना चाहिए ।

देवल ने भी कहा है—परिवामिश्रित अमावस्या में गोक्रीड़ा होनी चाहिए। ये गोक्रीड़ा परविद्धा करने से बेटे, पत्नी एवं धन का विनाश होता है। इति ।

वहीं—परिवा में अग्निकरण, द्वितीया में गोपूजा, क्षत्रभंग, वित्तनाश और कुल क्षय करते हैं ।

नारदपुराण में भी—भद्रा में अर्थात् द्वितीया में जहाँ गोवंश की क्रीड़ा होती है, वह देश नष्ट हो जाता है, यहाँ भद्रा का अर्थ द्वितीया युक्त है ।

और यह भी—इससे दूसरे दिन चन्द्र दर्शन की संभावना में ।

इसलिए पुराण समुच्चय में भी—गोक्रीड़ा के दिन रात में जहाँ चन्द्रमा दिखलाई दे, तो वह चन्द्रमा राज, पशु एवं गोपूजकों को मारता है । इति ।

परिवा के बाद सूर्य के अस्त होने के समय तक छः मुहूर्त्त से अधिक द्वितीया हो तो सर्वसम्मत चन्द्रदर्शन की संभावना होती है । यहाँ ज़ब परिवा में छः मुहूर्त्त व्यापिनी द्वितीया हो तो वहाँ चन्द्र दर्शन की संभावना में गोक्रीड़ा नहीं करनी चाहिए । ऐसा तिथि निर्णय का कथन है ।

ठाकुर जी ने भी 'या कुहूरित्यादि' पूर्वलिखित वचन को सामने रख कर तिथि और निषेध का प्रतिपादन किया है वह पहले दिन सायाह्णव्यापी परिवा तथा दूसरे दिन चन्द्रदर्शन ही संभावना में जानना चाहिए । यदि दोनों दिन सायाह्नव्यापी परिवा हो तो दूसरे दिन का ही ग्रहण करना चाहिए । इस तरह दूसरे दिन यदि परिवा के बाद सूर्यास्त समय तक छः मुहूर्त्त से कम द्वितीया हो तो फिर चन्द्र दर्शन की संभावना नहीं रहती । ऐसी स्थिति में द्वितीयायुता ही ग्रहण करनी चाहिए । यहाँ ही पुराणसमुच्चय—

बढ़ती हुई तिथि में परिवा जब साढ़े तीन पहर की हो और द्वितीया वृद्धयात्रित्व हो तो बाद वाली समझना चाहिए । चन्द्रमा नहीं दिखलाई देने पर द्वितीयायुता ग्राह्य है । यह तिथिनिर्णय का सिद्धान्त है ।

सायाह्ण में होलिका तथा पूर्वाह्ण में गोक्रीड़ा करनी चाहिए । पूर्वाह्ण सूर्योदय से डेढ़ पहर तक, दोपहर एक पहर का, उसके बाद तीसरा पहर अपराह्ण होता है और उसके बाद सायाह्ण होता है । इति ।

जहाँ परिवा युक्त अमावास्या हो, वहाँ गोपूजा नहीं करनी चाहिए । इत्यादि स्मृति के वचन भी हैं । दूसरे दिन द्वितीया छः मुहूर्त्त से कम रहने पर पूर्व युक्ता की कर्त्तव्यता के निषेधत्वेन व्याख्याक करने से सब सुस्थिर हो जाता है । विशाखा नक्षत्र में गोपूजा का निषेध राजमार्तण्ड में किया गया है—

विशाखा नक्षत्र में अमावस्या हो या विशाखा परिवा युक्त हो तो उसमें गोपूजा करने से गोपूजक का आयु, पुत्र और धन का नाश होता है ।

मैथिली—आव गोक्रीडा में परिवा अमावस्या युक्ते ग्राह्य अछि ।

नारदपुराण—हे राजन्, परिवायुक्त अमावस्या में गोपूजन कयला उत्तर प्रजा, गाय एवं महीपति ई तीनक वृद्धि होयत अछि । गौरी पूजन, शिवरात्रि, दुर्गा एवं काली, होलिका, गोक्रीड़ा एवं वटसावित्रीक पूजन प्रथम दिन करवाक चाही ।

देवलक अनुसार—परिवायुक्त अमावस्या में गोक्रीड़ा हयवाक चाही, परविद्धा गोक्रीड़ा कयने पुत्र, पत्नी एवं धनक्षय होय ।

परिव दिन होलिका दहन, द्वितीया में गवार्चन कराने क्षत्र क्षय, विनाश एवं कुलक्षय होय । इति ।

नारदपुराण में—भद्रा अर्थात् द्वितीया में जाहि देश में गोक्रीड़ा होय से देशक विनाश भऽ जायत अछि । भद्रायाम्, से द्वितीया युक्त वुझक जायत अछि । एकरा सँ दोसर दिन चन्द्र दर्शन संभावना होयत अछि ।

अतएव पुराण समुच्चयो में—गोक्रीड़ाक दिन जतयऽ राति में चन्द्रमा देखल जाय ताहिठाम रात चन्द्र गाय एवं हुनक पूजक के विनष्ट कय दैत छथिन ।

परिवाक वाद सूर्यास्त धरि छः मुहूर्त्त से अधिक यदि द्वितीया होय तऽ चन्द्रदर्शनक संभावना सर्वसंभव होयत अछि । अहिठाम जो परिवार में छः मुहूर्त्तव्यापिनी द्वितीया होय तखन चन्द्र दर्शनक संभावना में गोक्रीड़ा नहि करवाक चाही; ई तिथि निर्णयक सिद्धान्त अछि । ठक्कुरक मत में सेहो 'या कुहू रित्यादि पूर्ववचनानुसार एतेक विधि निषेधक व्याख्यां कयलगेल अछि । पूर्वदिन में परिवा सायाह्न व्यापित्व में द्वितीय दिन चन्द्रदर्शनक संभावना बुझवाक चाही । दुहूदिन यदि सायाह्न व्यापित्व भेटय तखन दोसर दिन करवाक चाही । एवं विध दोसर दिन यदि परिवाक वाद सूर्यक अस्त धरि छः मुहूर्त्त सँ कम द्वितीया होय तखन चन्द्रदर्शन संभावना स्वतः समाप्त भऽ जायत अछि । एहन स्थिति में द्वितीयायुता ग्राह्य अछि । वहीठाम पुराणसमुच्चयक वचन अछि—

वर्द्धमान तिथि में यदि परिवा साढे तीन पहरक होय तथा द्वितीया सेहो वृद्धगामी होय तऽ उत्तरा बुझवाक चाही । इति ।

चन्द्रक दर्शन में द्वितीयायुतैव ग्राह्य अछि । ई तिथिनिर्णयक सिद्धान्त अछि । 'सायाह्न में होलिकादहन तथा पूर्वाह्ण में गोपूजा करवाक चाही । पूर्वान्ह डेढ पहर होयत अछि । तिथि चन्द्रिका में कहलगेल अछि—

डेढपहरक पूर्वान्ह एक पहरक मध्याह्न, ओकर तेसर पहर अपरान्ह तकर वाद सायाह्न । इति ।

जइठाम परिवायुक्त अमावस्या होय ताहि दिन गोपूजा नहि करवाक चाहि । स्मृतियोंक ई विचार अछि । जे दोसर दिन द्वितीया यदि छः मुहूर्त्त सँ कम होय तऽ पूर्वयुक्ता में गोपूजन निषेध अछि । विशाखा नक्षत्र में गोपूजा के निषेध राजमार्तण्ड में अछि ।

विशाखा नक्षत्र मे अमावास्या होय एवं विशाखा परिवा युक्त होय ताहि में गोपूजन कयने गोपूजकक आयु, पुत्र एवं धनक नाश होय । सुरभीक अर्थ गाय ।

विमर्शः—अत्र फलितार्थस्तु कृत्यशिरोमणौ यथा—

सा च यदि षण्मुहूर्त्तव्यापिनी द्वितीया प्रतिपदुत्तरं तदा पूर्वदिने अमायुक्त प्रतिपदि गोक्रीड़ा कर्त्तव्या । षण्मुहूर्त्तान्न्यूनद्वितीयायुतायामेव कार्येति सर्वमैथिलनिबन्ध फलितार्थः । तत्साधकग्रन्थ प्रतीको वाचस्पतिमिश्र कृत तिथिनिर्णये सुखरात्रिनिर्णयावसरे यथा—सा च तिथिक्षये क्रीड़ादौ पूर्वयुतैव कार्या, तिथिवृद्धौ तूदयव्यापिनी ग्राह्या ।

अत्र मुहूर्त्तपदं घटिकोपलक्षणम्, अन्यथा—

द्वितीया त्रिमुहूर्त्त चेत् प्रतिपद्यापराह्निका ।
अन्वाधानश्चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात् ।।

इत्युत्तराभिहितवृद्धशातातपवचनेन विरोधापत्तेः । अत उक्तं तिथिनिर्णये राजनाथ–मिश्रैः—चन्द्रदर्शनसंभावनामाह शातातपः—

द्वितीया त्रिमुहूर्त्ता, इत्यादि मुहूर्त्तो घटिकाद्वयमित्यभिधानात्, घटिकाषट्कस्य किञ्चिन्न्यूनत्वेऽपि यामोपलक्ष्यकता पुराणसमुच्चयेन सहैक वाक्यतानुरोधात् । शुभङ्कर-ठक्कुरो अपि द्वितीयाह्निमुहूर्त्तमापित्वे चन्द्रदर्शनसंभावनामाहुः । यामार्द्धन्यूनव्याप्ताविति यत्र क्वचिल्लभ्येत तदुत्कोटि कोटिका शङ्कानिरासार्थमेवेति । अत एतत् उद्धरणस्य षण्मुहूर्त्तपदं घटिकाषट्कोपलक्षणम्—तत्रत्य सिद्धान्तः सर्वसम्मत इति ।

अस्मिन्पक्षेऽन्यदपि— 'कॉर्त्तिकस्य सिते पक्षे प्रतिपत्छुभवासरे ।
हस्तस्वातौ च एतेषु गोपूजा शुभदा सदा ।।
शनौ वारे तथाङ्गारे सूर्यवारे तथैव च ।
अन्यदक्षगते वापि गोपूजां च न कारयेत् ।।
यदि मोहात्कृता पूजा प्रायश्चितं भवेत्तदा ।
गवा नाशोऽर्थनाशश्च प्रजानाशो भवेद्ध्रुवम् ।।
पापाहे च विशाखायां गोपूजां नैव कारयेत् ।।'

अतएव तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

प्रतिपत्तु त्रियामास्यान्मैत्रऽर्के बुधवासरे ।
तद्दिने पूर्वयामे तु गोपूजा परमा शुभा ।।
स्वातौ तु मध्यमा प्रोक्ता अनुराधा शुभप्रदा ।
प्रातः गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतश्चापि समाचरेत् ।।
पूजनीयास्तदा गावस्त्याज्या दोहनवाहने ।

गौपूजामन्यस्तु निर्णयामृते—

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थं सा मे पापं व्यपोहतु ।।
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदयं सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।

गोवर्द्धनपूजन मन्त्रो यथा—

गोवर्द्धन! धराधर! गोकुलत्राणकारक । कृष्णबाहुकृतच्छाय! गवां कोटिप्रदो भव ।।

अथ कार्तिकशुक्लद्वितीया—

यमद्वितीयाख्या तस्यां कर्त्तव्यं स्कन्दपुराणे—

'कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां युधिष्ठिर ।
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ।।
अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
अस्यां निजगृहे विप्र भोक्तव्यं न ततो नरैः ।।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।
वस्त्रालंकरणादीनि ताभ्यो देयानि यत्नतः ।।'

भगिन्या पठनीयो मन्त्रो यथा—

'भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्।
प्रीयते यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ।।'

ज्येष्ठभगिन्यास्तु—'भ्रातर्ज्येष्ठाऽनुजाताहम्' इति शेषः। अन्यत् समानमिति स्मार्त्ताः। तत्र हे भ्रातरनुजाता वा ज्येष्ठाऽहमित्यन्वयः । ब्रह्माण्डपुराणे—

या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ ।
अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ।
भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेत्तत्र कर्हिचित् ।।

युग्मके द्वितीयायातिथौ । यमद्वितीया प्रतिपद्युता ग्राह्येति निर्णयामृतः । हेमाद्रौ तु द्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति विशेषः ।।

हिन्दी—कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया यमद्वितीया के नाम से विख्यात है—

इसमें कर्त्तव्य ब्रह्मपुराण में—हे युधिष्ठिर, कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यमुना ने यमराज को अपने घर बुलाकर पहले उनकी पूजा की फिर उन्हें यथेच्छ भोजन कराया । अतः कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया यम द्वितीया के नाम से तीनों लोक में विख्यात हुई । इस द्वितीया में हे प्रिय, मनुष्य को अपने घर में नहीं खाना चाहिए । इस दिन स्नेह पूर्वक बहन के हाथ से खाना पुष्टिवर्द्धक होता है । उस दिन बहनों को भाई प्रयास पूर्वक वस्त्र और आभूषण प्रदान करें ।

बहन के पढ़ने योग्य मन्त्र जैसे—हे भाई, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ, यह शुभ भात खाओ । खास कर यमुना और यमराज की प्रसन्नता के लिए । अगर बड़ी बहन हो तो 'ज्येष्ठानुजाताहम्' यह पढ़े अन्य सारी बातें एक जैसी हैं, यह स्मृतियों का कथन है । वहाँ हे भाई, छोटी या बड़ी ('अनुजा' वा 'ज्येष्टाऽहम्') ऐसा अन्वय करना चाहिए ।

ब्रह्माण्डपुराण में—जो नारी कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया में अपने भाई को पूजती तथा भोजन कराती है, उन्हें पान देती है; वह विधवा कभी नहीं होती हैं। हे राजन्, उसके भाई की आयु कभी नहीं घटती।

युग्म का अर्थ है द्वितीया तिथि में। निर्णयामृत के अनुसार यमद्वितीया परिवा युक्त ही ग्राह्य है। हेमाद्रि के अनुसार यह द्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा ग्राह्य है।

मैथिली—कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया यम द्वितीयाक नामे जानल जायत अछि—एकर कर्त्तव्य ब्रह्मपुराणक अनुसार—

हे युधिष्ठिर, कार्त्तिक शुक्ल द्वितीयाक दिन सर्वप्रथम यमुना अपन भँय यमराज के अपना घर बुलाय हुनक पूजाकय हुनका भोजन करौने छलीह। ताहि दिन सँ ई द्वितीया यमद्वितियाक नामे तीहू लोक में विख्यात अछि। ताही दिन सँ मनुष्य कें अपन घर घर में नहिं खयवाक चाही। स्नेहपूर्वक बहिनक हाथे भोजन करवाक चाही। ई भोजन पुष्टिवर्द्धक होयत अछि। द्वितीयाक दिन बहिन के प्रयासपूर्वक वस्त्र अलङ्कार प्रभृति देवाक चाही। बहिनक पढवाक मन्त्र यथा—

हे भ्रातः, अहाँक हम छोट बहिन छी, ई शुभ भात अहाँ खउ, विशेषरूपेण यमराज एवं यमुनाक प्रसन्नताकलेल। जेठबहिन कहय—'भ्रातर्ज्येष्ठाऽनुजाताहम्' कहय। आन सब समान अछि, ई स्मार्त्तक वचन अछि।

अहिठाम—'हे भ्रातरनु आता वा ज्येष्ठाऽहम्' भाँय, अहाँक हम छोट ता जेठ बहिन छी ई अन्वय हयवाक चाही। ब्रह्माण्डपुराण में—

जे नारी द्वितीया दिन अपन भांय के भोजन करवैत छथि, हुनक पूजा करैत छथि, हुनका पान दैत छथि ओ कहियो विधवा नहिं होयत छथि। हुनक भ्रातक आयु हे राजन् कदापि क्षय नहि होयत छैन्हि।

युग्मकेक अर्थ द्वितीया तिथि होयत अछि। निर्णयामृतक अनुसार यम द्वितीया परिवा युक्त ग्राह्य होयत अछि। हेमाद्रि में कहलगेल अछि द्वितीया मध्याह्नव्यापिनी एवम् पूर्वविद्धा ग्राह्य होयत अछि।

अथात्र चित्रगुप्तपूजनमाह गौडः—

'यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत्।
अर्घश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः॥

इयं पूजा अपराह्णे आह स्कान्दे—

'ऊर्ज्जशुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम्।
स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति॥'

भानुजायां यमुनायाम्। व्रतादौ दिवैवैकभुक्तम्।

तथा हि तिथिचन्द्रिकायाम्—

'दिनार्द्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् ।
एकभुक्तमिति प्रोक्तं मतं स्यात्तद्दिवैव हि ।।'

हिन्दी—अब गौड़ में चित्रगुप्त पूजा के सम्बन्ध में कहा है—

दोनों ही सहजन्मा को यम, चित्रगुप्त एवं यमदूतों की पूजा करनी चाहिए तथा यमराज के लिए अर्घ देना चाहिए । सहज का स्वाभाविक अर्थ भी होता है। यह पूजा अपराह्ण में होती है, ऐसा स्कन्दपुराण का वचन है—

कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया में यम की पूजा करनी चाहिए । जो व्यक्ति इस दिन यमुना में स्नान करता है; वह यमलोक नहीं जाता है ।

भानुजायाम् = यमुना में । व्रतादि में दिन में ही एक भुक्त करना चाहिए । तिथिचन्द्रिका में लिखा है—

आधा दिन निकल आने के बाद नियमपूर्वक जो एक बार भोजन करता है उसे एकभुक्त कहा जाता है । यह एकभुक्त दिन में ही होता हैं ।

मैथिली—गौड़क मतें चित्रगुप्तक पूजा—

यमराज, चित्रगुप्त एवं यमदूतों की पूजा कार्त्तिक शुक्ल द्वितीयाक दिनकरवाक चाही । सहज रूपें यमनिमित्तक दुईवेर अर्घ्य सेहो देवाक चाही ।

ई पूजा अपरान्ह में स्कन्दपुराण में कहलगेल अछि ।

कार्त्तिक शुक्ल द्वितीयाक दिन अपरान्ह में यमक पूजा करवाक चाही यमुना में द्वितीयाक दिन जे स्नान करैत छथि ओ यमलोक नहि देखैत छथि भानुजायाम् = यमुनानदि में । व्रतादि में दिनों में एक भुक्त करवाक चाही ।

तिथिचन्द्रिका में कहलगेल अछि—दिनक आध भाग बीतिगेलाक बाद नियमपूर्वक जे भोजन कयल जायत अछि से एक भुक्त कहवैत अछि । से एक भुक्त दिने में होयत छैक ।

विमर्श:—कार्त्तिकशुक्लषष्ठीनिर्णय:—

अत्र षष्ठीतिथि: सूर्यव्रतादौ सप्तमीयुतैव कार्येति मैथिलस्मार्त्तमात्रसिद्धान्त: ।

तद्यथा माधवीय स्कान्दे—

नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी चैव कदाचन ।
सप्तमीसंयुता कार्या षष्ठी सर्वार्थचिन्तकै: ।।

तदुक्तं तिथितत्त्वचिन्तामणौ—'षष्ठी तु सर्वेषु उपवासादिषु स्कन्दव्रतातिरिक्ता सप्तमीयुतैव ग्राह्या: षण्मुन्यो'रिति युग्मवाक्यात् ।

तथा च तिथिचन्द्रिकायां विष्णुधर्मोत्तरे—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च समुपोष्याः परान्विताः ॥

तथा च— नागविद्धां तु या षष्ठी सप्तम्या च तथाऽष्टमी ।
दशम्येकादशीविद्धा न ग्राह्या मुनिपुङ्गवैः ॥

तथा च मानवीये स्कान्दे—

नागविद्धां तु ये षष्ठीमुपोष्यन्तीह मानवः ।
वृद्धिः श्रेयश्च कल्याणं तेषां नश्यन्ति पूर्वजम् ॥
सगरेण कृता पूर्वं पचम्या सह भारत ।
हतं पुत्रसहस्रं तु तस्माद्विद्वान्न कारयेत् ॥

तथा च— नागविद्धा तु या षष्ठी रुद्रविद्धो दिवाकरः ।
कामविद्धो भवेद्विष्णुर्न ग्राह्यास्ते तु वासराः ॥

इत्याद्यनेकनिबन्धधृतवचनबलात् षष्ठी सूर्यव्रते सप्तमीयुतैवोपोष्येति सिद्धम् । तत्रोदयकालेऽल्पाऽपि षष्ठी भवेत्तदुपरि सप्तमी, तदा सैव ग्राह्याः ।

तदुक्तं तिथिचन्द्रिकायाम्—

कला काष्ठा निमेषोऽपि यदि स्यादपरेऽहनि ।
षष्ठ्याः कथञ्चिद्विप्रेण सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥
अनेन सायं सप्तम्यामपि प्रथमोऽर्घो विहितः ।
द्वितीयस्तूत्तरदिने सूर्योदये सप्तम्यां सिद्ध एव ॥

अत्र द्वितीयार्घस्य सप्तमीयुक्तसूर्योदये मुख्यतोक्ता । म.म. प० राजनाथकृततिथिनिर्णये—

'पूर्वदिने सायमर्घादिना पूजने षष्ठी वा सप्तमी ग्राह्येति न नियमः । प्रधानीभूतोत्तरत्रार्घदानस्य तदङ्गोपवासस्य वाऽङ्गतयैव तदाचरणात् ।' इति ।

अतएव सप्तम्याः क्षयावसरे उक्तं पुराणान्तरे—

षष्ठ्याश्चैका कला यत्र तत्र सन्निहितो रविः ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यमष्टम्यां पारणेन तु ॥
षष्ठी च सप्तमी चैव रात्रिशेषे यदाष्टमी ।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता तथा चैकादशी पुनः ॥
शुद्धैव सप्तमी ज्ञेया उपोष्याः फलकाङ्क्षिभिः ।
अष्टम्यां पारणं कुर्याद् व्रतमेतन्नराधिप! ॥

तथा चोक्तं द्वैतनिर्णये— षष्ठीसमेता कर्त्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता ।
पतङ्गोपासनायाथ षठ्यामाहुरुपोषणम् ॥

एवं कृत्यशिरोमणौ—

उदयकाले यद्दिने षष्ठी, तस्य सायंकाले षष्ठ्यामसत्यामपि तत्रैवार्घ्यो देयः सप्तम्यनुरोधात् । यत्र पञ्चम्यां वृद्धिस्तत्परं षष्ठ्या क्षयस्तदाऽपि षष्ठीक्षयदिन एव व्रतम् । यत्र तु षष्ठ्या वृद्धिस्तत्र परदिने सप्तमीविद्धा यास्तस्या विहीनत्वादपि एकादशी तिथिभिन्नतिथिमलस्य व्रतादौ वर्जनीयत्वात् षष्ठिदण्डात्मकषष्ठ्यां व्रतं सायन्तनोऽर्घश्च, तदग्रिमदिने उदयानन्तरं षष्ठ्यन्ते द्वितीयाऽर्घो देयः । अत्र 'कलाकाष्ठा निमेषे' इत्यादि वचनं तिथिमलरूपषष्ठीशेषभिन्नपरं ज्ञेयम् । तिथिमलस्वरूपं यथा—

'षष्ठिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे ।
अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना ।।

'सायन्तनार्घसमये षष्ठी सप्तमी वा भवन्त्विति नाग्रहः । इति राजनाथमिश्रः । यदि पञ्चम्यावृद्धिः षष्ठ्याश्च दैवात् क्षयः, तत्र यद्दिने षष्ठीक्षयस्तद्दिने एवा व्रतम् । सायन्तनोऽर्घश्च । यत्र तु षष्ठ्यावृद्धिस्तथा पर दिने सप्तमीविद्धायाः षष्ठ्या विहितत्त्वेऽपि, एकादशीभिन्न तिथिमलस्य व्रतादौ वर्जितत्त्वेन षष्ठिदण्डात्मकतिथौ व्रतं सायमर्घ्यञ्च तत्प्रातरुदयानन्तरम्, षष्ठ्यपगमे सप्तम्यां द्वितीयोऽर्घः । कलाकाष्ठानिमेषादीत्यादिवचनं तु तिथिमलरूप षष्ठीशेषभिन्नपरं ज्ञेयमिति क्वचिदाहुस्तत्र—

'षष्ठ्यामुपोष्य विधिवत्सप्तम्यामर्कमर्चयेत्' ।

इति विधौ सप्तमीपूजनस्य प्राधान्येन श्रवणात् उदयगामि सप्तमिलाभे तत्रैव पूजनस्यौचित्येन तदनुरोधस्य न्याय्यत्वादङ्गानुरोधेनाङ्गिनोऽपकर्ष स्यान् न्याय्यत्वाच्च, द्वितीयोदयव्यापि षष्ठ्यामेवोपोषणमुदयगामि सप्तम्याम् पूजनं पारणञ्चेति सिद्धान्तः ।

अथ एकादशीनिर्णयः—

एकादशी द्वादशीयुतैव ग्राह्या । रुद्रेण द्वादशीयुक्तेति निगमात् तिथिमल-रूपाया अपि द्वादशीयुक्तायाः प्राप्तौ सैव ग्राह्या ।

'षष्टि दण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे ।
अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशी बिना ।।' इति वचनात् ।

दशमीयुक्ताया ग्रहणे दोषमाह स्मृतिः—

'एकादशी दशाविद्धा गान्धार्या समुपोषिता ।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।' इति ।

एतच्चोभयदिने एकादशीलाभे यदि तु दशमीमात्रयुतैव सा, न द्वादशी युता, तदा दशमीयुता कर्तव्या । तथा हि स्मृतिः—

'एकादशी न लभ्येत सकला द्वादशी भवेत् ।
उपोष्या दशमीविद्धा ऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत् ।।' इति ।

न लभ्येतेति द्वादशीयुक्तेति शेषः । द्वैतनिर्णये द्वैतपरिशिष्टे व्रतपद्धति-पक्षधरीयतिथिचन्द्रिकादिमैथिलग्रन्थेष्वप्येतादृशस्थले दशमीयुतायामेव कर्त्तव्यत्वं सिद्धान्तितं, न तु द्वादशीव्रतमिति । त्र्यहस्पर्शमाह स्मृतिः—

'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्र्यहस्पृशमहोरात्रं तत्र साहस्रिकं फलम् ।।' इति ।

साहस्रिकं सहस्रगुणम्। हरिशयनादौ फलादिभक्षणनिषेधमाह भगवान्—

'मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने ।
फलमूलपयोहारी हृदि शल्यं ममार्पति ।।

मच्छयने हरिशयने, मदुत्थाने देवोत्थाने, पार्श्वपरिवर्त्तने भाद्रशुक्लैकादश्याम् । स्मृतिः—

'एकदश्यां न भुजीत पक्षयोरुभयोरपि ।
सूतके मृतके चैव अन्यस्मिन्नप्यशौचके ।।
सर्वथा न परित्याज्या इच्छता श्रेय आत्मनः ।।' इति ।

अशक्तौ त्वाह वायुपुराणे—

'फलं मूलं पयस्तोयमुपभोग्यं भवेच्छुभम् ।
न त्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां प्रकीर्तितम् ।।'

प्रमादादितो व्रताकरणे व्रतभङ्गाभावमांह छागलेयः—

'सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् ।
अव्रतघ्नानि कीर्त्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः ।।'

प्रमादो विस्मरणम् । सकृदेकवारम् । वारम्बारं तद्धेतुभिरप्यकरणे भङ्ग एव सकृदित्युक्तेः ।

स्मृतिः— 'एकादशीदिने यत्र भार्या ऋतुमती भवेत् ।
पितृश्राद्धं च तत्रैव उपायस्तत्र कथ्यते ।।
एकादशीव्रतं कुर्यात्पिण्डाघ्राणं च श्राद्धकृत् ।
अर्द्धरात्रे व्यतीते तु ऋतुं दद्यान्न दोषभाक् ।।'

ब्रह्मपुराणे— 'एकादश्यां तु शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम् ।
सुप्तं प्रबोधयेद्रात्रौ भक्तिश्रद्धासमन्वितः' ।। इति ।

हिन्दी—अब एकादशी का निर्णय—

एकादशी द्वादशी युक्त ही ग्राह्य है । 'रुद्रेण द्वादशी युक्ता' यह निगम के वचन से प्रमाणित है । तिथि मलरूपा भी द्वादशीयुक्ता एकादशी यदि हो तो वही ग्राह्य है ।

साठ दण्डात्मक तिथि के निकल जाने के बाद उस तिथि का जो शेष बचता है वह तिथि मल कहलाता है । यह दोषा वह माना गया हैं किन्तु एकादशी में यह दोष नहीं लगता है । तिथिमल को अकर्मण्य कहा गया है । इस वचन से—दशमी युक्त एकादशी को दोष पूर्ण कहा गया है, स्मृति में—

गान्धरी ने दशमी युक्त एकादशी व्रत किया था । इसके कुफल स्वरूप उसके सौ बेटे मारे गये थे । अतः दशमीविद्धा एकादशी नहीं केरनी चाहिए । यह वचन यदि दोनों दिन एकादशी हो तब । यदि दशमी युक्त एकादशी मात्र हो, द्वादशी युक्त बिल्कुल नहीं हो तो ऐसी स्थिति में दशमी युक्त एकादशी भी करनी चाहिए । स्मृतिकार के मत में—उद्दालक मुनि ने कहा है कि यदि एकादशी द्वादशी युक्त न हो अर्थात् पूरी तिथि द्वादशी ही हो तो ऐसी स्थिति में दशमीविद्धा एकादशी भी करनी चाहिए । इति ।

'न लभ्येतेति' का अर्थ द्वादशी युक्त है । द्वैतनिर्णय, द्वैतपरिशिष्ट, व्रतपद्धति, पक्षधर मिश्र की तिथिचन्द्रिका प्रभृति मैथिल ग्रन्थों में भी वैसी स्थिति में दशमी युक्त एकादशी व्रत का विधान हैं । यही सिद्धान्त है, न कि द्वादशी व्रत का विधान है । त्र्यहस्पर्श योग के सम्बन्ध में स्मृति में—दिन में एकादशी द्वादशी युक्त हो और रात्रि शेष में भी त्रयोदशी पकड़ा जाय तो दिन रात मिलाकर यदि तीन तिथियों का योग हो तो उसे 'त्र्यहंस्पृश' योग कहते हैं । सामान्य एकादशी व्रत की अपेक्षा ऐसे व्रत का हजार गुणा अधिक फल कहा गया है ।

साहस्रिकम् = हजारगुणा । हरिशयनादि व्रत में फल एवं दूध प्रभृति के भक्षण का भगवान् ने स्वयं निषेध किया है—

हरिशयनी एकादशी, देवोत्त्थान एवं भाद्रशुक्ल एकादशी में फल, मूल तथा दूध का जो आहार ग्रहण करते हैं वे मेरी छाती में शूल चुभाते हैं ।

मच्छयने = अर्थात् हरिशयनी, मदुत्त्थानेः अर्थात् देवोत्थान में, पार्श्व परिवर्त्तने = अर्थात् भादो शुक्ल एकादशी में । स्मृति का कथन है—

दोनों पक्षों की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिए । सूतक लगने पर, किसी आत्मीय के मरने पर या किसी अन्य तरह के अशौच में आत्म कल्याण चाहने वाले को इसका बिल्कुल परित्याग नहीं करना चाहिए । इति ।

अशक्त रहने की स्थिति में वायुपुराण में लिखा है—

फल, मूल, दूध और पानी का उपभोग अशक्त स्थिति में शुभद होता है, किन्तु, इस तरह का कोई भोजन एकादशी के लिए नहीं कहा गया है । भूल से व्रत नहीं करने पर, व्रतभङ्गाभाव में छागलेय ने कहा है—

सर्वभूतभय (राजकीय युद्ध में, महामारी में, देशनाश में, जनक्षय में, नगर या ग्राम दाह की स्थिति को सर्वभूत भय कहा गया है) की स्थिति में, रोग में, भूल से, गुरु के शासन से, एक बार कुछ ग्रहण करने पर शास्त्र में व्रत भङ्ग नहीं कहा गया है ।

प्रमाद = भूल से । सकृत = एक बार, इसी हेतु से बार बार ग्रहण करने पर व्रत भङ्ग हो जायेगा, इसी लिए सकृत् अर्थात् एक बार कहा गया है । स्मृति में—

एकादशी के दिन ही जिसकी पत्नी ऋतुमती हो जाय और उसी दिन उसे पितृश्राद्ध भी करना है तो उसका उपाय कहते हैं । अन्त्येष्टि करने वाला व्यक्ति पिण्ड बिना सूँघे एकादशी व्रत करे तथा आधी रात बीत जाने के बाद ऋतु देने में कोई दोष नहीं होता ।

ब्रह्मपुराण में—कार्त्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि में सोये हुए भगवान् विष्णु को श्रद्धा और भक्ति के साथ रात में जगाना चाहिए ।

मैथिली—आब एकादशीक निर्णय—

एकादशी द्वादशी युक्ता ग्राह्य अछि । 'रुद्रेण द्वादशी युक्ता' ई निगमक वचन अछि । तिथिमलस्वरूपो द्वादशी मिलल यदि एकादशी होय, तखनहु सेहो एकादशी करवाक चाही ।

साठि दण्डक एक तिथि मानलगेल अछि । साठिदण्ड निकलिगेलाक बाद कोनो तिथिक जे अवशिष्ट अंश बाचल रहैत छैक से अंश ताहि तिथिक 'तिथिमल' कहवैत छैक । ई तिथिमल कोनो काजकलेल 'अकर्मण्य' मानलगेल अछि । किन्तु, ई अकर्मण्यताक दोष एकादशीक छोड़कय अन्यकाजकलेल मान्य अछि । ई वचन छैक । दशमीयुक्त एकादशी दोषावह होयत अछि, ई स्मृतिक वचन अछि—

दशमीविद्धा एकादशी गान्धारी कयने छलीह, तकर दोषे हुनक शतपुत्र विनष्ट भऽ गेलैन्हि । तॉय दशमी युक्त एकादशी नहिकरवाक चाही । यदि ई एकादशी दुइ दिन होय, द्वादशी युक्त नहि होय मात्र दशमीविद्धे होय तऽ एहन स्थिति में दशमी युक्ता एकादशी करवाक चाही । स्मृतिक वचन अछि—

यदि एकादशीक प्रवेश द्वादशी में नहि होय, सम्पूर्ण तिथि द्वादशी मात्र होय तऽ एहन स्थिति में दशमीविद्धा एकादशी सेहो करवाक चाही । ई उद्दालक मुनिक मत छैन्हि । इति ।

'न लभ्येत'क अर्थ द्वादशी युक्ता अछि । द्वैतनिर्णय, द्वैतपरिशिष्ट, व्रत–पद्धति, पक्षधरमिश्रक तिथिचन्द्रिका प्रभृति मैथिलक सभटा सिद्धान्त ग्रन्थ में एहन

स्थिति में दशमी युक्ता एकादशी व्रत करवाक चाही, ई सिद्धान्त कयलगेल अछि । द्वादशी व्रत कथमपि नहि ।

त्र्यहस्पर्शक सम्बन्ध में स्मृतिकारक वचन अछि—

एकादशी द्वादशी युक्त हो तथा रात्रि शेष में यदि त्रयोदशीक प्रवेश होय तऽ दिन राति मिलाकय त्र्यहस्पृशा योग मानल गेल अछि । ई एकादशी कयने हजारगुणा अधिक फल भेंटति अछि । इति ।

'साहस्रिकम्' एकर अर्थ हजार गुणा अधिक होयत अछि । हरिशयनादि में फलादिक भक्षणक निषेध स्वयं भगवान् कयने छथि—

हमर शयन, हमर उत्थान एवं हमर पार्श्व परिवर्त्तन (करवट)क एकादशी अर्थात् शयन = आषाढशुक्ल एकादशी, उत्थान = कार्त्तिकशुक्ल एकादशी तथा पार्श्वपरिवर्त्तन, भाद्रशुक्लैकादशमी (कर्माधर्मा) में अे व्यक्ति फल, मूल एवं दूधक आहार ग्रहण करैत छथि ओ हमरा हृदय में शूल चुभावैत छथि । मच्छयने = हरिशयन, मदुत्थाने = देवोत्थान, पार्श्वपरिवर्त्तन = भादव शुक्ल एकादशी में । स्मृति में—

दुहूपक्षक एकादशीक दिन भोजन नहि करवाक चाही । कल्याणकामी व्यक्ति सूतक भेला पर, मरलापर अथवा आन तरहक कोनो में एकरं बिल्कुल त्याग नहिं करवाक चाही । इति । अशक्त रहला पर वायुपुराणक कथन अछि—

फल, मूल, दूध एवं जलक उपभोग शुभ मानल गेल अछि । एतदतिरिक्त कोनोतरहक भोजन एकादशी में नहि कहल गेल अछि । भूल सँ व्रत नहिं कयला पर या व्रत भंगाभाव में छागलेयक वचन अछि—

सर्वभूतभय (अर्थात् राजाक साथ युद्ध, महामारी, देशनाश, जनक्षय, नगर या ग्राम दाह, ई सर्वभूत भय भेल) रोग, भूलचुक, एवं गुरुक आदेश स्थिति में एकवेर किछु खयने व्रत भंग शास्त्र द्रष्टया नहि मानल जायत अछि ।

प्रमाद अर्थात् विस्मरण । सकृत = एकवेरि, ताहि हेतु सँ बार बार ग्रहण कयने व्रतभङ्ग छैत तॉय एकवेरेक उल्लेख अछि ।

स्मृतिक वचन—एकादशी दिन जों पत्नी ऋतुमती भऽ जाथि तेऽ पितृश्राद्ध करवाक चाही । एकर उपाय ई अछि जे श्राद्धकर्त्ता पिण्ड बिना सूंघने एकादशी व्रत करथु तथा राति वितलाक बाद ऋतु देने कोनो तरहक दोष नहि होय । ब्रह्मपुराणक वचन अछि—

भक्ति श्रद्धा युक्तभय कार्त्तिक शुक्ल एकादशीक राति में सुतलं भगवान् विष्णु कय जगयवाक चाही । इति ।

विमर्शः—कृत्यशिरोमणिधृतभृगुवचनम्—सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा, ततोपोष्या द्वितीया तु परतो द्वादशी यदि ।

मात्स्ये—विद्धाप्येकादशी कार्या परतो द्वादशी न चेत् ।।

कौर्म्ये—मुहूर्त्तं द्वादशी न स्यात् त्रयोदश्यां महामुने ।
उपोष्या दशमीविद्धा सदैवेकादशी तदा ।।

लौगाक्षिरपि—एकादशी दशाविद्धां वर्द्धमाने विवर्जयेत् ।
क्षयमार्गस्थिते सोमे कुर्वीत दशमीयुताम् ।।

किञ्च—एकादशी दशाविद्धा परतो न च वर्द्धते ।
यतिभिर्गृहिभिश्चैव सैवोपोष्या सदा तिथिः ।।

कूर्मपुराणे—सम्पूर्णैकादशीयम प्रभाते पुनरेव सा ।
उत्तरां तु यती कुर्यात् पूर्वामेव सदा गृही ।।

ऋष्यशृङ्गः—एकादशी न लभते सकला द्वादशी भवेत् ।
उपोष्या दशमीविद्धा यतिभिर्गृहिभिस्तदा ।।

दशमीसंयुक्तैकादशीनिषेधस्तु क्षयैकादशीपरं न किन्तु वृद्धयैकादशी परमिति ।

अत्र वाचस्पतिमिश्रः द्वैतनिर्णये—

दिनत्रयवती जाता तिथिरेकादशी यदि ।
प्रथमा तमजोपास्या उपोष्या चोत्तरातिथिः ।।

वाचस्पतिमिश्रोदितनिर्णये—

दशमीमिश्रितापूर्वा द्वादश्यां यदि लुप्यते ।
एकादश्यां तदा ब्रह्मन्नुपवासः कथं भवेत् ।।
शुद्धैव द्वादशी राजन् उपोष्यामोक्षकांक्षिभिः ।
सकामैः गृहिभिः पूर्वा समुपोष्याति निक्ष्ववत् ।।

उपवासपूर्वदिने निषेधमाह तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

कास्यं मासं मसूरान्नं चणकं कोद्रवं तथा ।
शाकं मधुपरान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम् ।।

एवं यत्र तत्र परान्नभोजननिषेधो दृश्यते, किन्तु—

गुर्वन्नं मातुलान्नं च श्वशुरान्नं तथैव च ।
पितुः पुत्रस्य चैवान्नं न परान्नमिति स्मृति ।।

व्रताशक्तिदशायां जीवनरक्षणार्थमुपायो वायुपुराणे—

'नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा घृतं तिलाः क्षीरमथाम्बुपानम् ।
यत्पञ्चगव्यं यदिवाऽथ वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च ।।'

नक्तं दिनोपवासपूर्वकरात्रिभोजनरूपम् । भक्तरहितं हविष्यान्नम् । तेन रोटिका चिपटान्नभोजने न दोषः । शेषं स्पष्टम् । तथा चैकादशी व्रतं सूतकादिष्यपि न त्याज्यम्, तदुक्तं ति.त.चि० वायुपुराणे—'एकादश्यां न भोक्तव्यम्' इत्यादि ।

तत्र दुर्दिनयोगेनापि कर्त्तव्योक्तः । विष्णुधर्मोत्तरे—

भृगुभानुदिनोपेता सूर्यसंक्रान्तिसंयुता ।
एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रप्रवर्द्धिनीम् ।।

तथा च भृगुभानुवासरे संक्रान्तौ तु पुत्रवतां तत्र ये व्रतनिषेधं कुर्वन्ति ते भ्रान्ताः राक्षसा बोध्या इति महेश ठक्कुरा आहुः । भविष्यपुराणे त्रयोदश्यां तिथावेकादशीव्रतस्य पारणनिषेधो यथा—

'पारणां तु त्रयोदश्यां यः करोति नराधमः ।
द्वादश द्वादशीर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ।।'

इदं तूदयसमये द्वादशीसत्त्वे पारणोचितवेलालाभेऽपि कार्यान्तरवशात्तामतिक्रम्य त्रयोदश्यां पारणे कृते विज्ञेयमिति । द्वादश्याः क्षयावसरे तु नियतमेकादशीव्रतोत्तरदिने सूर्योदयात् पूर्वत एव विद्यमानायां त्रयोदश्यां पारणविधानम् । तस्यां स्थितौ न दोषस्त्रयोदश्यां पारणे विशेषवचनसामर्थ्यात् । तथोक्तं वायुपुराणे—

कलाऽप्येकादशी यत्र परतो द्वादशी न चेत् ।
पुण्यं क्रतुशतं प्रोक्तं त्रयोदश्यां तु पारणे ।।

तथा चैवम्—हरिवासरसंभवेषु आषाढभाद्रकार्त्तिकमासेषु बुधवारयुक्तायामपि द्वादश्यां सूर्योदयसमये क्रमेणानुराधाश्रवणारेवतीनक्षत्राणां योगाभावे पूर्वदिनैकादश्यां व्रतस्य पारणोचितसमयलाभात् प्राचीनमतेन नहि हरिवासरयोगः सम्भवति । तथा चोक्तं सारसंग्रहे—म.म. उमापतिउपाध्यायेन—

'उदयकाले नक्षत्रयोगे हरिवासरपदं पारिभाषिकम् ।'

अथ विष्णूत्थापनमन्त्राः—

'ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।
प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ।। १ ।।
मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पाणि मनोहराणि ।
अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ।। २ ।।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम् ।। ३ ।।

अथ हरिवासरमाह मत्स्यपुराणे—

'द्वादशी शुक्लपक्षे तु नभस्ये श्रवणं यदि ।
उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादशीमप्युपोषयेत् ।।'

ब्रह्माण्डे— 'द्वादश्यां तु दिने भाद्रे हृषीकेशर्क्षसंयुते ।
उपवासद्वयं कुर्याद् विष्णुप्रीणनतत्परः ।।

द्वारश्येकादशी सौम्यः श्रवणं च चतुष्टयम् ।
देवदुन्दुभियोगोऽयं शतमन्युफलप्रदः ।।

हृषीकेशर्क्षं श्रवणा, सौम्यो बुधः । मन्युर्यज्ञः । वराहपुराणे—

'एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमप्युपोषयेत् ।
न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः ।।'

अत्र तिथिचन्द्रिकायाम्—'पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं समाप्तौ द्विजभोजनम्' इति । समाप्ति पारणेन, तदभावे उपवासद्वये क्रियमाणे पूर्वव्रतस्यासमाप्ते-र्विधिलोपः प्राप्तोति सोऽप्येकदेवत्वेन न विधिलोप इति पक्षधरमिश्राः पठन्ति।

'आभाकासितपक्षे च मैत्रश्रवणरेवती ।
द्वादशीबुधवारेण हरेर्वासर उच्यते ।।'

तथा चाषाढशुक्लद्वादशी बुधवारानुराधायुता, भाद्रशुक्लद्वादशी बुध-श्रवणायुता, कार्त्तिकशुक्लद्वादशी बुधरेवतीयुता हरिवासर इत्यर्थः पर्यवसितः।

अथैकादशीपारणायां मासभेदेन वस्तुभेदमाह—

'गोमूत्रेण च गोमयेन पयसा दध्ना गवां सर्पिषा
सद्दर्भोदककार्तवीर्ययवजैश्चूर्णैस्तथा दूर्वया ।
कूष्माण्डेन गुडेन बिल्वतुलसीपत्रेण वा पारणं
द्वादश्यां गदितं क्रमान्मुनिवरैर्मार्गादितस्तत्फलम् ।।'

पयसा दुग्धेन, कार्तवीर्यस्तिलः । बिल्वतुलसीपत्रयोर्विकल्पः । मार्गादिद्वादशमासेषु क्रमेण द्वादशवस्तुभिः पारणमिति । पद्मपुराणे क्रियायोगे—

'दशम्यां विप्रशार्दूल! द्वादश्यां चैव वैष्णवः ।
सम्यग्व्रतफलं प्रेप्सुर्न कुर्यान्निशि भोजनम् ।।
दशम्यामेवमादीनि निषिद्धानि द्विजोत्तमः ।
द्वादश्यामपि तान्येव निषिद्धानि न संशयः ।।'

तथा च दशमीविहितानि सर्वाण्येव मांसभक्षणाकरणादीनि द्वादश्यामपि कुर्यादिति भावः । कार्त्तिकीपूर्णिमायां कौशिकीस्नाने फलमाह रामायणे—

'कृत्तिकाऋक्षसंयुक्ता राका या कार्त्तिके भवेत् ।
कोकामुखे तु कौशिक्यां स्नात्वा स्वर्गे वसेन्नरः ।।'

ॐ अद्येत्यादि कौशिकीस्नानमहं करिष्ये । इति संकल्पः ।।

स्नानमन्त्रस्तु—

गाधिराजसुते ! देवि ! विश्वामित्रमुनेः स्वसः ।
ऋजीकभार्ये ! सत्तोये ! पापं मे हर कौशिकि ! ।।

हिन्दी—अब हरिवासर के सम्बन्ध में कहा गया है । मत्स्यपुराण में—भादों महीने के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्र युक्त हो तो एकादशी व्रत के बाद द्वादशी व्रत भी करना चाहिए ।

ब्रह्माण्डपुराण में—भादों शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि यदि श्रवणानक्षत्र युक्त हो तो भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए एकादशी के साथ द्वादशी व्रत भी करना चाहिए । द्वादशी, एकादशी, बुधदिन तथा श्रावण नक्षत्र इन चारों का योग यदि एक साथ हो तो इसे देव दुन्दुभि योग कहते हैं । यह व्रत करने पर एक सौ यज्ञ करने का फल मिलता है ।

नमस्ये = भादो महीने में, हृषीकेशर्क्षम् = श्रवणानक्षत्र, सौम्यः = बुध दिन, मन्युः = यज्ञ । वराहपुराण में—

एकादशी व्रत करने के बाद ही द्वादशी व्रत भी करना चाहिए । ऐसा करने पर विधि लोप का प्रश्न नहीं उठता है । क्योंकि, एकादशी और द्वादशी दोनों ही व्रत के देवता भगवान् विष्णु ही हैं ।

पारण के अन्त तक व्रत जानना चाहिए । ब्राह्मण भोजन के उपरान्त व्रत की समाप्ति होती है । पारण से ही व्रत की समाप्ति होती है । पारण के अभाव में एकादशी एवं द्वादशी दोनों व्रत एक साथ करने पर प्रथम अर्थात् एकादशी व्रत बिना समाप्त किये, द्वादशी व्रत करने पर विधि लोप का प्रसंग स्वतः उठता है । किन्तु, दोनों व्रत के देवता एक ही होने के कारण विधि लोप का प्रसंग नहीं उठता; ऐसा पक्षधर मिश्र की मान्यता हैं ।

आषाढ़, भादो और कार्त्तिक शुक्ल पक्ष क्रमशः अनुराधा, श्रवणा और रेवती नक्षत्र तथा बुधवार युक्त द्वादशी तिथि को हरिवासर कहा जाता है ।

तथा आषाढ़ शुक्ल द्वादशी अनुराधा नक्षत्र एवं बुधवार युक्त और भादो शुक्ल द्वादशी श्रवणानक्षत्र एवं बुधवार दिन, तथा कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी बुधवार यदि रेवती नक्षत्र युक्त हो तो उसे हरिवासर कहा जाता है ।

अब एकादशी व्रत की पारणा में महीने के भेद से वस्तु का भेद कहते हैं—गाय का मूत्र, गाय का गोबर, दूध, दही, घी, कुशजल, तिल, जौ के आटे, दूब, कुम्हड़ा, गुड़, बेल या तुलसी के पत्ते से अगहन से लेकर कार्त्तिक तक बारह महीने क्रमशः द्वादशी का पारण मुनियों ने कहा है ।

पायसा = दूध से, कार्तवीर्यः = तिल । बेलपत्र और तुलसीदल एक दूसरे के विकल्प हैं । अगहन से लेकर कार्त्तिक तक बारह महीने के द्वादशी व्रत की पारणा के लिए बारह वस्तुओं का क्रमशः उल्लेख हैं ।

पद्मपुराण के क्रियायोग में—

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, वैष्णव गण दशमी एवम् द्वादशी व्रत के क्रम में व्रत का सुन्दर फल पाने के इच्छुक व्यक्ति को रात में भोजन नहीं करना चहिए। हे उत्तम द्विज! दशमी व्रत में जिन वस्तुओं का निषेध किया गया है द्वादशी व्रत में भी वे ही सारी वस्तुऐं निषिद्ध मानी गयी है; इसमें संशय नहीं करना चाहिए। और दशमी में विहित हर तरह के मांस भक्षण का जो निषेध किया गया है वह द्वादशी के लिए भी निषिद्ध मानना चाहिए।

कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन कोशी नदी में स्नान करने का फल— (रामायण) में—कार्त्तिक पूर्णिमा यदि कृत्तिका नक्षत्र युक्त हो तो प्रभात बेला में बिहार में बहने वाली कोशी नदी में स्नानकर व्यक्ति स्वर्ग में निवास करने योग्य होता है।

'ऊँ अद्य.. .. ... ' इत्यादि से स्नान का पहले संकल्प कर लेना चाहिए। स्नान के मन्त्र—राजा कौशाम्ब के पुत्र गाधिराज की बेटी तथा मुनि विश्वामित्र की बहन और ऋचीक की पत्नी सुन्दर जल वाली, हे कौशिकि नदी मेरे सारे पापों को तुम मिटा दो।

मैथिली—आव हरिवासर के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में कहलगेल अछि—भाद्रपद मासक शुक्ल पक्षक द्वादशी तिथि में यदि श्रवणा नक्षत्र होय तो एकादशी व्रत न करिवे करि मुदा संगहिसंग द्वादशी व्रत सेहो करवाक चाही।

ब्रह्माण्डपुराण में—भादव मासक शुक्लपक्ष द्वादशी तिथि में यदि श्रवणानक्षत्र संयुक्त होयतऽ विष्णु भगवान्क प्रसन्नताकलेल एकादशी एवं द्वादशी दूहू दिन उपवास करवाक चाही।

द्वादशी एकादशी युक्त होय, बुद्ध होय श्रवणा नक्षत्र होय ई चारु योग एक साथ होय तऽएंकरा देवदुन्दुमियोग कहल जायत अछि। ई व्रत कई ने सौ यज्ञ कैलाक फल भेंटैत अछि।

नमस्ये—भादव में, हृषीकेशर्क्ष—श्रवणा नक्षत्र, सौम्यः = बुध। मन्युः = यज्ञ।

वराहपुराण में—एकादशीक उपासना कय द्वादशीक उपासना सेहो करवाक चाही। ई कैयने विधि लोपक प्रसंग नहि होयत अछि कियेक तऽ दूहू व्रतक देवता हरि अर्थात् विष्णु भगवान् छैथ।

अहिठाम तिथिचन्द्रिका में लिखल अछि—पारणान्त में व्रत सम्पूर्ण होयत अछि तथा ब्राह्मण भोजनक बाद व्रतक सम्पूर्णता बुझल जायत अछि। इति। व्रतक समाप्ति पारण से होयत अछि, पारणक अभाव में दूहू व्रत एक साथ कइने

पूर्व व्रतक समाप्ति नै भेने विधि लोप होयत अछि किन्तु एकहि देवताक दूहू व्रत भेने विधि लोप जन्य दोष नैय होयत अछि ई पक्षधर मिश्रक सिद्धान्त छैक ।

आषाढ़, भादव एवं कार्त्तिक मासक शुक्ल पक्ष में क्रमशः अनुराधा, श्रवणा एवं रेवती नक्षत्र युक्त बुधवार दिन से समन्वित यदि द्वादशी होय तऽ ओ हरिवासर कहवैत अछि ।

आषाढ़ शुक्ल द्वादशी बुध दिन अनुराधा नक्षत्र युक्त, भाद्रशुक्ल द्वादशी बुध श्रवणा नक्षत्र युक्त, कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी बुध रेवती नक्षत्र युक्त यदि होय तऽ ई तीनू हरिवासर योग कहवैत अछि । इह एकर अर्थ भेल ।

आव एकादशीक पारण में मास भेद सं वस्तुक भेद कहैत छी––

गोमुत्र सऽ, गोबर सऽ, दूध सऽ, दही सऽ, गायक घी सऽ, कुश जल सऽ, तिल सऽ, जौक आटा सऽ, दूभि सऽ, कुष्मांड सऽ, गुड़ सऽ, विल्वपत्र अथवा तुलसीदल सऽ द्वादशी में अगहन सं लैके कार्त्तिक धरि बारहो मासक पारणक ई बारह विधान अछि । ईं मुनिक विचार अछि ।

पायसा दूध सऽ, कार्त्तवीर्य = तिल, विल्वपत्र एवं तुलसीदल एक दोसरक विकल्प अछि । मार्गादि बारह मास में क्रमशः बारह वस्तुक पारण लिखल अछि ।

पद्मपुराण क्रियायोग में––हे ब्राह्मण श्रेष्ठा दशमी एवम् द्वादशीक व्रत में जे अहि व्रतक सुन्दर फल प्राप्तिक इच्दा राखैत छथि हुनका रात्रि में भोजन नहि करवाक चाही ।

हे द्विज श्रेष्ठ, दशमी व्रत में जे सभ निषिद्ध मानल गेल अछि ओ सभटा द्वादशी को व्रत में निषिद्धे अछि । एकरा में संशय नहि करवाक चाही । तथा दशमीविहित सभ तरहक मांसभक्षणक निषेध द्वादशीव्रत में सेहो बुझवाक चाही ।

कार्त्तिक पूर्णिमा में कोशी स्नानक फल––रामायण में लिखल अछि–– कृतिका नक्षत्र युक्त यदि कार्त्तिक पूर्णिमा होय तऽ प्रभात बेला में जे कोशी स्नान करैत छै तिनका स्वर्ग प्राप्ति छैतैन । 'ऊँ अद्येत्यादि' स्नान सऽ पूर्व संकल्प करवाक चाही । स्नानक मन्त्र ई अछि––गाधिराजक बेटी, मुनि विश्वामित्रक वहिन तथा ऋचीक पत्नी हे देवि अहाक जल परम पवित्र अछि । अहा हमर पापक नाश करु ।

विमर्शः––तिथितत्त्वचिन्तामणौ म.म. महेशठक्कुरास्तु देवोत्थानैकादशीप्रसङ्गे लिखितवन्तः––कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं कुर्यात् ।

तदुक्तम्––

'आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ।
सङ्गमे नहि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीहरेत् ।।

यदि तु रेवतीरहिता द्वादशी न लभ्यते, तदा रेवत्याश्चतुर्थपादं वर्जयेदिति । अनेन

हरिवासरयोगे घटितेऽपि पारणविधानमार्त्तजनत्राणकारणनेवोक्तम् । अथैकादशीव्रतपारणं द्वादश्याः प्रथमचरणमतिक्रम्य कर्त्तव्यमित्युक्तं शब्दकल्पद्रुमे—

द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः ।
तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं हरिभक्तिमान् ।।

तिथितत्त्वचिन्तामणौ—कार्त्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतारम्भ उक्तो नारदेन— अतो नरैः प्रयत्नेन कर्त्तव्यं भीष्मपञ्चकम् ।
कार्त्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यक् यतव्रतः ।।
एकादश्यान्तु गृहणीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ।

भीष्मपञ्चकविधिर्यथा—मौनी दृढव्रतः सन् प्रथमं गोमयेन, ततः पञ्चामृतेन पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्नाप्य सम्पूज्य पायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा 'ॐ नमो विष्णवे' इति षडक्षरेण घृताक्तान् यवान् ब्रीहीश्चाष्टोत्तरशतं हुत्वा भूमौ स्वपेत् ।एवं पञ्चसु दिनेषु कुर्यात् ।

विशेषस्तु—तत्र प्रथमेऽह्नि कमलैर्हरेः पादौ सम्पूज्य त्रिर्गोमयं प्राश्य, द्वितीये बिल्वपत्रैर्जानुनीं सम्पूज्य गोमूत्रं प्राश्य, त्रयोदश्यां भृङ्गराजेन नाभिं सम्पूज्य क्षीरं प्राश्य, चतुर्दश्यां करवीरैः स्कन्धं सम्पूज्य दधि प्राश्य, चतुर्दश्यां हिमान्ते लौहमयीं पापप्रतिमां शंखचक्रहस्ता कृष्णवस्त्रवेष्टितां प्रस्थमिततिलोपरि स्थितां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः सम्पूज्य—यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः । तत्सर्वे प्रशमं यातुस्त्पिापं तव पूजनात् ।।अनेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा द्विजान् भोजयेत् ।तस्मै प्रतिमां दद्यादिति शिष्टाचारः ।

कार्तिकीपूर्णिमायां पद्मयोग उक्तो ब्रह्मपुराणे—

'विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः ।
स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वतिदुर्लभः ।।' इति ।

यदा कार्तिकशुक्लप्रतिपदूर्ध्वं विशाखायां सूर्यस्य सञ्चारस्तदा कार्त्तिकीपूर्णिमायां प्रायः कृत्तिकानक्षत्रसंयोगादयं योगस्तस्मिन् वर्षे भवेदिति ।

।। इति कृत्यसारसमुच्चये कार्त्तिककृत्यम् ।।

अथाग्रहायणकृत्यम्

तत्र नवान्नभक्षणं च । वृश्चिकत्रयोदशांशाभ्यन्तरे नवान्नभक्षणम् ।

'वृश्चिके पूर्वभागे तु नवान्नं शस्यते बुधैः ।
अपरे क्रियमाणे तु धनुष्येव कृतं भवेत् ।।
धनुषि यत्कृतं श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति नवान्नामृतकाङ्क्षिणः ।।' इति वचनात् ।

पूर्वभागे त्रयोदशांशाभ्यन्तरे । अपरे च चतुर्दशांशादौ । तत्राविहित-तिथ्यादीन्याह ज्योतिषे—

'सूर्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ तारे त्रिजन्मान्विते
नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मधौ कार्तिके ।
भेषुग्राहिशिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे
श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् ।।'

स्मरतिथिः त्रयोदशी, नन्दा प्रतिपत्षष्ठी—एकादश्यः, मन्दः शनिः, महीजो मङ्गलः, काव्यः शुक्रः, मधौ चैत्रे, भेषु नक्षेत्रेषु, उग्रः पूर्वात्रयमघा-भरण्यः, अहिः आश्लेषा, शिव आर्द्रा एतानि निषिद्धानि । अत्र—

'आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठामूलाजैकपदेषु च ।
भृगुभौमदिने रिक्तातिथौ नाद्यान्नवोदनम् ।।'

इति श्राद्धशेषभोजिमात्रपरम् । अजैकपदं पूर्वाभाद्रपदमिति । तिथितत्त्वे विहितानि नक्षत्रादीन्याह भोजराजः—

'ब्रह्माविष्णुपूर्वाभाद्रबृहस्पतीशशधरो मार्तण्डपौष्णादिति-
मैत्रे चित्रविशाखवायुनभसे मूलाश्विवन्हौ तथा ।
शक्रे वारुणऋक्षके शुभदिने श्राद्धं नवं शस्यते
नन्दाभार्गवभूमिजेषु न भवेच्छ्राद्धं नवान्नोद्भवम् ।।'

ब्रह्मा रोहिणी, विष्णुः श्रवणः, बृहस्पतिः पुष्यः, शशधरो मृगशिराः, मार्तण्डो हस्तः, पौष्णो रेवती, अदितिः पुनर्वसुः, मैत्रम् अनुराधा, चित्रं चित्रा ।

अन्यच्च—'हरियुगलेऽदितियुगले पूषायुगले विरञ्चियुगले च ।
करपञ्चकोत्तरेषु च नवान्नफलभक्षणं शस्तम् ।।

तथाच रोहिण्यादिद्वयं पुनर्वस्वादिद्वयं, उत्तरत्रयं, हस्तादिपञ्चकं, श्रवणादित्रिकं, रेवत्यादिद्वयं, एतानि नक्षत्राणि, शुक्रशनिमङ्गलभिन्नवाराः नन्दारिक्तात्रयोदशीभिन्नतिथयः । तृतीयजन्मभिन्नताराः । अष्टमभिन्नचन्द्रमाः । विशाखाभिन्ननक्षत्रस्थसूर्यः । पौषचैत्रकार्तिकभिन्नमासाः । शुक्लपक्षः । हरिशयनभिन्नकालः प्रशस्तः ।

हिन्दी—अब अगहन के कृत्य—

यहाँ नवान्न भक्षण के सम्बन्ध में । वृश्चिक राशिगत तेरह अंश के भीतर नवान्न भक्षण करना चाहिए । त्रयोदशी अंश के भीतर नवान्न ग्रहण की प्रशंसा विद्वानों ने की है । इससे भिन्न अर्थात् चतुर्थशांशादि में किये गये नवान्न धनुराशि में जो श्राद्ध किये जाते हैं उन्हें नवान्न रूपी अमृत ग्रहण करने के अभिलाषी पितर उसे ग्रहण नहीं करते । इस वचन से—

पूर्वभागे = अर्थात् ययोदशांश के भीतर, अपरे = चतुर्दशांशादि में । इस संदर्भ में अभिर्धारिव तिथियों के संदर्भ में ज्योति में—विशाखागत सूर्य से तात्पर्य है कि वृश्चिक संक्रमण से बीसदण्ड अधिक दिनत्रय में, क्योंकि विशाखा नक्षत्र के अन्तिम चरण ही वृश्चिक राशि के अर्न्तगत होते हैं । तथा परिवा, षष्ठी, एकादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में, प्रथम, तृतीय, पञ्चम एवं सप्तम नक्षत्रों में, शनि, मंगल एवं शुक्र दिन में, पुस, कातिक एवं चैत महीने में पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र, भरणी, मघा, अश्लेषा, आर्द्रा नक्षत्रों में, हरिशयिनी अर्थात् आषाढ शुक्ला एकादशी में, कृष्ण पक्ष के अष्टम चन्द्रमा में किये गये नवान्न विहित पार्वण श्राद्ध एवं नवान्न भोजन पुत्र और धन के लिए विनाशक होता है ।

स्मरतिथि = त्रयोदशी, नन्दा = परिवा, षष्ठी, एकादशी, मन्दः = शनि महीजः = मङ्गल, काव्यः = शुक्र, मघौ = चैत, भेषुः = नक्षत्रों में, उग्रः = तीनों पूर्वा, मघा एवं भरणी, अहिः = श्लेषा, शिव = आर्द्रा, ये सभी निषिंद्ध हैं ।

आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वभाद्रपद नक्षत्रों में, शुक्र एवं मंगल दिन में, चौथ, चतुर्दशी, नवमी नामक रिक्ता तिथि में नवान्न भोजन नहीं करना चाहिए । यह श्राद्ध शेष अभोजिमात्रपरक है ।

तिथितत्त्व में भोजराज ने विहित नक्षत्रादि के सम्बन्ध में कहा है—रोहिणी, श्रवणा, पुष्य, मृगशिरा, हस्त, रेवती, पुनर्वसु, अनुराधा, चित्रा, विशाखा, स्वाती, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, कृत्तिका, ज्येष्ठा, शतभिषा नक्षत्रों में शुभ दिन में पार्वण श्राद्ध एवं नवान्न भोजन प्रशस्त है । नन्दा तिथि शुक्र एवं मंगल दिन न तो पार्वण श्राद्ध करना चाहिए और न नवान्न ही ग्रहण करना चाहिए ।

ब्रह्मा = रोहिणी, विष्णु = श्रवणा, बृहस्पति = पुष्य, शशधर = मृगशिरा, मार्त्तण्डः = हस्त, पौष्णो = रेवती, अदितिः = पुनर्वसू, मैत्रम् = अनुराधा, चित्रम् = चित्रा ।

और भी—श्रवणा और धनिष्ठा, पुष्य और पुनर्वसु, रेवती और अश्विनी, रोहिणी और मृगशिरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ एवं उत्तरभाद्र नक्षत्रों में नवान्न फलभक्षण प्रशस्त है ।

रोहिणी आदि दो, (रोहिणी मृगशिरा) पुनर्वसू आदि दो, तीनों उत्तरा, हस्तादिक पांच, श्रवणादि दो, रेवत्यादिदो, ये नक्षत्र, शुक्र, शनि और मङ्गल दिनों को छोड़कर अन्य दिन । नन्दा, रिक्ता, और त्रयोदशी भिन्न तिथियों में, तृतीय जन्म भिन्न तारा में, अष्टमभिन्न चन्द्रमा, विशाखाभिन्न नक्षत्रस्थ सूर्य, पूस, चैत्र और कार्त्तिक छोड़कर अन्य महीने में, शुक्ल पक्ष में, हरिशयनी एकादशी छोड़कर नवान्न ग्रहण का काल प्रशस्त माना गया है ।

मैथिली—आव अग्रहण मासक कृत्य—

प्रथमतः नवान्नभक्षणक सन्दर्भ में । वृश्चिक राशिक तेरह अंशक अभ्यन्तरे देवता पितरक समर्पण पूर्वक नूतन अन्नक प्रथम भक्षण नवान्नग्रहण भेल ।

वृश्चिक राशिगत सूर्यक स्थिति में, वृश्चिक राशिक त्रयोदशी अभ्यन्तरे विद्वान् लोकनिक दृष्टि में नवान्नग्रहण प्रशस्त मानलगेल अछि तकरवाद जे नवान्न ग्रहण छैत से धनु राशि में बुझल जायत तथा धनुराशि में जे पार्वण श्राद्ध करैत छथि हुनक अन्न अगृवाभिलाषी पितरगण ग्रहण नहि करैत छथिन । एहन वराहपुराणक कथन छैक ।

पूर्वभाग में अर्थात् वृश्चिक राशिक तेरह अंशक भीतरे । दोसर चतुर्दशांशादौ । अहि सन्दर्भ में अविहित तिथि आदिक सम्बन्ध में ज्योतिष में कहलगेल अछि—

विशाखा नक्षत्रगत रविक तात्पर्य अहिठाम ई अछि जे वृश्चिक संक्रमण सँ बीसदण्ड अधिक दिन त्रय में, कियेक तऽ विशाखा नक्षत्रक अन्तिमें चरण वृश्चिक राशिगत होयत छैक । प्रतिपद्, षष्ठी, एकादशी एवं त्रयोदशी तिथि में, प्रथम, तृतीय, पञ्चम एवं सप्तम नक्षत्र में, शनि, मङ्गल एवं शुक्र दिन में, पूस, कातिक एवं चैत मास में, पूर्व फल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वभाद्र, भरणी, अश्लेषा एवं आर्द्रा नक्षत्र में, हरिशयनी एकादशी तथा कृष्ण पक्ष अष्टम चन्द्रमा में कयलगेल नवान्न विहित पार्वण श्राद्ध एवं नवान्न भोज पुत्र एवं धनक विनाशक होयत अछि । ताँय ई नहि करवाक चाही ।

स्मरतिथिः = त्रयोदशी, नन्दा, परिवा, षष्ठी, एकादी, मन्दः = शनिवार, महीजः = मङ्गलः, काव्यः = शुक्रः, मघौ = चैतमास में, भेषु = नक्षत्रों में उग्रः =

पूर्वभाद्र, पूर्वाषाढ, पूर्व फल्गुनी, मघा एवं भरणी, अहिः = श्लेषा, शिवः = आर्द्रा, ई सब निषिद्ध अछि ।

आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल एवं पूर्वभाद्र नक्षत्र में, शुक्र एवं मंगल दिन में, चौथ, चतुर्दशी, नवमी, नामक रिक्ता तिथि में नवान्न भोजन नहि करी ।

अहिठाम श्राद्धकर्म सँ वाँचल अन्न अभोजि मात्रपरक अछि । अजपदक अर्थ पूर्वभाद्रपद अछि । नवान्न भक्षणक हेतु विहित नक्षत्रक सम्बन्ध में भोजराज तिथितत्त्व में लिखने छथि—

रोहिणी, श्रवणा, पुष्य, मृगशिरा, हस्त, रेवती, पुनर्वसु, अनुराधा, चित्रा, विशाखा, स्वाती, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, कृत्तिका, ज्येष्ठा, शतभिषा नक्षत्र में तथा शुभ दिन में पार्वण श्राद्ध एवं नवान्न भोजन प्रशस्त अछि । नन्दा तिथि, शुक्र एवं मङ्गल दिन में पार्वण निमित्तक श्राद्ध एवम नवान्न भोजन नहि करवाक चाही ।

ब्रह्मा = रोहिणी, विष्णुः = श्रवणा, बृहस्पतिः = पुष्य, शराधरः = शिरा, मार्त्तण्डः = हस्त, पौष्णः = रेवती, अदितिः = पुनर्वसू, मैत्रम् = अनुराधा, चित्रं = चित्रा ।

दोसरो वचन—श्रवणा, धनिष्ठा, पुष्य, पुनर्वसू, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, उत्तर फल्गुनी, उत्तराषाढ एवं उत्तरभाद्र नक्षत्र में नवान्न फल भक्षण प्रशस्त अछि ।

एवम् रोहिण्यादि द्वय (रोहिणी, मृगशिरा) पुनर्वस्वादि दुई, उत्तरात्रय = तीनू उत्तरा, हस्तादिपञ्चंकम् = हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, दूहू श्रवणा, रेवत्यादि दुई, ई सभय नक्षत्र, शुक्र, राशि एवं मङ्गल सँ भिन्न दिन, नन्दा, रिक्ता एवं त्रयोदशी भिन्न तिथि । तृतीय जन्म भिन्न तारा । अष्टम भिन्न चन्द्रमा । विशाखा भिन्न नक्षत्रगत सूर्य । पूस चैत, कात्तिक भिन्न मास, शुक्लपक्ष, हरिशयनभिन्न समय नवान्न ग्रहणकलेल प्रशस्त मानलगेल अछि ।

विमर्शः—पण्डितगङ्गाधरमिश्रकृतपरिशिष्टे यथा—

अथ नवान्नभोजनमित्यनेन विहितसमये देवपितृसमर्पणपूर्वकं नूतनान्नस्य प्रथम–भोजनम् । तदुक्तं स्मृतिसारे—

ब्रीह्शिालियवाम्बूनि देवेभ्यो नूतनानि च । पितृभ्योऽप्यसमाप्याॅथ न भुञ्जीत शुभेच्छुकः ॥
तस्मात्शुभेदिने देवान्पितृन् भक्त्या निवेद्य वै। स्वयं चमुदितो भूत्वा भुञ्जीत स्वजनैः सह॥

तथा च शब्दकल्पद्रुमे—

अदत्वा यस्तु भुञ्जीत नवान्नानि कथंचन । न तस्य धर्मो विद्येत एवमेव न संशयः ॥

तथा च शातातपः—

नवोदके नवान्ने च गृह प्रच्छादने तथा । पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥

तथा चोक्तं वायुपुराणे—

अकृताग्रयणं चैव धान्यजातं द्विजोत्तम । राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ।।

राजमाषा = बोड़ा, अणव: = अकरा मिसिया

अथ तत्र वान्नं त्रिविधं—

(१) शरदि (कार्त्तिकस्याविहितत्त्वात् आश्विन शुक्लपक्षे) व्रीहिधान्येन,
(२) हेमन्ते (पौषस्याविहितत्त्वान्मार्गशुक्लपक्षे) हैमन्तिकान्नेन,
(३) वसन्ते (चैत्रस्याविहितत्त्वाद्वैशाखशुक्लपक्षे) यवेन पार्वणं कर्त्तव्यम् ।

तत्र हैमन्तिकनवान्नविषये समयनियम उक्तो वाराहपुराणे—

वृश्चिके पूर्वभागे तु नवान्नं शस्यते बुधैः । अपरे क्रियमाणे तु धानुष्येव कृतं भवेत् ।।
धनुषि यत्कृतं श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु । पितरस्तत्र गृह्णन्ति नवान्नामृतकांक्षिण: ।।

अत्र वृश्चिके पूर्वभागे, त्रयोदशांशाभ्यन्तरे—

अयमेवार्थो बहुभिः स्मृतिनिबन्धबन्धकैः किल कृतो वचनान्तरप्रामाण्यात् ।

तथाचोक्तं ज्योति:सारसमुच्चये— त्रयोदशांशपर्यन्त वृश्चिके च यदा रवौ ।
स्वच्छे पक्षे च चन्द्रे च वारे गुरुज्ञसंज्ञके । नवान्नं तत्र कुर्वीत शुभे चन्द्रे च ऋक्षके ।।

विद्यापतिठक्कुरकृतज्योति:सारसमुच्चये—

वृश्चिकस्थे रवौ त्यक्त्वा वासराणि त्रयोदश ।
नवान्नैर्विहितं श्राद्धं धानुष्येक कृतं भवेत् ।।

परन्तु राशेस्त्रिंशदशात्मकत्वात् पूर्वभावे पञ्चदशांशाभ्यन्तरे इत्येवार्थस्तावत् साधारणोपस्थित्वाऽऽयाति । कथं तर्हि त्रयोदशांशाभ्यन्तर इति पूर्वभागस्यार्थोऽनेकनिबन्धेषूपलभ्यते; तत्र हेतुस्तु म.म. वाचस्पतिमिश्रमहोदयैः स्वकीयद्वैतनिर्णये व्यक्तीकृतः—

'त्रयोदशांशानन्तरं धनुरतिदेशः सायनबिरयनगणना राश्यभिप्रायेणेति ।'

विशेषस्तु परिशिष्टे द्रष्टव्यम् ।

अथ 'मृगनेत्रासु रात्रिषु' मृगनेत्राप्रमाणम्—

वृश्चिके सप्तरात्राणि त्रिंशद्रात्राणि कार्मुके । मकरे सप्तरात्राणि मृगनेत्रा: प्रकीर्त्तिता: ।।

मृगो = मृगशिरा नक्षत्रम्, नेत्रा = प्रापयिता सम्बन्धी यासां तद्रात्र्यवच्छिन्नाहस्य वृश्चिकस्थ रवे: शेषदशदिनेष्विति ।

दिनानि दशमार्गस्य पौषस्य सकलं दिनम् ।
मृगनेत्रासमाख्याता नवान्नं तत्र वर्जयेत् ।। इत्युक्तत्वात् ।

तथा चान्यमतेन मृगनेत्राप्रमाणम्—

वृश्चिके सप्तरात्राणि त्रिंशद्रात्राणि कार्मुके । मकरे सप्तरात्राणिं मृगनेत्रा: प्रकीर्त्तिता: ।।

अत्र वृश्चिकान्तं सप्तरात्राणि । धनुषः सर्वाः । मकरे सप्त, एताः मृगनेत्राः । अनेन तु वृश्चिकस्य त्रयोविंशत्यंशपर्यन्तसमयो नवान्ने विहित इत्यायाति ।

तथा च गौड़ीय वर्षकृत्ये— दिनत्रयाधिके विंशे दिने मार्गस्य वै गते ।
मृगनेत्रा स्मृतारात्रिर्नवान्नं तत्र वर्जयेत् ॥

तथा च— कृष्णपक्षे भृगुदिने विशाखस्थे विवस्वति ।
एक विशांशकादूर्ध्वं नवान्नं परिवर्जयेत् ॥

तत्राविहित तिथ्यादीन्याह ज्योतिषे—

सूर्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ तारेत्रिजन्मान्विते
नन्दानन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मघौ कार्त्तिके ।
भेषु ग्राहि शिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमि
श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् ॥

विशाखगे सूर्ये—इति वृश्चिकस्य विंशतिदण्डाधिकदिनत्रये । स्मरतिथौ—त्रयोदश्यां, तारे—इति पञ्चम सप्तम तारे, त्रिजन्मान्विते—तृतीयतारा जन्मतारा च ताभ्यां युक्ते तेन पञ्चम सप्तम तृतीय जन्म इति तारा चतुष्टयमपि निषिद्धमिति केचित् । मैथिलास्तु तारशब्दोगृहीतस्तत्र तारे इति सप्तमी तेन तृतीयजन्मतारे विषये तृतीयताराजन्मतारयान्विता तस्मिन् । तथा च भाषया—

'यों लगि सूरज विशाख रहे तिय जन्मक तार त्रयोदशी नन्दा'।

तिथितत्त्वे तु 'पापे त्रिजन्मान्विते' तत्र पापे पञ्चमे, तारात्रयेष्विति व्याख्यात तदपि गौड़देशीयम् । अन्यत् स्पष्टम् ।

रविवारे वर्ज्ज्यान्नाह सर्वसारसंग्रहे—

क्षौरं तैलं जलं चोष्णआमिषं निशिभोजनम् । रतिस्नानञ्च मध्याह्ने रवौ सप्त विवर्जयेत् ॥
आमिषं निम्बकाष्ठञ्च तप्तवारि हरीतकी । तैलमामलकी स्नानं वर्जयेद्रविवासरे ॥

रविव्रते वर्ज्याणि—पद्मपुराणे सृष्टिखण्डे अ० ६६ श्लो० ६९ ।

वर्जयेच्च शिलापृष्ठं शृङ्गवेरं च शाककम् । कोरदूषकपत्रञ्च रम्भाछागी घृतं तथा ॥
केशकीटादिकं वर्ज्यमुष्णोदक स्नानमेव च । अल्पबीजादिकं सर्वं व्रते सूरस्य वर्जयेत् ॥

शिलापृष्टम् = गोधूमादिचूर्णम्, शृङ्गवेरम् = आर्द्रम्, कोरदूषकपत्रम् कोद्रवान्नपत्रम्, रम्भाम् = कदलीम्, छागीघृतम् = तथेत्यनेन दुग्धदध्यादि केशकीटसंकुलमन्नम्, ऊष्णजलेन स्नानञ्च, अल्पबीजादिकं फलम् = बीजपूरकमेतानि सूरस्य सूर्यस्य व्रते वर्जयेत् । तथाच आदौ वृश्चिकमेषान्ते मलमासो यदा भवेत् । तदा रविव्रतारम्भविसर्गौ शास्त्रसम्मतौ ॥

॥ इति कृत्यसारसमुच्चये आग्रहायणकृत्यम् ॥

अथ पौषकृत्यम्

अथाकालवृष्ट्यादिवारः । स्मृतिः—

'पौषादिचतुरो मासान् ज्ञेया वृष्टिरकालजा ।
व्रतयात्राविवाहादि वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥'

एतच्च निरन्तरदिनत्रयवृष्ट्यां, तृतीयेन तु सप्ताहमिति वक्ष्यमाण-वचनैकवाक्यत्वात् । विशेषमाह—

'एकेनैकदिनं त्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम् ।
तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदाकालवर्षणे ॥

एकेनैकदिनस्पृशा वृष्ट्या द्वितीयेन दिनद्वयस्पृशा, एवमग्रेऽपि एकदिन-मिति तदग्रिमदिनमित्यर्थः । एवं दिनत्रयमित्यत्रापि वृष्टिदिनानन्तरदिनत्रय-मित्यर्थः । एवमग्रेऽपि वृष्टिदिनत्यागो दण्डापूपन्यायात् । तथा च वृष्ट्यधि-करणदिनं तदुत्तरमेकत्रिसप्तदिनानि च त्याज्यानि, एवं निरन्तरदिनचतुष्टयादि-वृष्ट्यावृष्ट्यधिकरणदिनचतुष्ट्यादिकं, तदनन्तरं सप्तदिनानि च त्याज्यानि, तत्रापि तृतीयेन तु सप्ताहमेतद्विषयत्वात्, 'अधिकं तु प्रवीष्टं न तु तद्धानिरिति न्यायेन' दिनचतुष्टयादिवृष्टौ अवश्यं दिनत्रयवृष्टिसत्वात् । अत्र द्वैतपरिशिष्टे एकेनैकदिनस्पृशा वृष्ट्या एकं दिनं, तदग्रिमं च दिनं त्याज्यम् । द्वितीयेना-व्यवहितदिनद्वयस्पृशा वृष्टया तदुत्तरं त्र्यहः । वृष्ट्यधिकरणदिनस्याशुद्धत्वं तु, न शुद्धिं निर्दिशेत्तावदिति यावत्तावत्पदसमभिव्याहारात् । वृष्टिदिनमादाय एक-द्वित्रिगणने तृतीयार्थकरणत्वानुपपतिः । द्वितीयेन दिनत्रयमित्यत्र दिनैकमित्येव ब्रूयादिति केशवमिश्राः । नाडीजङ्घस्तु पौषादिचतुरो मासानित्यत्र मासपदं पक्षपरमाह तथा हि—

'मासान् मार्गप्रभृति मुनयो व्यासवाल्मीकिगर्गा—
श्चैत्रं यावद्दूषणविधौ नेति कालं वदन्ति ।
नाडीजङ्घः सुरगुरुमुनिः प्राह वृष्टेरकालं
मासावेतावशुभफलदौ पौषमाघौ न शेषौ ॥

इति पठित्वा 'पौषादिचतुरो मासानि'त्यत्र पक्षा वै मासा इति वदन्ति । अकालवृष्ट्यापि यदि नरपशुचरणचिन्हं भुवि सम्पद्यते तदाऽशुद्धिर्नान्यथा ।

तथा हि— वृत्तेऽप्यकालवर्षे नाशुद्धिं निर्दिशेत्तावत् ।
यावन्न भवति ज्ञानं नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ।।' इति ।

तत्र नरपशुर्वानर इति मेधातिथिः ।।

हिन्दी—अब पूस महीने का कृत्य—

असमय वर्षा होने पर विचार । स्मृति का कथन है—

पूस से लेकर चैत महीने तक चार महीने को असमय वर्षा होने का समय जानना चाहिए । असमय वर्षा होने पर उपनयन, विवाह एवं यात्रा सात दिन तक वर्जित मानी गई है ।

आगे कहे जाने वाले वचन के साथ एक वाक्यता को ध्यान में रखकर यह कहा जाता है कि यह वर्षा लगातार तीन दिनों तक होने पर तीसरे दिन से सप्ताह तक व्रतादिकर्म वर्जित होना चाहिए । विशेषता बतलाई गई है—

एक दिन की वर्षा में एक दिन छोड़ना चाहिए । लगातार दो दिन की वर्षा में तीन दिन छोड़कर व्रतादि का अनुष्ठान करना चाहिए । तीन दिन लगातार असामयिक वर्षा होने पर व्रतबन्धादि नहीं करना चाहिए ।

एकेन का तात्पर्य एकदिन को छूने वाली वर्षा, द्वितीयेन, दो दिनों को छूने वाली वर्षा; इसी तरह आगे भी एक दिनम् का तात्पर्य उस से अगले एक दिन अर्थ होता है । इसी तरह 'दिनत्रय' यहाँ भी वर्षा जिस दिन हो, उस दिन के बाद तीन दिन का तात्पर्य है । इस तरह आगे भी जिस दिन वर्षा हो उसे दण्डापूप न्याय से छोड़कर ग्रहण करना चाहिए, और जिस दिन वर्षा हो, उसके बाद के एक, तीन एवं सात दिन त्याज्य हैं । इसी तरह लगातार चार दिन की वर्षा से जिस दिन वर्षा हो उसके चौथे दिन, उसके बाद सात दिन त्याज्य है । वहाँ भी 'निरन्तर तीन दिनों की वर्षा के बाद एक सप्ताह यात्रादि वर्जित माना गया है । 'अधिकं तु' इत्यादि इस न्याय से लगातार चार दिनों तक वर्षा होने पर निश्चय ही तीन दिनों की वर्षा होगी ही । इस पर द्वैतपरिशिष्ट में लिखा है; एक पद से एक दिन स्पृशावर्षा कहलाती है, जिस दिन वर्षा हो उसके अगले एक दिन वर्जित है । द्वितीय पद से लगातार दो दिनों की वर्षा को द्वयस्पृशा वर्षा कहते हैं; वर्षा के इन दो दिनों को छोड़कर अगले तीन दिन यात्रा प्रभृति के लिए छोड़ देना चाहिए । क्योंकि, जिस दिन वर्षा हो, उसे अशुद्ध माना गया हैं । जब तक, तब तक जैसे शब्दों के प्रयोग से वर्षा युक्त दिन की शुद्धि का निर्देश नहीं मिलता है । वर्षा के दिन को लेकर एक, दो, तीन गिनने पर तृतीयार्थ कारणत्व की अनुपपत्ति असिद्धि होती है । दो दिनों की लगातार वर्षा से तीन दिनों की जगह मात्र एक दिन ही

कहना चाहिए, ऐसा केशव मिश्र का कथन है । नाड़ीजङ्घ नामक आचार्य ने पूष आदि चार महीनों की जगह मास पद को पक्षपरक माना है । जैसा कि—

मार्ग मास से चैत्र तक की वर्षा को मुनि व्यास, वाल्मीकि एवं गर्गाचार्य ने अकाल वृष्टि कहा है । देवगुरु नाड़ीजङ्घ ने मात्र पूस और माघ दो महीनों की वर्षा को अकाल वृष्टि कहां है । इन दोनों महीने की वर्षा को इन्होंने अशुभ फल देने वाला कहा है ।

यह कहकर 'पूस से लेकर चैत तक' जो चार महीने कहा गया है, वहाँ चार महीने को चार पक्ष कहा है । अकाल वृष्टि को भी, यदि धरती पर नर पशु का चरण हो तब अशुद्धि तो अन्यथा नहीं । जैसे कि—

अकाल वृष्टि से घिर जाने पर भी यात्रा के लिए तब तक अशुद्धि का निर्देश नहीं है, जब तक धरती पर नर पशु का चरण चिन्ह अंकित न हो ।

मेधातिथि ने यहाँ नरपशु वानर को कहा है ।

मैथिली—आव पूषमासक कृत्य कहैत छी—

स्मृतिक अनुसार अकाल वृष्टि पर विचार—

पूस, माघ, फागुन, एवं चैत ई चारि मासक वर्षा कय असमयोत्पन्न वर्षा बुझवाक चाही । वर्षा समाप्तिक सात दिन बाद कोनो तरहक यात्रा, उपनयन एवं विवाहादि कार्य करवाक चाही, अहि सप्ताहक भीतर कोनो काज नहि करवाक चाही ।

आगुक वचनक संग एक वाक्यताकलेल ई निरन्तर तीन दिनक वर्षा में तृतीय पदेन सात दिन वर्जित अछि । विशेष कथ्य ई अछि—

अकाल वृष्टिक संदर्भ में एक दिन वर्षा भेने एक दिन त्याज्य तथा दुइ दिनक वर्षा सँ तीन दिन त्याज्य तथा निरन्तर तीन दिनक वर्षा सँ सात दिन व्रतादि कार्य वर्जित अछि ।

एक पदक उल्लेख सँ एक दिन स्पृशा वृष्टि बुझलगेल, द्वितीय पदेन दिनद्वय स्पृशा वृष्टि भेल । अहिना आगुसो एक दिनक उल्लेख सँ जाहि दिन वर्षा होय ओकर अग्रिम दिन बुझना जायत अछि । अहिना 'दिनत्रयम्' अहूठाम जाहि दिन वर्षा होय तकर अग्रिम तीन दिन ई अर्थ भेल । अहिना दण्डापूप न्याय सँ जाहि दिन वृष्टि होय तकरा छाड़ि गणना करवाक चाही । जेनाकि वर्षा जाहि दिन होय तकर वादक एक, तीन एवं सात दिन छोड़ि देवाक चाही । अहिना यदि निरन्तर चारि दिन धरि वर्षा होय तऽ वृष्टि अधिकरणक चारु दिन छोड़ि अग्रिम सप्ताह त्याज्य बुझवाक चाही । यदि ई कही तीन दिनक वर्षा में सात दिन त्याज्य तथा निरन्तर चारि दिनक वर्षों में साते दिन त्याज्य अछि, तऽ 'अधिकं तु

प्रविष्टन्नतु तद्धानि' अहि न्याय सों चारि दिनक निरन्तर वर्षाक कुक्षिभूत तीन दिनक वृष्टि तऽ छैहे । अहि सम्बन्ध मे द्वैतपरिशिष्ट में कहलगेल अछि । एक पदेन एकदिन स्पृशावर्षा, अहि मे मात्र अग्रिम एक दिन त्याज्य अछि । द्वितीय पदेन निरन्तर दिन द्वयकवर्षा भेने जाहि दिन वृष्टि हो तकरा छोड़ि अग्रिम तीन दिन त्याज्य भेल । यावत् तावत् पदक उल्लेख सँ वृष्टि अधिकरणक दिन के अशुद्ध मानल गेल अछि, न कि शुद्ध । दोसर वर्षाक दिन लऽके एक, दुइ, तीनक गणना में तृतीयार्थ कारणक अनुपपत्ति सेहो छैत । द्वितीय पदेन दिन त्रयक स्थान मे एक दिन एतवहि बाजवाक चाही' ई केशव मिश्रक कथन छैन्हि । मुनि नाड़ीजङ्घ तऽ 'पौषादि चतुरोमासान्' अहिठाम मासपढकें पक्षपरक मानैत छथि । जेना—

मार्गशीर्ष सेऽ लऽके चैतधरि चारिमासक वर्षा कें मुनि व्यास, वाल्मीकि एवं गर्ग अकालवृष्टि कहैत छथि । मुनि देवगुरू नाड़ीजङ्घ ने पूस माघ ई दुई मास के अशुभ फलदाई मानैत छथि । ई पढ़लाक बाद 'पूस आदि चारि मास के' अहिठाम 'पक्षा वैमासा इति' अर्थात् पक्षेके मास कहलगेल अछि । अकाल वृष्टि में सेहो यदि नरपशुक चरणचिहन धरती पर पावल जाय तखनहि अशुद्धि होय अन्यथा नहि । जेना—

सघन असामयिक वर्षा भेलो उत्तर अशुद्धिक निर्देश यावत् काल धरि नहि होय यावत् कालधरि धरती पर वानरक सञ्चरणजन्य चरण चिन्ह स्पष्ट देखल नहि नाय दोष नहि होय । इति ।

अहिठाम मेघातिथि नर पशुक अर्थ वानर कयने छथि ।

अथ ग्रहणादावशुद्धिमाहः—

'एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं ग्रहे ।
प्रयाणे सप्तरात्राणि त्रिरात्रं व्रतबन्धने ।।'

पाणीग्रहो विवाहः । ग्रहे ग्रहणे, व्रतबन्धने उपनयने, एतच्च प्रौढकन्या-प्रौढमाणवकविवाहोपनयनविषयमतो वक्ष्यमाण वचनाद्विरोधः ।

'दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्त दिनानि च ।
भूकम्पे च समुत्पन्ने त्रिरात्रं परिवर्जयेत् ।।
दृश्यते सिंहिकासूनुरुदितो गगने यदि ।
यात्रादौ मङ्गले कार्ये सप्तरात्रं विवर्जयेत् ।।
अरिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहिकासूनुदर्शने ।
सप्तरात्रं न कुर्वीत यज्ञोद्वाहादि मङ्गलम् ।।
दर्शनाद्दर्शनाद्राहोः केतोः सप्तदिनं त्यजेत् ।
यावत्केतूदयस्तावदशुद्धः समयो भवेत् ।।

धूमकेतौ समुत्पन्ने ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ।
ग्रहाणां सङ्गमे चैव न कुर्यान्मङ्गलक्रियाम् ।।

यदाम्बुवृष्टिः कुलिशं पतत्यधो धराप्रकम्पोऽसुरकेतुदर्शनम् ।
तदा विवाहव्रतबन्धनेषु विवर्जयेत्सप्तदिनानि शास्त्रतः ।।'

अम्बुवृष्टिः दिनत्रयमकालवृष्टिः ।

'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूदयोल्कापतनादिदोषे ।
व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ।।'

हिन्दी—अब ग्रहणादि से होने वाली अशुद्धि कहते है—

ग्रहण लगने पर एक रात छोड़कर विवाह करना चाहिए । तीन रात छोड़ कर उपनयन तथा सात रात छोड़कर यात्रा करनी चाहिए ।

पाणिग्रहः = विवाहः ।·ग्रहे ग्रहण लगने पर, व्रतबन्धने = उपनयन में, ये सब वयस्क कुमारी की शादी और सयाने लड़के के उपनयन के सम्बन्ध में कहे गये हैं । इसीलिए आगे आने वाले वचन से इस कथन का विरोध है ।

दिग्दाह होने पर एक दिन, ग्रहण लगने पर सात दिन और भूकम्प होने पर तीन दिन• छोड़कर कोई माङ्गलिक कार्य करना चाहिए ।

यदि आकाश में राहु का उदय दिख पड़े तो सात रात छोड़कर कोई माङ्गलिक कार्य करना चाहिए ।

अनिष्ट सूचक घटना घटने पर, त्रिविध उत्पात होने पर या राहु के दर्शन होने पर सात रात तक यज्ञ या विवाहादि कोई माङ्गलिक कार्य नहीं करना चाहिए ।

राहु और केतु के दर्शन होने पर सात दिन छोड़ देना चाहिए । जब तक आकाश में केतु का उदय रहता है तब तक अशुद्ध समय रहता है ।

धूमकेतु के उदय होने पर चन्द्र या सूर्य या चन्द्र ग्रहण लगने पर ग्रहों के पारस्परिक युद्ध काल में कोई माङ्गलिक कार्य नहीं करना चाहिए ।

यदि तीन दिन की अकाल वृष्टि हो, वज्रपात हो, भूकम्प हो, दानव केतु के आकाश में दर्शन हो तो उपनयन और विवाह में सात दिन छोड़ देना चाहिए शास्त्रानुसार अम्बु वृष्टि = लगातार तीन दिन की वर्षा ।

सूर्य या चन्द्र ग्रहण, भूकम्प, आकाश में केतु का उदय, उल्का पतन आदि दोष में व्रतादि माङ्गलिक कर्म में दस दिन वर्जित करते हैं, जानकार लोग और कुछ लोग तो तेरह दिन तक वर्जित बताते हैं ।

मैथिली—आव ग्रहणादि सँ होनो वाली अशुद्धिक विचार ।

ग्रहण लगलापर एक राति छोड़ि विवाह करवाक चाही । तीन राति छाड़ि उपनयन तथा सात रातुक वाद प्रयाण करवाक चाही ।

पाणिग्रहः = विवाह । ग्रहे = ग्रहणलगने पर, व्रत बन्धने = उपनयन में, ई सभटा वयस्क कुमारि कन्याक विवाह एवं बटुक क उपनयनक सम्बन्ध में कहलगेल अछि । ताँय आगू जे कहव ताहि वचन सँ ई कथनक विरोध छैक ।

दिग्दाह में एक दिन, ग्रहण लागला पर सात दिन, भूकम्प भेने तीन राति छोड़ि कय कोनो माङ्गलिक कार्य करी ।

यदि आकाश में राहुक उदय होय तऽ यात्रादि माङ्गलिक कार्य सात राति छोड़ि के करी । अनिष्ट सूचक कोनो घटन घटलाक उत्तर, त्रिविध उत्पात भेने, राहुक दर्शन भेने, यज्ञ एवं विवाहादि कोनो माङ्गलिक कार्य में सात राति वर्जित अछि ।

राहु केतुक दर्शन भेने माङ्गलिक कार्य सात दिन धरि नहि करीं । यावत् काल धरि आकाश केतुक उदय रहत तावत काल धरि अशुद्ध समय मानल जायत अछि ।

धूमकेतुक उगला पर, सूर्य चन्द्रग्रहण लागला उत्तर ग्रहक परस्पर युद्धक समय कोनो मांगलिक कार्य नहि करवाक चाही ।

तीन दिन धरि यदि लगातार अकाल वृष्टि होय, वज्रपात होय, भूकम्प होय आकाश में केतुक उदय होय तऽ शास्त्रदृष्टया विवाह एवं उपनयनादि सात दिन धरि वर्जित अछि । अम्बुवृष्टिः—तीन दिनक अकालवृष्टिः ।

चन्द्र सूर्यग्रहण, भूकम्प, केतुक उदय एवं उल्कापतन प्रभृति दोष में शास्त्रज्ञ व्रतादिक शुभ कर्म दस दिनक धरि वर्जित कयने छथि, कुछ लोकनि तेरह दिन धरि वर्जित कयने छथि ।

अत्रादिपदेन करकावज्रपातादेरुपग्रहः इति द्वैतनिर्णयप्रदीपे गोकुलनाथोपाध्यायाः । ग्रहणभूकम्पोल्कापातकरकापातादिसमाहारे त्रयोदशाहमशुद्धिम् । किञ्चिन्न्यूनतत्समाहारे दशाहम् । ग्रहणाद्येकैकोपग्रहे त्र्यहमिति द्वैतनिर्णयः। एतत्समुदायार्थपर्यालोचनया अयमर्थः पर्यवसितः । ग्रहणेऽत्यन्तप्रौढकन्याविवाहे तद्दिनमात्रशुद्धम् । प्रौढमाणवकोपनयने ग्रहणदिनमारभ्य दिनत्रयम्, प्रौढभिन्नकन्याविवाहे तादृशमाणवकोपनयनादिमङ्गलकर्मसु ग्रहणानन्तरं सप्तदिनमशुद्धम्। दिग्दाहे च मङ्गलकर्ममात्रे एकदिनमशुद्धम् । भूकम्पे दिनत्रयम् । तद्दिनमारभ्य ग्रहणभूकम्पोल्कापातवज्रकरकापातादिसमुदाये एकस्मिन्दिने जाते उपनयने त्रयोदशदिनमशुद्धम्, किञ्चिन्न्यूनतत्समुदाये जाते दशाहमशुद्धम् अन्यत्सुगमम्।

भूमिदारणे वज्रमात्रपाते वा मङ्गलकर्ममात्रे तद्दिनानन्तरं दिनमेकमशुद्धमिति द्वैतपरिशिष्टाद्यनुसारीयः पन्थाः ।

'व्रतान्हि पूर्वसन्ध्यायां वारिदो यदि गर्जति ।
तद्दिनं स्यादनध्यायं व्रतं तत्र न कारयेत् ।।'

व्रतमुपनयनम्, पूर्वसन्ध्या प्रातःसन्ध्या । अत्र प्रमाणं विष्णुपुराणम् —

'ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना ।
देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना ।।' इति ।

'प्रभातसन्ध्यासमये च गर्जिते तदा ह्यनध्यायः ।

इति रत्नसारशतकं च । तथा च उपनयनदिने प्रातःसन्ध्यागर्जे तद्दिन-मुपनयनेऽशुद्धमित्यर्थः पर्यवसितः । पक्षधरमिश्रीयमानबोधसारसंग्रहेऽप्येवमेव । तथा हि—

व्रतान्हि पूर्वसन्ध्यायामित्यादिवाक्यस्य उक्तत्वात् ।

हिन्दी—यहाँ आदि पद से ओले तथा बिजली का गिरना जैसे उपग्रह का बोध होता है, यह द्वैतनिर्णयप्रदीप में गोकुलनाथ उपाध्याय ने कहा है ।

ग्रहण, भूकम्प, उल्कापुञ्ज का टूट कर गिरना जैसे उपद्रवों के इकट्ठे होने पर दश दिन की अशुद्धि होती है । ग्रहणादि एक एक उपग्रह में तीन दिन वर्जित है । यह द्वैतनिर्णय का सिद्धान्त है । इस समूह के पर्यालोचन से यह अर्थ निकलता है । अत्यधिक वयस्क लड़की की शादी में जिस दिन ग्रहण लगा हो मात्र वही दिन अशुद्ध मानना चाहिए । इसी तरह वयस्क बटुक के उपनयन में जिस दिन ग्रहण लगा हो उसे लेकर तीन दिन छोड़ देना चाहिए । जो कन्या और बालक प्रौढ़ न हो क्रमशः उनकी शादी एवं उनके यज्ञोपवीत या अन्य कोई माङ्गलिक कार्य में ग्रहण के बाद सात दिन अशुद्ध मानना चाहिए । दिग्दाह में किसी भी तरह के माङ्गलिक कर्म के लिए एक दिन अशुद्ध मानना चाहिए और भूकम्प होने पर तीन दिन । उस दिन से लेकर ग्रहण, भूकम्प, उल्कापात, बिजली गिरना, ओले पड़ना आदि यदि एक साथ हो तो उपनयन में तेरह दिन वर्ज्य है । ऊपर वर्णित समूह में यदि कुछ कम है तो दस दिन अशुद्ध हैं । अन्य बातें तो साधारणतः बोधगम्य ही है । भूकम्प होने पर या केवल बिजली गिरने पर किसी भी माङ्गलिक कार्य में उस दिन के बाद का मात्र एक दिन अशुद्ध माना गया है; यह द्वैतपरिशिष्टादि के अनुसरणीय पथ है ।

व्रतबन्ध जिस दिन हो उनकी पूर्व संध्या में यदि मेघ गरजे तो उस दिन अनध्याय होना चाहिए । उस दिन व्रतबन्ध नहीं करना चाहिए ।

व्रत का अर्थ उपनयन, पूर्व संध्या का अर्थ प्रात: सन्ध्या । इसका प्रमाण विष्णुपुराण में—

इसके बाद सम्पूर्ण संसार रूपी कमल को विकसित करने के लिए भगवान् विष्णु रूपी सूर्य देवकी के गर्भ से पूर्व संध्या में प्रकट हुए ।

प्रात: सन्ध्या समय में यदि मेघ गरजे तो विद्वज्जन उस दिन अनध्याय कहते हैं । यंह रत्नाकरशतक मे भी कहा गया हैं । और उपनयन के दिन प्रात: सन्ध्या में यदि मेघ गरजे तो उस दिन उपनयन को अशुद्ध माना गया है । पक्षधर मिश्र के मानबोधसारसंग्रह में भी यही कहा गया है । 'व्रत के दिन पूर्व संध्या में' इस कथन से भी सिद्ध यही होता है ।

मैथिली—द्वैतनिर्णयप्रदीप में गोकुलनाथ उपाध्यायक विचारें अहिठाम आदिपदेन पाथर स्वशवाय एवं वज्रपातादि उपग्रहक बोध होयत अछि । ग्रहण, भूकम्प, उल्कापात करकापात आदि समाहार में तेरह दिनक अशुद्धि मानलगेल अछि । समूह में यदि किछु कम होय तऽ दस दिनक अशुद्धि होयत अछि । द्वैतनिर्णयक मतानुसार यदि एक एकटा कोनो उपग्रह होय तऽ तीन दिनक अशुद्धि मानलगेल अछि । ई समुदायक पर्यालोचन से एतवहि अर्थ होयत अछि जे ग्रहण लागला पर अत्यन्त प्रौढ कन्याक विवाह में तद्दिन मात्रे अशुद्ध मानलगेल । अहिना प्रौढ वयस्क उपनयन में ग्रहण दिन से तीन दिन अशुद्ध मानलगेल । प्रौढकन्या यदि नहि होय तऽ हुनक विवाह में तेहने मानवक उपनयन में तथा अन्य कोनो माङ्गलिक कृत्य में ग्रहण लागलाक बाद सात दिन अशुद्ध होयत अछि । दिग्दाह भेला पर माङ्गलिक कर्ममात्र में एक दिन अशुद्ध । भूकम्प भेने तीन दिन अशुद्ध । ताहि दिन सऽ लऽके ग्रहण, भूकम्प, उल्कापात, वज्रपात, करकापात आदि समुदाय में यदि कोनो एक दिन होय तऽ तेरह दिनक बाद उपनयन करवाक चाही । उपग्रह समूह में यदि किछु कम होय तऽ दश दिन अशुद्ध मानलगेल अछि । आन सब सुगमे अछि । भूमिधरण किम्बा वज्रपात भेने कोनो माङ्गलिक कार्य मे उपग्रहक दिनक एक दिन बाद अशुद्ध होयत अछि ई द्वैतपरिशिष्टादिक अनुसरणीय मार्ग अछि ।

उपनयनक पूर्व संध्या में यदि मेघ गरजय तँ ताहि दिन अनध्यायमानि उपनयन नहि करवाक चाही । व्रत = उपनयन, पूर्व सन्ध्या = प्रात: सन्ध्या । अहिठाम विष्णुपुराणक वचन अछि—

सम्पूर्ण संसार रूपी कमलक विकास हेतु विष्णुरूपी सूर्यक आविर्भाव देवकी गर्भ सँ पूर्व सन्ध्या में भेल । इति । प्रात: सन्ध्या समय में यदि मेघ गरजय तऽ विद्वज्जन अनध्याय कहैत छथि । इ रत्नसारशतकक कथन अछि । उपनयन दिनक प्रात; सन्ध्या में यदि मेघक गर्जन होय त ताहि दिन उपनयनकलेल अशुद्ध होयत अछि । ई अर्थ भेला पक्षधरमिश्रक मानबोधसारसंग्रहो में अहिना लिखल

अछि । तथा—'व्रतक पूर्व सन्ध्या में' इत्यादि वाक्यक कथन से सिद्ध होयत अछि ।

अथ अर्द्धोदयः—

महाभारते—'अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः ।
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ॥

अमा अमावास्या । पौषमाघयोरित्यनेनान्वयः, अर्को रविवारः पातो व्यतीपातयोगः ।

'श्रवणर्कव्यतीपातैरमा चेत्पौषमाघयोः ।
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः किञ्चिन्न्यूने महोदयः ॥'

योगोऽयं दिवैव शस्तः । तथा हि तिथितत्त्वचिन्तामणिधृतवचनम्—

'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन ॥' इति ।

फलमाह— अर्द्धोदये तु सम्प्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् ।
शुद्धात्मनो द्विजास्सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः ॥
यत्किञ्चिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम् ॥

अत्र सङ्कल्पः—ॐ अद्य पौषे मासि कृष्णे पक्षे अमावस्यायां तिथावमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मम सूर्यग्रहकालीनगङ्गास्नानजन्यफलकोटिगुण-प्राप्तिकामोऽर्द्धोदये गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये । एवं माघेऽपि, तत्र पौषस्थाने माघे मासीत्येवं विशेषः । एतन्मासे महिषीप्रसवे दोषशान्तिर्भद्रेऽभिहिता ॥

अथ वैशाखादौ कौशिकीस्नाने प्रमाणमभिहितं प्राक् । पौषीपूर्णिमायां तत्स्नाने प्रमाणाभावेऽपि शिष्टाचारात्स्नानं कर्त्तव्यम् । तत्र संकल्पमाह संकल्पावली—'ॐ अद्येत्यादि पृथिव्यधिकरणसकलतीर्थस्नानजन्यफल-प्राप्तिकामः कौशिक्यां स्नानमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य—

'ॐ गाधिराजसुते देवि विश्वामित्रमुनेः स्वसा ।
ऋचीकभार्ये सत्यार्ये पापं मे हर कौशिकि ॥

इति पठित्वा स्नायात् ॥

हिन्दी—अब अर्द्धोदय के सम्बन्ध में—

महाभारत में—पूस एवं माघ महीने की अमावस्या यदि श्रवणा नक्षत्र, रविवार दिन एवं व्यतीपात योग युक्त हो तो एक करोड़ सूर्यग्रहण स्नान के समान फल देने वाला अर्द्धेदय कहलाता है ।

अमा = अमावास्या, पूस और माघ का इसके साथ अन्वय है । अर्कः = रविवार, पातः = व्यतीपात योग ।

श्रवणा नक्षत्र, रविवार दिन, व्यतीपात योग युक्त पूस और माघ की यदि अमावास्या हो तो उसे अर्द्धोदय जानना चाहिए । इन योगों में कुछ कमी हो तो उसे महोदय कहना चाहिए । अर्द्धोदय योग दिन में ही प्रशस्त होता है । तिथितत्त्वचिन्तामणि में उद्धृत वचन के अनुसार—

'यह योग दिन में ही प्रशस्त है, रात में कदापि नहीं ।' इति ।

फल कहते हैं—अर्द्धोदय योग लगने पर सारे के सारे पानी गङ्गाजल की तरह हो जाते हैं । शुद्धात्मा सभी द्विज ब्रह्म के तुल्य होते हैं । इस अवसर पर दिये गये छोटे से छोटे दान भी मेरु के समान होते हैं ।

यहाँ संकल्प—आज पूस महीने कृष्ण पक्ष तथा अमावास्यातिथि में अमुक गोत्र का अमुक शर्मा मैं सूर्यग्रहणकालीन गङ्गास्नान जन्य करोड़ गुणा अधिक फल पाने की कामना से इस अर्द्धोदय वेला में गङ्गास्नान करुँगा । इसी तरह माघ महीने में भी पूस की जगह माघ महीने कहना चाहिए । इस महीने में भैंस के बच्चा देने पर जो दोष लगता है, उस की शान्ति भादो महीने में ही कहा जा चुका है ।

वैशाख प्रभृति में कोशी स्नान का प्रमाण पहले कहा जा चुका है । पूस की पूर्णिमा में यद्यपि कौशिकी स्नान का कहीं प्रमाण नहीं है फिर भी, शिष्टाचार के अनुसार स्नान करना चाहिए । सङ्कल्पावली के अनुसार—ऊँ अद्येत्यादि पृथिवी अधिकरणक सकल तीर्थ स्नान जन्य फल प्राप्ति की कामना से कोशी में मैं स्नान करुँगा, ऐसा सङ्कल्प करना चाहिए—

हे कौशिकि, हे गाधिराज की पुत्री, मुनि विश्वामित्र की बहन तथा ऋचीक की पत्नी, हे आर्ये मेरा पाप विनष्ट करो । यह पढ़कर स्नान करें ।

मैथिली—आब अर्द्धोदयक सन्दर्भ में—

महाभारतक अनुसार—पूस एवं माघक अमावास्या यदि श्रवणा नक्षत्र रविवार दिन एवं व्यतीपात योग युक्त हो त अर्द्धोदय योग बुझवाक चाही । ई कोटि सूर्य ग्रहणक सदृश फलदायी होयत अछि ।

अमा = अमावास्या, एकर पूस एवं माघक संग अन्वय अछि । अर्कः = रविवार, पातः = व्यतीपात योग ।

पूस माघक अमावास्या, श्रवणा नक्षत्र, रविवार दिन एवं व्यतीपात योग सँ समन्वित होय तऽ अर्द्धोदय योग बुझवाक चाही, यदि एकरा में किछु कम योग होय तऽ महोदय योग बुझवाक चाही ।

ई योग दिन में प्रशस्त अछि । तिथितत्त्वचिन्तामणिधृतवचनक अनुसार—

'ई योग दिने में प्रशस्त मानल गेल अछि, राति में नहि ।' इति ।

अर्द्धोदय योग में सभटा जल गङ्गा जलक सदृश भऽ जायत अछि । शुद्धात्मा सभटा द्विज ब्रह्म सदृश भऽ जायत छैथि । अहि अवसर पर देल दान मेरु सदृश होयत अछि ।

अर्द्धोदय स्नानक सङ्कल्प—आइ पूस मास कृष्णपक्षक अमावास्या तिथि में अमुक गोत्रक अमुक शर्मा हम सूर्यग्रहणकालीन गङ्गास्नान जन्य फलक कोटि गुण प्राप्तिक कामना सँ अर्द्धोदय में गङ्गास्नान करव । अहिना माघो में ताहि में पूसक स्थान में माघमास कहवाक चाही । अहिमास में महिषी प्रसवक दोषक शान्ति भादवमास में कहने छी ।

वैशाख आदि मास में कोशी स्नानक प्रमाण पहिने हम कहने छी । पूस पूर्णिमा कें कोशी स्नानक यदपि कोनो प्रमाण नहि भेटैत अछि तथाऽपि शिष्टाचारक अनुरोधे स्नानकरवाक चाही । एकरालेल संकल्पावली में सङ्कल्प लिखल अछि—'ओं आद्य इत्यादि पृथिवी अधिकरणक सकलतीर्थ स्नानजन्य फलप्राप्ति कामना सँ हम कोशी में स्नान करव ।' एतवा संकल्प करि—

हे गाधिराज पुत्रि, मुनि विश्वामित्रक बहिन, ऋचीकक पत्नी, अहाँछी, हे आर्ये, हे कौशिकि, अहाँ हमर पाप हरि लिअ । ई पढिकय स्नान करवाक चाही ।

विमर्शः—स्मृतिकौस्तुभे वशिष्ठे—

सूर्यस्यार्द्धोदये काले ह्येते योगाः प्रकीर्त्तिताः ।
अर्द्धोदय इति ख्यातः कोटिसूर्यग्रहैः समः ।।

कृत्यशिरोमणि स्कान्दे—

माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते ।
अर्द्धोदयं तमित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम् ।। इति ।

पौषमाघयोरमावास्यायां श्रवणनक्षत्ररविवार व्यतीपातयोगेऽर्द्धोदयः । व्यतीपातादिकिञ्चित्सत्त्वे रविवारे महोदयः । दिवायोग एव । गूढार्थदीपिकायां वामदेवोपाध्यायो यथा—

अमार्क पाताश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः ।
अर्द्धोदयः सविज्ञेयः कोटिसूर्य ग्रहैः समः ।। इति ।

पौषमाघयोर्मध्यवर्त्तिनी पौषी पौर्णमास्युत्तरामामावास्येत्यर्थः इति भट्टाः । मदनरत्ने पुष्यपौषस्य मावस्य चेत्यर्थ उक्तः । तन्न हेमाद्रि विरोधात् ।

तथा च—शुक्लादेः पौषस्य कृष्णादेर्माघस्यामावास्या तेन शुक्लादि कृष्णादि मासद्वयोरमावास्या माघामावास्यैव न तु पौषस्येति नियमः । पौषामावास्यायां श्रवणा नक्षत्र सम्भवात् । सूर्यचन्द्रयोः सङ्गमः खल्वामवास्यायां पौषेऽसम्भवतीति वृद्धज्योतिर्विदः ।

तद्युक्तम् । अग्रहण मलमासानन्तरं पौषामावास्यायां उत्तराषाढस्य सूर्ये सौर पौषशेष पतितायां श्रवण संभवात् । सूर्येन्दुसङ्गमो हि कुहूलक्षणं राशिनक्षत्रान्तरायेण हि दृष्टेन्दुः सिनीवाली भवति । पुष्यनक्षत्रस्य पूर्णिमायामिव श्रवणानक्षत्रस्य पौषामावास्यायां माघामावास्यायां वा कदाचित्कः सम्बन्धः सम्भवतीत्याभाति । अन्यथा पौषे माघे च क्रियते । निर्णयसिन्धौ तु—पौषामावास्यायामर्द्धोदयो योगविशेषः । अत्र—

'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन ।'

तथा च जयसिंहकल्पद्रुमे—

पातस्यान्तः पूर्वभागस्त्वमायाः श्रोणामध्यं भास्करस्योदये च ।
भानोवरि पुण्यमर्धोदयः स्यात् किञ्चिन्नूने तं महत्पूर्वमाहुः ॥

योगतिथिनक्षत्राणां मानानि त्रिधा विभाज्य पातयोगस्य तृतीयोभागः तिथेरमावास्यायाः पूर्वभागः । श्रवणानक्षत्रस्य मध्यभागः । एतेषां यदा संयोगः सूर्योदयसमये भवेत्तदाऽर्द्धोदययोगो भवतीति युक्तं लक्षणं चिरकालघटनयोग्यमिति ।

अथ तिथितत्त्वचिन्तामणिधृत स्कन्दपुराणवचनम्—

माघीयामा व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते ।
अर्द्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्क ग्रहैः समम् ॥

तथा च— माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने ।
वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे ॥

अत्र मैथिलनिबन्धेषूदयव्यापित्वे एव योगोऽयमिति न दृश्यते । केवलं स्मृतिकौस्तुभादौ दृश्यते । तच्चिन्त्यम् । यत्तु दाक्षिणात्यनिबन्धेषु विचारमस्ति तन्मैथिलैर्नादृतमित्यपि चिन्त्यम् ।

॥ इति कृत्यसारसमुच्चये पौषकृत्यम् ॥

अथ माघकृत्यम्

तत्र प्रातःस्नानकालमाह । तिथितत्त्वचिन्तामणौ स्मृतिः—

'उत्तमं तु सनक्षत्रं लुप्ततारं तु मध्यमम् ।
सवितर्युदिते भूपः ततो हीनं प्रकीर्तितम् ।।

अरुणोदयवेलास्नानफलमाह—

'यो माघमास्युषसि सूर्यकराभिताम्रे स्नानं समाचरति चारु नदीप्रवाहे ।
उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ ।।'

अत्र मासः सौरः । तेन मकरसंक्रमदिनमारभ्य प्रातःस्नाननियमः— जलमात्रे तु पद्मपुराणे—

'स्वर्गलोके चिरं वासो येषां मनसि वर्तते ।
यत्रक्वापि जले तैस्तु स्नातव्यं मृगभास्करे ।।'

मृगभास्करे मकरस्थे रवौ । स्नानमन्त्रस्तु—

'मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव ।
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ।।' इति ।

नरसिंहपुराणे— 'शीतकाले महावन्हिं प्रज्वालयति यो नरः ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गे चाप्सरसं लभेत् ।।'

हितार्थाय शीतोपशमनाय वै ।

हिन्दी—अब माघ महीने का कृत्य—

तिथितत्त्वचिन्तामणि में स्मृतिकार ने माघ महीने में स्नान करने का समय निर्धारित करते हुए लिखा है—

आकाश में तारे रहते स्नान करना उत्तम है, तारे लुप्त होने पर स्नान मध्यम है, हे राजन्, सूर्योदय के बाद का स्नान हीन स्नान कहलाता है ।

अरुणोदय वेला के स्नान का फल कहा है—सूर्य किरणों की आभा से ताम्रपर्णी माघ महीने के उषःकाल में जो व्यक्ति नदी के आकर्षक प्रवाह में स्नान करता है; वह अपने पितृ कुल एवं मातृकुल के सात पुरुषों का उद्धार कर देवताओं की देह धारणकर स्वर्गलोक जाता है ।

यहाँ मास से तात्पर्य सौर मास से है । अत: मकर संक्रमण दिन से लेकर प्रात: स्नान का नियम है जलमात्र में स्नान के लिए पद्मपुराण में—

स्वर्गलोक में बहुत दिनों तक निवास करने की कामना जिसके मन में है, मकर संक्रान्ति में जहाँ कहीं जैसे तैसे जल में भी स्नान करें ।

मृगभास्कर = मकरस्थ सूर्य । स्नान का मन्त्र—

हे गोविन्द, हे अच्युत, हे माधव, माघ महीने में मकरस्थ सूर्य के रहने पर इस स्नान से हे देव, यथोक्त फल मिले । इति ।

नरसिंहपुराण में—जाड़े में आग जलाकर जो दूसरे को गर्मी दे, सभी जन्तुओं के सुख के लिए अलाह जोड़े उसे स्वर्ग में अप्सरा मिलती हैं । हित के लिए अर्थात् ठंड से बचाने के लिए, यही अर्थ है ।

मैथिली—माघ मासक कृत्य आव कहब—

माघमास में प्रात: स्नानक काल निर्धारण तिथितत्त्वचिन्तामणि में—

आकाश में तारा रहैत स्नान उत्तम कोटिक मानगेल अछि । तारा के लुप्त भऽ गेला उत्तर स्नान मध्यम कोटिक तथा सूर्योदय भऽ गेलाक बाद स्नान अधम कोटिक होयत अछि ।

अरुणोदय वेला में स्नानक फल कहैत छी—

माघमासक उषःकाल में जखन उदयकालीन सूर्य किरणक द्युति सँ दिग्दिगन्त रक्ताभ भऽ जायत अछि, तखन जे व्यक्ति कोनो सुन्दर नदीक प्रवाह में स्नान करैत छथि ओ अपन पितृ-मातृ कुलक सात पुरखाक उद्धार करैत देवदेह धारण कय स्वर्गक यात्रा करैत छथि ।

अहिठाम मासपदेन सौर मासक बोध होयत अछि । तांय मकर संक्रमण सँ प्रात: स्नानक नियम अछि । (मकर संक्रान्ति माघ मासक संक्रान्ति जाहि दिन सूर्य उत्तरायण होयत छथि) जल मात्र में स्नानक सम्बन्ध में पद्मपुराण में—

स्वर्गलोक में चिरकाल धरि निवासक कामना जिनका मन में होहि मकरस्थ सूर्य के रहला पर जतोक्तौ जल में स्नान करवाक चाही । मृगभास्करे अर्थात् मकरस्थ सूर्य में । स्नानक मन्त्र—

हे गोविन्द, हे अच्युत, हे माधव, माघ मास में मकरस्थ सूर्य के भेला उत्तर में हम स्नान करैत छी एकर यथोक्त फल हमरा भेंटय । नरसिंहपुराण में—

जाड़क दिन में महावह्नि प्रज्वलित कय जे व्यक्ति समजीवक हित साधन करैत छथि हुनका स्वर्ग में अप्सरा भेटैत छैन्हि । हितार्थायक अर्थ भेल—शीत निवारण ।

विमर्श:—तत्र सौरक्रममास एव स्नानमिति मैथिलास्तत्र पूर्वराशितोऽपरराशौ रविविम्बकेन्द्रस्य यत्क्रमणमाक्रमणं तदेव संक्रमणम्, संक्रान्तिर्वेत्युच्यते । किञ्च पूर्वापर-राशिसन्धिबिन्दुगत सूर्यबिम्बकेन्द्रकालस्यातिसूक्ष्मत्वात् तदानीं स्नानदानादि विधानानर्ह-त्वात्तद्बिम्बपूर्वप्रान्त स्पृष्टराशिसन्धि समगात् तदपरप्रान्तस्पृष्टराशिसन्धिसमयावधिक: कर्मयोग्यकाल: पुण्यजनकत्वेनोक्त: ।

तथोक्तं देवलेन—

संक्रान्तिसमय: सूक्ष्म: दुर्ज्ञेय: पिशितेक्षणै: ।
मुख्यालाभे तु गौणेऽपि कार्यादानादिकाक्रिया ।।

विशेषसंक्रान्तिनिर्णयस्तु गङ्गाधरमिश्रकृतपरिशिष्टे द्रष्टव्यम् ।

तथा च शब्दकल्पद्रुमे—

'मकरे मूलकञ्चैव सिंहे चालाबुभक्षणम् ।
कार्त्तिके शूरणञ्चैव सद्योगो मांसभक्षणम् ।।'

अलाबु = तुम्बीफलम्, सजमनीति प्रसिद्धम् । शूरणम् = ओल: ।

अथ माघकृष्णचतुर्थी गणेशचतुर्थी । अस्यां गणेशोत्पत्तिमाह शिवधर्मे—

सर्वदेवमय: साक्षात्सर्वमङ्गलकारक: ।
माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिप: ।।'

इयं चतुर्थी तृतीयायुता ग्राह्या ।

'गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ता प्रकीर्तिता' ।

चतुर्थी पञ्चमीविद्धा' इत्यादिवचनात् गणेशचतुर्थ्याद्यतिरिक्तचतुर्थ्या एव पञ्चमीयोगप्राशस्त्याभिधानात् । 'मातृविद्धा गणेश्वरे' इति वचनात् ।

'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते' ।

इति बृहस्पतेश्च । एतच्चोभयदिने मध्याह्नव्याप्तौ उत्तरदिने मात्रे मध्याह्नव्याप्तौ व उत्तरदिने एव—

'मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात् परतश्चाप्यपरेऽहनि' इति बृहस्पते: ।

माघे मासि गणेशदेवता चतुर्थीति निबन्धमात्रेऽपि प्रसिद्धेति ठक्कुरा: । अमावास्यायां अर्द्धोदय: स पौषकृत्ये द्रष्टव्य: ।

हिन्दी—माघकृष्णचतुर्थी गणेशचतुर्थी के नाम से जानी जाती है । इस चतुर्थी में गणेश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शिवधर्म में कहा गया है—वस्तुत: सभी देवताओं के स्वरूप में सभी तरह के मङ्गल देने वाले श्रीगणेश की उत्पत्ति माघ कृष्ण चतुर्थी में हुई । यह चतुर्थी तृतीया युता ग्राह्य है ।

गणेश, गौरी और बहुलाव्रत को छोड़कर कहा गया है । चतुर्थी पञ्चमीविद्धा इत्यादि वचन से गणेश चतुर्थी को छोड़कर चतुर्थी ही पञ्चमी युक्त प्रशस्त कहा गया है । 'मातृविद्धा गणेश्वर' इस वचन के अनुसार ।

'गणेश चतुर्थी मातृविद्धा (तृतीया युता) प्रशस्त है ।' बृहस्पति के इस वचन से भी सिद्ध होता है । यह दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी ही ग्राह्य है । उत्तर दिनमात्र में मध्याह्न व्यापिनी अथवा उत्तर दिन में ही—'बृहस्पति के अनुसार दूसरे दिन मध्याह्न व्यापिनी गणेश चतुर्थी करनी चाहिए ।' माघ महीने में गणेश देवता की चतुर्थी सभी निबन्धों में प्रसिद्ध है—यह ठाकुर का कथन है । अमावास्या में अर्द्धोदय पूस कृत्य में द्रष्टव्य है ।

मैथिली—माघकृष्ण चौथ गणेश चौथ कहवैत अछि । अहि चौथ में गणेशक जन्म छन्हि । शिवधर्म में लिखल अछि—

गणेश जी साक्षात् सर्वदेवयमय छथि, ई सभक मङ्गल करऽवाला देवता छथि । माघ कृष्ण चौथ में हिनक प्रादुर्भाव भेल छन्हि । ई चौथा तृतीया युक्त ग्राह्य अछि ।

गणेश, गौरी एवं बहला चौथ छोड़ि, आन चौथ पञ्चमी युक्त ग्राह्य अछि ।' ई कहलगेल अछि ।

'चतुर्थी पञ्चमीविद्धा' इत्यादि वचन से, गणेश और छोड़ि आन चौथ व्रत में पञ्चमी युक्त प्रशस्त मानलगेल अछि । 'मातृविद्धो गणेश्वर'—ई वचनक बले । बृहस्पतिक सेहो कथन छन्हि—'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते।'

ई चतुर्थी (दुहू) दिन मध्याह्नव्यापिनी सेह ग्राह्य अछि । उत्तर दिन मात्र में मध्याह्नव्यापिनी अथवा उत्तरेदिन हयवाक चाही । मध्याह्न व्यापिनी यदि हो तऽ दोसर दिन परतः । ई बृहस्पतिक कथन छैन्हि ।

माघ कृष्ण चौथ गणेश चौथक नाम सभटा निबन्ध में प्रसिद्ध अछि । ई ठाकुरजीक कथन अछि । अमावास्यक अर्द्धोदय पूस मास में द्रष्टव्य अछि ।

विमर्शः—म.म. पण्डितपक्षधरकृत तिथिचन्द्रिकायाम्—

तृतीया संयुता यातु सा चतुर्थीफलप्रदा ।
कर्त्तव्याव्रतिभिस्तात! गणनाथ सुतोषिणी ।।

गणनाथं सुतरां तोषयतीति गणेश्वरव्रते तृतीयायुक्ता चतुर्थी विधेया । अन्य 'देवताव्रते तु गणनाथ सुतोषिणी' इत्यसगतं स्यात् । तस्मात् विनायकव्रते चतुर्थी तृतीयायुतैवोपोष्या । वत्सपूजा धेनुपूजयोः पृथगुपादानात् बहुलाचतुर्थी तृतीयोपेता मान्या । अतो गणेश्वरगौरीबहुलाचतुर्थीव्यतिरिक्ता देवतान्तरसम्बन्धिन्यश्चतुर्थ्यः पञ्चम्या विद्धा एव मान्याः । पञ्चमी युक्तैव युग्मवाक्यात् । अन्यच्च—

एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका ।
उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ।। इति ।

यदि पूर्वदिने चन्द्रोदयकालमतिक्रम्य प्रवृत्ता चतुर्थी नोत्तरदिने चन्द्रोदयकालं व्याप्नुयात्तत्र पूर्वैवेति राजनाथकृततिथिनिर्णये ।

अथ माघशुक्लपञ्चमी श्रीपञ्चमी । सा च पूर्वयुतेति माधवाचार्यः । दिवोदासोऽपि 'माघशुक्ला पञ्चमी च पूर्वविद्धा प्रशस्यते ।' इति मैथिलगौड-सम्मतम्' । हेमाद्रिमते परेति दक्षिणात्याः ।।

हिन्दी—अब माघ शुक्ल पञ्चमी श्री पञ्चमी—

माधवाचार्य ने इसे पूर्वयुता माना है । दिवोदास ने भी माघ शुक्ला पञ्चमी पूर्वविद्धा को ही प्रशंसनीय कहा है । मैथिल एवं गौड़ समाज इसे ही मान्यता देता है । किन्तु हेमाद्रिमत में दाक्षिणात्यों ने परविद्धा ही उचित ठहराया है ।

मैथिली—माघशुक्ल पञ्चमी श्री पञ्चमी कहवैत अछि—

ई श्री पञ्चमी माघवाचार्यक मतानु पूर्वविद्धा ग्राह्य अछि । दिवोदास सेहो—माघशुक्ला पञ्चमी पूर्वविद्धा के प्रशस्त्य मानैत छथि । मैथिल एवं गौड़क सम्मति एह छन्हि । मुदा दाक्षिणात्य हेमाद्रि मत सँ परविद्धा मानैत छथि ।

अथ माघशुक्लसप्तमी—

अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या । तथा च विष्णुः—

'सूर्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ।।
अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ।।'
'गङ्गायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा ।।'

इति क्वचित्पाठः । तत्र सप्तार्कपत्राणि सप्त बदरीपत्राणि शिरसि निधाय वक्ष्यमाणमन्त्रेण स्नायात् ।

'यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु ।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ।।'
'ॐ एतज्जन्मकृत पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् ।
मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञातं च यत्पुनः ।।
इति सप्तविधं पापं स्नानन्मे सप्तसप्तिके ।
सर्वव्याधिसमायुक्ते हर माकरि सप्तमि ।।'

इति मन्त्रं पठेत् । 'रोकं च शोकं च' इति तिथितत्त्वे पाठः । रोकं छिद्रमिति व्याख्यानं च ।

उभयदिने अरुणोदयकाले सप्तमीलाभे पूर्वदिने एव स्नानम् । अधिककालव्यापित्वात् ।

अरुणोदयकालमाह देवीभागवते––

'चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते ।' इति ।।

पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः ।
अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयो मतः ।। इति ।

हिन्दी––अब माघशुक्ल सप्तमी––

माघशुक्ल सप्तमी अरुणोदय व्यापिनी ग्राह्य है । विष्णुपुराण के कथनानुसार––माघशुक्ल सप्तमी सूर्यग्रहण के तुल्य है । इस सप्तमी को अरुणोदय वेला में स्नान महाफलदायी होता है ।

माघ शुक्ल सप्तमी अरुणोदय वेला में यदि प्रयाग का स्नान उपलब्ध हो तो वह एक करोड़ सूर्य ग्रहण में स्नान का फल देता है ।

(गङ्गास्नान यदि उपलब्ध हो तो सौ सूर्य ग्रहण के तुल्य हो) कहीं ऐसा भी पाठ है । सात आक के और वैर के पत्ते शिर पर रखकर आगे का मन्त्र पढ़ते हुए स्नान करें––

मैने सात जन्मों में जो कुछ भी पाप किया है तज्जन्य रोग और शोक को हे माघशुक्ल सप्तमी तुम विनष्ट कर दो ।

इस जन्म में मैंने जो पाप किया है तथा जन्मजन्मान्तर में मैने जो पाप किया है मन, वचन और कर्म से शरीर से जो पाप किया है; फिर जो ज्ञात तथा अज्ञात सात तरह के पाप है उन्हें हे, माघ सप्तमी! तुम मेरे स्नान मात्र से नष्ट कर दो । ओमाकरि सप्तमी तुम मेरी हर व्याधि को विनष्ट कर दो ।

यह मन्त्र पढे । 'रोकं शोकं च' यह तिथितत्त्व में पाठ है । यहाँ 'रोकम्' की व्याख्या छिद्रम् की गई है ।

दोनों दिन अरुणोदय वेला में यदि सप्तमी उपलब्ध हो पहले दिन ही स्नान करना चाहिए । क्योंकि, यह सप्तमी अधिक काल व्यापिनी है । अरुणोदय वेला के सम्बन्ध में देवी भागवत में लिखा है––

प्रातःकाल दिन निकलने से चार घड़ी पूर्व को अरुणोदय कहते हैं । इति । पाँच पाँच घटी को उषः काल तथा सात पाँच में अरुणोदय, आठ पाँच को प्रातः काल तथा शेष को सूर्योदय कहा जाता है । इति ।

मैथिली—आव माघ शुक्ल सप्तमी—

माघशुक्ल सप्तमी अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्य अछि । जेना विष्णुपुराण में—माघ शुक्ल सप्तमी ग्रहण तुल्य होयत अछि । अरुणोदय वेला में अहि में स्नान कयने महापुण्य प्राप्ति होयत अछि । ई सप्तमी यदि प्रयाग में भेंटय तऽ एक करोड़ सूर्य ग्रहण में स्नानक फल भेंटय । (गङ्गास्नान कयने एक सौ सूर्य ग्रहण में स्नानक फल भेंटय) कतौ ई पाठ देखल जायत अछि । अहि में सातटा आकक पात एवं सातटा वैरक पात माथ पर राखि आगूक मन्त्र पढैत स्नान करी ।

हम जे सात जन्म में पाप कयनेछी तज्जन्य जे हमर रोग एवं शोक अछि तकरा हे माघ सप्तमी अहाँ नष्ट करू । अहि जन्मक कयल पाप तथा जन्मार्जित जे हमर पाप, मन, वचन तथा देह सँ कयल पाप पुनः जानल या अनजानि कयल पाप ई हमर सात तरहक सभ तरहक व्याधियुक्त पाप हे माघ शुक्ल सप्तमी अहाँ नष्ट करू ।' ई मन्त्र पढवाक चाही । तिथितत्त्व में 'रोकं शोकं चेति पाठ अछि । अहि पाठ में 'रोकं' क अर्थ 'छिद्र' कयल गेल अछि ।

यदि अरुणोदयकाल में दुहूदिन सप्तमी होय तऽ अधिक काल धरि रहवाक कारण पूर्व दिनक सप्तमी करवाक चाही । अरुणोदयवेलाक सम्बन्ध में देवी भागवत में कहलगेल अछि—

सूर्योदय सँ पूर्व चार घड़ी कें अरुणोदय कहल जायत अछि । इति ।

पाँच पाँच घटी उषःकाल, सात पाँच अरुणोदय, आठ पाँच प्रातः एवं शेष सूर्योदय कहलगेल अछि । इति ।

विमर्शः— शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो यदा भवेत् ।
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ।।

तथा च भास्करपुराणे— शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः ।
तदा महाजया प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया ।।
स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् ।
सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं भास्करस्य वचो यथा ।।

'सप्तम्या भास्करो देवता' अतः सभास्करा चेति कोटि सप्तमी तुल्या शत सूर्यग्रहणफलं स्नानजमिति । अरुणोदयकालीना यत्र सप्तमी सैव ग्राह्याः । अस्यां मन्वन्तरादित्वात् श्राद्धदानयोरक्षयफलम् । मन्वन्तरादयस्त्वेतादत्तस्याक्षयकारका इति वचनात् । अत्र श्राद्धदानादावुदयगामिनी सप्तमी ग्राह्या । तद्यथा—

मन्वन्तरा युगाद्याश्च सप्तमी पार्वती प्रिया ।
रवेरुदयमिच्छन्ति न तत्र तिथियुग्मता ।। इत्याचार्य चूडामणिः ।

यत्र चोभयदिने अरुणोदयप्राप्तौ तत्र पूर्वैव ग्राह्या, अधिककालव्याप्त्यिनुरोधात् परदिने तिथिमलत्वाच्चेति ।

अथ माघशुक्लाष्टमी भीष्माख्या, तस्यां भीष्मतर्पणान्याह पाद्मे—

'माघे मासि सिताष्टम्यां सलिलैर्भीष्मतर्पणम ।
श्राद्धं च ये नरः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ।।'

भारते— 'शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।
सम्वत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।'

एतत्तर्पणे सर्ववर्णानामधिकारः; इयानेव विशेषः ।

ब्राह्मणः पितृतर्पणानन्तरम्, क्षत्रियादयस्तु प्रथममेव भीष्मतर्पणं कुर्युरिति समाचारः । तर्पणमन्त्रो यथा—

'वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृतिप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे ।।
वसूनामवताराय सांकृतिप्रवराय च ।
अर्घं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे ।।

इति सतिलाञ्जलिं तत्त्वा पठेत—

'ॐ भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ।।' इति ।।

हिन्दी—माघशुक्ल अष्टमी भीष्माष्टमी कहलाती है । इसमें भीष्म के लिए तर्पण के सम्बन्ध में पद्मपुराण में कहा गया है—माघशुक्ल अष्टमी में जो व्यक्ति भीष्म निमित्तक तिल जल से तर्पण एवं श्राद्ध करता है, वह सन्तान पाने का हकदार होता है । महाभारत में—

माघशुक्ल अष्टमी में भीष्म के लिए जो जल से तर्पण करता है । साल भर का किया गया पाप उसका उसी क्षण विनष्ट हो जाता है । इस तर्पण के लिए सभी वर्णों को समान अधिकार है, यही इसकी विशेषता है । ब्राह्मणों को पितृतर्पण के बाद तथा अन्य वर्णो को पितृतर्पण के पहले यह तर्पण करना चाहिए । यही शिष्टाचार है । तर्पण का मन्त्र यथा—

व्याघ्रपाद गोत्र के लिए अत्यन्त परिमार्जित व्यक्तित्त्व सम्पन्न लोगों में सर्वश्रेष्ठ, अपुत्र भीष्म वर्मा के लिए मैं जल देता हूँ । वस्तुओं के अवतार, संस्कृत जनों में श्रेष्ठ, आबाल ब्रह्मचारी भीष्म को मैं अर्घ्य देता हूँ ।

इन दोनों मन्त्रों को पढ़कर एक अञ्जलि जल देना चाहिए । पुनः पढ़ें—

हे शन्तनु पुत्र, वीर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय पितामह भीष्म, पुत्र एवं पौत्रों द्वारा की गई उचित क्रिया स्वरूप इस जल को आप स्वीकार करें ।

मैथिली—माघशुक्ल अष्टमी भीष्माष्टमीक नामे ख्यात अछि, अहि में भीष्मक तर्पणक सम्बन्ध में पद्मपुराण में कहलगेल अछि—

माघशुक्ल अष्टमीक दिन जे व्यक्ति तिल लऽके भीष्मक तर्पण करैत छथि तथा हुनक निमित्त श्राद्ध करैत छथि ओ सन्ततिक भागी होयत छथि । महाभारत में लिखल अछि—

माघशुक्ल अष्टमी में जे व्यक्ति भीष्मनिमित्तक जल दैत छथि अर्थात् भीष्मक तर्पण करैत छथि, हुनक सालोभरिक कयल पाप तत्क्षण विनष्ट भऽ जायत छैन्हि ।

अहि तर्पण में सबटा वर्ण के समानो अधिकार छैन्हि, एकर एव वहि विशेषता अछि केवल ब्राह्मण पितृतर्पणक बाद तथा क्षत्रियादि पहिनहि भीष्मतर्पण करथु ई शिष्टाचार अछि । तर्पणक मन्त्र यथा—

व्याघ्रपाद गोत्र, सांस्कृतिक श्रेष्ठ, अपुत्र भीष्मवर्माक हम तर्पण करैत छी । वसुक अवतार, विशिष्ट व्यक्तित्व, आबाल ब्रह्मचारी भीष्मकलेल हम अर्घ दैत छी । अहि दुहू मन्त्रे अर्घ्य दय पढि—

उँ हे भीष्म, शन्तनु सुत, वीर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, पुत्र पौत्रक उचित क्रिया स्वरूप ई जल अहाँ कय प्राप्त होय । इति ।

विमर्श:—भीष्मतर्पणाकरणे दोषमाह तिथितत्त्वचिन्तामणिधृत भारते—

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्यु भीष्माय नो जलम् ।
संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम ।।

पद्मपुराणे— 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयो: ।'

अत्र सकामो भीष्माय श्राद्धं दद्यादिति काम्यम् । एतदेव निर्णयसिन्धौ । तिथितत्त्वे तु ब्राह्मणद्वारा अन्यवर्णानामपि भीष्मतर्पणम् ।

ब्राह्मणस्त्वन्य वर्णानां य: करोत्यौर्ध्व दैहिकम् ।
तद्वर्णत्वमसौ याति इहलोके परत्र च ।। इति मरीचिवचनम् ।

भीष्मकृत्येतरपरमिति तिथितत्त्वे रघुनन्दन: । एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीयान्निर्णयसिन्धौ ।

अथ माघीपूर्णिमा परयुता ग्राह्या । यथोक्तं ब्रह्मवैवर्ते—

'भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन ।' इति ।।

हिन्दी—माघी पूर्णिमा परयुता ग्राह्य है ।

ब्रह्मवैवर्त्त में कहा गया है—पूर्वविद्धा अमावास्या एवं पूर्णिमा कदापि नहीं करनी चाहिए ।

मैथिली—माघी पूर्णिमा परिवा मिश्रित करवाक चाही । ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहलगेल अछि—

चतुर्दशीयुक्ता अमावास्या एवं पूर्णिमा कदापि नहि करवाक चाही ।

विमर्शः—माघीपूर्णिमा क्वचिन्महामाघी भवति ।

तदुक्तं तिथितत्त्वचिन्तामणौ ज्यौतिषे—

मेघराशौ यदा सौरि सिंहे गुरुविधू तथा ।
भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ।।

तथा च—महाफाल्गुनी फल्गुर्नो नक्षत्रयुक्त पूर्णिमायामपि, सिंहस्थिते गुरौ, महाचैत्री तु चैत्रीपूर्णिमायां चित्रार्थ चन्द्रगुरुयोगयुक्ता भवत्येवमेव सर्वेषु मासेषु ।

तथा चोक्तं राजमार्त्तण्डे—

मास संज्ञे यदा ऋक्षे चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ।
गुरुणा याति संयोगं सा तिथिर्महती स्मृता ।।

अतएव विष्णुना—'तस्यां स्नानोपवासादि चाक्षयं प्रोक्तम्' इत्युक्तम् । किन्तूक्तवचनेशनेर्मेषादिस्थत्वं न वर्त्तते । महामाघीयोगे तिथितत्त्वचिन्तामाणिधृत ज्योतिषवचने—मेषस्य शनिग्रहोल्लेखो दृश्यते । यदि च चन्द्रगुरु एव योगकारकौ स्याताम्, तदा प्रतिवर्ष गुरुग्रहाधिष्ठितराशियुक्त पूर्णिमायां प्रायस्तस्य सम्भवः ।

अथ हरिद्वारतीर्थे कुम्भयोग उक्तः कृत्यमञ्जर्याम्—

पद्मिनीनायिके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ ।
गङ्गाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः ।।

यदा बृहस्पतिः कुम्भराशौ भवेत्तस्मिन्वर्षे मेषसंक्रान्तौ त्वयं योगः ।

अथ गोदावरी तीर्थेत्वयं योगः—

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयस्तथा ।
गोदावर्यां तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले ।।

अयं योगस्तदा यदा गुरुः कर्कराशौ भवेत्तस्मिन् वर्षे श्रावणामावास्यायां सम्भवति।

अथ प्रयागतीर्थे कुम्भयोगः—

माघामायां मृगे भानौ मेषराशिगते गुरौ ।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे त्वतिदुर्लभः ।।

।। इति कृत्यसारसमुच्चये माघकृत्यम् ।।

अथ फाल्गुनकृत्यम्

स्मृतिः— 'फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीसुता ।
जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी ।।
उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा ।
रामपत्नी च सम्पूज्या सीता जनकनन्दिनी ।।' इति ।।

अथ फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतम् । तच्च प्रदोषनिशीथोभय व्यापिन्यां चतुर्दश्याम् । तथा हि स्कान्दे—

'त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः ।
जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी ।।' इति ।

दिनभुक्तिरस्तमनकालः । निशीथमाह—

'महानिशि द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः' इति। तथा च द्वितीयप्रहररात्रि-शेषदण्डः तृतीयप्रहररात्रिप्रथमदण्ड इति दण्डद्वयनिशीथ इति भावः । यदिपूर्व-दिने निशीथव्यापिनी परदिने प्रदोषमात्रव्यापिनी, तदा पूर्वदिने व्रतम्, 'निशीथ-व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी' इति वचनात् । यदि तु पूर्वदिने निशीथानन्तरं परदिने निशीथपूर्वकालपर्यन्तं चतुर्दशी, तदा परदिने व्रतम्, प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति वचनात् । प्रदोषमाह ठक्कुरः—प्रदोषो घटिकाचतुष्टयम् इति, एतत्पारणं तु चतुर्दश्यन्ते, तथा हि—

'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी ।
एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ।। इति ।

पारणकाले चतुर्दश्यन्तासम्भवे चतुर्दश्यामपि पारणमाह पाद्मे—

'उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां च पारणम् ।
कृतैः सुकृतलक्षैस्तु लभ्यन्ते वा न वा नरैः ।।

हिन्दी—अब फाल्गुन महीने का कृत्य—

फागुन कृष्ण अष्टमी के दिन श्री राम की पत्नी धरती की बेटी जानकी ने जन्म ग्रहण किया था । उसी समय श्रीराम ने सागर के किनारे व्रत रखा था। अतः श्री राम की पत्नी राजा जनक की पुत्री जानकी हमारी पूजनीया हैं ।

अब फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन शिवरात्रि का व्रत है । यह प्रदोष एवं निशीथ उभयव्यापिनी चतुर्दशी होती है ।

स्कन्दपुराण में लिखा है—हे देवि, त्रयोदशी तिथि जब सूर्यास्त तक होय तथा सारी रात चतुर्दशी होय तो उसे शिवरात्रि कहते हैं । शिवरात्रि में व्रती को सारी रात जगकर बितानी चाहिए ।

दिनभुक्ति का अर्थ सूर्यास्त तक का समय । निशीथ कहते हैं—'रात के बिचले प्रहर में दो घड़ी को महानिशा कहते हैं । दोपहर रात के बीत जाने पर उसका अन्तिम पहर एवं रात के तीसरे प्रहर का पहला दण्ड कुल मिलाकर दो दण्ड का निशीथ होता है । अर्थात् आधी रात के समय को निशीथ कहा जाता है । यदि पहले दिन निशीथव्यापिनी चतुर्दशी हो और दूसरे दिन प्रदोष व्यापिनी तो व्रत पूर्व दिन ही करना चाहिए । क्योंकि, ऐसा वचन है कि शिवरात्रि चतुर्दशी निशीथव्यापिनी ही ग्राह्य है । यदि पहले दिन मध्यरात्रि के बाद दूसरे दिन दोपहर रात के पहले तक ही चतुर्दशी हो तो दूसरे दिन ही व्रत रखना चाहिए ।'

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या' इस वचन के अनुसार प्रदोष के सम्बन्ध में महेश ठक्कुर का कहना है—घटिका चतुष्टय को ये प्रदोष काल मानते हैं; इसका पारण ये चतुर्दशी के अन्त में मानते हैं । जैसे—कृष्णाष्टमी, स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रि चतुर्दशी, इनका व्रत पूर्वयुता ग्राह्य है, तिथि के अन्त में पारण विहित है । इति ।

पारण के समय यदि चतुदर्शी का अन्त नहीं हो तो चतुर्दशी में भी पारण करना चाहिए ऐसा पद्मपुराण का वचन है—चतुर्दशी में उपवास तथा चतुर्दशी में ही पारण करना चाहिए । ऐसा अवसर अर्थात् सुन्दर ढंग से ऐसे व्रत का अनुष्ठान लाखों में किसी को मिलता है या नहीं भी ।

मैथिली—आव फागुनमासक कृत्य—

फागुन कृष्ण अष्टमीक दिन धरतीक बेटी श्री रामक पत्नी जानकीक जन्म भेल छयैन्हि । ताहि काल श्रीराम समुद्रक तट पर उपवास कयने छलाह । ताँय राजा जनकक पुत्री एवं श्री रामक पत्नी हमरा सबकलैलनीक जकां पूजनीया छथि । इति ।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी शिवरात्रि व्रत होयत अछि । ई चतुर्दशी प्रदोषकाल एवं निशीथ दुहूकालव्यापिनी ग्राह्य होयत अछि । स्कन्दपुराण में लिखलगेल अछि—हे देवि, यदि त्रयोदशी सूर्यास्त धरि होय तथा भरि राति चतुर्दशी होय तऽ शिवरात्रि व्रत करवाक चाही तथा व्रत में सम्पूर्ण राति जागवाक चाही । दिनुभुक्तिः क अर्थ भेल सूर्यास्तक समय ।

'मध्यरात्रिक दुह प्रहर महानिशीक हवैत अछि ।' तथा दोसर पहरक रातुक शेष दण्ड एवं तेसर पहर तुक पहिल एक दण्ड, दुहू मिल कय दुई दण्ड मध्यरात्रि के निशीथ काल भेल । यदि पहिल दिन निशीथव्यापिनी, दोसर दिन प्रदोष मात्र व्यापिनी होय तऽ शिवरात्रि पहिल दिन करवाक चाही ।

कियैकतऽ वचन छैक—'निशीथव्यापिनी शिवरात्रिव्रत ग्राह्य होयत अछि ।' यदि पहिल दिन निशीथक वाद तथा दोसर दिन निशीथक पूर्वकाल पर्यन्त चतुर्दशी होय तऽ दोसर दिनुक चतुर्दशी करवाक चाही । कियैक तऽ 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या' ई वचन छैक । म.म. महेश ठक्कुर प्रदोषक सम्बन्ध में कहैत छथि—प्रदोष चारिघटीक होयत अछि, एकर पारण चतुर्दशीक अन्त में हयवाक चाही । कहलगेल अछि—

कृष्णाष्टमी, स्कन्दषष्ठी एवं शिवरात्रि चतुर्दशी ई सब पूर्वयुतैव ग्राह्य होयत अछि तथा तिथ्यन्त में पारण होयत छैक । इति । पारणकाल में चतुर्दशीक अन्त असंभव भेने चतुर्दशियों में पारण होयत छैक ई पद्मपुराणक वचन छैक ।

चतुर्दशी में व्रत एवं चतुर्दशी में पारण मीक जकां अनुष्ठित होय ई लाभ मनुष्य कय भेंटय वा नहि ।

विमर्शः—वर्षकृत्ये—चतुर्दशी प्रवृत्त परेद्युश्च निशीथादर्वागेव समाप्यते तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्वात् परैव । एवं दिनद्वये प्रदोष व्याप्त्यभावे निशीथव्याप्ति सत्त्वात् पूर्वेवेति तत्त्वविदः ।

अत्र चतुर्दश्यामपि पारणम् । तथा हि गौतमः—

दिनमान प्रमाणेन या तु रात्रौ चतुर्दशी ।
शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया चतुर्दश्यां तु पारणम् ।।

नक्तव्रते तु प्रदोषव्यापिन्येव तिथिग्राह्या । तथाहि व्यासः—

'त्रिमुहूर्त्तप्रदोषः स्यात् भानावस्तंगते सति ।
नक्तं तत्र प्रकर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ।।'

कृत्यशिरोमणौ यथा—अत्र प्रदोषनिशीथोभयव्याप्त्या निर्णयः । यदि प्रदोषनिशीथव्याप्तिः पूर्वदिने तदा पूर्वदिने व्रतम्, यदा परदिने तदा परैव । यदा पूर्वदिने निशीथ-व्यापिनी परदिने प्रदोषव्यापिनी निशीथव्यापिनी च तदा परैव । यदि पूर्वदिने निशीथ-व्यापिनी परदिने प्रदोषव्यापिनी तदा पूर्वैव । यदि निशीथात् परतः पूर्वदिने परदिने निशीथात्पूर्वकालपर्यन्तं तदा परैव । नक्तं तु प्रदोषव्यापिन्यामेव । अस्या निर्णयस्तिथिप्रकरणे द्रष्टव्यम् ।

निवेदने यथा—ॐ भगवान् सूर्य भगवत्यो देवता अद्यादि चतुर्दशवर्षं यावत्प्रति-वर्षफाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रि व्रतमहमाचरिष्यामिति निवेदनम् । ॐ अद्येत्यादिम-मान्तकालीन शिवानुचरत्वशिवलोकसहितत्त्वदेवसाहित्यसुरालयभ्रमणभूपालत्व सार्वदिक् शिवभक्तिरूपबुद्धिविवेकानाहताज्ञत्वलक्ष्मीगोधनं प्राप्तिकामोऽद्यादि चतुर्दशवर्षं यावत्प्रति

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रि व्रतमहं करिष्ये, इति सकल्पो व्रतारम्भे । गूढार्थदीपिकायां वामदेवोपाध्यायस्तु। प्राप्तनिवेद्य अद्याद्यजन्म समुपार्जितपापक्षयेन्द्रादिलोकगमनपूर्वकानेक-भुक्तिभोगभूतराज्यप्राप्ति तदुत्तरपूजित परमस्थानशिवसायुज्यकामः चतुर्दशवर्षाणि यावत् प्रतिफाल्गुन कृष्णचतुर्दशी शिवरात्रि व्रतमहं करिष्ये, इत्याह । इदमेव समीचीनमिति । चतुर्दशवर्षे उद्यापनम् । तदशक्तौ गोदानमिति शिष्टाः । क्वचिदेक शिवरात्रिव्रतमपि कार्यमिति ।

अथ शिवरात्रिव्रतारम्भप्रकारः—फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां प्रातःस्नानादिरा-चान्तः उत्तराभिमुखो वारिपूर्णताम्रपात्रमादाय 'भगवन् सूर्य भगवत्यो देवत इत्यादि चतुर्दशवर्षं' यावत् प्रतिफाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतमहं करिष्यामि इति निवेद्य । कुशादिकमादायामुकगोत्रस्यामुकशर्मणो ममान्तकालीन शिवानुचरत्वशिवलोकसहितत्त्वदेवसाहित्यसुरालयभ्रमणभूपालत्वसार्वदिकशिव-भक्तिरूपबुद्धिविवेकाऽनाहताज्ञत्वलक्ष्मीगोधनप्राप्तिकामोऽद्यादिचतुर्दशवर्षं यावत् प्रतिफाल्गुनकष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतमहं करिष्ये इति संकल्प्य व्रतारम्भः । चतुर्दशवर्षपर्यन्तं व्रतं समाप्य उद्यापनं गोदानं कुर्यात् । उद्यापनाशक्तौ गोदानं कृत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् ।।

अथ नक्तव्रतं तु—'दिनोपवासपूर्वकरात्रिभोजनरूपम् । तत्र दिवारात्र्यु-भयव्यापिन्यां चतुर्दश्याम् । उभयव्याप्त्यसंभवे प्रदोषव्यापिन्यां तथा हि—

स्कान्दे— 'दिवारात्रिव्रतं यच्च एक एव तिथौ स्मृतम् ।
तस्यामुभयव्यापिन्यां कुर्यादेव व्रतं व्रती ।।'

व्यासः—'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या सदा नक्तव्रते तिथिः' ।

यदि चोभयदिने प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी तदा परदिने

'यदि स्यादुभयोरह्नोः प्रदोषव्यापिनी तिथिः ।
तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रैव सा यतः ।।'

इति जाबालवचनात् । उभयत्र दिवसे रात्रौ च । प्रदोषोऽत्र त्रिमुहूर्त्तम्

'त्रिमुहूर्त्तः प्रदोषः स्याद्भानावस्तंगते सति' इति व्यासोक्तेरिति ठक्कुराः । 'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते'। इत्युक्त्वा अत्र घटिका दण्डद्वयरूपेति गौडाः ।

हिन्दी—अब शिवरात्रि व्रत के आरम्भ का भेद—

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में प्रातः स्नानादि से लेकर आचमन करने तक उत्तरदिशा की ओर मुँह करके जल से भरे ताम्बे का पात्र हाथ में लेकर 'हे भगवान् सूर्य, भगवत्या देवता आज से लेकर चौदह साल तक प्रत्येक फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में मैं शिवरात्रि का व्रत करूँगा' इस तरह निवेदन कर कुश

जलादि हाथ में लेकर—अमुक गोत्रोत्पन्न, मैं अमुक शर्मा, मेरा अन्तकालीन शिव का दासत्त्व, शिवलोक सहित देवताओं का साहचर्य, देवालय का भ्रमण, पृथ्वी की पालकता, हर ओर शिवभक्तिरूप बुद्धि और विवेक की उपलब्धि, जिसकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला कोई नहीं हो ऐसा व्यक्तित्व, लक्ष्मी एवं गोधन की प्राप्ति का अभिलाषी मैं आज से चौदह साल तक प्रति फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में शिवरात्रि व्रत करुँगा' ऐसा सङ्कल्प लेकर व्रत का आरम्भ करे । चौदह वर्ष तक लगातार शिवरात्रि व्रत पूराकर उद्यापन एवं गोदान करें । उद्यापन करने में असमर्थ व्यक्ति, केवल गोदान कर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन करावें ।

नक्तव्रत अर्थात् केवल रात में भोजन करने का व्रत—दिन में उपवास पूर्वक रात में भोजन रूप नक्तव्रत कहलाता है । इसमें दिन और रात दोनों में चतुर्दशी होती है । दिन और रात दोनों में चतुर्दशी की व्याप्ति संभव नहीं होने पर प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी में जैसा कि स्कन्दपुराण में—

जहाँ एक ही तिथियों दिन और रात का व्रत हो, उसमें उभय व्यापिनी व्रत व्रती को करना चाहिए ।

व्यास का कथन है—नक्तव्रत में सदैव प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्राह्य है ।

यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी चतुर्थी हो तो पर दिन का व्रत ग्राह्य है । यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी तिथि हो, तो दूसरे दिन नक्तव्रत करना चाहिए । प्रदोष व्यापिनी हो तो दोनों ही दिन उपलब्ध हैं—यह जाबाल का वचन है । दोनों ही दिन, रात्रि और दिन में चतुर्दशी होती है । प्रदोष तीन मुहूर्त्त का होता है । प्रमाण है—

'सूर्यास्त के बाद तीन मुहूर्त्त तक प्रदोष कहलाता है । (४८ मिनट का एक मुहूर्त्त होता है, इस तरह सूर्यास्त के बाद २ घंटे २४ मिनट तक) प्रदोष होता है । यह व्यास का कथन है । म.म. महेश ठक्कुर भी व्यास जी के इस कथन में आस्थावान हैं ।' सूर्यास्त के बाद दो घटि का ही प्रदोष काल होता है । यह कहकर यहाँ दो दण्ड की एक घटिका गौड़ों ने कहा है । (४८ मिनट का दो दण्ड माना गया है) ।

मैथिली—शिवरात्रिव्रत कोना प्रारम्भ करी तकर भेद कहव—फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में प्रातःकाल स्नानादि सँ लऽके आचरान्त क्रिया धरि उत्तराभिमुख भय हाथ में जलपूर्ण ताम्र पात्र लय—हे भगवन सूर्य, आई सँ लऽकें चौदह वर्ष धरि प्रत्येक फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में हम शिवरात्रि व्रत करव ई निवेदन कय कुशादि हाथ में लय अमुकगोत्रीय, अमुकशर्मा हम अन्तकालीन शिवकदासता,

शिवलोकक प्राप्ति, देवालयक भ्रमण, भूपालत्व, सर्वत्र शिवभक्तिरूप बुद्धि-विवेकक प्राप्ति, जकर आज्ञाक क्यो उल्लङ्घन नहि कय सकय एहन व्यक्तित्व, लक्ष्मी एवं गोधन प्राप्तिक कामना सँ आई सँ लऽके चौदह वर्ष धरि प्रति फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी में शिवरात्रि व्रत हम करव ई सङ्कल्प लय व्रतक आरम्भ करी । चौदह वर्ष धरि व्रत समाप्तकय उद्यापन एवं गोदान करी । उद्यापन करवा में अशक्तव्यक्ति, केवल गोदान कय यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करातहु ।

आव नक्त व्रतकी भेल—दिनभरि उपवास कय राति में भोजन करनार नक्त व्रत भेल । जाहिठाम दिन राति उभयव्यापिनी चतुर्दशी होय, उभयव्यापिनी चतुर्दशीक अभाव में प्रदोषव्यापिनी करवाक चाही । जेआ स्कन्दपुराण में—जतय दिन एवं रातिक व्रत एके तिथि में कहलगेल अछि । ताहि उभयव्यापिनी व्रत व्रतीक करवाक चाही ।

व्यासक कथन अछि—नक्त व्रतक तिथि में सर्वदा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य होयत अछि । यदि दुहुदिन प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी भेंटल तऽ परदिनक व्रत करवाक चाही—यदि दुहूदिन प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी होय तऽ उत्तरत्र अर्थात् आमुक दिनक व्रत करवाक चाहीं । कियैक तऽ ओ चतुर्दशी दुहूदिन उपलब्ध होयत अछि । ई जाबालक वचन अछि ।

उभयत्रक अर्थ दिन एवं रात्रि दुहू होयत अछि। अहिठाम प्रदोष तीन महूर्त्तक कहलगेल अछि । 'सूर्यास्तक बाद तीन मुहूर्त्तक प्रदोष होयत अछि ।' ई व्यासजीक कथन अछि, एकर उल्लेख म.म. महेश ठक्कुर कयने छथि । स्तमित सूर्यक दुह घटिका बाद धरि प्रदोष होयत अछि । ई कहि दुई दण्डक एक घटिका गौड़ मानैत अछि ।

विमर्श:—अत्र प्रदोषमानमाह व्यास:—

त्रिमुहूर्त्तः प्रदोषस्यात् भानावस्तङ्गते सति । नक्तं तत्र प्रकर्त्तव्यम् इति शास्त्र विनिश्चय: ।

तत्र मुहूर्त्तमानन्तु रात्रिमानस्य पञ्चदशांशपरिमितं विज्ञेयम् । यदि च पूर्वदिने प्रदोषान्तरं त्रयोदशी, परदिनेऽस्तमयात्प्रागेव वाऽस्तमयावधि भवेत्तदा नक्तव्रतस्य दिवा-नाशनपूर्वकरात्रिभोजनरूपस्य पूर्वदिने वटितत्त्वात्र परदिने तद्व्रतम् । तत्र त्रयोदशीव्रत-निर्णय: । पक्षधरीय तिथिचन्द्रिकालिखितो विलिख्यते—

'कृष्णपक्षे या त्रयोदशी सा परोपोष्या' ।
षष्ठ्यष्टमी तथा दर्श: कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।।
एता: परयुता: कार्या: परा पूर्वेण संयुता: ।। इति निगमवाक्यात् ।

परिशेषात्शुक्ला द्वादश्युपेता मान्या, अत्र यद्युभयदिने प्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी भवेत् तदा कृष्णे चतुर्दशीविद्धाऽर्थात् परदिने 'शुक्ले तु द्वादशीविद्धा' अर्थात् पूर्वदिने त्रयोदशी प्रदोषव्रतमाचरणीयम् ।

अथ नक्तव्रतारम्भप्रकारमाह व्रतपद्धतौ—

ॐ अद्य भगवन् सूर्य भगवत्यो देवता अद्यादिवर्षं यावत् प्रतिकृष्ण-चतुर्दशीषु नक्तेतरभोजननिवृत्तव्रतमहं करिष्ये । फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यामेतद् व्रतारम्भः एवं द्वित्रिवर्षादि व्याप्य करणे संकल्प ऊहेन करणीयः ।

सन्ध्यामतीत्य भोजनमाह । मार्कण्डेयः—

'चत्वारि यानि कर्माणि सन्ध्यायां परिवर्जयेत् ।
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम् ॥' इति ।

अत्र हि 'सन्ध्या प्राक् प्रातरेव हि । तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ।' इति किञ्चिदालक्ष्य तारकाकालात् सूर्यदर्शनावधिः संध्याकाल इति अस्तमयादूर्ध्वं संध्या, सा च नक्षत्रदर्शनावधेः पूर्वम्' इति सन्ध्यायाश्चात्यल्पत्वात् घटिका-त्रयात्मकः सन्ध्याकालस्तडिद्गर्जितादिनिमित्तयोर्विधिप्रतिषेधयोः स एव गृह्यते इति सन्ध्याद्वयप्रमाणमुक्तवन्तस्तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्राः ॥

अथ अशक्त्यादिना स्वयं व्रताद्यकरणे प्रतिनिधिद्वारापि कारयितव्यमाह पराशरः— 'उपवासं व्रतं होमं तीर्थयात्राजपादिकम् ।
विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥'

स्कन्दपुराणे—'असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।
कारयेद्धर्मपत्नीं वा पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥
भ्रातरं भगिनीं शिष्यं ब्राह्मणं दक्षिणादिभिः ॥'

कात्यायनः—'पितृमातृपतिभ्रातृगुर्वर्थे च विशेषतः ।
उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥
भार्या भर्तुर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिस्तथा ।
असामर्थ्ये तयोरेवं व्रतभङ्गो न जायते ॥
राज्ञश्च क्षत्रियस्यार्थे एकादश्यामुपोषितः ।
पुरोधाः क्षत्रिणा सार्द्धं फलमाप्नोति निश्चितम् ॥
उपवासफलं ताभ्यां सममेवमवाप्यते ॥

अथ स्त्रीणां तु स्वाम्याज्ञां बिना व्रतादि न कार्यम् । तथा हि—

'नारी या त्वननुज्ञाता पित्रा भर्त्रा सुतेन वा ।
निष्फलं तु भवेत्तस्या यत्करोति व्रतादिकम् ॥'

सङ्कल्पितव्रतमाशौचेऽपि कर्तव्यम् । तथा च विष्णुः 'न व्रतिनां व्रते' इति व्रतीनामारब्धव्रतानां न व्रते इत्याशौचमित्यशौचप्रतिरोधक इति शेषः ।
विष्णुः— 'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे ।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥'

अनारम्भ उक्तो हारीतेन—

'आरम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतजापयोः ।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥' इति ।

श्राद्धे दर्शश्राद्धविषयमिति स्मार्ताः । संकल्पमाह हारीतः—

'मनसा संकल्प्येति वाचा अभिलपति कर्मणा चोपपादयति' इति ।

भविष्ये—'संकल्पेन विना राजन् यत् किञ्चित् कुरुते नरः ।
फलं चाल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत् ॥' इति ।

भविष्ये— 'शुक्तिशंखाश्महस्तैश्च कांस्यरूप्यादिभिस्तथा ।
सङ्कल्पो न च कर्तव्यो मृण्मयेन कदाचन ॥
गृहीत्वोदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
दर्भत्रयं साग्रमूलं फलं पुष्पं तिलान्वितम् ॥' इति ।

अथ व्रते प्रारम्भे स्त्रिया रजोयोगे अन्यद्वारा पूजां कारयेत् ।

तथा मात्स्ये—'यदा त्वशुद्धा तदान्येन कारयेत् ॥' इति ।

हिन्दी—अब नक्तव्रत प्रारम्भ करने का प्रकार बतलाते हैं—

व्रत पद्धति में—ॐ भगवन् सूर्य भगवान् देवता ॐ अद्यादि वर्ष पर्यन्त प्रत्येक कृष्ण चतुर्दशी में रात छोड़कर भोजन से विरत होने का व्रत मैं करुँगा।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी से ही यह व्रत आरम्भ करना चाहिए । इस तरह दो तीन वर्ष तक करने पर सङ्कल्प स्वयं अनुमान से करना चाहिए ।

शाम बिताकर भोजन करना चाहिए । मार्कण्डेयपुराण में लिखा है—

निम्नलिखित जो चार कर्म है संध्याकाल में उन्हें नहीं करना चाहिए । भोजन, सहवास, सोना और चौथा स्वाध्याय । इति ।

'यहाँ सन्ध्या से पूर्व तो प्रातःकाल ही होता है । जब तक आकाश में सूर्य के दर्शन होते हैं ।' आकाश में कुछ तारे दिखलाई पड़ने से पूर्व सूर्य दर्शन की सीमा तक संध्याकाल माना जाता है ।' सूर्य के अस्त हो जाने के बाद सन्ध्या होती है और वह सन्ध्या आकाश में तारे दिखलाई पड़ने की सीमा से पूर्व सन्ध्या की अवधि बहुत कम होने से मात्र तीन घटिका की होती हैं । बिजली गरजने के कारण विधि निषेध की स्थिति में भी वही ग्राह्य है । इस तरह पक्षधरमिश्र ने तिथिचन्द्रिका में संध्या के दो प्रमाण दिये हैं । शक्तिहीनता के कारण स्वयं व्रतादि नहीं करने पर—प्रतिनिधि द्वारा भी व्रतादि करवाना चाहिए ।

पराशर मुनि का कथन है—उपवास, भक्ति या साधना का कोई धार्मिक कृत्य, होम, तीर्थयात्रा तथा जपादि कोई व्यक्ति अपनी असमर्थता में किसी ब्राह्मण द्वारा सम्पादित करवाता है, उस व्यक्ति को उसका पूरा फल मिलता है।

स्कन्दपुराण में—शरीर के असमर्थ होने पर यदि कोई व्रत उपस्थित हो तो वह व्रत अपनी धर्मपत्नी, विनम्र पुत्र, भाई, बहन, शिष्य या ब्रांह्मणों को भरपूर दक्षिणा देकर करवाना चाहिए । कात्यायन ने लिखा है—

पिता, माता, पति, भ्राता और गुरु के लिए जो खाशकर उपवास रखता है उसे सामान्य से सौ गुना अधिक फल मिलता है । पत्नी को पति के लिए तथा पति को पत्नी के लिए व्रत करना चाहिए । शारीरिक असमर्थता की स्थिति में ऐसा करने पर उन दोनों का व्रतभङ्ग नहीं होता है । राजा के लिए, क्षत्रियों के लिए एकादशी व्रत जो पुरोहित करता है, उस क्षत्रिय के साथ पुरोहित को भी उस उपवास का फल मिलता है । यह निश्चित है । उन दोनों को उपवास का फल एक समान ही मिलता है । स्त्रियों को पति की आज्ञा के बिना व्रतादि नहीं करना चाहिए ।

जैसा कि—जो नारी पति, पुत्र एवं पिता की आज्ञा के बिना व्रतादि करती है, उसका वह अनुष्ठान बिल्कुल निष्फल हो जाता है । सङ्कल्पित व्रत अशौच में भी करना चाहिए ।

जैसा कि विष्णुपुराण में—'आरब्धव्रत वाले का अशौच में भी व्रतभङ्ग नहीं होता ।' यहाँ व्रतिनां का अर्थ व्रतारम्भ करने वालों का व्रत । 'न व्रते' का अर्थ 'आशौच' अर्थात् अशौच प्रतिरोधक है । इति ।

विष्णुपुराण में—व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, तथा जपकर्म में प्रारम्भ कर देने पर सूतक नहीं लगता प्रारम्भ नहीं करने पर सूतक लगता है ।

आरम्भ क्या है ? इस पर हारीत का कहना है—यज्ञ में वरण, व्रत और जप में सङ्कल्प, विवाहादि में नान्दी श्राद्ध तथा श्राद्ध में पाक की परिक्रिया शुरू हो जाने पर कार्यारम्भ मानना चाहिए । स्मार्त्तों के मत में श्राद्ध पदेन अमावस्या के दिन होने वाला पार्वण श्राद्ध विषयक कथन है ।

हारित ने सङ्कल्प में कहा—'मन से चिन्तन कर, मुँह से बोलकर, कर्म से अमल में लाना या कार्यान्वियन करना सङ्कल्प कहलाता है ।'

भविष्यपुराण में लिखा है—हे राजन्, मनुष्य सङ्कल्प के बिना जो कुछ करता है, उसका थोड़ा फल मिलता है, उसके धर्म का आधा विनष्ट हो जाता है । इति ।

भविष्यपुराण में—सीप, शङ्ख, पत्थर या कांसा, जस्ता, चाँदी हाथ में लेकर सङ्कल्प कभी नहीं करना चाहिए; खाशकर मृण्मय (मिट्टी) हाथ से कभी भी संकल्प नहीं करना चाहिए । पानी से भरे गूलर या ताम्बे का बर्त्तन हाथ में लेकर उत्तराभिमुख होकर, जड़ से अग्रभाग सहित तीन कुशफल एवं फूल तथा तिल लेकर संकल्प करना चाहिए ।

व्रतारम्भ के बाद यदि नारी रजोवती हो जाय—तो दूसरों के द्वारा उसे पूजा करवानी चाहिए । मत्स्यपुराण में लिखा है—'यदि नारी अशुद्धा हो जाय तो दूसरों से पूजा करवाये ।' इति ।

मैथिली—आव नक्तव्रत (दिनभरि उपवासक बाद केवल राति में भोजन करव) कोना करव ओकर प्रकार कहव । व्रत पद्धति में—ऊँ अद्य भगवान् सूर्य, दिव्यदेवता, आइ, प्रथम वर्ष सँ लऽके प्रत्येक कृष्ण चतुर्दशी में दिन में भोजन नहि करवाक व्रत करव । फागुनकृष्ण चतुर्दशी सँ ई व्रत प्रारम्भ कयल जायत अछि । अहि तरहे दुइ तीन वर्षादि धरि व्रत करवा में सङ्कल्प अपन अनुमान सँ करवाक चाही । सन्ध्या विता कय भोजन करवाक चाही ।

मार्कण्डेयपुराणक कथन अछि—निम्नलिखित जे चारिठा काज अछि से सन्ध्याकाल में नहि करवाक चाही यथा—आहार, निद्रा, सहवास एवं स्वाध्याय ।

अहिठाम यावत् कालधरि आकाश में सूर्यक दर्शन होय तावत् काल धरि संध्याक पूर्व प्रातः काले बुझल जायत अछि । ई किछु विचारि नक्षत्रक उदय सँ पूर्व सूर्य दर्शन धरिक काल सन्ध्याकाल होयत अछि । अर्थात् सूर्यास्त बाद सन्ध्याकाल भेल । सँ सन्ध्याकाल आकाश में ताराक दर्शन सँ पूर्व तथा सूर्यास्तक वाद मात्र तीन घटिका कऽ अल्पकालीक होयत अछि । विजलीक गर्जनादि विधि निषेधक स्थिति अलगसों । अहित रहे पक्षधरमिश्र तिथिचन्द्रिका में दुइ तरहक सन्ध्याकालक प्रमाण कहने छथि ।

स्वयं व्रत करवा में असमर्थ भेने—प्रतिनिधियो द्वारा व्रत करावी ई पराशरक विचार छैन्हि, उपवास, व्रत, होम, तीर्थयात्रा एवं जपादिक कार्य स्वयं असमर्थ भेने ब्राह्मण द्वारा करावी । ब्राह्मण द्वारा सम्पादित कर्मक फल करौनिहार के पूर्णतः प्राप्त होयत छैन्हि ।

स्कन्दपुराणक वचन अछि—शरीरक अशक्तावस्था में यदि व्रतादिकार्य उपस्थित होय तऽ स्वयं ओ व्रत नहि कय, धर्मपत्नी, विनम्रपुत्र, भाई, बहिन, शिष्य एवं दक्षिणादि दय ब्राह्मण द्वारा करयवाक चाही ।

कात्यायनक वचन अछि—पिता, माता, पति, भय तथा विशेषतः गुरुकलेल जे उपवास करैत छथि हुनका सामान्य सँ सई गुना अधिक फल भेटैत छैन्हि। शरीरक असमर्थताक स्थिति में पतिकलेल पत्नी एवं पत्नीकलेल पति यदि

व्रत करथु तऽ हुनक व्रत भङ्ग नहि होयत छैन्हि । क्षत्रिय राजाकलेल दक्षिणा लऽके जे पुरोहित एकादशी व्रत करैत छथि, ताहि उपवासक फल दुहूँ गोटें के समान रूपेण निश्चित प्राप्त होयत छैन्हि ।

स्त्रीलोकनिक स्वामीक आज्ञाक बिना व्रतादि नहि करवाक चाही । जेना बेटा, पिता, भ्राता एवं पतिक बिना आज्ञा पौने जे नारी व्रत करैत छथि, हुनक व्रतादिक निष्फल होयत छैन्हि ।

सङ्कल्पित व्रत अशौचो में करवाक चाही । जेना विष्णुपुराण में—'न व्रतिनां व्रते' व्रतिनाम् = जे व्रतारम्भ कय चुकल छथि, नव्रते 'इति आशौचम्' अशौच प्रतिरोधक अर्थ भेल ।

विष्णुपुराण में—व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चन, एवं जप में आरम्भ कय देने सूतक नहि लगय, आरम्भ नहि कयने तखन सूतक लगय ।

आरम्भक कराकहि, अहि पर हारीतक वचन अछि—

यज्ञक आरम्भ वरण सँ, व्रत एवं जपक प्रारम्भ सङ्कल्प सँ, विवाहादि में नान्दी श्राद्ध में पाकारम्भ भेने प्रारम्भित कार्य मानल जायत अछि । श्राद्धक तात्पर्य अमावास्याक दिन पार्वण श्राद्ध विषयक अछि ई स्मार्तक मत अछि । पराशरक मत संकल्पक परिभाषा मन से चिन्तन, वचन से उच्चारण, कर्म से उपपदिन भेने सङ्कल्प बुझल जाय ।

भविष्यपुराण में—हे राजन्, बिना सङ्कल्प कयने जे क्यो जे किछु करै छथि हुनका अति अल्पफल भेटैत छैन्हि, आधाधर्मक क्षय भऽ जायत छैन्हि । इति । भविष्यपुराणक वचन अछि—सीप, शङ्ख, पाथर, कांस्यपात्र एवं चाँदी हाथ में लय, सङ्कल्प ब्याहि हाथ में नेने कदापि नहि करवाक चाही । जलपूर्ण ताम्रपात्र हाथ में लय उत्तराभिमुखभय सङ्कल्प करवाक चाही । ताहिताम्र पात्र में समूल तीनटा कुश फूल तिल मिलल रहवाक चाही । व्रत प्रारम्भ कयला पर स्त्रीगणके यदि दर्शन होय तऽ अन्य द्वारा पूजा करवाक चाही ।

मत्स्यपुराण में—'यदि नारी अशुद्धा होय तऽ आन द्वारा पुजा करयवाक चाही ।'

विमर्श:—उपवासासमर्थस्योपाय: पुराणान्तरे—

उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् ।
तावद्धनादि वा दद्यात् भुक्तस्य द्विगुणं तथा ।।
सहस्र संमितां देवी (गायत्रीं) जपेद् वा प्राणसंयमान् ।
कुर्याद् द्वादशसंख्याकान् यथाशक्त्यातुरो नर: ।।

मात्स्ये—'उपवासेष्वसक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।'

वायवीये— द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।

देवल:— ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् ।
व्रतेष्येतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चय: ।।

नन्दिपुराणे— व्रतस्योद्यापनावश्यकत्वम्—

कुर्याद्युद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम् । उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् ।।
यदि चोद्यापनं नोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत् । वित्तानुसारतो दद्यात् अनुक्तोद्यापने कृते ।।
याश्चैव काञ्चनं दद्यात् व्रतस्य परिपूर्त्तये ।।

अपरार्केऽपि— यो गृहीत्वा व्रतं मोहात् एकादश्यादिकं नर: ।
न समापयेत् तस्य गति: पापीयसी भवेत् ।।

अथ गृहीतव्रतभङ्गे प्रायश्चित्तमुक्तं वायुपुराणे—

लोभान्मोहात्प्रमादाद्वा व्रतभङ्गो यदा भवेत् ।
उपवासं त्रयो तस्य कुर्यात् वा केशमुण्डनम् ।।
प्रायश्चित्तमिदं कुर्यात् कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।।

अथ रजोवत्यधिकार:—तत्राद्य रजोदर्शनात् प्राक् स्त्रीसंगो न विधेयस्तदुक्तं भविष्ये—

रजोदर्शनत: पूर्वं न स्त्रीसंसर्गमाचरेत् ।
संसर्गं यदि कुर्वीत नरकं परिपच्यते ।।

अथ रजोधर्मे शुद्धिसमय उक्तो भारद्वाजेन—

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजनीप्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ।।
भर्त्तु: स्पृश्या चतुर्थेऽहनि स्नानेन स्त्रीरजस्वला। पञ्चमेऽहनि योग्यास्यादैवे पित्र्ये च कर्मणि।।

अथ प्रथम रजोदर्शनेऽनिष्टफलदा मासादय:—

चैत्र ज्येष्ठाषाढभाद्राश्विनपौषमासा: । कृष्ण पक्ष: । रवि कुजशनिवासरा: । रात्रि: मेषवृषकर्कमकरकुम्भलग्नानि, तथा धनुष: पूर्वभाग: । भरणी कृत्तिकाऽऽर्द्राऽश्लेषामघा-पूर्वफल्गुनीज्येष्ठापूर्वाषाढपूर्वभाद्रनक्षत्राणि। जीर्णरक्तनीलमलिनवस्त्राणि, संमार्जनी काष्ठ-तृणाग्निशूर्प स्पर्शावसर: । विष्टि: निद्रा संक्रमणदर्श: । चतुर्थी नवमी चतुर्दशी षष्ठी द्वादश्यष्टमीति तिथय: रविचन्द्रग्रहणम् । व्यतीपात वैधृतिकरणे । सायम् । वहिर्ग्राम परग्राम परगृहाणि । एतेषु प्रथमरजोदर्शने जाते अशुभ फलमुक्तं मुनिभिस्तत्र तेषां पृथक् फलानि पीयूषधारायां शान्तिमयूखादौ द्रष्टव्यानि । अथात्र शान्तिरुक्ता वशिष्ठेन—

प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुरुषं तत: शान्तिकर्मकार्यम् ।
विवर्जयेदेव तदेकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यघस्त्रे ।।
ईशानतो गोमयमण्डलेन परिसृतेऽग्नौ जुहुयात्सदूर्वाम् ।
युग्मां घृताक्तां च समित्प्रमाणं गायत्रिकां साष्टसहस्रसंख्याम् ।।
शतप्रमाणामथवापहर्मीं शुभैर्यवैर्व्याहृतभिस्तिलैश्च ।
तत: सुरान् भूमिसुरान् पितृंश्च संतर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रै: ।

अथ रजस्वलावर्जित कर्माह लिङ्गपुराणे—

स्नानं शौचं तथा गानं रोदनं हासनं तथा । यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम् ।।
दिवास्वापं विशेषेण तथा वै दन्तधावनम् ।।
मैथुनं मानसं वाऽपि वाचिकं देवताऽर्चनम् ।
वर्जयेत्सर्वयत्नेन नमस्कारं रजस्वला ।।

चेदविवाहितैव रजोयुक्ता भवेत्तदा पित्रादीनां दोषमाहाऽपरार्के संवर्त्तः—

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।।

हारीतः— पितृगेहे च या कन्या रजः पश्यन्त्यसंस्कृता ।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ।।

अतएव शान्तिं कृत्वा तादृशीं कन्यामुद्वहेत् । तथाहि आश्वलायनः—

कन्यायां ऋतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः ।
शुद्धिञ्च कारयित्वा तामुद्वहेदनृशंस्यधीः ।।
पिता ऋतून स्वपित्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः ।
दानावधि गृहे यत्नात्पालयेच्च रजोवतीम् ।।
तद्यात्तद्‌ऋतुसंख्यागाः शक्तः कन्या पिता यदि ।
दातव्यैकाऽपि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधिः ।।
दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वभ्रमतिनिस्वः सदक्षिणम् ।

अतएव साधारणतया प्रचलितव्यवहारेण वराय नियतं गौरेकं वा गोयुगलं कन्यापित्रा दीयते । तथा च चतुर्थीदिने भोज्यमपि क्रियते । इति मैथिलानां व्यवहारः । यदि विवाहसमये एव दैवात्कन्या ऋतुमती भवेत् तदोपायो मदनपारिजाते—

विवाहे वितते यज्ञे होमकाले ह्युपस्थिते ।
कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः! ।।
स्नापयित्वा तु तां कन्यां अर्चयित्वा यथाविधिम् ।
युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ।।

रजस्वलामरणे विशेषः स्मृत्यन्तरे—

पञ्चभिः स्नापयित्वातु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् ।
वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ।।

यदि एकोद्दिष्ट उपस्थिते स्त्रीरजोवती, तदामान्नेन तत्कर्तव्यमिति स्मृतिभाक् स्त्रीकृत पाकपक्षे एव । तत्रापि स्वयं कृतपाकेन पितृकार्यकरणे न कोऽपि दोषो लक्ष्यते । आतुरं शुद्धिमाह पराशरः शुद्धिमयूखे—

आतुरे स्नानमुत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ।

अथ गोविन्दद्वादशीयोगमाह—

'फाल्गुनस्य सिते पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे ।
जीवे धनुषि संस्थे च शोभने रविवासरे ।
पुष्यर्क्षेण च संयुक्ता गोविन्दद्वादशी मता ।।'

दिवसाधिपे सूर्ये, जीवे बृहस्पतौ । पुष्यर्क्षे पुष्यनक्षत्रे । अस्यां कर्तव्यमाह—

'गोविन्दद्वादशीं प्राप्त गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात् ।।'

पुरुषोत्तमं जगन्नाथक्षेत्रम् । पूर्ववचनस्थफलमुच्चार्य सङ्कल्प्य पठेत्—

'महापातकसङ्घानि यानि पापानि सन्ति मे ।
गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जान्हवि ।।'

इति पद्मपुरोक्तं पठित्वा गङ्गायां स्नायात् ।।

अथ होलिका—सा च सायाह्नव्यापिन्यां चतुर्दशीविद्धायां पूर्णिमायां भद्राशून्यायां होलिकादाहः । तथा हि—

'सायाह्ने होलिकां कुर्यात्पूर्वाह्ने क्रीडनं गवाम्' ।। इति ।
श्रावणी दौर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् ।
भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै ।।' इति ।
'भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।।' इति ।

यदि च पूर्वदिने सायाह्ने भद्राशून्या सा न लभ्यते, तदा परिदिने । तथा हि ब्रह्मवैवर्ते—

'होलिका पौर्णमासी तु सायाह्नव्यापिनी मता ।
भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन ।।' इति ।

यत्तु—'प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां गवार्चनम् ।
क्षत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम् ।।'

इत्यादिवचनम् उत्तरदिने होलिकानिषेधकम्, तच्च पूर्वदिने सायाह्ने भद्राशून्यपूर्णिमालाभे वेदितव्यम् । अत्र तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु दिनद्वये प्रदोष-व्याप्तौ परैवेति । यदि च पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी, परदिने पूर्णिमा सायाह्नात् प्रागेव समाप्यते, तदा पूर्वदिने सम्पूर्णरात्रौ भद्रासत्वात् तन्निषेधात्परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्यादिति ठक्कुराः ।

अथ होलिकादाहे वायुफलमाह—

'पूर्वे वायौ होलिकायां प्रजाभूपालयोः सुखम् ।
पलायनं च दुर्भिक्षं दक्षिणे जायते ध्रुवम् ।।
पश्चिमे तृणसम्पत्तिरुत्तरे धान्यसम्भवः ।
यदीशानेऽप्यनावृष्टिरुर्ध्वं राजा समाश्रयेत् ।।'

।। इति द्वादशमासकृत्यम् ।।

हिन्दी—अब गोविन्द द्वादशी योग के बारे में—फाल्गुन शुक्ल पक्ष द्वादशी तिथि में यदि कुम्भ राशि में सूर्य हो, धनु राशि में बृहस्पति हो, पुव्य नक्षत्र युक्त रविवार हो तो उसे गोविन्द द्वादशी कहते हैं । दिवसाधिपे = सूर्य, जीवे = बृहस्पति, पुष्यर्क्षे = पुष्य नक्षत्र । इस तिथि का कर्त्तव्य बतलाते हैं—

गोविन्द द्वादशी पाकर जो जगन्नाथ पुरी जाता है, उसे विष्णुलोक मिलता है तथा जो गङ्गाजल में स्नान करता है उसे मुक्ति मिलती है ।

पुरुषोत्तमम् = जगन्नाथ क्षेत्र । पूर्व वचन में कहे गये फल का उच्चारण कर निम्नलिखित सङ्कल्प पढ़ना चाहिए । 'महापातक के समूह या अन्य मेरे जो पाप हैं उन्हें हे जान्हवि तुम नष्ट कर दो ।' पद्मपुराणोक्त यह वचन पढ़कर गङ्गा में स्नान करना चाहिए ।

अब होलिका—सायाह्न में होलिका तथा पूर्वान्ह में गोक्रीड़ा करनी चाहिए । इति । श्रावणी, दुर्गानवमी, गणेश चौथ एवं होलिका दहन पूर्वविद्धा ही करनी चाहिए, परविद्धा बिल्कुल नहीं । भद्रा में जो होलिका दहन करते हैं, वे निश्चय ही राष्ट्रभङ्ग करते हैं । इति । भद्रा में रावणी, और होलिका दाह ये दो कर्म नहीं करना चाहिए । इति ।

यदि पहले दिन सायाह्न भद्राशून्य न मिले तो परविद्धा करना चाहिए ।

जैसाकि ब्रह्मवैवर्त में—होलिका और पूर्णिमा सायाह्नव्यापिनी करनी चाहिए । अमावास्या और पूर्णिमा भूतविद्धा कदापि नहीं करनी चाहिए । इति।

जो व्यक्ति—'परिवा में होलिका दहन और द्वितीया में गोक्रीड़ा करते हैं, वे राजभङ्ग, वित्तवाश एवं अपने कुल को विनष्ट करते हैं ।'

इत्यादि वचन से उत्तरवर्त्ती दिन में होलिका दहन का निषेध करते हं । यह पहले दिन सायाह्न में भद्रारहित पूर्णिमा में कर्त्तव्य जानना चाहिए । इस पर तिथितत्त्वचिन्तामणि में दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होने पर परविद्धा ही करनी चाहिए । यदि पहले दिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो, दूसरे दिन पूर्णिमा

सायाह्न से पहले समाप्त हो जाय तो पहले दिन सम्पूर्ण रात में भद्रा रहने पर उसका निषेध किया गया है; ऐसी स्थिति में दूसरे दिन परिवा में करनी चाहिए; यह महामहोपाध्याय महेश ठाकुर का विचार है ।

होलिका दाह में हवा का फल कहते हैं—होलिका दाह के समय यदि हवा का रुख पूरब की ओर हो तो राजा और प्रजा दोनों को सुख होय, यदि दक्षिण की ओर हो तो निश्चय ही दुर्भिक्ष और पलायन हो । पश्चिम की ओर हो तो मवेशी का चारा काफी होय और उत्तर की ओर बहे तो अन्न की ऊपज अधिक हो यदि ईशान की ओर हो तो अनावृष्टि, सीधे ऊपर की ओर जाय तो राजा पनाह ढूढ़े ।

मैथिली—आवगोविन्द द्वादशी योगक सम्बन्ध में—फाल्गुन शुक्ल पक्ष, कुम्भस्थ सूर्य, धनुसंस्थित बृहस्पति, पुष्य नक्षत्र एवं रविवार युक्त यदि द्वादशी होय तऽई गोविन्द द्वादशी कहवैत अछि । दिवसाधिपे = सूर्य, जीवे = बृहस्पति, पुष्यर्क्षे = पुष्य नक्षत्र, एकर कर्त्तव्य कहैत छी ।

यदि जगन्नाथ पुरी में गोविन्द द्वादशी भेटय तऽ तुनका विष्णु लोकक प्राप्ति अवश्य होय । यदि गङ्गा में स्नान उपलब्ध होय तऽ स्नाता के मुक्ति भेंटय । पुरुषोत्तमम् = जगन्नाथ पुरी ।

पूर्ववचन में कहलगेल फलक उच्चारण करैत सङ्कल्प पढवाक चाही । बड़ पैघ पापक समूह अथवा जे सभ हमर पाप हुए तकरा सभके हे गङ्गा ई गोबिन्द द्वादशी पावि अहाँ हरि लिय । ई (पद्मपुराणक वाक्य) पढ़ि गङ्गास्नान करी ।

आव होलिका—सायाह्नव्यापिनी चतुर्दशीविद्धा, भद्रा शून्य पूर्णिमा में होलिका दाह करवाक चाही । तथाहि सायाह्ण में होलिका एवं पूर्वाह्ण में गोक्रीड़ा करवाक चाही । इति ।

श्रवणी, दुर्गाक नवमी, गणेश चौथ एवं होलिका पूर्व विद्धे करवाक चाही, परविद्धा कदापि नहि करवाक चाही । भद्रा में जे होलिका दाह करैत छथि ओ राष्ट्रभङ्ग करैत छथि । श्रावणी एवं फाल्गुनी ई दुइटा काज भद्रा में नहि करवाक चाही । इति । यदि पहिल दिन सन्ध्याकाल भद्रा रहित नहि भेंटय तऽ दोसर दिन करवाक चाही । ब्रह्मवैवर्त में लिखल अछि—होलिका एवं पूर्णिमा सायाह्न व्यापिनी करवाक चाही । अमावास्या एवं पूर्णिमा भूतविद्धा कदापि नहि करवाक चाही । इति ।

आओरजे—'परिवा में होलिका दहन, द्वितीया में गोक्रीड़ा जे करैत छथि ओ राज्यभङ्ग, धनक नाश एवं अपन वंशक विनाश करैत छथि ।'

इत्यादि वचन परदिन होलिका निषेधक अछि । अहि से सिद्ध होयत अछि पूर्वदिन सायाह्न में भद्रा शून्य पूर्णिमा में होलिका दाह करवाक चाही । अहिठाम

तिथितत्त्वचिन्तामणि में दिनद्वय प्रदोषव्याप्ति में परविद्धा करवाक चाही । यदि पूर्वदिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो, दोसर दिन पूर्णिमा सायाह्न सँ पूर्वहि समाप्त भऽ जाय, तखन पहिल दिन सम्पूर्ण राति में भद्रा रहने ओकर निषेधकलेल दोसर दिन परिवा में करवाक चाही ई ठाकुरजीक मत अछि ।

होलिका दाह में वायुक फल—होलिका दहन में यदि हवा पूरब दिशि बहय तऽ राजा प्रजा दुहूकय सुख होय दक्षिण दिशि होय तऽ पलायन एवं अकाल पड़य, पश्चिम में तृण सम्पत्तिक बृद्धि होय, उत्तर दिस बहने अन्नक प्रचुरता होय ईशान कोनक हवा में वर्षाक अभाव तथा ऊपर उठने राजाश्रय होय ।

विमर्शः—गोविन्दद्वादशीयोगविषये तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

कार्मुकीये यदा जीवे कुम्भस्थे च दिवाकरे ।
फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादश्यां रविवासरे ।।
पुष्पशोभनसंयुक्ता गोविन्दद्वादशी स्मृता ।
तस्यां स्नानञ्च दानञ्च महापातकनाशनम् ।।

अत्र तावत् 'कुम्भस्थे दिवसाधिपे' इत्यनेन प्रतिवर्षे सम्भवः । 'जीवे धनुषि संस्थे च' इत्यनेव द्वादशवर्षे तत्संभवः । परन्तु तत्रापि रविवारपुष्यनक्षत्रशोभनयोगानां संयोगः प्रायिकोऽतएव चिरकाल संभवोऽयं इति ।

होलिकादाहविषये तथोक्तं भविष्ये—

पूर्णापूर्वदलं यावत् तावज्जीवति वत्सरः ।
मृतेपरदले नक्तं दाहस्तस्य विधीयते ।।
भद्रायां दीपिता होली राज्यभङ्गं करोति च ।
नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।

एवं स्मृत्यन्तरेऽपि— दिनार्धात्परतोऽपि स्यात्फाल्गुनी पूर्णिमा यदि ।
रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा ।।

इत्यादि वचनैर्भद्रायुक्त पूर्णिमायां होलिकादहनमनिष्टफलजनकम् । एवम् पूर्णिमोत्तरसमये प्रतिपद्यपि तन्निषेध उक्तस्तिथिचन्द्रिकायाम्—

नन्दायां होलिका पूजा भद्रायां गोऽर्चनादिकम् ।
न कदापि हि कर्त्तव्यं मनुराह प्रजापतिः ।।

तथा च—प्रतिपत्पलमेकं चेत् होलिदाहो विधीयते ।
हाहाभूतं जगत्सर्वं रुण्ड मुण्डं च जायते ।।

तथाचोक्तं विद्याविनोदे—

नन्दायां नरकं घोरं भद्रायां देशनाशनम् ।
दुर्भिक्षं च चतुर्दश्यां करोत्येव हुताशनः ।।

तथा च नारदः—प्रतिपद्धृतभद्रासु याऽर्चिता होलिका दिवा ।
सम्वत्सरे च तद्राराष्ट्रं पुरं दहति साऽद्भुतम् ।।

एभिर्वचनैः पूर्णिमोत्तर प्रतिपदि होलिकादहनं निषिद्ध्यते । परं यदि पूर्वदिने भद्राशून्य पूर्णिमावकाशो न भवेत्परदिनेऽस्तमयात्पूर्वमेव पूर्णिमाविरामस्तदोभयत्र दोष-दर्शनात् विशेषविचारावसरः । तत्र मैथिलस्मार्त्तकाराणां मतेन परदिने प्रदोषे प्रतिपद्येव होलिकादहनं तथा चोक्तं भविष्योत्तरे—

सार्धयामत्रयं चेत्स्यात् द्वितीय दिवसे यदि ।
प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा स्यात् होलिका मता ।।

तथा च—असत्यामपि पूर्णायां वृद्धित्वे होलिकार्चनं ।
क्रियमाणं च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षयः ।।

तथा चोक्तं राजमार्त्तण्डे—

भद्रस्यपुच्छशुभहेतुरव्ये वदन्ति केचिन्न तु युक्तमेतत् ।
शुष्केन्धनैर्दीप्तहुताशनस्य किमग्रभागेऽपि हि शीतता स्यात् ।।

इत्यनेन मैथिलैर्भद्रापुच्छे होलिकादहनं न क्रियते । परन्तु निर्णयसिन्धुकाराः परदिने रात्रौ पूर्णिमाया अलाभात्पूर्वदिने भद्रापुच्छे होलिकादहनमादिशन्ति । तत्र पूर्णिमा-तिथिमासे षष्टिदण्डात्मिके सार्द्धैकोनविंशति दण्डादनन्तरं सार्द्धं द्वाविंशति दण्डावधिकं दण्डत्रय परिमितं तत्पुच्छमानं वेद्यम् । षष्ट्यधिकाल्पमाने तु तत्र परिणाम्यमिति ।

'तत्राग्नि मन्त्रमुच्चार्य दीपयेत होलिका शुभाम् ।
भगलिङ्गाङ्कितैर्वाक्यैः क्रीडितव्यं पिशाचवत् ।।'

तत्र दीपमन्त्रस्तु—

दीपयाम्यत्रते घोरां चितिं राक्षसि, ते नमः ।
हिताय सर्वजगतां प्रीतये पार्वतीपतेः ।।
वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्माच्युतशिवादिभिः ।
अतस्त्वं पाहिनो भीत्या भूषिता भूतिदा भव ।।

कृष्णमोहनठक्कुरणोक्तमिदमिति ।

।। इति कृत्यसारसमुच्चये फाल्गुनकृत्यम् ।।

।। इति द्वादशमासकृत्यम् ।।

अथ ग्रहणविचार:

तच्च यज्जन्मराश्यादौ ग्रहणं तस्य ग्रहणदर्शने दोषमाह—

'धीधर्मनैधनमदव्ययशर्मकर्मजन्मोपगं रविशशिग्रहणं नराणाम् ।
पुत्रायुरर्थपरिनाशकमीक्षितं स्याद्रोगं वपु:क्षयमन: क्लममातनोति ।।'

तथा च पञ्चमनवमाष्टमसप्तमद्वादशचतुर्थदशमजन्मराशौ वा ग्रहणे तद्ग्रहणदर्शने रोगादिकं भवतीत्यतो नावलोकनीयमिति भाव: ।

हिन्दी—अब ग्रहण आदि पर विचार और वह जिस जन्म राशि आदि में ग्रहण हो उसके ग्रहण दर्शन में दोष बतलाये हैं—

मनुष्यों के जन्मराशि के निकटवर्ती जिन भावों में अर्थात् धी, धर्म, मृत्यु, जाया, व्यय, शर्म (सुहृत्) कर्म संज्ञक स्थानों में यदि सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण लगा हो तो उस ग्रहण को देखने से पुत्र, आयु और धन का नाश होता है और रोग होता है, शरीर का क्षय तथा मन का अवसाद बढ़ता है ।

और भी ५वां, ९वां, आठवां, सातवां, बारहवां, चौथा और दशमा स्थान में यदि ग्रहण हो तो उसे देखने पर रोगादिक होता है । अत: उसे नहीं देखना चाहिए । यही भाव है ।

मैथिली—आव ग्रहणादि पर विचार ओ जाहि जन्म राशि में ग्रहण लागल होय, ओ व्यक्ति के ग्रहण दर्शन कयला उत्तर दोष कहने छथि—

जिनकर जन्म राशिक निकटवर्त्ती जाहि भाव में अर्थात् धी, धर्म, मृत्यु, जाया, व्यय शर्म एवं कर्म संज्ञक स्थान में यदि सूर्य या चन्द्रमाक ग्रहण लागल होय तऽ ओकर दर्शन कयला उत्तर पुत्र, आयु एवं धनक नाश होयत अछि । देह में रोग, देहक क्षय तथा मनक अवसाद बढैत अछि ।

आओर, पञ्चम, नवम, अष्टम, सप्तम, द्वादश, चतुर्थ एवं दशम जन्म राशिक सूर्य अथवा चन्द्रग्रहणक दर्शन कयला उत्तर रोगादिक होयत अछि, तॉय ग्रहणक दर्शन नहि करवाक चाही, ई भाव अछि ।

विमर्श:—तथाचोक्तं बृहज्ज्यौतिषसारे—

त्रिषड्दशायेषु गते नराणां शुभप्रदं स्यात् ग्रहणं रवीन्दो: ।
द्विसप्तनन्देषु च मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं मुनयो वदन्ति ।।

अन्यमते—ग्रासात्तृतीयोष्टमचतुर्थस्तथाऽऽयसंस्थ: शुभद: स्वराशे: ।
ग्रासाद्रवि: पञ्चनवर्त्तुमध्यस्तपोऽधमश्चेति बुधैर्निरुक्तम् ।।'

मुहूर्त्तचिन्तामणौ— जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घात: क्षति: श्रीर्व्यथा
चिन्तासौख्यकलत्रदौस्थ मृतय: स्युर्माननाश: सुखम् ।
लाभोपाय इति क्रमात्तदशुभ ध्वस्त्य जप: स्वर्णगो-
दानं शान्तिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्य माहु: परे ।।

अथ ग्रहणे श्राद्धमावश्यकम् । तथा हि—

'सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने ।
अकुर्वाणस्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति ।।' इति शातातप: ।

अथ यावत्पर्यन्तं दर्शनयोग्य उपरागस्तानेव पुण्यकाल: । तथा हि जाबालि:—'चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचर:' ।

उपरक्तदर्शनानन्तरं यावद्दर्शनयोग्य उपरागस्तावानेव पुण्यकालो न संक्रान्तिवदधिकोऽपि । द्वैतपरिशिष्टे—अत्र शातातपवचने राहुदर्शने चेति देवलवचने च दर्शनगोचर इति दर्शनपदाभ्यां चाक्षुषज्ञानविषयस्यैव निमित्तता चाक्षुषज्ञान एव दर्शनपदस्य शक्तत्वात् । तच्च ज्ञानं स्नानादिकर्तुरिव लाघवात्। एवं च स्पृष्टेऽपि ग्रासे अपश्यतो नाधिकार: । न चैवं मज्जनकाल एव पुण्यकालो न स्यादिति वाच्यम् । गोचरपदस्य तद्योग्यतालक्षकत्वात् । सा च योग्यतादानबाधकमानाभावरूपा, सा च मेघगुल्मादिव्यवहितेऽप्यसति मेघाद्यपगमे तद्दर्शनस्यापि सम्भवात् । अन्यदृष्टे ग्रासेऽन्यस्य स्नानाधिकार इति केचित्, तन्न, लाधवेन सामानाधिकरण्यस्यैव प्रयोजकत्वात् । राहुदर्शनसंक्रान्तीत्यादि अन्यस्यायातिप्रसक्तत्वाच्च इति केशवमिश्रा: ।

हिन्दी—सूर्य या चन्द्र ग्रहण लगने पर अपनी सारी सम्पत्ति से भी किसी व्यक्ति को श्राद्ध करना चाहिए । जो व्यक्ति यह श्राद्ध नहीं करते, वे कीचड़ में फंसी गाय के तरह दु:ख पाते हैं । इति ।

चन्द्र या सूर्य ग्रहण जब तक आँखों से दिखलाई पड़े पुण्यकाल होता है । जावालि का कहना है—'सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण जब तक आँखों से दिखलाई पड़े' ।

ग्रहण लगे हुए देखने के बाद जब तक ग्रहण दिखलाई पड़े तभी तक पुण्यकाल मानना चाहिए न कि संक्रान्ति की तरह कुछ अधिक काल भी । द्वैतपरिशिष्ट में शातातपय के वचन में 'राहुदर्शने' तथा देवल के वचन में 'दर्शन गोचर' इन दोनों जगहों में 'दर्शन' पद से चाक्षुष ज्ञान विषय की ही निमित्तता अर्थात् साधनभूत कारणता परिलक्षित होती है । यहाँ दर्शन पद की

शक्तिमत्ता तो चाक्षुष ज्ञान अर्थात् आँखों से देखी वस्तु के ज्ञान से ही सिद्ध होता है और यह ज्ञान स्नान आदि करने के लिए ही सहजता से प्राप्त होता है। इस तरह इससे सिद्ध होता है कि चन्द्र या सूर्य का ग्रहण लगने पर भी चन्द्र या सूर्य का ग्रस्तांश जिसे दिखलाई न पड़े उसे स्नान दानादिका कोई अधिकार नहीं है। न कि इस तरह स्नान काल ही पुण्यकाल नहीं होगा ऐसा कहा जाय तो गोचर पद का अर्थात् इन्द्रियग्राह्य वस्तु की योग्यता की लक्षकता से सिद्ध है। वह योग्यता दर्शन बाधक माना भाव रूप है। क्योंकि वह योग्यता मेघ झुण्ड आदि से अलग किये जाने पर भी तो है ही। मेघ आदि व्यवधान के हटने पर तो उसके दर्शन संभव है ही। किसी दूसरे के ग्रहण देखने पर किसी दूसरे को भी स्नान आदि का अधिकार कुछ लोग मानते हैं, ऐसा नहीं है। लाघव से सामानाधिकरण्य अर्थात् जिसने देखा उसे ही स्नानादि का अधिकार मानना चाहिए। राहु दर्शन संक्रान्ति इत्यादि दूसरे का अति प्रसक्त अर्थात् अधिक लगाव है। ऐसा केशवमिश्र का कथन है।

मैथिली—सूर्य या चन्द्र ग्रहण लागला उत्तर अपन सर्वस्व दऽके श्राद्ध अवश्य करवाक चाही। एहन अवसर पर जे व्यक्ति श्राद्ध नहिं करैत छथि ओ कीचड़ में धसल गाय जकां दु:ख पावैत छथि। इति।

चन्द्र एवं सूर्यग्रहण यावत्काल धरि चक्षुरिन्द्रिय ग्राह्य होय तावते काल धरि पुण्यकाल मानलगेल अछि।

जाबालिक कथन अछि—'सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण यावत् काल धरि आँखि सों देखल जाय' ग्रहण लागल देखलाक बाद जखन धरि ग्रहण देखि पड़य तखन धरि पुण्य काल मानवाक चाही, संक्रान्ति जकां किछु अधिक काल धरिनहि द्वैतपरिशिष्टक शातातपक वचन में 'राहुदर्शने' तथा देवलक वचन में 'दर्शन गोचर' ई दुहूठाम 'दर्शन' पदक प्रयोग सँ चाक्षुष ज्ञान विषयक निमित्तताक बोध होयत अछि। कियेक तऽ चाक्षुषज्ञान मात्रे दर्शन पदक शक्तिमत्ता छैक। ई ज्ञान स्नानादि करवाक लाघव सँ प्राप्त होयत अछि। ताँय ग्रहण लागलो उत्तर जँ ग्रहण देखि नहि पडय त स्नानादिक अधिकार नहि कहल गेल अछि। नइ तऽ स्नानं काले पुण्यकाल नहि होय ई कही। तऽ गोचर पदक पदयोग्यताक लक्षकता सँ सिद्ध होयत अछि। ई योग्यता दर्शनबाधक मानाभावरूप होयत अछि। से योग्यता मेघसमूहक व्यवधान रहलो उत्तर होयत छैक, मेघ के हरलाक बाद तऽ दर्शन होयते छैक। कुछ लोकनिक विचारे केकरो ग्रहण देखलाक बाद दोसरो गोटेन के स्नानक अधिकार होयत अछि। से नहि। कियेद तऽ लाघव से सामानाधि- करण्यक प्रयोजन बुझना जायत छैक। ग्रहण संक्रान्ति प्रभृति अन्यक अति प्रसक्ते होयत छैक। ई केशव मिश्रक विचार छैन्हि।

विमर्शः—अत्र वराहसंहितायाम्—

यद्येकस्मिन्मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः ।
स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ।
अर्कग्रहात्तुशशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः
नैकव्रतु फलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ।।
सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य ।
तत्रामयः प्रजानां दम्पत्योर्वैमनस्यजायतेऽन्योन्यम् ।।

अथात्र श्राद्धे फलमाह—

'स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने ।
राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम् ।।
गुणवत्सर्वकामीऽयं पितृणामुपतिष्ठते ।।'

मनुः— 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ।
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ।।'

एतट्टीकायाम् । अचिरोदित इत्यत्र कालापेक्षायां त्रिमुहूर्त्तः प्रातःकालो ग्राह्यः । विष्णुपुराणे यथोक्तम्—

रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तं गते रवौ ।
प्रातस्तत्र स्मृतः कालो भागः सोऽन्तस्तु पञ्चमः ।।'

इति कुल्लूकभट्टः ।

अथ राहुदर्शने तु रात्रादावपि श्राद्धं कर्तव्यमेव । तथाह विष्णुः—

'सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः ।
तयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम् ।।'

देवलः— 'राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु ।
स्नानदानादिकं कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च ।।' इति ।

अत्र स्नानदानादीत्यादिपदं तर्पणाद्युपलक्षकम् ।

संवत्सरप्रदीपधृतस्मृतिः—

'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने ।
स्नानमात्रं तु कर्तव्यं दानं श्राद्धविवर्जितम् ।।' इति ।

तथा चाशौचिना ग्रहणे स्नानमात्रं कर्तव्यं न तु दानादिकमिति भाव.. ।।

हिन्दी—इस अवसर पर श्राद्ध का फल कहा है—

चन्द्र या सूर्य ग्रहण में स्नान, दान, तप या श्राद्ध अक्षय फलदायक होते हैं । ग्रहण में किया गया श्राद्ध जब तक संसार में चन्द्र और तारे हैं

अर्थात् सदा के लिए श्रेष्ठ एवं सभी कामना को पूरा करने वाला बनकर पितरों के पास रहते हैं ।

मनु का कथन है—रात में श्राद्ध नहीं करना चाहिए । रात में की गई श्राद्धक्रिया राक्षसी कहलाती है । प्रात: या सायङ्काल की सन्धिवेला में अर्थात् सूर्य आने के कुछ ही क्षणबाद । अचिरोदित की टीका में समय के विचार में प्रात:काल के तीन मुहूर्त्त अर्थात् दो घंटे चौबीस मिनट ग्राह्य है ।

जैसा कि विष्णुपुराण में कहा गया है—सूर्य के अल्पांश अर्थात् प्रभातकालीन तीन मुहूर्त्त व्यतीत होने तक । समय का वह भाग प्रात: काल है जिसकी सीमा पाँच मुहूर्त्त तक हैं ।' कुल्लूक भट्ट ।

ग्रहण लगने पर रात में भी श्राद्ध कर्त्तव्य है । विष्णुपुराण का वचन है—विद्वान् पुरुष संध्याकाल एवं रात में श्राद्ध नहीं करते है, फिर भी ग्रहण लगने पर उक्त दोनों वेला में भी श्राद्ध करना चाहिए ।

देवल का कथन है—ग्रहण लगने पर, संक्रान्ति काल में, विवाह में अतिक्रमण बढ़ जाने पर तथा वाञ्छित व्रतों के अवसर पर रात में भी स्नान दानादि करना चाहिए । यहाँ स्नान दानादि पद तर्पण आदि का संकेतक है ।

संवत्सर प्रदीप में उद्धृत स्मृति का वचन—सूतक लगने पर या किसी के मरने पर ग्रहण लगने का कोई दोष नहीं लगता । ऐसे अवसर पर दान एवं श्राद्ध वर्जित केवल स्नान मात्र करना चाहिए । मृताशौच वाले व्यक्ति को स्नान मात्र करना चाहिए न कि दानादि यही कहने का तात्पर्य है ।

मैथिली—ग्रहणक अवसर पर श्राद्धक फल कहलगेल अछि—

सूर्यग्रहण होय अथवा चन्द्रग्रहण अहि अवसर पर कयलगेल स्नान, दान, तप या श्राद्ध अक्षय फल दायक होयत अछि । ग्रहणक उपलक्ष में कयलगेल श्राद्ध आ चन्द्रतारक सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वकामनाक संपूरक भय पितरक समीप रहैत अछि । मनुक कथन छैन्हि—राति में श्राद्ध नहि करवाक चाही । राति में कयल श्राद्ध राक्षसी कहवैत अछि प्रात: या सायं कालक सन्धिवेला में, अर्थात् सूर्योदयक कुछ क्षण बाद—

अचिरोदित टीका में, समयक विचार में प्रात:कालक तीन मुहूर्त्त (२ घंटा २४ मिनट) ग्राह्य अछि ।

विष्णुपुराणक कथन अछि—सूर्यक अल्पांश अर्थात् सूर्योदयक तीन मुहूर्त्त धरि प्रात: काल कहवैत अछि एकर अधिकतम सीमा पाँच मुहूर्त्त धरि मानल गेल अछि । कुल्लूक भट्ट । ग्रहण लागला पर रातियो में श्राद्ध करवाक चाही, ई विष्णुपुराणक वचन अछि—

विद्वान् लोकनि सन्ध्याकाल एवं राति में श्राद्ध नहिं करैत छथि । किन्तु, ग्रहण लागला उत्तर उक्त दुहू काल में श्राद्ध करवाक चाही ।

देवलक वचन अछि—ग्रहण लागला उत्तर, संक्रान्तिकाल में, विवाह में, अतिक्रमण बढ़िगेला पर उत्तर तथा वाँछित व्रतक अवसर पर रातियों में स्नान दानादि करवाक चाही । अहिठाम स्नान दानादि पद तर्पण प्रभृतिक संकेतक अछि । सम्वत्सरप्रदीप में उद्धृत स्मृतिक वचन अछि—सूतक लाकला पर या केकरो मरला पर ग्रहण दोष नहि होयत छैक । एहन अवसर पर श्राद्ध एवं दानादि कर्म विना कयने स्नान मात्रे शुद्धि होयत छैक।

अशौची लोकनिक ग्रहण में मात्र स्नान करवाक चाही न कि दानादिक क्रिया । एव वहि एकर तात्पर्य अछि ।

विमर्श:—कृत्यशिरोमणिटिप्पण्यां धृतव्रतवाक्यसंग्रहे—

चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु स्नानं दानं शिवार्चनम् ।
न करोति पितुः श्राद्धं स नरः पतितो भवेत् ।।

तत्रैव निगमे—सूर्येन्दुग्रहणे यावत् तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।
न स्वपेत्र च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ।।
निद्रायां जायते रोगी मूत्रे दारिद्र्यमाप्नुयात् ।
पुरीषे कृमियोनिः स्यान्मैथुने ग्रामशूकरः ।।
अभ्यङ्गे च भवेत् कुष्ठी भोजने स्यादधोगतिः ।
वञ्चने च भवेत्सर्पो वधे च नरकं व्रजेत् ।।

वराहसंहितायाम्—यद्येकस्मिन्मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः ।
स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ।
अर्कग्रहात्तुशशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः
नैकव्रतु फलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ।।
सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य ।
तत्रामयः प्रजानां दम्पत्योर्वैमनस्यजायतेऽन्योन्यम् ।।

चतुवर्गचिन्तामणौ—
छेद्यं न पत्रं तृणदारुपुष्पं कार्यत्र केशाम्बर पीडनञ्च
दन्तात्र शोध्या परुषं न वाच्यं भोज्यञ्च वर्ज्यं मदनो न सेव्यः ।
वाह्यं न वाजि द्विरदादि किञ्चिद्दोह्यो न गोऽजामहिषीसमूहः
यात्रा न कुर्याच्छयनञ्च तद्वद्गृहे निशाभर्तुरहर्पतेश्च ।।'

अथ 'नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वमन्हि सायं शशिग्रहात् ।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाश्नीयाच्च मुक्तयोः' ।।

मुक्तयोरिति चन्द्रसूर्ययोरिति शेषः । अत्रार्द्धरात्रानन्तरग्रहणे दिनभोजने न

दोष:, किन्तु श्राद्धादिकरणे भोजनजन्यमशौचं भवत्येवेति व्रतपद्धति: । तथा च श्राद्धकरणेच्छावता तादृशचन्द्रग्रासे दिनेऽपि भोजनं न कर्तव्यमिति तात्पर्यम् । 'मुक्ते शशिनि भुञ्जीत' इति वचनात् । ग्रहणमुक्त्यनन्तरं भोक्तव्यम् तत्रापि यद्युपाधिवशान्मुक्तिर्न दृश्यते तदा मुक्तिकालमनुमीय भोक्तव्यम् । तथा हि—

'मेघमालादिदोषेण मुक्तिर्यत्र न दृश्यते ।
आकलय्य तु तत्कालं भुञ्जीताथाविशङ्कित: ।।'

स्मृति:— 'सूर्यवारे रविग्रासश्चन्द्रवारे शशिग्रह: ।
चूडामणिरिति ख्यातस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ।।
इन्दोर्लक्षगुणं प्रोक्तं रवेर्दशगुणं स्मृतम् ।
गङ्गातीरे तु संप्राप्ते इन्दो: कोटी रवेर्दश ।।

अथ ग्रहणादौ फलमाह—व्यवहाररत्नावल्याम्—

'कृत्तिका भरणी पुष्यं पूर्वभाद्रस्तथा मघा ।
विशाखा फाल्गुनी पूर्वा आग्नेयं मण्डलं विदु: ।।

अस्मिन्नक्षत्रयोगे यदि चलति मही चन्द्रसूर्यग्रहो वा
निर्वातोल्काऽशनीनां कथमपि पतने दर्शने चापि केतो: ।
दह्यन्ते काननानि प्रबलतरमही तीव्रतेजा: पतङ्गा
रोगै: पित्तज्वराद्यैर्निखिलतनुगतै: पीड्यते जीवलोक: ।।'

'स्वाती हस्ताश्विनी चित्रा मृगशीर्षपुनर्वसु: ।
उत्तराफाल्गुनी चैव वायव्यं मण्डलं विदु: ।।'

प्राकाराट्टालचैत्या: पृथुगृहतरवो गोपुरा भूधराश्च
आमूलं शीर्यमाणा: पवनजववशाद्यान्ति भूभागमाशु ।
नारीगोगर्भपातास्तदनु च नियतं मन्दशस्या धरित्री
दुर्भिक्षं चातिकष्टं भवति च महती व्याधिपीडा नराणाम् ।।

'चैत्यो ग्रामोपलक्षकवृक्ष: पृथु: स्थूल: । गोपुरं तु बहिर्द्वारमिति कोष: । जवो वेग: ।

'ज्येष्ठाऽनुराधारोहिण्य: श्रवणाभिजितं तथा ।
उत्तरा च धनिष्ठा च माहेन्द्रं मण्डलं विदु: ।।
लोकोनित्यप्रमोदी विनययुतमना नष्टरोगावकाशो
दाने भोगेऽनुरक्त: सकलगुणयुत: सर्वदु:खैर्विमुक्त: ।
कीर्तिं विस्तीर्य रम्यां त्रिभुवनफलके वर्द्धयन् धर्मवृद्धिं
कोषै: पूर्णो नरेन्द्रो जन पद सहितो वर्द्धते श्रीसमेत: ।।

शतभिषा चोत्तराभाद्रः पूर्वाषाढाश्च रेवती ।
आर्द्रा मूलं तथाश्लेषा वारुणं मण्डलं विदुः ॥
गर्जन्ते वारिवाहा जलभरनमिता क्षीरगर्भाश्च गावः ।
शस्यैः पूर्णा धरित्री ज्वरभयरहिता जन्तवःसर्वदैव ॥

हिन्दी—सूर्य ग्रहण से पूर्व दिन में तथा चन्द्र ग्रहण से पूर्व संध्या में भोजन नहीं करना चाहिए । ग्रहण लगे रहने के समय भी भोजन नहीं करना चाहिए । चन्द्र ग्रहण हो या सूर्य ग्रहण मोक्ष होने के बाद ही स्नान कर भोजन करना चाहिए ।

'मुक्तयोः' का तात्पर्य है चन्द्र एवं सूर्य दोनों के राहुग्रास से मुक्ति मिलने पर यहाँ आधी रात के बाद ग्रहण लगने पर दिन में भोजन करने में कोई दोष नहीं लगता । किन्तु श्राद्धादि करने वाले को दिन में भोजन कर लेने पर व्रत पद्धति के अनुसार भोजन जन्य अशौच तो होता ही है । तो फिर, श्राद्ध करने की जिनकी इच्छा हो उन्हें ऐसे चन्द्र ग्रहण में भी दिन में भी भोजन नहीं करना चाहिए । इसका यही तात्पर्य है ।

'चन्द्रमा को ग्रहण से मुक्ति मिलने के बाद ही भोजन करना चाहिए ।' इस वचन के अनुसार ग्रहण से मुक्ति मिलने के पश्चात् ही भोजन करना चाहिए । इसमें भी यदि किसी विशेष कारण से मोक्ष दिखलाई न पड़े तो मोक्षकाल का अनुमानकर भोजन करना चाहिए । जैसे—बदली के कारण यदि ग्रहण दिख न पड़े तो मुक्तिकाल का हिसाब लगाकर असंदिग्ध हो भोजन करना चाहिए ।

स्मृति का वचन है—रविवार में सूर्यग्रहण तथा सोमदिन चन्द्रग्रहण यदि हो तो इसे चूड़ामणि योग कहते हैं । चूड़ामणि योग में स्नान का अनन्त फल मिलता है । चन्द्रग्रहण में स्नान का लाख गुना तथा सूर्य ग्रहण का दश गुना फल कहा गया है । गङ्गा तीर में यदि यह योग मिले तो चन्द्र ग्रहण में करोड़ गुना तथा सूर्यग्रहण में दश गुना फल मिलता है ।

ग्रहणादि का फल कहा है, व्यवहाररत्नावली में—कृतिका, भरणी, पुष्य, पूर्वभाद्र, मघा, विशाखा, फाल्गुनी और पूर्वा नक्षत्र में लगे ग्रहण आग्नेय मण्डल के नाम से जाना जाता है । इन नक्षत्रों के योग में यदि भूकम्प हो चन्द्र या सूर्यग्रहण हो या केतु के दर्शन हो तो बवण्डर, लूक एवं वज्रपात किसी भी तरह से होगा ही । जंगल जलकर खाक हो जाय, घर और नगर का विनाश हो जाय, सूर्य का तेज अत्यधिक तीव्र हो जाय और समस्त जीवधारियों का संसार रोग से पित्तज्वरादि से विनाश हो जाय ।

इसी तरह स्वाती, हस्त, अश्विनी, चित्रा, मृगशिरा, पनर्वसू, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्रों में ग्रहण लगने पर उसे वायव्य मण्डल कहा जाता है । इस ग्रहण के लगने के कुफल स्वरूप भयंकर तूफान एवं आन्धी आती है, जिससे नगर के परकोठे, विशालभवन, सड़क के किनारे वाले विशाल गूलर या वटवृक्ष, विशाल घरेलू पेड़, पहाड़ जड़ से उखड़ कर धराशायी हो जाते हैं । औरतों और गायों के गर्भपात होते हैं । फसलें मारी जाती हैं अकाल पड़ जाता है । जन जीवन भयंकर रोग से ग्रसित होकर काफी कष्ट पाता है ।

चैत्य का अर्थ ग्रामोपलक्षक पेड़, पृथुका अर्थ मोटे, गोपुर का कोश के मुताबिक अर्थ है बहिर्द्वार, जब का अर्थ है वेग ।

ज्येष्ठा, अनुराधा, रोहिणी, श्रवणा, अभिजित, उत्तरा और धनिष्ठा नक्षत्र गत ग्रहण को माहेन्द्र मण्डल कहा जाता है । इसके फलस्वरूप समस्त मानव जाति हमेशा प्रसन्न रहती है । स्वभाव विनम्र होता है । रोगों से मुक्ति मिल जाती है । दान और भोग में आसक्ति हो जाती है । सारे गुण शरीर में आते हैं । हर तरह की तकलीफों से मुक्ति मिल जाती है । तीनों भुवन में यश फैलाते हुए धर्म की अभिवृद्धि करता है । राजा का कोष भरा रहता है । लक्ष्मी के साथ समस्त जन पद का अभ्युदय होता है ।

शतभिषा, उत्तरभाद्र, पूर्वाषाढ, रेवती, आर्द्रा, मूल, श्लेषा, नक्षत्रों में लगे ग्रहण को वारुण मण्डल कहा जाता है । वारुण मण्डल के प्रभाव में मेघ गरजते हैं, जल के भार से झुके रहते हैं । गायें दुधारू हो जाती हैं । धरती की गोद फसलों से भर जाती हैं । जीव जन्तु हमेशा ज्वर के भय से मुक्त हो जाते हैं ।

मैथिली—**सूर्यग्रहणक पूर्व दिन में तथा चन्द्रग्रहणक पूर्वसन्ध्या में भोजन नहि करवाक चाही । ग्रहण बेला में भोजन नहि करवाक चाही । चन्द्रग्रहण हो त सूर्यग्रहण मोक्ष भेलाक बाद स्नानोपरान्त भोजन करवाक चाही ।**

मुक्तयोः द्विवचनक तात्पर्य चन्द्र एवं सूर्यग्रहणक मुक्ति सों अछि मध्यरात्रिक बाद ग्रहण लागला पर दिन में भोजन कयने कोनो दोष नहि ।

मुदा श्राद्धादि करनिहार के भोजन जन्य अशौच तऽ हयवे करतन्हि एकर उल्लेख व्रत पद्धति में अछि । तांय श्राद्धकर्ता लोकनि के ओहन चन्द्रग्रहण में दिनुको भोजन नहि करवाक चाही । ई तात्पर्य अछि । 'मुक्ते शशिनिभुञ्जीत' अहि वचन से ग्रहण छुटलाक बाद भोजन करवाक चाही । ओकरो में यदि कोनो विशेष कारणवश ग्रहणक मोक्ष नहि देखाय पड़य तऽ मुक्तिक समयक अनुमान कय भोजन करवाक चाही । जेना—

मेघ समूहक कारणे यदि मोक्ष कालक प्रतीति नहि होय तऽ मुक्ति कालक सत्याकलन कय शङ्का रहित भय भोजन करवाक चाही ।

स्मृतिक वचन अछि—रविक दिन यदि सूर्यग्रहण होय तथा सोमक दिन चन्द्रग्रहण तऽ चूड़ामणि योग कहवैत अछि । अहि योगक अनन्त फल कहलगेल अछि । चन्द्र ग्रहणक लाख गुन फल अछि तथा सूर्यग्रहणक दश गुना अधिक फल कहलगेल अछि । गङ्गातीर भेंटला उत्तर चन्द्रग्रहणक कोटिगुना एवं सूर्यग्रहण दशगुणा अधिकफल होयत अछि ।

व्यवहाररत्नावली में ग्रहणादिक फल निम्न प्रकारेण कहलगेल अछि—कृत्तिका, भरणी, पुष्य, पूर्वभाद्र तथा मघा, विशाखा, पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र में लागल ग्रहण के आग्नेय मण्डल कहल जायत अछि । अहि नक्षत्रक योगे यदि भूकम्प होय, चन्द्र अथवा सूर्य ग्रहण होय तऽ पवनक प्रचण्ड झोंके आकाश सनसनाय, उल्का एवं वज्र खशय, केतुक दर्शन होय, जंगल जरिकय खाक भऽ जाय, घर नगर विनष्ट भऽ जाय सूर्यक उष्मा अत्यन्त तीव्र होय, अखिल संसारक शरीर रोग एवं पित्तज्वरादि सँ पीड़ित भऽ जाय ।

स्वाती, हस्त, अश्विनी, चित्रा, मृगशिरा, पुनर्वसू तथा उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में लागल ग्रहण वायव्य मण्डलक नामे ख्यात छथि । नगरक रक्षाकलेल चतुर्दिक् बनावेल सुदृढ परकोटा, अट्टालिका, सड़क कानक विशाल गूलर वट एवं पिपरक पेड़ घर—आंगनक स्थूल वृक्ष, नगर—द्वार तथा विशाल पहाड़, तीव्र वेग सँ बहैत हवाक झोंक में जड़ि सँ उखरि धाराशायी भऽ जाय । नारी एवं गायक गर्भपात होय, तत्पश्चात् अन्नक ऊपज घटि जाय, अकाल होय, लोक जीवन दुःखी होय एवं भयङ्कर रोग सँ पीड़ित होय ।

चैत्यक अर्थ अछि ग्रामोपलक्षकवृक्ष, पृथुक अर्थ स्थूल, गोपुरक बहिर्द्वार एवं जवक अर्थ वेग होयत अछि ।

ज्येष्ठा, अनुराधा, रोहिणी, श्रवणा, अभिजित्, उत्तरा, धनिष्ठा नक्षत्रक ग्रहण माहेन्द्र मण्डलक नामे ख्यात अछि । अहि ग्रहणक प्रभाव में लोक नित्य प्रमोदी होय, मन सँ विनम्र होय, शारीरिक रोग समटा नष्ट भऽ जाय, दान एवं भोगक प्रति लोकक अभिरुचि होय, सभ तरहक गुणक उपलब्धि होय, सभ तरहक कष्ट से मुक्ति भेंटय, सुन्दर यशक विस्तार होय, तीनों भुवन में धर्मक वृद्धि होय, राजकोष भरल रहय, लक्ष्मी सहित, जनपदक संग राजाक वृद्धि होय।

शतभिषा, उत्तर भाद्र, पूर्वाषाढ, रेवती, आर्द्रा, मूल तथा श्लेषा नक्षत्रक ग्रहण वारुण मण्डल कहवैत अछि । अहि मण्डलक प्रभाव सँ मेघ सदिखन गर्जय, पानि सँ मेघ लटकल रहय, गाय दूधारू होय, अन्न सँऽ धरती भरल रहय, जीवजन्तु सर्वदा ज्वरभय सँ रहित भऽ जाय ।

विमर्श:—गर्जन्ते वारिवाहेत्यादि श्लोकोयमत्रापूर्णोऽस्ति किञ्चिदन्यादृशोऽयमेवाद्‌भुत सागरात् कृत्यशिरोमणेश्चोद्‌धृत्य पूर्णो विलिख्यते—

गर्जन्ते वारिवाहा जलभरनमिता: पूर्यमाणा: क्षणेन
क्रीडन्ते मीन हस्त: पयसिजनपदा: हर्षिण: कामभाज: ।
वृक्षा: पुष्पै: समेता: फलभरनमिता: क्षीरवत्यश्च गाव:
सस्यै: पूर्णाधरित्री सुखभरनमिता जन्तव: सर्व्वदैव ।।

कृत्यशिरोमणिधृत राजमार्त्तण्डवचने—

सप्ताष्टजन्मशेषेषु चतुर्थे दशमे तथा ।
नवमे च तथा चन्द्रे न कुर्याद्राहुदर्शनम् ।।

अथ मलमासविचार:

स च शुक्लप्रतिपदादि: । तथा हि—

'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादि: स प्रकीर्तित: ।
अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ।।'

अस्यार्थ:—इन्द्राग्नियाग: शुक्लप्रतिपदादि: स मासादि: । अग्नीषोमयोर्याग: पूर्णिमायाम्, सा मध्यं पितृसोमयोर्याग: पूर्णिमायाममावास्यां स मासान्त इति । ज्योतिषे—

'गतेऽब्दद्वितये सार्द्धे पञ्चपक्षे दिनत्रये ।
दिवसस्याष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासक: ।।'

तथा च द्वात्रिंशन्मासमष्टादशदिनं चातीत्य मलमासो भवतीति पर्यवसितम् । 'चैत्रादय: सप्त सदाधिमासा:' इति वचनात् चैत्रादिसप्तमासेष्वेव मलमास इति केचित् । इदमुपलक्षणम्, कार्तिकादिमासस्यापि मलमासत्त्वस्योक्तत्वात् । तथा हि ज्योतिषे—

'दशानां फाल्गुनादीनां प्रायो माघस्य च क्वचित् ।
नपुंसकत्वं भवति न तु पौषस्य तु क्वचित् ।।'

नपुंसकत्वं मलमासत्त्वम् ।।

कदाचित् कार्तिकादिमासत्रये संक्रान्तिद्वययुक्त: शुक्लादिचान्द्र: क्षयाख्यो भवति । तत्क्षयाख्यपूर्वं परतश्च मलमासप्रसक्तिर्भवति । तथा हि ज्योतिषे—

'असंक्रान्तिमासोऽधिमास: स्फुट: स्याद्
द्विसंक्रान्तिमास: क्षयाख्य: कदाचित् ।
क्षय: कार्तिकादित्रये नान्यत: स्यात्
तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात् ।।' इति ।

क्षयाख्यः क्षयनामकः न तु वस्तुगत्या लुप्तमासः । अत एव मासयोः सङ्कर एव क्षयो न कस्यापि लोप इति मासमीमांसायां गोकुलनाथोपाध्यायाः । तथा च यत्र कार्तिके क्षयाख्यः तत्र कार्तिककृष्णमार्गशुक्लपक्षयोरविकृतत्त्वमेव, कार्तिकशुक्लमार्गकृष्णपक्षयोः क्षयकार्तिकशुक्लक्षयमार्गकृष्णत्वेनाभिधानमात्रं न तु शुक्लादिकार्त्तिकलोपः । एवं मार्गादावपि ज्ञेयमिति भावः । न च मासालोपे मलमासद्वयप्रसक्तौ च सत्यां सम्वत्सरस्य चतुर्दशमासात्मकत्वापत्तिरिष्टापत्तौ । 'द्वादशमासाः सम्वत्सरस्त्रयोदशमासाः सम्वत्सरः' इति श्रुतेः । 'त्रयोदशं तु श्रुतिराह मासश्चतुर्दशः क्वापि न चास्ति दृष्टः' इति भीमपराक्रमधृतस्मृतेश्च विरोध आपद्येत इति वाच्यम् । मलमासद्वयप्रसक्तिसत्वेऽपि—

एकस्मिन्नप्यब्दे यत्रैतन्नक्षयमासयोरुभयोः ।
तत्रोत्तरोऽधिमासः स्फुटगत्या भवति चार्केन्द्वोः ।।

एकत्र मासद्वितयं यदि स्याद्वर्षेऽधिकं तत्र परोऽधिमासः ।

मासद्वयस्य मध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत् ।
प्रकृतस्तत्र पूर्वः स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः ।।'

इत्यादि भीमपराक्रमहेमाद्रिकृत्यमहार्णवद्वैतपरिशिष्टदैवज्ञबान्धवादिग्रन्थधृतार्षविशेषवचनेभ्यः क्षयाख्यामासोत्तरयथोक्तलक्षणवतो मासस्यैव मलमासत्वे क्षयाख्यपूर्वमासस्य च प्रकृतत्वे सिद्धे क्षयाख्यपूर्वमासस्य मलमासत्व प्रतिषेधात् । एतल्लक्ष्म असंक्रान्तत्त्वरूपमलमासचिन्हम् उत्तरः क्षयाख्योत्तरः । एकत्रेति वर्षे इत्यन्वयि मासद्वितयमिति, अधिकमित्यन्वयः तथा च क्षयाख्यपूर्वस्य न मलमासता । किन्तु क्षयाख्योत्तरमासस्यैवेति भावः । मैथिलव्यवहारोऽप्येवमेवेति ।

अत्र यदाऽनेकमासानां यथोक्तमलमासलक्षणं तदा पूर्वमासानां मलमासता तावन्नास्ति, किन्तु चरमस्यैव यथोक्तलक्षणवत् इति । क्षयमासः कर्मार्ह एव अपवादकाभावात् इति च कृत्यमहार्णवे वाचस्पतिमिश्राः प्राहुरिति न किञ्चिदनुपपन्नम् ।

हिन्दी—शुक्ल पक्ष की परिवा से मलमास प्रारम्भ होता है । उदाहरणार्थ—मलमास शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर अमावस्या को समाप्त हो जाता है । पूर्णिमा इसके बीच में होती है ।

इसका अर्थ है—इन्द्राग्नीयोगः = यह यज्ञ शुक्ल प्रतिपदा के दिन होता है । अतः इसी परिवा से मलमास प्रारम्भ होता है । अग्नीषोमयोर्यागः = यह यज्ञ पूर्णिमा तिथि में होता है । अतः पूर्णिमा मलमास के बीच में पड़ती है ।

पितृसोमयाग—यह यज्ञ अमावास्या तिथि में होता है और यही तिथि मलमास की अन्तिम तिथि है ।

ज्योतिष में—ढाई वर्ष, पाँच पखवार, तीन दिन और एक दिन का आठवाँ भाग बीत जाने पर ही अधिमास होता है । और इस तरह बत्तीस महीने, अट्ठारह दिन बीत जाने पर मलमास होता है, यह निर्धारित किया गया है । 'चैत्रादय: सप्तसदाधिमास:' इस वचन के अनुसार कुछ लोगों के विचार में चैत्रादि सात महीनों पर ही मलमास होता है । किन्तु, यह वचन तो उपलक्षण मात्र है । क्योंकि, कार्त्तिकादि मास का भी मलमास कहा गया है ।

उदाहरणस्वरूप ज्योतिष में—फाल्गुन से लेकर दश महीने का अर्थात् अग्रहण तक का मलमास तो होता ही है । कहीं कहीं माघ महीने का भी उल्लेख मिलता है । किन्तु, पूस महीने में कभी मलमास नहीं होता है ।

नपुंसकत्व का यहाँ अर्थ मलमासत्त्व—कभी कभी कार्त्तिकादि तीन महीने में दो संक्रान्ति युक्त शुक्लादि से चान्द्रमास होता है । उस क्षयनामक महीने से पहले और बाद में मलमास का संयोग होता है । तात्पर्य यह है कि वर्ष में क्षय मास से पूर्व और पश्चात् दो अधिमास अवश्य होते है । अर्थात् ८ वृश्चिकस्थ संक्रान्ति तक ९ दर्शान्त होने से चान्द्र मास का अधिकत्व सिद्ध होता है । फिर आगे धेनुस्थ सूर्य में दर्शान्त नहीं होने से 'मेषादिस्थ सवितरि' इत्यादि लक्षण से तत्सम्बन्धी मार्गशीर्ष संज्ञा का लोप तथा मकरस्थ सूर्य में दर्शान्त हो जाने से उसका नाम पौष हो जाता है । एक वर्ष के भीतर संक्रान्ति और दर्शान्त की संख्या समतुल हो जाती है । अत: पहले के असंक्रान्ति मास का अधिकत्व (मलत्व) नष्ट हो जाता है । फिर आगे कुंभस्थ सूर्य तक संक्रान्ति और दर्शान्त की संख्या बराबर बनी रही । फिर मीनस्थ सूर्य में दो दर्शान्त हो जाने से चान्द्रमास की संख्या बढ जाती है । इस तरह क्षय मास होने से एक साल के भीतर दो अधिमास का होना निश्चित है । अत: भास्कराचार्य का यह उदाहरण इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है ।

'असंक्रान्ति मासोऽधिमास: स्फुट: स्यात् ।
द्विसंक्रान्तिमास: क्षयाख्यकदाचित् ।।
क्षय: कार्त्तिकादित्रये नान्यत: स्यात् ।
तदावर्ष मध्येऽधिमासं द्वयं स्यात् ।।'

असंक्रान्ति मास ही अधिमास होता है, यह तो स्पष्ट ही है और संक्रान्ति से युक्त महीने क्षयाख्य होते हैं । क्षयमास कार्त्तिकादि तीन महीने में ही होते हैं अन्यत्र नहीं, तब एक वर्ष के भीतर दो अधिमास होते हैं ।

क्षयाख्य का अर्थ होता है, क्षय नामका, न कि क्षय का अर्थ शब्द गत्या लुप्त महीना होता है । अतएव दो महीने का सम्मिश्रण ही क्षय है न कि किसी का लोप' यह मासमीमांसा में गोकुलनाथ उपाध्याय ने लिखा है और इसी प्रकार मनीषिमान्य गोकुल उपाध्याय ने अपनी मांसमीमांसा में और स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'क्षयमास में दो मास मिलकर, एक ही मास (३० ही तिथि) में बीतते हैं । अपचय होने से 'क्षय' संज्ञा होती है । अथवा—दो में एक का नाम लोप हो जाने से क्षय या लुप्त संज्ञा होती है । ऊपर दर्शित उदाहरण में एक ही मास में धनु और मकर की संक्रान्ति होने से मार्गशीर्ष और पौष के लक्षण होने के कारण, दोनों संज्ञा की प्राप्ति तो हुई किन्तु, धनुस्थ सूर्य में मास पूर्त्ति अमान्त नहीं होने से मार्गशीर्ष संज्ञा का लोप होकर मकरस्थ सूर्य में अमान्य होने से पौष नाम पड़ा ।'

और इस प्रकार जहाँ कार्त्तिक मास में क्षयाख्य होता है, वहाँ कार्त्तिक कृष्ण और मार्गशुक्ल पक्ष में मुख्यत: रविकृतत्त्व ही है, (तात्पर्य यह है कि चान्द्र और सौर मासों का अन्तर ही अधिमास होता हे । अत: एक सौर वर्ष में सौर और चान्द्रमास का अन्तर सावयव ११ तिथि तुल्य होता है । अत: मध्यममान से एक अधिमास के बाद लगभग ३२ महीने १५ दिनों पर पुन: अधिमास होने की संभावना रहती है । अत: विभिन्न आचार्यो ने ३० महीने से ३४ महीने तक अधिमास होने की संभावना कही है ।) कार्त्तिक शुक्ल और मार्गशीर्ष के कृष्णपक्ष का क्षय कार्त्तिक शुक्ल का क्षय मार्गकृष्ण के साथ केवल कहने भर के लिए ही है । न कि शुक्लादि से कार्त्तिक के लोप का अर्थ है । इसी तरह अग्रहणादि में जानना चाहिए । अगर मास के अलोप की स्थिति में दो मलमास की संलग्नता होने पर चौदह महीने का वर्ष होने की आपत्ति होगी, तो कहते हैं यह तो चाही हुई बात ही होगी—इसमें कोई हर्ज नहीं है । क्योंकि, 'द्वादश मासा: संतसरस्त्रयोदशमासा: संवत्सर' इति श्रुते: । अर्थात् बारह महीने का वर्ष, तेरह महीने का वर्ष तो श्रुति का ही वचन है। यह तो ठीक है किन्तु, भीम पराक्रम में जो स्मृति का वचन है—'तेरह महीने का वर्ष तो श्रुति में कहा गया है पर चौदह महीने का वर्ष तो कही भी नहीं देखा गया है' ऐसा विरोध होगा तो कहते हैं दो मलमास की प्रसक्ति होने पर भी—

एक ही महीने में जहाँ इन दो महीने के चिन्ह प्रतीत हो वहाँ सूर्य और चन्द्र के उच्चस्थान स्फुटगति से बाद वाला अधिमास होता है । अधिक अर्थात् दो महीने यदि एक साथ हो तो दूसरा महीना अधिमास कहलाता है । दो

महीने के बीच में यदि संक्रान्ति न हो तो पहला प्रकृत होता है और दूसरा मलिम्लुच होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस वर्ष में क्षयमास होता है, उस वर्ष में क्षयमास से पूर्व अधिमास का नाम 'संसर्प' क्षय मास का नाम 'अंहस्पति' तथा अग्रिम अधिमास का नाम 'मलिम्लुच' कहा गया है ।

इत्यादि, भीमपराक्रम, हेमाद्रि, कृत्यमहार्णव, द्वैतपरिशिष्ट, दैवज्ञबान्धव आदि ग्रन्थों में उद्धृत विशेष वचनों से क्षयाख्य महीने के बाद यथोक्त लक्षण वाले महीने का ही मलमासत्त्व होने पर क्षय नामक पूर्व महीने का ही प्रकृतत्त्व सिद्ध होने पर क्षय नामक पूर्व महीने का मलमासत्त्व का विरुद्ध कथन होगा । इसका चिन्ह असंक्रातत्त्वरूप मलमास के चिन्होत्तर क्षयाख्य के बाद होगा। और इसी प्रकार क्षयाख्य महीने के पूर्व महीने की मलमासता न होकर, उत्तर मास की मलमासता ही सिद्ध होगी यही भाव है । मैथिलों का व्यवहार भी ऐसा ही है । यहाँ यदि अनेक महीनों का ऊपर कहे गये मलमास के लक्षण हो तो पहले के महीनों की मलमासता सिद्ध नहीं होगी, किन्तु, अन्तिम लक्षण का ही सिद्ध होगी । अपवाद के अभाव में क्षयमास कर्म करने के योग्य होता है, यह कृत्यमहार्णव में वाचस्पति मिश्र ने कहा है, इसमें कुछ भी अनुपपन्न नहीं है ।

मैथिली—आव मलमासक विचार करैत छी ।

शुक्लपक्षक परिवा सँ मलमासक प्रारम्भ होयत अछि । उदाहरणार्थ जेना—

शुक्ल प्रतिपदा सँ मलमास प्रारम्भ होयत अछि । आगुक अमावास्या में मलमास समाप्त भऽ जायत छैक । एकर मध्य में मासक पूर्णिमा होयत छैक ।

ऊपर लिखल श्लोकक अर्थ होयत छैक—इन्द्राग्नीयागः = शुक्ल पक्षक परिव पहिल दिन होयत छैक, सेहऽ मासादि भेल । अग्नीषोमयो योगः = ई पूर्णिमाक दिन होयत छैक । ई मलमासक मध्य में पड़ैत छैक । अमावास्या में मासान्त भऽ जायत छैक ।

ज्यौतिषक अनुसार—दुहूवर्ष छः मास पांच पक्ष तीन दिन एवं एक दिनक आठमभाग बीतला उत्तरे अधिमास होयत छैक ।

एवं अहिना—वत्तीस मास, अट्ठारह दिन बितला उत्तर मलमास होयत छैक । ई निर्धारित कयल गेल अछि । 'चैत्रादयः सप्त सदाऽधिमासाः' अहिवचनक अनुसार—

चैत आदि सात मास वितला पर कुछ लोकनिक विचार में मलमास होयत छैक । ई कथन मात्र उपलक्षण अछि । अर्थात् सम्पूर्ण तथ्यक आंशिक कथन धरि अछि । एनातऽ कार्त्तिकादि मासोक मलमासत्त्व कहलगेल अछि ।

अहीलेल ज्योतिषं में कलगेल अछि—फागुन सँ लऽके दशमास धरि अर्थात् फाल्गुन सँ अग्रहण धरि तऽ मलमास होयते छैक, कतौ माघ मासक सेहो उल्लेख भेटैत छैक मुदा पूसक उल्लेख कतौ नहि छैक । नपुंसकत्वक अर्थ अहिठाम मलमास होयत छैक ।

कोनो समय कार्त्तिकादि मासत्रय में दुई सक्रान्ति युक्त शुक्लादि सँ चान्द्रमास होयत छैक, एकरे क्षयमास कहल जायत अछि । ताहि क्षय मासक पूर्व एवं पश्चात् मलमासक संयोग होयत छैक ।

उदाहरण स्वरूप ज्योतिष में—'धनुस्थ सूर्य में दर्शान्त नहि भेने मेषादिस्थे सवितरि' इत्यादि लक्षण सँ तत्सम्बन्धी मार्गशीर्ष 'संज्ञाक लोप' तथा मकरस्थ सूर्य में दर्शान्त भऽ गेले ओकरनाम 'पौष' भऽ गेल । तथा वर्षाभ्यन्तर में संक्रान्ति' एवं दर्शान्त संख्यातुल्य भऽ जायत अछि । मीनस्थ सूर्य में २ दर्शान्त भऽ गेला सँ चान्द्रमासक संख्या अधिक भऽ जायत अछि । एवं क्षयमास भेला सँ वर्षाभ्यन्तर में दुई अधिमास होयत अछि । ई ज्योतिषक अकाट्य सिद्धान्त अछि ।'

ताँय भास्कराचार्यक कथन अछि—असंक्रान्ति अर्थात् असंक्रान्ति मास स्पष्टत: यदि 'अधिमास' होय, तखन, दुइ संक्रान्ति मास क्षयमास कहवैत अछि । कार्त्तिकादि तीने मास में क्षयमास होयत अछि अन्यत्र नहि । एहन स्थिति में वर्षक मध्य में दुई अधिमास होयत अछि ।

क्षयाख्य: अर्थात् क्षय नामक होयत अछि, क्षय शब्दक वस्तुगत्या लुप्तमास अर्थ नहि होयत अछि । अतएव मासद्वयक सम्मिश्रणे 'क्षय' कहवैत अछि । एकरा में कोनो मासकलोप नहि होयत छैक ई मासमीमांसा में गोकुलनाथ उपाध्यायक कथन छैन्हि । एवं अहिना जाहिठाम कार्त्तिक मास में स्फुट मानसँ क्षयाख्य चान्द्रमास होय ताहिठाम कार्त्तिक कृष्ण एवं मार्ग शुक्ल पक्षक रविकृतत्त्वे बुझवाक चाही कार्त्तिक शुक्ल एवं मार्ग कृष्णपक्षक क्षय, कार्त्तिक शुक्ल पक्षक क्षय मार्ग कृष्णत्वेन नाम मात्रेक होयत अछि नकि शुक्लादि कार्त्तिकक लोप होयत अछि । अहिना मार्गादि मासो में बुझवाक चाही । यदि ई कहल जाय कि मासक लोप नहि भेने मलमासद्वयक प्रसक्ति भेने बारह मासक स्थाने चौदह मासक वर्ष भऽ जायत ई अनिष्ट प्रसङ्गक उपस्थिति भऽ जायत, ताँय कि ई तऽ वाँछिते प्रसङ्ग हैत, कियेक तऽ श्रुतिक वचन छैक—'बारह मासक साल, तेरह मासक साल' । ई त भेल मुदा भीम पराक्रम धृत स्मृति वचनक विरोध उपस्थित हैत । 'तेरह मासक उल्लेख तऽ श्रुति में अछि किन्तु, चौदह मासक प्रसङ्ग तऽ कतहुनहिं देखलगेल अछि । तथा मलमासद्वयक प्रसक्ति भेलो उत्तर—

जाहिठाम वर्षाभ्यन्तरे में दुहू मासक चिन्ह प्रकट होय, ताहिठाम उत्तरवर्त्ती मास चन्द्र एवं सूर्यक स्फुटगति सँ अधिमास होयत अछि । यदि वर्षाभ्यन्तरे में एक स्थान पर दुई मासक साङ्कर्य होय तऽ परवर्त्ती अधिमास होयत अछि । दुई

मासक मध्य में यदि संक्रान्ति नहिं होय तऽ ताहि स्थिति में पूर्ववर्त्ती मास वास्तविक मास भेल एवं परवर्त्ती मास मलमास होयत अछि ।

इत्यादि भीम पराक्रम, हेमाद्रि, कृत्यमहार्णव, द्वैतपरिशिष्ट, दैवज्ञबान्धव प्रभृति ग्रन्थधृत आर्ष विशेष वचन सँ क्षय नामक मासक उत्तरवर्त्ती यथोक्त लक्षणवान् मासे मलमास होयत अछि । क्षय मासक पूर्ववर्त्ती मासक वास्तविकता सिद्ध भेला उत्तर, क्षयाख्य मास सॅ पूर्ववर्त्ती मासक मलमासक प्रतिषेध भऽ जायत । ई चिन्ह असंक्रान्तत्त्वरूप मलमासक चिन्ह उत्तरवर्त्तीक्षय मासक उत्तर सिद्ध होयत अछि । एकत्रक वर्ष साथ अन्वय भेला उत्तर मास द्वितयक अन्वय अधिमासकलेल प्रासङ्गिक होयत अछि । अहीलेल क्षयमासक पूर्व मलमासत्त्व सिद्ध नहि भऽ सकैऽछ । मैथिल समाजक व्यवहारो एतवहि देखल जायत अछि । अहिठाम जखन अनेक मासक यथोक्त मलमासक लक्षण भेंटय तखन पूर्वमासक मलमासता तावत्काल धरि संभव नहि अछि । किन्तु, यथोक्त लक्षण बाह्य उत्तरवर्त्ती मासे में मलमासताक प्रसंग सिद्ध होयत अछि । अपवादक अभाव सँ क्षयमास कर्मयोग्य मानलगेल अछि । ई कृत्यमहार्णव में वाचस्पति मिश्र कहने छथि, एकरवाद किछु अनुपपन्न नहि वॉचल ।

विमर्श:—अस्मिन्विषये निर्णयसिन्धौ यथा—'तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहित: सितादिश्चान्द्रो मास: मलमास: । एकमात्र संक्रान्तिराहित्यमसंक्रान्तित्वेन संक्रान्ति द्वय सत्त्वेन च भवति । मलमासो द्विधा—अधिमास: क्षयमासश्चेति ।'

तदुक्तं काठकगृह्ये— यस्मिन् मासे न संक्रान्ति: संक्रान्ति द्वयमेव वा ।
मलमास: स विज्ञेयो मासस्यात्तु त्रयोदशै: ।।

सत्यव्रतोऽपि— 'राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकर: ।
नाधिमासोभवेदेष मलमासस्तु केवल ।।' इति ।

अधिमासस्य कालनियममाह वशिष्ठ:—

द्वात्रिंशद्भिर्मितैर्मासै दिनै: षोडशभिस्तथा ।
घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासक: ।। इति ।

एतच्च सावनादिमानेन सम्भवार्थं, न तु नियमार्थम्, अन्यथा षोडश दिनाधिक द्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लादित्वभङ्गापत्ते: । तेन न्यूनाधिककाले मलमास पातेऽपि न दोष: । अत एवोक्तं माधवीये—'मासे त्रिंशत्तमे भवेत्' ।

अत्रैव क्षयाख्यप्रसङ्गे कृष्णमोहनठक्कुरेण निगदितम्—'यद्याऽमान्त: द्वयान्त: संक्रान्तिद्वयं भवेत्, तदा शुक्लादिक: क्षयाख्यश्चान्द्रमास: स्फुट: मानेन भवति । तथा चोक्तं भास्कराचार्यै:—

'द्विसंक्रान्तिमास: क्षयाख्य: कदाचित्' । एवमेवोक्तं स्मृतौ—

आद्यन्त दर्शयोर्मध्ये भानोरेवतयोर्यदि ।
संक्रान्ति द्वितयं स्यान्न्यूनमास: स उच्यते ।।

यथा मार्गशीर्षामावास्यामुल्लङ्घ्य धनु:संक्रान्तिस्ततोऽग्रिमान्तात् प्रागेव मकरसंक्रान्तिरभूत्तत्र 'मेषादिस्थे सवितरि यो यो मास: प्रपूर्यते चान्द्र: । चैत्राद्य: सज्ञेय: । इति शुक्लादि चान्द्रमास लक्षयो न मार्गशीर्षाभावस्यावसाने वृश्चिकार्कत्वान्मार्गमासा-पूर्त्तिर्जाता । तथाग्रिमावुभावामावास्यान्तरे मकरार्कत्वान्माघमासपूर्त्तिर्जाता । तत्र धनूराशि स्थितेऽर्केऽमान्तपतनाभावात् पृथक् पौषमासस्यसानवकाशात् पूर्त्तिमासगणनया मार्गानन्तरं माघस्य प्राप्त्या पौषस्य क्षय: । वस्तुतस्तु तत्र माघे एव पौषस्याऽपि प्रविष्टत्वादेकस्मिन्नेव तस्मिन्क्षयाख्ये मासे तिथि पूर्वार्द्ध परार्द्धविभागवशेन पूर्वापरौ मासौ भवतस्तथा चोक्तं मुहूर्त्तचिन्तामणौ—'क्षयमासकस्तुद्विसंक्रमस्तत्र विभागयोस्तस्तिथेर्हि मासौ प्रथमान्त संज्ञौ। तत्रैव तट्टीका पीयूषधारायाम्—

'तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वोऽरस्मिन्नपरस्तथा ।
मासाविति बुधैर्चिन्त्यौ क्षयमासस्यमध्यो: ।।'

तत्र क्षयमासे कस्याऽपि तिथे: सम्पूर्णमानं प्रसाध्य, तत्पूर्वार्द्धम्, पूर्वमासस्य तत्परार्धमग्रिममासस्यापि तिथिर्भवति ।' अस्मिन्नेव प्रसङ्गे ठक्कुरेणैव पुनराह—'तत्र धनुष: पूर्वापरयोर्वृश्चिकमकरयोरेव विशेषसंभवात् तुलायास्तदपेक्षया दूरगत्वात दूरगतत्त्वेऽपि तुलावत्कुम्भस्यापि, अन्तरित्वात् कार्त्तिकत्वतुष्टये, एवं तदोचित: पाठ: संभवेन्नकार्त्तिका-दित्रये । अयं मासनियमस्तु रव्युच्चं द्वन्द्वाष्टदशांशे स्थिरं मत्वाऽऽचार्यैरुक्तस्तद्गते-श्चिरकालेनाप्यनुपलम्भात् । वस्तुतस्तु बहुभिर्वर्षसहस्रैरन्तरं पतत्येवातो—भास्कराचार्य-माक्षिपन् कमलाकर आह—

इदानीन्तनार्थं न शास्त्रं प्रवृत्तं न सत्कार्त्तिकादित्रयोत्थं तदुक्तम् ।
अतोऽयं क्षय: सर्वचान्द्रेष्वपीत्थं न जानन्ति सद्वासनाज्ञानशून्या: ।
सुयुक्ता न मुन्युक्तिरप्यत्र शास्त्रे भवेत् कार्यवर्यस्य या दृग्विरुद्धा ।। इति ।'

अथ मलमासे कर्तव्याऽकर्तव्ये । तत्र बृहस्पति:—

'नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रयत: सन्मलिम्लुचे ।
तीर्थस्नानं गजच्छायां प्रेतस्नानं तथैव च ।।
गर्भे वार्धुषिकृत्ये च मृतानां पिण्डकर्मसु ।
सपिण्डीकरणे चैव नाधिमासं विदुर्बुधा: ।।'

नित्यं सन्ध्यावन्दनादि, नैमित्तिकं ग्रहणशान्त्यादिनिमित्तकस्नानादितीर्थ-स्नानं द्वितीयाद्यावृत्ति, प्रथमावृत्तिस्नानाकरणस्याग्रेऽनुपदमेव वक्ष्यमाणत्वात्। गजच्छायेति तन्निमित्तकश्राद्धमित्यर्थ: । प्रेतस्नानं मरणनिमित्तकस्नानम् । गर्भे गर्भाधाननिमित्तककर्मणि । वार्धुषिककृत्ये ऋणादौ, मृतानां पिण्डकर्मसु पूरकादिपिण्डेषु एकादशाहश्राद्धादौ च नाधिमासं विदुरिति । प्रतिरोधकमित्यादि तथा चैतत्सर्वं मलमासेऽपि कर्तव्यमिति भाव: । बृहस्पति:—

'मलिम्लुचे त्वनावृत्तं तीर्थस्नानमपि त्यजेत् ।'

अनावृत्तं प्रथमावृत्तिः । ज्योतिषे—

'अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ।
देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥
माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ।
त्यजेद्दानं महादानं व्रतं देवविलोकनम् ॥
वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च ॥'

प्रतिष्ठा उद्यापनं शिवादि प्रतिष्ठा वा । मेखला उपनयनं, महादानं तुलापुरुषादिदानम् । स्मृतिः—

'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् ।
इष्टं वाप्यथवा पूर्तं तन्न कुर्यान्मलिम्लुचे ॥'

श्राद्धिकं श्राद्धम् । इष्टं पूर्तं चाह रत्नाकरे जातूकर्णः—

'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥'

मरणदिनमारभ्य एकादशमासिककालाभ्यन्तरे यदि मलमासस्तदा मासिकमेकं वर्द्धयेत्—तथा हि विष्णुसूत्रम् । 'सम्वत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासपातो भवति तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्द्धयेत्' इति सम्वत्सराभ्यन्तरे एकादशमासिककालाभ्यन्तरे एकादशमासिककालश्च एकादशमासपूर्तिदिनाव्यवहितोत्तरक्षयाहतिथिः । तथा च तदभ्यन्तरे मलमासपाते सप्तदशश्राद्धसङ्कल्पः। त्रयोदशे मासि पूर्णे क्षयाहे वार्षिकमिति तात्पर्यम् । अत्र सम्वत्सरशब्द एकादशमासपरः ऋष्यशृङ्गवचनैकवाक्यताबलादिति द्वैतनिर्णयः।

मरणदिनमारभ्य द्वादशमासस्य मलमासत्त्वेन मासिकवृद्धिः तेन मलमास एव क्षयाहे प्रथमवार्षिकम् । तथा च ज्योतिषे—

'जातकर्मणि यच्छ्राद्धं नवश्राद्धं तथैव च ।
प्रतिसम्वत्सरश्राद्धं मलमासेऽपि तत्स्मृतम् ॥' इति

नवश्राद्धं चतुर्थपञ्चमनवमैकादशदिनश्राद्धं, प्रतिसम्वत्सरश्राद्धं प्रथमवार्षिकम् । स्मृतिः—'असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं बुधैः ।'

असंक्रान्ते संक्रान्तिशून्ये मलमास इति यावत् । लघुहारीतः ।

'प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया बुधैः ।
कचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम् ॥

प्रत्यब्दं प्रतिवर्षं, पिण्डक्रिया साम्वत्सरिकं क्वचित् एकादशमासिककालाभ्यन्तरे मलमासपाते, 'आद्यं मुक्त्वा तु तत्सरमिति'

मरणदिनमारभ्य द्वादशमासस्य मलमासत्त्वे मलमास एव द्वादशे मासि क्षयाहे प्रथमवार्षिकमिति तात्पर्यम् । न चैवं सति आश्विनकृष्णामावास्यायां मृतस्याग्रिमभाद्रस्य मलमासत्त्वे द्वितीयभाद्रकृष्णामावास्यायामेवोक्तरीत्या प्रथमवार्षिकं तस्याश्विनत्वाभावात् । भाद्रोल्लेखादाश्विनोल्लेखासङ्गतिरिति भ्रमितव्यम् । शुक्लादिरीत्या मरणतिथेः कृष्णादिरीत्या मलमासीयामावास्याया भाद्रीयामावास्यात्वात् न भाद्रोल्लेखासङ्गतिरिति । आश्विनशुक्लप्रतिपन्मृतस्याग्रिमभाद्रस्य मलमासत्त्वे तु एकादशमासिककालाभ्यन्तरे मलमासपातात्तत्र मासिकवृद्ध्यावश्यकत्वादग्रे आश्विनशुक्लप्रतिपद्येव प्रथमवार्षिकम्। एवम् आश्विनशुक्लद्वितीयादिपूर्णिमान्ते मृते अग्रिमभाद्रस्य मलमासत्त्वेऽपि एकादशमासिककालाभ्यन्तर एव मलमासपातात् । तत्र तत्रापि मासिकवृद्ध्या आश्विनशुक्लद्वितीयादिमरणतिथावेव वार्षिकमित्यवगन्तव्यम् इति सर्वं सुस्थम् ।

मलमासे यो म्रियते तस्यापि पञ्चदशमासिकानि भवन्तीति रुद्रधरः । तेन तत्रापि सप्तदशश्राद्धमेव भवति, त्रयोदशेमासिमरणपक्षतिथौ वार्षिकम् । एतावत्समुदायार्थपर्यालोचनयाऽयमर्थः पर्यवसितः । एकादशमासिककालाभ्यन्तरे मलमासे सम्भाव्यमाने सप्तदशश्राद्धं सङ्कल्प्य कर्तव्यम् । त्रयोदशे मासि शुद्धेऽग्रिमवर्षीय तन्मासे मरणतिथौ वार्षिकम् । द्वादशमासस्य मलमासत्त्वे तु न मासिकवृद्धिः, तेन षोडशश्राद्धमेव, तत्र प्रथमवार्षिकं मलमास एव क्षयाहे द्वादशे मासि, तत्र शुक्लादिमासपरिग्रहेण उत्तरमासीयकृष्णपक्षस्य पूर्वमासीयकृष्णपक्षत्वान्मासोल्लेखासङ्गतिरपि नास्ति द्वितीयादिवार्षिकं तु मलमासपाते सर्वदैव त्रयोदशे मासि क्षयाहे ।

प्रथकवैशाखशुक्लपक्षमृतद्वितीयवैशाखकृष्णपक्षमृतयोः मासिकवृद्ध्यावश्यकत्वात् तत्र तन्मरणपक्ष एव वार्षिकम् व्युत्क्रमेण वार्षिकमकिञ्चित्करं इति व्रतपद्धत्यादिसंमतो व्यवहारसिद्धश्च पन्थाः ।

गोकुलनाथोपाध्यायास्तु—"संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासपातः स्यात्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्द्धयेदिति । विष्णुसूत्रेऽधिमासपातशब्देन पौर्णमास्यन्तक्षणप्रतिपदाद्यक्षणोभयघटितलवेन सह मध्यमचिन्हसम्बन्धो विवक्षणीयः। तथा सत्येवाधिमाससम्बन्धो व्यवहरणीयो न तु पूर्वापरचिन्हमात्रेण । अन्यथा विष्णुसूत्रस्थपातपदोपादानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । अत एव 'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते इत्यादि लघुहारीतवचने व्यावर्तकस्य मध्यमचिन्हस्याभिधानमपि सङ्गच्छते । एतेनैषमी द्वितीयभाद्रकृष्णपक्षे मृतस्याग्रिमवर्षे आश्विनकृष्णपक्षे प्रथमाब्दिके प्रसज्येत इति मासोल्लेखासङ्गतिरिति परास्तम् । कृष्णपक्षस्य तस्य संवत्सराभ्यन्तरे निरुक्तमध्यमचिन्हसम्बन्धात्मकाधिमासपाताभावात् । अत एव मलमासशुक्लपक्षमृतानामेव मासिकवृद्धिः । न तु मलमासकृष्णपक्षमृताननामपीति । एवं

चाश्विनकृष्णपक्षमृतस्याग्रिमभाद्रस्य मलमासत्त्वे सम्वत्सराभ्यन्तरे निरुक्ताधिमासपातादाश्विनकृष्णपक्ष एव प्रथमाब्दिकम् न तु द्वितीयभाद्रकृष्णपक्षे इति न मासोल्लेखासङ्गतिर्न वा विष्णुसूत्रस्थसंवत्सरपदस्यैकादशमासिककालोपलक्षकत्व''मिति प्राहुरित्येतद् विषयविस्तारो गोकुलनाथोपाध्यायकृतमासमीमांसायां द्रष्टव्यः ।

ज्योतिषे— 'प्रतिसम्वत्सरं श्राद्धमशौचात् पतितं च यत् ।
मलमासेऽपि कर्तव्यमिति भागुरिरब्रवीत् ।।'

तथा चाशौचे न साम्वत्सरिकश्राद्धप्रतिरोधेऽशौचान्ते मलमासेऽपि कर्तव्यमिति भावः ।

हिन्दी—मलमास में क्या करना चाहिए और क्या नहीं? इस विषय पर बृहस्पति के विचार—

प्रतिदिन लगातार किया जाने वाला आवश्यक कार्य जैसे दैनिक पञ्चयज्ञ और किसी निमित्त विशेष से नियमित रूप से होने वाला या किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर किया जाने वाला अनुष्ठान जैसे पर्वश्राद्धादि नियन्त्रित एवं पवित्र होकर मलमास में भी करना चाहिए । तीर्थ स्नान, चन्द्रसूर्यग्रहण निमित्तक श्राद्ध, मरणनिमित्तक स्नान, गर्भाधान संस्कार, सूद पर कर्ज देने का काम, मृत व्यक्ति निमित्तक पिण्डदानादि कर्म तथा समान पितरों के सम्मान में किया जाने वाला विशेष श्राद्धानुष्ठान में बुद्धिमान लोग अधिमासजन्य दोष नहीं मानते अर्थात् ये सभी कर्म मलमास में भी कर्त्तव्य है ।

'नित्यम्' का अर्थ है नित्य कर्म जैसे सन्ध्या, वन्दन प्रभृति, 'नैमित्तिक' का अर्थ है—किसी विशेष प्रयोजन के लिए किया गया कर्म, जैसे ग्रहण या शान्तिनिमित्तक किया गया कर्म स्नान आदि, तीर्थस्नानम् = दुबारा स्नान का पहला प्रत्यावर्तन, पहला प्रत्यावर्त्तन स्नान नहीं करने का विधान आगे शब्द प्रतिशब्द ही बतलाया जायेगा । गजच्छाया का अर्थ है रविचन्द्रग्रहणनिमित्तक श्राद्ध । प्रेतस्नानम् = मरणनिमित्तक स्नानादि । गर्भे = गर्भाधाननिमित्तक कर्मप्रभृति । वार्धुषिककृत्ये = सूद पर रुपये लगाने का काम, मृतानां पिण्डकर्मसु = पूरक प्रभृति पिण्डदानादिक कर्म, एकादशाह श्राद्ध आदि में अधिमास बाधक नहीं होता है । इन कर्मों में ये प्रतिरोधक कृत्य नहीं होते तथा ये सभी कर्म मलमास में भी करना चाहिए यही कहने का तात्पर्य है ।

बृहस्पति का कथन है—मलमास में अनावृत्त तीर्थ स्नान भी नहीं करना चाहिए । अनावृत्त का अर्थ है, पहला प्रत्यावर्त्तन या अधीत । ज्योतिष में लिखा है—

अग्नि की यथाविधि स्थापना और किसी देवमूर्त्ति की प्राणप्रतिष्ठा या उद्यापन, यज्ञ, धन एवं व्रत, धार्मिक व्रत, किसी की मृत्यु पर बछड़े को दाग कर और उसे साँड़ बनाकर छोड़ने की क्रिया, मुण्डन संस्कार, उपनयनसंस्कार, सौभाग्यसूचक राजतिलक, बावली (छोटा चौकोर जलाशय), कुआँ, तालाब प्रभृति तथा देवादि प्रतिष्ठा एवं यज्ञकर्म मलमास में छोड़ देना चाहिए ।

प्रतिष्ठा = उद्यापन, अथवा शिवादि की प्रतिष्ठा । मेखला = उपनयन, महादानम् = तुला पुरुषादि, दान ।

स्मृतिकार का वचन है—सपिण्डीकरण अर्थात् (किसी मृत व्यक्ति के उद्देश्य से किया जाने वाला श्राद्धविशेष कर्म) के बाद जो कुछ भी श्राद्ध सम्बन्धी इष्टा पूर्त यज्ञ सम्बन्धी अनुष्ठान हो उसे मलमास में नहीं करना चाहिए ।

श्राद्धिकम् = श्राद्धीय कर्म, इष्टं पूर्त्तं = इसके सम्बन्ध में रत्नाकर में जातूकर्ण ने कहा है—अग्निहोत्रम् (मन्त्रपूर्वक अग्निस्थापन करके सायं प्रात: नियम से किया जाने वाला होम) तप, सत्य, वेद वचनों का अनुपालन, अतिथिसत्कार, वैश्वदेव (भोजन करने वे पूर्व सब देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में दी हुई आहुति अथवा विश्वदेव के निमित्त बलि या आहुति) इष्ट कर्म कहलाता है । इसी तरह वापी, कुआँ, तड़ाग, देव मन्दिर का निर्माण, बाग बगीचे लगाना पूर्त्त कहलाता है ।

मरण दिन से लेकर ग्यारहवाँ मासिक श्राद्ध के भीतर यदि कोई मलमास होय तो एक मासिक बढ़ा देना चाहिए । उदाहरणस्वरूप विष्णुसूत्र में—वर्ष के भीतर यदि अधिमास का अवतरण हो तो मासिक के लिए एक दिन बढ़ा देना चाहिए । 'सम्वत्सराभ्यन्तरे' का तात्पर्य यह है कि ग्यारहवां मासिककाल के भीतर अर्थात् ग्यारहवाँ मासिक पूरे होने के दिन के अव्यवहितोत्तर अर्थात् व्यवधानरहित क्षयाहतिथि हो। जैसा कि—

उस के भीतर मलमास पात में सत्रह श्राद्ध संङ्कल्प होना चाहिए । तेरहवें महीने पूरे हो जाने पर क्षयाह के लिए वार्षिक होता है । यही इसका तात्पर्य है । यहाँ सम्वत्सर शब्द ग्यारह मास परक है । ऋष्यशृङ्ग के वचन की एकवाक्यता के बल से ऐसा द्वैतनिर्णय में कहा गया है ।

मरण दिन से प्रारम्भ कर बारह महीने के बाद मलमास होने पर मासिक की वृद्धि नहीं होती, इसीलिए मलमास ही क्षयाह में प्रथम वार्षिक माना गया है । उदाहरणस्वरूप ज्यौतिष में कहा गया है—'बालक के उत्पन्न होने के

समय किया जाने वाला संस्कारविशेष उसी तरह चौथे, पाँचवें, नवमें एवं ग्यारहवें दिन के श्राद्ध एवं प्रतिसम्वत्सर अर्थात् पहला वार्षिक श्राद्ध मलमास में भी करना चाहिए । इति ।

नवश्राद्धम् अर्थात् चौथे, पाँचवे, नवमें एवं ग्यारहवें दिन किये जाने वाले श्राद्ध । प्रति सम्वत्सर श्राद्धम् = पहला वार्षिक श्राद्ध । स्मृति का वचन असंक्रान्ति में भी पहला वार्षिक श्राद्ध करने को कहा गया है ।' असंक्रान्ते अर्थात् संक्रान्तिशून्य मलमास होता है ।

लघुहारीत का वचन है—प्रतिवर्ष बारहवें महीने में बुद्धिमान जनों को पिण्डक्रिया करनी चाहिए । कहीं–कहीं तेरहवें महीने में भी वर्ष का पहला महीना छोड़कर पिण्डक्रिया होती है ।

प्रत्यब्दम् = अर्थात् प्रतिवर्ष, पिण्डक्रिया = वार्षिक श्राद्ध कहीं कहीं ग्यारहवें महीने के भीतर मलमास पात होने पर ''वर्ष के प्रथम महीने को छोड़कर यह मरने के दिन से लेकर बारह महीने के मलमासत्त्व में मलमास ही बारहवें महीने में क्षयाह में प्रथम वार्षिक होता है, यही तात्पर्य है । न कि ऐसा कहने पर आश्विन कृष्ण अमावास्या में मरे लोगों का अगले भादो महीने में मलमास होने पर दूसरे भादों कृष्ण अमावास्या में ही उक्त रीति से पहला वार्षिक श्राद्ध होता है । उसका आश्वित्व के अभाव से ही हो होता है । भादो महीने के उल्लेख से ही आश्विन महीने का उल्लेख की असंगति का भ्रम होना चाहिए । शुक्लादि रीति से मरने की तिथि का कृष्णादि रीति से मलमासीय अमावास्या का भादवीय अमावास्यसत्त्व से भादव के उल्लेख तो अननुरक्त तो सिद्ध होते नहीं आश्विन शुक्ल परीवा में मरने वाले का अगले भादों के मलमास होने पर ग्यारहवें मासिक के भीतर मलमास होने से वहाँ एक मासिक की आवश्यक वृद्धि से अगले आश्विन शुक्ल परिवा में ही पहला वार्षिक श्राद्ध होगा । इसी तरह आश्विन शुक्ल द्वितीया से आश्विन पूर्णिमा तक मरने पर अगला भादों के मलमास होने पर भी ग्यारहवाँ महीने के भीतर ही मलमास होने पर वहाँ भी एक मासिक की वृद्धि होने से आश्विन शुक्ल द्वितीया प्रभृति मरणतिथि में ही वार्षिक श्राद्ध मानना चाहिए । इस तरह सब ठीक हो जाता है ।

मलमास में जो मरते हैं उनका भी पन्द्रह मासिक होते है ।' ऐसा रुद्रधर का विचार है । इससे ऐसी स्थिति में भी सत्रह श्राद्ध ही होता है । तेरहवें महीने में मरण पक्ष की तिथि में वार्षिक होता है । यहाँ तक समूहार्थ के पर्यालोचन से यह अर्थ स्पष्ट होता है—ग्यारहवें मासिक के भीतर मलमास

की संभावना में सत्रह श्राद्ध का संकल्प करना चाहिए । तेरहवें महीने में शुद्ध होने पर अगले वर्ष के उसी महीने के मरने की तिथि में वार्षिक श्राद्ध होता है। बारहवें महीने के मलमास में मासिक वृद्धि नहीं होती है । इससे सोलह श्राद्ध ही होता है; वहाँ पहला वार्षिक मलमास ही क्षयाह के बारहवें महीने में होता है । वहाँ शुक्लादि महीने मे ग्रहण से उत्तरमासीय कृष्णपक्ष का पूर्वमासीय कृष्णपक्ष से मासोल्लेख की असंगति भी नहीं होती है । द्वितीयादि वार्षिक तो मलमास होने पर सदैव तेरहवें महीने में ही क्षयाह होता है ।

प्रथम वैशाख शुक्ल पक्ष में मृत तथा द्वितीय वैशाख कृष्णपक्ष में मरे हुए की मासिक वृद्धि की आवश्यकता से उसके मरण पक्ष में ही वार्षिक श्राद्ध होता है । उलटा क्रम से वार्षिक अर्थहीन होता है । ऐसा व्रतपद्धति आदि सम्मत व्यवहार सिद्ध पन्थ है ।

गोकुलनाथ उपाध्याय के मत से—वर्ष के भीतर यदि अधिमास पात हो तो मासिक के लिए एक दिन बढ़ा देना चाहिए । विष्णुसूत्र में अधिमास पात शब्द से पूर्णिमा का अन्तिम क्षण और परिवा का प्रथम क्षण और उभयनिष्ठ क्षण के साथ मध्यम चिन्ह सम्बन्ध कहने के लिए अभिप्रेत समझना चाहिए तथा यथार्थतः अधिमास का सम्बन्ध आचरण में लाना चाहिए न कि पूर्वा पर अर्थात् अगला पिछला चिन्ह मात्र से नहीं तो विष्णु धर्म से 'पात' पद का ग्रहण करना व्यर्थ हो जायेगा । अतएव 'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते' इत्यादि लघुहारीत के वचन में जपवर्त्तन करने वाले मध्यम चिन्ह कहना भी सङ्गत हो जाता है । इससे उपस्थित वर्ष के द्वितीय भाद्रकृष्णपक्ष में मरे हुए के अगले वर्ष के आश्विन कृष्णपक्ष में प्रथम वार्षिक श्राद्ध होता है । इससे मासोल्लेख की असंगति कहने वाले पराजित होते हैं । कृष्णपक्ष का उसके वर्ष के भीतर में जो व्याख्या की गई है उसका मध्य मान कर सम्बन्धात्मक अधिमासपात का अभाव होगा । अतएव मलमास के शुक्लपक्ष में मरने वालों के लिए ही यह मासिक वृद्धि है । न कि कृष्ण पक्ष में मरने वालों के लिए भी । इस तरह आश्विन कृष्ण पक्ष में मरे लोगों के लिए अगला भादो के मलमासत्त्व में वर्ष के भीतर में कथित अधिमास पात से आश्विन कृष्ण पक्ष ही पहला वार्षिक होगा न कि दूसरे भादो कृष्ण पक्ष में । इस तरह व्याख्या करने पर मासोल्लेख की असंगति भी नहीं होगी । न कि विष्णु सूत्रस्थ संवत्सर पद का ग्यारह मासिक का लोप लक्षकत्व । ऐसा कहा गया है । इस पर विषय का विस्तृत वर्णन गोकुल नाथ उपाध्याय कृता माससमीमांसा में देखना चाहिए ।

ज्योतिष में—अशौच में यदि वार्षिक श्राद्ध पड़ जाय तो मलमास में भी करना चाहिए, यह भागुरि का वचन है । जैसे—

अशौच से वार्षिक श्राद्ध का प्रतिरोध होने पर भी अशौच समाप्त होने पर मलमास में भी वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए—यही तात्पर्य है ।

मैथिली—मलमास में की करवाक चाही एवं की नहि, अहि विषय पर बृहस्पतिक विचार—

पवित्र भऽ कें नित्यकर्म एवं मलमासो में करवाक चाही । तीर्थस्नान, रविचन्द्रग्रहण निमित्तक श्राद्ध, मरण निमित्तक स्नान, गर्भाधान संस्कार, सूद पर ऋण देवाक कार्य, मृतव्यक्तिनिमित्तक पिण्डदानादिक कर्म एवं सपिण्डी करण में बद्धिमान लोकनि अधिमास जन्य दोष नहि मानैत छथि ।

नित्यम् = सन्ध्यावन्दनादि, नैमित्तिकम् = ग्रहणशान्ति आदि निमित्तक स्नानादि तीर्थस्नानम् = द्वितीय स्नानक प्रथम प्रत्यावर्त्तन, प्रथम प्रत्यावर्त्तन स्नान नहि करवाक सम्बन्ध में अनुपद कहलगेल अछि । गजच्छाया = चन्द्रसूर्य ग्रहण निमित्तक श्राद्ध ई अर्थ भेल, प्रेत स्नानम् = मरणनिमित्तक स्नान । गर्भे = गर्भाधान निमित्तक कर्म, वार्द्धुषिकृत्ये = ऋण आदि देवाक कार्य, भूतानां पिण्डकर्मसु = पूरक आदि पिण्डदानादिकर्म, एकादशाह श्राद्ध आदि में अधिमासजन्य दोष नहि होयत अछि; अहिसब में मलमास प्रतिरोधक नहि होयत छैक अर्थात् बृहस्पतिक वचन अछि—'मलमास में अनावृत्त तीर्थस्नानो छोड़िदेवाक चाही' ।

अनावृत्तम् = अर्थात् प्रथम आवृत्त । ज्योति में कहलगेल अछि—अग्निक यथाविधि स्थापना, देव मूर्त्तिक प्राणप्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, एवं व्रत, देवता, निमित्तक व्रत, वृषोत्सर्गश्राद्ध, मुण्डन, यज्ञोपवीत, कोनो माङ्गलिक कृत्य, अभिषेक, वावली, कूप, पोखरि, कोनो उद्यापन, एवं यज्ञ कर्म मलमास में नहि करवाक चाही । प्रतिष्ठा = उद्यापन, किम्बा शिवादिक प्राणप्रतिष्ठा ; मेखला = उपनयन, महादानम् = तुलापुरुषादि दान । स्मृतिक वचन अछि—

सपिण्डीकरणक बाद जे किछु श्राद्ध सम्बन्धी यज्ञ वा अनुष्ठान हो ओ मलमास में नहि करवाक चाही ।

श्राद्धिकम् = श्राद्ध, इष्टं पूर्त्त च = रत्नाकर में ई दुहूशब्दक व्याख्या जातूकर्ण कयने छथि । यथा इष्टम्—अग्निहोत्र अर्थात् मन्त्रोच्चारपूर्वक अग्निक सथापनाकय नियमत = प्रतिदिन सायं प्रातः हवन, तप, सत्यवादन, वेदवचनक अनुपालन, अतिथि सत्कार एवं बलि वैश्व देव इष्टकर्म होयत अछि । अहिना—

छोट जलाशय, कूप, पोखरि, देवालय, अन्नदान एवं वाग बगीचाक लगय नाय पूर्त्त कहवैत अछि ।

मरणदिन सॅ लयके एकादश मासिक कालक भीतर यदि मलमासे हायत= एक मासिक बढादेवाक चाही । उदाहरणस्वरूप विष्णुसूत्रक वचन द्रष्टव्य— 'वर्षक भीतर यदि अधिमास भऽजाय तखन मासिक हेतु एक दिन बढा देवाक

चाही ।' सम्वत्सराभ्यन्तरेक अर्थ अछि ग्यारहम मासिक कालक अभ्यन्तरे, एकादश मासिक कालक तात्पर्य होयत अछि—मरण दिन सँ लऽक संकल्प होयत अछि । मरण तिथि सऽलऽके तेरहम मास पुरलाक वादेवार्षिक श्राद्ध होयत अछि एह तात्पर्य होयत अछि । अहिठाम सम्वत्सर शब्द ग्यारहमास बाद 'ई अर्थ ऋष्यशृङ्गक वचनक एकवाक्यताक वले द्वैतनिर्णयनुसार होयत अछि ।

मरणदिन सॅ लऽके बारहमासक मलमासत्त्व में मासिक वृद्धि नहि होयत अछि तॉयमलमास में क्षयाह में प्रथम वार्षिक होयत अछि । दृष्यन्त स्वरूप ज्योतिष में—

जातकर्म संस्कार विशेष, एवं चतुर्थ, पञ्चम, नवम एवं एकादशाहक श्राद्ध एवं प्रथम वार्षिक श्राद्ध मलमासो में करवाक चाही ।

नवश्राद्धम् = चतुर्थी, पञ्चम, नवम, एकादश दिनक श्राद्ध, प्रतिसम्वत्सर-श्राद्धम् = प्रथमवार्षिक श्राद्ध । स्मृतिक कथन—असंक्रान्तो में प्रथमवार्षिक श्राद्ध कर्त्तव्य होयत अछि ।'

असंक्रान्ते = संक्रान्ति शून्य मलमास में इति । लघुहारीतक कथन—बुद्धिमान लोकनि प्रतिवर्ष बारहम मास में पिण्डक्रिया करवाक चाही । कतौ वर्षक प्रथममास छोड़िकय तेरहममास में सेहो कहलगेल अछि ।

प्रत्यब्दम् = प्रतिवर्ष, पिण्डक्रिया = वार्षिक श्राद्ध, कतौ ग्यारह मासक समयक अभ्यन्तरे मलमास पात भेने पहिल छोड़ि के वर्ष' इति मरण दिन सँ लऽके बारहमासक मलमासत्त्व में मलमासे में वारहम मास में मरण दिन में प्रथमवार्षिक श्राद्ध होय एतवहि तात्पर्य भेल । यदि एजाभेने आश्विन कृष्ण अमावास्या में मृत व्यक्तिक अग्रिम भादकव मलमासत्त्व में द्वितीयभाद्र कृष्ण अमावास्ये में उक्त रीति सँ प्रथम वार्षिक श्राद्धभेल, मुदा ओकरा में आश्विनत्वक अभाव अछि, भादवक उल्लेख सँ आश्विनोल्लेखक अनुपयुक्तताक भ्रम होयवाक चाही । मुदा शुक्लादि रीति सँ मरणतिथिक कृष्णादि रीति सँ मलमासीय अमावास्याक भादवक अमावास्याख सँ भादवक उल्लेखक असम्बद्धता नहि सिद्ध होयत अछि । आश्विन शुक्ल परिवाक मरललोकनिक अग्रिम भादवक मलमासत्त्व में ग्यारहम मासिक कालक अभ्यन्तर भलमास पात भेने एक मासिकक वृद्धि आवश्यक भऽगेने आगुक आश्विन शुक्ल परिवेक दिन प्रथम वार्षिक श्राद्ध हैतैक । अही तरहे आश्विन शुक्ल द्वितीया सँ पूर्णिमा धरि मरललोकनिक आगे म भादवक मलमास भेलो उत्तर ग्यारह मासक अभ्यन्तरे मलमास भेने ओहठाम मासिक वृद्धि सँ आश्विन शुक्ल द्वितीयादि मरण तिथिय में वार्षिक श्राद्ध भेने सबकिछु स्पष्ट भजायत अछि ।

मलमास में जे व्यक्ति मरैत छथि पण्डित रुद्रधरक विचारे हुनको पन्द्रह मासिक होयतछैन्हि अहि सँ ओहठाम सत्रह श्राद्धे होयत अछि । तेरहन मास में

मरणपक्ष एवं तिथि में वार्षिक श्राद्ध होयत अछि । सम्पूर्ण समुदाय अर्थक पर्यालोचन से एतवहि निश्चित होयत अछि कि ग्यारह मासक अभ्यन्तरे मलमासक संभावना में सत्रहश्राद्धक संकल्प करवाक चाही । तेरहम मास में शुद्धभेला पर अगिला वर्षक मे ही मास में मरण तिथि में वार्षिक श्राद्ध होयत । बारह मासक मलमासत्त्व में मासिक बृद्धि नहि हैत, तें सोलहे श्राद्धभेल, एहन स्थिति में पहिल वार्षिक श्राद्ध मलमासे में क्षयाहक दिन बारहम मास में भऽ जायत, ताहिठाम शुक्लादि मासक स्वीकृति सँ तदुत्तर मासीय कृष्णपक्षक पूर्वमासीय कृष्ण पक्षत्व सॅं मासोल्लेखक अनुपयुक्त तो सिद्ध नहि होयत अछि । द्वितीयादि वार्षिक श्राद्धतऽ मलमास भेलो उत्तर सर्वदा तेरहम मास में मरणदिन में वार्षिक श्राद्ध होयते छैक । प्रथम वैशाखशुक्लपक्ष एवं द्वितीय वैशाखकृष्णपक्ष में मृत व्यक्तिक मासिक वृद्धिक आवश्यकतावश मृत्यु आहिपा में होय ताही पक्ष में वार्षिक श्राद्ध होयत छैक, एकरा में व्यतिक्रम भेने, वार्षिक श्राद्ध कयने किदु फल नहि । ई व्रत पद्धति प्रभृतिक सम्मति अछि एवं मिथिलाक व्यवहारो सेह अछि ।

गोकुलनाथ उपाध्यायक कथन छैन्हि—'वर्षक भीतर यदि अधिमास भऽजाय तखन सहन स्थिति में मासिकलेल एक दिन बढा देवाक चाही ।' विष्णुसूत्रो में 'अधिमासपात' शब्द सँ पूर्णिमाक अन्तिम क्षण तथा परिवाक प्रारम्भिक क्षण, उभयनिष्ठक्षताक साथ मध्यवर्त्ती चिन्ह सम्बन्धक विचार करवाक चाही । एहने भेला पर 'अधिमासक' सम्बन्ध व्यवहार योग्य होयत अछि न कि पूर्वापर चिन्हमात्रे सॅं; अन्यथा विष्णुसूत्र में 'पात' पदक ग्रहण करवाक उपयोगिता व्यर्थ भऽजायत । अतएव 'इन्द्राग्नी यत्र हूयेते' इत्यादि लघु हारीतक वचन में पृथक् करोवाला मध्यमचिन्हक निरूपणोक सार्थकता सिद्ध होयत अछि । एकरा सँ वर्षक भीतर द्वितीय भाद्रकृष्ण पक्ष में मृत व्यक्तिक अगिला वर्ष आश्विन कृष्णपक्ष में पहिल वार्षिकक उपयोगिता अछि, तखन मासोल्लखक असङ्गतिक पक्षधर स्वत: परास्त छथि कियेक तॅऽ कृष्णपक्षक ओहि वर्षक अभ्यन्तरे जेकर पूर्व में व्याख्या कयल गेल अछि, मध्यमचिन्ह संबन्धात्मक अधिमास पातक अभाव में नहि हैत । अतएव मलमासत्त्व में कृष्णपक्ष में शुक्लपक्ष में मरल लोकनिक श्राद्धे में मासिक वृद्धि होयत अछि । न कि मलमासक कृष्णपक्ष में मृत व्यक्तिक । अहितरहे आश्विन कृष्ण पक्षक मृत व्यक्तिक अग्रिम भादवक मलमासत्त्व में वर्षक अभ्यन्तरे जेकर निर्वचन कयल गेल अछि, अधिमास पात भेने आश्विन कृष्ण पक्षे में प्रथम वार्षिक श्राद्ध हैत न कि द्वितीय भादवक कृष्ण पक्ष में, अहि तरहें मासोल्लेखक असंगति नहि होयत अछि आओर नहि विष्णु सूत्रस्थ सम्वत्सर पदक एकादश मासिक कालक बोध करयवाक चिन्ह कहलगेल अछि । अहि विषयक विस्तार गोकुलनाथ उपाध्याय कृत 'मासमीमांसा' में द्रष्टव्य अछि ।

ज्योतिषक वचन अछि—अशौचान्तर्गत जे प्रतिवार्षिक श्राद्ध पड़य से मलमासो में करवाक चाही । ई भागुरि कहने छथि । जेना कि अशौच सॅं

साम्वत्सरिक श्राद्धक प्रतिरोध भेने अशौचान्त भेला पर मलमासो में ई श्राद्ध कर्त्तव्य अछि ।

विमर्शः—अथ मलमासे कार्याकार्यनिरूपणे निर्णयसिन्धुधृत जाबालिवचनम्—

नित्यनैमित्तिके कुर्याद् श्राद्धं कुर्यान्मलिम्लुचे । तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचन ।।

अयं च काम्यनिषेध आरम्भसमाप्तिविषयः ।

असूर्यानाम ये मासा न तेषु मम संमतः ।
व्रतानां चैव यज्ञानां आरम्भश्च समापनम् ।। (असूर्याः = अधिकमासाः) ।

तत्रैव कर्त्तव्यान्युक्तानि कालादर्शे—

द्वादशाह सपिण्डान्तं कर्म, ग्रहण जन्मनोः ।
सीमन्ते पुंसवने श्राद्धं, द्वावेतौ, जातकर्म च ।।
रोगशान्तिरणप्येत्त योगे श्राद्धं व्रतानि च ।
प्रायश्चित्तं निमित्तस्य वशात्पूर्वे रम वा ।।
अब्दोदकुम्भमन्वादि महालय युगादिषु ।
श्राद्धं दर्शेप्यहरहः श्राद्धमूलादि मासिकम् ।।
मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् ।
श्राद्धन्तु पूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेतं युगादिषु ।।
मन्वादिषु यद्दानं दानं दैनन्दिनञ्च यत् ।
तिलगोभूहिरण्यानां संध्योपासनयोः क्रिया ।।
पर्वहोमश्चाग्नयता साग्नेरिष्टिश्च पर्वणि ।
नित्याग्नि होमं होमश्च देवतातिथिपूजनम् ।।
स्नानञ्च स्नानविधिनाप्यभक्ष्या पेयवर्जनम् ।
तर्पणं च निमित्तश्च नित्यत्वादुभयत्र च ।। इति ।

तत्रैव मलमासे वर्ज्यान्युक्तानि कालादर्शे—

अनित्यमनिमित्तं च दानं च महदादिकम् ।
अग्न्याधानाध्वरापूर्व तीर्थयात्रामरेक्षणम् ।।
देवारामतडागादि प्रतिष्ठामौञ्जिवन्धनम् ।
आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः ।।
राजाभिषेकः प्रथमश्चूडाकर्मव्रतानि च ।
अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणाञ्च प्रवेशनम् ।।
स्नानं विवाहो नामातिपत्रं देवमहोत्सवः ।
व्रतारम्भसमाप्ती चाकाम्यं च पाप्मनाम् ।।
प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत् ।
उपाकर्मोत्सर्जनश्च पवित्रदमनार्पणम् ।।

अवरोहश्च हैमन्त: सर्पाणां बलिरष्टका: ।
ईशानस्य बलिर्विष्णो: शयनं परिवर्त्तनम् ।।
दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिन: ।
पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम् ।।

दिवोदासीयेऽपि—यात्रोत्सवं च देवादिशपथं दिव्यमेव च ।
मलमासे न कुर्वीत व्यासस्य वचनं यथा ।।

अयं निर्णय: क्षयमासेऽपि ज्ञेय:—

'रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यविधिस्मृत: ।
स एव तु द्विसंक्रान्ते मलमासेप्युदीरितम् ।। इति काठकगृह्योक्ते: ।'

गजच्छायेति चन्द्रसूर्यनिमित्तकश्राद्धम् । कल्पतरुप्रभृतौ निबन्धे या गजच्छाया परिभाषिता सेह न संभवतीति । अस्मिन् विषये कृत्यशिरोमणिधृत वाराहवचनम् ।

'गजच्छायेति—सैहिकेयो यदा भानुं ग्रसते पर्वसन्धिषु ।
गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ।।

अत्र गजच्छायेत्यनेन ग्रहणनिमित्तकश्राद्धम्, न हि योगविशेषनिमित्तकश्राद्धमिति भाव: । पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकश्राद्धविषये कृत्यशिरोमणिधृत सत्यव्रतवचनम्—

वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।

मलमासे न तत्कार्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा । तत्र पैठीनसिवचनम्—

मलमासे मृतानां तु श्राद्धे यत्प्रतिवत्सरं ।
मलमासेऽपि कर्त्तव्यं नान्येषां तु कथंचन ।। इति ।

यत्तु वृद्धवशिष्ठ:—श्राद्धीयाहनि सम्प्राप्ते मलमासो भवेद्यदि ।
मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति ।।

यमश्च—आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे ।
त्रयोदशे च सम्प्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ।।

व्यासेन वार्षिकतिथिलक्षणं निम्नप्रकारेणोक्तम्—

'मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि ।
प्रत्यब्दं तु तथा भूतं क्षयाहं तस्य तद्विदु: ।।'

तथा च स्मृतौ— 'यन्मसि यद्बले यस्यां तिथौ यो हि मृतो भवेत् ।
तन्मासि तद्बले तस्यां तिथौ तद्वार्षिकं स्मृतम् ।।'

अनेन वचनेनैकादशमासिकपूर्त्तिस्तु मृतमासात् द्वादशे मासि भवति, द्वादश मासपूर्त्तिस्तु मृतमासात् त्रयोदशेऽग्रिमवर्षीय मृतमासे क्षयाहे भवति । तत्राग्रिमाब्दीयमृत-मासास्य मलमासत्त्वे मासिकवृद्धिकरणेन मृतमासादग्रिममासीयक्षयतिथौ वार्षिकं श्राद्धं भवति, तेन प्रथमवार्षिकं मलमासे एवेति भवत्येवेति निर्णय: ।

अथ एकोद्दिष्टश्राद्धनिर्णयः

ऋष्यशृङ्गः—'देयं पितॄणां श्राद्धं वै अशौचं जायते यदि ।
अशौचे तु व्यतीते वै तेषां श्राद्धं प्रदीयते ।।'

अशौचे प्रयत्नानपनेऽयम् अन्यस्य श्राद्धदिनं शौचविधिना निरासात् इति पितृभक्तिः । यद्यपि पितॄणामिति बहुवचनं तथापि मृताहश्राद्धविषयमिति सम्प्रदायः । अशौचान्ते कुत्र कर्तव्यमित्याकाङ्क्षयामाह श्रीदत्तः—

'शुचीभूतेन दातव्या या तिथिः प्रतिपद्यते ।
सा तिथिस्तत्र कर्तव्या न त्वन्या वै कदाचन ।।' इति ।

तथा चाशौचान्तद्वितीयदिने श्राद्धं कर्तव्यम् । एकभुक्तादिनियमस्तु अशौचान्तिमदिने एव, तत्राशौचस्यातन्त्रत्वात् एकादशाहश्राद्धवत् । एवं चाशौचान्तद्वितीयदिने या तिथिः प्राप्यते तदुल्लेख एव सङ्कल्पवाक्ये कर्तव्यः, न तु क्षयाहतिथेः । 'या तिथिः प्रतिपद्यते' इति प्रागुक्तात् । अत्र सङ्कल्पमाह द्वैतपरिशिष्टे—ॐ अद्येत्यादि क्षयाहे प्रतिबन्धकाशौचव्यपगमे अमुकगोत्रस्य पितरमुकशर्मण इत्यादि ।

रजोयोगेन श्राद्धप्रतिरोधो रजोयोगात् पञ्चमदिने स्त्रिया श्राद्धं कर्तव्यम् ।

'दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुध्यति ।'

इति वचनात् सङ्कल्पस्तत्रापि पूर्ववत् ।

क्षयाहाज्ञानविस्मरणरूपप्रतिबन्धेन क्षयाहे श्राद्धाकरणे श्राद्धकालमाह लघुहारीतः—

श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने क्षयाहेऽविदिते तथा ।
एकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः ।।

मृताहाज्ञाने आह प्रचेताः—अविज्ञाते मृताहे अमावास्यायां श्रवणदिवसे वा श्राद्धं कर्त्तव्यमिति शेषः । पितृभक्तौ श्रीदत्तस्तु मृताहविशेषं ज्ञानत एवाद्य मृताह इति विस्मरणं श्राद्धविघ्नमेव बोद्धव्यम् ।

अयमर्थः—विस्मृतश्राद्धमेकादश्यामेव कर्तव्यम् । अज्ञातमृताहश्राद्धं त्वेकादश्याममावास्यायां श्रवणदिवसे वेति विशेषः ।

प्रागुक्तहारीतप्रचेतो वचनेऽभिधाय श्राद्धचिन्तामणिः 'यस्मिन्दिने देशान्तरमृतः श्रयते स एव श्रवणदिवसः, अत्र एकादश्यमावास्ये विघ्ननिमित्ताव्यवहिते ग्राह्ये । मासज्ञाने तु सांवत्सरिके कर्त्तव्ये तन्मासस्यैव एकादश्यादौ । मासपक्षयोरज्ञाने यत्र मासि श्रूयते तस्यैव । एवं च मृताहविस्मरणेऽप्येकादश्यामेव क्षयाहस्याविदितत्त्वादिति ।

तदयं संक्षेप:—श्राद्धविघ्न एकादश्यां (आसन्नाग्रिमायामित्यर्थ:)। तिथ्यज्ञाने तत्पक्षज्ञाने तत्पक्षैकादश्यां तिथिपक्षयोरज्ञाने तन्मासस्यैकादश्याममावास्यायां वा। एषामज्ञाने यस्यां तिथौ मृत: श्रूयते तस्यामेव तत्तिथेरपि। विस्मरणे तन्मासस्यैकादश्याममावास्यायां वा एकोद्दिष्टम्। श्रवणमासस्यापि विस्मरणे न कार्यं मानाभावादिति।

शुद्धिचन्द्रिकायां रघुपतिमिश्रस्तु श्राद्धविघ्ने क्षयाहे दैवादकरणे क्षयाहाज्ञाने च एकादश्यां कर्त्तव्यम्। पक्षज्ञाने कृष्णपक्षे कर्त्तव्यमित्यर्थ:। मासाज्ञाने चैत्रे इदं तु एकोद्दिष्टश्राद्धपरमन्यथा आद्यश्राद्धाकरणैकादश्यां तत्कृत्वा पूत: स्यात्, कथमन्यथा गयाश्राद्धं बिना तस्य पातित्यमिति प्रागुक्तहारीतप्रचेतो वचनेऽभिधाय स्मृतिसारे तु अत्र च मृताहाज्ञानमद्यमृताह इति विस्मरणं श्राद्धविघ्नमेव बोद्धव्यम्। अविदित इति विस्मरणमपि गृहीतं तस्याप्यज्ञानरूपत्वात्। प्रचेतोवाक्ये तु श्रवण इत्यभिधानात्तिथिविशेष ज्ञानमेव विवक्षितमिति। विष्णुपुराणे तु—

'चतुर्दश्यष्टमी षष्ठी अमावास्याऽथ पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥
तैलस्त्रीमांससम्भोगी पर्वस्वेतेषु वै पुमान्।
विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरके मृत:॥'

अत्र तैलं तिलभवम्। तेन सार्षपादितैले पक्वतैले च न दोष इति व्रतपद्धतौ रुद्रधर:॥

हिन्दी—किसी एक मृत व्यक्ति के उद्देश्य से किये गये श्राद्ध आदि का निर्णय—पितर निमित्तक देय श्राद्ध के बीच यदि अशौच हो जाय तो अशौच काल बीत जाने पर उनका श्राद्ध करना चाहिए।

अशौचकाल को प्रयासपूर्वक निकल जाने देना चाहिए। दूसरे दिन अशौच विधि से इसका निराकरण हो जाता है। यह पितृभक्ति का वचन है। यद्यपि ऊपर के श्लोक में 'पितृणाम्' बहुवचन का प्रयोग किया गया है तथापि मृत व्यक्ति के मरण दिन श्राद्ध विषय का ही बोध कराता है—ऐसी ही सम्प्रदायगत मान्यता है। अशौचान्त में श्राद्ध कहाँ करना चाहिए—ऐसी आकांक्षा का उत्तर श्रीदत्त ने दिया है—

पवित्र होकर, मरने की जो तिथि हो उसी तिथि में श्राद्ध करना चहिए। दूसरी तिथि में कभी श्राद्ध नहीं करना चाहिए।

जैसा कि अशौचान्त के दूसरे दिन श्राद्ध करना चाहिए। एक भुक्त आदि के नियम अशौच के अन्तिम दिन में करना चाहिए। उस अवसर पर

अशौच का अनवच्छिन्न वंश परम्परा होने के कारण एकादशाह श्राद्ध की तरह ही यह भी होता है । इस तरह अशौचान्त के दूसरे दिन जो तिथि पड़ती हो संकल्प में उसका उल्लेख करना चाहिए न कि मरण दिन का उल्लेख करना चाहिए । जो तिथि पड़ती हो, इसका पहले उल्लेख किया जा चुका है । इसका सङ्कल्प द्वैतपरिशिष्ट में इस तरह है—ऊँ अद्य इत्यादि मरणतिथि प्रतिबन्धक अशौच काल बीत जाने पर अमुक गोत्र के पिता अमुक शर्मा इत्यादि ।

श्राद्ध प्रतिरोधक स्त्रियों के मासिक रजस्राव के कारण रजोयोग के पाँचवे दिन स्त्रियों को श्राद्ध करना चाहिए—

''देवकर्म एवं पितृकर्म में स्त्रियाँ पाँचवे दिन शुद्ध होती हैं ।''

इसी वचन के अनुसार । यहाँ भी सङ्कल्प पहले की तरह ही होता है । मरण दिन का सही पता नहीं चलने पर या भूल जाने पर क्षयाह का अवरोध होता है । ऐसी स्थिति में लघुहारीत ने श्राद्ध कब करना चाहिए, इसका निर्णय दिया है ।

श्राद्ध करने में किसी तरह का यदि विघ्न उपस्थित हो जाय और यदि मरण दिन अज्ञात हो तो खाशकर कृष्ण पक्ष की एकादशी तिथि में एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए मरण दिन का ज्ञान नहीं रहने पर प्रचेता ने कहा है—'मरण दिन यदि अविज्ञात हो तो अमावास्या तिथि एवं सुने सुनाये दिन में एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए ।

पितृभक्ति में श्रीदत्त ने कहा है—मरण दिन विशेष को जानते हुए भी यदि मरण दिन क्या है? यह भूल जाय तो इसे श्राद्ध विघ्न ही जानना चाहिए । इसका अर्थ यह हुआ मरण दिन भूल जाने पर अर्थात् अज्ञात मृताह में एकादशी में ही श्राद्ध करना चाहिए । अज्ञात मरण दिन की स्थिति में एकादशी, अमावास्या अथवा सुने सुनाये दिन में श्राद्ध करना चाहिए ।

पहले कहे गये हारीत एवं प्रचेता के वचन को ध्यान में रखकर श्राद्धचिन्तामणि में लिखा है—अन्य देश में जिसकी मृत्यु हो, उसका जो भी मरण दिन सुने वही सुने सुनाये दिन श्राद्ध दिवस होना चाहिए । यहाँ विघ्न निमित्तक किसी तरह की बाधा उपस्थित होने पर एकादशी अथवा अमावास्या ही श्राद्ध दिवस ग्रहण करना चाहिए । मृत महीने का सही ज्ञान होने पर वार्षिक श्राद्ध उसी महीने के एकादशी प्रभृति तिथियों में करना चाहिए । मरण का पक्ष या महीने भूल जाने पर जो महीने सुना जाय उसी महीने में श्राद्ध

करना चाहिए । इसी तरह मरण दिन भूल जाने पर एकादशी को ही क्षयाह भूल जाने पर श्राद्ध करना चाहिए । इसका संक्षेप कथन यह हुआ—

श्राद्ध विघ्न उपस्थित होने पर एकादशी दिन श्राद्ध करना चाहिए । (तात्पर्य यह कि अगले समीपवर्ती एकादशी में) पक्ष याद हो पर तिथि भूल जाने पर जो पक्ष याद हो, उसी पक्ष की एकादशी तिथि में श्राद्ध करना चाहिए । फिर तिथि और पक्ष दोनों भूल जाने पर उसी महीने की एकादशी या अमावस्या में श्राद्ध करना चाहिए । इन सबों को भूल जाने पर जिस तिथि को मरा है सुना जाय, उसी तिथि को, वह तिथि भी भूल जाने पर उसी महीने की एकादशी तिथि में, अथवा अमावास्या में एकोदि्दष्ट श्राद्ध करना चाहिए । मरण महीने भी भूल जाने पर प्रमाण के अभाव में नहीं करना चाहिए ।

शुद्धिचन्द्रिका में रघुपतिमिश्र ने कहा है—श्राद्ध विघ्न होने पर, क्षयाह में किसी कारण से छूट जाने पर, या मरण दिन का पता नहीं चलने पर एकादशी में ही एकोद्दिष्ट करना चाहिए । पक्ष भूल जाने पर कृष्ण पक्ष में करना चाहिए । यही अर्थ है । महीना भूलने पर चैत में, ये तो एकोद्दिष्ट श्राद्ध परक हुआ, नहीं तो प्रथम श्राद्ध नहीं करने पर एकादशी में वह श्राद्ध कर पवित्र होना चाहिए । अन्यथा गयाश्राद्धके बिना वह पतित माना जायेगा । पहले कथित हारीत एवं प्रचेता के वचन को ध्यान में रखकर स्मृतिसार में कहा गया है—यहाँ मृत दिवस की अनभिज्ञता, या किस दिन मरा है इसे भूल जाना श्राद्ध विघ्न ही समझना चाहिए । अनजान या विस्मरण ये भी अज्ञान रूप ही है । प्रचेता के वचन में तो 'सुनना' इस कथन से तिथि विशेष सम्बन्धी अज्ञान ही तो विवक्षित है ।

विष्णुपुराण में तो—हे राजन् चतुर्दशी, अष्टमी, षष्ठी, अमावास्या और पूर्णिमा, ये तिथियाँ तो पर्व हैं ये सूर्य संक्रान्ति भी हैं । इनमें तेल, स्त्रीसंसर्ग, मांसभक्षण जो पुरुष करते है वे विष्ठा एवं मूत्र भोजन करते है । और मरने पर नरकगामी होते हैं ।

यहाँ तैल पद से तिल का तेल ही विवक्षित है । सरसों का तेल या अन्य आज्य तेल के उपयोग में कोई दोष नहीं है । ऐसा व्रतपद्धति में रुद्रधर का मत है ।

मैथिली—(एकोद्दिष्टश्राद्धक निर्णय) पितर निमित्तक देय श्राद्धक बीच यदि अशौच भऽ जाय तऽ निश्चित रूप सँ अशौच समाप्त भेलाक उपरान्त श्राद्ध करवाक चाही । प्रयत्नपूर्वक अशौच काल कें बिता देवाक चाही । आम दिन अशौच तिथि सँ एकर स्वतः निराकरण भऽ जायत छैक ई पितृभक्ति में कहलगेल

अछि । यद्यपि 'पितृणां' ई पद बहुवचनान्त अछि तथापि सम्प्रदायानुंसार एक व्यक्ति मरण दिन परक श्राद्धे बुझल जायत अछि । अशौचान्त में श्राद्ध कोन वा कतय करवाक चाही, अहि जिज्ञासाक उत्तर श्रीदत्त दैत छथि—

व्यक्तिक जे मरण तिथि हो ताही तिथि में ओहि व्यक्तिक श्राद्ध पवित्र भऽ के करवाक चाही । कोनो दोसर तिथि में श्राद्ध नहि करवाक चाही । कोनो दोसर तिथि में कदापि नहि ।

जेना कि अशौचान्तक दोसर दिन श्राद्ध करवाक चाही । किन्तु, एक भुक्तादि नियम अशौचक अन्तिमें दिन कयलेवाक चाही । ताहिठाम अशौच कोनो नियमक अधीन नहि होयत अछि तें एकादशाह श्राद्धज कँ एकोद्दिष्ट श्राद्ध सेहो करवाक चाही । अहितरहें, अशौचान्तक दोसर दिन जे तिथि होय सङ्कल्प वाक्य में ओकरे उल्लेख करवाक चाही, क्षयाहक उल्लेख सङ्कल्प वाक्य में नहि हयवाक चाही । अहि सँ पूर्व कहलगेल अछि—'या तिथिः प्रतिपद्यते' ।

द्वैतपरिशिष्ट में एकर सङ्कल्प एना कहलगेल अछि—ऊँ अद्य इत्यादि क्षयाह प्रतिबन्धक अशौच निकलवाकबाद अमुक गोत्रक पिता अमुक शर्माक इत्यादि श्राद्ध करनिहारि यदि नारी होयथि तथा ओ रजस्वला भऽ आथि तऽ रजोयोगक पाँचम दिन एकोद्दिष्ट करवाक चाही—

'देव कर्म एवं पितृकर्मकलेल रजस्वला पाँचम दिन शुद्ध होयत छथि ।' एहनवचन छैक, अहूठाम पूर्वे जका सङ्कल्प करवाक चाही—

मरण दिनक विस्मरण रूप प्रतिबन्ध उपस्थित भेने क्षयाह में श्राद्ध नहि कयने श्राद्ध कालक निर्णय लघुहारीतक शब्द में—

'श्राद्धविघ्न उपस्थित भेला उत्तर तथा क्षयाह विसरिगेला पर विशेषरूप सँ कृष्णपक्षक एकादशी तिथि में एकोदिष्टश्राद्ध करवाक चाही ।'

मरणदिन विसरलाक सम्बन्ध में प्रचेता कहने छथि—क्षयाह यदि अविज्ञात होय तऽ अमावास्या तिथि में अथवा सुनल सुनावल दिन में श्राद्ध करवाक चाही । पितृभक्ति में श्री दत्तजीक कथन छैन्हि—

कोनो व्यक्तिक मरण दिन जानलाक बादो यदि ओ क्षयाह विसरि जाय तऽ ई विस्मरणो श्राद्धुकविघ्ने बुझवाक चाही । एकर अर्थ ई भेल, विसरण क्षयाह एकादशीये में करवाक चाही । अविदित क्षयाहक श्राद्ध एकादशी, अमावास्या अथवा सुनल दिन में करवाक चाही ।

पूर्वोक्त हारीत एवं प्रचेताक वचन के ध्यान में राखि श्राद्धचिन्तामणि में लिखलगेल अछि—देशान्तर में मृत व्यक्तिक देहावसानक जे दिन सुनल जाय सेह सुनल दिन, अहिठाम एकादशी एवं अमावास्या में विघ्न निमित्तक अव्यवहिते ग्राह्य होयत अछि । मासक ज्ञान रहला उत्तर वार्षिक श्राद्ध ओही मासक एकादशी प्रभृति तिथि में करवाक चाही ।

यदि मास एवं पक्षक ज्ञान नहि रहय तऽ जे मास सुनल जाय ताही मास में श्राद्ध करवाक चाही । अहिना मरण दिनोंक विस्मरण भेने एकादशी तिथियो में श्राद्ध करवाक चाही ।

एकर संक्षेप ई भेल—श्राद्धविद्धा एकादशी अर्थात् (समीपवर्त्ती आगुक) यदि तिथिक ज्ञान नहि होय मुदा पक्ष ज्ञान होय तखन ज्ञात पक्षक एकादशी तिथि में श्राद्ध करवाक चाही । यदि तिथि एवं पक्ष दुहू अविदित होय तखन ज्ञात मासक एकादशी अथवा अमावास्या में एकोद्दिष्ट श्राद्ध करवाक चाही । यदि तिथि मास एवं दिन सभटा विसरि जाय तखन जाहि तिथि में मृत सुनल जाय ताही तिथि में श्राद्ध करी यदि ताहु तिथिक ज्ञान कोने तरहो नहि होय तखन ताहि मासक एकादशी वा अमावास्या में एकोद्दिष्ट करवाक चाही । सुनलोमास यदि विसरि जाय तखन प्रमाणक अभाव में नहि करवाक चाही ।

शुद्धिचन्द्रिका में रघुपति मिश्रक कथन छैन्हि—श्राद्धविघ्न उपस्थित भेला उत्तर—दैव योगे क्षयाह नहि कय सकी, अथवा क्षयाहक विसरि गेने एकादशी में एकोद्दिष्ट कर्त्तव्य, पक्ष विसरने कृष्ण पक्ष में करवाक चाही, ई अर्थ भेल । मास विसरने चैत्र मास में, ई एकोद्दिष्ट श्राद्ध परक विचार भेल, अन्यथा आदि श्राद्ध विसरला उत्तर एकादशी तिथि में ओ श्राद्ध करि पवित्र भेला जा सकैत अछि, अन्यथा गया श्राद्ध करावे बिना ओ व्यक्ति पतित भऽ जाय । पूर्वोक्त हारीत एवं प्रचेताक वचन के ध्यान में राखि स्मृतिसार में लिखल गेल अछि मरण दिवसक विस्मरण भय गेने, ई विस्मरण के श्राद्धविघ्ने बुझवाक चाही । अज्ञातो एक तरहक विस्मरणे छैक कियैक तऽ ओहो अज्ञानेक रूप होयत छैक । प्रचेताक वचन में 'श्रवण'क निरूपण तिथि विशेषक अज्ञाने अपेक्षित अछि ।

विष्णुपुराण में—हे राजेन्द्र, चतुर्दशी, अष्टमी, षष्ठी, अमावास्या, पूर्णिमा, ई सभटा पर्व होयत अछि, ई रविक संक्रान्ति सेहो कहल जायत अछि । अहि तिथि में, तेल, स्त्री सम्पर्क, मांस भक्षण जे व्यक्ति अहि पर्व में करैत छथि, ओ विष्ठा एवं मूत्रक भक्षण करैत छथि । मरणोपरान्त ओ नरकगामी होयत छथि ।

अहिठाम तैल पद तिलतेलक द्योतक अछि, सरिसवक तेल एवं पक्व तेल एकरा सीमा में नहि आवैत अछि । ई विचार व्रत पद्धति में रुद्रधरजीक अछि ।

विमर्शः—एकोद्दिष्टश्राद्धलक्षणम्—कृत्यशिरोमणिधृतव्यासस्य वचनः—

एकमुद्दिश्य यत् श्राद्धं देवहीनं विधीयते ।
एकोद्दिष्टं तु तत्प्रोक्तं मध्याह्ने तत्प्रकीर्त्तितम् ।।
कुतुपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् ।
आवर्त्तनं समीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ।। इति ।

गौतमोऽपि— आरभ्य कुतुपे श्राद्धं कुर्यादारोहिणं बुधः ।
विधिज्ञो विधिमास्थाय रोहिणं न तु लङ्घयेत् ।।

अत्रैव शातातपः— रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राहोरन्यत्र दर्शनात् ।
सूर्योदयमुहूर्त्ते च सन्ध्याकाले तथैव च ।। इति ।

देवीपुराण—गरुड़पुराणयोः कथनानुसारेणैकोदिष्टाकरणे दोषो यथा तत्रैव—

पतिताज्ञानिनो वाऽपि मूर्खायोषित एव च ।
मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालाः प्रतिजन्मसु ।।
मृतेऽहनि पितुर्यस्तु न कुर्याच्छ्राद्धमादरात् ।
मातुश्चैव वरारोहे वत्सरान्ते मृतेऽहनि ।।
नाहं तस्य वरारोहे पूजां गृह्णामि नो हरिः ।
भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप ।।
मातापित्रोश्च सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि ।
स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः ।।

अथ जन्मदिनकृत्यम्

अत्र भोजराजः—'यो जन्ममासे क्षुरकर्मयात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते हि मोहात् ।
नूनं स रोगं धनपुत्रनाशं प्राप्नोति मूढो वधबन्धनानि।।
क्षुरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ।'

जन्ममासे उपनयनविधानात्तदङ्गसशिखवपने न दोष इति स्मार्ताः ।
श्रीपतिव्यवहारसमुच्चये—

'स्नानं दानं तपो विद्या सर्वमङ्गल्यवर्द्धनम् ।
उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते ।।

मङ्गल्यवर्द्धनमुपनयनादि । जन्मदिनकर्त्तव्यमाह—

'तिलोद्वर्ती तिलस्नायी तिलहोता तिलप्रदः ।
तिलभुक् तिलवापी च षट्तिली नावसीदति ।।'

तथा च जन्मदिने तिलोद्वर्तनादि षट् करणीयम् ।

तत्राश्वत्थामाबलिव्यासहनुमद्विभीषणकृपपरशुरामजन्मनक्षत्रप्रजापतिमार्कण्डेयाः क्रमेण पूज्याः । ततो वरं प्रार्थयेत्—

'ॐ मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ।
चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ।।' इति ।

ततः समधुरदुग्धपानमनेन—

'ॐ सतिलं गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्द्धमितं पयः ।
मार्कण्डेय वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुषहेतवे ।।' इति ।

अस्मिन् दिने आमिषभोजनं मैथुनं क्षौराध्वगमनहिंसादिकं विवर्जयेत् ।।

हिन्दी—इस पर भोजराज का कथन—

जन्म महीने में जो मोहवश सिर मुंडवाते हैं, यात्रा करते हैं या कान छिदवाते हैं, निश्चय ही वे रोगी होते हैं, उनका धन एवं पुत्र नष्ट हो जाते हैं । ऐसे बेवकूफ कहीं न कहीं मारे जाते हैं, या कैदखाने में बन्द होते हैं ।

जन्म महीने या जन्म नक्षत्र में हजामत नहीं बनवाना चाहिए । जन्म महीने में उपनयन विधान से चोटी सहित माथे मुंडवाने पर कोई दोष नहीं लगता । यह स्मार्त्त वचन है । श्रीपति ने व्यवहारसमुच्चय में लिखा है—

स्नान, दान, तप, विद्याध्ययन, हर तरह के मङ्गलवर्धक यज्ञोपवीतादि कर्म और कुमारी कन्याओं का विवाह जन्म महीने में प्रशंसनीय माना जाता है । मङ्गलवर्द्धन का अर्थ उपनयनादि होता है । जन्मदिन में क्या करना चाहिए—

तिल का उबटन या तेल लगाना, तिल से स्नान करना, तिल से हवन करना, तिल देना, तिल खाना, तिल बोना—तिल के ये छः प्रयोग जन्म दिन में जो करते हैं वे कभी उत्पीड़ित नहीं होते हैं ।

जैसा कि जन्मदिन में तिल के ऊपर लिखित छः कर्म करना चाहिए ।

उस अवसर पर अश्वत्थामा, बलि, व्यासजी, हनुमानजी, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, जन्मनक्षत्र, ब्रह्माजी एवं मुनि मार्कण्डेय की क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।

तत्पश्चात् इनसे वरदान माँगे—

हे बड़े भाग्यशाली महामुनि मार्कण्डेय जी, सात महाप्रलय काल तक जीवित रहने वाले आप जैसे चिरंजीवी हैं उसी तरह मैं भी चिरंजीवी बनूँगा ।

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र के साथ सुमधुर दूध पीना चाहिए ।

अपनी लम्बी उम्र के लिए महामुनि मार्कण्डेय जी से वरदान पाकर मैं तिल के साथ गुड़ मिलाकर आधी अञ्जलि भर दूध पीता हूँ ।

जन्मदिन में मांसभक्षण, स्त्रीसहवास, हजामत, यात्रा, हिंसा आदि कर्म नहीं करना चाहिए ।

'ॐ सतिलं गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्द्धमितं पयः ।
मार्कण्डेय वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुषहेतवे ।।' इति ।

अस्मिन् दिने आमिषभोजनं मैथुनं क्षौराध्वगमनहिंसादिकं विवर्जयेत् ।।

हिन्दी—इस पर भोजराज का कथन—

जन्म महीने में जो मोहवश सिर मुंडवाते हैं, यात्रा करते हैं या कान छिदवाते हैं, निश्चय ही वे रोगी होते हैं, उनका धन एवं पुत्र नष्ट हो जाते हैं । ऐसे बेवकूफ कहीं न कहीं मारे जाते हैं, या कैदखाने में बन्द होते हैं ।

जन्म महीने या जन्म नक्षत्र में हजामत नहीं बनवाना चाहिए । जन्म महीने में उपनयन विधान से चोटी सहित माथे मुंडवाने पर कोई दोष नहीं लगता । यह स्मार्त्त वचन है । श्रीपति ने व्यवहारसमुच्चय में लिखा है—

स्नान, दान, तप, विद्याध्ययन, हर तरह के मङ्गलवर्धक यज्ञोपवीतादि कर्म और कुमारी कन्याओं का विवाह जन्म महीने में प्रशंसनीय माना जाता है । मङ्गलवर्द्धन का अर्थ उपनयनादि होता है । जन्मदिन में क्या करना चाहिए—

तिल का उबटन या तेल लगाना, तिल से स्नान करना, तिल से हवन करना, तिल देना, तिल खाना, तिल बोना—तिल के ये छः प्रयोग जन्म दिन में जो करते हैं वे कभी उत्पीड़ित नहीं होते हैं ।

जैसा कि जन्मदिन में तिल के ऊपर लिखित छः कर्म करना चाहिए ।

उस अवसर पर अश्वत्थामा, बलि, व्यासजी, हनुमानजी, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, जन्मनक्षत्र, ब्रह्माजी एवं मुनि मार्कण्डेय की क्रमशः पूजा करनी चाहिए ।

तत्पश्चात् इनसे वरदान माँगे—

हे बड़े भाग्यशाली महामुनि मार्कण्डेय जी, सात महाप्रलय काल तक जीवित रहने वाले आप जैसे चिरंजीवी हैं उसी तरह मैं भी चिरंजीवी बनूँगा ।

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र के साथ सुमधुर दूध पीना चाहिए ।

अपनी लम्बी उम्र के लिए महामुनि मार्कण्डेय जी से वरदान पाकर मैं तिल के साथ गुड़ मिलाकर आधी अञ्जलि भर दूध पीता हूँ ।

जन्मदिन में मांसभक्षण, स्त्रीसहवास, हजामत, यात्रा, हिंसा आदि कर्म नहीं करना चाहिए ।

मैथिली—अहि विषय पर भोजराजक वचन अछि—जन्म मास में जे व्यक्ति मोहवश क्षौरकर्म, यात्रा, कर्णवेध करवैत छथि निश्चित रूपेण ओ मूर्ख रोगी होयत छथि, हुनक धन एवं पुत्र विनष्ट भऽ जायत छैन्हि । हुनक क्यो हत्या कय दैत छन अथवा ओ कारागार में बन्द होयत छैथि ।

जन्ममास एवं जन्म नक्षत्र में क्षौरकर्म नहि करवाक चाहीं जन्ममास में यदि उपनयनक विधान होय तऽ ओकर अङ्गभूत शिखाक साथ माथ मुंडैवा में कोनो तरह दोष नहि होयत अछि । व्यवहार समुच्चय में श्रीपति लिखने छथि—

स्नान, दान, तप, विद्या, सभतरहक मंगलबर्द्धक उपनयनादि एवं कुमारी कन्याक विवाह जन्ममास में प्रशंसनीय होयत अछि । मङ्गलवर्धनक अर्थ होयत अछि उपनय वादिक कर्म । जन्म दिनक कर्त्तव्य बतौने छथि—

तिलक उद्वर्त्तन, तिल लऽके स्नान, तिलक होम, तिलदान, तिल भक्षण, तिलक वपन ई तिलक छः कर्म जे जन्म दिन में करैत छथि, हुनका कष्ट नहि होयत छन्हि ।

अहि तरहें जन्म दिन में तिलोद्वर्त्तनादि छः कर्म करवाक चाही । अहि अवसर पर अमावास्या, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, जन्म नक्षत्र, ब्रह्मा एवं मार्कण्डेयक क्रमशः पूजा करवाक चाही । तकरबाद निम्न लिखित वरदान मांगी ।

सात महा प्रलय धरि जीवन धारण करनिहार, धर्मात्मा ई मार्कण्डेय मुनि, जहिना अहाँ चिरंजीवी छी तहिना हम हूँ चिरजीवी होयत । इति । तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रेण सुमधुर दुग्धपान करी—

मुनि मार्कण्डेय सँ वर प्राप्त कय अपन आयुकलेल हम आधा आंजुर गुड़ एवं तिल मिलल दूध पिवैत छी । इति । जन्म दिन में मांस भक्षण, मैथुन, क्षौरकर्म, यात्रा एवं हिंसादि नहि करवाक चाही ।

विमर्शः—जन्मतिथिकृत्यम्—

छेदनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च ।
आमिषं संगरंहिंसा जन्मवृद्धौ विवर्जयेत् ।।

श्रीपतिव्यवहारनिर्णये—नवाम्बरधरो भूत्वा सुमनाश्च चिरायुषम् ।
द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धञ्चिरजीविनम् ।।
मार्कण्डेयं नरो भूत्वा पूजयेत् प्रयतः सदा ।
ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम् ।।
प्रह्लादं च हनूमन्तं विभीषणमथार्चयेत् ।
स्वनक्षत्रां जन्मतिथिं प्राप्य संपूजयेन्नरः ।
षष्ठीश्च दधिभक्तेन वर्षे वर्षे पुनः पुनः ।।

कृत्यकल्पलतायां क्षौरे वारफलम्—

मानं हन्ति गुरौ क्षौरं शुक्रे शुक्रं धनं रवौ ।
आयुरङ्गारके हन्ति हन्ति सर्वं शनैश्चरे ।।

दीपिकायाम्— कृतान्त कुजयोवरि यस्य जन्मतिथिर्भवेत् ।
अनृक्षयोग सम्प्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ।।

राजमार्तण्डे—देवकार्ये पितृश्राद्धं रवेरंशपरिक्षये ।
क्षुरकर्मं न कुर्वीत जन्ममासेऽथ जन्मभे ।।

गोपालभट्टीय तिथिनिर्णये—

स्वजन्मनां जन्मतिथिर्यदि स्यात् पूज्या तदा जन्मभसंयुता च ।
असंयुता भे नदिमद्वियेऽपि पूज्यापरा या भवतीह यत्नादिति ।।

वृद्धमनुः— मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।
अस्पृश्च स्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ।।

स्नात्वा जन्मदिने स्त्रियं परिहरन् प्राप्नोत्यभिष्टौं श्रियम्
मत्स्यान् मोचयतो द्विजाय ददतो आयुश्चिरं वर्द्धते ।
शक्तून् खादति यश्च तस्य रिपवो मृत्युं प्रयान्ति ध्रुवम्
भुङ्क्ते यस्य निरामिषं सहि भवेज्जन्मान्तरे पण्डितः ।।

दीपिकायां यथा—

जन्मर्क्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च ।
भवन्ति तद्वत्सरमेव तावन्नैरूज्य सम्मान सुखानि तस्य ।।
कृतान्तकुञ्जयोवरि यस्य जन्म दिनं भवेत् ।
अनृक्षयोगसम्प्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ।।
तस्य सर्वोषधिस्नानं गुरुदेवाग्निपूजनम् ।
सौरारयोर्दिने भुक्त्वा देयानृक्षे तु काञ्चनम् ।।

अथ वास्तुविचारः

तच्च व्रतपद्धतौ यथा—कार्तिकाग्रहणफाल्गुनवैशाखश्रावणाः (मासाः) शुक्लपक्षः रिक्ताऽमावास्याभिन्नतिथयः, रोहिणीमृगशिरापुनर्वसुपुष्योत्तरफाल्गुनी-हस्तादित्रयमनुराधाज्येष्ठमूलोत्तराषाढश्रवणादित्रयोत्तरभाद्ररेवत्यो नक्षत्राणि। सोम-बुधगुरुशनिशुक्रवाराः प्रशस्ताः । तत्र गृहे हस्तमात्रं खातं खनित्वा जलेनापूर्य तज्जले गणपतिवास्तोष्पति-अष्टनागधरित्रीः पूजयेत् । तत्र धरित्र्यर्घदानमन्त्रः ।

'ॐ हिरण्यगर्भे वसुधे शेषस्योपरिशायिनि ।
वसामि तव पृष्ठेऽहं गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे ।।' इति ।

ततो दधिभक्ताम्रपल्लवबहुवारपल्लवान् गर्त्ते प्रक्षिप्य मृत्तिकाभिः पूरयेत् ।

हिन्दी—अब घर बनाने योग्य जमीन पर विचार—और तब व्रत पद्धति में जैसे—कार्त्तिक, अग्रहण, फाल्गुन, वैशाख और श्रावण महीने में शुक्ल पक्ष में । रिक्ता और अमावास्या से भिन्न तिथि में, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तर फल्गुनी, हस्तादि तीन, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, उत्तराषाढ़, श्रवणादित्रय, उत्तर भद्र और रेवती नक्षत्र, सोम, बुध, बृहस्पति, शनि और शुक्रवार प्रशंसनीय हैं । वास्तु भूमि में एक हाथ गड्ढ़ा खोदकर उसे पानी से भरकर, उस पानी में गणपति, वास्तुपति इन्द्र, शेषनाग एवं धरती की पूजा करनी चाहिए । धरती को अर्घ देने का मन्त्र—

हे धरती, तुम हिरण्य गर्भा हो, (सूक्ष्म शरीर धारण करने वाली आत्मा) अनन्त नामक नागराज शेष के फन पर सोने वाली हो । मैं तुम्हारी पीठ पर बसता हूँ । मेरा यह अर्घ स्वीकार करो । इसके बाद दही, भात, आम और लसोड़े (बनकोदो) के पत्ते गड्ढ़े में डाल कर उसे मिट्टी से भर दें ।

मैथिली—आव वास्तुभूमिक विचार—व्रतपद्धतिक अनुसार अति सन्दर्भ में—कातिक, अगहन, फागुन वैशाख एवं सावन मास तथा शुक्लपक्ष वास-कलेल प्रशस्त अछि । अहिना चौठ, चतुर्दशी एवं नवमी । आओर अमावास्या तिथि छोड़ि आन सभ तिथि में, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसू, पुष्य, उत्तर फल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, उत्तरषाढ, श्रवणां, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तर भाद्र एवं रेवती नक्षत्र में, सोम, बुध, बृहस्पति, शनि, एवं शुक्रवार गृहवासकलेल प्रशस्त मानलगेल अछि । अहि अवसर पर घरक भीतर एक हाथ भूमि में पोखरि खुनि, ओकरा जल सँ भरि ओहि जल में गणेश, वास्तुपति इन्द्र, अष्टनाग एवं धरतीक पूजा करवाक चाही । अहि अवसर पर धरतीकय अर्घ देवाक मन्त्र—

हे वसुधे, अहाँ हिरण्य गर्भा छी, शेषनागक फण पर शयन करोवाली छी, अहाँक पीठ पर हम वास करैत छी । अहाँक सम्मान में देल हमर ई अर्घ्य अहाँ स्वीकारकरू । एकर बाद दही, भात, आम एवं बुहुआरक पात आहि पोखरि में दय माटि सँ ओकरा भरि देवाक चाही ।

विमर्श:—अथ वास्तुप्रबन्धतः जीवितादिभूमिज्ञानम्—

कर्त्ताग्रामदिशश्चैव स्वरयुक्तं तु कारयेत् ।
अग्निभिस्तु हरेद् भागं शेषाङ्के फलमादिशेत् ।।
एके जागर्त्तिभूमिश्च द्वितीये समतागतिः ।
तृतीये राक्षसी चैव मृत्युरेव न संशयः ।।

व्यामविस्तारयोरैक्यं ग्राक्षरसमन्वित ।
चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम् ।।
एकेन भूमिजीव: स्यात् द्वाभ्यां च समता भवेत् ।
शून्यशेषे तु शून्यं स्यात् इत्युक्तं रुद्रयामले ।।
भूम्यक्षरं चतुर्गुण्यं तिथि वारं च मिश्रितम् ।
त्रिभि: भाग: प्रदर्तव्य: शेषेण फलमादिशेत् ।।
एकेन जीविता भूमिर्द्विशेषे भू: समावती ।
त्रि:शेषमृतभूमि: स्यात् इत्युक्तं विष्णुयामले ।।
यत्र वृक्षा: प्ररोहन्ति हर्षात् सश्यं प्रवर्धते ।
सा भूमिर्जीविता वाच्या मृता चातोऽन्यथा भवेत् ।।
प्रद्योतनास्यं चनगाङ्गसूर्य नवेन्दुषड्विंशमितानिभानि ।
शेते मही नैव गृहं विधेय तड़ागवापी खननञ्चशस्तम् ।।

अथ पृष्ठादिना भूमिलक्षणम्——

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋते वायुकोणके ।
एभिरुच्चो भवेद् भूमौ गजपृष्ठोऽभिधीयते ।।
गजपृष्ठे भवेद् वास: सलक्ष्मीर्धनवान् भवेत्।
आयु वृद्धिकरोनित्यं जायते नात्र संशय: ।।
मध्येत्युच्चं भवेद्यत्र नीचे चैव चतुर्दिशम् ।
कूर्मपृष्ठे भवेद्भूमौ तत्र वासोऽभिधीयते ।।
कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रद: ।
धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम् ।।
पूर्वाग्निशम्भुकोणेतु उन्नतिश्च यदा भवेत् ।
पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते ।।
दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीनायाति मन्दिरे ।
धनपुत्रं पशूनां च हानिरेव न संशय: ।।
पूर्वपश्चिमयोदीर्घ्यो दक्षिणोत्तरनीचता ।
नागपृष्ठं विना जीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत् ।।
नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशय: ।
पत्नी हानि: पुत्रनाश: शत्रुवृद्धि: पदे पदे ।।

वास्तुप्रबन्धानुसारेण भूमिवर्णफलम्——

श्वेता विप्रस्य पीता क्षत्रियस्य, रक्ता वैश्यस्य, कृष्णा शूद्रस्य हिता: भवन्ति ।

अथ कूपखननदिक्फलमुक्तं मुहूर्त्तचिन्तामणौ:——

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धि: ।
सूनोर्नाश: स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीड़ा शत्रुत: स्याच्च सौख्यम् ।।

कृष्णमोहनठक्कुरैः स्वटिप्पण्यां वासस्थलसमीपे वर्ज्यवृक्षाः । लि०पु० ६ अ०तः दारिद्र्यं प्रतिवचनानि समुद्धृतानि ।

यत्र कण्टकिनो वृक्षाः यत्र निष्पाप वल्लरी ।
ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्यस्त्वं समाविश ॥
अगस्त्यार्कादयो वाऽपि बन्धुजीवो गृहेषु वै ।
करवीरो विशेषेण नन्द्यावर्त्तमथापि वा ॥
मल्लिका वा गृहे येषां सभार्यस्त्वं समाविश ।
कन्या च यत्र वै वल्ली द्रोही वा च जटी गृहे ॥
बहुला कदली यत्र सभार्यस्त्वं समाविश ।
न्यग्रोधं वा गृहे येषां अश्वत्थं चूतमेव च ॥
उदुम्बरं वा पनसं सभार्यस्त्वं समाविश ।
यस्य काकगृहं निम्बे आरामे वा गृहेऽपि वा ॥
एका दासी गृहे यत्र त्रिगवं पञ्चमाहिषम् ।
षडश्वं सप्तमातङ्गं सभार्यस्त्वं समाविश ॥

अथ संक्षेपत आन्हिकम्

तत्र मनुः—— 'मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा ॥
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथासुखमुखः कुर्यत्प्राणबाधाभयेष्वपि ॥'

उच्चारो विष्ठा, समुत्सर्गस्त्यागः । बाधाभयेषु व्याघ्रादिकृतविनाशभयेषु ।

पराशरः—— 'नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ।'

लैङ्गे—— 'पवित्रं दक्षिणे कृत्वा विण्मूत्रं च समुत्सृजेत् ।'

पवित्रे यज्ञोपवीतमिति महेशादयः । दक्षिणे इति दक्षिण कर्ण इति शेषः । विट् विष्ठा । मिताक्षरायाम्——

'गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥'

अतन्द्रितोऽनालसः । अभ्युद्धतैरित्यनेन जलान्तः शौचनिषेध इति ।

शौचे मनुः—— 'एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्याः मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥'

एकत्र करे वामकरे इत्यर्थः उभयोरिति हस्तद्वयोः इति शेषः ।

हिन्दी—अब संक्षिप्त नित्यकर्म के सन्दर्भ में—

इस पर मनु का कथन—दिन में उत्तर दिशा की ओर मुँह कर पेशाब और पाखाना करना चाहिए, रात में दक्षिण मुँह होकर तथा शाम में दिन की तरह ही करना चाहिए ।

छाया में, अँधेरे में, रात में या दिन में जानलेवा खतरे की स्थिति में उपस्थित होने पर जिनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ हो ऐसे व्यक्ति को जिस दिशा की ओर सुविधा हो उसी दिशा की ओर मुँह कर पेशाब या पाखाना करना चाहिए । उच्चार का अर्थ विष्ठा, समुत्सर्ग का अर्थ त्याग । बाघा भयेषु का अर्थ बाघ आदि हिंसक पशुओं का डर होने पर ।

पराशर का वचन—कपड़े से सारे अङ्गो को ढँककर बोली पर सावधानी से नियन्त्रण रखकर अर्थात् मौन होकर मूत्र पुरीष का परित्याग करना चाहिए ।

लिङ्गपुराण का वचन—यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर रखकर पेशाब और पाखाना का परित्याग करना चाहिए । महेशादि ने पवित्र का अर्थ यज्ञोपवीत कहा है । दक्षिणे का अर्थ दाहिने कान पर है विट् का अर्थ विष्ठा होता है ।

मिताक्षरा में—उपलब्ध जनेन्द्रिय को ऊपर उठाकर मिट्टी और ऊपर उठाए पानी से बदबूदार शरीर में लगी गीली चीज को धोकर आलस्य छोड़कर साफ कर लेना चाहिए । अतीन्द्रित: = आलस्य रहित होकर । उदधृतै: पद से यह भाव प्रकट होता है कि जल या जलाशय के समीप शौच नहीं करना चाहिए ।

शौच के सम्बन्ध में मनु का कहना है—शुद्धि चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वे मिट्टी से लिङ्ग को एक बार, गुदा को तीन बार, बाएं हाथ को दश बार और दोनों हाथों को सात बार साफ करना चाहिए ।

एकत्रकरे = बायें हाथ, उभयो: = दोनों हाथ । इति ।

मैथिली—आव संक्षेप में नित्यकर्मक सम्बन्ध में—

अहि सन्दर्भ में मनुक वचन—उत्तराभिमुख भय दिन में, दक्षिणाभिमुख राति में एवं सायंकाल में दिने जकां द्विजगण मूत्र एवं विष्ठाक उत्सर्ग करथु ।

छाया में, अन्धकार में, रीति हो अथवा दिन यदि प्राणवाधाक भय हो तखन अपन सुविधाक अनुसार कोनो दिश मुँह कय मूत्र पुरीषोत्सर्ग करी । उच्चारक अर्थ विष्ठा, समुत्सर्गक अर्थत्याग । वाधाभयेषु क अर्थ व्याघ्रादिकृत

विनाशक डर । पराशर मुनिक विचार—सायास वाणीक नियन्त्रित कय अर्थात् मौनभय वस्त्रसँ शरीरावयव के नीक अकांझांपि शौच करी । लिङ्गपुराण में—यज्ञोपवीत दक्षिण कान पर चढाय शौच करवाक चाही । महेशादि लोकनि पवित्रक अर्थ यज्ञोपवीत कहने छथि । दक्षिणेक अर्थ दक्षिण कर्ण अछि, विटक अर्थ विष्ठा भेल । मिताक्षरा में लिखल अछि—आलस्य रहित भय लिङ्गकय ऊपर उठाय मल द्वारक दुर्गन्धित लेप कय हाथक जल से पवित्र करी । अतन्द्रित: = आलस्य रहित भय, अभ्युद्धृतै: पढ सँ जलाशयक समीप शौचक निषेध अछि ।

शौचक सम्बन्ध में मनु—लिङ्ग कय एक बेरि, मल द्वार के तीन बेर, बाम हाथ कय दस बेरि दुहू हाथ कय सात बेरि माटि लगा कय पवित्र करवाक चाही । एकत्र करेक अर्थ भेल वाम हाथ । उभयो: क अर्थ भेल दुहू हाथ ।

विमर्श:—कृष्णमोहनठक्कुरै: स्वटिप्पण्यां लिखितम्—

अनुदकमूत्रपुरीषकरणे प्रायश्चित्तमाहाङ्गिरा:—

कृते मूत्रे पुरीषे वा यदा नैवोदकं भवेत् । स्नात्वा लब्धोदकं पश्चात्सचैलस्तु विशुद्ध्यति ॥

तथा चोक्तं प्रायश्चित्तमयूखे—

'अटव्यामटमानस्य ब्राह्मणस्य विशेषत: । प्रणष्ट सलिले देशे कथं शुद्धिर्विधीयते ॥'
'अपां वृष्ट्वैव विप्रस्तु कुर्याच्चैव सचैलकम् । गायत्र्यष्टशतं जप्यं स्नानमेतत् समाचरेत् ॥'

अथ बिना यज्ञोपवीतेन भोजनकरणे तत्रैव वृद्धपराशर:—

यज्ञोपवीतेन बिना भोजनं कुरुते द्विज: । अथ मूत्रपुरीषैर्वा रेत:सेचनमेव वा ॥
त्रिरात्रोपोषितो विप्र: पादकृच्छ्रं तु भूमिप: । अहोरात्रोपोषितो वैश्य: शुद्धिरेषा पुरातनी ॥

बृहन्नारदीये—'तिस्रस्तिस्र: प्रदातव्या: पादयोर्मृत्तिका: पृथक्' ।

यदा तूक्तशौचेनापि गन्धलेपक्षयो न भवति तदा 'यावदपेत्यमेध्याक्तात्' इति वचनात् अधिकसंख्या अपि मृद्दातव्या इति कुल्लूकभट्ट: । मृत्तिकालेपक्षयपर्यन्तं जलं दद्यात् । प्रयोगपारिजाते—

'कुर्याद् द्वादश गण्डूषान् पुरीषोत्सर्जने द्विज: ।
मूत्रे चत्वार एवोक्ता भोजनान्ते च षोडश ॥'

पुरीषं विष्ठा । आचमने मनु:—

हृद्गाभि: पूयते विप्र: कण्ठगाभिस्तु भूमिप: ।
वैश्योऽद्भि: प्राशिताभिस्तु शूद्र: स्पृष्टाभिरन्तत: ॥'

अद्भि: जलै: । मनुटीकायां षट्छिद्राणि जलेन स्पृशेत् । तानि शिर:-स्थानि घ्राणं चक्षु:श्रोत्रादीनि गृहीतव्यानि । शुद्धिविवेके यम:—

'प्रयान्त्याचमतां यास्तु शरीरं विप्लुषो नृणाम् ।
उच्छिष्टदोषो नास्त्यत्र भूमितुल्यास्तु ता: स्मृता: ॥'

विप्लुषो जलबिन्दवः । दन्तकाष्ठे मिताक्षरायाम्—

'कण्टकीक्षीरवृक्षेत्थं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ।
कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्द्धकृतकूर्चकम् ।।
दन्तधावनमुद्दिष्टं जिह्वोल्लेखनिका तथा ।'

वृक्षोत्थमित्यनेन लोष्ठतृणाङ्गुल्यादिनिषेधः । नारसिंहे—

'अपामार्गश्च बिल्वं च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा ।
बदरीतिन्दुकास्त्वेते प्रशस्ता दन्तधावने ।।'

अपामार्गः चिरचिरि इति प्रसिद्धः । स्कान्दे—

'आम्रातकधात्रीणामेकोन खदिरोद्भवम् ।
क्षीरवृक्षोद्भवं चापि प्रशस्तं दन्तधावने ।।'

हिन्दी—बृहन्नारदपुराण में—दोनों पैरों को तीन तीन बार मिट्टी लगाकर साफ करना चाहिए । ऊपर बतलाई गयी विधि से भी जब विष्ठा की दुर्गन्ध न मिटे तो 'यावदपेत्यमेध्याक्तात्' अर्थात् 'जब तक गन्ध न हटे तब तक' इस वचन के अनुसार और अधिक मिट्टी लगाकर पानी से धोना चाहिए । ऐसा कुल्लूकभट्ट का कहना है । दुर्गन्ध हटने तक मिट्टी लगाकर पानी से धोना चहिए ।

प्रयोगपारिजात में—द्विजों को पाखाना करने के बाद बारह चुल्लू, पेशाब करने पर चार चुल्लू तथा भोजनोपरान्त सोलह चुल्लू पानी से सफाई करनी चाहिए । पुरीष अर्थात् विष्ठा । आचमन के सम्बन्ध में मनु ने कहा है—आचमन का जल हृदय तक पहुँचने पर ब्राह्मण, कण्ठगत होने पर क्षत्रिय, पीने भर से वैश्य और स्पर्शमात्र से शूद्र पवित्र होते हैं ।

अद्भिः = पानी से । मनु की टीका में छः छिद्रों को पानी से स्पर्श करना चाहिए । उनमें माथे में स्थित कान, नाक, आँख आदि ग्रहण करना चाहिए । शुद्धिविवेक में यम का कथन है—मनुष्यों के आचमन करने के क्रम में जो जल बिन्दु शरीर में जाते हैं उनमें उच्छिष्ट अर्थात् जूठे का दोष नहीं लगता । क्योंकि, भूमिगत जल की तरह वे जल भी पवित्र होते हैं । विप्लुषः का अर्थ जल बिन्दु होता है ।

दतवन के सम्बन्ध में मिताक्षरा में—कटीले एवं दुधैले पेड़ के कनगुरिया अंगरी भर मोटी बारह अंगुरी की दतुअन हो, उसके पहले भाग की कूँची बनानी चाहिए, शेष की जीभी बनानी चाहिए । 'वृक्षोत्थ' पद से मिट्टी, तृण या अंगुलि का निषेध है ।

नरसिंहपुराण का वचन है—चिर्चिरी, बेल, आक, गूलर, बेर या कपास, तथा तेंदु के दतुअन प्रशंसनीय हैं । अपामार्ग का अर्थ चिरचिरी है ।

स्कन्दपुराण में—आमड़े एवं आँवले में से किसी भी, कत्थे की बिल्कुल नहीं, किसी भी दुधिये पेड़ की दतुअन प्रसंशनीय है ।

मैथिली—बृहन्नारदपुराणक वचन अछि—

दुहू पैर में अलग अलग तीन तीन वेरि माटि लगयवाक चाही । जखन पूर्वोक्त विधि सँ शौच कयलो उत्तर मलद्वारक दुर्गन्ध नष्ट नहि होय तखन 'यावदित्यादि' वचनानुसार अधिको मात्रा में माँटि लगाय मलद्वारक शौच करी' ई कुल्लूक भट्टक विचार छैन्हि । दुर्गन्ध नष्ट यावत् काल धरिनष्ट नहि भऽजाय, मांटि एवं पानि सँ शौच करवाक चाही ।

प्रयोग पारिजात में—पुरीषोत्सर्गक बाद द्विजगण बारह चुरूजल सँ कुरुर करथु, लघुशंकाक बाद चाहिर एवं भोजनोपरान्त सोलह चुरू जल लऽकँ कुरुर करथु । पुरीषक अर्थ विष्ठा होयत अछि । आचमनक विषय में मनुक कथन अछि—आचमनक जल हृदय धरि पहुँचला पर ब्राह्मण, कण्ठगत भेला उत्तर क्षत्रिय, ओष्ठगत जल सँ वैश्य एवं स्पर्श मात्रे शूद्रे पवित्र होयत छथि । अद्भिः अर्थात् जल सँ । मनुक टीका में जल सँ छः छिद्रक स्पर्श लिखल अछि । ई छः छिद्र सँ माथक नाक, आँखि एवं कानक छेद ग्रहण कयल गेल अछि ।

शुद्धिविवेक में यमक विचार—आचमन करवा में जे जल बिन्दु मन्ष्यक शरीर में जायत अछि से ऐंठ नहि होयत अछि । ई जल भूमिगत जल जकां पवित्र मानलगेल अछि । विप्लुषः = जल बिन्दु ।

दतुअनिक सन्दर्भ में मिताक्षरा में लिखल अछि—काँटवला एवं दूधवला गाघक कनगुरिया आंगुर एतेक मोट बारह आंगुरक दतुअनि बनयवाक चाही । ओकर पूर्वार्द्धक कूची एवं ओकरे चीरि जीभिया बनयवाक चाही । वृक्षोत्थ पद सँ मांटि, तृण एवं आंगुरक निषेध कयने छथि ।

नरसिंहपुराणक वचन अछि—चिर्चिरी, बेल, आक, गुल्लरि, बेर तथा तेंदुक दतुअनि प्रशंसनीय मानलगेल अछि अपामार्गक अर्थ चिर्चिरी होयत अछि ।

स्कन्दपुराणक वचन अछि—कथक गाछ छोड़ि, अमड़ा, आमला एवं जतेक दूधवला गाछ ताहि सबक दतुअनि प्रशस्त मानलगेल अछि ।

विमर्शः—नवसूत्रात्मकोपवीतस्य कण्ठादुत्तारणनिषेधं प्रक्षालनार्थं शाखाविशेषेण तदपवादं चाह भृगुः—

मन्त्रपूतं स्थितं काये यस्य यज्ञोपवीतकम् । नोद्धरेच्च ततः प्राज्ञो य इच्छेत्छ्रेयमात्मनः ।।
सकृदुत्तारणात्तस्य प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः । तैत्तरीयाः कठाः कण्वाः चरका वाजसनेयिनः ।।
कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः । बहृचाः सामगाश्चैव ये चान्ये यजुःशाखिनः ।।

कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु पुनरर्हन्ति संस्क्रियाम् । अभ्यङ्गे चोदधिस्नाने मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।।
कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः ।

अथ बिना यज्ञोपवीतेन भोजनकरणे वृद्धपराशरः—
यज्ञोपवीतेन बिना भोजनं कुरुते द्विजः । अथ मूत्रपुरीषैर्वा रेतःसेचनमेव वा ।।
त्रिरात्रोपोषितो विप्रः पादकृच्छ्रं तु भूमिपः । अहोरात्रोपोषितो वैश्यः शुद्धिरेषा पुरातनी ।।

अथ वर्णभेदेन दन्तधावनप्रमाणभेदमाह गर्गः—
द्वादशाङ्गुलं विप्राणां क्षत्रियाणां नवाङ्गुलम् ।
अष्टाङ्गुलं तु वैश्यानां शूद्राणां सप्तसम्मितम् ।
चतुरङ्गुलमानं तु नारीणां नात्र संशयः ।।

तत्रैव दिक् फलम्— प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेव च ।
दक्षिणेन तथा कुष्ठं पश्चिमेन पराजयः ।
उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्य च ।।

नित्यकर्मपद्धतौ दन्तधावनप्रार्थना । स्मृतिसारेऽपि—
आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञा च मेधा च त्वन्नो देहि वनस्पते ।।

तत्रैव मौनविधिः—उच्चारे मैथुने चैव प्रश्रावे दन्तधावने ।
श्राद्धे भोजने काले षट्सु मौनं समाचरेत् ।।

विष्णुः—'न पलाशं दन्तधावनं' स्यान्न श्लेष्मातकारिष्टबिभीतकधर-कोविदारशमीबिल्वपिप्पलेङ्गुदगुग्गुलम्' । श्लेष्मातकः बहुआर इति ख्यातः । 'अरिष्ट' हरिड इति प्रसिद्धम् । कोविदारः कोइआर इति ख्यातः । बिभीतकं बहेड़ा इति प्रसिद्धम् । 'इङ्गुदस्तापसतरुः' इत्यमरः । गर्गः—

'कुशं काशं पलाशं च शिंशपां यस्तु भक्षयेत् ।
तावद्भवति चाण्डालो यावद्गङ्गां न पश्यति ।।'

उशनाः— 'कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छ्रियम् ।'
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां श्राद्धवासरे ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ।।'

अन्यच्च— 'समिधा क्षीरवृक्षस्य क्षयाहोपोषणं बिना ।'

दन्तकाष्ठं कुर्यादिति शेषः । क्षयाहपदं श्राद्धमात्रदिनोऽपलक्षकम् । उपोषणपदमुपवासदिनस्य तदुषसोऽप्युपलक्षकम् । विष्णुः 'उदङ्मुखो प्राङ्मुखो वा दद्याद्वै दन्तकाष्ठकम् ।' इत्यादि । दन्तधावनमन्त्रस्तु स्मृतिसारे—

'आयुर्बलं यशो वर्च्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ।।'

दन्तकाष्ठप्रमाणमाह द्वैतपरिशिष्टे—

'वितस्तिः प्रथमः कल्पः। प्रादेशप्रमाणं मध्यमः । अष्टाङ्गुलमपकृष्टः। चतुरङ्गुलमत्यन्तापकृष्टः ।' जाबालः—

'द्वादशाङ्गुलं विप्राणां क्षत्रियाणां नवाङ्गुलम् ।
सप्ताङ्गुलं च वैश्यानां शूद्राणां च षडङ्गुलम् ।।' इति ।

हिन्दी—विष्णु—पलाश, लिसोड़ा या बहुआर, हर्रे, बहेड़ा, कोइयार, शमी, मुर्वालता, पिप्पल, मोर गुठसुल की दतुअन नहीं करनी चाहिए । श्लेष्मातक = बहुआर, अरिष्ट = हर्रें, कोविदार = कोईआर, विभीतक = बहेड़ा, इङ्गुद = तापस तरु इति ।

गर्गाचार्य—कुश, काश, पलाश और शीशम का जो भक्षण करते हैं, वे जब तक गङ्गा दर्शन नहीं कर लेते तब तक चाण्डाल बने रहते हैं ।

उशना—कपास की दतुअन यदि विष्णु भगवान् भी करें तो लक्ष्मी भी उन्हें छोड़ देती हैं । परिवा, अमावस्या, षष्ठी, नवमी, और श्राद्ध के दिन जो व्यक्ति काठ की दतुअन करते हैं, वे अपने से ऊपर सात पुरुषों को जलाते हैं।

और भी—दुधैले पेड़ की समिधा और बिना उपवास के क्षयाह अति दोषावह होता है । दतुअन करे यह शेष है । क्षयाह पद श्राद्ध मात्र के दिन का उपलक्षक है । उपोषणम् उपवास दिन का, यह प्रातःकाल का भी उपलक्षक है । विष्णु का वचन है—उत्तर या पूरब मुँह दतुअन करना चाहिए' इति ।

स्मृतिसार में—दतुअन का मन्त्र है—आयु, बल, यश, शक्ति, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्म, प्रज्ञा और मेधा, हे वनस्पति, तुम हमें दो ।

दतुअन का प्रमाण द्वैतपरिशिष्ट में—बित्ता भर पहला कल्प है । अगूंठे से तर्जनी तक मान की दतुअन मध्यम दर्जे की होती है । आठ अंगुल की अपकृष्ट होती है । चार अंगुल की अत्यन्त अपकृष्ट होती है ।

जाबाल का कहना है—ब्राह्मणों के लिए बारह अंगुल की, क्षत्रियों के लिए नौ अंगुल की, वैश्यों के लिए सात अंगुल की, शूद्रों के लिए छः अंगुल की दतुअन चाहिए ।

मैथिली—विष्णु—पलाशक दतुअनि नहिं करवाक चाही, तहिना बहुआर, हरिड़, बहेड़ा, कोइआर, छेंकुर, या कीकर, पर्णी अथवा मुर्वा लताक लकड़ी, पिपरी, हिंगोट या माल कंगनी एवं गूकुलक दतुअनि नहिं करवाक चाही । श्लेष्मातकः = बहुआर, अरिष्ट = हरिड़, कोविदार = कोइआर, विभीतक = बहेड़ा, इङ्गुदः = तापसतरु । इति । गर्ग—कुश, काश, पलाश, एवं शीशमक जे भक्षण करैत छथि से तावत् काल धरि चाण्डाला बनल रहैत छथि यावत् काल धरि हुनका गङ्गाक दर्शन नहि भऽ जायत छैन्हि ।

उशनाः—वाङ्क दतुअनि जो भगवान् विष्णु करथितऽ हुनको लक्ष्मी छोड़ि देथिन्ह । परिवा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी, श्राद्धक दिन में जो काठक दतुअनि दाँत मे सटैवों करै छथि ओ अपनासँ ऊपर सात पूर्वपुरुष के जलावैत छथि ।

ओओर दोसरो—श्राद्धक दिन बिना उपवास कयने दुधारु गाघक दतुअनि कयनाय दोषावह हेयत अछि । 'दतुअनि करी' ई पद जोड़वाक चाही । क्षयाह पद श्राद्धीय दिन मात्रक बोधक अछि । उपोषणम् = उपवास दिनक एवं ओकर प्रातीक बोधक अछि ।

विष्णुक वचनानुसार—उत्तर मुँह या पूरब मुँह भय दन्तधावन करी । स्मृतिसार में दन्तधावनक वचन—आयु, बल, यश, प्रभाव, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान, एवं दित्य स्मरण शक्ति, हे वनस्पति, अहाँ हमरा प्रदान करू ।

द्वैतपरिशिष्ट में दतुअनिक प्रमाण कहलगेल अछि—बीत भरि प्रथम कल्प । प्रादेश मात्रक दतुअनि मध्यम । आठ आंगुरक अपकृष्ट । चारि आंगुरक अत्यन्त अपकृष्ट । जावालक वचन अछि—तदुअनि ब्राह्मणकलेहा बारह आंगुरक, छत्रियकलेल नौ आंगुरक, वैश्यकलेल सात आंगुरक, तथा शूद्रकलेल छः आंगुरक प्रशस्त होयत अछि ।। इति ।

विमर्शः—दन्तधावनदिक्फलम्—

प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेव च ।
दक्षिणेन तथा कुष्ठं पश्चिमेन पराजयः ।।
उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्य च ।।

ततः स्नानं छन्दोगपरिशिष्टे—

'यथाऽहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः ।'

अनातुर इति विशेषणादातुरस्य ज्वराद्यभिभूतस्य स्नानाकरणे न दोषः ।

मनुः— 'शिवलिङ्गसमीपस्थं यत्तोयं पुरतः स्थितम् ।
शिवगङ्गेति तत्प्रोक्तं तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।।'

दिवं मुक्तिम् । योगियाज्ञवल्क्यः—

'नद्यां स्नानानि पुण्यानि तडागे मध्यमानि च ।
वापीकूपे जघन्यानि गृहे प्रत्यवराणि च ।।'

नद्यामपि प्रथमं महानद्यां तदसम्भवेऽल्पनद्याम्। महानद्यस्तु ब्रह्मपुराणोक्ताः—

'गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका ।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे च प्रकीर्त्तिताः ।।
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती ।
विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तरसंस्थिताः ।।

द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः ।'

नदीलक्षणं तु श्रावणकृत्येऽभिहितम् । सप्रवाहजले प्रवाहाभिमुखेन तदन्यजले सूर्याभिमुखेन स्नानम् । तथा हि नारसिंहे—

'नद्यां स्रवत्सु च स्नायात्प्रतिस्रोतः स्थितो द्विजः ।
तडागादिषु तोयेषु प्रत्यर्कं स्नानमाचरेत् ।।'

परखानितखाते पञ्चपिण्डमृत्तिकामुद्धृत्य स्नायात् । तथा हि—

योगियाज्ञवल्क्यः— 'पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि ।'

मनुः— 'स्मृत्वोंकारं च गायत्रीं निबन्धियाच्छिखां ततः' । इति

हिन्दी—इसके बाद स्नान के विषय में छन्दोगपरिशिष्ट में—जैसे दिन में उसी तरह प्रातःकाल में बिना उद्विग्न हुए प्रतिदिन स्नान करना चाहिए । 'अनातुर' विशेषण से यह सिद्ध होता है कि ज्वरादि से अभिभूत व्यक्ति यदि स्नान न भी करे तो कोई दोष नहीं होता ।

मनु का कहना है—शिवलिङ्ग के निकटस्थ आगे जो जलाशय हो, उसे शिवगङ्गा कहा जाता है, शिवगङ्गा में स्नान कर लोग सीधे स्वर्ग जाते हैं । दिनम् = स्वर्गम् ।

योगि याज्ञवल्क्य—नदी में स्नान पुण्यप्रद होता है । तालाब का स्नान निरपेक्ष अर्थात् औसत दर्जे का होता है । बावली में या कुँए पर स्नान सबसे गया बीता स्नान होता है, और घर में स्नान निम्नतर माना जाता है ।

नदियों में भी पहले बड़ी नदियाँ, बड़ी नदियों की असंभाव्यता में छोटी नदियों में भी ।

ब्रह्मपुराण के अनुसार बड़ी नदियाँ—गोदावरी, सह्यपर्वत से निकलने वाली बड़ी नदी भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेणिका, तापी तथा पयोष्णी । ये नदियाँ विन्ध्याचल के दक्षिणी भाग में बहती हैं । भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका एवं वितस्ता ये छः विन्ध्याचल के उत्तरी भाग में बहती है । ये बारह महानदियां देवर्षि क्षेत्र में उत्पन्न हुई हैं ।

नदी का लक्षण श्रावणकृत्य में कहा गया है । नदी की धारा जिधर से आये उस बहाव की ओर मुँह करके स्नान करे । महानदियों से भिन्न तालाब और सरोवरों में सूर्य की ओर मुँह करके स्नान करना चाहिए ।

उदाहरण स्वरूप नरसिंहपुराण में—बहाव की विपरीत दिशा की ओर खड़े होकर प्रवहणशील नदियों में द्विजों को स्नान करना चाहिए । पोखर या

तालाब आदि में सूर्य की ओर मुँह करके स्नान करना चाहिए । नहर या नाले के पानी में मिट्टी के पाँच पिण्ड अलग निकाल कर स्नान करना चाहिए ।

योगियाज्ञवल्क्य—मिट्टी के पाँच गोले निकाल कर किसी खाई या नहर में स्नान करना चाहिए । मनु—ओंकार एवं गायत्री का स्मरण कर उसके बाद शिखा को बांधना चाहिए । इति ।

मैथिली—एकरबाद स्नानक विषय में छन्दोगपरिशिष्टक कथन—

जेना दिन में तहिना प्रात:काल में अनुद्विग्नभय प्रतिदिन स्नान करवाक चाही । अनातुर ई विशेषण सँ ज्वरादि सों अभिभूत व्यक्ति यदि स्नान नहिं करथु तऽ हुनका कोनो दोष नहि होय ।

मनु—शिवलिंगक निकटवर्त्ती आगु में जे जलाशय होय ओकरा शिवगङ्गा कहल जायत अछि । शिवगङ्गा में स्नान कयला पर व्यक्ति के स्वर्ग भेटैत छैन्हि । दिवम् = स्वर्ग ।

योगियाज्ञवल्क्य—नदी में स्नान पुण्यप्रद होयत अछि । पोखरिक स्नान मध्यम होयत अछि बाउली एवं कूपक स्नान जघन्य होयत अछि । घरक स्नान निम्नतर होयत अछि । नदियों में प्रथम महानदी, महानदीक अभाव में छोटो नदी में स्नान उत्तम । महानदीक सन्दर्भ ब्रह्मपुराण में—विन्ध्याचलक दक्षिणाञ्चल में प्रवाहित छः महानदी यथा गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेखिका, तापी, पयोष्णी, तथा उत्तराञ्चलक छः टा महानदी छैन्हि । यथा—भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, वितस्ता । ई बारहो महानदी देवर्षि क्षेत्र संभवा छैथि ।

श्रावणकृत्य में नदीक लक्षण कहलगेल अछि । नदीक धार जम्हर से आवय ताही मुखभय नदी में स्नान करवाक चाही । नदी सँ भिन्न पोखरिक जल में सूर्याभिमुखभय स्नान करी ।

उदाहरण स्वरूप नरसिंहपुराण में—प्रवहणशील नदी में प्रवाहकदिशि मुँह कय स्नान करवाक चाही । पोखरि प्रभृतिक जल में सूर्याभिमुखभय स्नान करी । नहर एवम् कोनो तरहक जलाशय में माटीक पाँच पिण्ड हयकय तखन स्नान करी । जैनायोगि याज्ञवल्क्य—बिना माटीक पाँच पिण्ड निकालने परिखा आदि जलाशय में स्नान नहि करी ।

मनुः—ओंकार एवं गायत्रीक स्मरण कय शिखा बाँधवाक चाही । इति ।

विमर्शः—गूढार्थदीपिकायां वामदेवमतेन सप्तस्नानानि—

मात्रं भौममथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानं प्रकीर्त्तितम् ।।
आपो हिष्ठेति वै मन्त्रं मृदालम्भनमौर्विकम् । आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजस्मृतम्।।
यत्तु सातपवर्षाभिः स्नानं तद्दिव्यमुच्यते । वारुणं चावगाह्यं च मानसं विष्णु चिन्तनम् ।।
शस्तं स्नानं यथोद्दिष्टं मन्त्रस्नानक्रमेण तु । कालादेशादसामर्थ्यात्सर्वतुल्यफलं स्मृतम् ।।

स्नानदीपिकायम्— इक्षुरापः पयोमूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वाऽपि कुर्वीत स्नानदानादिका क्रिया ।।

जले मूत्रपुरीषपातने दोषमाह वामनपुराणे—
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणी । ते पात्यन्ते च विण्मूत्रे दुर्गन्धे पूयपूरिते ।।
जले मूत्रपुरीषं वा वाप्यदौ क्षालयन् गुदम् । स गच्छेद्रौरवं मर्त्यो गुदरोगी भवेत्परम् ।।

मेधातिथि—'न जलं ताडयेत्पद्भ्यां न जले तु मले त्यजेत् ।'

भविष्यपुराणादुद्धृतकृत्यमहार्णवे लिखितम्—
स्नानानामथ सर्वेषां वारुणेन च मानवः । कर्तुमर्हति कर्माणि विधिवत्सर्वथा द्विजः ।।
असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्ति व्यपेक्षया । मन्त्रस्नानादयः पञ्च एक इच्छन्ति सूरयः ।।
असिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ हि कर्मिणाम् । आर्द्रेणवाससा वाऽपि मार्जनं दैहिकं स्मृतम् ।

भूतिस्नानमाहात्म्यं स्कन्दपुराणे—पुण्यं कनखले यत्र प्रयागे यच्च सुन्दरि ।
तत्फलं सकलं देवि, भूतिस्नाने विधीयते ।।

तत्रैव दिव्यस्नानम्—
आकाशगङ्गासलिलं समादाय गभस्तिमान् । अनभ्रागतमेर्वोम्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ।।
तस्य स्पर्शविनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमः । न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नाने हि तत्स्मृतम् ।।

स्नानन्तरं । ब्राह्मे—

'योगो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमूद्धर्वपुण्ड्रं बिना कृतम् ।।'

भारते— 'जान्हवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः ।
बिभर्ति रूपमर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ।।'

ब्राह्मे— 'ऊद्धर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना सदा ।
तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन यदृच्छया ।।

मृदा गङ्गामृदा । पाद्मे—

'अभावे उदकेनापि पौण्ड्रं चैतत्समाचरेत् ।'

द्विज इत्याभिधानाच्छूद्रस्य नोर्ध्वपुण्ड्रं किन्तु बिन्दुमात्रम् । तथा हि बृहद्धर्मसंहितायां व्यासः—

'तिलकं बिन्दुमात्रं तु शूद्रजातिषु शस्यते ।' इति ।
'गोपीचन्दनमुद्रां च कृत्वा भ्रमति भूतले ।
सोऽपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यत्र संस्थितः ।।'

पाद्मे— 'कृष्णनामाक्षरैर्गात्रं कल्पयेच्चन्दनादिना ।
स लोकपावनो भूत्वा तस्य लोकमवाप्नुयात् ।।'

तस्य कृष्णस्य । श्री भगवानुवाच—

> ममावतारचिन्हानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे ।
> मर्त्यो न मर्त्यो विज्ञेयस्तन्नूनं मामकीतनुः ।।'

विग्रहं शरीरम् 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरकोशात् ।।

हिन्दी—स्नान के बाद कर्म—ब्रह्मपुराण में—योग, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण ये सभी माथे में ऊद्धर्वपुण्ड विना लगाने पर जल कर राख हो जाते हैं । भारते—गङ्गा के किनारे की मिट्टी का तिलक जो माथे पर धारण करता है, वह अन्धकार मिटाने वाले साक्षात् सूर्य का रूप धारण करते हैं । ब्रह्मपुराण में—हमेशा मिट्टी का ऊद्धर्वपुण्ड तथा भस्म का त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए । चन्दन का तिलक द्विजों को अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहिए । मृदा अर्थात् मिट्टी से तात्पर्य गङ्गा किनारे की मिट्टी से है ।

पद्मपुराण में लिखा है—'गङ्गौटी के अभाव में पानी से भी माथे पर तिलक लगाना चाहिए ।' द्विज शब्द के अभिधान से शूद्रों के लिए ऊद्धर्वपुण्ड का निषेध किया गया है । शूद्र केवल बिन्दु लगाने के अधिकारी हैं । जैसे बृहद्धर्म संहिता में व्यास का वचन—बिन्दु मात्र तिलक शूद्रों के लिए प्रशंसनीय है । इति । गोपीचन्दन और मुद्रा लगाकर धरती के जिस भाग में व्यक्ति घूमता है; वह भाग पवित्र हो जाता है; फिर ऐसे व्यक्ति जहाँ रहते हैं, वहाँ का क्या कहना ?

पद्मपुराण में—चन्दन से अपने शरीर पर श्रीकृष्ण का नामाक्षर कल्पित करता है वह लोक पावन बन कर गोलोक निवासी होता है । तस्य = श्रीकृष्ण का । श्रीभगवान् ने कहा—जिसकी देह पर मेरे अवतार के चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं, उस देह को देह नहीं समझना चाहिए । यह देह तो मेरी देह है । अमरकोष के अनुसार विग्रह का अर्थ शरीर होता है ।

मैथिली—आव स्नानोत्तर कर्मक सम्बन्ध में—

ब्रह्मपुराणक कथनानुसार—माघ में बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र लगौने जे व्यक्ति योग, दान, तप, होम, स्वाध्याय, या पितृतर्पण करैत छथि, ओ हुनक सभटा भस्मीभूत भऽ जायत छैन्हि । महाभारत में—गङ्गा तटक मांटि माथ में जे लगवैत छथि ओ केवल अन्धकार विनष्ट कलेल केवल सूर्यकरूप धारण करैत छथि । ब्रह्मपुराण में—सदिखन, गङ्गोटक, ऊर्द्धवपुण्ड एवं भस्मक त्रिपुण्ड धारण करवाक चाही । श्रीखण्डादि चानन द्विजगण अपन इच्छाक अनुसार जेहन चाहथि तेहने करथु । मृदाक अर्थ गङ्गोट । पद्मपुराण में—माटिक अभाव में पानियोक उर्ध्वापुण्ड्र करवाक चाही । द्विजक अभिधान सँ शूद्रकलेल ऊर्ध्वपुण्ड्रक निषेध अछि । शूद्र केवल बिन्दु मात्रक अधिकारी छथि ।

बृहद्धर्म संहिता में व्यासक वचन छैन्हि—'बिन्दुमात्र तिलक शूद्रकलेल प्रशंसनीय अछि ।' गोपीचानन लगाय एवं मुद्राङ्कित भय जे व्यक्ति धरतीक जाहि भाग में भ्रमण करैत छथि, धरतीक ओ भाग पवित्र भऽ जायत अछि, पुनः जाहि स्थान में एहन व्यक्ति निवास करैत छथि ओकर की कहब?

पद्मपुराणक वचन अछि—चन्दनादि सँ अपन देह पर जे श्रीकृष्णक नामांकित करैत छथि ओ व्यक्ति लोक पावन भय गोलोक वासी होयत छथि । तस्य = श्रीकृष्णक । श्रीभगवान् कृष्णक कथन छैन्हि—जिनक देह पर हमर अवतारक चिन्ह देखल जायत अछि, ओ देह मरण धर्मी देह नहि रहि जायत अछि, ओदेह निश्चित रूप सँ हमर देह भऽ जायत अछि । अमरकोशक अनुसार विग्रहक अर्थ देह होयत अछि ।

अथ सन्ध्या

सा च नित्या तत्र मनुः—

'नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ।।'

पूर्वां प्रातःसन्ध्यां, पश्चिमां सायंसन्ध्याम् । योगियाज्ञवल्क्यः—

'सन्ध्यात्रयं प्रकर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा ।'

सम्वर्त्तः—'प्रातःसन्ध्यां स नक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्द्धास्तमितभास्कराम् ।।'

'उत्तीर्य वाससी परिधायेति' कात्यायनवचनात् वाजसनेयिभिः स्थले सन्ध्या प्रकर्तव्या स्थलाशुचित्वपक्षे जलेऽपि ।

'यत्राशुचिस्थलं वा स्यादुदके देवताः पितॄन् ।
तर्पयेत्तु यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।'

इति वचनात् । उदीच्यस्य तर्पणस्य जलेऽभिधानादिति केशवमिश्राः । छन्दोगानामनियमः । गायत्रीजपे मनुः—

'गायत्रीं यो न जानाति ज्ञात्वा नैव उपासते ।
नामधारकविप्रोऽसौ न विप्रो वृषलो हि सः ।।'

वृषलः शूद्रः। जपस्तु शुक्लवस्त्रेण स्थले न जले। तथा हि गोभिलः—

'कदाचिदपि नो विद्वान् गायत्रीमुदके जपेत् ।
गायत्र्यग्निमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्थाय तां जपेत् ।।'

उत्थाय सूर्याभिमुखो जपेदिति छन्दोगाह्निकम् ।

हिन्दी—अब सन्ध्या—यह सन्ध्या नित्यकर्म है । इसके सम्बन्ध में मनु का कहना है—जो ब्राह्मण प्रात: एव सायंकालीन सन्ध्या की उपासना नहीं करते उन्हें सारे द्विज कर्मो से बहिष्कृत कर देना चाहिए । पूर्वी = प्रात: सन्ध्या, पश्चिमां = सायं सायंसन्ध्या । योगिंयाज्ञवल्क्य का कथन है—'ज्ञानी द्विजों को प्रतिदिन प्रात:, मध्याह्न एवं सायंकालीन सन्ध्यात्रय करनी चाहिए ।'

संवर्त्त का विचार—आकाश में तारे जब तक दिखलाई पड़े तभी तक विधिपूर्वक प्रात:कालीन सन्ध्या करनी चाहिए । अर्द्धस्तमित सूर्य की स्थिति में सायंकालीन सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए । 'जलस्थल से बाहर निकल वस्त्र पहन कर' कात्यायन के इस वचन के अनुसार वाजसनेयियों को धरती पर ही सन्ध्या करनी चाहिए । धरती गंदी रहने पर जल में भी सन्ध्या की जाती है ।

'जहाँ धरती अपवित्र हो, वहाँ जल में ही देवता एवं पितृतर्पण करना चाहिए । स्वतन्त्रता से सारे देवगण जल में प्रतिष्ठित हैं ।' इस वचन के अनुसार केशव मिश्र का कथन है कि सरस्वती नदी के उत्तर पश्चिम देश के निवासियों के लिए जल में ही तर्पण करना निरूपण है । छन्दोगों के लिए इस नियम का अभाव है । गायत्री जप के सम्बन्ध में मनु का नियम—

मनु—जो गायत्री नहीं जानता या जानकर उसकी उपासना नहीं करता, वह केवल नाम का ही ब्राह्मण है, वह ब्राह्मण नहीं, शूद्र होता है । वृषल = शूद्र । जप श्वेत वस्त्र पहनकर स्थल में करना चाहिए, जल में नहीं ।

गोभिल का कथन है—विद्वान् कभी भी पानी में गायत्री मन्त्र का जप न करें । क्योंकि, गायत्री अग्निमुखी कही गई है, अत: सूर्य की ओर मुँह कर गायत्री जप करे । उत्थाय = सूर्य की ओर मुँह कर जपे । यह छन्दोगाह्निक का मत है ।

मैथिली—आव संध्याक संदर्भ में—सन्ध्या नित्य कर्म अछि । अहि सम्बन्ध में मनुक कथन—जे व्यक्ति प्रात: एवं सायं सन्ध्या नहि करैत छथि, हुनका सभ तरहक द्विज कर्म सँ शूद्रजकां बहिस्कृत कऽ देवाक चाही । पूर्वी = प्रात: संध्या । पश्चिमां = सायं सन्ध्या । योगियाज्ञवल्क्यक कथन अछि—'ज्ञानी द्विज के प्रतिदिन त्रिकाल संध्या करवाक चाही ।'

संवर्त्त—आकाश में तारा जखन धरि रहय तकर अभ्यन्तरे प्रात: संध्या विधिपूर्वक कऽलेवाक चाही । आकाश में सूर्य रहिवहि अर्था अर्द्धस्तमित सूर्यक स्थिति में सायं संध्या कऽलेवाक चाही । जल सँ बाहर भय वस्त्र धारणकय' कात्यायनक ई वचनक अनुसार वाजसनेयि लोकनिके धरती पर सन्ध्या करवाक

चाही । मुदा जँ धरती अपवित्र होय तऽ जलऽ में सन्ध्या कऽलेवाक चाही । जतय धरती अपवित्र होथि, ओतय सबटा देव एवं पितृकर्म जल में करवाक चाही । कियेकतऽ स्वेच्छाचारी सब देवगण जल में प्रतिष्ठित छथि । अहिवचनक अनुसार केशवमिश्रक कथन छैन्हि कि उदीच्यलोकनिक तर्पणक अभिधान जल में होयत अछि । किन्तु, ई विधान छन्दोगकलेल नहि होयत अछि ।

गायत्री जप में मनुक विचार—जे गायत्री नहि जानति छैथि, जानि तँहु जे गायत्री नहि जपैत छथि, वो नामेक ब्राह्मण छथि, ब्राह्मण नहि शूद्र छथि । वृषलः = शूद्रः । शुक्ल वस्त्र धारण कय गायत्रीक जप धरती पर करवाक चाही जल में नहि । जेना गोभिलक वचन—कोनो स्थिति में विद्वान् गायत्रीक जप जल में नहि करथु, किएक तऽ गायत्री अग्निमुखी कहलगेल अछि । ताँय जल सँ बाहर निकलि गायत्री जप करी । उठिकैथ सूर्यकदिशि मुँह कय गायत्री जपवाक चाही । ई छन्दोगाह्निक वचन अछि ।

अथ जपक्रममाह योगियाज्ञवल्क्यः —

'प्रणवं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम् ।
गायत्रीप्रणवश्चान्ते जपस्त्वेवमुदाहृतः ।।'

प्रणवं ॐकारम्, तथा च प्रणवं व्याहृतिः, गायत्री पुनः प्रणवमन्ते, एवं क्रमो जपे, ततो दशवारजपोऽशौचेऽपि कर्तव्यः । तत्राश्वलायनः

'आपन्न आशुचिः काले तिष्ठन्नपि जपेद्दश' ।। इति ।

अशुचिरेवाशुचिः । तिष्ठन्नुत्तिष्ठन् । नित्यत्वान्मलमासेऽपि दशवारजपः ।

मात्स्ये— 'गृहे त्वेकगुणं जप्यं नद्यां त्रिगुणं स्मृतम् ।
तीर्थेषु शतसाहस्रमनन्तं शिवसन्निधौ ।।'

जपे गुटिकामाह पाद्मे—'शतधा शङ्खपद्माभ्यां मणिभिस्तु सहस्रधा ।
पुत्रञ्जीवेन शतधा फलं स्यान्मन्त्रजापिनाम् ।।'

पुत्रञ्जीवः पितौझिया इति प्रसिद्धः । शंखः—

'शतं स्याच्छङ्खमणिभिः सहस्रं तु प्रवालकैः ।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।।
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तं फलमुच्यते ।।

प्रवालो 'मूँगा' इति प्रसिद्धः । शिवपुराणे—

अष्टोत्तरशतं चैव पञ्चपञ्चाशदुत्तरम् ।
अष्टाविंशतिभिर्वापि कार्या रुद्रक्षमालिका ।।'

गुटिकाप्रमाणमाह— 'जातीफलप्रमाणेन जप्यं महदुदाहृतम् ।
बदरास्थिप्रमाणेन स्वल्पकं तदुदाहृतम् ।।

जातीफलं 'जायफर' इति प्रसिद्धम् । करजपोऽष्टोत्तरशतपर्यन्तमेव, न तु तदधिकं जप्यम् । अथ करजपक्रममाह अगस्त्यसंहितायाम्—

'आरभ्यानामिकामध्यात् प्रादक्षिण्येन वै क्रमात् ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ।।'

हिन्दी—अब जप का क्रम योगियाज्ञवल्क्य कहते हैं—पहले ओंकार का उच्चारण कर, उसके बाद 'भूर्भुवःस्वः' उसके बाद अन्त में प्रणव का उच्चारण जप का यही उदाहरण होता है । प्रणव = ओङ्कार, और प्रणव = व्याहृतिः, गायत्री फिर, अन्त में प्रणव, इस तरह जप का क्रम है । अशौच में भी दस बार जप करना चाहिए । इस पर अश्वलायन का कथन है—'सूतक काल आने पर भी दस बार गायत्री जप करना चाहिए ।' अशुचि ही आशुचि कहा गया है । यह नित्य कर्म होने के कारण मलमास में भी दस बार जपना चाहिए । मत्स्यपुराण में—घर में जप का एक गुना फल, नदी में तिगुना फल कहा गया है, तीर्थ स्थान में सौ सहस्रगुना फल कहा गया है; शिवालय में जप का फल अनन्त कहा गया है ।

पद्मपुराण में गुटिका का फल कहा है—शङ्ख और पद्म की गुटिका पर जप का सौ गुणा अधिक फल मिलता है । इसी तरह मणियों पर हजार गुणा, इसी तरह पितौंकिया पर जप का सौ गुणा अधिक जप का फल मिलता है । पुत्रज्जीव = पितौझिया ।

शङ्ख का वचन—शङ्ख और मणियों की माला पर जप का सौ गुणा अधिक फल, मूंगा पर जप का फल हजार गुना अधिक, स्फटिक पर दस हजार गुणा, मोतियों की माला पर लाख गुणा अधिक, पद्म और रुद्राक्ष पर दस लाख, सोने की गुटिका वाली माला पर करोड़ गुणे अधिक, कुश की गांठ और रुद्राक्ष की माले पर जप का फल अनन्त गुणे अधिक होते हैं । प्रवाल का अर्थ मूंगा प्रसिद्ध है ।

शिवपुराण में लिखा है—रुद्राक्ष की माला एक सौ आठ गुटिका की, उसके बाद पचपन की या फिर अट्ठाईस गुटिका बनानी चाहिए ।

गुटिका का प्रमाण कहा गया है—जप की माला की गुटिका 'जायफर' के समान उत्कृष्ट होती है, उससे अवर कोटि की माला बेर की गुठली के बराबर की होती है । जाती फल का अर्थ जायफर होता है । एक सौ आठ बार ही हाथ पर जप करना चाहिए । इससे अधिक नहीं ।

करजप के क्रम में अगस्त्य संहिता में लिखा है—अनामिका अंगुलि के बीच को पोर से प्रारम्भ कर दायें क्रम से तर्जनी मूल तक दस पोर में दस बार जप करना चाहिए ।

मैथिली—आव जप क्रमक सम्बन्ध में योगि याज्ञवल्क्य कहने छथि—सर्व प्रथम ओङ्कारक उच्चारणकय तखन 'भूर्भुव स्व:' उच्चारण करी । तत्पश्चात् गायत्री पुन: अन्त में प्रणवक उच्चारण करी । प्रणवम् = ओङ्कार, जेना प्रथम प्रणव अर्थात् ओङ्कार, तकरवाद व्याहृति = अर्थात् गायत्रीक सङ्ग जपल जायवाला मन्त्र विशेष यथा 'भूर्भुव: स्व:' तत्पश्चात् गायत्री, पुन: अन्त में ओङ्कार जपक क्रम एतवहि अछि । अशौचो में दसवेर जप करवाक चाही ।

अहि सन्दर्भ में आश्वलायन—अशौचकाल उपस्थित भेला उत्तर सबेरि गायत्री मन्त्रक जप कय लेवाक चाही । आशुचि = अशौच, तिष्ठन् = ठाढ होयत, नित्यत्व भेजे गायत्री जप मलमासो मे दस बेरि जपवाक चाही ।

मात्स्यपुराण में—घर में जपक फल एक गुण होयत अछि । नदी में तीन गुणा अधिक, तीर्थस्थान में शत सहस्रगुणा अधिक, शिवक सामीप्य में अनन्त गुणा अधिक फल होयत अछि । पद्मपुराण में जप गुटिकाक प्रमाण कहलगेल अछि—शङ्ख एवं पद्मक मालापर शतगुणा, मणिक माला पर सहस्रगुणा अधिक पितौंझियाक माला पर शतगुणा अधिक फल मन्त्र जप करनिहार के होयत छैन्हि । पुत्रञ्जीव: = पितौंझिया प्रसिद्ध अछि ।

शङ्खक वचन अछि—शङ्ख एवं मणिक माला पर शतगुणा अधिक, मूंगाक माला पर हजार गुणा अधिक, स्फटिकक माला पर दस हजार गुणा अधिक, मोतीक माला पर लाख गुणा अधिक, पद्म एवं रुद्राक्ष पर दस लाख गुणा अधिक, सोनाक माला पर करोड़ गुणा अधिक, कुशकगांठ एवं रुद्राक्ष पर अनन्त फल कहलगेल अछि । प्रवालक अर्थ मूंगा अछि ।

शिवपुराण में—एक सौ आठ दानाक माला, पचपन दानाक माला, अथवा अट्ठाईस दानाक रुद्राक्षक माला बनयवाक चाही ।

गुटिकाक प्रमाण कहलगेल अछि—जपमालाक रुद्राक्षकआकार 'जायफर' एतेक टा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहलगेल अछि । वेरक गुठलीक आकारक जप मालाक रुद्राक्ष ओकरा अपेक्षा कम महत्त्व पूर्ण होयत अछि । जाती फलक अर्थ जायफर प्रसिद्ध अछि। एक सई आठ सँ अधिक हाथ पर जप नहिं करवाक चाही। करजपक क्रम अगस्त्यसंहिता में कहलगेल अछि—अनामिका आंगुरिक मध्य पोर सँ प्रारम्भकरि दक्षिण क्रम सँ तर्जनीक मूल धरि दसवेरि जप करवाक चाही ।

विमर्श:—अथाङ्गुरीयकधारणस्यावश्यकत्वमुक्तं कृत्यमहार्णवे लघुहारीतेन—
जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे । अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्ण रजतै: कुशै: ।

एषामेकस्यापि धारणे दोषवारणमिति सरोजसुन्दरे—
बिना दर्भेण या सन्ध्या यच्च दानं विनोदकैः । असंख्यातञ्च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।

कृत्यमहार्णवे याज्ञवल्क्येन—
विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना नरः । फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हितस्य तद् ।।
दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च । साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरे योऽन्यथा भवेत् ।।
एतान्येव तु कर्माणि दानादिनि विशेषतः । अन्तर्जानु विशेषेण तद्वदा च मनं नृप ।।

जपयज्ञस्य प्राधान्यमुक्तं मनुना—
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः । सर्वे ते जप यज्ञस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
श्रीमद्भगंवद्गीतायां श्रीकृष्णेनोक्तम्—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ।' उच्चैर्जपकरणे दोषः—

विशुद्धेश्वरतन्त्रे— मनसा यः स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत् ।
उभयं निष्फलं याति भिन्नभाण्डोदकं यथा ।।

मालास्वरूपमाह देवीभागवते— रुक्मं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ।
मेंरुमूर्धमुखं कुर्यात् तदूर्ध्वं नागपाशकम् ।
एवं संग्रथिता मालामन्त्रसिद्धिप्रदायिनी ।।'

तत्रैव तत्सूत्रमुक्तम्— रक्तवर्णैः सितैर्मासैः कृतरन्ध्रविदर्भितैः ।
अक्षसूत्रं प्रकर्त्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति ।।

आकाशभैरवे—मालासूत्रे ग्रन्थिविधिरुक्तो यथा—

सार्द्धग्रन्थित्रयं देवि, ब्रह्म ग्रन्थिप्रकीर्त्तिताः । सार्द्धग्रन्थद्वयं देवि नागपाशः प्रकीर्त्तितः ।।

संमोहनतन्त्रे यथा—
गोमुखादौ ततो मालं गोपयेन्मातृजारवत् । कौशेयं रक्तवर्णं च पीतवस्त्रं सुरेश्वरि ।।
अथ कार्पासवस्त्रेण यजतो गोपयेत्सुधीः । वाससा छादयेन्मालां सर्वं मन्त्रे महेश्वरि ।।
तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेत् न विधूनयेत् । न स्पृशेत् वामहस्तेन करभ्रष्टां न कारयेत्
जीर्णो सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा तु कारयेत् । प्रमादात् पतितां हस्ताच्छतमष्टोत्तरजपैः ।।

अथ मालाभेदाः—
स्फटिकेन्द्राक्ष रुद्राक्षपुत्रजीवसमुदभवैः । अशमाला हि कर्त्तव्या उत्तमा ह्युत्तरोत्तरा ।।

तत्र रुद्राक्षमालायां शक्तिमन्त्रजपदोषः—
रुद्राक्षैः शक्तिमन्त्रं च मन्त्रो यः प्रजपेत् प्रिये । स दुर्गतिमवाप्नोति निष्फलस्तस्य तज्जपः ।।

अस्यापवादः कौमारतन्त्रे—
कालिकाछिन्नमस्ता च त्रिपुरातारिणी तथा । एताः सर्वाः न दुष्यन्ति जपे रुद्राक्षमालया ।।

नित्यकृत्यार्णवे कुमारसंहितायाञ्च मालाशुद्धिकरणे—
संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः । कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधी ।।
गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् । अथवा पञ्चगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम् ।।

तन्त्रान्तरे आसननियमः—
काम्यार्थं कम्बलं चैव श्रेष्ठं तद्रक्तकम्बलम् । कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ॥
कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्याविचारणा । धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं दारुणासने ॥
वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिपीडनम् । तृणासने यशोहानिः पल्लवे वित्तविभ्रमः ॥
जपध्यानं तपोहानिर्वस्त्रासनमितीरितम् ॥ इति ।

कर्मयुक्तस्य नाभेरधः स्पर्शनिषेधः—तत्र बौधायनः—

'कर्मयुक्तो नरो नाभेरधः स्पर्शं विवर्जयेत् ।' आयसपात्र भोने निषेधः—

आयसस्य च पात्रेण यदन्नमुपनीयते । भोक्ता विष्ठा समं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥

कालविशेषेण सायंसन्ध्यानिषेधः कर्मोपदेशिन्याम्—
संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे । सायं सन्ध्या न कुर्वीत कृते च पितृहा भवेत् ॥

अथ तर्पणम्—तत्र मृतपितृकस्याधिकारः। जीवत्पितृकस्य मृतमातृकस्य च देवर्षितर्पणे मातृतर्पणे चाधिकारः । पितुः संन्यासादिना पातित्येन वा तर्पणानर्हत्वे जीवत्पितृकोऽपि पितामहादितर्पणं कुर्यात् । तथा हि याज्ञवल्क्यः—

'यदि स्याज्जीवत्पितृक एतान्दिव्यान् पितॄंस्तथा ।
येभ्यो वापि पिता दद्यात्तेभ्यो वापि च दापयेत् ॥
ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्ज्जिते ।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥'

इति कात्यायनेनापि तस्य पितामहोपक्रमप्रतिपादनात् । पितुरसत्त्वे च सुतरामिति द्वैतपरिशिष्टम् । तर्पणमुपक्रम्य वर्द्धमानः—

'बिना रूप्यसुवर्णाभ्यां बिना ताम्रतिलैस्तथा ।
बिना दर्भैश्च मन्त्रैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥' इति ।

द्वैतनिर्णये— 'जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे ।
अशून्यं तु करं कुर्याद्धिरण्यरजतैः कुशैः ॥'

इति वचनात् दक्षिणहस्तानामिकायां हिरण्यरजतकुशा धार्याः ।

देवीपुराणे— 'अनामिकायां तद्धार्यं दक्षिणस्य करस्य च ॥' इति ।

तर्जन्यां रजतं धार्यमिति प्रवादो निर्मूल एव । स्मृतिः—

'तर्पयेद्देवतानां च सव्यं कृत्वा समाहितः ।
अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणे द्विजाः ॥
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
तृप्यतामिति सेक्तव्यं नामगोत्रेण वाग्युतैः ॥'

सव्येन वामेन तथा च वामहस्तयुतदक्षिणहस्तेन तर्पयेदिति भावः ।

स्मृतिः—‘कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम् ।
तर्पितास्तेन पितरस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिभिः ।।’

कायस्थैः अङ्गस्थैः—‘अङ्गस्थैर्न तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम् ।
रुधिरं तु भवेत्तोयं प्रदाता किल्बिषी भवेत् ।।’

इति वचनैकवाक्यत्वात्तर्पणं स्थले एव, न जले । तथा हि कात्यायनः ‘उत्तीर्य वाससी परिधायेति’ । अन्यच्च—

‘उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।
उत्तीर्य च शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ।।’

इति स्थलाशुचित्वे जलेऽपि इत्यनुपदमुक्तं प्राक् वाजसनेयिनामिदम् । छन्दोगानामनियमः । कुशोपरि तर्पणं, न तु भूमौ । तथा च तीर्थचिन्तामणौ—

‘आस्तीर्य च कुशान् साग्रान् तानावाह्य च मन्त्रतः ।
प्राचीनाग्रेषु देवांस्तु दक्षिणाग्रेषु वै पितॄन् ।।
देवान् पितॄंस्तथा चान्यान् सन्तर्प्याचम्य वाग्यतः ।
भूम्यां यद्दीयते तोयं दाता चैव कुले स्थितः ।।
वृथा तन्मुनिशार्दूल नोपतिष्ठति कस्यचित् ।
स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः ।।
नोपतिष्ठेत्पितॄणां तु सलिलं तन्निरर्थकम् ।’

पाद्मे— ‘तर्पयेत्तिलतोयाभ्यां सम्यगञ्जलिसंख्यया ।
एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ च सनकादयः ।।
अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन् स्त्रियं त्वेकैकमञ्जलिम् ।।’ इति ।

एतेन पित्रादिषट्पुरुषेषु प्रत्येकमञ्जलित्रयम् तद्भिन्नानामेकैकमञ्जलिमिति। अमुकगोत्रः पिता अमुकशर्मा तृप्यतामिति वाक्यम्। तथाहि गोभिलः—

‘शर्मन्नर्घादिके कार्ये शर्मा तर्पणकर्मणि ।
शर्मणोऽक्षयकाले स्यादेवं कुर्वन्न मुह्यति ।।’ इति ।

अक्षयकालेऽक्षयोदके । अन्यच्च—

‘तृप्यतामिति वेक्तव्यं नामगोत्रेण वाग्युतैः’ ।

अत्र पुरुषषट्स्त्रीषट्कयोर्नित्यं तर्पणमिति द्वैतनिर्णयः । स्मृतिः—

‘नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना ।
नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूमौ न प्रदीयते ।।’

भूमाविति भूमिस्थितकुश इत्यर्थः । अतो न पूर्ववचनविरोधः । गौतमः —‘नित्यं स्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानं च यथोत्साहमन्यत्’ । मनुः—

'यदेव तर्पयेदद्भिः पितृंस्नात्वा द्विजोत्तमः ।
तेनैव सर्वमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ।।'

इति वचनाभ्यामशक्त्यादिना वैश्वदेवाद्यकरणे न दोषः काम्यत्वात् ।।

हिन्दी—अब तर्पण—पिता के मरने के बाद ही व्यक्ति को तर्पण का अधिकार है । जीवित पिता एवं मृत माता वाले व्यक्ति को देवता, ऋषि तथा माता के तर्पण का अधिकार है । पिता के सन्यास लेने से, या व्यक्ति के पतित होने से तर्पण करने लायक नहीं रहने पर पिता के जीवित रहने पर भी पूर्वजों का तर्पण करना चाहिए ।

उदाहरणस्वरूप याज्ञवल्क्य—यदि पिता जीवित हों तो भी इन देवताओं को, पितरों को अथवा जिन्हें पिता जल देते हों उन्हें जल देना चहिए । ब्राह्मणादि से पिता के बध किये जाने पर, पतित हो जाने पर या साथ छूट जाने पर अथवा किसी तरह की उलट-फेर होने पर या मर जाने पर पिता जिनका तर्पण करते थे, उनका तर्पण पुत्र को भी करना चाहिए ।

इस तरह कात्यायन के द्वारा भी उनके पितामह के उपक्रम प्रतिपादन से पिता के अनवस्थान में तर्पण द्वैतपरिशिष्ट के अनुसार स्वतःसिद्ध होता है । तर्पण का उपक्रम कर वर्धमान ने कहा है—चाँदी, सोना, ताम्बा, तिल, कुश एवं मन्त्र के बिना पितृकर्म नहीं करना चाहिए ।

द्वैतनिर्णय में—जप, होम, दान तथा स्वाध्याय एवं पितृतर्पण हाथ में सोना, चाँदी एवं कुश रखकर ही करना चाहिए । इस वचन से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुलि में सोने, चांदी या कुश धारण करना चाहिए ।

देवीपुराण में—दाहिने हाथ की अनामिका में इन्हें धारण करना चाहिए । तर्जनी अंगुलि में चाँदी धारण करना चाहिए, इससे यह किंवदन्ती भी सर्वथा निरर्थक सिद्ध होती है ।

स्मृति—द्विजगण एकाग्रचित होकर तथा बाँये कंधे पर यज्ञोपवीत रखकर पहले देवताओं के तर्पण के अधिकारी होते हैं, पीछे पितृतर्पण के । पीछे पीठ की ओर स्पर्श करते हुए बाँयें हाथ से दाहिने हाथ का स्पर्श करते हुए नाम एवं गोत्रोच्चारण कर मन्त्र के साथ तर्पण करना चहिए ।

सत्येन = बाँये हाथ से, तथा बाये हाथ युत दाहिने हाथ से तर्पण करना चाहिए यही इस कथन का आशय है । स्मृति—जन्मदिन में मोहवश जो तिल से पितरों का तर्पण करता है, वे पितरों को तिल नहीं माँस, रुधिर, हड्डी एवं चमड़ी से तर्पण करते हैं । कायस्थेः = अंग के ।

जन्म दिन में तिल से देवता और पितरों का तर्पण नहीं करना चाहिए । ऐसा करने पर पानी लहू बन जाता है तथा जलदाता पाप भागी बन जाते हैं ।

इस वचन की एक वाक्यता से तर्पण स्थल अर्थात् धरती पर ही करना चाहिए न कि जल में । उदाहरणस्वरूप कात्यायन के निम्नलिखित वचन ध्यान देने योग्य हैं—'पानी से बाहर निकलकर वस्त्र पहनकर ।' और भी—जल में जल से पितरों का तर्पण कभी नहीं करना चाहिए । पानी से बाहर निकलकर पवित्र भूमि पर जल से तर्पण करना चाहिए ।

शब्द प्रति शब्द कुछ ही पहले यह कहा गया है कि धरती अपवित्र रहने पर जल में भी तर्पण करना चाहिए, किन्तु यह नियम वाजसनेयियों के लिए ही है न कि छन्दोगियों के लिए । कुश के ऊपर ही तर्पण करना चाहिए न कि धरती पर । जैसे कि तीर्थचिन्तामणि में—कुशों को अग्रभाग सहित बिछाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक देवताओं, ऋषियों एवं पितरों को आवाहित कर कुश के पूरब के अगले छोर पर देवताओं को और दाहिने छोर पर पितरों को तथा अन्य तर्पण जल पाने के अधिकारियों को वाक्योंच्चारपूर्वक आचमन कर तर्पण करना चाहिए ।

जो मनुष्य घर मे रहकर धरती पर जो जलदान करते हैं; उनका वह जलदान निरर्थक होता है; क्योंकि उसे ग्रहण करने के लिए कोई पितर वहाँ उनके पास नहीं ठहरते । पद्मपुराण में—अञ्जलि की निम्नलिखित उचित संख्या के अनुसार तिल, जल से तर्पण करना चाहिए । देवताओं को एक-एक अञ्जलि, और सनकादि को दो-दो अञ्जलियाँ, पितरों को तीन-तीन अञ्जलियाँ तथा स्त्रियों को एक-एक अञ्जलि तिल जल देना चाहिए । इति ।

इससे यह सिद्ध होता है कि पित्रादि छ: पुरुषों में प्रत्येक को तीन-तीन अञ्जलियाँ तिल जल देना चाहिए । पितरों से भिन्न को एक अञ्जलि तिल जल देना चाहिए । अमुक गोत्र के पिता अमुक शर्मा तृप्त हों, यही वाक्य है।

जैसे गोभिल ने कहा है—अर्घादि कार्य में शर्मन् उच्चारण करना चाहिए, तर्पण कर्म में अमुक शर्मा कहना चाहिए । इस तरह शर्मा उच्चारण कर कभी न चुकने वाले समय तक तर्पण करते हुए कभी मोह ग्रस्त नहीं होते । अक्षय्यकाले = अविनाशी जल में । और भी नाम, गोत्र के उच्चारण के साथ तृप्यताम् इस शब्द से जल सिञ्चन करना चाहिए । यहाँ छ: पुरुषों का नित्य तर्पण करना चाहिए । यह द्वैतनिर्णय का मत है ।

स्मृति के मत में—जल में नहीं, किसी पात्र में नहीं, क्रुद्धावस्था में नहीं, एक हाथ में नहीं जल देना चाहिए । वह जल कभी नहीं ठहरता जो

धरती पर नहीं दिया जाता है । भूमों का अर्थ यहाँ धरती पर बिछे कुश से है। अत: इससे पूर्व वचन का विरोध भी नहीं होता है ।

गौतम—स्वाध्याय और पितरों को जलदान प्रतिदिन उत्साहपूर्वक करना चाहिए । मनु—जो द्विजश्रेष्ठ स्नानकर पितरों को धरती पर तर्पण करते हैं वे ही पितृयज्ञ क्रिया का सारा फल प्राप्त करते हैं इन वचनों के अनुसार असक्त रहने पर वैश्व देवादि कर्म न करने पर भी किसी तरह का दोष नहीं होता है । क्योंकि, ये कर्म काम्य हैं ।

मैथिली—आव तर्पणक सम्बन्ध में—

पिताक मृत्युक उपरान्त व्यक्ति तर्पणकरवाक अधिकारी होयत छथि । यदि पिता जीवित रहथि एवं माताक मृत्यु भऽजान्हि, तखन ओ व्यक्ति देवता, ऋषि एवं माताक तर्पणक अधिकारी होयत छथि । पिताक संन्यासी भऽगेने, व्यक्ति के स्वयं पतित भऽगेने, तर्पण अधिकार नहियो रहला उत्तर, पिताक जीवितो रहला पर, पिता महादिकतर्पण करवाक चाही । उदाहरणस्वरूप याज्ञवल्क्यक कथन—

पिताक जीवित रहलो उत्तर, देवता, ऋषि एवं पितरक अथवा पिता जिनक तर्पण करैथि, हुनका सभक तर्पण पुत्रोंकें करवाक चाही । ब्राह्मणादिसँ मारलगेल पिता, पतित, सङ्गछूटल, क्रम भंग भेल स्थिति में पिता जिनक तर्पण करैत छलाह हुनक तर्पण पुत्रो के करवाक चाही । कात्यायन द्वारा अहितरहें प्रतिपादित एवं हुनक पितामहादिक उपक्रमक प्रतिपादन सँ तथा द्वैतपरिशिष्टक अनुसार, पिताक अनवस्थानों में पुत्रक तर्पणक अछि । कार स्वत: सिद्ध होयत अछि ।

तर्पणक उपक्रम कय वर्धमानक वचन अछि—बिना चाँदी, सोनक, बिना ताम्बा एवं तिलक, बिना कुश एवं मन्त्रक पितृकर्म नहि करवाक चाहि । द्वैतनिर्णय में—जप, होम, दान, स्वाध्याय एवं पितृतर्पण हाथ में, सोन, चांदी, अथवा कुशक अगूंठी पहिर करवाक चाही । अहि वचन सुँ दहिना हाथक अनाभि आंगुरि में सोन, चाँदी एवं कुश धारण करवाक चाही । देवीपुराणक वचन अछि—दक्षिणहाथक अनामिका आंगुरि में ई सब धारण करवाक चाही । 'तर्जनी में चांदी पहिरवाक चाही' ई किंवदन्ती सर्वत: अहिवचन सँ निरस्त भऽजायत अछि । स्मृतिक वचन अछि—

एकाग्रचित्त सँ सव्यभय देवताक तर्पणक अधिकारी बनी तत्पश्चात् पितृतर्पणक द्विजगण अधिकारी होयत छथि । पीठक दिश सव्यभय दाहिन हाथ सँ स्पर्श करैत मन्त्रयुक्त नाम गोत्रक उच्चारण करैत 'तृप्यताम्' कहैत जलदान करी । सव्येन अर्थात् वामेन = अर्थात् वाम हस्त युक्त दाहिन हाथ सँ तर्पण करवाक चाही । स्मृतिक वचन अछि—भ्रन्तिवश जे व्यक्ति जन्म दिन में तिललऽके पितृ तर्पण करैत छथि, हुनक पितर तिल सँ नहि, त्वचा, मांस, रुधिर एवं अथि सँ तर्पित होयत छथि । कायस्थ = अङ्गस्थ । अर्थात् जन्म दिन । देवता एवं पितरक

तर्पण तिल लऽके जन्मदिन में नहि करवाक चाही । जे व्यक्ति एहन करैत छथि हुनक देल जनजल रुधिर भऽ जायत छैन्हि एवं दाता पाप भागी बनैत छथि । अहि वचनक एकवाक्यता सँ तर्पण धरती पर करवाक चाही जल में नहि ।

उदाहरण स्वरूप कात्यायनक ई वचन—'जल सँ बाहर निकलि वस्त्र पहिर' दोसरो वचन—जल में पितरक जल दान कदापि नहि करी । जल सँ बाहर निकलि पवित्र धरती पर जल सँ तर्पण करवाक चाही । अहि तरहें, अहि सँ अनुपद पूर्व में कहलगेल अछि जे धरती जो अपवित्र होय तऽ जल में जल तर्पण करवाक चाही । किन्तु, ई नियम वाजसनेयिक लेक अछि छन्दोगकलेल नहि । तर्पण कुश पर करवाक चाही, धरती पर नहिं । उदाहरणस्वरूप तीर्थचिन्तामणि में—अग्रभागक साथ कुशक विछाय इनका सभक मन्त्र द्वारा आवाहित कय कुशक पूर्वीय छोर पर देवताक; दक्षिणी छोर परपितरक तथा हिनक संग अन्य तर्पणाधिकारी के मन्त्रोच्चार पूर्वक आवाहित कय तर्पण कय आचमन करी । अपन घर में अवस्थित जे व्यक्ति धरती पर तर्पण करैत छथि, हे सर्वश्रेष्ठ मुनिवर, हुनक जलदान व्यर्थ होयत छैन्हि, कियेकतऽ हुनक जल ग्रहण करऽवाला ओहिठाम क्यो गोटे नहिं रहैत छथि ।

जे व्यक्ति धरती पर वैसि तर्पण करैत छथि हुनक जल ग्रहण करवाकलेल पितर ओहिठाम नहि रहैत छथिन, हुनक तर्पण निरर्थक होयत छैन्हि ।

पद्मपुराण में—निम्नलिखित उचित संख्या में आंजुरि बांधि तिलक संग जल देवाक चाही यथा—एक एक आंजुरि देवताके, दुइ दुइ आंजुरि सनकादि ऋषि कें, तीनि–तीनि, आंजुरि पितरकें, नारी लोक नि के एक एक अंजुरि जल—तिल देवाक चाही । इति । एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि जे पिता सँ लय कें छः कुर्सी धरि प्रत्येक के तीनि-तीनि आंजुरि तिल जल देवाक चाही, शेष कें एक एक आंजुरि । अमुक गोत्रक पिता अमुक शर्मा तृप्त होयथु । ई वाक्य भेल ।

उदाहरण स्वरूप गोभिलक वचन—अर्घादि कार्य में 'शर्मन्' तथा तर्पण में शर्मा कहवाक चाही । शर्माक ई अविनाश जल होय । एहन करनिहार व्यक्ति कदापि दुखी नहि होयत छैथि । इति । अक्षयकाले = अविनाशी जल मे । आओर दोसर—'नाम एवं गोत्रक उच्चारण करैत 'तृप्यताम्' कहैत जलक तर्पण करी ।' द्वैतनिर्णयक अनुसार छः कुर्सी पुरुषवर्ग एवं स्त्री लोकनिक नित्य तर्पण करी ।

स्मृतिक वचन अछि—तर्पण न जल में करी, न कोनो पात्र में करी, न क्रोधावस्था में करी, न एक हाथे करी । ओ जल पैठनहि होयत दैन्हि जे धरती पर नहि देल जायत अछि । अहिठाम 'भूमौ' सँ तात्पर्य होयत अछि धरती पर राखल कुश पर तर्पण । तॉय पूर्वकथित वचन एकरा सँ विरोधो नहिं होयत अछि । गौतम मुनिक कथन अछि—उत्साहपूर्वक प्रतिदिन स्वाध्याय एवं पितृतर्पण करवाक चाही । मनुक कथन—जे द्विज श्रेष्ठ स्नानोत्तर प्रतिदिन जल सँ पितरक तर्पण

करैत छथि, ओ पितृयज्ञ क्रियाक समग्रफल अनायास प्राप्त करैत छथि । अहि दुहू वचनक अनुसार जे व्यक्ति अशक्त ओ यदि वैश्व देवादि नहि कऽ पावैत छथि तऽ जो दोष भागी नहि भऽ सकैत छथि । कियैकतऽ ई काम्य मानलगेल अछि ।

विमर्श:—पितृकर्मणि कुशमहत्त्वमुक्तं व्यासेन—

तर्पणादीनि कार्याणि पितृणां यानि कानिचित् ।
तानि स्यु: द्विगुणै: दर्भै: सप्तपत्रै: विशेषत: ।। इति ।

अथ धौतवस्त्रपरिधानविषये कृत्यशिरोमणिधृतगोभिलसूत्रे—
एकवस्त्रेण यत्स्नानं सूच्याविद्धेन चैव हि । स्नानेन न भवेच्छुद्धि: श्रिया च परिहीयते ।

अत एव स्नानं तर्पणपर्यन्तं कुर्यात् केन वाससेति ।

तिलतर्पणनिषेधोऽत्र—शालङ्कायन:—सप्तम्यां भानुवारे च गृहे जन्मदिने तथा ।
भृत्यपुत्रकलत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ।।

कात्यायनेनास्य प्रतिवादोऽप्येवमुक्त:— उपरागे पितु:श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे ।
निषेधेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ।।

तर्पणात्पूर्व वस्त्रनिष्पीडनानिषेधोऽत्र योगियाज्ञवल्क्येन—
'स्नात्वैवं वाससीधौते अक्लिन्नें परिधाय तु । प्रक्षाल्यैकं मृदाद्भिश्च हस्तौ प्रक्षालयेत्तत: ।
नि:पीडयति य: पूर्वं स्नानवस्त्रं तु तर्पणात् । निराशास्तस्य गच्छन्ति देवा: पितृगणै: सह ।

विष्णुपुराणेऽपि:— जल मध्ये तु य: कश्चित् द्विजातिर्ज्ञानदुर्बल: ।
निष्पीडयति चेद्वस्त्रं स्नानं तस्य वृथा भवेत् ।।

केन प्रकारेण तर्पणकर्त्तव्यमित्याह हारीतेन—
आर्द्रवासा जले कुर्यात् तर्पणाचमनादिकम् । शुष्कवासा जले कुर्यात् तर्पणाचमनं जपम् ।

निर्णयस्यास्य विपरीताचरणे दोषमाह विष्णु:—
स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयेच्छेदुदकं नर: । नोपतिष्ठति यद्वारिपितृणां तन्निरर्थकम् ।।

अन्तर्जानुगतौ हस्तौ कृत्वा तर्पण कुर्यादिति नित्यकृत्यमालायाम्—
'तत्सर्व निष्फलं याति बहिर्जानु च यत्कृतम् ।'

हस्तद्वयमिलितेनैव तर्पणं कुर्यादित्याह यम:—

श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना । उभाभ्यां तर्पणे कुर्यात् एष धर्मो व्यवस्थित: ।
अन्यच्च—हस्तौ कृत्वा संयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ।
गोश्रृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ।।

नृसिंहपुराणानुसारेण देवपूजानन्तरं वैश्वदेवाख्यं कर्म कुर्यात्—
पौरुषेण तु सूक्तेन तत्र विष्णुं समर्चयेत् । वैश्वदेवातत: कुर्यात् बलिकर्म तत: परम् ।

याज्ञवल्क्यमतानुसारेण—'एते पञ्चमहायज्ञा अहरह: कर्त्तव्या नित्यत्वादिति' ।

अथ देवपूजा

तत्र विहितासनमाह व्यासः—

'कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च ।
दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेत् ।।
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।'

कौशेयं कुशासनम्, अजिनं मृगादिचर्म । दारुजं काष्ठसम्बन्धि । शारदातिलके—

'वस्त्रासने रोगनाशं चित्रकं विष्टरं शिवे ।'

व्यासः— 'वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिजं भयम् ।
धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रदारुके ।।
तृणे धनयशो हानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।'

पञ्चोपचारमाह आचारचन्द्रोदये—

'सपर्या विविधाः प्रोक्तास्तासामेकां समाश्रयेत् ।
गन्धादिका नैवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिकी ।।'

सपर्या पूजा गन्धादिकेति गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः पञ्चोपचारिकीत्यर्थः । पुनश्च तत्रैव—'आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनं तथा ।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च ।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यं चन्दनं तथा ।। इति ।'

तथा च आसनादिषोडशभिः पूजा षोडशोपचारा इति भावः । पराशर-भाष्ये— 'शिवार्चनं सदाऽप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ।'

सदेति दिवसे रात्रौ चेत्यर्थः ।

शिवभिन्नसर्वदेवकार्यं दिवसे प्राङ्मुखः रात्रावुत्तरमुखः । द्वैतपरिशिष्टे प्रातः प्राङ्मुखेनेति । पराशरभाष्ये—

'रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव हि ।।' इति ।

हिन्दी—अब देवपूजा—देवपूजा के लिए सुव्यवस्थित आसन के सम्बन्ध में व्यास ने कहा है—कुशासन, कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, काठ का, ताड़ के पत्ते का आसन बनाना चाहिए । कौशेयम् = कुश का आसन, अजिनम् = हिरण आदि के चर्म, दारुजम् = काठ के बने ।

शारदातिलक में—वस्त्र के आसन पर रोग का नाश, चित्रक वृक्ष अथवा चितकबरे आसन कल्याणकारी होते हैं । व्यास ने लिखा है—बांस के

आसन पर बैठकर पूजा करने से दरिद्रता होती है, पत्थर के आसन पर रोग भय होता है, सूराखवाली लकड़ी के आसन पर दुर्भाग्य, धरती पर दुःख की उत्पत्ति होती है, खरपात या घास के आसन पर यश एवं धन की हानि होती है, और पत्ते के आसन पर पागलपन का भूत सवार होता है ।

पञ्चोपचार पूजा के सम्वन्ध में आचारचन्द्रोदय में लिखा है—पूजा अनेक तरह की कही गई है; उनमें किसी एक विधि की पूजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । यहाँ गन्धादिक से तात्पर्य है—गन्ध, पूष्प, धूप, दीप और नैवेद्य, इन पाँच वस्तुओं को अर्पित कर जो पूजा करते हैं, वह पञ्चोपचार पूजा कहलाती है । सपर्या = पूजा, गन्धादिकेति = गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य—यही पञ्चोपचारिकी पूजा है ।

और फिर वहाँ ही—आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, पुनः आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप नैवेद्य तथा चन्दन । इति । जैसा कि ऊपरलिखित इन सोलह उपकरणों से की जाने वाली पूजा षोडशोपचार पूजा कहलाती है ।

पराशर भाष्य में—शिव की पूजा सदैव पवित्र होकर उत्तर मुँह करनी चाहिए । यहाँ सदा से तात्पर्य दिन और रात में है । शिव से भिन्न सारे देवताओं की दिन में पूरब मुख करनी चाहिए और रात में उत्तरमुख ।

द्वैतपरिशिष्ट में—प्रातः काल में पूरब की ओर मुँह करके ही पूजा करनी चाहिए । किन्तु, पराशर भाष्य में—सदैव देव कार्य रात में उत्तरमुख करना चाहिए ।

मैथिली—देवपूजा—देव पूजाकलेल उचित आसनक सम्बन्ध में व्यासक वचन—देवपूजाकलेल कुश, कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, काठ अथवा ताड़पातक आसन बनयवाक चाही । कौशेयम् = कुशक आसन; अजिनम् = मृगादिक चाम । दारुजं = काठक वस्तु । शारदातिलक में—कपड़ाक आसन रोग नाशक होयत अछि । चितकबरा आसन कल्याणकारी होयत अछि ।

व्यासक वचन—बाँसक आसन पर बैसने दरिद्र होय । पाथर पर वैस कय पूजा कयने रोगक भय होय । धरती पर दुःख क उत्पत्ति, छिद्रवाला काठक आसन पर दुर्भाग्य होय । खरऽपात पर धन एवं यशक हानि । पातक आसन पर चित्तक विक्षिप्ति होय । आचार चन्द्रोदयक अनुसार पञ्चोपचार पूजा—पूजा अनेक विध होयत अछि, ताहि पूजा में कोनो एक तरहक पूजाकं आश्रय ग्रहण करवाक चाही । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेध ई पाँच उपकरण सँ कयल पूजा पञ्चोपचार कहवैत अछि । सपर्याक अर्थ पूजा । गन्धादिक अर्थ = गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य सँ पूजा, ई पञ्चोपचारक अर्थ भेल । पुनः ओहिठाम—आसन,

स्वागत, अर्घ, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा चन्दन, ई सोलह उपकरणक पूजा षोडशोपचार पूजा होयत अछि । पराशर भाष्य में—पवित्र भाव सँ उत्तर मुख भय सर्वदा अहि तरहें शिवक पूजा करवाक चाही । सदाक अर्थ भेल दिन एव रात्रि में । शिवभिन्न सभदेव कार्य दिन में पूर्व मुख करवाक चाही । रात्रि में उत्तरमुख में । द्वैतपरिशिष्ट में—प्रातः पूर्वाभिमुख पूजनकरी । पराशर भाष्ये—रात्रि में सदैव उत्तर मुख देव कार्य करवाक चाही । इति ।

विमर्श:—पूजाकाले वामभागे कर्मपात्रस्थापनम्—पञ्चदेवता पूजा पद्धतौ—

भोजने तु यदा वामे पूजाकाले तु दक्षिणे । तत्कालं मदिरा तुल्यं अन्नं गोमांसभक्षणम् ।

आह्णिककृत्ये— पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्ठमधोमुखम् ।
यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम् ।।

तत्रैव—नाक्षतैरर्चयेत् विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।
न दुर्वया यजेत् दुर्गां बिल्वपत्रैर्न भास्करम् ।।

धूपदीपनैवेद्यदाने—

नैवेद्यं दक्षिणे वामे, पुरतो न च पृष्ठतः। दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो न च वामतः ।।
वामवस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे । निवेदयेत्पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भूषणम् ।।
प्रतिमादिषु यद्योग्यं गात्रे दातुञ्च तत्तनौ । दद्यादयोग्यं पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ।।

जपादिकरणे ब्रह्मवैवर्त्ते—

अग्र पृष्ठे वामभागे समीपे गर्भमन्दिरे । जपहोमनमस्कारान् न कुर्याद्देवातालये ।।
अग्रे मृत्युमवाप्नोति पृष्ठे त्वपचयः स्मृतः। वामभागे भवेन्नाशो दक्षिणे सर्वकामदः।।

पौरोहित्यकर्मपद्धतौ—तुलसीदशरात्राणि पञ्चरात्राणि बिल्वजम् ।
कमलं तु त्रिरात्राणि सर्वदा जान्हवीज़लम् ।।

कामनापरक आसनविषये इन्द्रजालविद्यासंग्रहे—

वश्ये मेषासनं प्रोक्तमाकृष्टिर्व्याघ्र चर्मणि । उष्ट्रासनं तथोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम् ।।
मारणं माहिषं चर्म मोक्षे हस्त्यजिनं भवेत् । शान्तौ मृगासनं प्रोक्तं गोचर्मस्तम्भने स्मृतम् ।।
अथवा कम्बलं रक्तं सर्वकर्मसु कारयेत् ।

शालग्राम शिलायां तुलसीपत्र विच्छेदो न कार्य । इत्युक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—

तुलसीपत्र विच्छेदं शालग्रामे करोति यः । तस्य जन्मान्तरे कान्ते, स्त्रीविच्छेदो भवष्यिति ।।
तुलसीपत्रविच्छेदं शंखे योहि करोति च । भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ।।

तुलसीपत्रत्रोटने निषिद्धदिनानि—

पूर्णिमायाममायाञ्च द्वादश्यां रविसंक्रमे । तैलाभ्यङ्गञ्च कृत्वा तु मध्याहने निशि सन्ध्ययोः ।।
अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्वि ता नराः। तुलसी ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः।

पाद्मे— न कदाचित्स्त्रिया: कार्यं शालग्रामस्य पूजनम् ।
भर्तृहीनाथ सुभगा सर्वलोकहितैषिणा ।।

अथ पुष्पे विशेषमाह—

'याचितं निष्फलं पुष्पं क्रयक्रीतं तु निष्फलम् ।'

स्मृति:— 'परकीयारामजातै: कुसुमैरर्च्चयेत्सुरान् ।'

तेन पापेन लिप्येऽहम्' इति बहुलाकथायाम् । आराम: पुष्पवाटिका । एतन्निषेध: काम्यपूजायामेव । नित्यपूजायां तु चौर्येणापि पुष्पग्रहणे न दोष: ।

'देवतार्थं तु कुसुममस्तेयं मनुरब्रवीत्' इति वचनात् ।

पारिजाते—'जलं पर्युषितं त्याज्यं पत्राणि कुसुमानि च ।
तुलस्यगस्तिबिल्वानां गाङ्गं वारि न दुष्यति ।।'

ज्ञानमालायाम्—'न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजोत्पल चम्पके ।
तुलस्यगस्तिवकुले विहवे गङ्गाजले तथा ।।
'न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च ।

स्कान्दे— 'पालाशं दिनमेकं च पंकजं च दिनत्रयम् ।
पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ।।'

पालाशमित्यादौ पर्युषितत्त्वेन न दुष्टमिति सर्वत्र योज्यम् । अन्यच्च—

'एकाहं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।
जलजं सप्तरात्राणि षण्मासं तुलसीदलम् ।।'

पूर्वदिने त्रोटितमुत्तरदिने पर्युर्षितपदवाच्यम् । भविष्ये—

'समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मण: स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतै: क्रयक्रीतै: कर्म कुर्वन् पतत्यध: ।।'

विष्णुधर्मोत्तरे—'समित्पुष्पकुशादीनि वहतो नाभिवादयेत् ।

वहत: उद्वहत:, अभिवादनं प्रणमादि, कुशादीनीत्यादिपदाज्जलादिपरिग्रह:।

तथा— 'देवोपरि धृतं यच्च वामहस्ते च यद्धृतम् ।
अधोवस्त्रधृतं यच्च जलेऽन्त: क्षालितं च यत् ।।
देवतास्तन्न गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यताङ्गतम् ।

अधोवस्त्रं परिधानवस्त्रम्, यदिति पुष्पमिति शेष: । स्मृति:—

'स्नानं कृत्वा तु यत्किञ्चित्पुष्पं चिन्वन्ति वै द्विजा: ।
देवतास्तन्न गृह्णन्ति भस्मीभवति दारुवत् ।।

इदं त्वह:स्नानविषयम् प्रात: स्नानानन्तरं दक्षेण पुष्पाहरणविधानादिति

द्वैतपरिशिष्टे । नारदीये—

'भृङ्गराजशमीबिल्वतुलस्यामलकी तथा ।
तमालं च हरौ पूज्ये पत्रषट्कं प्रशस्यते ।।'

हरौ विष्णौ । पुष्पमालायाम्—

'अपामार्गे शमीं दूर्वां शिंशपां तुलसीदलम् ।
बिल्वपत्रं मरुबकं शस्तं च खदिरं हरेः ।।'

अपामार्गं चिरचिरी मरुबकं मडुआ इति प्रसिद्धम् । पुनश्च तत्रैव—

'कुन्दं कुब्जमकर्णिकारतिलकं सेवन्तिका यूथिका
पुन्नागं करवीरनागबकुलं द्रोणं यवा पाटला ।
द्वे जात्यौ खदिरं कुसुंभकमलं नीपं कुरुण्टोत्पलं
मल्लीचम्पकमाधवीवकमिदं पुष्पं हरौ शस्यते ।।

कुब्जकं कुआ । कर्णिकारः कनैलः । सेवन्ती सेउती, यूथिका जूही, पुन्नागं नागकेसरं, नीपं कदम्बं, द्रोणं दनूफँ । यवा, उडहुल, पाटला पाँडरि, कुरुण्टः पीत पिअरी, उत्पलं कोका इति प्रसिद्धम् । ज्ञानमालायाम्—

'नाक्षतैरर्च्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।

गणाधिपो गणेशः ।

'यवाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः ।
केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शङ्करः सदा ।।'

तथा— 'गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव च दूर्वया ।
मुनिपुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्पयेत् ।।'

मुनिपुष्पैः अगस्तिपुष्पैः । पद्मपुराणे—

माघे चम्पकपुष्पेण योऽर्च्चयेत्कमलापतिम् ।
स गच्छेत्परमं धाम विमुक्तः सर्वपातकैः ।।'

स्मृतिः— 'भूमिस्पृष्टं न गृह्णीयात्शेफालीं बकुलं बिना ।'

शेफाली शृङ्गारहार इति, बकुलं मौलसरीति प्रसिद्धम् । तथाच शेफाली बकुलं च भूमिस्थितमपि ग्राह्यम् । अन्यत्पुष्पं न भूमिस्थं ग्राह्यमित्यर्थः ।

'न दोषः कलिकाभङ्गे पद्मचम्पकयोरपि ।'

इति वचनात्कमलचम्पकयोः कलिकात्रोटने न दोषः ।।

हिन्दी—अब फूलों की विलक्षणता के बारे में—मांगकर चढ़ाया गया फूल फलदायी नहीं होता; इसी तरह खरीदा गया फूल भी निष्फल होता है ।

स्मृति—'दूसरों के बगीचे में उत्पन्न फूलों से देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।' इसी के पाप में मैं डूबा हूँ ऐसा बहुला कथा में कहा गया है । आराम: = पुष्प वाटिका । यह निषेध उद्देश्य विशेष से की जाने वाली पूजा के लिए ही है, दैनिक पूजा के लिए चुराकर फूल चढ़ाने में भी दोष नहीं है । 'मनु के वचन के अनुसार देवताओं पर चुराकर भी फूल चढ़ाना चाहिए ।'

पारिजात में—बासी जल, फूल और पत्र छोड़कर देने योग्य है: तुलसी, अगस्त्य के फूल, बेल का फल तथा गङ्गा का जलवासी नहीं होते । इनके उपयोग में कोई दोष नहीं होते । ज्ञानमाला में—कमल, नीलकमल या कुकुद, चम्पा के फूल, तुलसी पत्र, अगस्त्य के फूल, मौलसिरी के फूल, बेल, तथा गङ्गा जल में बासी का दोष नहीं लगता । मालियों के घर में रक्खें फूल में भी बासी का दोष नहीं लगता ।

स्कन्दपुराण में—पलाश के फूल एक दिन, कमल तीन दिन, बेलपत्र पाँच दिन, तुलसी दस दस दिन तक वासी होने के कारण दूषित नहीं होते । पलाश इत्यादि में 'वासी होने के कारण दूषित नहीं होते' सभी जगह यह नियम लगाना चाहिए । और दूसरा भी—मात्र एक दिन चमूली के फूल, एक दिन और एक रात कनेर के फूल कमल सात रात और तुलसी दल छ: महीने तक वासी नहीं होते । पहले दिन तोड़े गये फूल दूसरे दिन वासी होते हैं—इस पद का यह अभिधेयार्थ है ।

भविष्यपुराण में—यज्ञीय लकड़ी, फूल और कुश प्रभृति का आहरण ब्राह्मण को स्वयं करना चाहिए । शूद्रों के द्वारा लाई गई या खरीदी गई ऊपर लिखित वस्तुओं से कर्म करने वाले ब्राह्मणों का अध:पतन हो जाता है ।

विष्णुधर्मोत्तर में—समिधा, फूल एवं कुश प्रभृति लादकर कहीं ले जाते हुए व्यक्ति को प्रणाम् नहीं करना चाहिए । बहत: = ढोते हुए । अभिवादनम् = प्रणामादि, कुशादीनि में आदि पद जलादि आहरण का वाचक है ।

और भी—देवता पर चढाये गये फूल, बायें हाथ में लिये फूल, कटि प्रदेश से नीचे पहनने के कपड़े में लपेटे गये फूल, पानी में धोये गये फूलों को देवता स्वीकार नहीं करते है । वे फूल निर्माल्य माने जाते हैं । अधोवस्त्र = परिधान वस्त्र । यत् पद पुष्पवाचक है ।

स्मृति—स्नान करने के बाद जो द्विज फूल चुनते हैं, उन्हें देवता स्वीकार नहीं करते हैं; वे लकड़ी की तरह जल कर राख हो जाते हैं । ये तो दिन में स्नान के विषय है । प्रात: स्नान के बाद दक्ष के पुष्पाहरण का विधान द्वैतपरिशिष्ट में है । नारदीय वचन है—भँगरा, छेंकुर या सफेद कीनार, बेल,

तुलसी, आमले और तमाल अर्थात् काला खैर या सदाबहार, इन छः पेड़ों के पत्ते से विष्णु की पूजा प्रशंसनीय मानी गई है ।

पुष्पमाला में—चिरचिरी, शमी, दूब, शीशम, तुलसी दल, बिल्वपत्र, महुआ, और खैर के पत्ते भगवान् विष्णु के लिए प्रसन्नतादायक हैं । अपामार्ग = चिरचिरी । मरुबकम् = मडुवा, प्रसिद्ध है । वहाँ ही फिर—चमेली, कुआ (सफेद रंग का एक फूल), कनिशा, लोध्रवृक्ष के फूल, सेउती, जूही, नाग-केशर, कनेर, मौलसिरी के फूल, सर्पगन्धा, दनूफ, (सफेद रंग का एक बसन्ती फूल) उडहुल, पाढर के फूल, दो रंग वाले एक बासन्ती फूल, कत्थे के फूल, केसर के फूल, कमल, कदम्ब, कटसरैया या कुटज के फूल, पिअरी, कोका, बेला, चम्पा, माधवी, और अगस्त के फूल ये भगवान् विष्णु को परम प्रिय हैं। कुब्जकम् = कुआ, कर्णिकार = कबैल, सेवन्तिका = सेउती, यूथिका = जूही, पुन्नाग = नाग केशर, नीपम्= कदम्ब, दोणम् = दनूफ, यक्ष = उडहुल, पाटला = पाढरि, करुण्ट = पियरी, उत्पल = कोका, इन नामों से प्रसिद्ध है ।

ज्ञानमाला में—अक्षत से विष्णु और तुलसी से गणेश की पूजा नहीं करनी चाहिए । गणाधिप: = गणेश । उड़हुल, चमेली, सिरिस, जुही, मालती, केतकी, भवपुष्प से शिव की पूजा नहीं करनी चाहिए ।

तथा—तुलसी से गणेश की पूजा नहीं करनी चाहिए, इसी तरह दूब से दुर्गा की, अगस्त्य से सूर्य की पूजा लक्ष्मी की कामना रखने वाले व्यक्ति कभी न करें । मुनिपुष्प का अर्थ अगस्त का फूल होता है । पद्मपुराण में—माघ महीने में चम्पा के फूल से जो विष्णु की पूजा करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर परम धाम प्राप्त करते हैं ।

स्मृति का वचन है—हरसिंगार और मौलसिरी को छोड़कर धरती पर गिरे अन्य फूल ग्रहण नहीं करना चाहिए । शेफाली = शृङ्गारहार, वकुल = मौलसिरी । तथा हरसिंगार और मौलसिरी धरती पर गिरने पर भी लेना चाहिए। भूमिस्थ दूसरा फूल ग्रहण नहीं करना चाहिए । 'कमल और चम्पा की कली तोड़ने में भी कोई दोष नहीं लगता ।' इस वचन के अनुसार कमल और चम्पा की कली तोड़ने में कोई दोष नहीं लगता ।

मैथिली—फूलक सम्बन्ध में विशेष कहलगेल अछि ।

मांगलफूल जेना निष्फल होयत अछि, तहिना पाइदऽक कीनलो फूल चढौने निष्फले होयत अछि । स्मृतिक वचन—आनक फुलवारी सँ आनक फूल लऽकें देवाताक पूजन कयल । ताहि पाप में हम डूबल छी'—ई बहुला कथा में अछि । आरामक अर्थ फुलवारी । ई निषेध केवल काम्य पूजाकलेल अछि मुदा नित्य पूजा में तऽ चोरियो सँ आनल फूल चढौने कानो दोष नहि ।

मनुक वचनानुसार—देवता पर चढयवाकलेल फूल चारियों सँ लऽलेवाक चाही । पारिजात में—वासी जल, फूल एवं पत्र त्याज्य जोयत अछि । तुलसी, अगस्तक फूल, वेल पत्र एवं गङ्गा जल दूषित नहि होयत अछि ।

ज्ञानमाला में—कमल, कुमुद, चम्पा, तलसीदल, अगस्त, मौलसिरी, बिल्वपत्र एवं गङ्गाजल वासि अहि हायेत अछि । माली घरऽक फूल सेहो वासिनहि होयत अछि । स्कन्दपुराण में—एक दिन में पलाश, तीन दिन धरि कमल, पांच दिन धरि बेलपात, दस दिन धरि तुलसी दल वासि नहि होयत अछि । पलाशादि में सर्वत्र वासी भय दूषि नहि होय ई जोड़ि देवाक चाही । आओर दोसरो—चमेली या मालतीक फूल एक दिन, कनेर दिन राति, कमल सात राति, तुलसी दल छः मास धरि वासि भय दूषित नहि होयत अछि । आजुक तोड़ल काल्हि वासि भऽजायत अछि, कहवाक तात्पर्य एतवहि अछि ।

भविष्यपुराण में—समिधा एवं कुशादिक आहरण ब्राह्मण स्वयं करथु । शूद्र द्वारा आनल किम्बा पाई तऽकें कीनल वसतु सँ कर्म कर निहार ब्राह्मणक अधः पतन भऽजायत छैन्हि । विष्णु धर्मोत्तर में—समिधा, फूल एवं कुशादिक वहन कर निहार व्यक्ति के प्रणाम नहि करी वहतः = उठौने, अभिवादनम् = प्रणामादि । कुशादि में आदि पदेन जल प्रभृतिक बोध होयत अछि ।

आओर—देवता पर चढावल फूल, वामहाथक फूल, अधोवस्त्र में राखल फूल, जल में धूअल फूल के देवता स्वीकार नहि करैत छथि । ओ फूल निर्माल्य भऽजायत अछि । स्मृतिक वचन अछि—जे ब्राह्मण स्नानकय फूल तौडैत छथि, हुनक फूल देवता स्वीकार नहिं करैत छथि न ओ काठ अकां जरि कय राखभऽ जायत अछि । ई दिन में स्नान परक निषेध वचन भेली । प्रातः स्नान कयलाक बाद दक्ष द्वारा पुष्प आहरणक विधान द्वैतपरिशिष्ट में अछि ।

नारदपुराणक वचन अछि—भँगरा, शमी, वेल, तुलसी, आमला तथा तमाल, ई छत्कक पात सँ भगवान् विष्णुक पूजा प्रशंसनीय अछि हरौ = विष्णु पूजा में । पुष्पमाला में—चिरचिरी, शमी, दूभि, शिशम, तुलसी दल, बेलपात, महुआक पात, एवं कऽथक पात विष्णु के प्रिय छैन्हि अपामार्ग = चिरचिरी । मरुबकम् = महुआ । ई प्रसिद्ध अछि ।

पुनः ओहीठाम—कुन्द, कुआ, कनैल, तिलक, सेउती, जूही, नागकेशर, करवीर सर्वगन्धा, मौलसिरी, दनूफ, उडहुल, पॉडरि, जाती, खैर, केसर, कमल, कदम्ब, पिअरी, कोका, मल्ली, चम्पा, माधवी तथा अगस्त ऋ ये फूल भगवान् विष्णु को प्रिय हैं।

कुब्जकं = कुआ । कर्णिकारः = कनैल । सेवन्तिका = सेवउती । यूथिका = जूही । पुन्नाक = नागकेशर । नीप = कदम्ब । द्रोण = दनूफ । यवा = उडहुल। पाटला = पोंचरि। कुरुण्टः = पीतपियरीं उत्पलं = कोका इति प्रसिद्ध अछि।

ज्ञानमाला में—अक्षत सँ विष्णु पूजा नहि करवाक चाही, तहिना गणेश जी पर तुलसी नहिं चढैवाक चाही गणाधिपः = गणेश । उड़हुल, कुन्द, शिरीष, जूही, मालती, केवड़ा, भव पुष्प सँ शिवक पूजा नहि करवाक चाही । गणेशक पूजा तुलसी दल सँ, दुर्गाक पूजा दूभि सँ, सूर्यक पूजा अगस्त्य फूल सँ, लक्ष्मीक कात्यना करनि हार व्यक्ति कदापि नहि करथु । मुनिपुष्प = अगस्तक फूल ।

पद्मपुराणक वचन—माघमास में चम्पाक फूल सँ जेभगवान् विष्णुक पूजा करैत छथि, ओ व्यक्ति सभतरहक पाप सँ मुक्त भय परमधाम प्राप्त करैत छथि ।

स्मृति—मौलसिरी एवं हरसिंगारक फूल छोड़ि कोनो आनफूल धरती पर खलल नहि उठयवाक चाही । शेफाली = शृङ्गारहार, बकुल = मौलसिरी । हरसिंगार एवं मौलसिरी धरती पर खसलो भगवान् पर चढैवाक चाही । धरती परक आन फूल नहि ग्रहण करवाक चाही । कमल एवं चम्पाक कलीं तोड़ला पर कोनो दोष नहि होयत अछि । अहि वचनक अनुसार कमल एवं चम्पाक कली तोड़ने कोनो दोष नहि ।

विमर्शः—शैव सुधाकरे पूजाप्रकारो यथा—

आराधनं तु दीपान्तं मुनीनां मुक्तिदायकम् । अचैत्रं स्याद् हविष्यानां मुमुक्षोर्मृत्युदायकम् ।।
पूजोत्सवान्ता विज्ञेया ग्रामादौ सर्वसौख्यदा । यागो नृत्यान्तको ज्ञेया राज्यराष्ट्रसमृद्धिकृत् ।
विप्रभोजनपर्यन्तं स्याद्रहसि सर्वशान्तिदा । इत्थं पञ्चविधं प्रोक्तमुपचारभेदतः ।।
गन्धः पुष्पं च धूपञ्च दीपमन्ननिवेदनम् । ताम्बूलं च नमस्कारः प्रदक्षिण क्षमायते ।।

शालग्राम शिलायां तुलसीपत्र विच्छेदो न कार्य इत्युक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—
तुलसीपत्र विच्छेदं शालग्रामे करोति यः । तस्य जन्मान्तरे कान्ते! स्त्री विच्छेदो भविष्यति ।।

तुलसीपत्रत्रोटने निषिद्धदिनानि ब्रह्मवैवर्त्ते—
पूर्णिमायाममायाञ्च द्वादश्यां रविसंक्रमे । तैलाभ्यङ्गं च कृत्वा तु मध्याह्ने निशिसंज्ञयोः ।।
अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नराः । तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ।

पाद्मे— न कदाचित्स्मि याः कार्यं शालग्रामस्य पूजनम् ।
भर्तृहीनाथ सुभया सर्वलोक हितैषया ।।

कालिकापुराणे—गन्धं पुष्पञ्च धूपञ्च उपचाराँस्तथापरान् । जिघ्रन्निवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् । न भूमौ वितरेद्धूपं नासने न घटे तथा । यथा तथा आधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत् ।

तत्रैव—पूर्वद्वारे श्रिये दीपाः स्वर्गमोक्षाय दक्षिणे पश्चात्सुप्तष्टये देयः शेषकार्येषुचोत्तरे ।
देवानामालये दीपः शुभ कर्मणि शस्यते । उत्तराभिमुखः शान्तौ प्राङ्मुखः पौष्टिके तथा ।
गोघृतेन कृतो दीपः शिवस्यातिप्रियं हरः । तिलतैलेनाभि चारेच तारतम्यं विचारयेत् ।

ब्रह्मवैवर्त्ते जपादिकरणे—अग्रे पृष्ठे वामभागे समीपे गर्भमन्दिरे ।
जपहोमनमस्कारांन्न कुर्याद्देवतालये ।।

कालिकापुराणे—

नैवेद्यं दक्षिणे भागे, पुरतो न च पृष्ठतः । दीपं दक्षिणतोदद्यात्पुरतो न च वामतः ।।
वामतस्तु तथा धूप मग्रे वाम तु दक्षिणे । निवेदयेत्पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम् ।।

अथ अष्टाङ्गादिप्रणाममाह हलायुधीये—

'अष्टाङ्ग उत्तमः प्रोक्तः पञ्चाङ्गो मध्यमः स्मृतः ।
दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ।
मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।।'

दोर्भ्यामिति बाहुभ्यामित्यर्थः । अन्यच्च—

'पद्भ्या कराभ्यां शिरसा पञ्चाङ्गा प्रणतिः स्मृता ।।' इति ।

स्त्रीणामयमाचारो वर्जितः ।

हिन्दी—आठों अंग से प्रणाम के सम्बन्ध में हलायुध में—उत्तम कोटि का प्रणाम साष्टाङ्ग होता है । पञ्चाङ्ग प्रणाम मध्यम कोटि का कहा गया है । हाथ, पांव, घुटना, छाती, मन, वचन, सिर, आँखों को देवता के चरणों की ओर करके किया गया प्रणाम अष्टांग प्रणाम कहलाता है । दोर्भ्याम् = बाहों में । और भी—घुटना, सिंर, हाथ तथा छाती को धरती से सटाकर और आँखों को देवता की ओर करके किया जाने वाला प्रणाम पञ्चाङ्ग प्रणाम कहलाता है । यह आचार औरतों के लिए वर्जित माना गया है ।

मैथिली—अष्टाङ्ग प्रणामक सन्दर्भ में हलायुधीय वचन—अष्टाङ्ग प्रणाम उत्कृष्ट मानलगेल अछि । मध्यम कोटिक प्रणाम पञ्चाङ्ग होयत अछि । हाथ, पैर, जानु, छाती, मन, वचन, मांथ एवं आँखि देवताक चरण में लगाय, कयलगेल प्रणाम अष्टांग प्रणाम कहलगेल अछि । दौर्भ्याम् = दुहू बाँहि । आओर दोसरो—जानु, मांथ, हाथ तथा छाती के धरती में सटाय आँखि कय देवताक चरण में नियद्ध कय कयलगेल प्रणाम, पञ्चांग प्रणाम होयत अछि । स्त्री गणकलेल ई आचार वर्जित अछि ।

अथ भोजनव्यवस्था

ततः कुलानुसारेण सप्तमनवद्वादशादिनैवेद्यं दत्त्वा भोजनं कुर्यात् । बृहद्धर्मसंहितायां व्यासः—

'न क्षीरे लवणं दद्यान्न ताम्रे गुडमेव च ।
क्षीरं तथामिषं भुक्त्वा न भुञ्जीत कदाचन ।।'

आमिषं मांसं पठन्ति वर्द्धमानः—हारिद्रमांसं हरिद्राजलावसिक्तं हरिद्रा-

नलपाचितम् आत्मानं व्यापादयति । हारिद्रं मांसं 'हरिअल' पक्षिमांसं व्यापादयति नाशयति ।

'गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं बिना ।'

विष्णुपुराणे— 'अनभ्यर्च्य ऋषीन् देवान् पितृभूतातिथींस्तथा ।
यो भुङ्क्ते तस्य संभाषात्पतन्ति नरके नराः ।।'

अन्यच्च— 'मौनेनैव तु यो भुङ्क्ते संयमेन दृढव्रतः ।
एकविंशतिगोत्राणि तारयेन्नरकार्णवात् ।।'

सम्वर्तः— 'भुञ्जानश्च यदा ब्रूयाद्गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।'

बृहद्धर्मसंहितायां व्यासः—

'पंक्तिमध्ये न भोक्तव्यं पंक्तिं नैव विलङ्घयेत् ।'
पञ्चाङ्गुलीभिर्भोक्तव्यं नाङ्गुलीपृष्ठमालिहेत् ।।'

पंक्तिमध्ये पंक्तिद्वयाभ्यन्तरे ।

ज्योतिषे— 'अमृतं सिद्धियोगश्च यद्येकस्मिन्दिने भवेत् ।
तद्दिनं तु भवेन्नष्टं मधुसर्पिर्यथा विषम् ।।' इति ।

मधुघृतमेकीभूतं विषमित्यायाति, तच्च द्वयोः समानत्वे, न्यूनाधिकत्वे तु न विषं वैद्यशास्त्रे तथैव लिखनात् । शूलपाणिधृतशंखः—

'एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजिनाम् ।
यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं विवर्जयेत् ।।
मोहाद्भुञ्जीत यः पङ्क्त्यामुच्छिष्टं सहभोजनम् ।
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनं तथा ।।' इत्यान्हिकम् ।

हिन्दी—अब भोजन की व्यवस्था—

अपने कुलाचार के अनुसार सात, नौ या बारह नैवेद्य देकर भोजन करना चाहिए । बृहद्धर्म संहिता में व्यास का वचन—दूध में नमक आम में गुड़ नहीं देना चाहिए । दूध तथा मांस खाकर फिर नहीं खाना चाहिए । आमिषम् = मांस पढ़ा जाता है ।

वर्द्धमान—हरिअल चिड़ियाँ का मांस पीले जल से सिञ्चित पीली आग में पके जो व्यक्ति खाता है, वह अपने आपको विनष्ट करता है । हरिद्रं मांसम् = 'हरिअल' चिड़िआ का मांस । व्यापादयति = विनष्ट करता है ।

ताम्बे के बर्तन में रक्खे गाय के दूध, दही या मक्खन, घी के बिना मदिरा के समान होता है ।

विष्णुपुराण में—ऋषियों, देवताओं और पितृभूत अतिथियों की अर्चना किये बिना, भोजन कराये बिना स्वयं भोजन करता है उसके साथ संभाषण करने से भी व्यक्ति नरकगामी होते हैं । और भी—आत्मनियन्त्रण एवं पक्का इरादा के साथ बिना कुछ बोले जो भोजन करता है, वह अपने इक्कीस पीढी को नरक सागर से उद्धार कर देता है । संवर्त्त का कथन है—भोजन करते समय यदि बोलना पड़ जाय तो एक सौ आठ बार गायत्री मन्त्र जपना चाहिए । बृहद्धर्म संहिता में व्यास का वचन—पंक्ति के बीच में भोजन नहीं करना चाहिए और न तो पंक्ति लांघनी ही चाहिए । पाँचों अङ्गुलियों से भोजन करना चाहिए । भोजनोपरान्त अंगुलि नहीं चाटनी चाहिए । पंक्ति मध्ये = दो पाँतों के बीच ।

ज्योतिष में—यदि एक ही दिन अमृत योग और सिद्ध योग हो तो वह दिन बिल्कुल ही व्यर्थ होता है । ठीक उसी तरह जैसे समान मात्रा में मधु और घी एक साथ मिला देने पर जहर हो जाता है । इति ।

मधु और घी समान मात्रा में मिल जाने पर जैसे जहर बन जाता है किन्तु, वही वस्तु कमोवेश मात्रा होने ठीक रहता है—ऐसा वैद्यक शास्त्र में लिखा है ।

शूलपाणिधृत शङ्ख का वचन है—एक ही पंक्ति में बैठे यदि ब्राह्मण लोग भोजन करते हों तो उनमें से यदि एक भी ब्राह्मण भोजन पात्र छोड़कर पंक्ति के बीच से उठ जाय तो शेष लोगों को भोजन छोड़ कर उठ जाना चाहिए । भूल से भी जो ब्राह्मण उस जूठी पंक्ति में भोजन करता है, उस ब्राह्मण को प्रायश्चित्त करना चाहिए । प्रायश्चित्त में उसे अत्यन्त दुःखदायी दो दिनों का सान्तपन नाम का कठोर व्रत करना चाहिए । आह्निक कृत्य समाप्त।

मैथिली—आव भोजनक व्यवस्था—अपन कुलक आचारनुसार, व्रत नौ या बारह नैवेद्य देलाक बाद भोजन करवाक चाही ।

बृहद्धर्म संहिता में व्यासक वचन—दूध में नोन तथा आम में गुड़ नहिं देवाक चाही । दूध एवं मांस खयलाक बाद कदापि किछु नहिं खयवाक चाही । आमिषं = मांस । वर्द्धमानक उक्ति—हरिअल पक्षीक मांस, हरदीक जल सँ भीजल, पीयर आगि में पकायल खनिहार व्यक्ति स्वयं अपन आत्माक हनन करैत छथि । द्वारिद्रं मांसं = 'हरिअल' पक्षिक मांस । व्यापादयति = नाश करते हैं । ताम्रपात्र में राखल घीक बिना गायक दूध, दही एवं माखन मदिरा तुल्य होयत अछि विष्णुपुराण में—ऋषि, देवता एवं पितृभूत अतिथिक अर्चना कयने बिना जे स्वयं भोजन करैत छथि, हुनक संग वार्त्ता वाप कर निहार व्यक्ति नरक में खसै छथि । आओर दोसर—संयमपूर्वक दृढ़ व्रतीभय बिना किछु बजने चुपचाप जे

भोजन करैत छथि ओ अपन एक्कैश कुर्सी पूर्वज के नरक सागर से उद्धार करैत छथि । संवर्त्तक कथन छैन्हि—भोजन करैत कोने कारणे यदि बजा जाय तऽ एक सौ आठ बार गायत्री जप करवाक चाही । वृद्धधर्म संहिता में व्यासक वचन—दुइ पंक्तिक बीच मे न भोजन करवाक चाही आओर न पंक्तिक लंघन करवाक चाही । पाँचो आंगुरि मिलायकय भोजन करवाक चाही तथा आंगुरि कदापि नहि चाटवाक चाही । पंक्ति मध्ये = दुइ पंक्तिक बीच में ।

ज्योतिषक वचन अछि—यदि कोनो एके दिन अमृत योग एवं सिद्धि योगक सम्मिश्रण होय तऽ समान मात्रा में मिलल घी एवं मधु जेना विष भऽजायत अछि तहिना ई दिन नष्टे बुझवाक चाहीः । वैद्यशास्त्र में एकर उल्लेख,भेठैंत अछि जे समानमात्रा में मधुद्धृत मिला देला उत्तर ओ विष भऽजायत अछि । मात्राक न्यूनाधिक भेने ई दोष नहि होयत छैक ।

शूलपाणि धृत शङ्खक वचन—सह भोजी ब्राह्मणक पंक्ति में भोजन करैत व्यक्तिक बीच सँ यदि एकोगोरे भोजन छोड़ि उठिजाथि तऽशेष अन्न छोड़ि देवाक चाही । भूल या भ्रमवश यदि उच्छिष्ट पंक्ति में भोजन करय पड़िजाय तऽ उच्छिष्ट भोजी ब्राह्मण के कठोर सान्तपन व्रत करवाक चाही । ई आह्णिक कृत्यक वचन अछि ।

अथ दाहादिविचारः

मृतस्य दाहः श्राद्धाधिकारिणां 'तदनधिकारिणापि कर्त्तव्यस्तथैव शिष्टाचारात् । अग्राह्यानग्नीनाह—

चाण्डालाग्नेश्चिताग्नेश्च सूतिकाग्नेश्च कर्हिचित् ।
पतिताग्नेरमेध्याग्नेर्न शिष्टैर्ग्रहणं स्मृतम् ॥'

दाह्यशरीरलाभे तस्य । तदलाभे तदस्थ्नां दाहः तेषामप्यलाभे पर्णनरदाहः । आदिपुराणे—

'अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना पुनः ।
तदलाभे पलाशोत्थैः पत्रैः कार्यः पुमानपि ॥
शतैस्त्रिभिस्तथा षष्ट्या३६०शरव्रातैर्विधानतः ।'

श्राद्धरत्ने दाह्यशरीरालाभे तदस्थि घृतेनाभ्युक्ष्य वस्त्रेणाच्छाद्य पूर्ववत् दहेत् । पूर्ववत् शरीरदाहवत् ।

पर्णनरविन्यासप्रकारमाह गृह्यपरिशिष्टे आश्वलायनः—

'दद्याच्छिरस्यशीत्यर्द्धं४०ग्रीवायां तु दशैव तु ।
बाह्वोश्चैव शतं दद्यादङ्गुलीषु तथा दश ॥

उरसि त्रिंशतं दद्याद् विंशतिं जठरे तथा ।
अष्टार्द्धं शिश्ने दद्याद् द्वादशार्द्धं वृषणयोः ।।
ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात्त्रिंशतं जानुजंघयोः ।
पादाङ्गुलीषु दश दद्यादेतत्पत्रविकल्पनम् ।।
वेष्टितव्यस्तथा यत्नात्कृष्णसारस्य चर्मणा ।
ऊर्णसूत्रेण बध्वा तु प्रलेप्तव्यस्तथा यवैः ।।
सुपिष्टैर्जलमिश्रैस्तु दग्धव्यश्च तथाग्निना ।। इति ।

वृषणयोः अण्डकोशयोः ऊर्वोर्जङ्घयोः । द्वैतपरिशिष्टे केनापि प्रकारेण मृतानां सजातीयविजातीयानां विशीर्णावयवानां सन्निपातेन सर्वेषां दाहः कार्यो मानाभावात्, नापि पितुरेव परिचायकाभावात् । अत एव तदवस्थायां पितुरपि पर्णनरदाह एवेति । पर्णनरदाहस्तु अशौचाभ्यन्तरे तत्रापि अष्टमदशमत्रयोदशाष्टविंशतिदिने क्रमेण ब्राह्मणादिचतुर्वर्णानां पर्णनरदाहः, शिष्टाचारात् । तदसंभवे नवमादिदिने अशौचाभ्यन्तरे तत्राप्यसंभवे पक्षत्रयानन्तरममावास्यादौ कर्त्तव्यः । तथा हि—अशौचमध्ये यत्नेन दाहयेदुक्तया हतम् ।

हिन्दी—अब दाहादि संस्कार पर विचार—मृत व्यक्ति का दाह संस्कार श्राद्ध के अधिकारी द्वारा तथा उसके अभाव में अनधिकारी द्वारा भी कर्त्तव्य है। ऐसा ही शिष्टाचार है । संस्कार के लिए नहीं ग्रहण करने योग्य आग के सम्बन्ध में कहा गया है—

चाण्डाल अर्थात् डोम की आग, चिता की आग, प्रसूता गृह अर्थात् सौरी की आग, पतितों की आग तथा जो यज्ञ करने योग्य आग न हो उसे दाहकर्म के लिए शालीन व्यक्ति किसी स्थिति में स्वीकार नहीं करते हैं । ऐसा कहा गया है ।

जलाने योग्य शरीर का, शरीर नहीं मिलने पर उसकी हड्डियों का, और हड्डियां भी नहीं मिलने पर पत्तों का पुतला बनाकर जलाना चाहिए । आदिपुराण में कहा गया है—जिस देह का समुचित दाह संस्कार न हुआ हो उसकी उपलब्ध हड्डियों का पुनः गृह्याग्नि से दाह संस्कार करना चाहिए । इसकी भी यदि अनुपलब्धि हो तो पलाश अर्थात् ठाक या टेसू के ३६० पत्तों से विधिपूर्वक पुतला बनाकर जलाना चाहिए । इस संदर्भ में श्राद्धरत्न में लिखा है—जलाने के लिए यदि शरीर उपलब्ध नहीं हो तो उसकी हड्डियों को घी से उसे तर कर अर्थात् उस पर घी छिड़क कर वस्त्र से उसे ढककर जलाना चाहिए, पहले की तरह । पहले की तरह से तात्पर्य यह है कि शरीर जलाने की तरह । पत्तों के पुतले बनाने के नियम के सम्बन्ध में, गृह्यपरिशिष्ट में

आश्वलायन ने कहा है—शिर के लिए ४० चालीस पत्ते देना चाहिए, गर्दन के लिए दश, दोनों बाहों के लिए एक सौ पत्ते, अंगुलियों के लिए दश, छाती के लिए तीस और पेट के लिए बत्तीस, जननेन्द्रिय के लिए चार, अण्डकोश के लिए छः, दोनों जाघों के लिए एक सौ, घुटने के जोड़ के ऊपरी भाग के लिए तीस पत्ते, पैरों की अंगुलियों के लिए दश पत्ते देने का विधान है। चित्तीदार हिरन की चमड़ी में प्रयासपूर्वक उसे लपेट देना चाहिए। फिर उसे ऊन के धागे से बॉध देना चाहिए। अच्छी तरह पिसे हुए जौ के आँटे में पानी मिलाकर लेप तैयार कर उस पर चढ़ा देना चाहिए। फिर उस पुतले का विधिवत् दाह संस्कार कर देना चाहिए।

वृषणयोः का अर्थ है दोनों अण्डकोश, ऊर्वो का अर्थ है दोनों जांघे द्वैतपरिशिष्ट के अनुसार परिचय के अभाव में किसी भी प्रकार मरे हुए सजातीय या विजातीय व्यक्ति के शव के टूटे फूटे अवयवों को इकट्ठा कर जला देना चाहिए। परिचायक के अभाव में अपने पिता के सड़े गले शव का भी दाह संस्कार कर देना चाहिए। अतएव ऐसी अवस्था में पिता का भी पत्ते का पुतला बनाकर ही दाह संस्कार करना चाहिए। पत्ते के पुतले का दाहसंस्कार अशौच के भीतर ही करना चाहिए। पत्ते के पुतले का दाहसंस्कार आठवें, दशवें, तेरहवें एवं अट्ठाइसवें दिन क्रम से ब्राह्मणादि चारों वर्णों का करना चाहिए। यही शिष्टाचार है। अगर यह संभव नहीं हो तो नवमां दिन अशौच के भीतर ही दाहसंस्कार कर देना चाहिए। यह भी अगर असंभव हो तो तीन पखवारे के भीतर जो अमावास्या हो उसी में यह दाह संस्कार कर देना चाहिए। ऐसा कहा गया है—

ऊपर वर्णित मारे गए ढंग से लोगों का पर्णनरदाह प्रयास पूर्वक अशौच के भीतर ही कर देना चाहिए।

मैथिली—आब दाहादिक विचार करैत छी—श्राद्ध करवाक अधिकारी हो अथवा अनधिकारी, मुदा मृत व्यक्तिक दाह संस्कार करव सभकलेल कर्त्तव्य छैक, ई शिष्टाचार अछि। दाह संस्कार में ककर आगि अग्राह्य अछि, अछि सम्बन्ध में कहलगेल अछि—जेनक आगि, चिताक आगि, प्रसूतिघरऽक आगि, पतितक आगि एवं जे आगि यज्ञ करवाक योग्य नहि होय एहन आगि शालीन व्यक्ति दाह संस्कारकलेल ग्राह्य नहि कहैत छथि।

दाह्य शरीर भेंटला उत्तर ओकर या शरीर नहि भेंटला उत्तर ओकर हड्डीक दाह करवाक चाही। हड्डियों नहिं भेंटला उत्तर तन्निमित्तक पातक शवप्रतिकृतिक दाह करवाक चाही। आदिपुराण में अहि सन्दर्भ में कहलगेल अछि—अनाहिताग्नि देहक दाह्य अस्थिक पुनः गृह्याग्नि सँ जलयवाक चाही। हड्डियो नहि

भेंटला उत्तर शरव्रतक विधान द्वारा पलाशक ३६० तीन सौ साठि पातक 'पर्णनर' बनाकय अग्नि संस्कार करवाक चाही । श्राद्धरत्न में लिखल अछि—दाह्यशरीर अनुपलब्धि में ओकर हड्डी पर घी सिञ्चन कय, वस्त्र सँ झांपि पूर्ववत् दाह संस्कार कय देवाक चाही । 'पूर्ववत्' क अर्थ होयत अछि, शवदाह जकां । जर्णनर बनयाक क्रम गृह्यपरिशिष्ट में आश्वलायनक कथन—शिरकलेकल ढाकक चालीस पात, ग्रीवाकलेल दश, बाहिं कलेल एक सई आंगुर कलेल दश, छातीकलेल तीसटा पात, पेटकलेल बीस, जननेन्द्रियकलेल चारि अण्डकोश कलेल छः, जांघकलेल एकसई पात, घुटनाकलेल तीस पात, पैरक आंगुरकलेल दशपात देवाक चाही । पर्णनरक विधिवत् निर्माणकय कवनि मृगछाला में ओकरा लपेटि, ऊनक सूत सँ बाँधि जौ आटाक लेप तैयार कय सम्पूर्ण पर्णनरक देह में लपेटि जला देवाक चाही । इति । 'वृषणयोः' क अर्थ भेल दुहू अण्डकोश, ऊरुक अर्थ भेल जांघ ।

द्वैतपरिशिष्टक अनुसार—सजातीय हो अथवा विजातीय कोनो तरहे मारलगेल लोकक छितरैल अंग प्रत्यङ्ग के एकत्रित कय परिचयक अभाव में ककरो हाथ जला देवाक चाही । परिचायकक अभाव में अपन पितोक लाश अहिना जला देवाक चाही । एहन स्थिति में पितोक पर्णनर दाह करवाक चाही । पर्णनर दाह अशौच अभ्यन्तरे करवाक चाही । ओहु में आठम, दशम, तेरहम तथा अट्ठाइसम दिन क्रमशः ब्राह्मणादि चारुवर्णक पर्णनरदाह शिष्टाचारानुसार करवाक चाही । ई यदि संभव नहि होय तऽ अशौचक अभ्यन्तरे नवमादि दिन में करवाक चाही । एहो यदि संभव नहि होय तऽ तीन पक्षक भीतर जे अमावास्या होय ताहि में करवाक चाही । जेना 'प्रयासपूर्वक अशौचक अभ्यन्तरे उक्तरीत्या मारगेल लोकक पर्णनरदाह करवाक चाही ।'

विमर्शः—शवदाह प्रसङ्गे प्रचेताः—

स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं तथा । नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिदेयं परित्यजेत् ।।

अत्र देयमितिपदेन शववस्त्रैकदेशं श्मशानवास्यर्थमित्यर्थः । प्रेतं स्नापयित्वाऽनुलिप्य च दहनीयमित्यत आह मिताक्षराधृतस्मृतिः—

'प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् ।।'

दाहक्रमश्चेत्थम्—स्नापितो गन्धमाल्यादिभिरलङ्कृतो नववस्त्राऽऽवृतश्चितायामुत्तरशिराऽधोमुखः संस्थाप्य पुरुषो दग्धव्यः, स्त्रीचेत्तथैवोत्तानशिराः—

'स्वगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यते शवः । अधोमुखो दक्षिणदिक् चरणस्तु पुमानपि ।।
उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः ।' इति ब्रह्मपुराणात् ।

तथा च— दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्याञ्चिदापदि ।
केनाऽपि वस्त्रखण्डेन च्छादनीयः प्रयत्नतः ।।

यत्र तत्र भवे दु:खी यदि नग्नस्तु दह्यते । नि:शेषस्तु न दग्धव्य शेषं किञ्चित् यजेत्तत: ।।
गच्छेत्प्रदक्षिणं सप्त समिद्भि: सप्तभि:सह । देया: प्रहारा: सप्तैव कुषरेणोल्मुको परि ।।
क्रव्यादाय नमस्तुभ्यमिति जल्पेततमाहित:। नावेक्षितव्य: क्रव्यादो गन्तव्या च ततो नदी ।।

प्रचेता:— तथा दग्धशवं त्वेवं प्रादेशा: काष्ठिकास्तथा ।
सप्तप्रदक्षिणा: कृत्वा एकैकान्तु विनिक्षिपेत् ।।

मृतराजस्वलादाह पराशर:— पञ्चभि: स्नापयित्वा तु गव्यै: प्रेतां रजस्वलाम् ।
वस्त्रान्तराऽऽवृत्तंकृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ।।

मृतसूतिकादाहविषये पुन: स एवाह—

सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिका: । कुम्भे सलिलमादाय पञ्च गव्यं तथैव च ।।
पुण्यर्ग्भिरभिमन्त्र्यापो वाचाशुद्धिलभेत्स: । तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि: ।।

दाहभेदमाह वृद्धयाज्ञवल्क्य:—आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभि: ।
अनाहिताग्नेरेकेन लौकिके नापरोनव: ।।

ऊनद्विवार्षिकप्रेतशरीरं न दाह्यं, किन्तु, गन्धमाल्यादनुलेपनवस्त्रादिभिरलङ्कृत्य श्मशानादितरत्र शुचौ भूमौ ग्रामाद् बहिर्निखननीयं । तथा च मनु:—
ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा वहि: । अलंकृन्त्य शुचौ भूमावस्थि सञ्चयनादृते ।
नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो नाऽपि कार्योदकक्रिया। अरण्येकाष्ठवत्त्यक्त्वाक्षपेयुस्त्र्यहमेव तु।

दाहसम्पादनोत्तरं तु पञ्चकाष्ठिका आदाय सर्वे दाहका वाहका अनुगन्तारश्च 'ओं क्रव्यादाय नम:' इत्यभिधाय चितायां निक्षिप्य परस्परमसम्बद्धाश्चितामनवलोकमाना: यमगाथां गायन्तो नदीं जलाशयं वा प्रविश्यैकवाससो दक्षिणाभिमुखा: सकृन्त्रिमच्ज्यकृताप-सव्या: प्रेताय तिलतोयाञ्जलिं सनामगोत्रोच्चारणं दद्यु: ब्रह्मपुराणानुसारेण ।

शवप्रतिकृति दाहे वर्ज्यसमय उक्तो रामाचार्येण—

शुक्रारार्किषुदर्शभूतमदनेनन्दासुतीक्ष्णोग्रमे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ।
याम्येऽब्दात् परतश्च पात परिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रावैधृतियो: शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ।।

जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखान्त्यतो च कर्त्तुनसन्
मध्यो मैत्रमगादितिध्रुव विशाखाद्यङ्घ्रि मेज्ञेपि च ।
श्रेष्ठोऽर्केज्य विधोदिने श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्पे तथा
त्वाशौचात् परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासंभवम् ।।

दीपकलिकायां सुमन्तु:—

'पर्णनरं दहेन्नैव बिना दर्शं कथंचन ।
अस्थ्नामलाभे दर्शे तु तत: पर्णनरं दहेत् ।।

एवं पर्णं दहेन्नैव प्राक् त्रिपक्षात्कथंचन ।
पितृहा मातृहा यस्मान्न दर्शे न दहेद्यदि ।।
कृष्णपक्षे पञ्चदश्यामष्टम्यां वा समाहित: ।
एकादश्यां विशेषेण तत: प्रभृति सूतकम् ।।
त्रिरात्रं सर्ववर्णानामेष धर्मो व्यवस्थित: ।'

अत्राशौचाभ्यन्तरे दाहे शेषाशौचाहोभि: शुद्धि: ।

पर्णनरदाहप्रयुक्तत्र्यहाशौचापेक्षया मरणप्रयुक्तदशाहाद्यशौचस्य गुरुत्वात् त्रिपक्षानन्तरं दाहे त्रिरात्रम् । चतुर्थदिने श्राद्धम्—

'एवं पर्णनरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।' इति ब्रह्मपुराणात् ।

तुल्यन्यायतया अस्थिदाहेऽपि त्रिरात्राशौचम् । यज्ञपार्श्व:—

'पुत्राश्चेदुपलभ्येरन्तदस्थीनि कदाचन ।
तदलाभे पलाशस्य संभवे हि पुन: क्रिया ।।'

हि यस्मात्तदलाभे अस्थ्यलाभे तस्माद्यदि पुनरप्यस्थीनि प्राप्यन्ते, तदा पुनर्दाहे त्रिरात्राशौचे कर्त्तव्ये च पुन: पिण्डदानादिकमिति शुद्धिनिर्णये गोभिल: 'मरणतिथिनिश्चये तस्यां वार्षिकम्। तदनिश्चये पर्णनरदाहतिथा'विति विभावनीयम्।

शतानन्दरत्नमालायां यम:—

'गतस्य न भवेद्वार्त्ता यस्य द्वादशवार्षिकी ।
प्रेतावधारणं तस्य कर्त्तव्यं सुतबन्धवै: ।।'

हिन्दी—दीपमालिका में सुमन्तु का कथन है—बिना अमावस्या के किसी प्रकार पर्णनर का दाह नहीं करना चाहिए । यदि हड्डियाँ नहीं मिले तो अमावस्या तिथि में ही पत्ते के पुतले बनाकर जलाना चाहिए । इस तरह तीन पक्ष के पूर्व किसी भी स्थिति में पर्णनर का दाह नहीं करना चाहिए । इस त्रिपक्ष के भीतर की अमावस्या में पर्णनरदाह यदि नहीं करे तो वह पितृ एवं भातृ हन्ता होता है । कृष्ण पक्ष की अमावस्या, अष्टमी या विशेषरूप से एकादशी में पत्ते का पुतला जलाना चाहिए । इसके बाद सभी वर्णों के लिए तीन रात का सूतक लगता है, यही धर्म की व्यवस्था है ।

यहाँ अशौच के भीतर दाह संस्कार होने पर शेष अशौच तीन दिनों में शुद्ध होता है । पत्ते का पुतला जलाने पर जो तीन दिन का सूतक लगता है उसकी अपेक्षा मरण प्रयुक्त दशदिनों के सूतक की गुरुता के कारण तीन पक्ष के अनन्तर दाह संस्कार में तीन रात का सूतक लगता है । चौथे दिन श्राद्ध होता है । ब्रह्मपुराण में कहा गया है—''इस तरह पर्णनर दाह करने पर तीन

रात का अशौच लगता है ।'' तुल्य न्याय से अस्थिदाह में भी तीन ही रात का सूतक लगता है ।

यज्ञपार्श्व का वचन है—पुत्रों को यदि कभी भी हड्डियां मिल जाय तो उसका दाह संस्कार कर देना चाहिए । हड्डियों यदि उपलब्ध न हों तो पलाश अर्थात् लेसू के पत्ते का पुतला बनाकर दाह संस्कार फिर कर देना चाहिए । क्योंकि हड्डियां तत्काल उपलब्ध नहीं और कालान्तर में पुन: वह प्राप्त हो जाय तो पुनर्दाह संस्कार करने पर त्रिरात्र का सूतक होता है । फिर पिण्ड दानादिक क्रिया करनी चाहिए ।

शुद्धिनिर्णय में गोभिल का वचन है—मरण तिथि निश्चित होने पर उसी के अनुसार वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए । मरण तिथि निश्चित नहीं होने पर पर्णनरदाह तिथि के अनुसार काम करना चाहिए । शतानन्दरत्नमाला में यम का वचन है—बारह साल तक जिसके मरने जीने की कोई सूचना न मिले, उसे मरा हुआ जानकर उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया पुत्र एवं बान्धवों द्वारा होनी चाहिए ।

मैथिली—दीपमालिका में सुमन्तुक वचन अछि—अमावस्याक बिना पर्णनरक दाहादिक क्रिया नहि करवाक चाही । अस्थि नहि भेंठला पर अमावास्याक दिन पर्णनरक दाह करवाक चाही । अहि तरहें त्रिपक्षक पूर्व कोनों तरहे पर्णनरक दाह क्रिया नहिं करवाक चाही । अहि मध्यक अमावस्या में यदि पर्णनरक दाह नहि कयने मातृ-पितृ हन्ताक दोष लागैत छैक । कृष्ण पक्षक अमावस्या एवं अष्टमीतिथि में विशेषत: एकादशी तिथि में पर्णनरदाह करवाक चाही, ताहि दिन सँ तीन रातिक सूतक होयत छैक । सबवर्णकलेल धर्मक व्यवस्था एतवहि छैक । अशौचक भीतर पर्णनरदाह कयने शेष तीन दिनक अशौच होयत छैक ।

पर्णनरदाह प्रयुक्त त्रिरात्रिक अशौच अपेक्षा मरण प्रयुक्त दशाह शौचक गुरुता होयत छैक । त्रिपक्षानन्तर दाह कयने तीन दिनक अशौच होयत छैक । चारिम दिन श्राद्धकलेवाक चाही । ब्रह्मपुराणक अनुसार अहि तरहे पर्णनरक दाह कयने तीन रात्रि बाद शौच समाप्त भजायत छैक । तुल्य न्याय सँ पर्णनर दाहो कयने तीने दिन अशौच होयत छैक ।

यज्ञपार्श्वक वचनानुसार—पुत्र के यदि कोनो दिन मृतमाता पिता अस्थि उपलब्ध भऽ जाय तऽ ओकर दाहसंस्कार कर देवाक चाही । अस्थिक अनुपलब्धि में पलाश पातक पर्णनर बनाकय दाह संस्कार कऽ देवाक चाही ।

हि अर्थात् यत: तद् अलाभे अर्थात् अस्थि नहिं भेंटला उत्तर तें यदि पुन: अस्थिक उपलब्धि भऽ जाय तखन पुन: दाह कयने त्रिरात्रिक अशौच करवाक

चाही । पुनः पिण्ड दानादिक क्रिया करवाक चाही ।

शुद्धि निर्णय में गोभिलक वचन अछि—मरण तिथिक जकर निश्चय होय तेकरे वार्षिक श्राद्ध होय । मरण तिथिक निश्चित ज्ञान नहिं भेनें पातक पुतलाक दाह जाहि तिथि में करी, तदनुसारे क्रिया करवाक चाही । शतानन्दरत्नमाला में यमक उक्ति—जेकर जीवन मरणक बारह साल धरि किछु पता नहिं चलय ओकर मृत्युक अवधारणा कय पुत्र एवं बन्धु-बान्धवादि द्वारा श्राद्धादिक क्रिया करनी चाहिए ।

विमर्शः—पितृकर्मनिर्णये पण्डिततत्रिलोकनाथमिश्रेण—'प्रेतस्य बान्धवां यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्घर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिञ्चेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणमुखा ब्राह्मणास्योदङ्मुखाः प्रत्यङ्मुखाश्च राजन्य वैश्ययोः ।' इति प्रचेताः । व्यवहारस्तु सर्ववर्णानां दक्षिणामुख्येनैवोदकदानस्य प्रकृतप्रचेतसो वचने शूद्रस्य दिग्विभागा प्रदर्शनेन न्यूनत्वं तु न, राजन्यवैश्यपदयोरुपलक्षणत्वात् । एतच्च तिलतोयाञ्जलिदानमेकैकमित्याह याज्ञवल्क्यः— 'सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यतः'

प्रचेतास्तु—'त्रिः प्रसेकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु ।' इति। एवञ्च सकृद्वा त्रिस्त्रिर्वोदकप्रसेक इत्येव विकल्पे एकाञ्जलिदानं नित्यमञ्जलित्रयदानं काम्यमिति वाचस्पतिमिश्रोल्लेखा द्व्यवस्थातव्यमिति । पञ्चके मरणं दाहश्चेति द्वयमपि निषिद्धम् । उक्तञ्च ब्रह्मपुराणे—

कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते । तस्योद्ध्र्वगतिर्दृट्वा सन्ततौ न शुभं भवेत् ।।
न तस्य दाहः कर्त्तव्यो विनाशः स्वेषु जन्तुषु । पञ्चकानन्तरं कार्यं कार्यं दाहादिकं खलु ।।
अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु शान्तिपूर्वकम् । दाहदेशे शवं नीत्वा स्नापयेञ्च प्रयत्नतः ।।
दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ।

यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत् प्रेतवाहः प्रेतसुखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः प्रेतहर्त्तापञ्चमञ्च नामान्येतानि च क्रमात् । अतएव पञ्चके मृतस्य पुत्तलकविधानं कृत्वा दाहः कार्यः । ततः सूतकान्ते पुत्रादिभिः शान्तिकञ्च विधेयम् । उक्तञ्च गरुडपुराणे—

ततो दाहः प्रकर्त्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैसह । सूतकान्ते तदा पुत्रैः कार्यशान्तिकपौष्टिकम् ।।

अत्रत्याः शान्तिः शान्तिमयूखे द्रष्टव्येति ।

हेमाद्रिनिबन्धे जातूकर्णः—

'पितरि प्रोषिते यस्य वार्त्ता न गृहमागता ।
ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ।।
कुर्यात्तस्य च संस्कारं यथोक्तविधिना पुनः ।'

गतस्येत्यत्र पुंस्त्वं न विवक्षितम्। अन्यथा स्त्रियास्तादृशस्थले व्यवस्था न स्याद्वचनान्तराभावात् । यथोक्तविधिना प्रागुक्तपर्णनरदाहविधिना । अत्र द्वादशवर्षानन्तरं मुख्यकाले तदसंभवे पञ्चदशवर्षानन्तरं गौणकालेऽपि कर्त्तव्यमिति तात्पर्यम् ।

पर्णनरदाह: कदा कर्त्तव्य इत्यत्राह स्मृति:—

'यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदह: क्रिया ।
दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहू: ।।'

तस्येति गमनमासस्येत्यर्थ: । तथा च यन्मासि यत्तिथौ पूर्वं गृहाद्देशान्तरं गतस्तन्मासि तत्तिथौ द्वादशवर्षाद्यनन्तरं पर्णनरदाह: । तत्तिथेरज्ञाने तन्मासामावास्यायां तन्मासाज्ञाने तस्मिन्नेव वर्षे आषाढामावास्यायां दाह: । तत्तृतीयदिने क्षौरं चतुर्थदिने आद्यश्राद्धं, पञ्चमदिने सपिण्डनमिति भाव: । यम: जातूकर्णवचनेऽभिधाय अत्र देशापेक्षया विकल्पमिति द्वैतपरिशिष्टे केशवमिश्रा: । अत्र पर्णनरदाहतिथौ वार्षिकम् ।

मरणभ्रान्त्या कस्यचिद्दाहादौ (जीवितस्यप्रोषितस्य पर्णनरदाहविधिना) कृते यदि समायाति तदा निरग्निश्चेत् रुद्रस्नपनं प्राजापत्यव्रतं च कृत्वा साग्निस्तु आयुषीमिष्टिं कृत्वा स पूतो भवति । तथा हि बृहच्छ्राद्धदर्पणे—

'प्रेतश्राद्धं कृतं यस्य स चेदायाति मानव: ।
प्राजापत्यव्रतं कुर्याच्छान्तिं रुद्रसमुद्भवाम् ।।' इति ।

'एवं कृते मृतभ्रान्त्या यद्यागच्छेत्पुमान् क्वचित् ।
कुर्यात्तदायुषीमिष्टिं पुनराधाय पावकम् ।।' इति च ।

रुद्रसमुद्भवां रुद्राध्यायादिना-शिवस्नपनरूपां प्राजापत्यानुकल्पो धेनुदानम्। तस्याप्यनुकल्प: कार्षापणत्रयलभ्यहिरण्यदानम्, अत्र पूर्ववचयनं निरग्निविषयकम् । उत्तरवचनम् अग्निहोत्रिविषयकं तथा चाग्निहोत्रिभिन्नस्य मरणभ्रान्त्या दाहे कृते यदि समायाति तदा प्राजापत्यं प्रायश्चित्तं रुद्रस्नपनरूपा शान्तिं च कुर्यात् । अग्निहोत्रिणस्तादृशस्थले आयुषीष्टि: । अत एव श्राद्धविवेके—

'एवं कृते मृतभ्रान्त्या यदि आगच्छेत्पुमान् क्वचित् ।
कुर्यात्तदाऽऽयुर्षीं त्विष्टिं पुनराधाय पावकम् ।।'

साग्नेरियमिष्टि: । निरग्नेस्तु 'शान्तिस्वस्त्ययनमन्यदिति' रुद्रधर: श्राद्धविवेके इति सकलमैथिलव्यवहारसिद्धोऽयं पन्था ।

ब्रह्मपुराणे— 'ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्राह्मणैर्हता: ।
महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिता: ।।
पतितानां न दाह: स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चय: ।
नाश्रुपातश्च पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ।।
एतानि पतितानां तु य: करोति विमोहित: ।
कण्ठोदकक्रियां कृत्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।।'

कण्ठोदकक्रिया वपनादिका उदयक्रिया । प्रमादतो दाहादिकरणे प्रायश्चितं मत्कृतप्रायश्चित्तव्यवस्थायामवलोकनीयम् ।

हिन्दी—हेमाद्रिनिबन्ध में जातूकर्ण की उक्ति है—पिता के परदेश जाने पर यदि पन्द्रह साल से ऊपर तक उसकी कोई सूचना नहीं मिले तो उसका पुतला बनाकर दाहादि संस्कार यथोक्त विधि से कर देना चाहिए । 'गये हुए का' यहाँ पुरुष लिङ्ग की अपेक्षा नहीं है । अन्यथा दूसरे वचन के अभाव में वैसी स्थिति में स्त्रियों के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं है । यथोक्तविधिना से तात्पर्य पूर्वोक्त पर्णनर दाह विधि से है । यहाँ बारह वर्ष के बाद प्रधान समय में, अगर यह संभव नहीं हो तो पन्द्रह साल के बाद गौणकाल में भी दाहादि क्रिया कर लेना चाहिए, यही तात्पर्य है ।

पत्ते का पुतला बनाकर कब जलाना चाहिए, इस सन्दर्भ में स्मृति का वचन है—जिस महीने की जिस तिथि को व्यक्ति घर से बाहर जाय, और उसकी सूचना बारह साल तक न मिले तो जिस महीने की जिस तिथि में वह घर बाहर निकला हो तो उसी महीने की उसी तिथि में पर्णनरदाह करना चाहिए । दिन की याद नहीं हो तो उस महीने की अमावास्या तिथि में, अगर महीना भी भूल जाय तो उस वर्ष के अषाढ़ की अमावस्या तिथि में यह क्रिया करनी चाहिए । तस्य का अर्थ है, जिस महीने में घर से बाहर जाय उस महीने का ।

जैसे कि जिस महीने की जिस तिथि में पहले वह घर से देशान्तर गया हो उस महीने की उसी तिथि में बारह वर्ष के बाद पत्ते का पुतला बनाकर जलाना चाहिए । यदि उस तिथि की याद नहीं हो तो उस महीने की उसी तिथि में बारह साल के बाद पर्णनरदाह करना चाहिए । उस तिथि की स्मृति नहीं रहने पर, उस महीने की अमावस्या में, महीने की भी याद नहीं रहने पर, उसी वर्ष के आषाढ़ महीने की अमावस्या तिथि में दाह करना चाहिए । दाह क्रिया के तीसरे दिन क्षौर कर्म एवं चौथे दिन आदि श्राद्ध और पाँचवे दिन सपिण्डीकरण करना चाहिए । यही स्मृति का भाव है । इससे पहले कहे गये यमजातूकर्ण के वचन को ध्यान में रखकर यहाँ स्थान विशेष की अपेक्षा से विकल्प मानना चाहिए यह द्वैतपरिशिष्ट में केशवमिश्र का विचार है । इस विचार के अनुसार पर्णनर के दाह की तिथि वार्षिक होनी चाहिए ।

यदि किसी परदेशी जीवित व्यक्ति का गलती से मरा समझकर उसका पर्णनर दाह विधि से दाहादि संस्कार कर दिया जाय और संस्कार के बाद वह लौटकर जीवित घर आ जाय और वह निरग्नि अर्थात् (पवित्र होमाग्नि को अपनी असावधानी के कारण बुझ जाने देने वाल बन जाय) तो सर्वप्रथम

रुद्रस्नपन एवं प्राजापत्य व्रत करके साग्निक अर्थात् यज्ञ की उस पवित्र अग्नि को सुरक्षित कर, दीर्घ जीवन प्राप्ति के निमित्त यज्ञकर पवित्र बन जाता है ।

जैसा कि बृहच्छ्राद्धदर्पण में कहा गया है—जिस व्यक्ति का मरण भ्रान्ति से प्रेत कार्य सम्पादित हो जाय और वह व्यक्ति पुन: जीवित घर लौट आये तो प्राजपत्यव्रत (बारह दिनों में सम्पन्न होने वाला एकव्रत) एवं रुद्रस्नपन के द्वारा शान्ति विधान करना चाहिए । मृत भ्रान्ति से ऐसा हो जाने के बाद यदि कोई व्यक्ति घर लौट आये तो पुन: अग्नि स्थापित कर दीर्घायु की कामना से यज्ञ करना चाहिए ।

रुद्रसमुद्भवाम् अर्थात् रुद्राध्यायादि शिव का स्नपनरूप, प्राजापत्य की अनुकल्पना से गोदान का तात्पर्य है । उसका भी अनुकल्प है तीन रुपये का सोना दान । इस सन्दर्भ में पूर्व वचन निरग्निविषयक, उत्तर वचन अग्निहोत्री विषयक है । जैसा कि अग्निहोत्री से भिन्न व्यक्ति का मरण भ्रान्ति से दाहादि संस्कार हो जाय और इसके बाद वह घर लौट आये तो उसके लिए प्राजापत्य व्रत रूपी प्रायश्चित्त का विधान है, इसे रुद्रस्नपन रूप शान्ति का विधान भी करना चाहिए । ऐसी स्थिति में अग्निहोत्रियों को केवल दीर्घायु की कामना से यज्ञ करना चाहिए । अतएव श्राद्ध विवेक में लिखा है—ऐसा करने पर अर्थात् जीवित व्यक्ति को मरा समझने की भूल से श्राद्धादि क्रिया सम्पादन करने के बाद यदि वह जीवित लौट आये तो पुन: अग्नि की स्थापना कर दीर्घायु की कामना से यज्ञ करना चाहिए ।

जो अग्निहोत्री है, उन्हीं के लिए इस यज्ञ का विधान है और जो निरग्नि हैं उनके अन्य शान्ति एवं स्वस्त्ययन की व्यवस्था है । ऐसा श्राद्धविवेक में रुद्रधर का विचार है । सम्पूर्ण मिथिला का यह व्यवहार सिद्ध मार्ग है ।

ब्रह्मपुराण में लिखा है—ब्रह्मदण्ड से जो मरा हो या ब्राह्मणो के द्वारा जो मारा गया हो या जो महापातकी है—ये सब महापातकी कहलाते हैं । पतितों का न तो दाह संस्कार होता है और न अन्त्येष्टि क्रिया ही होती है । इनका न तो अस्थि सञ्चय होता है और न कोई रोता है । इनके लिए न पिण्ड दान करना चाहिए और न श्राद्धादिक क्रियायें । इन पतितों का जो मोहवश क्रियाकर्म करता है उसे कष्ठोदक क्रिया कर तप्तकृत्य नामक कठोरव्रत शुद्धि करना चाहिए ।

कण्ठोदक क्रिया अर्थात् वपनादिक उदकक्रिया । भूल से ऐसे लोगों की दाहादि क्रिया सम्पादित करने जो प्रायश्चित्त लगता है—उसके लिए मेरे द्वारा लिखित प्रायश्चित्त व्यवस्था देखनी चाहिए ।

मैथिली—हेमाद्रिनिबंध में जातूकर्ण की उक्ति—परदेशी पिताक कोनो तरहक सूचना यदि घरऽ में नहिं आवय तऽ पन्द्रह वर्ष व्यतीत भेला उत्तर ओकर प्रतिकृति बना कय यथोक्त विधि सँ पुनः संस्कार कऽ देवाक चाही ।

अहिठाम 'गतस्य' पदेन केवल पुरुष लिङ्गेक विवक्षा नहि अछि । अन्यथा स्त्रीलोकनिकलेल एहन स्थिति में कोनो आन तरहक व्यवस्था नहि देखल जाय छैक । 'यथोक्तविधिना' क तात्पर्य अछि, पूर्व वर्णित पर्णनर दाह विधि सँ । अहिठाम बारह एवं पन्द्रह साल व्यतीत भेला उत्तर एहन दुई तरहक उक्ति छैक, ताँय बारह साल व्यतीत भेलाक उत्तर जे पर्णनर दाहादिक क्रिया भेल से मुख्य काल में तथा पन्द्रह सालक बाद जे काज हैत से गौण कालों में ई कर्त्तव्य होयत अछि । पर्णनर दाह कोन समय में करवाक चाही अहि संन्दर्भ में स्मृतिक वचन—'जाहिमासक जाहितिथि में घरऽ सें बाहर गेल होय, ताही मासक ताही दिन पर्णनर दाहादिक क्रिया सम्पन्न करवाक चाही । अगर दिन बिसरि जाय तऽ ताही मासक अमावस्या तिथि में, यदि मासो विसरि जाय तऽ वर्षक आषाढ मासक अमावस्या विधि में करवांक चाही ।'

तस्य पंदेन गमन मासक अर्थ भेला जेना जाहि मासक जाहिं तिथि में प्रथम क्यों गेटे देशान्तर प्रस्थान करथु तहीं मास एवं तही तिथि में कोनो सूचना नहीं मिललाक स्थिति में बारह वर्षक बाद पर्णनरदाह करवाक चाही । यदि ओ तिथि विसरिगेल होय तऽ ओही मासक अमावस्या तिथि में करी । यदि ओ मासो विसरि जाय तऽ ओही वर्षक आषाढ़ मासक अमावास्या तिथि में दाह क्रिया करवाक चाही । दाह कियाक तेसर दिन क्षौर कर्म एवं चारिम दिन आदिश्राद्ध एवं पाँचम दिन सपिण्डीकरण करवाक चाही । पूर्वोक्त यमजातूकर्णक वचन के ध्यान में राखि अहिठाम देशापेक्षया विकल्प बुझवाक चाही ई द्वैतपरिशिष्ट में केशव मिश्रक वचन अछि । अहिठाम पर्णनरदाह तिथि में वार्षिक विधान अछि ।

मरणक भ्रान्ति सँ यदि ककरो (जीवितावस्थे परदेशीक पर्णनरदाह विधि सँ) दाहादि क्रिया सम्पादित कय देल जाय तकरबाद ओ जीवित प्राणी घरऽयदि लौटि आयथु तऽ यदि ओ प्राणी अग्निहोत्री नहि होथु तऽ ओ रुद्रस्नपन एवं प्राजापत्य व्रतकय पवित्र बनथु । यदि ओ अग्निहोत्री रहथु तऽ आयुष्टोम् यज्ञ कय पवित्र बनथु । दृष्टान्त स्वरूप बृहच्छ्राद्धदर्पण में—

'जे व्यक्ति अपन प्रेत कार्य सम्पादित कयलाक बाद घरऽलौटि आवसु उनका प्राजापत्य व्रत एवं रुद्रस्नपन कय शान्ति करवाक चाही । मरणभ्रान्त्या प्रेत कार्य कयलाक उत्तर यदि ओ व्यक्ति घर लौटि आवथु तऽ अग्निक पुनः स्थापनाकय दीर्घायुक कामना सँ यज्ञ करवाक चाही ।'

रुद्रसमुद्भवाम् = रुद्राध्याय आदि से शिवक स्नपन तथा प्राजापत्यव्रत करवाक चाही । तथा एकर अनुकल्प में गोदान करवाक चाही । ओकरो अनुकल्प में तीन टकाक सुवर्ण दान करवाक चाही । अहिठाम पूर्व वचन अग्निहोत्री सँ भिन्न

लोकनिकलेल तथा उत्तर वचन अग्निहोत्रीकलेल अछि । जेना अग्निहोत्री सँ भिन्न व्यक्ति मरण भ्रान्ति सँ दाहादिकर्म कयलाक बाद घर आवथि तऽ हुनकलेल प्राजापत्य व्रतक प्रायश्चित्तक विधान अछि, रुद्रस्नपन रूपशान्ति सेहो करथु, एहन स्थिति में अग्निहोत्री लोकनिकलेल आयुष्टोम रूपी यज्ञक विधान अछि । अतएव श्राद्धविवेक में—'मरणक भ्रान्ति सँ प्रेतकर्म कयलाक बाद यदि ओ व्यक्ति पुन: घर लौटि जाय तँऽ पुन: अग्निक आधान कय आयुवर्द्धनार्थ यज्ञ करवाक चाही ।'

अग्निहोत्री लोकनिकलेल ई यज्ञक विधान भेल । जे अग्निहोत्री नहि छथि तनिक हेतु शान्ति कर्म एवं स्वस्त्ययनक आवश्यकता छैन्हि । श्राद्धविवेक में ई रुद्रधरंक विचार छैन्हि । एह व्यवहार सम्पूर्ण मिथिलाक व्यवहार सिद्ध मार्ग अछि । ब्रह्मपुराणक वचन छैक—

ब्रह्मदण्ड या ब्राह्मणक द्वारा जे मारलगेल होय, या जे महापातकी होय, से सब पतित कहवैत छैथि । एहन पतितक न दाह संस्कार होय, न अन्त्येष्टि संस्कार होय, न अस्थि सञ्चय कयलजाय, अश्रुपान, पिण्डदान या कोनो तरहक श्राद्धादिक क्रिया नहि करवाक चाही । मोहवश पतितकलेल ई सभटा कार्य जे करथु ओ कण्ठोदक क्रिया कयलाक बाद तप्तकृच्छे सँ शुद्ध होयत छथि ।

कण्ठोदक क्रियाक अर्थ अछि वपनादिक उदक क्रिया । प्रमादवश दाहादि-क्रियाकलेल प्रायश्चितक व्यवस्था हमर प्रायश्चित व्यवस्था में दर्शनीय अछि ।

विमर्श:—अत्र वृद्ध मनु:—

जीवन्यदि समागच्छेद् घृतकुण्डे निमज्ज्य तम्। उद्धृत्य स्नापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत्
व्रतचर्या द्वादशाहं त्रिरात्रमथवास्य तु । स्नात्वोद्वहेत तां भार्यामन्यां वा तदभावत: ।।
अग्नीनाधाय विधिवत् व्रातत्यस्तोमेन वा यजेत् । तथेन्द्राग्नेयपशुना गिरिं गत्वा स तत्र तु ।।
इष्टिमायुष्मतीं कुर्यात् ईप्सितॉश्च क्रतूँस्तत: ।।

देशान्तरस्य परिभाषायामत्र वृद्धमनु:—
वाचो यत्र विभद्यन्ते गिरिर्वा व्यवधायक: । महानद्यन्तरं यच्च तद्देशान्तरमुच्यते ।।
देशानाम नदी भेदान्निकटोऽपि भवेद्यदि । तत्तुदेशान्तरं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयं भुवा ।।
दशरात्रेण वा वार्त्ता यत्र न श्रूयतेऽथवा ।।
बृहस्पति:— देशान्तरं वदन्त्येके षष्ठियोजनमायतम् ।
चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च ।।

प्राजापत्यव्रताशक्तौ धेनुदानं तदशक्तौ च तन्मूल्यलभ्य हिरण्यदानं कार्यम् । अत्र सम्वर्त्तवचनम्— प्राजापत्यव्रताशक्तौ धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
धेनोरभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशय: ।।

धेनुमूल्यञ्च—धेनु: पञ्चभिराश्यानां त्रिपुराणिका। कार्षापणैक मूल्याहि द्ररिद्राणां प्रकीर्त्तिता:। पञ्चभिरित्यत्र 'कार्षापणैरिति शेष: । कार्षापणश्च षोडश पणात्मक:, पुराणमपि स एव ।

गोभिल:— 'गोभिर्विप्रैर्हते चैव तथा चैवात्मघातके ।
नैवाश्रुपातनं कार्यं सद्भिः श्रेयोऽभिकांक्षिभिः ॥'

गोभिहतं क्रीडादिभिर्गवा हतमिति शूलपाणि: । अश्रुपातपदं दाहादीनामप्युपलक्षकम् ।

तथा च प्रमादतो गवा हतस्य श्राद्धं कार्यमेव, क्रीडादिभिरिति शूलपाणिलिखनात् 'प्रमादादपि नि:शंक' इत्यादि वक्ष्यमाण ब्रह्मपुराणं च अङ्गिरा:—

'व्यापादयेदथात्मानं स्वयं योऽग्न्युदकादिना ।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकक्रिया ॥

यस्तु रोषादिना हेतुनाग्न्यादिभिरात्मानं घातयति, तस्याग्निदानाशौचक्रिया न कर्त्तव्येति रुद्रधर: । यदि मरणेच्छां बिना प्रमादादितो जलादौ म्रियते तदा दाहादिसर्वा: क्रिया: कर्त्तव्या: । तथा हि अङ्गिरा:—

'अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिषु ।
तस्याशौचं विधातव्यं कार्या चास्योदकक्रिया ॥'

प्रमादोऽनवधानता । ब्रह्मपुराणे—

'प्रमादादपि नि:शंकस्त्वकस्माद्विधिदेशित: ।
शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभि: ॥
चाण्डालेनाथ वा चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित् ।
तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु स: ॥' इति ।

हिन्दी—गायों द्वारा या ब्राह्मणों द्वारा मारे गये तथा आत्मघातियों की मृत्यु पर कल्याणकामी सज्जनों को अश्रुपात नहीं करना चाहिए । गोभिर्हतम् का अर्थ शूलपाणि के विचार से गोक्रीड़ा में गायों से मारे गये । इसी तरह अश्रुपात पद दाहादि कर्मों का उपलक्षक है । जैसा कि असावधानी के कारण गायों द्वारा मारे गये लोगों का श्राद्ध तो करना ही चाहिए । क्रीड़ादि पद का शूलपाणि द्वारा उल्लेख से भी सिद्ध होता है। प्रमाद से भी शंका रहित होकर' इत्यादि ब्रह्मपुराण के वक्षमाणवचन से भी सिद्ध होता है ।

अङ्गिरा का वचन है—'जिसने आत्महत्या की है या पानी डूबकर मरा है, उसके लिए न तो अशौच का विधान है और नहीं अग्नि दाह या जलदानादिक क्रिया का विधान है ।'

क्रोध के आवेश में जिसने अपनी देह में आग लगाकर आत्महत्या की हो, उसका अग्निदाह नहीं होता, उसके लिए जलदानादिक क्रिया भी नहीं होगी' यह विचार म०म० रुद्रधर का है । यदि व्यक्ति की स्वत: मरने की इच्छा न हो किन्तु, असावधानी के कारण जलादि में डूबकर मर जाय तो

उसकी दाहादिक सारी क्रियायें करनी चाहिए । उदाहरण स्वरूप अङ्गिरा का वचन—अगर कोई व्यक्ति असावधानी के कारण आग में जल कर या पानी में डूबकर मर जाय तो उसके लिए अशौच का विधान है । उसके लिए पिण्डदान या जलदानादिक क्रिया करनी चाहिए । प्रमाद का अर्थ असावधानी है । ब्रह्मपुराण में लिखा है—असावधानी से, सन्देह शून्य स्थान में भी विधि प्रेरणा से अकस्मात् यदि किसी की मौत सींग वाले, दाँतवाले, नाखून वाले जानवरों के आघात से, सांप काटने से, विषपान से, बिजली के आवाज से, पानी में डूबकर, चाण्डालों के द्वारा या चोरों की चोट से जहाँ कहीं भी हो जाय तो उसका दाहादिक संस्कार करना चाहिए । क्योंकि, ये पतित नहीं होते हैं । इति ।

मैथिली—गोभिल का कथन—कल्याणकामी सज्जनों को चाहिए कि वे ऐसे लोगों की मौत पर, जिन्हें गायों ने मारा हो या ब्राह्मणों ने मारा हो या आत्मघाती हो—अश्रुपात नहीं करना चाहिए । 'गोभिर्हतम्' अर्थ गोक्रीड़ा में मारलगेल । अश्रुपातादि पदक अर्थ दाहादि प्रेत कर्मक उपलक्षक अछि ।

जेना, असावधानीक कारण गाय सँ मारलगेल व्यक्तिक श्राद्धादिक क्रियातऽ अवश्ये करवाक चाही । क्रीडादिभि पदक शूलपाणि द्वारा उल्लेखों सँ ई सिद्ध होयत अछि । एकर सम्पुष्टि ब्रह्मपुराणक वक्ष्यमाण वचन 'प्रमादादपि निःशङ्कः' अहू स होयत अछि ।

अङ्गिराक वचन अछि—आगि में जरिकय अथवा पानी में डूबि कय जे आत्महत्या करय एहन व्यक्ति कलेल न अशौचक विधान अछि आओर न अग्निसंस्कार एवं जलदानादिक व्यवस्था अछि ।

म.म. रुद्रधरक विचारे जे क्रोधावेश में आगि में जरि या पानी में डूबि आत्महत्या करय तकराकलेल अशौच या दाहादिक संस्कारकलेल निषेध अछि । किन्तु मरवाक इच्छा रहित असावधानीक कारण जकर मृत्यु आगि में जरि अथवा जल में डूबिक भऽजाय, तकरालेल दाहादिक सभतरहक प्रेत क्रियाक सम्पादन करवेक चाही । उदाहरण स्वरूप अङ्गिराक वचन—

कोनो व्यक्ति यदि असावधानीक कारण आगि में जरि या पानी में डूबी कय मरि जाय तऽ ओकर अग्नि संस्कार या जलदानादि क्रियाक सम्पादन अवश्य कयल जाय । प्रमादक अर्थ अछि असावधानी । ब्रह्मपुराणक वचन अछि—

असावधानीक कारणे, निःशङ्कभय, विधिप्रेरित अकस्मात् यदि गाय, भैंस, बाघ, सिंह, सांप, बिजली, जल, चाण्डाल एवं चोरक द्वारा कोने तरहें कतौ मृत्यु भऽजाय तऽ एहन व्यक्तिक दाहादि संस्कार अवश्य करवाक चाही । कियेक ई व्यक्ति पतितक कोटि में नहि अवैत छथि ।

अथ सतीविधानम्

तत्र सहमरणम्, अनुमरणं द्विविधं सतीमरणं, तत्रापि ब्राह्मण्याः सहमरणमेव नानुमरणम् । तथा हि गौतमः—

'पृथक् चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति ।
अन्यासामेव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं व्यवस्थितः ॥'

अन्यासां क्षत्रियाण्यादीनां स्त्रीधर्मोऽयं पृथक् पश्चाच्चितारोहणरूपः। तथा च सहमरणं सर्वासाम् अनुमरणं च क्षत्रियाण्यादीनामेवेति भातवः। ब्रह्मपुराणे—

'देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् ।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥
ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी ।'

तत्पादुकाद्वयं पतिपादुकाद्वयम् । जातवेदसं वन्हिम् । पादुकाद्वयमिति तदीयवस्त्रादीनामप्युपलक्षकम् । मृतेन पत्या सह वन्हिप्रवेशः सहमरणम् । पतिदाहानन्तरं तदीयपादुकादिग्रहणपूर्वकवन्हिप्रवेशोऽनुमरणमिति पर्यवसितम् । नारदीये— 'बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा ।
रजस्वला राजसुते नारोहन्ति चितां शुभे ॥'

अदृष्टऋतवः शंकितगर्भाः तेनाप्राप्तऋतुकाऽपि गच्छतीति शिष्टाचारः । राजसुते इति सगरमातुः संबोधनम् । 'बालसंवर्द्धनं त्यक्त्वा बालापत्या न गच्छति ।' इति वचनात् । बालसंवर्द्धनं श्रुतेरन्यतो बालसंवर्द्धनं चेत्तदा तस्या अप्यधिकारः—

'एकां चितां समासाद्य भर्तारं याऽनुगच्छति ।
तद्भर्तुर्यः क्रियां कर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत् ॥'

इति तु पिण्डदानपर्यन्तविषय श्राद्धस्य स्वस्वाधिकारिकर्त्तव्यत्वात् । सतीभवनफलमाहाङ्गिराः—

'मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् ।
साऽरुन्धतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानवे ।
तावन्त्यब्दानि सा स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥'

सा स्वर्गं इत्यस्य महीयते इति पूर्वेणान्वयः ।

'व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।
तद्वद्धर्तारमादाय तेनैव सह मोदते ॥

मातृकं पैतृकं चैव यत्र कन्या प्रदीयते ।
पुनाति त्रिकुलं नारी भर्तारं याऽनुगच्छति ।।
ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वापि मानवः ।
तं वै पुनाति सा नारी इत्यङ्गिरसभाषितम् ।।'

त्रिकुलं मातृपितृपतिकुलं तं तादृशपतिमित्यर्थः । विष्णुः—'मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा' इति । अत्र प्रयोगमाह—शुद्धिनिर्णये गोभिलः—'पुत्रादिना स्वगृह्योक्तविधिनाऽग्नौ दत्ते ज्वलद्भर्तृचितायां सहगन्त्री साध्वी स्नाता वाससी परिधाय कुशहस्ता प्राङ्मुखी उदङ्मुखी वा । ॐ तत्सदिति ब्राह्मणैरुच्चरिते नारायणं संस्मृत्य नमोऽद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रा श्रीअमुकी देवी अरुन्धतीसमाचारत्वपूर्वकस्वर्गलोकमहीयमानत्वपतिसहितक्रीडमानत्वब्रह्मघ्नकृतघ्नपतिपूतत्त्वकामा भर्तृज्वलच्चितारोहणमहं करिष्ये इति सङ्कल्पः सहमरणे। अनुमरणे—भर्तृज्चलच्चितारोहणमित्यत्र ज्वलदग्निप्रवेशनं मात्रमिति सङ्कल्पे विशेषः ।

अष्टौ लोकपाला आदित्यचन्द्रानिलानलाकाशभूमिजलहृदयावस्थितान्तर्यामिपुरुषदिनरात्रसन्ध्या यूयं साक्षिणो भवथ ज्वलद्भर्तृचितासमारोहणे भर्त्रनुमरणे वा इत्युच्चार्य चिताग्निं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य 'इमा नारीरविधवा सपत्नीवाञ्छने सर्पिषा संविशन्त्वनस्रवोऽतमसी वासुरत्ना आरोहन्तु जलयोनिमग्ने' इति ।

इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो जायाः सुशोभनाः ।
सह भर्तृशरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ।।'

इति ब्राह्मणान् नमो नम इत्युच्चार्य ज्वलच्चितां समारोहेत्। सहमरणानुमरणे मलमासादावपि कार्ये निरवकाशनिमित्तकत्वात् निमित्तकानीति वचनादिति।

हिन्दी—अथ सतीविधानम्—सती मरण दो तरह के होते हैं । जहाँ पति के मरने पर उसके शव के साथ एक ही चिता पर सती आत्मदाह करे वह सहमरण कहलाता है और पति के दाहादि संस्कार हो जाने पर उसके द्वारा व्यवहृत वस्तु को साथ लेकर चितारोहण करने वाली सती को अनुमरण कहते है । वहाँ भी ब्राह्मणियों के लिए सहमरण का ही विधान है, नहि अनुमरण का । उदाहरण स्वरूप गौतम का वचन द्रष्टव्य है—अलग चिता जलाकर ब्राह्मणी के लिए सतीविधान नही है । ब्राह्मणेतर वर्णो की नारियों के लिए ही अलग चिता जलाकर सती धर्म की व्यवस्था है । अन्यासां का तात्पर्य ब्राह्मणेतर, क्षत्रियादि वर्णो की नारियों के लिए ही पति से भिन्न चिता जलाकर सती होने की व्यवस्था है । जैसा की ब्राह्मणियों के लिए सहमरण एवं अन्य वर्णो की नारियों के लिए अनुमरण इसका यही भाव है ।

ब्रह्मपुराण का वचन है—'अन्य देश में पति की मृत्यु होने पर उसकी साध्वी पत्नी को चाहिए कि अपने मृत पति के दोनों खड़ाऊँ या जूते अपनी छाती पर रखकर पवित्र होकर अग्नि में प्रवेश करे । ऋग्वेदवाद के अनुसार ऐसी साध्वी स्त्री कभी आत्मघातिनी नहीं हो सकती ।'

'तत्पादुका द्रयम्' अर्थात् अपने पति के व्यवहार में आने वाले दोनों पैरों के खड़ाऊँ या जूते । जात वेदसम् अर्थात् आग । पादुका द्रय मृत पति के व्यवहार में आने वाले खड़ाऊँ के अतिरिक्त वस्त्रादि के भी उपलक्षक हैं । मृतपति के साथ आग में प्रवेश सहमरण है । पति के सह संस्कार के बाद उनके खड़ाऊँ प्रभृति वस्तुओं के साथ वन्हि प्रवेश अनुमरण कहलाता है ।

नारदपुराण का कथन है—जिस नारी के बच्चे छोटे हों, जो नारी गर्भिणी हो, या जिसके संबध में गर्भिणी होने की आशंका हो अर्थात् जिसका ऋतु धर्म रुका हो, या जो रजस्वला हो, हे राजपुत्रि! ऐसी नारियों को मृत पति के साथ चितारोहण नहीं करना चाहिए । 'अदृश्य ऋतव:' का अर्थ है गर्भिणी होने की आशङ्का । इससे यह सिद्ध होता है जो रजस्वला हुई ही नहीं वह भी जाती है, ऐसा शिष्टाचार है । राजसुते = सगर की माता के लिए सम्बोधन पद है । बच्चे का पालन पोषण छोड़कर बच्चे की माँ को सती नहीं होना चाहिए । बाल संवर्द्धन यदि श्रुति से भिन्न बाल संबर्द्धन हो तो उसे भी सती होने का अधिकार है । एक ही चिता पर आरूढ होकर जो नारी मृत पति का अनुसरण करती है, उसकी श्राद्धादिक क्रिया भी वही करेगा जो उसके पति की क्रिया सम्पादित करता है ।

सती होने का फल अङ्गिरा ने कहा है—जो नारी अपने मृतपति के शव के साथ अग्नि में प्रवेश करती है, महासती अरुन्धती की तरह आचरण करने वाली होती है । मृत्यु के उपरान्त वह स्वर्ग की शोभा बढाती है । जो नारी अपने मृत पति का अनुसरण करती है वह मानवशरीर में साढ़े तीन सौ करोड़ रोएँ की जो संख्या है उतने साल तक स्वर्ग का उपभोग करती है । 'सा स्वर्ग' इस पद का पूर्वोक्त महीयते इस क्रिया के साथ अन्वय है ।

मृत पति का अनुसारण करने वाली नारी अपने मातृकुल, पितृकुल और पति कुल तीनों कुल का उद्धार कर देती है । ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न या मित्र हन्ता जैसे महापातकी व्यक्ति को भी ऐसी सती नारी पवित्र पुरुष बना देती है। यह अङ्गिरा का वचन है ।

त्रिकुलं से तात्पर्य मातृ-पितृ और पति कुल से है । तम् का अर्थ वैसे पति से है । विष्णु का वचन है—पति के मर जाने पर या तो पूर्ण ब्रह्मचर्य

का पालन करना चाहिए अथवा पति क शव के साथ ही चितारोहण करें । यहाँ प्रयोग के सन्दर्भ में शुद्धिनिर्णय में गोभिल ने कहा है—पुत्रादि के द्वारा गृह्यादि विधि से प्रज्वलित चिता में अपने पति के साथ सती होने वाली साध्वी नारी स्नान कर वस्त्र पहनकर, हाथ में कुश लेकर पूर्व या उत्तर मुख होकर ब्राह्मणों के द्वारा 'ॐ तत्सत्' यह उच्चारित किये जाने पर भगवान् नारायण का स्मरण कर 'ॐ नम: आज वर्त्तमान महीना पक्ष तिथि, गोत्र एवं अपने नाम का उल्लेख करते हुए, अरुन्धती के समान आचारणपूर्वक स्वर्गलोक में उपस्थित पति के साथ क्रीड़ा करती हुई हत्यारा या कृतघ्न पति को भी पवित्र बनाने की कामना से पति की जलती चिता पर मैं आरोहण करती हूँ ।' सहमरण में ऐसा संकल्प करे । अनुमरण में—पति की जलती चिता की जगह 'जलती आग में प्रवेश करती हूँ । यह संकल्प करना चाहिए ।'

आठों लोकपाल, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, धरती, जल, हृदय में उपस्थित अन्तर्यामी पुरुष, दिन, रात एवं सन्ध्या आप सभी हमारे साक्षी हों । पति की जलती चिता पर या अनुमरण इस शब्द का उच्चारणकर, चिता की आग की तीन बार प्रदक्षिणा कर 'इमा नारी ... .. निमग्ने' इति इस मन्त्र का उच्चारण करें ।

फिर ब्राह्मण यह पढ़ें—यह पतिव्रता नारी, पुण्य स्त्री, सुशोभनाजाया, पति की मृत देह के साथ अग्नि में प्रवेश करें । ब्राह्मण के ऐसा पढ़ने पर 'नमो नम:' इतना बोलकर जलती चिता में प्रवेश करे । सहमरण हो या अनुमरण मलमास में भी करे क्योंकि यह निरवकाशनिमित्त है । 'निमित्तकानि' इस वचन से भी यह सिद्ध होता है ।

मैथिली—पतिक मरणोपरान्त हुनके चिता पर जे सती छैती, ओ सहमरण भेल आओर पतिक दाह, संस्कार, भऽ गेलाक उत्तर जे नारी चितारोहण या वन्हि प्रवेश करथु ओ अनुमरण भेल । ताँय सतीमरण दुई तरहक भेल । ओकरो में ब्राह्मणीकलेल सहमरजेक विधान छैक, अनुमरणक नहिं । उदाहरण स्वरूप गौतमक वचन अछि—

अलग चिता पर वन्हि प्रवेशक विधान ब्राह्मणीकलेल नहि अछि । ब्राह्मणेतर जातिक नारीकलेल अनुमरणक व्यवस्था कयलगेल अछि ।

'अन्यासां' ई पदक अर्थ भेल क्षत्रियादि वर्णक नारी लोकनिकलेल ई धर्म भेल, पश्चात् अर्थात् पतिक दाह संस्कारानन्तर चितारोहणरूप धर्म । जेना सहमरण ब्राह्मणी कलेल तथा अनुमरण क्षत्रियाणी प्रभृति आनसभजातिक नारी लोकनिकलेल । ब्रह्मपुराणक वचन छैक—'देशान्तर में मृत पतिक साध्वी पत्नी के हुनक व्यवहृत पादुका युगल अपन छाती पर राखि पवित्र भावना सँ बन्हि में

प्रवेश करवाक चाही । ऋग्वैदिक परम्परावादीक दृष्टि में एहन साध्वी स्त्री आत्मघातिनी नहि कहवैत छथि ।'

'तत्पादुका द्वयम्' = अर्थात् मृतपतिक द्वारा व्यवहता दुहू खड़ाऊँ । जातवेदसम् = अर्थात् प्रज्ज्वलित आगि । पादुका द्वय पतिक द्वारा व्यवहृत वस्त्र प्रभृतिक उपलसक अछि । मृतपतिक संग पत्नीक वन्हि प्रवेश सहमरण कहवैत अछि । पतिक दाहसंस्कारोत्तर, हुनक व्यवहृत वस्तुक संग चितारोहण अनुमरण कहवैत अछि । एववति फलितार्थ भेल । नारदपुराणक वचन अछि—

छोट सन्तान वाली नारी, संदिग्धगर्भा एवं रजस्वला नारीकलैल सतीधर्मक व्यवस्था हे राजकन्ये! नहि छैक ।

'अदृष्टऋतव:' पदक अर्थ अछि संदिग्धगर्भा । ताँय रजस्वला स्त्रीकलेल सेहो ई विधान छैक । राजसुते! ई सगरमाता कलेल संबोधन पद छैन्हि । छोटबच्चाक पालन पोषण छोरि बच्चाक माता कय सती नहि होयवाक चाही । ई वचन छैक । श्रुतिसम्मतवाल संवर्द्धन यदि करनिहार क्यों आनगोटे होथु तखन, उनको वन्हि प्रवेशेक अधिकार होयत छैन्हि ।

मृत पतिक साथ जे नारी एक चिता में वन्हि प्रवेश करैत छथि, हुनक पतिक जे क्रिया कर्ता छैथी, हुनके हिनको क्रिया कर्म करवाक अधिकार होयत छैन्हि ।

ई सभ पिण्डदान पर्यन्तक विषय अछि । श्राद्धकरवाक अपन अपन अधिकारक कर्त्तव्य होयत छैन्हि । सती होयवाक फल अङ्गिरा कहैत छथि— पतिक मृत्युक उपरान्त हुनक पार्थिव शरीरक साथ जे महिला चितारोहण करैत छैथि ओ अरुन्धतीक अकां आचरण करैत चिर काल धरि स्वर्गक शोभाबढवैत छथि । मनुष्यक शरीर में लगभग साढ़े तीन करोड़ लोम कहल जायत अछि, भर्त्ताक अनुगमन करनिहारि सती नारी एतवहि वर्ष धरि स्वर्गक शौभाबढवैत छैथि । 'सा स्वर्ग' अहि पदक अन्वय पूर्वोक्त 'महीयते' क्रियाक संग अछि ।

सँपेरा जेना बल पूर्वक बीहरि सँ बाहर साँप कें निकालैव अछि, तहिना सती नारी बलपर्वक पतिक लऽके हुनका संग आनन्द करैत छथि । अपन पतिक संग सती जे नारी होयत छैथि से अपन पति कुल, मातृकुल एवं पितृकुल तीनों कुल के साथ पवित्र करैत छथि । एहन सतीक सम्बन्ध में अङ्गिरा मुनिक कथन छैन्हि, ई नारी ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न एवं मित्र हन्ता सन अघन्य पापी पतियोक उद्धार करैत छथि ।

'त्रिकुलम्' एकर तात्पर्य पति, पिता एवं माताक तीन कुल सँ अछि । 'तम्' अर्थात् तेहन पापी पति । विष्णुपुराणक कथन—पतिक मरला उत्तर ब्रह्मचर्य व्रतक पालन करी अथवा हुनक संग चितारोहण करी । एकर प्रयोग शुद्धि निर्णय में गोभिल कहैत छथि—अपन गृह्योक्त विधि सँ मुखग्नि देलवाक वाद पतिक

प्रज्ज्वलित चिता में पतिक सङ्ग जनि करि साध्वी सती नारी स्नानकय वस्त्रपहिर हाथ में कुश लय पूर्व वा उत्तर मुख भय, ब्राह्मणक मुख सँ 'ॐ तत्सत्' ई सुनि भगवान् नारायणक स्मरण करैत संकल्प वाक्य पढ़ी—यथा मास, पक्ष एवं तिथि में यथा नामक देवी अरुन्धतीक समान आचारवती होयत स्वर्ग लोक में शोभित पतिक सङ्ग क्रीडारत, ब्रह्म हत्यारा एवं कृतघ्नो पतिक वित्र करवाक इच्छा सँ तिक प्रज्ज्वलित चिता में हम प्रवेश करव' अहि तरहे सहमरण में संकल्प करी । अनुमरण में—पतिक प्रज्ज्वलित चिता में आरोहणक स्थान में प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश, एतवहि कहवाक चाही । दुहूक संकल्प में एतवहि विशेषता छैक ।

आठों लोकपाल सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदयस्थ अन्तर्यामिपुरुष, दिन, राति एवं सन्ध्या, अहाँसभ हमर कृत्यक साक्षी बनू' से पतिक प्रज्ज्वलित चित में सहमरण हो अथवा अनुमरण दुहू स्थिति में एतवा उच्चारण कय चिताक अग्निक तीन वेरि प्रदक्षिणा कय 'इमा नारी .... निमग्ने' ई संकल्प वाक्य पढथु ।

तत्पश्चात् ब्राह्मणक द्वारा—'ई पतिव्रता पुण्यस्त्री अत्यन्त सुशौभना जाया पतिक शरीरक साथ अग्नि में प्रवेश करथु ।' ई श्लोक पढ़लाक बाद 'नमो नमः' ई उच्चारण करैत प्रज्ज्वलित चिता पर आरूढ होथु । 'निमित्तकानि' ई वचनक अनुसार निरवकाश निमित्तक भेने सहमरण हो वा अनुमरण मलमासादियो में होयवाक चाही । इति ।

अथ विधवास्त्रीधर्माः—प्रसङ्गाद्विधवास्त्रीधर्म्माः तत्र विष्णुः ब्रह्मचर्यं मैथुनताम्बूलचूडादिवर्जनम्, विधवाकर्त्तव्यमिति शेषः । तथा—

'ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा परिवर्जयेत् ।।'

स्मृतिः— 'एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन ।
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ।।
तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः ।
स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहं तथा ।।' इति ।

हिन्दी—इस प्रसङ्ग में विष्णु वचन—ब्रह्मचर्यव्रत का पालन, तथा मैथुन, पान चबाना, जूड़ा बांधना इत्यादि कर्म विधवाओं के लिए वर्जित है । और भी—पान खाना, आँखों में काजल लगाना तथा कांसे के बर्त्तन में भोजन करना, सन्यासी, ब्रह्मचारी और विधवाओं के लिए वर्जित है ।

स्मृति का वचन है—विधवा नारी को दिन रात में हमेशा एक ही बार भोजन करना चाहिए; दुबारा भूल से भी नहीं खाना चाहिए । जो विधवा पलंग पर सोती है वह पति को पतन की ओर ढकेल देती है । तिल, कुश और

जल से मृतपति का प्रतिदिन तर्पण करना चाहिए । भगवान् विष्णु का प्रतिदिन नाम जपना चाहिए । स्नान, दान एवं तीर्थाटन करना चाहिए ।

मैथिली—अहिठाम विष्णुक वचन—ब्रह्मचर्य व्रतक पालन, रति क्रिया, ताम्बुल भक्षण एवं कवरी बन्धनादि क्रिया विधवा के नहि करवाक चाही ।

आओर—ताम्बूल भक्षण, आँखि में काजर लगायक एवं कांसाक वर्त्तन में भोजन ई सभ कार्य, संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं विधवाकलेल वर्जित अछि ।

स्मृति—सदा सर्वदा विधवानारी के मात्र एकवेर दिन राति में भोजन करवाक चाही । भोजनक पुनरावृति कदापि नहि हयवाक चाही । विधवास्त्री यदि पलंग पर शयन करथि तऽओ अपन पति के पतनक गर्त्त में पहुँचावैत छथि । हुनका तिल, जल एवं कुश लऽके प्रतिदिन मृत पतिक तर्पण करवाक चाही । विष्णुक नाम जप तथा स्नान, दान एवं तीर्थाटन करवाक चाही । इति ।

विमर्श:—अथ प्रसङ्गात् स्त्रीधर्मानाह व्यास:—

द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षावेक्षणं तथा । असत् प्रलापो हास्यं च दूषणं कुल योषिताम् ।

विधवाधर्मा: काशीखण्डे उक्ता:—

विधवाकवरी गन्धोभर्त्तृबन्धाय जायते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ।।
एकाहार: सदा कार्यो न द्वितीय: कदाचन । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा पक्षस्यार्द्धमथापि वा ।।
मासोपवासं कुर्याद्वा चान्द्रायणमथापि वा । कृच्छ्रं पराकं वा कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा ।।
यवान्नैर्वा फलाहारै: शाकाहारै: पयोव्रतै: । प्राणयात्रां प्रकुर्वीत यावत्प्राणा: स्वयं व्रजेत् ।।
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । तस्मात् भूशयनं कार्यं पतिसौख्य समीहया ।।
नैवाङ्गोद्वर्त्तनं कार्यं ताम्बूलस्य च भक्षणम् । गन्धद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तथा क्वचित् ।।
श्वेतवस्त्रं सदाधार्यमन्यथा रौरवं व्रजेत् । उपवासव्रतादौ तु नित्यं कार्यं यथोदितम् ।।
इत्येवं नियमैर्युक्ता कर्म कुर्यादतन्द्रिता । नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणै: कण्ठंगतैरपि ।।
कञ्चुकन्न परिदध्याद्वासो न विकृतं न्यसेत् । अपृष्ट्वा तु सुतान् किञ्चित् न कुर्यात् भ्रार्तृतत्परा ।।
एवं चर्यापरान्नित्यं विधवाऽपि पतिव्रता । पतिलोकमवाप्नोति न भवेत्क्वाऽपि दु:खभाक् ।।
न गङ्गया तया भेदो या नारी पतिदेवता । उमाशिवसमा साक्षात् तस्मात्तां पूजयेद्बुध: ।।

अथ मृत्यूत्तररोदनादिनिषेध:

मरणानन्तरं रोदनादिनिषेधमाह—कात्यायन:—

'श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवश: ।
अतो न रोदितव्यं तु क्रिया कार्या प्रयत्नत: ।।

रामायणे— 'शोचमानास्तु सस्नेहा बान्धवा: सुहृदस्तथा ।
पातयन्ति गतं स्वर्गम् अश्रुपातेन राघव' इति ।।

दिवसे शवस्पर्शे दाहाकरणे रात्रौ ग्रामप्रवेशः। रात्रौ शवस्पर्शादिकरणे च सूर्योदयानन्तरम्। तथाहि पारस्करः—'प्रेतस्पर्शिनो न ग्रामं प्रविशेयुरानक्षत्राद्रात्रौ चेदादित्यस्य'। प्रेतस्पर्शिनः इति अजहत्स्वार्थलक्षणया दाहकर्तुरप्युपलक्षकम् ।

हिन्दी—कात्यायन के विचार से मृतव्यक्ति के परिजनों द्वारा रोना निषिद्ध माना गया है—मृतात्मा के लिए रोने वाले बन्धुओं के कफ, बलगम एवं आंसू प्रेतों को खाना पड़ता है । क्योंकि, इसके लिए वे विवश होते हैं । अतः उनके परिजनों को रोना नहीं चाहिए अपितु प्रयासपूर्वक उनकी और्द्ध दैहिक क्रिया का सम्पादन करना चाहिए । रामायण में लिखा है—हे राघव, मृतात्मा के लिए स्नेह वश शोक प्रकट करते हुए, उनके आत्मीय रिश्तेदार या मित्र जो रोते-कलपते आंसू चुलाते है, वे उस मृतात्मा को स्वर्ग से नीचे गिराते हैं । इति ।

दिन में शव का स्पर्श करने पर रात में ग्राम में प्रवेश करना चाहिए । रात में यदि शव स्पर्श करे तो सूर्योदय के बाद ग्राम में प्रवेश करे । उदाहरण स्वरूप पारस्कर का कथन—'प्रेत का स्पर्श करने वाला व्यक्ति दिन स्पर्शी रात में और रात्रि स्पर्शी सूर्योदय के बाद ग्राम में प्रवेश करे । अज हत्स्यार्थलक्षणा से प्रेतस्पर्शी शब्द का भी उपक्षक है ।'

मैथिली—मरणोपरान्त रोदन नहि करवाक चाही ई कात्यायनक वचन अछि—मृत व्यक्तिकलेल जे हुनक बन्धु बान्धव कनैत छथि, हुनक आँखिक जोर एवं कंपर प्रेत के भोजन करय पड़ैत छैक, 'कियैक तऽ अहि काजकलेल ओ अवश्य होयत अछि । अत एव मुइल व्यक्तिक कानवाक नहिं चाही, मुदा, यत्न पूर्वक मरलहा व्यक्तिकलेल श्राद्धादिक क्रिया करवाक चाही ।

रामायण में—हे राघव् स्नेह वश आत्मीय जन एवं मित्रगण ककरो मृत्यु पर यदि शोकाकुलभय रोदन करैत छथि तऽ अपन अश्रुात सँ स्वर्ग गेल आत्मीय के अधः पतन करैत छथि । इति ।

दिन में यदि शव स्पर्श करी तथा मरहा व्यक्तिक दाह संस्कार नहि होयतऽरात्रि में ग्राम प्रवेश करी । रात्रि में जो शतस्पर्श करी तऽ सूर्योदय वादे ग्राम में प्रवेश करी । उदाहरण स्वरूप पारस्करक मत—प्रेतस्पर्शी व्यक्ति ग्राम में प्रवेश तावत् काल धरि नहि करथु यावत् काल धरि रात्रि में नक्षत्रोदय एवं प्रभात में सूर्यक उदय नहिं भऽजाय । अजहत्स्वार्थ लक्षणा सँ प्रेत स्पर्शी शब्द दाहकर्त्ताक सेहो उपलक्षक छैक ।

विमर्शः—मृतस्य श्मशानेनीयमानोऽभिपवनं दोषावहः—तद्यथाऽद्भुतसागरे, गार्गीये—

उह्यमानः शवोऽकस्मात् क्षितावभिपतेद्यदा ।
यत्कुलेऽसौ शवस्तेषां विनाशो भवति ध्रुवम् ।।

तत्र नारदोऽपि—
शवस्तु नीयमानस्तु भूमौ निपतते यदि । कुटुम्बा मरणं तत्र धनधान्य परिक्षयः ।।
इमा रुद्रेति मन्त्रेण जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् । आहुति द्वे सहस्रे तु होमश्च कथितो भवेत् ।।
वृषभं दक्षिणा दद्यात् ततः सम्पद्यते शुभम् ।

मयूरचित्रे—
मृतः श्मशानं नीतो यः प्रत्युज्जीवति मानवः। स्वस्थो वा भवति क्षिप्रं पुनरायाति मन्दिरम् ।।
देशः क्षीयते क्षिप्रं परचक्रेण हन्यते । यम दृष्ट्या ततः शान्तिः सक्षीराः समिधः शतम् ।।
घृताक्ता जुहुयाद्विप्रो हुतान्ते भूरिदक्षिणाम् । सावित्र्याष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिश्च कारयेत् ।।
कपिला गौस्तिलं कास्यं देयं यमगतं तथा ।।

पराशरस्तु— 'मृतो वा व्याहरेद् गच्छेद्यत्र तत्र भयं वदेत् ।।'

अथ पिण्डदानविचारः

पिण्डदानं च रात्रौ न वा भोजनानन्तरं दिवसेऽपि, रात्रौ मरणे जाते ज्ञाते वा निषिद्धकाले रात्रौ पिण्डा न देया इति स्मृतिसारलिखनात् । भोजन-जन्याशौचं भवत्येवेति रुद्रधरलिखनाच्च । श्राद्धाधिकारिभिन्नेन दाहे कृतेऽपि तदधिकारिणा दश पिण्डा देया एवेति सम्प्रदायः । अधिकारिभिन्ने न दाहकर्त्रापि स्वीययावदशौचं दश पिण्डा देयाः—

'असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् ।
प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ।।'

इत्याश्वलायनात् दाहानन्तरं श्राद्धाधिकारिण्यायाते श्रवणदिनेऽतीतपिण्डं दत्त्वाऽवशिष्टपिण्डानशौचान्तिमदिनं यावम् प्रतिदिनं दद्यादिति मुख्यः पक्षः— 'यावदशौचं प्रेतस्योदकं पिण्डमेकं च दद्युः ।' इति विष्णु वचनात् । अशौ-चान्तिमदिन एव सर्वपिण्डदानमिति गौणः। तत्र मुख्यपक्षः सांप्रदायिकव्यवहार-सिद्धः, द्वितीयस्तु क्वाचित्कः। सर्ववर्णैर्नवमदिने नवमं पिण्डं दत्त्वाऽशौचा-न्तिमदिन एव दशमः पिण्डो देयः—

'दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु ।'

इत्युपक्रम्य— 'देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेऽहनि ।
वैश्यानां च पञ्चदशमे देयस्तु दशमस्तथा ।।
शूद्रैस्तु दशमः पिण्डो मासे पूर्णेऽन्हि दीयते ।'

इति ब्रह्मपुराणात् । विगोत्रेण श्राद्धाधिकारिणा सपिण्डेन कृतेऽपि दाहकर्त्रा सगोत्रेण प्रेतपदेनैव यावदशौचं पिण्डा देयाः ।

पूरकपिण्डदानस्य प्रेतोद्देश्यकत्वनियमात् । शुनःपुच्छः—

'फलमूलैश्च पयसा पायसेन गुडेन च ।
शालिना सक्तुभिर्वाऽपि शाकैरप्यथ निर्वपेत् ।।

'इति पिण्डानिति शेषः । इयांस्तु विशेषः । येन द्रव्येण प्रथमदिने पिण्डदानं तेनैव सर्वस्मिन्दिने ।

'प्रथमेऽहनि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम् ।'

इति शुनःपुच्छवचनात् । अत्रोदकक्रिया तु पिप्पलपत्रपुटकेनैव कर्त्तव्या

'आनयेङ्गुदिपिण्याकं पत्रं बोधिद्रुमस्य च ।

मन्दाकिनीं पुरस्कृत्य करिष्ये उदकक्रियाः ।।' इति रामायणात् ।

इङ्गुदः = फलविशेषः, 'इङ्गुदी तापसतरुः' इत्यमरः । तपस्विजनोपयुक्तफलवल्कलयुतत्त्वेन तापसतरुत्वमिति रायमुकुटः । जीयापूता इति ख्यात इति रायमुकुटादयः । पिण्याकः पिडार इति प्रसिद्धः । एतत्फलद्वयं पिण्डार्थकं 'बोधिद्रुमश्चलदलः पिप्पलः कुञ्जराशनः ।' इत्यमरः ।

अथ त्र्यहाशौचादौ पिण्डदानक्रममाह पारस्करः—

'प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः ।
द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनं तथा ।।
त्रींस्तु दद्यात् तृतीयेऽन्हि वस्त्रादिक्षालनं तथा ।

ऋष्यशृङ्गः— 'सद्यः शौचे प्रदातव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा ।।'

सर्वेऽपीति पिण्डाः । युगपदेकदा । अधिकारिणा सद्यः शौचप्रयोजकमरणवार्त्तानुदिते सूर्ये एव दातव्या । सूर्योदयानन्तरं स्नात्वा दश पिण्डान् दत्वा आद्यश्राद्धं कृत्वा नखलोमछेदनं कुर्यादिति सद्यः शौचविधिः सम्प्रदायसिद्धः समाचारः ।

हिन्दी—रात में पिण्डदान नहीं करना चाहिए । दिन में भी खा पीकर पिण्डदान नहीं करना चाहिए । रात्रि में जन्माशौच या मरणाशौच विदित हो जाने पर अथवा वर्जित समय में रात में पिण्ड नहीं देना चाहिए' ऐसा स्मृतिसार में लिखा है ।

रुद्रधर के विचार से भोजनोपरान्त भी अशौच की संभावना है । श्राद्ध के अधिकारी से भिन्न व्यक्ति यदि दाहादि क्रिया सम्पादित करे तब भी श्राद्ध के अधिकारी व्यक्ति को दश पिण्ड देना चाहिए । यही सम्प्रदाय में प्रचलित है । श्राद्धाधिकारी से भिन्न दाहकर्त्ता को भी अशौच पर्यन्त दश पिण्ड देना चाहिए । अपने गोत्र का हो या परगोत्री, पुरुष हो या स्त्री जिसने प्रथम दिन पिण्ड दिया उसे दशों दिन पिण्ड देना चाहिए ।

आश्वलायन के इस वचन से यह सिद्ध होता है कि श्राद्ध के उचित अधिकारी के आ जाने पर जिस दिन सुने उसी दिन बीते दिनों के पिण्ड एक साथ देकर बचे पिण्डों को अशौच के अन्तिम दिन तक प्रतिदिन पिण्डदान करना चाहिए यही मुख्य पक्ष है । प्रेत का जब तक अशौच हो तब तक एक पिण्ड के साथ जल देना चाहिए । विष्णु के इस वचन से अशौच के अन्तिम दिन में ही सभी पिण्ड दान होना चाहिए, यह अप्रधान पक्ष हुआ । वहाँ मुख्य पक्ष परम्परागत व्यवहार सिद्ध है । दूसरा पक्ष तो कभी कभार ही होता है । सभी वर्णों के लिए नौवें दिन नौवां पिण्ड देकर अशौच के अन्तिम दिन में ही दशवाँ पिण्ड देना चाहिए ।

'इस तरह प्रतिदिन क्रमशः पिण्ड देना चाहिए ।' इस तरह प्रारम्भ कर—'दशमापिण्ड देना चाहिए, इस तरह क्षत्रियों को बारवाँ दिन, वैश्यों को पन्द्रहवां दिन तथा शूद्रों को महीने पूरा होने पर दशमा पिण्ड देने का विधान है ।' ब्रह्मपुराण का यह वचन है । पूरक पिण्डदान का प्रेतोद्देशकत्व नियम से गोत्रभिन्न श्राद्धाधिकारी के द्वारा सपिण्डीकरण करने पर भी दाहकर्त्ता सगोत्र होने पर प्रेतपदोपादान से ही अशौचपर्यन्त पिण्ड देना चाहिए । पूरक प्रेतोद्देश्यकत्व नियम से ।

शुनः पुच्छ—'फल, मूल, दूध, खरी, गुड, चावल, संतुष्ट या शाकों से 'इनमें से किसी एक वस्तु से निर्मित पिण्ड दान करना चाहिए ।' पिण्डदान इसमें अन्तर्निहित है । यही इसकी विशेषता है । इनमें से जिस द्रव्य से पहला दिन पिण्डदान करे उसी द्रव्य से सभी दिन पिण्ड दान करना चाहिए । 'पहले दिन जिस द्रव्य का प्रयोग करें, उसी का प्रयोग सभी दिन करना चाहिए ।' यह शुनः शेष के वचनानुसार है । यहाँ जल से पितर निमित्तक तर्पण पीपर के पत्ते का दोना बनाकर उसी से करना चाहिए । इङ्गुदी अर्थात् तापस तरु अर्थात् हिंगोट या मालकँगनी या जीयापूता, पिण्याक अर्थापिडार या पीपल के पत्ते का पुटक बनाकर उससे पितर निमित्तक जल तर्पण करना चाहिए । रामायण के अनुसार गंगा को सामने कर जलोदक क्रिया करना चाहिए ।

इङ्गुदः अर्थात् एक फल विशेष, (मिथिला भाषा में पितौंझिया) । अमरकोष के अनुसार यह एक तापस तरु है । तपस्वी जनों के उपयुक्त फल युक्त होने के कारण ही इसे तापस तरु कहा गया है—यह मान्यता राय मुकुटादि का है । राय मुकुटादि ने इसे 'जीयापूता' नाम से ख्यात कहा है । पिण्याक का अर्थ पिण्डार कहा गया है । अमरकोश के अनुसार बोधिद्रुम का अर्थ पीपल का पेड़ होता है ।

अब तीन दिनों के अशौचादि में पिण्ड दान का क्रम पारस्कर ने कहा है—पहले दिन में एक साथ तीन पिण्ड देना चाहिए । दूसरे दिन एक साथ चार पिण्ड देना चाहिए तथा शवदाह के बाद जली हुई हड्डियों को बटोरना चाहिए । तीसरे दिन अवशिष्ट तीन । ऋष्यशृङ्ग का कहना है—सद्य: शौच अर्थात् तुरन्त की हुई शुद्धि के सन्दर्भ में सारे के सारे पिण्ड एक साथ ही देना चाहिए ।

'सर्वेऽपीति' अर्थात् सारे पिण्ड । युगपद अर्थात् एक ही साथ । सद्य: शौच के अनुष्ठाता श्राद्धाधिकारी को चाहिए कि मरण वार्त्ता सुनने के बाद सूर्योदय से पूर्व ही पिण्ड दान करे । सूर्योदय के बाद श्राद्धाधिकारी को सूर्य के उदित होने पर स्नान कर दशों पिण्ड एक साथ देकर आदि श्राद्ध समाप्त कर नख बाल कटाना चाहिए । तुरन्त शुद्धि का यही तरीका सम्प्रदाय सिद्ध व्यवहार है ।

मैथिली—आव पिण्डदानक विचार—पिण्डदान राति में नहि करवाक चाही, दिनों में भोजनोपरान्त पिण्डदान नहि करवाक चाही । राति में मरने या मरलाक सूचना भेटला उत्तर अथवा वर्जित काल में मृत्यु भेने, रात्रि में पिण्डदान नहिं करवाक चाही, ई स्मृतिसारक लेख अछि । म.म. रुद्रधरक लेखानुसार भोजन जन्य अशौच तऽ होयते छैक । श्राद्धक अधिकारी सँ भिन्न व्यक्ति दाह संस्कार कयलो उत्तर श्राद्धाधिकारी के दशपिण्ड देवाक चाही एतवहि सम्प्रदाय सिद्ध व्यवहार अछि । श्राद्धक अधिकारी नहियो रहला पर शवदाहकर्त्ता के अशौच पर्यन्त दश पिण्ड देवाक चाही ।

व्यक्ति सगोत्री होथु वा असगोत्री, पुरुष होथु वा नारी, पहिल दिन जे पिण्ड दान करैथि हुनका दशम दिन धरि पिण्ड दान करवाक चाही ।

एहन आश्वलायनक वचन अनुसार शवदाह कयला उत्तर श्राद्ध करवाक उचित अधिकारी अयला पर जाहि दिन सुनी ताही दिन विगत दिनक सब पिण्ड एक साथ दय, बचल पिण्ड अशौचक अन्तिम दिन धरि प्रतिदिन एक एक पिण्ड देवाक चाही, एतवहि कथनक मुख्य पक्ष अछि ।

'अशौच पर्यन्त प्रतिदिन प्रेत निमित्तक एक एक पिण्ड एवं जल देवाक चाही'—ई विष्णुक वचन अछि । अशौचक अन्तिम दिन सभटापिण्ड एक साथ देवाक चाही ई गौण वचन अछि । एहन स्थिति में मुख्य पक्ष साम्प्रदायिक व्यवहार सिद्ध मानलगेल अछि । दोसर पक्षक मान्यता दुर्लभ अछि । सब वर्णकलेल नवम दिन नवम पिण्ड देलाकबाद अशौचक अन्तिम दिन में अन्तिम अर्थात् दशम पिण्ड देवाक चाही ।

'प्रतिदिन क्रमश: एक एक पिण्ड देवाक चाही ।'

ई प्रस्तावना कय—क्षत्रिय के दशम पिण्ड बारहम दिन देवाक चाही । वैश्य कय दशम पिण्ड पन्द्रहम दिन देवाक चाही । शूद्र के दशम पिण्ड मास पूरलाक बाद तीसम दिन देवाक चाही । ई ब्रह्मपुराणक वचन अछि ।

गोत्रभिन्न श्राद्धाधिकारीक द्वारा सपिण्डीकरणकयलो उत्तर दाहकर्त्ता सगोत्री व्यक्तिक द्वारा प्रेत निमित्तक अशौच पर्यन्त पिण्ड देवाक चाही । पूरक पिण्डदानक प्रेतोद्देश्यकत्वक नियम सँ । अहि सन्दर्भ में शुनःपुच्छक वचन अछि—

फल, मूल, दूध, खीर, गुड, भात, सातु या शाक में से कोनो एक वस्तु सँ पितर निमित्तक पिण्डक निर्माण करवाक चाही । इति । पिण्ड शब्दक प्रयोग श्लोक में नहि छैक किन्तु ई शब्द अवशिष्ट छैक । मुदा एकर विशेषता ई छैक जाहि वस्तुक प्रयोग प्रथम दिन पिण्ड निर्माण में करी ताही वस्तुक उपयोग पिण्ड निर्माणकलेल अन्तिम दिन तक करी ।

'पहिल दिन पिण्डक निर्माण जाहि द्रव्य सँ करी ताही द्रव्य सँ दशाह धरि पिण्डक निर्माण करी ।' ई शुभः पुच्छक वचन अछि । अहि कर्म में उदक क्रिया पीपरक पातक पूरा बनाकय करवाक चाही । पितौंझिया, पिडार अथवा पीपरक पातक दोना बनाय गङ्गा कय सन्मुख कय जल लेके तर्पण करवाक चाही । ई रामायणक वचन छैक ।

इङ्गुदः अर्थात् फल विशेष । अमरकोशक अनुसार तापस तरु । शय मुकुटक अनुसार तपस्वी लोकनिक उपयुक्त फलयुक्त भेने अहि वृक्ष कें तापस तरु कहल जायत अछि । राय मुकुटक अनुसार तपस्वी लोकनिकउपयुक्त फलयुक्त भेने अहिवृक्ष के तापस तरु कहल जायत अछि । राय मुकुटादि लोकनिक अनुसार 'जीयापूता' नामे ई वृक्ष ख्यात अछि ।

पिण्याकः = पिडारक नाम प्रसिद्ध अछि । ई दुहू फल पिण्डकलेल उपयुक्त मानलगेल अछि । अमरकोशक अनुसार बोधि द्रुमक अर्थ भेल पीपरक पेड़ । आव तीन दिनक अशौचादि में पिण्डदानक क्रम पारस्करक मते—

पहिल दिन एक साथ तीन पिण्ड देवाक चाही । दोसर दिन चारिपिण्ड एक साथ देवाक चाही । तथा शव दाहानन्तर जरल हड्डी सेहो बटोरवाक चाही । तेसर दिन अवशिष्ट तीन पिण्ड देवाक चाही तथा वस्त्रादिक प्रक्षालन सेहो करवाक चाही । ऋष्यशृङ्गक अनुसार—

'सद्यः शौच अर्थात् तत्काल शौच में सभटा पिण्ड एक हि साथ देवाक चाही ।' श्राद्धाधिकारीक द्वारा सद्यः शौच प्रयोजक मरणवार्त्ता सुनवाक वाद सूर्योदक पूर्वहि पिण्ड दान करवाक चाही । सूर्योदय बाद श्राद्धाधिकारी स्नान कय दशम पिण्डदय, आदि श्राद्धकय नख एवं केश कर्त्तन करावथु । सद्यः शौचक ई विधि सम्प्रदाय सिद्ध व्यवहार अछि ।

विमर्श:—तत्र हारीतकथनानुसारेण पिण्डप्रकार:—

मध्वाज्यतिलसंयुक्तं सर्वव्यञ्जनसंयुतम् । उष्णमादाय पिण्डन्तु कृत्वाविल्वफलोपमम् ॥
दद्यात्पिता महादिभ्यो दर्भमूलाद्यथाक्रमम् ॥

पितामहपदमत्रपितृपरमं यथामूलस्थवचनविरोध 'यथाक्रम'मिति स्वोक्ति विरोधाभ्याम् । अतएव— स पित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ।
पितामहाय चैवाथ तत्पित्रे च तत: परम् ॥

इतिश्राद्धतत्त्वधृतया स्मृत्या सहाविरोध: । तत्र पिण्डदानस्य प्रयोजनीयत्वमाह गरुड़पुराणे—

दग्धे देहे पुनर्देह: पिण्डैरुत्पद्यते खग । हस्तमात्र: पुमान् येन पथि भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥
बहुभीति पुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत् । अंगुष्ठमांत्रो वायुश्च कर्मभोगाय खेचर: ॥

यातनादेहमासाद्य सहयाम्यै: प्रयान्ति च । तथा च पितृकर्मनिर्णये पण्डितत्रिलोकनाथमिश्रेण दाहकर्तृकर्तृकभोजनानन्तरं, दिवारात्रौ वा मरणे मरणदिने पिण्डमदत्वा तद्द्वितीयदिने पिण्डद्वयं दद्यात्, भोजन जन्याशौचसद्भावस्य रुद्रधरो लिखितत्त्वात्, 'निषिद्धकाले रात्रौ च पिण्डा न देया:' इति स्मृतिसारात्व ।

दाहानन्तरमपरदिनेऽधिकारिण्या यातेऽतीतपिण्डान् श्रवणदिने दत्वा शिष्टान् यथा पूर्वान् दद्यात् क्रमेण । अधिकारीभिन्नश्चेद्दाहकर्त्ता तदा सोऽपि निजाशौचे यावद्दशपिण्डान् दद्यादेव । तथा हि शातातप:— सर्वेषामेववर्णानां द्विजातीनां तु सर्वदा ।
नरे प्रेतत्त्वमापन्ने दद्यात्पिण्डं मुखाग्निद: ॥

आश्वलायन:—असगोत्र: सगोत्रो वा यदिस्त्री यदि वा पुमान् ।
प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ॥

अग्निपुराणम्—अन्यगोत्रोऽप्यसंबद्ध: प्रेतस्याग्निं ददाति य: ।
पिण्डञ्चोदकदानं च स दशाहं समापयेत् ॥

यत्तु—ब्राह्मणे दश पिण्डा: स्यु: क्षत्रिये द्वादशस्मृता: ।
वैश्ये पञ्चदशप्रोक्ता: शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्त्तिता: ॥

इति पारस्करे प्रोक्त, तद्देशविशेष परमिति शुद्धचिन्तामणौ षड्दर्शनाचार्यमिश्र:।
अतएवोक्तं ब्रह्मपुराणे— जात्युक्ताशौच तुल्यास्तु वर्णानां क्वचिदेव हि ।
देशधर्मान् पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान् वपन्ति हि ॥

अथास्थिसञ्चय:

तत्र अस्थिसञ्चयकालमाह । अस्थिसञ्चयमित्युपक्रम्य ब्रह्मपुराणे—

'चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेऽहनि भूभुजाम् ।
सप्तमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमेऽहनि ॥
कर्त्तव्यं तु नरै: श्राद्धं देशकालाविरोधत: ।'

तथा च देशकालानुसारिणास्थिसञ्चयः कार्य इत्यर्थः । इति संपूर्णाशौचेऽस्थिसञ्चयस्य मुख्यकालः । अल्पाशौचे आह छन्दोगपरिशिष्टे—

'त्र्यहाशौचे द्वितीयेऽन्हि कर्त्तव्यस्त्वस्थिसञ्चयः ।
सद्यश्शौचे तत्क्षणं तु कर्त्तव्य इति निश्चयः ।।'

त्र्यहाशौचे तृतीयेऽन्हि इति गौणः। अस्थिसंरक्षणाशक्तौ तु गौणकालमाह रत्नाकरे संवर्त्तः—'प्रथमेऽन्हि तृतीये वा सप्तमे नवमेऽथवा ।
अस्थिसञ्चयनं कार्यं निजैस्तद्गोत्रजैर्मृते ।।

इति श्राद्धयोग्यस्य बालादेर्दाहेऽशौचान्तिमदिन एवास्थिसञ्चयस्तदुत्तरदिने ब्राह्मणभोजनमिति संप्रदायसिद्धव्यवहारः । गङ्गास्थिप्रक्षेपे फलमाह यमः—

'गङ्गातोयेषु यस्यास्थि प्लवते शुभकर्मणः ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ।।
दशाहाभ्यन्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति ।
गङ्गायां मरणे यादृक् तादृक्फलमवाप्नुयात् ।।

ब्रह्मपुराणे—'अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये मनुष्याः ।
सद्भक्तिका वापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ।।
मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः ।
अस्थीन्यन्यकुलोत्थानि नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।'

अत्र मात्रादिवंशद्वयं विहायान्यवंशानां दृष्टप्रयोजनार्थितयास्थिनयने दोष इति वाचस्पतिमिश्राः । दृष्टप्रयोजनं द्रव्यलाभादिः, एतेन पुण्यरूपादृष्टप्रयोजनार्थितया पित्रादिवंशद्वयातिरिक्तस्यापि समानजातीयस्यास्थिनयने न दोष इति पर्यवसितम् ।

अस्थिप्रक्षेपे विधानमाह श्राद्धविवेके—स्नात्वाऽस्थीनि पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य हिरण्यमध्वाज्यतिलैः संयोज्य मृत्पिण्डके निधायदक्षिणां दिशं पश्यन् ॐ नमो धर्मायेति वदन् जलं प्रविश्य प्रेतगतस्वर्गकामो दक्षिणाभिमुखः 'स मे प्रीयताम्' इत्युक्त्वा गङ्गायामस्थि निःक्षिपेत् । ततो दक्षिणां दद्यात् । तीर्थचिन्तामणौ—

'एवं कृते प्रेतपुरे स्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ।' इति ।

हिन्दी—अब अस्थि सञ्चय के सम्बन्ध में—शव दाह के पश्चात् उसकी हड्डियों और भस्मावशेष को एकत्र करने का काल कहा है—अस्थि सञ्चय का उपक्रम कर ब्रह्मपुराण में कहा गया है—चौथे दिन ब्राह्मणों को, पाँचवे दिन क्षत्रियों को, सातवें दिन वैश्यों को तथा दशवें दिन शूद्रों को देश काल के अनुसार अस्थि सञ्चय करना चाहिए । और इसी प्रकार कहा गया है कि—'देशकाल के अनुसार ही अस्थि सञ्चय का कार्य करना चाहिए । इसी

तरह सम्पूर्ण अशौच काल ही अस्थि सञ्चय का मुख्य काल कहा गया है । अल्पाशौच के सम्बन्ध में कहा गया है छन्दोगपरिशिष्ट में—तीन दिनों के अशौच में दूसरे दिन अस्थि सञ्चय करना चाहिए । सद्यः शौच में, उसी क्षण अस्थि सञ्चय करना चाहिए । 'तीन दिनों के अशौच में तीसरे दिन अस्थि सञ्चय करना चाहिए' यह गौण विचार है । अस्थि के संरक्षण में यदि कोई व्यक्ति अशक्त हो तो गौण काल का निर्णय संवर्त्त ने रत्नाकर में दिया है—

पहले दिन, तीसरे दिन, सातवें दिन अथवा नवमें दिन अपने मृत गोत्रजों की अस्थि का सञ्चय स्वयं करना चाहिए । इस तरह श्राद्धयोग्य मृत बालकादि के दाह करने पर अशौच के अन्तिम दिन ही अस्थि सञ्चय करना चाहिए । उसके दूसरे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । मैथिल सम्प्रदाय का यही व्यवहार है—मृतात्मा की हड्डियों को गङ्गा में डालने का फल यम ने कहा है—शुभकर्म करने वाले जिस व्यक्ति की हड्डियां गङ्गाजल में प्रवाहित होती हैं, वह व्यक्ति किसी भी स्थिति में ब्रह्मलोक से लौटकर धरती पर नहीं आता है । दश दिनों के भी जिस मृत व्यक्ति की हड्डियां गङ्गाजल में डूबती है, उसे वह पुण्य फल मिलता है, जो गङ्गा में मृत व्यक्ति को मिलता है ।

ब्रह्मपुराण में—जो व्यक्ति माता, पिता एवं पूर्वजों की हड्डियां गङ्गा नदी तक भक्ति पूर्वक या दया से अभिभूत होकर पहुँचाता है, उसे समग्रतीर्थाटन का फल मिलता है । ठीक इसके विपरीत जो नराधम अपने माता-पिता या पूर्वजों को छोड़कर किसी अन्य कुलोत्पन्न व्यक्ति की हड्डियों को उठाकर गङ्गा तक पहुँचाता है उसे प्रायश्चित के लिए चन्द्रायण करने का विधान है । यहाँ अपने मातृकुल एवं पितृकुल को छोड़कर अर्थ प्राप्ति के लोभ से अस्थि ले जाता है वह दोषभागी होता है । ऐसा वाचस्पति मिश्र का विचार है । दृष्टप्रयोजन का अर्थ है द्रव्य का लाभ आदि, इससे यह सिद्ध होता है कि अपने पितृ-मातृ कुलों के अतिरिक्त सजातीय मृत व्यक्ति की हड्डियां पुण्य फलप्राप्ति की दृष्टि से ले जाता है तो उसे दोष नहीं लगता है ।

अस्थि प्रक्षेप का विधान श्राद्धविवेक में कहा गया है—स्नान के बाद हड्डियों को पञ्चगव्य का उस पर छिड़कावकर, सुवर्ण, मधु, घी और तिल मिलाकर मृतपिण्डक में रखकर, दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए 'ॐ नमो धर्माय' का उच्चारण करते हुए जल में प्रवेश कर प्रेतगत स्वर्ग की कामना से 'वह मुझ पर प्रसन्न हो' ऐसा कहकर जल में हड्डियों को डाल दे । इसके बाद दक्षिणा दें । तीर्थचिन्तामणि में लिखा है—ऐसा करने पर यमलोक में उपस्थित प्राणी की स्वर्ग की ओर गति होती है और वह महेन्द्र तुल्य होता है ।

मैथिली—'आव अस्थिसञ्चय कहव'—अहि अवसर पर हड्डी एकत्र करवाक समय निर्धारित कयलगेल अछि । अस्थि सञ्चयक उपक्रम कय ब्रह्मपुराण में कहलगेल अछि—चारिम दिन ब्राह्मण, पञ्चम दिन क्षत्रिय, सातम दिन वैश्य एवं दशम दिन शूद्रलोकनिकें देश कालक अनुसार मृत प्राणीक दाहानन्तर हड्डी एकत्र करवाक चाही । एवं अहिना कहलगेल अछि कि देश कालक अनुसार हाड़ एकत्र करवाक चाही । सम्पूर्ण अशौच काल में अस्थि सञ्चयक मुख्य काल मानल गेल अछि । अत्याशौचक सन्दर्भ में छन्दोगपरिशिष्ट में कहलगेल अछि—तीन दिनक अशौच में दोसर दिन अस्थि सञ्चय करवाक चाही । सद्यः शौच में निश्चय पूर्वक तत्क्षणे अस्थि सञ्चय करवाक चाही ।

'तीन दिनक अशौच में तेसर दिन' ई कथन गौण अछि । अस्थि संरक्षण में अशक्त लोकनिकलेल गौण कालक सन्दर्भ में रत्नाकर में संवर्त्त कहने छथि—मृत सगोत्रीय व्यक्तिक अस्थि सञ्चय प्रथम दिन, तेसर दिन, सातम दिन अथवा नवम दिन करवाक चाही । कियेक तऽ श्राद्धयोग्य कालकादिक दातोपरान्त अशौचक अन्तिमें दिन अस्थि सञ्चय कयल जायत अछि, तथा ओकर दोसर दिन ब्राह्मण भोजनादि होयत अछि । मैथिलक सम्प्रदाय सिद्ध एतवहि व्यवहार अछि ।

गङ्गा में अस्थि प्रक्षेपक फल यम कहने छथि—जे कोनो शुभ कर्मी व्यक्तिक जरल हाड़ गङ्गाक धार में भसियाति छैक, हुनक ब्रह्मलोक सँ पुनरावृत्ति कोनो स्थिति में नहि होयत छैन्हि । दशदिनक अभ्यन्तरे हुनक अस्थि यदि गङ्गाक जल में मज्जन करैत छन्हि तऽ गङ्गा में मरणक जे फल होयत छैक से हुनका भेटैत छन्हि ।

ब्रह्मपुराणक वचन अछि—जे कोनो व्यक्ति भक्तिपूर्वक अथवा दया सँ अभिभूत भय अपन माता-पिता अथवा पूर्वजक अस्थि लऽके गङ्गा में पहुँचावैत छथि हुनका तीर्थाटनक फल भेंटैत छन्हि । जे नराधम अपन मातृ-पितृ कुल छोड़ि अन्य कुलोत्पन्न व्यक्तिक अस्थि लऽक गङ्गा पहुँचैत छथि हुनका चान्द्रायण व्रत करो पडैत छैन्हि ।

अहिठाम माता एवं पिताक कुल द्वय छाडि, अर्थोपार्जनक दृष्टि सँ आन कुलक अस्थि के गङ्गा में लऽ जयवा में दोष वाचस्पति मिश्र कहैत छथि । दृष्ट प्रयोजनक अर्थ अछि द्रव्यादिक लाभ एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि जे अर्थलोलुपताक त्यागि पुण्यकर्मक दृष्ट्या यदि क्यो मातृ-पितृ कुलक अतिरिक्त अन्य कुलोत्पन्न व्यक्तिक अस्थि लऽके गङ्गाधाम पहुँचावैत छथि तऽ हुनका कोनो तरहक दोष नहि होयत छैन्हि ।

अस्थि प्रक्षेपक विधान श्राद्धविवेक में कहलगेल अछि—स्नानकय अस्थि कय पञ्चगव्य सँ अभिसिञ्चित कय सोन, मधु, घृत एवं तिल मिलाय मृतपिण्डक में राखि दक्षिण दिष देखैत 'ॐ नमो धर्माय' ई कहैत जल में प्रवेशकय प्रेतगत

स्वर्गक कामना करैत दक्षिणाभिमुख भय 'स मे प्रियताम्' ई कहि गङ्गा·में अस्थि प्रक्षेप करी । तकरवाद दक्षिणा दी । तीर्थचिन्तामणि में—एहन कयला उत्तर प्रेतुरी में अवस्थित प्राणी स्वर्गगामी भय महेन्द्रतुल्य होयत छथि ।

विमर्श:—अस्थिसञ्चयने सुगतिसोपाने विष्णुराह—

अस्थ्नां तु सञ्चय: सद्य: कर्त्तव्यो दाहवासरात् । द्वितीयेऽन्हि त्र्यहाशौचे पूर्णे चैव चतुर्थके ।।

अथ गङ्गायामस्थिक्षेपे स्मृत्यन्तरमपि— यावदस्थिमनुष्याणां गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।

अथाशौचे त्याज्यात्याज्यविचार:

आश्वलायन:—'नैवास्यां रात्रावन्नं पचेयुस्त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनश्च स्यु र्द्वादशरात्रं महागुरुष्विति' महागुरवो मातापिताआचार्या: । तथा चाशौचिनाम-शौचाधिकरणरात्रौ पाकनिषेध: । अशौचभागिनां त्रिरात्रं क्षारलवणनिषेध:। महा-गुरुषु मृतेषु द्वादशरात्रमक्षारलवणभक्षणनिषेध: । तेन सैन्धवलवणभक्षणे न दोष: इति तात्पर्यम् ।

अग्निहोतॄणां दाहदिनमारभ्य तद्भिन्नानां च मरणदिनमारभ्याशौचम् उत्पद्यते । तथा हि—'मरणादेव कर्त्तव्य: संयोगो तस्य नाग्निना ।
दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधि: ।।'

इति शङ्खवचनात् । यातेऽप्यशौचेऽज्ञाते न श्राद्धादिकर्मप्रतिरोध:, किन्तु ज्ञाते एवाशौचे तत्प्रतिरोध: । तथा हि ब्रह्मपुराणे—

'अपि दातृगृहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा ।
अविज्ञाते न दोष: स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन ।।
विज्ञाते भोक्तुरेव स्यात्प्रायश्चित्त क्रमादिति ।'

विज्ञानं विशेषतो ज्ञानम् निश्चयात्मकमिति यावत् । तथाच निश्चयात्मक-ज्ञानविषयेऽशौचे कर्मप्रतिरोध इति पर्यवसितम् । अशौचे त्याज्यानाह जाबालि:— 'सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञान् नैत्यकं स्मृतिकर्म च ।
तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुन: क्रिया ।। इति ।

तन्मध्ये स्वस्वाशौचमध्ये हापयेत्त्यजेत् । दशाहान्तपदं स्वस्वाशौचान्त-द्वितीयदिनोपलक्षकम् । पुन: पुन: क्रियेति कर्तव्येति शेष: ।

पञ्चमहायज्ञानाह छन्दोगपरिशिष्टे—पञ्चैव महायज्ञा भूतयज्ञो मनुष्य-यज्ञ: पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति ।

'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ: पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्रोर्बलिरथापि वा ।।'

सङ्कल्पितव्रतमशौचेऽपि कर्त्तव्यम् । तथा च विष्णुः—'न व्रतिनां व्रते' इति व्रतिनां आरब्धव्रतानां न व्रते इति अशौचप्रतिरोधकमिति शेषः । तिथितत्त्वे विष्णुः— 'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे ।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ।।
आरम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः ।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ।।
निमन्त्रणं तु वा श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः ।'

सूतकपदमशौचमात्रोपलक्षकं, नान्दीश्राद्धमाभ्युदयिकं विवाहादावित्यादिपदादुपनयनादिपरिग्रहः । अपवादमाह यमः—

'दैवे भये समुत्पन्ने प्रधानाङ्गे विनाशिते ।
पूर्वसङ्कल्पिते चार्थे तस्मिन्नाशौचमिष्यते ।।'

ब्रह्मपुराणे— 'गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः ।
पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः ।।'

अशौचप्रयुक्तकर्मप्रतिरोध इति शेषः ।

मरीचिः—'लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च ।
शाककाष्ठतृणेष्वेवं दधिसर्पिः पयस्सु च ।।
तैलौषध्यजिने चैव पक्वापक्वे स्वयं गृहे ।
पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ।।'

सर्पिर्घृतम् । पयोऽत्र दुग्धम् । पक्वं सक्तुमोदकादि, अपक्वं तण्डुलादि, तथा च लवणादीनामुक्तानामशौचिनोऽपि ग्रहणे न दोषः । पक्वापक्वयोस्त्वशौचिसम्बन्धिनोः स्वयं ग्रहणे न दोषः। अशौचिहस्ताद् ग्रहणे तु दोष एवेति भावः।

हिन्दी—अब अशौच में क्या छोड़ना चाहिए और क्या नहीं? इसका विचार—जिस दिन से सूतक प्रारभ हो उस रात घर में रसोई नहीं बनाना चाहिए । जिसे सूतक लगा हो उसे तीन रात तक कृत्रिम लवण नहीं खाना चाहिए । महागुरु अर्थात् मातापिता एवं आचार्य की मृत्यु होने पर बारह रात्रि तक कृत्रिम लवण का भक्षण नहीं करना चाहिए । जैसे अशौचियों को अशौचाधिकरणक रात्रि में भोजन पकाने का निषेध है । जिन्हें अशौच लगा हो उनके लिए तीन रात कृत्रिम लवण भक्षण का निषेध है । महागुरुओं की मृत्यु पर बारह रात तक कृत्रिम लवण भक्षण का निषेध है । क्षारलवण निषेध से तात्पर्य यह है कि सिन्धा नमक खाने से दोष नहीं होता ।

अग्निहोत्रियों को शवदाह जिस दिन करे उसी दिन से तथा अग्निहोत्री भिन्न लोगों को मरण दिन से सूतक का आरम्भ होता है । इसीलिए यह कहा गया है कि—अग्निहोत्री भिन्न लोगों को मरण दिन से ही सूतक मानना चाहिए तथा वैतानिक विधि वाले अर्थात् अग्निहोत्रियों को शवदाहोपरान्त ही सूतक मानना चाहिए । यह शङ्ख का वचन है । सूतक लगने के बावजूद यदि श्राद्ध कर्त्ता को सूतक की जानकारी नहीं हो श्राद्धकर्म में बाधा नहीं पहुँचती और यदि सूतक ज्ञात हो जाय तो श्राद्ध रोक देना चाहिए ।

जैसा कि ब्रह्मपुराण में लिखा है—जन्माशौच एवं मरणाशौच का दाता एवं ग्रहीता को निश्चयात्मक जानकारी न हो तो श्राद्धादि कर्म करने में किसी प्रकार का दोष नहीं होता है । किन्तु, सूतक का निश्चयात्मक ज्ञान हो जाने पर भोक्ता के लिए पूर्ण प्रायश्चित की व्यवस्था है । विज्ञान का अर्थ है विशेषज्ञान अर्थात् सूतक की निश्चित जानकारी । जैसा कि निश्चयात्मक ज्ञान विषयक अशौच में कर्म करने में रुकावट होती है ।

अशौच में छोड़ने योग्य विषयों के बारे में जाबाल का कथन—सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ, नित्यकर्म, स्मार्त्तकर्म अपने सूतक काल में नहीं करना चाहिए । दश दिनों के बाद ये सारे कर्म करना चाहिए । तन्मध्ये का अर्थ है अपने अपने अशौच के बीच में, हापयेत् = छोड़ देना चाहिए। दशाहान्त पद अपने अपने अशौचान्त के दूसरे दिन का उपलक्षक है । बार बार करना चाहिए । पञ्च महायज्ञ के सम्बन्ध में छन्दोगपरिशिष्ट में—पाँच ही महायज्ञ हैं, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञ । इति।

सङ्कल्पितव्रत अशौच में भी करना चाहिए । जैसाकि विष्णुपुराण का वचन है—'न व्रतिनां व्रते' व्रतिनाम् = अर्थात् आरम्भित अनुष्ठान में, न व्रते अर्थात् अशौच प्रतिरोधक नहीं होता है । व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, हवन, अर्चन, जप आरम्भ कर देने पर सूतक नहीं लगता और यदि आरम्भ नहीं किया गया हो तो सूतक लगता है ।

यज्ञ में ब्राह्मणों का वरण हो जाने पर प्रारम्भ माना जायगा, व्रत और जप में सङ्कल्प हो जाने पर, विवाहादि में नान्दी श्राद्ध हो जाने पर श्राद्ध में पाक की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाने पर अथवा श्राद्ध हेतु निमन्त्रण दे देने पर कार्यारम्भ स्मृति के अनुसार माना जाता है । सूतक पद अशौच मात्र का द्योतक है । नान्दीश्राद्ध का अर्थ है आभ्युदयिक अर्थात् उपादान से उपनयनादि का भी बोध होता है । इसका यम ने अपवाद कहा है—दैवी भय उत्पन्न होने पर राज्य का प्रधान या प्रमुख व्यक्ति के विनष्ट हो जाने पर और पूर्व

सङ्कल्पित अर्थ में अशौच नहीं होता । पुरोहित यजमान में मधुपर्क ग्रहण कर लें उसके बाद अशौच उपस्थित होने पर भी अशौच नहीं होता यह निश्चित मत है । अशौच प्रयुक्त कर्म में रुकावट यह तात्पर्य है ।

मारीचि का कथन है—नमक, मधु, मांस, फल, फूल, कन्दमूल, शाक, काठ, तृण, दही, घी, दूध, तेल, औषधि, मृगचर्म, पक्य अर्थात् सत्तू, लड्डू आदि, अपक्य, गेहूँ, चावल आदि सम्बन्धी घर से स्वयं लेने में तथा बाजारी वस्तुओं में मृत सूतकजन्य अशौच नहीं होता ।

सर्पि: = घी, पय का अर्थ यहाँ दूध लिया गया है । पक्य का अर्थ यहाँ सत्तू एवं लड्डू आदि, अपक्य का अर्थ है चावल आदि तथा नमक प्रभृति ऊपर गिनाई गई वस्तु अशौची के सम्बन्धी के हाथ से स्वयं ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है । पक्व एवं अपक्व वस्तु अशौची के सम्बन्धी के हाथ से स्वयं ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है किन्तु जिसे अशौच लगा हो उसके हाथ से ग्रहण करने में तो दोष है ही ।

मैथिली—सूतक में त्याज्य एवं अत्याजक विचार—आश्वलायनक वचन—अशौचक पहिल राति में घरऽ में भोजन नहिं बनयवाक चाही । तीन राति धरि कृत्रिम लवण रहित भोजन करवाक चाही, महागुरुक अशौच में बारह राति धरि कृत्रिम लवण रहित भोजन करवाक चाही । महागुरु शब्द माता-पिता एवं आचार्य पदक बोधक अछि । अहिं राति सँ अशौची व्यक्तिकलेल अशौचक आधारभूत रात्रि में पाकक निषेध अछि । अशौची व्यक्तिकलेल तीन राति धरि क्षार लवणक निषेध कयलगेल अछि । महागुरूक मरला उत्तर बारह राति धरि कृत्रिम लवण भक्षणक निषेध कयलगेल अछि । मुदा, सैन्धव लवण भक्षण में कोनो दोष नहि, ई फलितार्थ भेल ।

अग्निहोत्रि लोकनिकय शवक दाह दिन सँ प्रारम्भ कय, तथा आन लोकनिक मरणदिन सँ अशौच होयत छन्हि । उदाहरण स्वरूप शङ्खक ई वचन अछि—अग्निहोत्री भिन्न लोकनि कय मरण दिन सँ अशौच होयत छैन्हि, तथा अग्निहोत्री लोकनिके शवदाहक दिन सँ अशौच होयत छन्हि ।

अशौच भेलो उत्तर यदि अशौच अज्ञात होयत तऽ श्राद्धादि कर्मक ओ बाधक नहि होयत अछि । मुदा यदि सूतक ज्ञात भऽ जाय तऽ ओ श्राद्धादि कर्मक प्रतिरोधक होयत अछि । उदाहरणस्वरूप ब्रह्मपुराण में—जन्माशौच हो या मरणाशौच अविज्ञात स्थिति में श्राद्धादि कर्म में दाता एवं गृहीता कय कोनो तरहें दोष नहि होयत अछि । किन्तु, अशौचक ज्ञान भऽ गेने भोक्ता प्रायश्चित्तक भागी होयत छथि । विज्ञानक अर्थ विशेषत: ज्ञान अर्थात् सूतकक निश्चयात्मक ज्ञान । अहि तरहे कहलगेल अछि अशौचक विषय में निश्चयात्मक ज्ञान भेने कर्मक प्रतिरोध होयत अछि, ई फलितार्थ भेल ।

अशौच में त्याज्य विषय की अछि अहि सन्दर्भ में जाबालक वचन अछि––सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ, नित्यकर्म एवं स्मार्त्त कर्म अशौचक बीच में त्यागि देवाक चाही तथा दशाहान्तक बाद ई सब क्रिया पुन: करवाक चाही । इति । तन्मध्ये अर्थात् अशौचक बीच में, हापयेत् अर्थात् त्यागि देवाक चाही । दशाहान्त पद अन अन अशौचान्तक दोसर दिनक उपलक्षक भेल । पुन: पुन: अर्थात् बार बार करवाक चाही । पञ्चमहायज्ञ की भेल अहि सन्दर्भ में छन्दोगपरिशिष्ट में कहल गेल अछि––पाँचेटा महायज्ञ भेल––भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञ ।

अध्यापन ब्रह्मयज्ञ भेल, तर्पण पितृयज्ञ, हवन देवयज्ञ, बलि भूतयज्ञ तथा अतिथिपूजन मनुष्ययज्ञ भेल । अथवा श्राद्ध पितृयज्ञ भेल वा बलि अर्थात् अपन भोजनांश प्राणीक बीच वितरण करव पितृयज्ञ भेल ।

सङ्कल्पित व्रत अशौचों में कर्त्तव्य अछि । जेना विष्णुपुराण में कहलगेल अछि––'न व्रतिनां व्रते' एकर तात्पर्य ई भेल जे व्रतारम्भ कय देने छथि, हुनक व्रतक बाधक अशौच नहि होयत छैन्हि । तिथितत्त्व में विष्णुक वचन अछि––व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, अर्चन, जप इत्यादि कर्मक प्रारम्भ भय गेलाक बाद सूतक नहिं होय तथा ई सबटा कर्म यदि प्रारम्भ नहि भेल होय तऽ सूतक ओकरालेल बाधक होय । यज्ञक प्रारम्भ वरणोपरान्त मानल जायत अछि, व्रत एवं जापक प्रारम्भ सङ्कल्प सँ विवाहादिक प्रारम्भ नान्दीश्राद्ध सँ, श्राद्धक प्रारम्भ पाकक परिक्रिया सो अथवा श्राद्धक निमन्त्रण देलाक बादे स्मृतिक अनुसार मानल गेल अछि ।

सूतक पद अशौच मात्रक उपलक्षक अछि । नान्दी श्राद्ध, आभ्युदयिक माङ्गलिक कृत्य होयत अछि । विवाहादि में आदि पदेन उपनयन प्रभृतिक बोधक अछि । एकर अपवाद यम कहैत छथि––दैवी भय उत्पन्न भेला पर, सज्यक प्रधान या प्रमुख व्यक्तिक विनाश भेला पर पूर्व सङ्कल्पित कर्म में अशौच नहि होय । बह्मपुराण में––यजमान सँ पुरोहित यदि मधुपर्क ग्रहण कयलथि तकर वाद अशौचक निश्चित रूप सँ मान्यता नहि होयत अछि । अशौच प्रयुक्त कर्मक ई प्रतिरोधक भेल । मरीचिक वचन––लवण, मधु, मांस, फल, फूल, मूल, शाक, काठ, तृण, दही, घी, दूध, तेल, औषधि, मृगचर्म, पक्व अर्थात् सातू, मोदक प्रभृति, अपक्व-तण्डुलादि अशौची व्यक्तिक सम्बन्धी सँ स्वयं ग्रहण कयने तथा बाजारक वस्तु में मृत सूतक जन्य अशौच नहि होय । सर्पि: घी, पयक अर्थ अहिठाम दूध, पक्व = सातु मोदक प्रभृति, अपक्यम् = तण्डुलादिकां च अन्न, अही रीति सँ लवणादि उक्तवस्तु अशौची व्यक्तियो सँ ग्रहण कयने दोष नहि होय । पक्वापक्व वस्तु अशौचीक सम्बन्धीक हाथे स्वयं ग्रहण कयने कोनो तरहक दोष नहि मानलगेल अछि । मुदा, अशौचीक हाथे ग्रहण कयला उत्तर अवश्य दोष होय ई भाव अछि ।

विमर्शः—मधुपर्कस्तु—दधिसर्पिजलं क्षौद्रं सिता चैतैश्च पञ्चभिः, प्रोच्यते मधुपर्कः । सिद्धान्तशिरोमणौ, अशौचकालः—

पितुरब्दमशौचं स्यात् षण्मासं मातुरेव च । त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्द्धं भ्रातृपुत्रयोः ।।

संपूर्णाशौचसङ्करमाह ब्रह्मपुराणे—

'आद्यभागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके ।
द्वितीये पतिते चाद्यात् सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ।।
अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृता ।।

विष्णुः—'रात्रिशेषे दिनद्वयेन, प्रभाते दिनत्रयेणेति' अशौचान्तद्वितीयदिनेऽशौचान्तरपाते तदशौचान्ते श्राद्धकर्त्तव्यत्वावगमकमनुपदं वक्ष्यते । एतेन सर्ववर्णानां सम्पूर्णाशौचपूर्वार्द्धे सजातीयसमानदिनव्यापकं द्वितीयाशौचं प्रतिपूर्वाशौचेऽतीते शुद्धिः । उत्तरार्द्धे उपान्त्यदिनपर्यन्ते द्वितीयतादृशाशौचपाते उत्तराशौचेऽतीते शुद्धिः। साजात्यं तु मरणाशौचत्वादिना तेन मरणाशौचे मरणाशौचस्यैव सजातीयत्वं, जननाशौचे जननाशौचस्यैवेति बोध्यम् । अशौचान्तिमाहोरात्रे तादृशद्वितीयपाते अशौचान्तिमद्वितीयदिनं तदग्रिमदिनद्वयं चाशौचम्, अशौचान्तिमादिनप्रभातकाले तादृशद्वितीयाशौचपाते तत्प्रभातानन्तरं दिनत्रयेण शुद्धिरिति पर्यवसितम्। 'अरुणोदयानन्तरं सूर्योदयं यावत्प्रभात' इति रत्नाकरः।

पञ्च पञ्च उषः कालः सप्तपञ्चारुणोदयः ।
अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषं सूर्योदयो मतः ।। इति ।

अरुणोदयकालमाह स्कान्दे—

'उदयात्प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः' ।। इति ।

नाडिका दण्डः । त्र्यहाद्यल्पाशौचे सजातीयसमानदिनव्यापकाशौचान्तरनिपाते उत्तराशौचव्यपगमेन शुद्धिः' ।

'अघवृद्धावशौचं तु परेण तु समापयेत् ।'

इति यमवचनात् । अत्र त्र्यहाद्यसंपूर्णाशौचे समानदिनव्यापकाशौचान्तरपातेऽग्रिमाशौचव्यपगमेन शुद्धिरिति शुद्धिविवेकः । सजातीययोरल्पदिनाधिकदिनव्यापकयोरशौचयोः सङ्करेऽधिकदिनव्यापकाशौचान्तेन शुद्धिः। जननमरणाशौचयोः सङ्करेऽल्पदिनव्यापकेनापि मरणाशौचेनातीतेनैव शुद्धिः । तदाह कूर्मपुराणे— 'अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसा ।
मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत् ।।' इति

पैठीनसिः—'सूतिकां पुत्रजननीं विंशतिरात्रेण स्नातां सर्वकर्माणि कारयेत्' मासेन स्त्रीजननीम् इति'

'पुत्री मज्जनतोऽथ सर्ववर्णजननीस्पर्शे दशाहाच्छुचिः ।
कर्मार्हा द्विदशाहतः पुरुषसूर्मासात्परं स्त्रीप्रसूः ।।' इति च ।

पुत्रोषिता मज्जनतः स्नायात् । शुचिस्तत्कालकर्त्तव्यदानादिकर्मयोग्यः स्पर्शयोग्यश्च । एतेन प्रसूतीनां कन्याजन्मनि मासं पुत्रजन्मनि विंशतिदिनमशौचं यत्स्वप्रसवनिमित्तकं तन्मरणाशौचेन बाध्यते । तस्यास्तादृशप्रसवनिमित्तक-जननाशौचमेव बलीयः । तेन प्रसूतीनां पतिमरणेऽपि विंशतिदिनाद्यशौचान्तेनैव शुद्धिरिति पर्यवसितम् ।

अशौचान्तद्वितीयदिनेऽशौचपाते तु तदशौचे व्यतीते शुद्धिः, तदशौचान्त-द्वितीयदिने आद्यश्राद्धं च । एकादशाहोत्पन्नाशौचेन यद्याद्यश्राद्धप्रतिरोधस्तदा तदशौचान्ते श्राद्धकरणे शय्यादानादि न भवतीति द्वैतनिर्णये वाचस्पतिमिश्र-लिखनस्वरसात्— 'देयं पितॄणां श्राद्धं वै अशौचं जायते यदि ।
अशौचे तु व्यतीते वै तेषां श्राद्धं प्रदीयते ।।'

इति ऋष्यशृङ्गवचने सामान्यत एव श्राद्धपदोपादानाच्च ।

ब्राह्मणादिचतुर्वर्णानां सपिण्डाशौचमाह मनुः—

'शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ।।

चतुर्वर्णानामपि सकुल्ये मृते जनने वा त्रिरात्रमेवाशौचं, गोत्रजे स्नानपर्यन्तमेव । 'त्रिरात्रेण सकुल्यास्त स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः' । इति बृहस्पतिवचनात् सापिड्यमाहतुः शंखलिखितौ—

'सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी ।।' इति ।

मनुः— 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ।।' इति ।

अत्र गोत्रपदं सन्ततिः, तेन बीजिनमारभ्य सप्तपुरुषमभिव्याप्य सर्वेषां सन्तानानां सन्तानिनां च परस्परं सापिण्ड्यम् । एकस्यापि सप्ताधिकत्वेन समं सप्तान्तर्गतस्यापि सापिड्यं निवर्तते, संयोगवदुभयनिरूप्यत्वादिति द्वैतनिर्णये वाचस्पतिमिश्राः, द्वैतपरिशिष्टे केशवमिश्राश्च । सप्तमे इति सप्तमे सति अनन्तरं अष्टमे सपिण्डता निवर्त्तत इत्यर्थः । अत्र परस्परं सापिण्ड्यमपि । एतेन पूर्वषट्केनोत्तरषट्केन च मध्यसापिण्ड्यमुक्तं भवति संयोगवदिति । यद्यप्यत्र मानाभावः, तथापि सर्वेषामिति पदात् परस्पर प्रतियोगिता लभ्यते इत्याशय इति जीर्णोद्धारे ठक्कुरोपाह्णमधुसूदनाः ।

हारीतः—'अष्टम-नवम-दशमाः सकुल्या' इति । ज्ञायमानजन्मनां दशमपुरुषाधिकानां मरणजन्मनोः पक्षिणीति शुद्धिविवेके। दशपुरुषानन्तरं जन्म-

नाम्नोरविज्ञानेऽस्मत्कुलजा इत्येवमाकारकज्ञानगोचरा गोत्रजा इत्यपि तत्रैव । स्मृत्यर्थनिर्णये—केनचित्क्षत्रियेण दशाहाशौचमभ्युपेतम् । तदपत्येनापि तदेवाभ्युपेतं। 'सर्वे वा स्युर्दशाहिनः' इति वचनात् । तदा तेषां ब्राह्मणवदेवाशौचं जननमरणयोरनुसन्धेयम् । ये तु षट्त्रितय(खत्री)पदाभिधानेन क्षत्रियत्वाभिधायिनो वैश्याः पारम्पर्येण द्वादशाहाशौचमभ्युपगच्छन्ति, ये तु राजपुत्रपदाभिधानेन पारम्पर्येण द्वादशाहाशौचमङ्गीकुर्वन्ति, ये च देशविशेषनियतया द्वादशाहाशौचमेव शूद्रा मन्यन्ते, तेषां क्षत्रियजात्युक्ताशौचमेव सुधीभिरुपदेष्टव्यम् । पारम्पर्यसिद्धतया तस्यापि शास्त्रार्थत्वादिति गोकुलनाथोपाध्यायचरणाः। तथाचाशौचसङ्करादिकमपि तादृशतादृशस्थले ब्राह्मणादिरीत्यैव तादृशक्षत्रियादीनामपि अवगन्तव्यमिति भावः ।

हिन्दी—सारे अशौचों के सम्मिश्रण के सम्बन्ध में ब्रह्मपुराण में कहा गया है—जन्माशौच के प्रारम्भिक दो भागों के भीतर यदि दूसरा जन्माशौच हो जाय तो पहले के जन्माशौच के मुताबिक ही शुद्धि होती है । इसके बाद का सूतक अन्तिम सूतकान्त में ही शुद्धि होती है ।

विष्णु—'रात्रिशेष में अशौचान्तर होने पर दो दिनों में तथा प्रभावकाल में अशौचानतर होने पर तीन दिनों में ।' इति । अर्थात् अशौचान्त के दूसरे दिन, यदि दूसरा अशौच हो जाय तो उस अशौच के अन्त में श्राद्ध कर्त्तव्य है, इस सम्बन्ध में तुरन्त हम कहेंगे । इससे सभी वर्णो के सम्पूर्ण अशौच के पूर्वार्द्ध में सजातीय समान दिन व्यापक दूसरा अशौच होने पर पहला अशौच समाप्त होने पर शुद्धि होती है । उत्तरार्द्ध में अशौच के अन्तिम दिन से पूर्व के दिन तक दूसरा वैसा ही कोई अशौच हो जाय तो दूसरे अशौच की अवधि समाप्त होने पर ही पहले अशौच की भी शुद्धि होती है । सजातीय शब्द का अर्थ है मरणाशौच का सजातीय मरनाशौच ही होता है और जननाशौच का सजातीय जननाशौच ही होता है । अशौच के अन्तिम दिन रात में वैसे ही दूसरा अशौच हो जाने पर अशौच के अन्तिम दूसरे दिन अर्थात् उसके अग्रिम दो दिन का अशौच तथा अशौच के अन्तिम दिन के प्रभातवेला में वैसे ही दूसरे अशौच के होने पर, उस प्रभात के बाद तीन दिनों में शुद्धि का विधान है । अरुणोदय के बाद सूर्योदय पर्यन्त प्रभात काल कहलाता है । यह रत्नाकर का विचार है ।

पाँच पाँच घटी उषः काल, सात-पाँच घटी अरुणोदय, आठ-पाँच में प्रातः, शेष में सूर्योदय कहा गया है । स्कन्दपुराण में अरुणोदय काल के सम्बन्ध में कहा गया है—सूर्योदय से पूर्व चार दण्ड अरुणोदय कहलाता है । इति । नाडिका = दण्ड, तीन दिन आदि के अल्पकालीन अशौच से सजातीय

समान दिन व्यापक अशौच के बीच में अशौच हो जाने पर बाद वाले अशौच की अवधि समाप्त होने पर ही शुद्धि होती है । यम का कथन है—

'अशौच की वृद्धि में दूसरे अशौच की समाप्ति होने पर ही शुद्धि होती है' । यहाँ तीन दिनों के प्रमुख सम्पूर्ण अशौच में समान दिन व्यापक दूसरे अशौच हो जाने पर अग्रिम अशौच की अवधि समाप्त हो जाने पर शुद्धि होती है । यह शुद्धिविवेक का मत है । अल्पदिनव्यापी और अधिक दिन व्यापी दो सजातीय अशौच के सङ्कर में अधिक दिन व्यापक अशौचान्त में ही शुद्धि होती है । जन्माशौच और मरणाशौच के सङ्कर में अल्पदिन व्यापक रहने के बावजूद मरणाशौच की समाप्ति पर शुद्धि हो जाती है । इस सम्बन्ध में कूर्म-पुराण में कहा गया है—दो अशौचों की समकालिकता में जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो, उसी में शुद्धि माननी चाहिए । जन्माशौच और मरणाशौच के सङ्कर में मरणाशौच अधिक महत्त्वपूर्ण है । पैठीनसि का वचन है—बेटे को जन्म देने वाली प्रसूति बीस रात के बाद स्नान कर सर्व कर्म करने योग्य हो जाती है । बेटी को जन्म देने वाली प्रसूति पूरे महीने के बाद शुद्ध होती है ।

पुत्री स्नान मात्र से तथा सभी वर्णों की जननी दश दिनों के बाद पवित्र होकर कर्म करने के योग्य हो जाती है । पुत्र की जननी बारह दिनों के बाद तथा पुत्री की जननी एक महीने के बाद कर्म करने योग्य होती है । पुत्र के साथ स्नान के पश्चात् प्रसूति उसी क्षण से दानादि सभी कर्म करने योग्य तथा स्पर्श योग्य हो जाती है । इससे यह सिद्ध होता है कि कन्या को जन्म देने वाली प्रसूति एक महीने में तथा पुत्र के जन्म देने वाली प्रसूति बीस दिनों के बाद शुद्ध हो जाती है । जो अशौच अपने प्रसव निमित्तक है, वह मरणाशौच से बाधित होता है, उस महिला का वैसा प्रसव निमित्तक जननाशौच ही अधिक प्रभावी होता है । तेज इसीलिए प्रसूतियों का पति के मरने पर भी बीस दिन आदि अशौच के अन्त होने पर ही शुद्धि होती है । यही फलितार्थ हुआ । अशौचान्त के दूसरे दिन यदि अशौच हो तो उस अशौच की समाप्ति पर ही शुद्धि होती है और उस अशौचान्त के दूसरे दिन आद्य श्राद्ध होता है । द्वैतनिर्णय में वाचस्पति मिश्र के लेखानुसार यदि एकादशाहोत्पन्न अशौच से आद्य श्राद्ध में प्रतिरोध हो तो अशौचान्त में श्राद्ध करने पर शय्या दानादिकर्म नहीं होता है । 'पितर निमित्तक देयश्राद्ध में यदि अशौचपात होय तो अशौच समाप्त होने पर श्राद्ध करना चाहिए ।' ऋष्यशृङ्ग के इस वचन में सामान्यत: श्राद्ध दोपादान से भी यही सिद्ध होता है । ब्राह्मणादि चारों वर्णों का भी एक ही गोत्र किन्तु दूर के रिश्तेदारों के जन्माशौच या मरणाशौच में तीन ही रात

का अशौच होता है और गोत्रजों में स्नानपर्यन्त ही अशौच होता है । 'तीन रात में सकुल्य और स्नान कर गोत्रज पवित्र होते हैं ।' बृहस्पति का यह वचन है—शंख ने लिखा है सापिण्डय के सम्बन्ध में—'एक गोत्रज सबों की सपिण्डता सात पुरुषों तक होती है ।' मनु के अनुसार—सात पीढी के बाद सपिण्डता समाप्त हो जाती है ।

यहाँ गोत्र पद सन्तति परक है । इससे यह सिद्ध होता है कि बीजी पुरुष से लेकर सात पीढी तक सभी सन्तति एवं सन्तानियों की परस्पर सपिण्डता होती है । सात पीढी से एक भी अधिक होने पर सातवीं पीढ़ी या सातवीं पीढ़ी के बीच की किसी सन्तति की सपिण्डता समाप्त हो जाती है । संयोग की तरह दोनों पक्षों के निरूपण से यह सिद्ध होता है । यह द्वैतनिर्णय में वाचस्पति मिश्र एवं द्वैतपरिशिष्ट में केशव मिश्र का विचार है । सप्तमे का अर्थ है सातवीं पीढ़ी, अनन्तरम् का अर्थ है आठवीं पीढ़ी में सपिण्डता नष्ट होती है । यहाँ परस्पर सापिण्डव में भी है । इससे पहली छ: पीढ़ी के साथ तथा बाद के छ: पीढ़ी के साथ तथा बीच की पीढ़ी के साथ सापिण्डय होता है, संयोग की तरह होता है । यद्यपि इसमें प्रमाण का अभाव है, फिर भी 'सर्वेषाम्' इस पद से परस्पर प्रतियोगिता लभ्य है । ऐसा अभिमत जीर्णोद्धार में मधुसूदन ठाकुर का है ।

हारीत के मत में आठवीं नवमी एवं दशमी पीढ़ी सकुल्य होती है । जिनके जन्म का पता हो उनकी दश पीढ़ी से अधिक जन्म या मरणाशौच हो तो उसकी शुद्धि पक्षिणी कही गई है अर्थात् दो दिनों के बीच की रात में हो (द्वावहनावेक रात्रिश्च पक्षिणीत्यभिधीयते) । ऐसा शुद्धि विवेक में लिखा है । दश पीढ़ी के बाद जिनके जन्म या नाम का पता न हो, केवल इतना पता हो कि ये हमारे कुल के हैं—ऐसे सभी लोग गोत्रज होते हैं—कुछ क्षत्रियों की शुद्धि दश दिनों में होती है । 'सर्वेवा स्युर्दशाहिन:' इस वचन के अनुसार उनकी सन्तति को भी दशाहाशौच ही मान्य होता है । ऐसी स्थिति में उनका जननाशौच या मरणाशौच ब्राह्मणों की तरह ही समझना चाहिए । जो सभी जाति विशेष क्षत्रिय नाम रखने वाले, वैश्य परम्परा से द्वादशाहाशौच मानते हैं या जो राजपूत लोग दशाहाशौच मानते हैं या देश विशेष के लिए नियत दशाहाशौच ही शूद्र भी मानते हैं । इन्हें क्षत्रिय जातियों के लिए कहे गये अशौच ही विद्वानों को बतलाना चाहिए । परम्परा से सिद्ध होने के कारण उसका भी शास्त्रीय विधानत्व सिद्ध है । ऐसा श्री गोकुल नाथ उपाध्याय का मन्तव्य है । और इसी प्रकार अशौच सङ्करादि में भी ऐसी जगहों पर ब्राह्मणादि रीति से ही वैसे क्षत्रियादियों का भी समझना चाहिए ।

मैथिली—सब तरह अशौचक सम्मिश्रण में ब्रह्मपुराण में कहलगेल अछि—कोनो अशौचक पूर्व भाग द्वयक बीच यदि कोनो तरहक दोसर अशौच भऽ जाय तऽ प्रथम अशौचक सङ्ग दोसरो अशौचक शुद्धि होय । दुई भागक वाद अशौचान्तर भेने दोसर अशौचान्त में शुद्धि होय ।

विष्णुक वचन—'रात्रि शेषे दिन द्वयेन प्रभाते दिन त्रयेण' । अशौचान्तक दोसर दिन यदि कोनो आन अशौच भऽ जाय तऽ ताहि अशौचक अन्त में श्राद्ध करवाक चाही एकर प्रमाण हम अगले कहव । एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि जे सब वर्णकलेल सम्पूर्ण अशौचावधिक पूर्वार्द्ध में एकहि तरहक समान दिन व्यापक दोसर अशौच भेने पहिल अशौचक अवधि समाप्त भेने दोसरो अशौचक शुद्धि एवाहि सङ्ग भऽ जायत अछि । उत्तरार्द्धक उपान्त्य दिन पर्यन्त यदि ताही वर्गक कोनो दोसर अशौच भऽ जाय तऽ उत्तरवर्त्ती अशौचक अवधि व्यतीत भेला उत्तर शुद्धि कहलगेल अछि । एकहि वर्गक मरणाशौच में दोसर मरणाशौच भेने, सजातीय अशौच कहवैत अछि, जननाशौचक सजाती जननाशौचे होयत अछि । अशौचक अन्तिम दिन राति में यदि ओहने दोसर अशौच भऽ जाय तऽ अशौचक अन्तिम द्वितीय दिन तकर अग्रिम दुई दिनक अशौच बुझवाक चाही । अशौचक अन्तिम दिनक प्रभातकाल में तेहने दोसर अशौच भेने ताहि प्रभावक वाद तीन दिन में शुद्धि होय, एतवहि फलितार्थ भेल । अरुणोदयक बाद सूर्योदय पर्यन्त प्रभात काल कहवैत अछि । ई रत्नाकरक विचार अछि ।

सूर्योदय सँ पाँच-पाँच घड़ी पूर्व उषःकाल, सात-पाँच में अरुणोदय, आठ-पाँच में प्रातःकाल होयत अछि, एकरबाद सूर्योदय कहवैत अछि । स्कन्द-पुराण में अरुणोदयकाल कहलगेल अछि—सूर्योदयक पूर्व चारिदण्ड अरुणोदय काल होयत अछि । नाड़िकाक अर्थ दण्ड भेल । तीन दिनादिक अल्पाशौच में समान दिन व्यापक दोसर अशौच भेने, वादक अशौचक अवधि समाप्ति भेला उत्तर शुद्धि होयत अछि, ई शुद्धि विवेकक निर्णय अछि । एक अशौच बीच यदि दोसर अशौच भऽ जाय तऽ दोसर अशौच अवधि समाप्त भेला उत्तर शुद्धि होयत अछि । ई यमक वचनानुसार भेल ।

अहिठाम तीन दिनक प्रथम सम्पूर्ण अशौच काल में समान दिन व्यापक अशौच भेने अग्रिम अशौचक अवधि समाप्त भेला उत्तर शुद्धि होय, ई शुद्धिविवेकक निर्णय अछि । यदि दूटा सजातीय अल्प दिन व्यापक एवं अधिक दिन व्यापक अशौचक साङ्कर्य होय तऽ अधिक दिन व्यापक अशौचक अन्त भेने शुद्धि होय । जनन एवं मरण जन्य विजातीय अशौचक साङ्कर्य में अल्पदिन व्यापक रहलो उत्तर मरणाशौचक समाप्ति पर शुद्धि होय । अहि सम्बन्ध में कूर्मपुराणक वचन अछि—विजातीय अशौचक साङ्कर्य में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण अशौचान्त में शुद्धि जानवाक चाही । जनन एवं मरणाशौचक साङ्कर्य में मरणाशौच अधिक महत्त्वपूर्ण होयत अछि ।

पैठीनसिक वचन अछि—बेटाक जन्म देनिहारि प्रसूति बीस रात्रिक बाद स्नानोत्तर सबटा कर्म करय योग्य भजायत छथि । तथा एक मास में पुत्रीक जन्म देनिहारि प्रसूति शुद्धि प्राप्त करैत छथि । पुत्री स्नानोपरान्त शुद्धि प्राप्त करैत छथि, सभवर्णक जननी दश दिनक बाद पवित्र भय स्पर्श योग्य एवं बारहम दिनक बाद कर्म करवा योग्य भऽ जायत छैथि । पुत्रक जननी बारह दिनक बाद एवं पुत्रीक जननी मास दिनक बाद शुद्धि प्राप्त करैत छथि ।

पुत्रक जननी स्नानोपरान्त पवित्र भय तत्काल कर्त्तव्य करवाक योग्य एवं स्पर्शक योग्य भऽ जायत छथि । एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि प्रसूतिकय कन्याक जन्म में एक मासक तथा पुत्रक जन्म में बीस दिनक अशौच होयत छैन्हि। जन्माशौच, मरणाशौच सँ वाधित होयत अछि' मुदा, स्व प्रसव निमित्तक जननाशौच, मरणाशौचक अपेक्षा अधिक बलवान् होयत अछि । तांय प्रसूति कय पति मरलो उत्तर बीस दिनादिक अशौचान्तरक बादे शुद्धिक विधान अछि । अशौचान्तक दोसर दिन अशौच भेने, ताहि अशौचक अवधि समाप्त भेले उत्तर शुद्धिक विधान अछि । ताहि अशौचान्तक दोसर दिन आद्य श्राद्ध करवाक चाही । एकादशाहक दिन उत्पन्न अशौच सँ यदि आद्य श्राद्धक प्रतिरोध होय तखन ताहि अशौचान्त में श्राद्ध कयने शय्या दानादिक क्रिया नहि होयत अछि । द्वैतनिर्णय में वाचस्पति मिश्रक निर्णयानुसार—

'पितरनिमित्तक देय श्राद्धक स्थिति में यदि अशौचान्तर भऽ जाय तखन अशौचक अवधि समाप्त भेला उत्तर श्राद्ध देय अछि । ऋष्यशृङ्गक अहिवचन में सामान्यरूपेण श्राद्धपदक उपादानो सँ एतवहि सिद्ध होयत अछि ।

ब्राह्मणादिक चारुवर्णकलेल सपिण्डाशौचक सन्दर्भ में मनुक कथन छैन्हि—ब्राह्मणक शुद्धि दश दिनक बाद, क्षत्रियक बारह दिनक बाद, वैश्यक पन्द्रह दिनक बाद एवं शूद्रक मास दिनक बाद होयत छैक । चारुवर्णक सकुल्य अर्थात् अपना सँ ऊपर ज्ञात आठम पीढी सँ लऽके दशम पीढ़ी पर्यन्तक लोक सकुल्य कहवैत छैथि, हिनक जननाशौच एवं मरणाशौच मात्र तीन रात्रिक होयत अछि, हिनका ऊपर गोत्रजक अशौच स्नान पर्यन्ते होयत अछि । बृहस्पतिक वचन अछि—'त्रिरात्रिकबाद सकुल्यक एवं स्नानोपरान्त गोत्रज लोकनिक शुद्धिक विधान अछि ।'

शङ्खक लिखनानुसार सापिण्डय—'बीजीपुरुष सँ लऽके सात पीढ़ी धरि सपिण्ड होयत अछि ।' मनुक अनुसार—'सातम पीढ़ीक बाद सपिण्डता समाप्त भऽ जायत छैक ।' अहिठाम गोत्र पद सन्तति परक अछि, ताँय बीजीपुरुष सँ लऽके सातम पीढ़ी धरि सब सन्तति एवं सन्तानीक परस्पर सपिण्डता होयत अछि । एकोटा यदि सात पीढ़ी सँ ऊपर भऽ जाय तऽ सप्तान्तर्गतो पुरुषक सपिण्डता समाप्त भऽ जाय । संयोग जकां दुहूक निरूपण द्वैतनिर्णय में वाचस्पति मिश्र एवं द्वैतपरिशिष्ट में केशवमिश्र कयने छथि । सप्तमेक तात्पर्य सातम पीढी

धरि अछि, आठम पीढ़ी सँ सपिण्डता समाप्त भऽ जायत अछि । एहिठाम परस्पर सपिण्चक बोध अछि । एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि पूर्ववर्त्ती छः पीढ़ी एवं उत्तरवर्त्ती छः पीढ़ी, संयोग जकां बीचक सातम पीढ़ी सापिण्डयक सीमान्त बिन्दु भेल । यद्यपि अहि कथनक कोनो प्रमाण नहि अछि । तथाऽपि 'सर्वेषाम्' अहि पद सँ परस्पर प्रतियोगिता उपलब्ध होयत अछि । ई आशय जीर्णोद्धार में मधुसूदन ठाकुरक अछि ।

हारीतक वचन—आठम, नवम एवं दशम पीढ़ी सकुल्य होयत अछि । परिज्ञात दशम पीढ़ी सँ अधिक लोकनिक जनन-मरणाशौच पक्षिणी अर्थात् दुइ दिनक मध्यवर्त्ती एक रातिक होयत अछि । ई शुद्धि विवेक में अछि । जन्म एवं नामक ज्ञान नहि रहने, ई व्यक्ति हमारा कुलक छथि एतावता बोध जाहि व्यक्तिक संबन्ध में होय ओ गोत्रज भेलाह । इहो ओहिठाम लिखल अछि । स्मृत्यर्थ निर्णय में किछु क्षत्रिय दशाहाशौच मानैत छथि, 'सभकलेल दशाहाशौचे अछि' अहिवचनक अनुसार हुनका लोकनिक सन्तानों दशाहे शौच मानैत छथि । तब हुनको सभक जनन एवं मरणाशौच ब्राह्मणजकां बुझवाक चाही । अपनाकय क्षत्रिय बुझैत जे खत्री जाति छैथि तथा वैश्य लोकनि परम्परानुसार बारह दिनक अशौच मानैत छथि, जे शूद्रलोकनि देश विशेषकलेल नियत बारहे दिनक अशौच मानैत छथि, हुनकालेल क्षत्रिय जातिकलेल अशौच कहलगेल अछि सेह हैवाक चाही, विद्वान् लोकनि एतवहि कहथु । ई परम्परा सिद्ध भेने शास्त्रीय विधिक अनुष्ठान मानल जायत, ई गोकुल नाथ उपाध्यायक विचार छन्हि । तहिना अशौच सङ्करादिको में ओहन स्थल पर ब्राह्मणादिक रीति सँ क्षत्रियादि लोकनिको बुझवाक चाही ।

विमर्शः—गर्भस्रावाद्यशौचमुच्यते मरीचिः—

गर्भस्राव्यां यथा मासमचिरेत्तत्तमे त्र्यहम् । राजन्ये तु चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च ।।
अष्टाहेन तु शूद्रायाः शुद्धिरेषा प्रकीर्त्तिता ।।

तत्र वशिष्ठः—नाशौचं विद्यते पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति ।
रजस्तत्राशुचिं ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ।।

संवर्त्तः—जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ।
माता शुद्ध्येत दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ।।

तथा चाङ्गिराः— सूतके सूतिकावर्जं संस्पर्शो न निषिध्यते ।
संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते ।।

अशौचकालस्तु— पितुरब्दमशौचं स्यात् षण्मासं मातुरेव च ।
त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धंभ्रातृपुत्रयोः ।।

अशौच साङ्कर्ये षट्त्रिंशन्मते— शवाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ।
शावेन शुद्ध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ।।

प्रजापतिश्च—यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं प्रविशेद्यदि ।
अशौचं पुनरागच्छेत् तत्समाप्त्या विशुध्यति ।।

तथाचोक्तं सूर्यब्जाहस्करे—'सूर्योदयानन्तरमेकादशाहे पूर्वमृतश्राद्धाधिकारिणो मुहूर्त-द्वयाभ्यन्तरे सम्पूर्णाद्यशौचपातेऽशौचाग्रिमाशौच व्यपगमेव शुद्धिः। तत्रैव श्राद्धकर्माधिकारश्च।

अथ कन्यामरणाद्यशौचम्—तत्र यद्यपि कन्याबालकयोः सपिण्डत्व-सत्त्वात् प्रागुक्तमनुवचनेन तयोरपि दशाहाद्यशौचमेव प्राप्यते तथापि 'सामान्य-शास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत् ।' इत्यनेन विशेषवचने बलवत्त्वात्तयो-रल्पाशौचमेव । विशेषवचनमाह ब्रह्मपुराणे—

'आजन्मनस्तु चूडान्तं यत्र कन्या विपद्यते ।
सद्यःशौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः ।।
ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि ।
अतः परं प्रवृद्धानां त्रिरात्रमिति निश्चयः ।।
वाग्दाने च कृते तत्र जातश्चोभयतस्त्र्यहम् ।
पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि ।।
स्वजात्युक्तमशौचं स्यात्सूतके मृतके तथा ।।' इति ।

अयं भावार्थः—जन्मतो द्वितीयवर्षपर्यन्तं कन्यामरणे सर्ववर्णानां सद्यः शौचम्। द्वितीयवर्षादूर्ध्वं तुभ्यमेषा कन्या दातव्या इति वाक्यप्रयोगपर्यन्तमेका-होरात्रमशौचम् । तादृशवाक्यप्रयोगानन्तरं विवाहपर्यन्तं पितृकुले पतिकुले च त्रिरात्रम् । यत्र वाग्दानं नास्ति तत्र द्वितीयवर्षानन्तरं विवाहपर्यन्तमेकाहोरात्रम् । एतद्विषयकमेव 'अहस्त्वदत्तकन्यास्विति याज्ञवल्क्यवचनम् । दाहकर्तुस्तत्रापि त्रिरात्राशौचमेव— 'दहित्वा च वहित्वा च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।'

इति वचनात् । असंबन्धिद्विजान् दहित्वा वहित्वा च सद्यःशौचम् । सम्बन्धे सति त्रिरात्रमिति पैठीनसिवचनात् । अत्र दहित्वा चहित्वा इति तु आर्षत्वादेव सुष्ठु, लोके तादृशप्रयोगासम्भवात् । तथाहि दहवहधातुभ्यां क्त्वा प्रत्यये इटि च कृते एव दहित्वेत्यादि सिद्ध्यति, तच्चानिट्धातुत्वादिडागमो न भवतीति लोके दग्ध्वा वोढ्वा इत्येव । विवाहानन्तरं कन्यामरणे प्रसवे वा मातापित्रोस्त्रिरात्रम् । बन्धुवर्गाणां सद्यः । तथा हि ब्रह्मपुराणे—

'दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयते म्रियतेऽथ वा ।
स्वमशौचं चरेत्सम्यक् पृथक्स्थाने व्यवस्थिता ।।
तद् बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुध्येत्तज्जनकस्त्रिभिः ।' इति ।

अत्र दत्ता नारी पृथक्स्थाने व्यवस्थितापि प्रसूता मृता वा तत्पति-सपिण्डाः स्वमशौचं चरेयुः । दत्तानां भर्तुरेव हीत्येकवाक्यत्वात् । इति

मध्यमखण्डार्थ इति द्वैतपरिशिष्टम् । स्वातन्त्र्यात्पतिभिन्नं यमाश्रिता स्त्री भवति तस्य त्रिरात्रमशौचम् । तथाह स्मृति:—

'पित्रा दत्ता तु या कन्या स्वातन्त्र्यादन्यमाश्रिता ।
यं यं श्रितवती भूयस्तस्याशौचं त्र्यहं त्र्यहम् ।।
मृतायां वा प्रसूतायां नान्येषामिति निश्चय: ।
कामादक्षतयोनिश्चेदन्यं गत्वा व्यवस्थिता ।।
तस्यान्यस्य सगोत्रा सा यं त्वाश्रितवती स्वयम् ।' इति ।

तस्याशौचमिति यमाश्रिता तस्यैवाशौचं त्र्यहमित्यर्थ: । नान्येषामिति तत्सपिण्डानां नाशौचमित्यर्थ: ।

हिन्दी—अब कन्यामरण आदि का अशौच—उस अवसर पर यद्यपि कन्या और बालक दोनों का, पूर्वोक्त मनु वचनानुसार सपिण्डत्व होता है, दोनों का ही दशाहादि अशौच का विधान मिलता है; फिर भी 'सामान्यशास्त्र से विशेष अधिक बलवान् होता है' इस विशेष वचन के अनुसार बलवत्तर होने के कारण दोनों का अल्पाशौच ही होता है ।

ब्रह्मपुराण में विशेष वचन कहा गया है—सभी वर्णों में हमेशा जन्म से लेकर चूड़ान्त पर्यन्त कन्या की मृत्यु पर सद्य: अर्थात् तात्कालिक अशौच होता है । इसके बाद वाग्दान पर्यन्त अर्थात् किसी वर के साथ विवाह होने की बात पक्की होने तक कन्या की मृत्यु होने पर एक दिन का अशौच होता है । इससे ऊपर निश्चित रूप से तीन रात का अशौच होता है । वाग्दान हो जाने के बाद दोनों पक्ष में तीन रात का अशौच होता है । विवाहोपरान्त जननाशौच हो या मरणाशौच अपने पति कुल के लिए निर्दिष्ट अशौच ही होता है ।

इस कथन का अभिप्राय यह है कि जन्म से दूसरे वर्ष पर्यन्त कन्या की मृत्यु होने पर सभी वर्णों के लिए सद्य: अशौच का विधान है । दो साल के बाद 'यह कन्या मैं तुम्हें दूँगा' इस तरह वाग्दान होने पर्यन्त एक दिन एवं एक रात का अशौच होता है । हस्तग्रहण अर्थात् मंगनी हो जाने के बाद से विवाह पर्यन्त पति और पिता अर्थात् दोनों कुल में त्रिरात्र का अशौच होता है । जहाँ वाग्दान अर्थात् मंगनी की प्रथा न हो वहाँ दो साल के बाद से विवाह पर्यन्त मात्र एक दिन रात का अशौच होता है ।

इसी विषय का—'अह: स्त्वदत्त कन्यासु' यह याज्ञवल्क्य का वचन है । दाहकर्त्ता को भी त्रिरात्र का ही अशौच होता है ।

'शव को जलाने वाले या ढोने वाले को तीन रात का ही अशौच होता है ।' इस वचन से भी सिद्ध होता है । पैठीनसि के वचनानुसार—सम्बन्धी

भिन्न द्विजों की लाश जलाने या ढ़ोने पर सद्यः शौच का विधान है । और सम्बन्धी रहने पर त्रिरात्र का ही अशौच होता है । यहाँ दहित्वा और वहित्वा ये दानों ही आर्ष प्रयोग है; लोक में ऐसा संभव नहीं है । उदाहरण स्वरूप दह और वह धातु से प्रत्यय करने पर, इट् का आगम होगा तब उक्तरूप की सिद्धि होगी, जो असंभव है क्योंकि ये दोनों ही धातु अनिट् है । फिर, इन दोनों में 'इट्' का आगम नहीं होने पर इसका लौकिक रूप दग्ध्वा, बोढ्वा ही होगा । विवाहोपरान्त प्रसव काल में यदि कन्या की मृत्यु हो तो माता-पिता को त्रिरात्र का अशौच हो तथा बन्धु वर्ग को सद्यः अशौच होगा । उदाहरण स्वरूप ब्रह्मपुराण में—विवाहिता कन्या यदि पिता के घर में प्रसव करे या मर जाय अथवा दूसरी जगह कहीं व्यवस्थित हो तो भी उसके पति के सपिण्डव्यक्ति अपना अशौच क्रिया सम्पादित करें ।

द्वैतपरिशिष्ट के अनुसार मध्यम खण्ड के अर्थ पर ही जोर दिया गया है 'दत्तानां मर्तुरिव हि' इसकी एकवाक्यता केवल से वह कन्या जो पति के निमित्त ही दी गई हो । किन्त किन्तु अपने पति को छोड़कर स्वतन्त्रतापूर्वक जो नारी किसी अन्य पुरुष का आश्रय ग्रहण कर ले तो उस पुरुष को तीन रात का ही अशौच होगा ।

इस सन्दर्भ में स्मृतिकार ने कहा है—पिता के द्वारा दी गई कन्या अपनी स्वतन्त्रता से पति को छोड़कर दूसरे पुरुष का आश्रय ग्रहण करे तो जिन जिन पुरुषों का आश्रय ग्रहण करे उन सबों को तीन तीन रात का अशौच होता है । चाहे वह मरणाशौच हो या जननाशौच, आश्रयदाता पुरुष को ही यह अशौच होगा किसी दूसरे को बिल्कुल ही नहीं । काम के वशीभूत होकर अक्षत योनि वह कन्या यदि पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष का वह स्वतन्त्रतापूर्वक आश्रय ग्रहण करे तो उसकी वह सगोत्रा तो होगी पर, अशौच केवल आश्रयदाता पुरुष को ही होगा ।

जिसका उस नारी ने अवलम्ब ग्रहण किया, उसे ही तीन रात का अशौच होगा, उसके सपिण्डों को अशौच नहीं होगा ।

मैथिली—कन्या मरण आदिक अशौच व्यवस्था—यद्यपि कन्या बालक दुहूक सपिण्डता मनुक वचन सँ सिद्ध होयत अछि, ताँय दुहूक दशहादि अशौचे होयत अछि, तथापि 'सामान्य शास्त्र सँ विशेष अधिक बलवान् होयत अछि' ई विशिष्ट नियमानुसार विशेष बलवत्तर होयत अछि । अतः दुहूक अल्पाशौच होयत अछि । विशेष वचन ब्रह्मपुराण में अछि—

जन्मकाल सँ लेऽकय चूडान्त पर्यन्त जाहिठाम कन्याक मरण होय ताहिठाम सद्यः अशौच होय । ई सबवर्णकलेल सतत् कालीन सामान्य व्यवस्था अछि एकर

बाद कन्याक वाग्दान पर्यन्त एकदिनक अशौच होयत अछि । एकरा सँ ऊपर विवाहकपूर्व त्रिरात्रिक अशौच होयत अछि। वाग्दान भेलाक वाद दुहूपक्षकलेल—त्रिरात्रिक अशौच होयत अछि । विवाहोपरान्त सूतक हो मृतक अपन पतिकुलकलेल निर्दिष्ट अशौचे होयत अछि ।

एकर भावार्थ ई होयत अछि जे जन्म सँ लऽके द्वितीय वर्षपर्यन्त कन्याक मरण भेला उत्तर सभवर्णकलेल अद्य: अशौचेक विधान अछि । द्वितीय वर्षक बाद 'अहाँकलेल ई कन्यादान हम करव' अहि तरह वाक्प्रयोग पर्यन्त एक दिन एवं एक रात्रिक अशौच होयत अछि । अहि तरहक वाग्दानक बाद विवाह पर्यन्त पितृकुल एवं पतिकुल में त्रिरात्रिक अशौच होयत अछि । जाहिठाम वाग्दान नहि भेल होय तांहिठाम दोसर वर्षक बाद विवाहपर्यन्त एक दिन एवं एक रात्रिक अशौच होयत अछि । अही विषयक अवलम्बन कय याज्ञवल्क्यक कथन छैन्हि—'अह: स्त्वदत्त कन्यासु' दाहकर्त्तोकय त्रिरात्रिक अशौचे होयत छैन्हि ।

'दाहकनिहार एवं शववहनकनिहार कय त्रिरात्रक अशौच होयत अछि ई वचन अछि । अपन सम्बन्धी सँ भिन्न द्विज जे दाह करैत छथि अथवा वहन करैत छथि हुनकालेल सद्य: शौचक विधान अछि । आओर जे सम्बन्धी लोकनि छथिन तिनकालेल त्रिरात्रिके विधान छैन्हि । ई पैठीनसिक वचनानुसार व्यवस्था अछि । मुदा अहि वचन में 'दहित्वा' एवं 'वहित्वा' ई दुहूशब्दक आर्ष प्रयोग अछि । लोक में शब्दक अहिरूपक प्रयोग असंभव अछि ।

उदाहरण स्वरूप दह धातु एवं वह धातु सँ क्त्वा प्रत्यय कयला उत्तर जखन इट्क आगमन हैत तखनहि, 'दहित्वा' एवं 'वहित्वा' रूपक संभावना हैत, किञ्च, दह एवं वह ई दुहू धातु अनिट् अछि तांय इट्क आगम नहि हैत, तखन लोक में एकर रूप 'दग्ध्वा' एवं 'बोढ्वा' होयत अछि । विवाहोपरान्त कन्याक प्रसव या मरण जन्य अशौच माता- पिताकलेल त्रिरात्र एवं बन्धुगणकलेल सद्य: होयत अछि । एकरा सम्बन्ध में ब्रह्मपुराणक वचन अछि—विवाहिता नारी यदि पितृगृह अथवा अन्यत्र व्यवस्थित रहलो उत्तर प्रसव या मरणजन्य अशौच होय तऽ स्वकीय कुलानुसार अशौच करी । हिनक माता-पिता त्रिरात्रक वाद तथा बन्धुवर्गकय एकदिन एवं रात्रिक बाद शुद्धि प्राप्त करैत छथि ।

अहि वचनक अनुसार विवाहिता नारी अलगकतौ व्यवस्थित रहलो उत्तर प्रसव अथवा मरणजन्य अशुचि होथु तँऽ हुनक पतिक सपिण्ड लोकनि अपन कुलानुसार अशौच करथु । 'दत्तानां भर्त्तुरेव हि' अहि वाक्यक एकताक बल सँ वाक्यक मध्यम खण्डक अर्थे पर विशेष बल अछि, ई द्वैतपरिशिष्टक विचार अछि । अपन स्वतन्त्रताक कारणे यदि क्यो नारी अपन पति के छोड़ि कोनो आन पुरुषक आश्रय ग्रहण करय तऽ ताहि पुरुष के त्रिरात्रक अशौच होय । जेना स्मृति में कहलगेल अछि—

पिताक द्वारा प्रदत्त कन्या यदि स्वतन्त्रतापूर्वक कोनो आन पुरुषक आश्रय ग्रहण करय तऽ जेकर जेकर आश्रय ग्रहण करय तऽकरा सभकय त्रिरात्रक अशौच होय । जननाशौच एवं मरणाशौचक दोसर कय नहि होय । कामवश अक्षतयोनि कन्या दोसर पुरुषक आश्रय ग्रहण कय व्यवस्थित भय जाय तऽ जकर आश्रय ग्रहण करय तकर ओ सगोत्रा होयथि ।

'तस्याशौचम्' एकर तात्पर्य ई अछि जेकर ओ आश्रय ग्रहण करैथि तकरे मात्र तीन दिनक अशौच होय, तीसर कय नहि, अर्थात् ओकर सपिण्ड लोकनि कय अशौच नहि होय ।

विमर्शः—पितृकर्मनिर्णये पण्डितश्रीत्रिलोकनाथमिश्रेण—'तत्र पराशरः—
सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं तथैव च ।।
पुण्यग्निरभिमन्त्र्यापो वाचाशुद्धिं लभेत्ततः । तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधिः ।। इति ।
अशौचे दिनगणना तु— 'उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः ।
जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी ।।'

इति कश्यपवचनात् रात्रावपि मरणे पूर्व दिनतः एव कार्या । तत ऊर्ध्वं 'अर्धरात्रावधिः कालः' इत्यादि कश्यपवचनन्तु पक्षद्वय प्रातिपादकतया देशान्तराचार-परत्वेन नास्मद्देशीयैरालम्बनीयम् ।

अथ गर्भस्रावाशौचमाह ब्रह्मपुराणे—

'षण्मासाभ्यन्तरं यावद्गर्भस्रावो भवेद्यदि ।
तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ।।
अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमशौचं तासु विद्यते ।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ।।'

षण्मासाभ्यन्तरे तृतीयमासस्योपरीति शेषः । मासत्रयाभ्यन्तरे सर्वासाम-धिकाशौचस्य वक्ष्यमाणत्वात्तेन मासत्रयोपरि षण्मासं यावत् व्यतीतमास-समसंख्यादिनान्यशौचं सर्ववर्णसाधारणम् । तासां स्त्रीणाम् । तासु स्त्रीषु । मासत्रयाभ्यन्तरे आह मरीचिः—

गर्भस्रुत्यां यथामासमचिरे तूत्तमे त्र्यहम् ।
राजन्ये तु चतू रात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च ।।
अष्टाहेन तु शूद्रायाः शुद्धिरेषा प्रकीर्त्तिता ।' इति ।

अचिरे मासत्रयाभ्यन्तरे, उत्तमे = उत्तमजातीये ब्राह्मण्यामित्यर्थः । पुंस्त्व-मत्राविवक्षितम् । अन्यथा सद्यः शौचं सपिण्डानामिति प्रागुक्तब्रह्मपुराणविरोधः स्यात् । तथा च ब्राह्मण्यादीनां प्रसूतीनां प्रागुक्तमशौचं तत्पतिपुत्रादीनां तु सपिण्डानां स्नानलोमनखवपनपर्यन्तमेव गर्भस्रावेऽशौचमिति भावः । द्विवर्षा-

भ्यन्तरे बालस्य कन्यायाश्च भूमिखननं न तु दाहः तदूर्ध्वं तू दाह एव सर्ववर्णानां तथा हि— 'ऊनद्विवार्षिकं बालं भूमावेव निधापयेत् ।
न द्विवर्षस्य कर्त्तव्याः बान्धवैरुदकक्रिया ।। इति

प्रमादादिना दाहे कृते विशेषमाह तद्दाहमभिधाय ब्रह्मपुराणे—

'अनतीत्य द्विवर्षस्तु प्रेतो यत्रापि दह्यते ।
अतिमोहाभिभूतैश्च देशसाधर्म्यमादरात् ।।
अशौचं ब्राह्मणानां तु त्रिरात्रं तत्र विद्यते ।
राज्ञामेकादशाहं तु वैश्यानां द्वादशाह्निकम् ।।
अपि विंशतिरात्रन्तु शूद्राणां भवति क्रमात् ।'

तत्रेति द्विवर्षवयस्कस्य बालदाहे इत्यर्थः ।

हिन्दी—अब गर्भस्राव जन्य अशौच के सन्दर्भ में ब्रह्मपुराण ने कहा है—यदि छः महीने के भीतर कच्ची अवस्था में गर्भ गिर जाय तो जितने महीने का गर्भ हो उतने ही दिनों के बाद उसकी शुद्धि होती है । इससे ऊपर की अवधि में गर्भपात होने पर जाति विशेष के लिए कथित अशौच ही उस नारी को होता है । गर्भपात की स्थिति में उस नारी के सपिण्ड वर्गों के लिए सद्यः अशौच का ही विधान है ।

'षण्मासाभ्यन्तरे' का तात्पर्य तीन महीने से ऊपर की अवधि का है । तीन महीने के भीतर सबसे अधिक अशौच का वक्ष्यमाणत्व से सभी वर्णों के लिए तीन महीने से ऊपर छः महीने तक, बीते महीने के तुल्य अर्थात् जितने महीने का गर्भपात हुआ हो, उतने ही दिनों का अशौच होता है । तासाम् अर्थात् उन महिलाओं का, तासु अर्थात् उन नारियों में । तीन महीने के भीतर के सन्दर्भ में मरीचि का कथन है—तीन महीने के भीतर की गर्भश्रुति में ब्राह्मणी तीन दिन में, क्षत्राणी चार रात में वैश्य की पत्नी पाँच दिन में, शूद्रा आठ दिनों में पवित्र होती है ।

अचिरे = तीन महीने के भीतर उत्तमे = उत्तम जाति की ब्राह्मणी अर्थ है इस कथन में पुरुष वर्ग उद्दिष्ट नहीं है । अन्यथा, ब्रह्मपुराण में कथित सपिण्डों के लिए सद्यः शौच का विधान खण्डित हो जाता है । जैसा कि ब्राह्मणादि प्रसूतियों के लिए प्रागुक्त अशौच का विधान है । उसके पति-पुत्रादि सपिण्डों के लिए जब तक नख-बाल नहीं कटवा लेता, गर्भस्राव में तभी तक अशौच माना गया है । दो वर्ष के भीतर बालक या कन्या अगर मृत्यु हो जाय तो उसे जमीन खोदकर धरती में गाड़ देना चाहिए । न कि जलाना चाहिए । इससे ऊपर की उम्र के सभी वर्णो के मृत बच्चों को जलाने का विधान है ।

उदाहरण स्वरूप—दो साल से कम उम्र के मृत बच्चों का शव मिट्टी खोदकर गाड़ देना चाहिए । दो साल के बच्चों की श्राद्धादिक क्रिया बन्धु वर्गों को नहीं करनी चाहिए । इत्यादि ।

असावधानी या लापरवाही से यदि बच्चे का शव जला दिया गया तो इसे ध्यान में रखकर ब्रह्मपुराण में विशेष बातें कही गई हैं—घबड़ाहट में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विचार से शून्य होकर कोई व्यक्ति यदि दो साल से कम उम्र के बच्चों का शवदाह कर दे तो स्थानविशेष की एकधर्मता के सम्मान के कारण ब्राह्मणों के लिए त्रिरात्र का, क्षत्रियों के लिए एकादशाह, वैश्यों के लिए द्वादशाह और शूद्रों के लिए बीस रात के अशौच का विधान है । तत्र का अर्थ है दो से भीतर के बालक का शवदाह ।

मैथिली—आव गर्भपात जन्य अशौचक सन्दर्भ में ब्रह्मपुराण में कहलगेल अछि—छः मासक भीतर यदि ककरो गर्भपात हो, तऽ जे मासक गर्भपात होय ओतवहि दिनक अशौच होय । एकरा सँ अधिक मासक जो गर्भपात होय तऽ अपन जातिक अनुसार अशौच करी । सपिण्ड लोकनिकलेल सद्यः अशौचक विधान अछि । षण्मासाभ्यन्तरक भाव ई अछि जे तीन मास सँ ऊपर । तीन मासक भीतरकलेल सभटा हेतु अधिक अशौचक वक्ष्यमाण व्यवस्था अछिए, ताँय तीन मास सँ अधिक छः मासधरि बीतल मासक जे संख्या भेल ओतवहि दिनक अशौचक विधान अछि । ई विधान सर्वसाधारणकलेल अछि । तासाम् = स्त्रीलोकनिक, तासु अर्थात् स्त्री जाति में । तीन मासक अभ्यन्तर गर्भपातक सन्दर्भ में मरीचिक कथन अछि—

तीन मासक अभ्यन्तर गर्भश्रुति में ब्राह्मणीकलेल तीन दिन, क्षत्रिय जातिकलेल चारि राति, वैश्य जाति कलेल पाँच दिन एवं शूद्रजातिकलेल आठ दिनक बाद शुद्धिक विधान अछि ।

अचिरे = तीन मासक अभ्यन्तर, उत्तमे = उत्तम जाति में ब्राह्मणी ई अर्थ भेल, अहिठाम पुरुष वर्ग अनपेक्षि अछि, अन्यथा ब्रह्मपुराणक पूर्व कथित सपिण्डलोकनिकलेल सद्यः शौचक विधानक विरोधापत्ति भऽ जायत ।

जेनां ब्राह्मण्यादि प्रसूतिकलेल पूर्वोक्त अशौचक व्यवस्था अछि, हुनक पति-पुत्रादि एवं सपिण्डजनकलेल गर्भपातक स्थिति में स्नान, केश, नख कर्त्तन यावत् अशौच होयत अछि । दुई वर्षक अभ्यन्तर यदि बालक या कन्याक मरण होय तऽ शव के धरती में गाड़ि देवाक चाही, दाह संस्कार नहि करी । दुई वर्ष सँ अधिक अवस्थाक सभवर्णक मृत शिशुकलेल दाह संस्कार करवाक चाही ।

उदाहरण स्वरूप—दुई वर्ष से कम अवस्थाक शिशुक शव धरतीये में गाडि देवाक चाही । दुई वर्ष पर्यन्त मृत शिशुक श्राद्धादिक क्रिया बन्धुवर्गकय नहि

करवाक चाही । भ्रान्त्या यदि दुई वर्ष सँ कम अवस्थाक मृतशिशुक दाह संस्कार कय देल जाय तँऽ एहन स्थिति में दाह संस्कार के ध्यान में राखैत ब्रह्मपुराणक विशेषवचन अछि—

कर्त्तव्याकर्त्तव्यक विचार विहिन भय अतिमोहवश यदि क्यो वर्षद्वयाभ्यन्तरक मृत शिशुक दाह संस्कार कय छथि तऽ स्थान विशेषक धर्मताक आदर सँ ब्राह्मण के तीन रात्रिक, क्षत्रिय के दस दिनक, वैश्य के बारह दिनक एवं शूद्र कय बीस रात्रिक अशौच होय । इति । तत्र शब्दक अर्थ अहिठाम दुई वर्ष सँ कम उम्रक शिशुक दाह संस्कार सँ अछि ।

विमर्श:—द्विवर्षाभ्यन्तरे बालकस्य कन्यायाश्च दाहमभिधाय मनुस्मृतौ—

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा: बहि: । अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसञ्चयनादृते ।।
नास्ति कार्योऽग्निसंस्कारो नापि कार्योदकक्रिया ।

अरण्ये काष्टवत् त्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्र्यहमेव च । याज्ञवल्क्योऽप्येवमेवाह—
'ऊनद्विवर्षन्निरवन्नेन कुर्यादुदकं तत: ।' इति ।

अत्र वर्षगणनं सौरमानेन बोधव्यमिति । गृहशुद्धिमधिकृत्य प्रसङ्गादत्र संवर्त्तवचनम्—
गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थशवदूषिते । प्रोत्सृज्य मृण्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ।।

गृहादपास्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् । अत्र बौधायनोऽपि च—
'उद्वद्धशयोपधाने वेश्मनो भित्तिरक्षणम् । सूर्यरश्म्य प्रवेशोऽग्निज्वालाभिरभिमर्शनम् ।'

अथ बालकमरणाशौचमाह याज्ञवल्क्य:—

'आदन्तजननात्सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमत: परम् ।।'

आदन्तजननात् दन्तजननकालपर्यन्तं, स काल: सप्तमो मास: 'दन्त-जन्म सप्तमे मासि' इत्युपनिषद: । सरोजकलिकायां मर्यादायामत्राह तेन सप्तममासात्प्राक् षण्मासपर्यन्तं बालमरणे सद्य: शौचं चातुर्वर्ण्यस्य । अत: परं ब्राह्मणमात्रविषयकवचनमिति सप्तममासात्प्राक् सद्य:शौचमिति शुद्धिविवेक: । आचूडात् चूडाकरणकालपर्यन्तं, स च तृतीयवर्ष:, 'तृतीये वा प्रतिहत' इति वचनात् । आव्रतादेशात् उपनयनकालपर्यन्तं स च षड्वर्षान्त: । तथाहि ब्रह्मपुराणे—'द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षडाब्दिक: ।' इति ।

एवमग्रेऽपि व्रतमुपनयनकाल: स च षड्वर्षान्त: । अङ्गिरा:—

'विप्रे न्यूने त्रिभिर्वर्षैर्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ।
द्व्यहेन क्षत्रिये शुद्धिस्त्रिभिर्वैश्ये मृते सति ।।
निवृत्ते क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरेव च ।।' इति ।

'अनुपनीतो विप्रस्त्वित्यादि' ब्रह्मपुराणवचने क्षत्रियवैश्ययो:

षडब्दाभ्यन्तरे त्रिरात्राभिधानं वेदाग्निमतोरेव, अन्येषां षडहनवाहौ पूर्वोक्तावेवेति शुद्धिविवेके स्पष्टम् । शूद्रविषये हि—

'शूद्रे त्रिभिर्वर्षान्न्यूने मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः ।
अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते ।।'

शङ्खः— 'अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ।
मृत्युं समधिगच्छन्ति मासं तस्यापि बान्धवाः ।।
शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा ।'

अनूढभार्यः । नोढा विवाहिता भार्या येन स अविवाहित इति यावत् । **विवाहिते शूद्रे मृते आह अङ्गिराः—**

'षड्वर्षान्तमतीतस्तु शूद्रः सम्म्रियते यदि ।
मासिकं तु भवेच्छौचमित्याङ्गिरसभाषितम् ।।'

अत्र 'षड्वर्षान्तमतीत' इत्यत्र षड्वर्षोऽन्ते यस्य इति व्युत्पत्त्या पञ्चवर्षमतीतः प्राप्तः इत्यर्थः । पञ्चवर्षादधो विवाहः स्त्रियाः शूद्रस्य वा न प्रशस्तः । यत्र तयोस्तृतीये चतुर्थे वा विवाहो जातस्तत्र तयोर्मरणे सम्पूर्णाशौचं शास्त्रान्न सिध्यति, देशाचारादेव तत्र व्यवस्था बोध्या ।

'यस्मिन्देशे यदाचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते ।।'

इति देशकुलाचारस्य व्यवस्थापकत्वादिति स्मृत्यर्थनिर्णये गोकुलनाथोपाध्यायाः । एतावद्ग्रन्थपर्यालोचनया अयमर्थः पर्यवसितः—ब्राह्मणबाले सप्तमासात्प्राक् मृते ब्राह्मणानां सद्यःशौचम् तत्र केशनखच्छेदनं स्नानञ्च । सप्तमासमारभ्य जन्मतो द्वितीयवर्षपर्यन्तमेकाहोरात्रमशौचम्, उभयत्र भूमिनिखननं श्मश्र्वादिच्छेदनं च । तदूर्ध्वं षड्वर्षपर्यन्तं त्रिरात्रम् । तत्र दाहं कृत्वा पिण्डदानं द्वितीयदिनेऽस्थिसञ्चयः, तदसम्भवे तृतीयदिने पिण्डदानमस्थिसञ्चयनं नखकेशच्छेदनं च, चतुर्थदिने ब्राह्मणभोजनमिति सांप्रदायिक व्यवहारः ।

क्षत्रियाणां सप्तममासपर्यन्तं सद्यः, तदनन्तरं द्विवर्षपर्यन्तं द्व्यहम् । तदूर्ध्वं षड्वर्षपर्यन्तं षड्दिनमशौचम् । वैश्यानां सप्तममासपर्यन्तं सद्यः, तदनन्तरं द्विवर्षपर्यन्तं त्र्यहम्, तदूर्ध्वं षड्वर्षपर्यन्तं नवरात्रं, षड्वर्षानन्तरं ब्राह्मणक्षत्रियविशां संपूर्णाशौचम्, एकादशाहादिक्रियाश्च । शूद्राणां सप्तममासपर्यन्तं सद्यः, तदनन्तरं द्विवर्षपर्यन्तं पञ्चाहम्, भूमिनिखननं च । तदूर्ध्वं षोडशवर्षपर्यन्तम् अविवाहिते मृते द्वादशदिनम्, षोडशवर्षानन्तरं मासमशौचम्। श्राद्धादिक्रियाश्च । विवाहिते तु पञ्चवर्षानन्तरं 'षड्वर्षान्तमतीत' इति प्रागुक्ताङ्गिरोवचनात् पञ्चवर्षाभ्यन्तरे च देशकुलाचारान्मासमशौचं श्राद्धादिक्रियाश्च ।

हिन्दी—अब बालक मरण जन्य अशौच के सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा है—दाँत निकलने के पूर्व तक यदि बालक की मृत्यु हो जाय तो उसे सद्यः अशौच होता है । चूड़ाकरण पर्यन्त मृत्यु होने पर तीन रात का अशौच होता है । यज्ञोपवीतपर्यन्त मृत्यु होने पर दस रात के अशौच का विधान है ।

आदन्त जननात् = दाँत निकलने के समय तक, यह समय ब्रच्चों का सातवां महीना होता है । उपनिषद् की एक उक्ति है—'दाँतों का जनमना सातवें महीने में होता है' सरोज कलिका में लिखा है, आङ् उपसर्ग यहाँ मर्यादा के अर्थ में है । अतः इससे यह सिद्ध होता है कि सातवें महीने से पूर्व छः महीने तक की उम्र के बच्चों की मृत्यु होने पर चारों वर्णों के लोगों को सद्यः अशौच होता है । इससे परे ब्राह्मणमात्र विषय के वचन हैं । सातवें महीने से पूर्व की मृत्यु पर सद्यः शौच का विधान शुद्धिविवेक में भी है । आचूडात् का अर्थ चूड़ाकाल पर्यन्त है और यह समय 'तृतीयेवा प्रतिहत' इस वचन के अनुसार तीसरा साल होता है । आव्रत के आदेश से उपनयन काल तक का बोध होता है और वह काल छः वर्ष के अन्त तक होता है । उदाहरण स्वरूप ब्रह्मपुराण में—

'द्विजन्मा अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का यह काल छः साल का है ।' इति । इसी तरह आगे भी व्रत अर्थात् उपनयन काल भी और वह काल छः साल के अन्त तक का है । अङ्गिरा का वचन है—तीन साल से कम उम्र के ब्राह्मण शिशु की मृत्यु होने पर रात भर की शुद्धि का विधान है क्षत्रियों की दो दिन में, वैश्यों की तीन दिनों में शुद्धि होती है, निर्वृत्त क्षत्रिय छः दिन में तथा वैश्यों की शुद्धि नौ दिनों में होती है ।

'अनुपनीतोविप्रस्तु' इत्यादि ब्रह्मपुराण के वचन में क्षत्रिय एवं वैश्यों की शुद्धि के लिए, शिशु की मृत्यु छः साल के भीतर होने पर त्रिरात्र का ही विधान है, यही वेदाग्नि का भी मत है । दूसरों के मत में छः और नौ दिनों की शुद्धि पहले कही जा चुकी है, वही शुद्धिविवेक में स्पष्ट है ।

शूद्र के विषय में—तीन साल से कम उम्र के शूद्र शिशु की मृत्यु होने पर पाँच दिनों में शुद्धि का विधान है । तीन साल से ऊपर उम्र के शूद्र शिशु पर बारह दिनों की शुद्धि का विधान है । शङ्ख का विचार है—सोलह साल से अधिक उम्र के अविवाहित शूद्र की मृत्यु होने पर उसके बान्धवों की शुद्धि एक महीने में होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । अनूढमार्यः = नहीं लाया है विवाह कर भार्या को जिसने अर्थात् अविवाहित क्वांरा । विवाहित शूद्र की मृत्यु पर अङ्गिरा का वचन है—छठा साल प्रारम्भ

होने से पूर्व यदि विवाहित शूद्र की मृत्यु होय तो अङ्गिरा के वचनानुसार उसका मासिक अशौच होता है ।

यहाँ 'षडवर्षान्तमतीत' इसकी व्युत्पत्ति इस तरह की जाय 'छठावर्ष है अन्त में जिसके' तो इसका अर्थ होगा पाँच वर्ष पर्यन्त । पाँच वर्ष से कम उम्र के शूद्र की लड़की या लड़के का विवाह प्रशंसनीय नहीं कहा गया है । जहाँ इनकी उम्र तीन या चार साल की हो और विवाहोपरान्त इनमें से किसी की मौत हो जाय तो शास्त्रीय दृष्टि से इनका सम्पूर्णाशौच सिद्ध नहीं होता । देशाचार के अनुसार ही इसकी व्यवस्था जाननी चाहिए ।

श्रुति और स्मृति के विरोध किये बिना परम्परा से क्रमागत जिस देश का जो आचार है, उसे ही सदाचार कहते हैं । अत: गोकुलनाथ उपाध्याय ने स्मृत्यर्थ निर्णय में इस व्यवस्था को देश और कुलाचार के अनुसार ही माना है इन ग्रन्थों के पर्यालोचन से यही अर्थ निकलता है कि सातवां महीने से पूर्व ब्राह्मण बच्चे की मृत्यु होने पर सद्य: शौच होता हैं वहाँ नख बाल कटवाकर स्नान कर लने से शुद्धि होती है । सातवें वर्ष से लेकर जन्म के दूसरे वर्ष तक एक दिन और एक रात का अशौच होता है । दोनों ही स्थिति में भूमिखनन एवं दाढ़ी मूँछ बनवाना चाहिए । इससे ऊपर छ: वर्ष तक त्रिरात्र का विधान है । ऐसी स्थिति में शवदाह करने के बाद पिण्डदान करना चाहिए । और दूसरे दिन अस्थि सञ्चयन करना चाहिए । अगर ये असम्भव हो तो तीसरे दिन पिण्डदान और अस्थि सञ्चन के बाद नख बाल कटवा लेना चाहिए और चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करवा लेना चाहिए । यही साम्प्रदायिक व्यवहार है ।

क्षत्रियों का सप्तममास पर्यन्त सद्य: शौच, उसके बाद दो वर्ष पर्यन्त दो दिनों का अशौच होता है । इससे ऊपर छ: साल तक छ: दिनों का अशौच होता है । वैश्यों को सातवें महीने तक सद्य: अशौच, उसके बाद दो साल तक तीन दिनों का, उससे ऊपर छ: साल तक नौ रात का, छ: वर्षो के बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को सम्पूर्ण अशौच होता है और एकादशाहादि क्रिया होती है । शूद्रों को सात महीने तक सद्य: अशौच इसके बाद दो वर्ष तक पाँच दिनों का और भूमिखनन होता है । इसके ऊपर सोलह साल तक अविवाहित मरने पर बारह दिनों का अशौच होता है; सोलह वर्ष के बाद एक महीने का अशौच होता है, तथा श्राद्धादिक क्रिया होती है । विवाहित होने पर पाँच वर्ष के बाद 'षड्वर्षान्तमतीत' पहले कहे गये अङ्गिरा के इस वचन से पाँच वर्ष के भीतर मरने पर देश और कुल के परम्परित आचार के अनुसार एक महीने का अशौच एवं श्राद्धादिक क्रिया होती है ।

मैथिली—याज्ञवल्क्य बालकक मृत्यु पर अशौच कहने छथि—बालकक दन्त जनन कालपर्यन्त मृत्यु भेने सद्यः शौच तथा चूड़ाकरण पर्यन्त मरला उत्तर एक दिन एवं एक रात्रिक अशौच तथा उपनयन धरि त्रिरात्रिक एवं एकरा सँ ऊपर दशाह अशौच विधान अछि ।

आदन्तजननात् = बालकक दन्त जननकाल पर्यन्त, दाँत निकलवाक समय सातममासमानल गेल अछि । उपनिषद्क कथन अछि 'दन्त जन्म सप्तमे मासि' अर्थात् बालकक दाँत सातम मास में होयत अछि । सरोजकलिका में लिखल अछि 'मर्यादाक अर्थ में अहिठाम आङ् उपसर्गक प्रयोग भेल अछि ताँय सातम मास सँ पूर्व छः मास पर्यन्त बालकक मृत्यु भेने चारुवर्णनकलेल सद्यः शौचक विधान अछि । अतः पर ब्राह्मणमात्र विषयकलेल ई वचन अछि; सातम मास सँ पूर्व बालक मृत्यु होने सद्यः शौचक विधान शुद्धिविवेक में लिखल अछि । 'आचूडात्' एकर तात्पर्य अछि चूड़ाकाल पर्यन्त ई तेसर वर्ष भेल' एकर वचन अछि—'तृतीये वा प्रतिहत' आव्रता देशात् = एकर तात्पर्य उपनयन काल पर्यन्त भेल, से काल छः वर्षक अन्त धरि होयत अछि । उदाहरण स्वरूप ब्रह्मपुराणक वचन अछि—द्विजन्मनां अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय आओर वैयकलेल ई काल छः वर्षक अछि । अहिना आगुओ व्रतक अर्थ भेल उपनयन काल सँ छः वर्षक अन्तधरि भेल । अङ्गिराक वचन अछि—तीन वर्षक अभ्यन्तर बालकक मृत्यु भेने एक दिन एवं एक रात्रिक अशौच होयत अछि । दुई दिन में क्षत्रियक शुद्धि तथा तीन दिन में वैश्यक शुद्धि होयत अछि । निवृत्त क्षत्रियकलेल छः दिन में तथा वैश्यकलेल नौ दिन में शुद्धि कहलगेल अछि ।

'अनुपमीतो त्रिस्त्वित्यादि' ब्रह्मपुराणक वचन में क्षत्रिय एवं वैश्यकलेल छः सालक भीतर मरने त्रिरात्रक विधान अछि । वेदाग्नि मत सँ सेहो एतवहि सिद्ध होयत अछि, आनकलेल छः दिन एवं नौ दिनक अशौच पूर्वोक्त शुद्धि विवेक में स्पष्टे अछि । शूद्रक विषय में—तीन वर्षक अभ्यन्तर शूद्र शिशुक मरला उत्तर पाँच दिनक अशौच होयत अछि । तीन वर्ष सँ अधिक अवस्थाक मृत शूद्र शिशुकलेल बारह दिनक बाद शुद्धिक विधान अछि । शङ्खक वचन—सोलह साल से अधिक अवस्थाक अविवाहित शूद्रक शरीरान्त भेने हुनक बान्धवलोकनि मासदिनक बाद शुद्धि प्राप्त करैत छथि । अहिकथन में कोनो तरह विचार नहि करी । अनूढभार्यः = अर्थात् अविवाहित । मृत विवाहित शूद्रक सन्दर्भ में अङ्गिराक वचन—पाँच वर्षक अवस्था धरि यदि विवाहित शूद्रक मृत्यु होयतऽ अङ्गिराक मतानुसार मासिक शौच होय ।

अहिठाम 'षड्वर्षान्तमतीत' एकर व्युत्पत्ति यदि एनाकयल जाय—'छठमवर्ष जकरा अन्त में होय' तऽ एकर स्वतः अर्थ होयत अछी पञ्चम वर्षक अन्त धरि । 'शूद्रस्त्रीक पाँच वर्ष सँ कम उम्रक विवाह प्रशंसनीय नहि होयत अछि । जाहिठाम शूद्र बालक एवं बालिकाक विवाह तेसर या चारिम वर्ष मं भऽ

जायत छैक ओकरा मरने सम्पूर्ण अशौच हो, ई शास्त्र सँ सिद्ध नहीं होयत अछि । ताँय देशाचारानुसारे एहन स्थिति में व्यवस्था जानवाक चाही ।

परम्परा सँ क्रमागत जाहि देशक जे आचार होय श्रुति स्मृतिक विना विरोधे ताहिठाम कलेल सेह सदाचार होयत अछि ।

अहिवचनानुसार देशकुलाचारे व्यवस्थापक भेल, ई स्मृत्यर्थ निर्णय में गोकुल नाथ उपाध्यायक वचन अछि । अहिसभ ग्रन्थक पर्यालोचन कयला उत्तर ई निष्कर्ष निकलैत अछि—सातमास सँ पूर्व ब्राह्मण बालकक मृत्यु भेने ब्राह्मण लोकनिकें सद्य: शौच होयत अछि, केशनख छेदनक बाद स्नानोत्तर शुद्धि होयत अछि । सातम मास सँ लऽ कय जन्म से दोसर वर्ष पर्यन्त मरला उत्तर एक अहोरात्रक अशौच होयत अछि । दुहू स्थिति में शव कय भूमिगत कयल जायत अछि । तत्पश्चात् दाढ़ी-मूँछ नख बालादि कटाय स्नानोपरान्त शुद्धि होयत अछि । एकरा सँ ऊपर छ: वर्षपर्यन्तक शिशुक मरणोपरान्त त्रिरात्रक अशौच होयत अछि । एहन स्थिति में दाहोपरान्त पिण्डदान कयलाक बाद दोसर दिन अस्थि सञ्चय करवाक चाही । यदि ई सम्भव नहिं होय तऽ तेसर दिन पिण्डदान एवं अस्थि सञ्चयनक बाद नख केश कटवाय पवित्रभय चारिम दिन ब्राह्मण भोजनादि करयवाक चाहि । एतवहि साम्प्रदायिक व्यवहार अछि ।

क्षत्रियकलेल सातम मास पर्यन्त सद्य: शौच, तकर बाद दुई वर्ष पर्यन्त दुइ दिनक अशौच होयत अछि । एकरा सँ ऊपर छ: वर्ष धरि छ: दिनक अशौच मानल गेल अछि । वैश्यकलेल सातमासधरि सद्य: शौच, तकरवाद द्विवर्षधरि तीन दिनक अशौच, तकरा सँ ऊपर छ: साल धरि नौ रात्रिक अशौच होयत अछि, छ: सालक बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यकलेल सम्पूर्ण अशौच तथा, एकादशाहादिक क्रिया करवाक चाही । शूद्रकलेल सातममास धरि सद्य: अशौच, तदनन्तर, दुई वर्ष पर्यन्त पाँच दिनक अशौच एवं शव के भूमिगत करवाक व्यवस्था अछि । एकरा सँ ऊपर सोलह साल पर्यन्त अविवाहित शूद्र के मरने बारह दिनक अशौच तथा सोलह सालक बाद मरने एक मासक अशौच एवं श्राद्धादिक क्रिया करवाक चाही। विवाहित रहला उत्तर पाँच वर्षक बाद 'षडवर्षान्तमतीत' ई अङ्गिराक प्रागुक्त वचन सँ पाँचवर्षक अभ्यन्तरे देश एवं कुलाचारक अनुसार एकमासक अशौच एवं श्राद्धादिक क्रियाक विधान अछि ।

विमर्श:—पुनरङ्गिरावचनमेव—शूद्रे त्रिभिर्वर्षान्न्यूने मृते शुद्धिस्तु पञ्चमि: ।
अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते ।।

भिन्नगोत्रे कृत्रिमादौ अशौचमाह—

दत्तक कृत्रिमादिपुत्रानभिधाय ब्रह्मपुराणे—

'भिन्नगोत्रा: पृथक्पिण्डा: पृथग्गोत्रकरास्तथा ।
सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिन: ।।'

औरसभिन्नपुत्रेषु मृतेष्वशौचमाह—शुद्धेदित्यनुवृत्तौ विष्णुः—आचार्ये मातामहे अतीते त्रिराते त्रिरात्रेण ।

'अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च ।
परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च ॥'

एतच्च सर्ववर्णविषयम् । विशेषानभिधानात् ।

मनुः— 'गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥'

अस्यार्थः शुद्धिविवेके । तथा हि—यः शिष्यो वेदाध्येता गुरुकुले तिष्ठन् गुरोः संस्कारं करोति तस्य त्रिरात्रम् । तत्र मनुः—

'त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।'

संस्थिते मृते इति। गुरुलक्षणमाहः—

'अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ।'

तमपीह गुरुं विद्यात्' इति ।

बौधायनः—त्रिरात्रमहोरात्रमेकरात्रमिति कुर्वीत आचार्योपाध्यायस्तत्पुत्रेष्विति । अत्र मृतेष्विति शेषः । मातामहे मृते त्रिरात्रमाह बृहस्पतिः—

'त्र्यहं मातामहाचार्यश्रोत्रियेषु शुचिर्नरः ।
मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥'

पक्षिणी तु दिनद्वयसहिता रात्रिः 'आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी'—इत्यमरकोषात् । तुल्यन्यायात् रात्रिद्वयसहितं दिनमपिपक्षिण्येव । गौतमः—'पक्षिण्यसपिण्डे योनिसंबन्धे सहाध्यायिनि च', मृते इति शेषः । योनिसम्बन्ध्याश्च मातृष्वसृपितृष्वसृमातुलमातुलानि—मातुलपुत्रमातुष्वस्रेयपितृष्वस्रेयदौहित्रभगिनीभागिनेयाः श्वश्रूश्वशुरौ चेति । स्वगृहे मृते मातुले श्वशुरे गुरौ, स्वगृहमृतायां मातृष्वसरि श्वश्र्वां च त्रिरात्रमिति शुद्धिविवेकः । अत्र योनिसंबन्धाश्च मातुलमातृष्वस्रेयपितृष्वस्रेय इति मिताक्षरा । तत्रैव यम इत्यनुवर्त्य— 'मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वङ्गनासु च ।
अशौचं पक्षिणी रात्रिर्मृता मातामही यदि ॥' इति ।

तथा—'संस्थिते पक्षिणी रात्रिर्दौहित्रे भगिनीसुते ।' संस्थिते मृते ॥

अथ स्वगृहे कस्मिंश्चिन्मृते गृहस्थस्याशौचमाहाङ्गिराः ।

'गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथञ्चन ।
तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥'

गौतमः—मत्स्यमांसादि न भक्षेयुराप्रदानात् । प्रदानम् आद्यश्राद्धम् । तेन मांसादिभक्षणनिषेधोऽषौचाभ्यन्तरे सर्वसाधारण इति शुद्धिनिर्णयः । आप्रदानाच्छ्राद्धे मांसप्रदानादित्यर्थः इति रत्नाकरः । अशौचप्रकरणे—

मनुः—'मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ।'

आप्रदानादिति स्वरसात् । मृतकाशौचे एव मांसादिभक्षणनिषेधो न तु जननाशौचे । मार्कण्डेयपुराणे—

'तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसम्वाहनं च यत् ।
तेन वाऽऽप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति सुबान्धवाः ।।' इति ।

अयं चाभ्यङ्गोऽस्थिसञ्चयनानन्तरमिति वाचस्पतिमिश्राः ।

अथ अशौचान्तिमदिनकर्त्तव्यमाह बृहस्पतिः—

'नवमे वाससां त्यागो नखलोम्नां तदन्तिके ।'

नवम इति अशौचोपान्त्यदिनोपलक्षकम् । ब्रह्मपुराणे—

'यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः ।
स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि ।।
समाप्य दशमं पिण्डं यथाशास्त्रमुदाहृतम् ।
ग्रामाद् बहिस्ततो गत्वा प्रेतस्पृष्टे च वाससी ।।
अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ।
श्मश्रुकेशनखानां च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि ।।'

पश्चिमम् अशौचान्तिमम् । वस्त्रशुद्धिः वस्त्रप्रक्षालनम्, गृहशुद्धिरुपलेपनादिः, पिण्डदानानन्तरं श्राद्धकर्तुर्नखकेशच्छेदनं समाप्य 'दशमं पिण्डमित्यादिस्वरसात् साम्प्रदायिकव्यवहाराच्च, त्याज्यं जहात्यनेनात्याज्यानां कक्षाक्षिकेशानां शिखानां च न त्याग इत्यवगम्यते । अत एव वशिष्ठः—'श्मश्रुकेशनखान् वापयेदक्षिलोमशिखावर्जम्' इति। वपनं केषामित्याहापस्तम्बः—'एषु चोदकदानं तावन्तं कालमनुभाविनां च परिवापनम्' अनुभवन्तीत्यनुभाविनः अनुभवशालिन इति यावत् । अनुभवस्तु सपिण्डादिमरणस्य तेन सपिण्डादिमरणानुभवशालिनां सर्वेषामेव वापनमिति पर्यवसितम् । यत्तु अनु पश्चाद्भावि इत्यनुभाविनः कनिष्ठाः, तेन प्रेतकनिष्ठानामेव वपनमिति वाचस्पतिमिश्रैर्व्याख्यातं तच्च व्यवहारविरोधात्त्याज्यमेव, व्यवहारविरोधानुरोधेन रत्नाकरलिखितमप्युपेक्षितम् । यत्र व्यवहारविरोधो नापततिः । तत्र 'यथारत्नाकरमेव व्यवस्था' इत्यनेन शुद्धिविवेककर्त्रा व्यवहारबलवत्त्वस्योक्तत्वात् ।

मनुः—— 'विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ।।'
अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति ।।'

गौतमः—— 'श्रुत्वा चौर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी इति ।

देवलः—— 'ऊर्ध्वं संवत्सरार्द्धात्तु श्रुयते चेन्मृतः स्वकैः ।
भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु ।।

अयमत्र भावः——अशौचाभ्यन्तरे मरणश्रवणेऽवशिष्टाऽशौचदिनं यावदशुद्धिः । अशौचान्तिमदिनानन्तरं षण्मासाभ्यन्तरं मरणश्रवणे त्रिरात्रम् । षण्मासानन्तरं नवममासपर्यन्तं पक्षिणी । तदनन्तरं वर्षं यावदेकाहोरात्रम् वर्षानन्तरं स्नानोदकदानपर्यन्तमेवाशौचम् इति सर्ववर्णानां संपूर्णाशौचविषयम् ।

असम्पूर्णत्र्यहाद्यशौचे तु अशौचाभ्यन्तरे मरणश्रवणेऽवशिष्टाशौचकालेन तादृशाशौचकाले व्यतीते तु स्नानोदकदानमात्रेण शुद्धिः ।

तथा हि याज्ञवल्क्यः——'प्रोषिते कालशेषः स्यात्पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः ।'

इति त्रिरात्रादावशौचकाले व्यतीतेऽशौचाभाव एव इति (शुद्धिविवेके) रुद्रधरः । जननाशौचाभ्यन्तरे जननश्रवणेऽवशिष्टाशौचकाले व्यतीते शुद्धिः । तदशौचानन्तरे जननश्रवणेऽशौचाभावः ।

नाशौचं प्रसवस्यास्ति व्यतीतेषु दिनष्वपि ।' इति देवलात् । षष्टियोजनानन्तरदेशौ देशान्तरं षष्टियोजनाभ्यन्तरेऽपि भाषाभेदगिरिमहानद्येतावत्समुदायव्यवहितदेशो देशान्तर एव तादृशदेशान्तरयोर्मृते सपिण्डानामपि सद्यःशौचमेव । तदाह पैठीनसिः——'देशान्तरमृतस्य सद्यःशौचम्' सपिण्डस्यापीति शेषः । अत्र रुद्रधरोपाध्यायाः——गिर्यादिव्यवधानाभावेऽपि शास्त्रीयः षष्टियोजनानन्तरे प्रयागे मृतस्य तीरभुक्तिदेशस्थितं प्रति देशान्तरमृतत्त्वव्यवहारः । प्रामाणिकास्तु——त्रिंशद्योजनानन्तरे काश्यां मृतस्य गिर्यादिसमुदायव्यवधानाभावात् तीरभुक्तिदेशस्थितिं प्रति न देशान्तरमृतत्त्वव्यवहार इति प्राहुः । एतच्च दिक् प्रदर्शितम् । तेन यत्रैतादृशानन्तर्यम् एतादृशसमुदायाव्यवधानं वा तद् देशे देशान्तरत्वाद् देशान्तरत्वमिति पर्यवसितम् ।

मृतस्य त्रिविधा क्रिया पूर्वा मध्यमा उत्तरा चेति । तत्र दाहमारभ्याशौचान्तिमदिनपर्यन्तकर्त्तव्यक्रिया पूर्वा, एकादशाहसपिण्डनान्तक्रिया मध्यमा । तदुत्तरैकोद्दिष्टादिरूपोत्तरा । तत्र पितृमातृसपिण्डादयः पूर्वां क्रियां कुर्युः । मध्यमायामनियमः । उत्तरां च न कुर्युः । पुत्रपत्नीसोदरभ्रातापिताभातृपुत्राः, एते चोत्तरक्रियायामप्यधिकारिणः ।

'पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलैस्तथा ।
तत्संघातान्तर्गतैर्वाऽपि राज्ञा वा धनहारिणा ।।

हिन्दी—गोत्र से अलग कल्पित या गोद लिए लोगों के लिए अशौच कहा गया है दत्तक या कल्पित आदि पुत्रों को ध्यान में रखकर ब्रह्मपुराण का कथन है—अलग गोत्र वाले, अलग पिण्ड वाले तथा अलग कर्म करने वाले लोगों को मात्र तीन दिनों का ही जन्माशौच या मरणाशौच होता है । अपने वास्तविक पिता के वीर्य से उत्पन्न वैधपुत्र से भिन्न पुत्रों के लिए मरणाशौच कहा गया है 'शुद्धचेत्' इत्यादि की अनुवृत्ति में विष्णुपुराण का कथन है—गुरु एवं मातामह के मरने पर त्रिरात्र का अशौच होता है । और सभिन्न पुत्रों में जननाशौच या मरणाशौच होने पर पूर्वापर पत्नी के लिए प्रसूति होने पर या मरने पर त्रिरात्र का ही अशौच होता है ।

कुछ विशेष कथन नहीं होने के कारण यह कथन सभी वर्णों के लिए है । मनु का वचन है—गुरु के मरने पर शिष्य वैदिक रीति से उनकी अन्त्येष्टि क्रियादि करते हुए मुरदा उठाने वाले मृतक के नातेदार की तरह दश रात्रि के बाद शुद्ध होते है । इसका अर्थ शुद्धिविवेक में कहा गया है— जैसे कि, वेद का अध्ययन करने वाला जो शिष्य गुरु के आश्रम में रहते हुए गुरु की अन्त्येष्टि में भाग लेता है, उसे त्रिरात्र का अशौच ही होता है । इस संदर्भ में मनु का कथन है—'गुरु के मरने पर शिष्य को त्रिरात्र का अशौच होता है ।' यहाँ संस्थिते का अर्थ मरने पर है । गुरु का लक्षण है—थोड़ा या अधिक वेद का जिसने उपदेश दिया, संसार में उसे भी गुरु ही जानना चाहिए । बौधायन—आचार्य या उपाध्याय एवं उनके पुत्र के मरने पर तीन रात का, एक दिन और एक रात का, या एक रात का क्रमश: अशौच होता है । यहाँ मरने पर यह 'शेष' है । मातामह (नाना) के मरने पर त्रिरात्र का अशौच होता है । बृहस्पति का वचन है—मातामह; आचार्य एवं श्रोत्रियों की मृत्यु होने पर मनुष्य तीन दिनों में पवित्र होता है । मामा के मरने पर या सहाध्यायी के मरने पर पक्षिणी अर्थात् आगे—पीछे दो दिनों के बीच की रात, की अवधि का अशौच होता है ।

पक्षिणी का अर्थ दो दिनों के साथ एक रात । अमर कोष में लिखा है—'आगामी और वर्त्तमान दिनों के बीच की रात को पक्षिणी कहते हैं । तुल्य न्याय से दो रातों के बीच के दिन को भी पक्षिणी ही कहते हैं । गौतम का वचन है—पक्षिणी अशौच असपिण्ड में, योनिसम्बन्ध में, साध्यायियों में होता । मृत शब्द यहाँ शेष है । योनिसम्बन्धी होते हैं—मौसी, बूआ, मामा, मामी, ममेरा भाई, मौसेरा भाई, फुफेरा भाई, नाती, भगिनी, भगिना, सास और

ससुर । अपने घर में मरे मामा ससुर और गुरु तथा अपने घर में मरने पर मौसी, सास के लिए त्रिरात्र में शुद्धि का विधान है । शुद्धिविवेक में लिखा है । यहाँ योनिसम्बन्धी में मामा, मौसी और बूआ का उल्लेख मिताक्षरा में है । वहाँ ही यम का अनुवर्चन कर—

मामा, ससुर, मित्र, गुरु और गुरु-पत्नी एवं मातामह के मरने पर पक्षिणी अशौच होता है । इति । और नाती एवं भांजे के मरने पर भी पक्षिणी अशौच ही होता है । संस्थिते अर्थात् मरने पर । अपने घर में किसी व्यक्ति के मरने पर गृहस्थों के लिए अङ्गिरा ने कहा है—

जिसके घर में किसी प्रकार किसी भी अपने कुल या वंश से भिन्न व्यक्ति की मृत्यु हो तो उस गृही को निश्चित्त रूप से तीन रात का अशौच होता है ।

गौतम का कथन है—प्रथम श्राद्ध तक उसे मांस और मछंली नहीं खाना चाहिए । प्रदान अर्थात् आद्यश्राद्ध इससे सर्वसाधारण के लिए भी अशौच काल के भीतर मांसादि भक्षण का निषेध शुद्धि निर्णय में कहा गया है । आप्रदानात् श्राद्धे अर्थात् मांस प्रदान, यह रत्नाकर का कथन है ।

अशौच प्रकरण में मनु—मांस, भोजन एवं धरती पर से अलग शयन नहीं करना चाहिए । आद्यश्राद्ध तक इस कथन से मरणाशौच में ही मांसादि भक्षण का निषेध है न कि जननाशौच में । मार्कण्डेयपुराण में कहा गया है—शरीर में तेल की मालिश या हाथ पैर दबवाने, या बान्धव जो कुछ भोजन करते हैं, उससे जीवात्मा प्रसन्न होती है । वाचस्पति मिश्र का कहना है यह तेल की मालिश अस्थि सञ्चय के बाद ही करनी चाहिए । अशौच के अन्तिम दिन का कर्त्तव्य बृहस्पति ने कहा है—नौवे दिन वस्त्र का परित्याग करना चाहिए, उसके अन्तिम दिन नखबाल कटवाना चाहिए । 'नवम' अशौच के अन्तिम दिन के एक दिन पूर्व का बोधक है । ब्रह्मपुराण में—

जिस किसी वर्ण का अशौच का जो भी अन्तिम दिन हो, उसी दिन वह वस्त्र प्रक्षालन करे और उसी दिन घर की लीपापोती या साफ सफाई भी करनी चाहिए । शास्त्र के कथनानुसार दशमा पिण्ड अर्थात् अन्तिम पिण्डदान कर गांव से बाहर जाकर प्रेतस्पर्शी वस्त्रों को छोड़ देना चाहिए तथा स्नान करना चाहिए । अत्याज्य केशों को छोड़कर जो त्याज्य है वैसे दाढ़ी, मूँछ, केश एवं नखों को कटवा लेना चाहिए ।

पश्चिमम् अर्थात् अशौच का अन्तिमदिन । वस्त्र शुद्धि: = वस्त्र का प्रक्षालन, गृह शुद्धि: = घर की लिपापोती । पिण्डदान्न के बाद श्राद्ध कर्त्ता

नखबाल कटवाकर 'दशमपिण्ड' इत्यादि कथन से तथा साम्प्रदायिक व्यवहार से भी 'त्याजंजहाति' इससे काँख और आँख के बाल तथा शिखादि का त्याग होना चाहिए, इस अर्थ का बोध होता है । इसीलिए वशिष्ठ ने कहा है— आँख और शिखा के बालों को छोड़कर, दाढ़ी, मूँछ और सिर के बाल तथा नाखूनों को कटवाना चाहिए ।

बाल किसे कटवाना चाहिए? इस पर आपस्तम्ब का कथन है—और इनमें जल तर्पण करने वाले वंशधर और अन्तकाल के अनुभव शालियों को बाल कटवाना चाहिए । अनुभव करने वाले अनुभवी होते हैं अर्थात् अनुभवशाली । अनुभव तो सपिण्डादि के मरने का ही होता है । इससे तो सपिण्डादि मरण के अनुभवशालियों को अर्थात् उन सबों को बाल कटवाना चाहिए ।

वाचस्पति मिश्र ने 'अनुभाविन' की व्याख्या अनु पश्चात् भावि अर्थात् पीछे जन्म लेने वाले मृतात्मा के छोटे भाई अर्थ किया है तथा इस व्युत्पत्ति के अनुसार केवल मृतात्मा के छोटे भाई को ही बाल कटवाना चाहिए' व्यवहार विरोधी होने के कारण यह व्याख्या ग्राह्य नहीं है । व्यवहार विरोध के अनुरोध से रत्नाकर ने जो मिश्र जी का समर्थन किया है, वह भी अग्राह्य है । जहाँ व्यवहार विरोध की आपत्ति नहीं होती, वहाँ रत्नाकर द्वारा प्रदत्त व्यवस्था सर्वत्र स्वीकार्य है । शुद्धिविवेक कर्त्ता ने भी अपने ग्रन्थ में व्यवहार को बलवत्तर कहा है । इस सन्दर्भ में मनु का कथन है—

दशरात्र के भीतर विदेश में रहने वाले किसी व्यक्ति की मृत्यु की सूचना मिलने पर दशरात्र में जितने दिन शेष हो, उतने ही दिनों का अशौच होता है । यदि दशरात्र बीत जाने पर सूचना मिले तो उसे तीन रात का ही अशौच होता है । यदि एक साल बीत जाने पर सूचना मिले तो मात्र जलस्पर्श अर्थात् स्नान करके ही पवित्र हो जाता है ।

गौतम—दश रात बीत जाने के बाद यदि सूचना मिले तो पक्षिणी अर्थात् दो दिनों के बिच की रात तक ही अशौच होता है ।

देवल—छः महीने के बाद किसी आप्तजन की मृत्यु की सूचना मिले तो उसे एक दिन का अशौच होता है । यह अशौच संन्यासियों के लिए नहीं है । इन वचनों का भावार्थ यह है—अशौच के भीतर मृत्यु की सूचना मिलने पर जितने दिन अशौच शेष हो उतने ही दिनों का अशौच होता है । अशौच के अन्तिम दिन के बाद तथा छः महीने के भीतर मृत्यु की सूचना मिलने पर त्रिरात्र का अशौच होता है । छः महीने के बाद और नौ महीने के भीतर मरण

की सूचना मिलने पर पक्षिणी अशौच का विधान है । उसके बाद एक साल तक मौत की जानकारी मिलने पर एक दिन और एक रात का अशौच होता है । एक साल के बाद मरण सूचना मिलने पर स्नान एवं तर्पण तक ही अशौच होता है । यह सभी वर्णो के लिए सम्पूर्ण अशौच का विषय है ।

बिना अशौच की पूरी अवधि समाप्त किये तीन दिन प्रभृति के अशौच में अशौच की अवधि के भीतर मरण की सूचना मिलने पर बचे हुए अशौच काल की समाप्ति पर अशौच समाप्त हो जाता है । ऐसे अशौच काल बीत जाने पर स्नान एवं तर्पण मात्र से शुद्धि होती है । उदाहरण स्वरूप याज्ञवल्क्य का कथन—देशान्तर में यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो समय पूरा होने पर जल दान कर शुद्धि प्राप्ति होती है ।

त्रिरात्र आदि का अशौच काल बीत जाने पर अशौच नहीं होता, ऐसा शुद्धि विवेक का कथन है । जन्माशौच के भीतर कुछ काल बीत जाने पर सूचना मिले तो बचे हुए अशौच काल बीत जाने पर शुद्धि होती है । जन्माशौच की अवधि समाप्त हो जाने पर, जनन की सूचना मिले तो कोई अशौच नहीं होता ।

देवल के अनुसार—'समय बीत जाने पर जन्माशौच नहीं होता है' साठ योजन (चार कोस या आठ मील का एक योजन) के बाद का देश देशान्त या विदेश कहलाता है । साठ योजन के भीतर रहने पर भी यदि भाषा भेद हो या पर्वत समूह अथवा महा नदी का कोई व्यवधान हो तो वह भी देशान्तर ही कहलाता है । ऐसे देशान्तर में मृत सपिण्डियों का भी सद्यःशौच ही होता है ।

इस सन्दर्भ में पैठानसि ने कहा है—देशान्तर में मरने वालों के वंशघरों को भी सद्यःशौच ही होता है । इस सन्दर्भ में रुद्रधर उपाध्याय का कहना है—पर्वतादि के व्यवधान नहीं रहने के बावजूद भी शास्त्रीय दृष्टि से साठ योजन की दूरी होने कारण प्रयाग में मृतव्यक्ति के तीरमुक्ति अर्थात् मिथिलाञ्चल में अवस्थित आप्तजनों के प्रति देशान्तर में मरे हुए की तरह ही तो व्यवहार होता है ।

प्रामाणिकतो—तीस योजन के अनन्तर काशी में मृत व्यक्ति का पर्वत समूहादि का व्यवधान नहीं रहने पर भी मिथिलाञ्चल में अवस्थित आप्तजनों के प्रति देशान्तर में मृत की तरह व्यवहार नहीं होता है । यह तो अल्पमात्र निर्देश है । इससे जहाँ ऐसी व्यवधान शून्यता हो अथवा ऐसे समुदाय का अव्यवधान हो उस देश में देशान्तरत्व से देशान्तर का बोध होता है ।

मृत व्यक्ति की तीन प्रकार की क्रिया होती है—पूर्वा, मध्यमा और उत्तरा। इनमें दाह संस्कार से लेकर अशौच के अन्तिम दिन तक की क्रिया पूर्वा क्रिया हुई। एकादशाह से लेकर सपिण्डन तक की क्रिया मध्यमा हुई और उसके बाद एकोद्दिष्टादिक क्रिया उत्तमा हुई। यहाँ माता-पिता एवं सपिण्डादि के लिए पूर्वा क्रिया करनी चाहिए। मध्यमा में कोई नियम नहीं है। पुत्र-वधू, सहोदर भाई और भतीजे भी उत्तरा क्रिया के अधिकारी हैं। माता, पिता एवं वंशधर तथा जल तर्पण के समान अधिकारी या इस समूह के अन्तर्गत आने वाले व्यक्ति, राजा या धन लेने वाले लोग इस क्रिया के अधिकारी माने गये हैं।

मैथिली—भिन्नगोत्र में एवं कृत्रिमादि पुत्र में अशौच कहलगेल अछि—

दत्तक एवं कृत्रिमादि पुत्र के ध्यान में राखि ब्रह्मपुराण में कहलगेल अछि—असगोत्रीय, भिन्न पिण्ड एवं अपनकुल से बाहर लोकनि जन्माशौच या मरणाशौच में मात्र तीन दिनक अशौचक भागी होयत छथि। औरस भिन्न पुत्रलोकनिमें मरणाशौचक विषय में 'शुद्धयेत्' ई पदक अनुवृति में विष्णुपुराण में कहलगेल अछि—आचार्य एवं मातामहक मरणोपरान्त मात्र तीन दिनक अशौच होयत अछि। 'दत्तक पुत्र में एवं परपूर्वा पत्नी में जननाशौच एवं मरणाशौच मात्र रात्रिकलेल होय। ई विधान सभवर्णकलेल अछि। कियेकतऽ वचन में कहौ 'विशेष' क उल्लेख नहि अछि। मनुक वचन अछि—

मृत गुरुक अन्त्येष्टि कर्म करैत शिष्य मृतात्वाक शव उठाकय दाहसंस्कार में सम्मिलित हो निहार आप्त लोकनि जकाँ दश रात्रि में शुद्ध होयत छथि। शुद्धिविवेक में एकर अर्थ एना कयने छथि—जेना, वेदक अध्ययन क्रम में जे शिष्य गुरुकुल में निवास करैत गुरुक दाह संस्कार करथि, हुनकलेल त्रिरात्रक अशौच कहलगेल अछि।

मनुक कथन छैन्हि—'आचार्यक मरणोपरान्त तीन रात्रिक अशौच कहलगेल अछि' संस्थिते = मरलाउत्तर। गुरुक लक्षण कहलगेल अछि—अल्प अथवा अधिक वेदक जे उपदेश करथु, हुनको गुरुजानी। बौधायन—आचार्यक मरणोपरान्त त्रिरात्रक, उपाध्यायक मरला उत्तर एक दिन एवं एक रात्रिक तथा हुनक पुत्रक मृत्यु भेने एक दिनक अशौच होय। 'मृतेषु' ई पद अहिठाम शेष ऊछि। मातामहक मरला पर बृहस्पति त्रिरात्रक अशौच कहने छथि।

मातामह, आचार्य, श्रोत्रिय ब्राह्मणक मृत्यु भेने त्रिरात्रक बाद शुद्धिहोय माता, शिष्य एवं ऋत्विज् बान्धवक मरने पक्षिणी अशौच होय। दिनद्वय सहित रात्रि पक्षिणी भेल। अमरकोष में लिखल अछि 'वर्त्तमान दिनक बाद रात्रि एवं रात्रिक बाद आगामी दिन सहितक अवधि 'पक्षिणी' होयत अछि। तुल्य न्याय स दुइ रातिक मध्यवर्त्तीदिन, सेहो पक्षिणी कहवैत अछि।

गौतम = पक्षिणी अशौच अन कुल या वंश सँ बाहरक लोकनि, योनि सम्बन्धी तथा सहाध्यायीकलेल होयत अछि । 'मृत' शब्द अहिठाम शेष अछि । योनिसम्बन्धी भेलाह—मौसी, पिसी, माम, मामी, ममियौत भांय, मौसियौत भांय, पितियौत भांय, नाती, बहिन, भागिन, ससुर एवं सास । अपन घरऽ में भांय, ससुर एवं गुरुक मरने, अपन घर में मरल मौसी सासकलेल त्रिरात्रक अशौच व्यवस्था शुद्धिविवेक में अछि । मिताक्षराक अनुसार योनि सम्बन्धी माम, मौसियोत भांय, तियौत भांय मात्र मानलगेल अछि ।

अहीठाम यमक अनुवर्त्तन कय—माम, ससुर, मित्र, गुरु एवं गुरुक पत्नी एवं मातामहक करने पक्षिणी अशौच होय । तथा—'नाति एवं भागिन के मरने पक्षिणी अशौच होय ।' संस्थितेक अर्थ मरला उत्तर । अपन घर में ककरो मरने गृहस्थकलेल अशौच अङ्गिरा कहने छथि—ककरो घरऽ में यदिक्यो कोनो स्थिति में मरय तऽ गृहपतिकलेल त्रिरात्रक अशौचक विधान अछि ।

गौतम—आदि श्राद्ध धरि माछ एवं मांसादि नहि खयवाक चाही । प्रदानक अर्थ आदि श्राद्ध ताँय शुद्धिनिर्णय में अशौचक अभ्यन्तर में सर्वसाधारणकलेल मांसादि भक्षणक निषेध कयलगेल अछि । रत्नाकरक अनुसार आप्रदान से श्राद्ध में मांस प्रदान अर्थ होयत अछि । अशौच प्रकरण में मनुक कथन छैन्हि—धरती सँ पृथक् शयन एवं मांसादिक भोजन नहिं करवाक चाही । आप्रदानात् अर्थात् आद्यश्राद्धपर्यन्त ई कथनक बल सँ मरणाशौचे में मांसादि भक्षणक निषेध अछि जननाशौच में नहि । मार्कण्डेयपुराण में—बान्धवलोकनिक शरीर में तेलक लेप तथा हाथ पैर जतायत एवं सुभोजन से मृतात्मा सन्तुष्ट होयत छथि ।

वाचस्पति मिश्रक विचारे ई तैलाभ्यङ्ग अस्थि सञ्चयनक वादे हयवाक चाही । आव अशौचक अन्तिम दिनक कर्त्तव्य बृहस्पतिकहने छथि—'नवम दिन वस्त्रक त्याग करी तकर अन्त में नख केश कटयवाक चाही' नवम शब्द अशौचक उपान्त्य दिनक उपलक्षक अछि । ब्रह्मपुराण में—जाहि वर्णक जे अशौचक अन्तिम दिन होय ताहि दिन वस्त्र एवं गृह शुद्धि करवाक चाही । शास्त्रानुसार दशमपिण्ड समाप्कय ग्राम सँ बाहरजाय अन्त्य एवं आश्रित जनकलेल प्रेतस्पृष्ट वस्त्रक परित्याग करि स्नान करी । तत्पश्चातृ त्याज्य केश छोरि दाढ़ी, मूँछ एवं माथक केश तथा नख कटालेवाक चाही ।

पश्चिमम् अर्थात् अशौचक अन्तिम दिन वस्त्रशुद्धिः अर्थात् वस्त्रक प्रक्षालन गृह शुद्धिक अर्थ भेल गोबर माटि सँ नीपव या जल से धोयत । पिण्डदानक बाद श्राद्धकर्त्ता ना केश कटाय 'दशमपिण्डमिल्यादि' वचनक बले एवं साम्प्रदायिक व्यवहार जेना होय तहिना शुद्धि करवाक चाही । 'त्याज्यं जहाति' एकर तात्पर्य ई भेल काँखक केश, आँखिक केश एवं शिखक केश त्यागि अनयकेश कटयवाक चाही ।

अत एव वशिष्ठक कथन छैन्हि—जे कँखौरी, आँखिक पिपनी एवं शिखा त्यागि दाढ़ी, मूँछ, माथक केश एवं नख कटयवाक चाही । केश ककरा कटयवाक चाही अहि सन्दर्भ में आपस्तम्बक कथन अछि—पितरनिमित्तक तर्पणक अधिकारी वर्ग एवं अन्तिम संस्कारक अनुभवी लोकनिके नख केशकटयवाक चाही । अनुभव जे करथि से अनुभावी भेलाह अर्थात् अनुभव शाली लोकनि । सपिण्डादि लोकनिक मुइला उत्तर अनुभव होयत अछि, ताँय, सपिण्डादिलोकनिक मरणानुभवशालीलोकनिके केश नख कटयवाक चाही, एतवहि एकर तात्पर्य भेल । वाचस्पति मिश्र एकर व्याख्या करयने छथि—अनु पश्चात् भावि होनिहार अर्थात् छोट भाय तातपर्य ई की मात्र मृतात्माक कनिष्ठ भ्राते के केशादि वपन करयवाक चाही । मुदा ई व्याख्या व्यवहार विरोधी भेने स्वीकार्य नहि अछि । व्यवहारविरोधी भेने रत्नाकरक व्याख्या सेहो उपेक्षिते अछि। जाहिठाम व्यवहारक विरोध नहिं होयत अछि ताहिठाम रत्नाकरेक व्यवस्था मान्य होयत अछि । शुद्धिविवेक कर्त्ता अपन ग्रन्थ में व्यवहार के बलक्तर कहने छथि । मनुक कथन छैन्हि—

अशौचक दशदिन जकर नहि बीतल होय, एहन विदेशस्थ कोनो व्यक्तिक मृत्युक सूचना भेटय तऽ दशदिन में जे वांचल दिन होय ओतवहि दिन धरि अशौच होय । यदि अशौचक दशोदिन व्यतीत भऽ गेला उत्तर सूचना भेंटय तऽ त्रिरात्रक अशौच मानल जाय । यदि एक वर्ष व्यतीत भेलाक बाद सूचना भेट तऽ जल स्पर्श मात्रे शुद्धि होय ।

गौतम—'मुइलाक दश दिनक बाद सूचनाभेटने पक्षिणी शुद्धिहोय ।' देवल—छः मासक बाद यदि कोनो आत्मीय लोकनिक मृत्यु सूचना प्राप्त होयतऽ मात्र एक दिनक अशौच होय सेहो सन्यासी लोकनिकलेल नहि ।

अहि सबटा वचनक भाव ई अछि—अशौचक अभयन्तर मरणक सूचना भेटने अवशिष्ट जे दिन होय ओतवहि दिन में शुद्धि होय । अशौचक अन्तिम दिनक बाद एवं छः मासक अभ्यन्तर मुइलाक सूचना भेंटला उत्तर मात्र त्रिरात्रक अशौच होय । छः मासक बाद एवं नवममासक अभ्यन्तर मइलाक सूचना भेटेने पक्षिणी अशौच होय । तकरबाद एक वर्ष पर्यन्त मरणसूचना भेटने एक दिन रातिक अशौच होय । एक वर्ष बीत गेलाक बाद सूचना भेंटने मात्र स्नान एवं तर्पण धरि अशौच होय, ई सबटा वर्ण कलेल सम्पूर्ण अशौचक व्यवस्था कहल गेल अछि ।

असम्पूर्ण तीन दिन प्रभृतिक अशौच में, यदि अशौचक अभ्यन्तरे मुइलाक सूचना भेंटयतऽ अवशिष्ट अशौच काल समाप्त भेला उत्तर स्नान एवं तर्पण मात्रे सँ शुद्धि होय । जेना याज्ञवल्क्य—विदेश में रहला उत्तर अशौचक सूचना भेंटला उत्तर यदि किछु समय बँचल होय तऽ ओकरापूर्ण भेला पर जल तर्पणक बाद शुद्धि होय ।

त्रिरात्रादिक अशौच काल व्यतीत भऽगेला उत्तर शुद्धि विवेक में अशौचाभावे कहलगेल अछि । जन्माशौचक अभ्यन्तर यदि कोनो दोसरजन्माशौच सुनल जाय अवशिष्ट अशौच बीतलाक बाद शुद्धि भऽ जाय । ताहि अशौचक अभ्यन्तर आनक जन्म सुनने अलग अशौच नहि होय ।

'प्रसवक अशौच बीतल दिनक नहि होय' ई देवलक वचन अछि । साठि योजनक बाद (चारिकोस या आठमील एक योजन होयत अछि) आनदेश कहवै अछि । साठि योजनक अभ्यन्तरो भाषाभेद, पर्वत शृंखला, महानदी प्रभृतिक व्यवधान भेने देशान्तरे कहवैत अछि । अहि दुहू तरहक देशान्तर में मुइने सपिण्डीलोकनिके सद्य: शौचे होय । पैठीनसिक वचन अछि—देशान्तर में मृतक बन्धुलोकनिके सद्य: शौचे होय । अहिठाम रुद्रधरोपाध्यायक कथन छैन्हि—

पर्वतादिक व्यवधान नहियो रहला उत्तर शास्त्रीय साठि योजनक अन्तर रहित प्रयाग में मुइललोकक तिरहत में अवस्थित लोकनि देशान्तर में मुइल जकाँ व्यवहार करैत छथि । प्रामाणिक लोकनि—तीस योजनक अनन्तर काशी में मृतलोकनिक पर्वतादिसमुदायक व्यवधान नहियो रहला उत्तर मिथिलाञ्चलक लोकनि देशान्तर में मृतजकां व्यवहार करैत छथि । ई संक्षेप में कहलगेल अछि । एकरा सँ जाहिठाम एहन व्यवधान रहित आसन्नता अथवा तेहन समुदायक व्यवधान नहि होय अथवा ताहि देश में देशान्तरत्व भेने आनदेशक बोध होय ।

मृतकक तीन तरहक क्रिया होयत अछि—पूर्वा, मध्यमा एवं उत्तमा । दाह सँ लऽके अशौचक अन्तिम दिन पर्यन्तक कर्त्तव्य क्रिया पूर्वाक्रिया भेल एकादशाह सँ लऽके सपिण्डान्त क्रिया मध्यमाभेल, एकरबाद एकोद्दिष्ट प्रभृति उत्तरा क्रिया भेल । अहि में माता, पिता एवं सपिण्डादिकऽ पूर्वा क्रिया करवाक चाही । मध्यमाकलेल कोनो नियम नहि अछि । उत्तरा क्रिया नहिकरी । पुत्र-पत्नी, सोदर भांय, पिता, भातीज ई सब उत्तराक्रियाक सेहो अधिकरी अछि । पिता माता एवं वँशधर तथा जल तर्पणक समान अधिकारी अथवा अहि समूहक अन्तर्गत आवय वाला व्यक्ति राजा या धनहारी व्यक्ति ई क्रियाक अधिकारी होयत छथि ।

विमर्श:—पितृकर्मनिर्णये पण्डितत्रिलोकनाथमिश्रेण—'तत्र विगोत्रा: द्विविधा—आसन्नविगोत्रा अनासन्नविगोत्राश्चेति । तत्र यौनसम्बन्धो विद्यासम्बन्धश्च । हेतुस्तेष्वथा । सम्बन्धिनो बन्धवश्च कथ्यन्ते तदितरे च संसर्गिण: ।'

नैमित्तिकं क्षौरं निषिद्धकालेऽपि कर्त्तव्यम्—

'क्षौरं नैमित्तिको कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ।
पित्रादि मृति यात्रासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके ।। इति ।

तत्र निषिद्धकालस्तु— 'रव्या सौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि ।
श्राद्धाह: प्रतिपद्रिक्षा भद्रा क्षौरेषु वर्जित: ।।'

अथ श्राद्धाधिकारनिर्णयः

पूर्वाः क्रियास्तु कर्त्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः ।।' इति विष्णुपुराणात् । अथाधिकारिपौर्वापर्यक्रमः । तत्र प्रथमम् औरसः, तदभावे पुत्रिकापुत्रः (दौहित्रः) तयोरभावे क्षेत्रजादिदशपुत्रा मनूक्तक्रमेणाधिकारिणस्तथा हि—

मनुः— 'औरसः क्षेत्रजश्चैव पुत्रिकापुत्र एव च ।
कानीनश्च सहोढश्च गूढोत्पन्नस्तथैव च ।।
पौनर्भवोऽपविद्धश्च दत्तः क्रीतः कृतस्तथा ।
स्वयं चोपगतः पुत्रा द्वादशैते प्रकीर्त्तिताः ।।'

औरसेष्वपि बहुषु सत्सु सर्वपुत्रानुमतो ज्येष्ठ एव श्राद्धाधिकारी। तदाह मरीचिः— 'मृते पितरि पुत्रेण क्रिया कर्या प्रयत्नतः ।
बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्रवासिनः ।।
सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैकेन यत्कृतम् ।
द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ।। इति ।

अत्र सर्वेषामेवानुमतिर्द्रव्यार्पणद्वारा श्राद्धनिष्पादने प्रत्यवायपरिहारादिति फलसिद्धिः । सत्यप्यधिकारे न पृथगनुष्ठानं वचनाभावादित्यर्थः । एवं च यत्र देशान्तरादौ अनुमतिद्रव्यश्लेषयोरभावस्तत्र पृथगेव श्राद्धम्। अन्यथा प्रत्यवायपरिहारो न स्यादिति शुद्धिविवेकः । यत्तु—

'पृथक् नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ।'

इति लघुहारीतवचनं तत्सर्वेषामनुमतौ द्रव्यसंश्लेषे च पृथक्करणनिषेधकम् । बृहस्पतिः—

'अनेकधाकृताः पुत्राः ऋषिभिर्यैः पुरातनैः ।
न शक्यतेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदन्तनैः ।।'

इदन्तनैः कलियुगस्थैः । कलिधर्मप्रस्तावे पराशरः—

'औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमिकः सुतः ।'

कर्त्तव्य इति शेषः । अत्र क्षेत्रजपदमौरसविशेषणमिति पुत्रमीमांसायां नन्दपण्डितः। तथा च कलौ औरसदत्तककृत्रिमपुत्राः कर्त्तव्याः । पुत्रिकापुत्रोऽपि कर्त्तव्यः औरससमत्त्वात् । औरससमत्वमाह याज्ञवल्क्यः—'तत्समः पुत्रिकापुत्रः' इति तत्पदमौरसपरम् । एतच्चतुष्टयभिन्नाः पुत्रा न कर्त्तव्या द्विजैः कलौ । शूद्रैस्तु पौनर्भवा अपि पुत्राः कर्त्तव्याः । अत एव शूद्रस्य त्वनूढभार्याजातस्य पुत्रस्य पितृश्राद्धे पौनर्भवत्वादधिकारः इति । अनूढशूद्राजातस्य पुत्रस्य जनकशूद्रश्राद्धादावतितरामधिकारः यत्र च शूद्रस्य विवाहिता भार्या, तथाविधः

पुत्रश्च तत्रापि स पुत्र एवाधिकारीति शुद्धिविवेककारा लिखन्ति स्म । स पुत्र एवानूढभार्याजातः पुत्र एव इत्यर्थः । शूद्रस्यानूढभार्याऽविवाहितैव, अत एव 'शूद्रस्य द्वे भार्ये ऊढानूढे' इति स्मृतिसारेऽभिहितम् । पुत्रसामान्याभाव एवौरसभिन्नपुत्रकरणम्—

'अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक्तादृक्प्रयत्नतः ।
पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसङ्कीर्तनस्य च ॥' इति वचनात् ।

अपुत्रेण द्वादशविधपुत्ररहितेन इति रत्नाकरः । नन्वेवं तर्हि विद्यमान एव युधिष्ठिरपुत्रे पाण्डुर्भीमसेनादीन् क्षेत्रजान् कथमकरोदिति चेत्? ते देवकल्पा— स्तेषामाचारो न करणीयो न वा निन्दनीयः ।

'कृतानि यानि कर्माणि दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
नाचरेत्तानि धर्मात्मा श्रुत्वा चापि न कुत्सयेत् ॥' इति ।

पुत्रमीमांसाधृतवचनात् । कृत्रिमपुत्रानन्तरमौरस उत्पन्ने कनिष्ठोऽपि औरस एव ज्येष्ठः, स एवं श्राद्धाधिकारी ज्येष्ठत्वात् ।

'औरसे पुनरुत्पन्ने ज्यैष्ठ्यं तेषां निवर्तते ।'

इति वचनात् तेषां कृत्रिमादीनामित्यर्थः । अत्र क्रोडपत्रम्— 'अपुत्रेण सुतः कार्यः' इत्यस्य प्रागुक्तवचनस्य योग्यपुत्राभाववता सुतः कार्य इति व्याख्याभिप्रायेण श्राद्धकरणायोग्ये बालपुत्रादौ सत्त्वेऽपि कृत्रिमादयो भवन्ति इति रामेश्वरोपाध्यायचरणाः । अपुत्रेणेति विद्यमानपुत्राभाववतेति व्याख्याम-भिप्रेत्य पुनःगर्भस्थऽपिसन्देहे न कृत्रिमादिकरणमिति वंशधरोपाध्यायाः । व्यवहारस्तु तत्तन्मतानुयायिनां तत्तन्मतव्याख्यानुसारेणेति ।

हिन्दी—श्राद्धाधिकार का निर्णय— 'पूर्वाक्रिया तो सबके लिए करणीय है किन्तु, पुत्रादिकों के लिए ही उत्तरा क्रिया है ।' यह विष्णुपुराण के वचन से सिद्ध है । इसमें श्राद्ध के अधिकारियों के पहले का और बाद का सम्बन्ध क्रम निर्धारित किया गया है—

इनमें सर्वप्रथम औरस अर्थात् विवाहिता पत्नी से उत्पन्न पुत्र का ही श्राद्धाधिकार है । वैध पुत्र नहीं रहने पर नाती का (बेटी का बेटा) और इन दोनों के अभाव में क्षेत्रजादि अर्थात् विधिवत् नियुक्त पुरुष से उत्पन्न पुत्र (धर्मशास्त्र में जायज माने हुए १२ प्रकार के पुत्रों में से एक प्रभृति मनु के द्वारा बतलाये गये क्रम से अधिकारी है । उदाहरणार्थ—

औरस (वैध पुत्र), क्षेत्रज (अन्य पुरुषोत्पादित पुत्र), पुत्रिका पुत्र (नाती), कानीन (अविवाहित स्त्री से उत्पन्न पुत्र), सहोढः (परकीया से उत्पादित अवैध

पुत्र), गूढ़ोत्पन्न (यह उस स्त्री का गुप्त पुत्र है, जिसका पति परदेश गया है तथा वास्तविक पिता अज्ञात है), पौनर्भव (जिसने दूसरे पति से विवाह कर लिया है ऐसी विधवा से उत्पन्न पुत्र), अपविद्ध (माता या पिता या दोनों से त्यागा हुआ पुत्र जिसे किसी अपरिचित व्यक्ति ने गोद ले लिया हो, ऐसा पुत्र), दत्तः (किसी के द्वारा दिया गया पुत्र), क्रीतः (अपने नैसर्गिक माता पिता से मोल लिया गया पुत्र), कृतः (अन्यत्र उत्पादित पुत्र), एवं उपगत अर्थात् (अपने आप बेटा के रूप में समीप पहुंचा हुआ पुत्र) ये बारह प्रकार के पुत्र कहे गये हैं । औरस बेटे भी यदि अनेक हों तो उनमें सर्वसम्मति से बड़े बेटे ही श्राद्ध के अधिकारी है । इस पर मरीचि ने कहा है—पिता के मरने पर प्रयत्नपूर्वक पुत्र को श्राद्ध क्रिया करनी चाहिए । पिता के साथ इकट्ठे रहने वाले यदि अनेक पुत्र हों तो वे सभी एक मत होकर संयुक्त पारिवारिक धन से, बड़े बेटे जो कुछ करें, उसमें सहयोग करना चाहिए ।

यहाँ सबों की अनुमति से द्रव्यार्पण द्वारा श्राद्ध क्रिया के निष्पादन में आने वाली रुकावट के निराकरण से फलसिद्धि होती है । इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि श्राद्ध करने का सबको अधिकार है फिर भी अलग श्राद्धानुष्ठान का कोई वचन नहीं है । और इस तरह जहाँ जहाँ देशान्तर में सहमति एवं संयुक्तधन का अभाव है वहाँ अकेले भी श्राद्धादिक्रिया सम्पादन करना चाहिए । अन्यथा दोष का निराकरण नहीं होगा । ऐसा शुद्धि विवेक में कहा गया है । और जो—'अलग धन खर्च कर बेटों को अलग अलग श्राद्ध नहीं करना चाहिए । लघुहारीत का यह वचन है, जो सबों की सम्मति और सम्मिलित धन का यह पृथक्करण निषेध करता है । बृहस्पति का वचन है—

पुरातन ऋषियों के द्वारा जो पुत्रों ने पहले अनेक प्रकार के श्राद्ध किये हैं, वैसे श्राद्ध आधुनिक कलियुगी बेटों के वश की बात नहीं है । इदन्तनैः = कलियुगी लोगों के द्वारा । कलिधर्म के प्रस्ताव में, पराशर की उक्ति—'औरस, क्षेत्रज, दत्तक और कृत्रिम पुत्रों को श्राद्ध करना चाहिए ।' कर्त्तव्य शब्द यहां अवशिष्ट है ।

पुत्रमीमांसा में नन्दपण्डित का कहना है कि यहाँ 'क्षेत्रज' पद औरस का विशेषण है और इसी प्रकार कलियुग में औरस, दत्तक और कृत्रिम पुत्रों को श्राद्ध करना चाहिए । नाती को भी श्राद्ध करना चाहिए । क्योंकि नाती भी औरस पुत्र के समान ही है । औरस के समान है, इस पर याज्ञवल्क्य की उक्ति—'उसी के समान बेटी का बेटा होता है ।' यहाँ तत् (उस) पद औरस पद का बोधक है । इन चारों से भिन्न बेटे कलियुग में द्विजों को नहीं मानना चाहिए । शूद्रों के लिए पौनर्भव पुत्र भी मान्य है । अतएव शूद्रों को

अविवाहित स्त्री से उत्पन्न पुत्रों का पौनर्भवत्व होने के कारण श्राद्ध करने का अधिकार है । अविवाहित शूद्रा से उत्पन्न पुत्र का पिता शूद्र को श्राद्धादि में बहुत अधिक अधिकार है । जहाँ शूद्र की विवाहिता पत्नी एवं पूर्वोक्त प्रकार के पुत्र हो, वहाँ भी वह पुत्र ही अधिकारी है, ऐसा शुद्धि विवेककार ने लिखा है । वह पुत्र ही से तात्पर्य है अविवाहित स्त्री से उत्पन्न पुत्र । शूद्र की अनूढभार्या अविवाहिता ही होती है । शूद्रों को दो तरह की पत्नियाँ होती हैं । एक ऊढा (विवाहिता) ओर दूसरी अनूढा (अविवाहिता) । ऐसा स्मृतिसार में कहा गया है। सामान्य पुत्र के अभाव में ही औरस से भिन्न पुत्र बनाना चाहिए।

जिन्हें पुत्र नहीं है वैसे अपुत्रों को ही जैसे तैसे भी पुत्र प्रयत्नपूर्वक भी बनाना चाहिए । उन्हें पिण्डदान, तर्पण एवं नाम चलाने के लिए ऐसा करना चाहिए ।' ऐसा शास्त्रीय वचन है । रत्नाकर के मत में 'अपुत्रेण' से तात्पर्य है, पूर्वोक्त बारह प्रकार के पुत्रों से रहित होने पर जैसे तैसे पुत्र बनाना चाहिए । यदि ऐसी बातें हैं तो फिर महाराज युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा पुत्र के रहते हुए भी पाण्डु ने भीमादि क्षेत्रज पुत्रों को क्यों उत्पन्न किया? वे लगभग देवतुल्य हैं अत: उनके काम करने की रीति में न तो उत्सुकता प्रकट करनी चाहिए और न निन्दा ही ।

'देवता और मुनियों द्वारा किये गये कर्मो का धर्मात्मा को न तो आचरण करना चाहिए और न ही सुनकर निन्दा करनी चाहिए ।' पुत्रमीमांसा का यह वचन है । किसी बच्चे को गोद लेनें के बाद यदि औरस पुत्र जन्म ले तो फिर नाते में मां बाप का वह छोटा बेटा होगा, किन्तु छोटे होने के बावजूद वही ज्येष्ठ माना जायेगा । फिर ज्येष्ठ होने के नाते वही औरस पुत्र श्राद्ध करने का अधिकारी होगा ।' औरस पुत्र जन्म लेने के बाद कृत्रिम पुत्रों का ज्येष्ठत्व स्वत: नष्ट हो जाता है । इस वचन में 'तेषां' का अर्थ हुआ कृत्रिमादिको का । यहाँ पूर्ववर्त्ती विचार का प्रान्त लेख यह है कि 'जो अपुत्र है उसे कृत्रिमादि पुत्र बनाना चाहिए ।'

पूर्वोक्त इस वचन का 'योग्य पुत्र के अभाव में कृत्रिमादि पुत्र बनायें' इस व्याख्या को स्वीकार करते हुए रामेश्वरोपाध्याय ने कहा है कि औरस पुत्र यदि अतिबाल होने के कारण श्राद्ध करने योग्य नहीं हो तो कृत्रिमादि पुत्र श्राद्ध करने योग्य होते हैं । 'अपुत्रेण' का तात्पर्य विद्यमान पुत्र के अभाव वाले । इस व्याख्या को ध्यान में रखकर गर्भस्थ बेटे होने के सन्देह होने पर भी कृत्रिमादि पुत्र की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए । यह विचार वंशधरोपाध्याय का है । व्यवहार में भिन्न भिन्न मतों के अनुयायी अपने मत की व्याख्यानुसार ही काम करते हैं ।

मैथिली—अव श्राद्धकरने के अधिकार का निर्णय—'पूर्वाक्रिया तऽ सभकलेल अछि किन्तु उत्तरा क्रिया पुत्रादिकेकलेल अछि ।' विष्णुपुराण । ताहिठाम अधिकारी वर्गक पूर्वापर भावक क्रम ई अछि—ताहि में औरस पुत्रक प्रथम स्थान अछि । औरस पुत्रक अभाव में दौहित्रक स्थान अछि । ई दुहूतरहक अधिकारीक अभाव में क्षेत्रज आदि दशपुत्रक मनुक द्वारा प्रतिपादिक क्रम में अधिकार होयत अछि—उदाहरणार्थ—औरस, क्षेत्रज, दौहित्र, कानीन, सहोढ, शूद्रोत्पन्न, पौनर्भव, अपविद्ध, दत्त, क्रीत, कृत एवं स्वयं आगत ई बारह तरहक पुत्र के मनु श्राद्धाधिकारी माने छथि । औरसों में यदि बहुत पुत्रहोय तऽ सभक सम्मति सँ जेठे पुत्र श्राद्धक अधिकारी होयत छथि । अहि सन्दर्भ में मरीचिक कथन अछि—पिताक मुइला उत्तर पुत्र के प्रयासपूर्वक श्राद्धादि क्रिया करवाक चाही । यदि एक सँ अधिक पुत्र पिताक संग एकत्र रहैत होय, तऽ सबगोटे एकमत ज्येष्ठ भ्राता जे किछु करथि ओ अविभाजित सम्पत्ति सँ सब भांय मिलिकय करी । इति ।

अहिठाम सबभायक सहमति एवं धनक सहयोग सँ श्राद्धनिष्पादन में प्रत्यवायक जे परिहार भेल सेह सभकलेल समान फल सिद्धि भेट । ताँय श्राद्धकरवाक अधिकार रहलो उत्तर अलग अलग श्राद्धानुष्ठानक कतौ वचन नहि छैक । अहितरहें जतय देशान्तरादि में सहमति एवं द्रव्यार्पणक अभाव होय तऽ एहन स्थिति में तऽ पृथक् श्राद्ध करवेक चाही । अन्यथा द्रव्यवायक परिहार नहि होय—ई शुद्धिविवेक में कहलगेल अछि । आओरजे—'अलग द्रव्य सँ भिन्न भिन्न श्राद्धपुत्रलोकनिके नहिं करवाक चाही ।' ई लघुहारीत वचन अछि से सबक अनुमति एवं द्रव्य संश्लेषण सँ पृथक् श्राद्ध करवाक निषेधक अछि । बृहस्पतिक वचन अछि—'प्राचीन काल में ऋषिमुनिक द्वारा पुत्रलोकनि अनेक तरहक श्राद्ध कयने छथि से आधुनिक कलियुगी लोकक शक्य नहि अछि ।' इदन्तनैः = कलियुगकलोक द्वारा । कलिधर्मक प्रस्ताव में पराशरक वचन अछि—

'औरस, क्षेत्रज, दत्तक एवं कृत्रिम बेटाक श्राद्ध करवाक अधिकार अछि ।' अहिठाम कर्त्तव्य ई पदशेष अछि । अहिठाम क्षेत्रज पद औरसक विशेषण अछि । पुत्रमीमांसा में नन्दपण्डितक ई मत अछि । आओर अहिना कलियुग में औरस दत्तक एवं कृत्रिम पुत्र के श्राद्ध करवाक चाही । दौहित्र औरस पुत्रवत् होयत अछि, ताय ओकरो श्राद्ध करवाक अधिकार अछि । औरस पुत्र तुल्य दौहित्र होयत अछि एकरा पर याज्ञवल्क्यक उक्ति अछि—'ओकरा समान बेटीक बेटा' अहिठाम 'तत्' पद औरस परक अछि । कलियुग में द्विजाजिक श्राद्ध पूर्वकथित चारि प्रकारक पुत्रक अतिरिक्त आन पुत्र के नहि करवाक चाही । शूद्रक श्राद्ध पोनर्भव पुत्रों के करवाक अधिकार अछि । अतएव शूद्रकलेल अविवाहित स्त्री सँ उत्पन्न पुत्र अर्थात् पौनर्भवोके श्राद्धक अधिकार कहलगेल अछ । अविवाहित शूद्रा सँ उत्पन्न पुत्र के अपन जनक शूद्र के श्राद्धादि में अतिशय अधिकार होयत अछि ।

जाहिठाम शूद्रक विवाहिता पत्नी होय, एवं तथा विधपुत्र हो तऽ ताहूठाम सेह पुत्रश्राद्धक अधिकारी होय, ई शुद्धिविवेककार लिखने छथि । सेह पुत्र अनूढाभार्यासि उत्पन्न पुत्र ई अर्थ भेल । शूद्रकलेल अनूढाभार्या अविवाहिते भेल । ताँय शूद्र के दुइ तरहक पत्नी होयत अछि । ऊढा एवं अनूढा । ई स्मृतिसारक वचन अछि । सामान्य पुत्रक अभावे में औरस पुत्र सँ भिन्न पुत्र के श्राद्ध करवाक अधिकार अछि । 'पिण्डदान, तर्पण एवं नाम चलयवाकलेल अपुत्र व्यक्ति के जैहन तेहन पुत्र प्रयासपूर्वक बनयवाक चाही' एहन वचन अछि । पूर्वोक्त बारह प्रकारक पुत्रक जेकरा अभाव होय सेह अपुत्र कहवैत अछि । ई रत्नाकरक विचार छैन्हि । यदि एहन अछि तऽ युधिष्ठर सन पुत्र के रहितो पाण्डु भीमादिक क्षेत्रज पुत्रोत्पादन कियेक कयलन्हि? एकर उत्तर ई अछि जे ओ सब देवतुल्य पुरुष छलाह ताँय हुनक आचारक नहि तऽ आदर करवाक चाही आओर नहि निन्दा ।

'देवता एवं मुनिगण जे कर्म कयने छथि धर्मात्मा लोकनि न तऽ ओ सभकार्य करथु और सुनलाक बाद ओकर निन्दोनहि करथु ।' ई वचन पुत्रमीमांसा सँ उद्धृत अछि । कृत्रिम पुत्र लेलाक बाद यदि औरस पुत्रक उत्पत्ति होय, तऽ कनिष्ठो भेला उत्तर औरसे पुत्र के श्राद्ध करवाक अधिकार अछि । कियेक तऽ औरस पुत्र में हुनके में ज्येष्ठत्व छैन्हि ।

'औरस पुत्रक पुनः उत्पत्ति भेला पर कृत्रिमादि पुत्रक ज्येष्ठत्व स्वतः समाप्त भऽ जायत छैन्हि । अहि वचन सँ तेषां पद कृत्रिमादिक बोधक अछि ।'

अहि विषय पर आवप्रान्तवर्त्ती लेख ई अछि—'अपुत्रेण सुतः कार्यः' पूर्वोक्त अहिवचनक तात्पर्य ई अछि योग्यपुत्रक अभाव में अन्य पुत्रक व्यवस्था करी' ई व्याख्या के ध्यान में राखि श्राद्ध करवा में अयोग्य अत्यन्त बाल पुत्रादि रहलो उत्तर कृत्रिमादि पुत्रके श्राद्धाधिकार अछि । ई रामेश्वरोपाध्यायक मत भेल दोसर व्याख्या एक ई भेल 'अपुत्रेण' अर्थात् विद्यमान पुत्रक जकरा अभाव होय' ई व्याख्या के ध्यान में राखि पुनः गर्भस्थ शिशुक सन्देहो भेला उत्तर कृत्रिमादि पुत्रक व्यवस्था नहि करवाक चाही ई वंशधरोपाध्यायक मत अछि । व्यवहार ई अछि जे, जे व्यक्ति जाहिम तक अनुयायी छथि से ताहि मतानुसारकार्य करथि ।

विमर्शः—मनुना प्रोक्तमौरसपुत्रलक्षणम्—

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयद्धि यम् ।
तमौरसं विजानीयात् पुत्रं प्रथमकल्पितम् ।।'

कन्यादान समय एव 'अस्यां यः पुत्रो जायते समे पुत्रः स्यात्' इति व्यवस्थाप्रदत्त कन्यकापुत्रमभिप्रेत्य वशिष्ठः—

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मय स्यात् स्वधाकरम् ।।

देवलोऽप्यत्र— तत्पितुः पुत्रिकापुत्रो दायादः सोऽथवा भवेत् ।
पितुर्मातामहस्यापि निरपत्यस्य पुत्रवत् ॥'

पितृकर्मनिर्णये धृत कानीनपुत्रलक्षणम्—

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदन्नाम्ना बोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥

तत्रैव सहोढः पुत्रलक्षणम्— या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ।
बोढुः सगर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥

मनुना प्रोक्तमिदं गूढोत्पन्नपुत्रलक्षणम्—

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत् कस्य सः ।
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥

पौनर्भवपुत्रलक्षणम्—

क्लीवं विहाय पतितं या पुनर्लभते पतिम् ।
तस्यां पौनर्भवो जातो व्यक्तमुत्पादकस्य सः ॥ इति कात्यायनः ।

तत्रैव—या पत्या वा परित्यक्ता विधवाया स्वेच्छया ।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ मनुः ।

तथा च विष्णुः— मातु पत्या परित्यक्ता विधवा स्वेच्छयाथवा ।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥'

मनुना प्रोक्तमपविद्धपुत्रलक्षणम्—

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।
यं पुत्रं परिगृह्णीयात् अपविद्धः स उच्यते ॥

दत्तकपुत्रलक्षणं यथा—मातापिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीति संयुक्तं स ज्ञेयो दत्तकः सुतः ॥इति मनुः ।
'दद्यान्माता पिता वायं सपुत्रो दत्तको भवेत् ॥' इति याज्ञवल्क्यः।

क्रीतपुत्रलक्षणम्— क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रो यमन्तिकात् ।
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥ इति मनुः ।

कृत्रिमपुत्रलक्षणं तद्यथा मनुः— सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ।
पुत्रं पुत्रं गुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥'

अथ पुत्रलक्षणमाह मनुः—

'संस्कृतायां तु भार्यायां स्वयमुत्पादयेत्तु यम् ।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥' इति ।

तथा च स्वपाणिगृहीताया स्वोत्पादितः पुत्र औरस इत्यर्थः ।

पुत्रिकापुत्रमाह वशिष्ठः—

'अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधारकम् ।।'

स्वधारकं श्राद्धकरमिस्यर्थः । तथा च कन्यादानकालेऽस्यां यः पुत्रो भविष्यति स मम पुत्रो भविष्यति इति व्यवस्थानन्तरं तस्यां यः पुत्रो भवति स पितृमातामहयोर्द्वयोरपि श्राद्धाधिकारी । तदाह—

देवलः— 'तत्तुल्यः पुत्रिकापुत्रो दायादः सोऽथवा भवेत् ।
पितुर्मातामहस्यापि निरपत्यस्य पुत्रवत् ।।' इति ।

अथ पौनर्भवमाह । विष्णुः—

या तु पित्रा परित्यक्ता विधवा स्वेच्छयाथ वा ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ।।' इति ।

पुनर्भूत्वा पुनः पुरुषान्तरेण सवर्णेनात्मानं विधाय यं पुत्रमुत्पादयति स पौनर्भवः । कात्यायनः—

'क्लीबं विहाय पतितं या पुनर्लभते पतिम् ।
तस्यां पौनर्भवो जातो व्यक्तमुत्पादकस्य सः ।।' इति ।

अथ दत्तकपुत्रानाह मनुः—

'माता पिता वा दद्यात्तं यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशः प्रीतिसंयुक्तो स ज्ञेयो दत्तकः सुतः ।।' इति ।

अद्भिः जलैः । जलपदं तिलकुशादीनामप्युपलक्षकम् । आपदि पुत्रासत्त्वे, सदृशं समानजातीयम् । प्रीतिसंयुक्तावित्यनेन भयलोभादिना कृतो न दत्तकः, किन्तु प्रीत्या कृतो दत्तक इति पर्यवसितम् । तत्रापि सति पत्यौ तदाज्ञया असति पत्यौ तदाज्ञाविरहेऽपि स्त्रिया दानाधिकारः । 'न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ।' इति वसिष्ठवचनात् । 'असति पत्यौ अनुज्ञां विनापि' इति वाचस्पतिलिखनाच्च । एवं शूद्रस्यापि दानेऽधिकारो न ग्रहणे । 'स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः' इति वचनात् । स्त्रीशूद्रग्रहणयोर्निषेधस्तु पुत्रग्रहणाङ्गभूतवैदिकमन्त्रध्यव्याहृतिहोमे तयोरनधिकारात् एकपुत्रवतां पुत्रदानेऽनधिकारः । नन्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि सन्तानाय पूर्वेषाम्' इति वासिष्ठात् ।

हिन्दी—अब पुत्रों का लक्षण मनु ने कहा है—'यथाविधि अपनी परिणीता पत्नी से स्वयं जिसे जन्म दिया उसे ही व्यवस्थित प्रमुख औरस पुत्र जानना चाहिए । इति ।'

और इसी प्रकार अपनी विवाहिता पत्नी से स्वोत्पादित पुत्र को औरस कहते है । यही इसका अर्थ हुआ । पुत्रिका पुत्र के सम्बन्ध में वशिष्ठ ने कहा है— 'बिना भाई की अलंकृता यह कन्या तुम्हें दूँगा। इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा श्राद्ध करेगा ।'

स्वाधाकरम् का अर्थ है श्राद्ध करनेवाला । और इसी प्रकार कन्यादान के समय ही यह व्यवस्था करे— 'इस कन्या से जो पुत्र होगा वह मेरा पुत्र होगा ।' इस व्यवस्था के बाद कनया को जो पुत्र होगा, वह पिता और मातामह दोनों का श्राद्धाधिकारी होगा । इस पर देवल का कथन है—बेटे की तरह ही बेटी का बेटा अर्थात् नाती भी होता है अथवा वह दायाद अर्थात् उत्तराधिकारी भी होता है । अपने पिता एवं निपूत मातामह का भी वह बेटे की तरह ही होता है ।

पौनर्भव पुत्र के सन्दर्भ में विष्णुपुराण में कहा गया है—जो नारी पति से परित्यक्त हो अथवा विधवा हो, वह अपनी इच्छा से सवर्ण पुरुषान्तर से पुत्रोत्पादन करे तो वह पौनर्भव पुत्र कहलाता है । फिर से होकर पुन: सवर्ण पुरुषान्तर से पुत्रोत्पादन करे वह पौनर्भव पुत्र कहलाता है ।

कात्यायन—हिजड़ा, नपुंसक एवं दुश्चरित्र पति को छोड़कर फिर दूसरा पति जो नारी करे, उस पति से उत्पन्न पुत्र अपने व्यक्त पिता का पौनर्भव पुत्र कहलाता है ।

अब दत्तक पुत्रों के बारे में मनु ने कहा है—माता पिता दोनों ही सहमत होकर किसी पुत्रहीन सवर्ण व्यक्ति को स्नेहपूर्वक अपना बेटा दे तो वह बेटा दत्तक पुत्र कहलाता है ।

अद्भिः अर्थात् जल से । यहां जल पद तिंल कुशादि का भी उपलक्षक है । आपदि का अर्थ तो विपत्ति में होता है किन्तु यहाँ इसका अर्थ पुत्र के अभाव में है । सदृशाम् = समान जाति के । प्रीतिसंयुक्तौ का अर्थ है डर या किसी प्रकार के प्रलोभन से मुक्त होकर स्नेहपूर्वक । फिर भी पति के रहने पर उनकी आज्ञा से, पति के नहीं रहने पर उनकी आज्ञा के बिना भी स्त्रियों को दान का अधिकार है । 'स्त्री को पति की आज्ञा के बिना न तो पुत्र ग्रहण करना चाहिए और न देना ही चाहिए ।' यह वशिष्ठ का वचन है । 'पतिं के नहीं रहने पर आज्ञा के विना भी स्त्रियों को पुत्रों का आदान प्रदान करना चाहिए ।' यह वाचस्पति मिश्र के **लेख** का अभिमत है । इस तरह शूद्रों को भी देने-लेने का अधिकार नहीं है ।' **'स्त्री** और शूद्र दोनों ही समान धर्मी है ।' इस वचन के बल से । स्त्री और शूद्र के लिए पुत्रग्रहण का निषेध होने के कारण पुत्र ग्रहण

के अङ्गभूत वैदिक मन्त्र साध्य व्याहृति होम में उन दोनों का अधिकार नहीं होने के कारण एक ही बेटा वाले को पुत्र दान का अधिकार नहीं है । 'न कि एक पुत्र को देने या लेने में क्योंकि यह तो सन्तान के लिए पहले का ही है । यह वशिष्ठ का वचन है ।

मैथिली—अहिठाम पुत्रक लक्षण मनु कहने छथि—'विधिवत् विवाहिता पत्नी सँ स्वयं उत्पादित मुख्य तया व्यवस्थित् पुत्र औरसपुत्र भेल ।'

एवं प्रकारेण अपन विवाहिता पत्नी सँ अपने द्वारा उत्पादित पुत्र औरस कहवैत अछि ई अहि श्लोकक अर्थ भेल ।

बेटीक बेटा अर्थात् दौहित्रक सन्दर्भ में वशिष्ठक उक्ति—'बिना मायक ई अलङ्कृता कन्या हम अहाँकलेल दैत छी । हिनका सँ जे संवान उत्पन्न है ताह ओ हमरो श्राद्धकर्त्ता हैवाह ।' इति । स्वधाकरम् अर्थात् श्राद्धकर्त्ता । अहितरहे कन्यादानक समय जे संकल्प करैत छथि—अहि कन्या सँ जे पुत्र हैवाह ओ हमरो पुत्र हैवाह' । ई व्यवस्थाक अनन्तर ताहि कन्या सँ जे पुत्र हैताह से अपनपिता एवं मातामह दुहूमोलेक श्राद्धाधिकारी हैवाह । अहि पर देवलक वचन अछि—

स्वोत्पादित पुत्रक तुल्ये दौहित्र होयत छथि अथवा उत्तराधिकारी होयत छथि । पिताक एवं पुत्र विहीन मातामहकलेल ओ पुत्रवत् होयत छथि । इति ।

पौनर्भव पुत्रकलक्षण विष्णुपुराण में—जे स्त्री कोनो कारणवश पतिक द्वारा परित्यक्ता छथि अथवा विधवा छथि जो यदि स्वेच्छा सँ आन पुरुष सँ पुत्रोत्पादन करैत छथि तऽ ओ पुत्र पौनर्भव कहवैत छथि । इति ।

पुनर्भूत्वा पुनः भय सवर्ण पुरुषान्तर सँ जे महिला पुत्रोत्पादन करैत छथि ओ पुत्र पौनर्भव कहवैत छथि । अहि पर कात्यायनक वचन अछि—नपुंसक एवं भ्रष्ट पति के त्यागि जे स्त्री दोसर पति करैत छथि । हुनका सँ जे पुत्र उत्पन्न होयत छथि ओ अपन व्यक्त पिताक पौनर्भव पुत्र कहवैत छथि ।

दत्तक पुत्रक लक्षण मनु कहने छथि—पुत्रहीनव्यक्ति के पुत्रवान् पिता—माता सहमतभय स्वजाति के जलले प्रीतिपूर्वक यदि अपन पुत्र दैत छथि तऽ ओ पुत्र दत्तक पुत्र कहवैत छथि । इति ।

अद्भिः = जलक साथ । अहिठाम जल पद तिल कुशादिक उपलक्षक अछि । आपदिक अर्थ पुत्राभाव में सदृशम् अर्थात् समान जाति, प्रीतिसंयुक्तौक अर्थ भेल भय एवं प्रलोभनादि सँ रहित भय किन्तु, प्रीतिपूर्वक देल पुत्र दत्तक भेल । तथापि पतिक रहला उत्तर हुनक आज्ञा से तथा पतिक नहि रहने बिना हुनक अज्ञाक सेहो नारी लोकनिके दानक अधिकार छैन्हि । यद्यपि वशिष्ठक वचन छैन्हि—'पतिक अनुमति बिना प्राप्त कयने स्त्री लोकनिके पुत्रलेवा या देवाक अधिकार नहि छैन्हि ।' तथापि वाचस्पति मिश्रक लेखानुसार 'पतिक अनुज्ञा

प्राप्त कयलो बिना' ई कार्य करवाक स्त्री लोकनिके अधिकार होयत छैन्हि । अहितरहे शूद्र लोकनिके सेहो पुत्र लेव देवाऽक अधिकार नहि होयत छैन्हि । शास्त्रीय वचन अछि—

'स्त्री एवं शूद्र समानधर्मी होयत छथि ।' स्त्री एवं शूद्रकलेल पुत्रग्रहणक निषेध भेने, पुत्रग्रहणक अङ्गभूत वैदिक मन्त्रसाध्य व्याहृतिहोमो में ओ दुहूक अधिकार नहि भेने जिनका एकेटा पुत्र छैन्हि हुनको पुत्रदानक अधिकार नहि छैन्हि । वशिष्ठक वचन अछि—'जाहि व्यक्ति के एकेटा पुत्र छन्हि, हुनका नत ककरो अपन पुत्र देवाक अधिकार छैन्हि और नहि लेवेक अधिकर छैन्हि, ओ पुत्र तऽ सन्तानकलेल पूर्व कथिते छथि ।

अथ पुत्रग्रहणप्रकारः—प्रथमं नित्यकर्म विधाय अग्निस्थापनं कृत्वाऽ-धारावाज्यभागौ हुत्वा महाव्याहृतिहोमं पञ्चवारणहोमं सर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्य-स्विष्टकृद्धोमं च कृत्वा व्याहृतिहोमं कुर्यात् । होमानन्तरं पूर्णाहुतिं दत्त्वा पुत्रं गृह्णीयात् । दत्तकस्य जनकगात्रं तत्पिण्डदातृत्वं वा तद्धनहारित्वं न तिष्ठति ।

तथाहि मनुः— 'ऋक्थगोत्रे जनयितुर्न हरेत्कृत्रिमः सुतः ।
ऋक्थगोत्रानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधाम् ॥' इति ।

किन्तु येन गृहीतः तस्यैव गोत्रं पिण्डदत्वं धनहारित्वं च दत्तकस्य ।

हिन्दी—इस स्थान पर पुत्रग्रहण करने का ढंग—पहले नित्यकर्म कर अग्नि की स्थापना करे फिर यज्ञाग्नि में घी डालकर पिघले घी से हवन कर महाव्याहृति (अत्यन्त गूढ़ शब्द अर्थात् भूर्भुवः स्वः) होमकरे, फिर पञ्चवारुण होम करे, पुनः सर्वप्रायश्चित्त एवं स्विष्टकृत् होम कर पुनः व्याहृति होम करे । होम के बाद पूर्णाहुति देकर पुत्रग्रहण करे । इसके बाद उस दत्तक पुत्र को जन्मादाता पिता के गोत्र, उनके पितरों के निमित्त पिण्ड दान का हक तथा उनके उत्तराधिकार का हक नहीं रह जाता है । उदाहरण स्वरूप मनु का वचन है—कृत्रिम पुत्र जन्मदाता पिता का धनदौलत एवं गोत्र का हकदार नहीं होता । उत्तराधिकार एवं गोत्र का अनुगमन करने वाला श्राद्ध के अवसर पर पिण्डदान का हकदार नहीं होता । किन्तु, जिसने पुत्रग्रहण किया उसी का गोत्र, पिण्डदान का हक एवं उसके उत्तराधिकार का हक बनता है ।

मैथिली—पुत्र ग्रहण के नाकरी एकर रीति आव कहव—

सर्वप्रथम नित्यकर्म कय अग्निक स्थापना करी पुनः यज्ञाग्नि में पिघलल घी सँ हवन कय महाव्याहृतिहोम, पञ्चवारुणहोम, सर्वप्रायश्चित्त प्राजापत्य एवं स्विष्टकृत् होम कय पुनः व्याहृति होम करी । होमक बाद पूर्णाहुति दय पुत्रग्रहण करवाक चाही ।

दत्तकपुत्र के ओकर जन्मदाता पिताक गोत्र, तन्निमित्तक पिण्डदानक अधिकार एवं उत्तराधिकार नहिं रहि जायत छैन्हि । उदाहरणस्वरूप मनुक कथन—कृत्रिम पुत्र जन्मदाता पिताक उत्तराधिकार एवं गोत्राधिकारी नहिं होयत छथि । गोत्राधिकारस्थ धनाधिकारी पुत्र श्राद्धक अवसर पर पिण्डदानक अधिकारी नहि होयत छथि । किन्तु, जे पुत्र ग्रहण कयने छथि हुनके गोत्र, उत्तराधिकार एवं पिण्डदानक ओ अधिकारी होयत छथि ।

अथ कृत्रिमपुत्रमाह मनुः—

'सदृशं यं प्रकुर्वीत गुणदोषविचक्षणम् ।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स ज्ञेयः कृत्रिमः सुतः ॥'

सदृशः समानवर्णः । कृत्रिमः सवर्ण इति विवादचन्द्रात् ।

कृत्रिमस्तु मत्पुत्रत्वकरस्य पिण्डप्रदः निजपित्रादीनां च पिण्डप्रदः इति व्यामुख्यायनः । तद्विधिस्तु पुत्रकर्त्ता त्वं मम पुत्रो भवेति वदेत् । तव पुत्रीभूतोऽस्मीति कृतः वदेत् । वस्तुदानमत्राचारप्राप्तं न त्वावश्यकं, पुत्रकरणे उभयोरनुमतिरेव प्रयोजिका, तेन वाक्यविशेषस्य न पुरस्कार इति रुद्रधरः भ्रातृणां मध्ये ज्येष्ठः सोदरभ्रातृरहितोऽपि कृत्रिमो भवत्येव अपवादकाभावात् । पुत्राभावे पौत्रस्तु तदभावे प्रपौत्रोऽधिकारी । तथा हि विष्णुः—

'पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वाभ्रातृसन्ततिः ।' इति ।

प्रपौत्राभावे पत्नी, तदभावे सहोदरः । तथाहि शंखः—

'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे सहोदरः ।'

इति पुत्रपदमत्र पौत्रप्रपौत्रयोरप्युपलक्षकमिति स्मृतिसमुच्चये हरिनाथोपाध्यायाः । अतो न विष्णुक्रमविरोधः । सहोदरेष्वपि प्रथमं कनिष्ठः, कनिष्ठाभावे ज्येष्ठः ।

'न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ।' इति कनिष्ठभ्रातृसद्भावे ज्येष्ठस्यानधिकारबोधकच्छन्दोगपरिशिष्टवचनात् । तत्राप्यव्यवहितावेव ज्येष्ठकनिष्ठौ 'प्रथमत्यागे मानाभावात्' इति न्यायात् । सोदराभावे पिता । तत्र प्रचेताः—'पुत्रो भ्राता पिता वापि' इति पुत्रपदमत्र पत्नीपर्यन्तोपलक्षकमतो न विष्णुपुराणादिविरोधः । पितुरभावे सोदरभ्रातृपुत्रः ।

'पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृसन्ततिः ।'

इति प्रागुक्त विष्णुपुराणात् भ्रातृसन्ततिः । सोदरभ्रातृपुत्रः, तदभावे स्नुषा इति वाचस्पतिमिश्राः, तदभावे सपिण्डा अधिकारिणः, 'पुत्राभावे सपिण्डाः' इति गौतमवचनात् । पुत्रपदमत्र स्नुषापर्यन्तोपलक्षकम् । सपिण्डेष्वपि सन्निहितज्येष्ठसपिण्डोऽधिकारी सपिण्डाभावे दुहिताधिकारिणी ।

हिन्दी—अब मनु ने कृत्रिम पुत्र के सन्दर्भ में कहा है—'गुण और दोषों के स्पष्टदर्शी व्यक्ति पुत्र के सारे गुणों से युक्त अपनी ही जाति के जिसे जिसे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करते हैं, उसे ही कृत्रिम पुत्र जानना चाहिए ।' सदृश: अर्थात् समान वर्ण वाले, कृत्रिम: अर्थात् सजातीय होना चाहिए, यह विवादचन्द्र से । मेरा पुत्र बनाने वाले का तथा अपने पित्रादिकों का यह कृत्रिम पुत्र पिण्ड दाता बने । व्यामुख्यायन के अनुसार कृत्रिम पुत्र बनाने की विधि—पुत्र बनाने वाला बोले—'तुम मेरा पुत्र बनो ।'

पुत्र बनने वाला कहे—'मैं आपका पुत्र बनाना स्वीकार करता हूँ ।' यहाँ वस्तु आदि का दान आचार प्राप्त है न कि आवश्यक । पुत्र बनाने में बाप-बेटे की अनुमति ही इसकी प्रयोजिका है । इसी से इसमें किसी विशेष वाक्य का कोई अनुरोध नहीं है । यह विचार पण्डित रुद्रधरजी का है । भाईयों के बीच सबसे बड़ा भाई सहोदर भाई के बिना भी कृत्रिम तो होता ही है । क्योंकि, इसमें किसी तरह के अपवाद का अभाव है । बेटे के अभाव में पोते का और पोते का भी यदि अभाव हो तो पर पोते का श्राद्धाधिकार होता है ।

उदाहरणार्थ विष्णुपुराण का यह वचन है—'बेटे, पोते, परपोते अथवा उसी की तरह भाईयों की सन्तान को भी श्राद्ध करने का अधिकार है ।' परपोते के अभाव में पत्नी का और पत्नी के अभाव में सहोदरों का हक बनता है । इसी तरह शङ्ख का वचन है—'बेटों के अभाव में पत्नी और पत्नी के अभाव में सहोदरों का श्राद्धाधिकार होता है ।' इस कथ्य में पुत्र पद पोते, परपोते पद का भी उपलक्षक है । यह कथन हरिहरनाथ के 'स्मृति समुच्चय' में है । अत: इससे विष्णुपुराण के क्रम का भी विरोध नहीं होता है । सहोदर भाईयों में भी पहला हक सबसे छोटे भाई का है । अगर कोई छोटा भाई नहीं हो तो बड़े का अधिकार होता है ।

'पुत्र को पिता एवं अनुज को अग्रज श्राद्ध न दे ।' छोटे भाई के रहते बड़े भाई का अनधिकार सूचक यह वचन 'छन्दोग परिष्ठ' का है । वहाँ भी व्यवधान रहित अर्थात् साथ साथ मिले हुए बड़े—छोटे में, बड़े के त्याग में माना भाव होता है इस न्याय से । सहोदर भाई के अभाव में पिता—'पुत्र, भ्राता एवं पिता भी' प्रचेता के इस वचन से यहाँ पुत्र पद पत्नी पर्यन्त का उपलक्षक है । इसलिए इस वचन से भी विष्णुपुराणादिका भी विरोध नहीं होता है । पिता के अभाव में ही सहोदर भाई के बेटे का हक बनता है । 'बेटे, पोते, परपोते अथवा उन्हीं की तरह भाईयों की सन्तान ।' विष्णुपुराण के पूर्वोक्त वचन भाई की सन्तान का अधिकार होता है । वाचस्पति मिश्र का कहना है

कि सहोदर भाई का बेटा होना चाहिए । इसका भी यदि अभाव हो तो पुत्र बधू का अधिकार होता है । इन सबों के अभाव में एक समान पितरों को पिण्ड देने वाले में से किसी का अधिकार होता है । गौतम का कथन है 'बेटे के अभाव में समान पिण्ड दाताओं का अधिकार है । यहाँ पुत्र पद पुत्रवधू पर्यन्त का उपलक्षक है । सपिण्डों के बीच भी निकटवर्त्ती ज्येष्ठ सपिण्ड ही अधिकारी होता है । सपिण्डों के अभाव में बेटी अधिकारिणी होती है ।

मैथिली—आव कृत्रिम पुत्रक लक्षण मनु कहने छथि—गुण-दोषक स्पष्टदर्शी व्यक्ति पुत्रकक सबगुण सँ सम्पन्न सजातीय बहुके जे पुत्र बनावैत छथि से बहु कृत्रिम पुत्र कहवैत छथि । इति । सदृशः अर्थात् सजातीय, विवाद-चन्द्रानुसार सवर्णे कृत्रिम पुत्र होथि । व्यामुख्यायनक अनुसार—हम अहाँक कृत्रिम पुत्र बनौने छी, अहाँ हमर एवं पित्रादिक पिण्डप्रद बनू । इति ।

कृत्रिम पुत्र बनयवाक रीति—पुत्रकर्त्ता कहथु—'अहाँ हमर पुत्र भेल हु ।' कृत्रिम पुत्र उत्तर दैथि—'हम अहाँक पुत्रत्व स्वीकार करैत छी ।' वस्तुप्रभृतिक दान अहिठाम आचार परक अछि न कि आवश्यक । कृत्रिमपुत्र बनयवा में पिता-पुत्र दुहूक अनुमति मात्रे निमित्तक कारण अछि । ताँय अहिठाम विशेष वाक्यक कोनो तरहे अनुरोध नहि । ई रुद्रधरक विचार भेलैन्हि । भांय सभक मध्य जेठ सोदर भायक अभावो में कृत्रिम होयते अछि, एकर कोनो अपवाद नहि छैक । पुत्रक अभाव में पौत्र एवं पौत्रक अभाव में प्रपौत्र अधिकारी होयत छथि । उदाहरणार्थ विष्णुपुराणक वचन—क्रमशः पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र अथवा तेहने भातृसन्तानो अधिकारी होयत छथि ।' प्रपौत्रक अभाव में पत्नी, पत्नीक अभाव में सोदर भांय अधिकारी होयत छथि । उदाहरणार्थ शङ्खक वचन—

'पुत्रक अभाव में पत्नी एवं पत्नीक अभाव में सोदर भांय अधिकारी होयत छथि ।' अहिठाम पुत्र पद पौत्र एवं प्रपौत्र पदक सेहो उपलक्षक अछि । स्मृति समुच्चय में हरिनाथोपाध्यायक ई विचार छैन्हि । अतएव अहि सँ विष्णुपुराणक क्रमक विरोध नहि होयत अछि । सोदरो में प्रथम छोट भाय, छोट भायक अभाव में ज्येष्ठ भायक सेहो अधिकार कहलगेल अछि । पुत्र के पिता एवं अनुजक अग्रज पिण्ड देवाक अधिकारी नहि छथि ।'ई छन्दोगपरिशिष्टक वचन अछि । एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि कनिष्ठ भ्रताक रहैत ज्येष्ठक अधिकार नहि होय । ताहू में अव्यवहिते ज्येष्ठकनिष्ठ में प्रथमक त्याग होय एकर कोनो प्रमाणक अभाव अछि । प्रचेताक वचन छैन्हि 'सहोदरक अभाव में पिता 'पुत्र, भ्राता वा पिता सेहो' अहिठाम पुत्र पद पत्नी पर्यन्तक उपलक्षक भेल । ताँय विष्णुपुराणक अहि वचन सँ कोनो विरोध नहि भेल । पिताक अभाव में सोदर भ्रांयक पुत्रक अधिकार अछि—'प्रपुत्र, पौत्र, प्रपौत्र अथवा तद्वत् भ्रातृसन्तान सेहो' पूर्वोक्त विष्णुपुराणक अहि वचन से भ्रातृसन्ततिक अधिकार होयत अछि । सोदर

भातृ सन्तति अर्थात् अपन भातीज, ओकर अभाव में पुत्रबधुक अधिकार वाचस्पति मिश्र कहने छथि । ओकरो यदि अभाव होय तऽ पिण्डदाता लोकनिक अधिकार होयत अछि ।

गौतमक वचन अछि—'पुत्रक अभाव में सपिण्डक अधिकार होयत अछि ।' अहिठाम पुत्र पद पुत्रबधू पर्यन्तक उपलक्षक अछि । सपिण्डोलोकनि में पाश्ववर्त्ती ज्येष्ठ सपिण्डे अधिकारी होयत छथि । समान पिण्ड दाता लोकनिक अभाव में बेटीक अधिकार होयत छैन्हि ।

'अपुत्रस्य च या पुत्री साऽपि पिण्डप्रदा भवेत् ।' इति वचनात् । दुहितुरभावेऽष्टमपुरुषादिसमानोदकसन्ततिः सपिण्डसन्तत्यन्तमभिधाय एषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिरिति विष्णुपुराणात् । मनुः—

'समानोदकभावस्तु निवर्त्तेताचतुर्दशात् ।' इति ।।

समानोदकाभावे मातृसपिण्डास्तेषामभावे मातृसमानोदकाः । तथा हि विष्णुपुराणम्—'मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बन्धो यो जलेन च' इति पिण्डेन सम्बन्धः सपिण्डः । जलेन सम्बन्धः समानोदक इत्यर्थः । उभयकुलाभावे माताऽधिकारिणी ।

'स्वामाता कुरुते तेषां तेऽपि तस्याश्च कुर्वते ।'

इति वचनात्तेषां पुत्राणाम् । मातुरभावे यथाकथंचित् परिगृहीता स्त्री । 'कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप ।' इति वचनात् । स्त्रीभिरिति अन्यथा परिगृहीतस्त्रीभिः इति पुरुषश्राद्धाधिकारिणः । स्त्रियास्तु प्रथमं औरसः पुत्रोऽधिकारी, तदभावे सपत्नीपुत्रः । तदभावे कृत्रिमादयः—

'विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम् ।
तदभावे सपत्नीजः कृत्रिमाद्यास्तु तावृते ।।'

इति वामदेव्रोपाध्यायधृतस्मृतेः । औरससपत्नीपुत्राभ्यां विनेत्यर्थः । तदभावे पतिस्तदभावे स्नुषा तदभावे पौत्रप्रपौत्रौ क्रमेण । तयोरभावे सपिण्डाः ।

तथा हि शंखः— 'भार्यापिण्डं पतिर्दद्यात्पत्युर्भार्या तथैव च ।
श्वश्र्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे सपिण्डकाः ।।' इति

श्वश्र्वादेरित्यादिपदात् । श्वशुरपरिग्रहः तेनैतद्वचनबलादेव भ्रातृसत्त्वे पत्न्या देवरादिसत्त्वे श्वश्रुवाश्राद्धे सपिण्डसत्त्वे च श्वशुरश्राद्धे स्नुषाया अधिकारः सिद्ध इति श्राद्धचिन्तामणौ वाचस्पतिमिश्राः । सपिण्डाभावे सकुल्याः, तदभावे पितृसपिण्डा इति । शुद्धिविवेके तु पुत्राभावे पतिस्तदभावे सपत्नीपुत्र इति लिखनं संप्रति मिथिलाव्यवहारविरुद्धमतस्तदुपेक्ष्यम् । शुद्धिविवेककृतापि 'व्यवहारविरोधाद्रत्नाकरलिखनस्योपलक्षणात्' । (इत्युक्तम्)

पुत्रसपत्नीपुत्ररहितायाः सपिण्डनं नास्ति किन्तु वक्ष्यमाणावीराकल्पविधानेन चतुर्थादिदिनक्रमेणैव श्राद्धमधिकारिणा कर्त्तव्यम् ।

तथा हि सरोजकलिकायां गोभिलः—

'अपुत्रायां मृतायां तु पतिकुर्यात् सपिण्डनम् ।
अभावे पत्युरेवास्याः पुत्राभावे तु योषितः ।।
सपिण्डीकरणं नास्ति नारदो मुनिरब्रवीत् ।'

अन्यच्च— 'पुत्रेणैव तु कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ।
पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये ।।
पुत्राभावे पतिः कुर्यात्पत्यभावे च नेष्यते ।'

पुत्रपदमौरसादिपुत्रसपत्नीपुत्रोभयपरम् ।

'बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिण्यो मनुरब्रवीत् ।।'

इति मनुवचनात्तस्यापि पुत्रत्वात् । एकपत्नीनामिति एकः पतिर्यासान्ताः एकपत्न्यः तासामित्यर्थः । मार्कण्डेयपुराणे—

'सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ।' इति ।

तासां स्त्रीणां, पुत्रपदमत्राजहत्स्वार्थलक्षणया पतिसपत्नीपुत्रयोरप्युपलक्षकम् । अतो न (पूर्वस्माद्) व्यवहारविरोधः ।

पुत्रसपत्नीपुत्रपतिशून्यस्त्रिया अवीराकल्पश्राद्धमाह ब्रह्मपुराणे—

'चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ।
ततो द्वादशभिर्मासैः श्राद्धाद्द्वादशसंख्यया ।।'

तथा च चतुर्थपञ्चमनवमैकादशदिनेषु तत्तद्दिने श्राद्धं कृत्वा द्वादशमासेषु प्रतिमासक्षयाहेषु द्वादशमासिकानि कार्याणीत्यर्थः । चतुर्थादिदिनमतीत्य मरणश्रवणदिन एवातीतश्राद्धं विद्यमानदिनश्राद्धं च कृत्वा अधिकारी भाविदिनश्राद्धं भावितत्तच्छ्राद्धदिने कुर्यात् ।

हिन्दी—'बिना बेटे के बाप की जो बेटी है वह भी पिता को पिण्ड देने की अधिकारिणी होती है ।' ऐसा वचन है । बेटे की तरह यदि बेटी का भी अभाव हो तो ऐसी स्थिति में अष्टम पुरुष तक जो जल तर्पण के समान अधिकारी सन्तान हैं, उन्हें श्राद्धाधिकार है । समानरूप से पिण्डदान करने वाली अन्तिम सन्तान तक के अभाव में जलतर्पण के सभी समान अधिकारी सन्तान को श्राद्धाधिकार होता है । ऐसा विष्णुपुराण का वचन है ।

मनु के अनुसार—'जल तर्पण का समान अधिकार चौदह पीढ़ी के बाद समाप्त होता है ।' इति । समान जल तर्पण भाव में मातृपक्षीय पिण्डदान के सम्बन्धी अधिकारी होते हैं । यदि उन का भी अभाव हो तो मातृपक्षीय समानोदक भाव वाले लोगों का श्राद्धाधिकार होता है । उदाहरणार्थ विष्णुपुराण का यह वचन—'मातृपक्ष का पिण्ड या जल तर्पण से जिनका सम्बन्ध हो वे श्राद्धाधिकारी होते हैं ।' इति । पिण्ड के साथ जिनका सम्बन्ध हो वे सपिण्ड कहलाते हैं । जल के साथ जिनका सम्बन्ध हो, वे समानोंदक होते हैं । मातृपक्ष एवं पितृपक्षीय दोनों कुलों के अभाव में माता ही अधिकारिणी होती है । ऐसा वचन है ।

'अपनी माँ बेटों का और बेटे माता के श्राद्धाधिकारी हैं ।

तेषाम् = अर्थात् पुत्रों का । माता के अभाव में किसी न किसी प्रकार ग्रहण की गई स्त्री का अधिकार होता है । ऐसा वचन मिलता है—

'हे राजन्, दोनों ही कुल के विनष्ट हो जाने पर स्त्रियों को क्रिया करनी चाहिए ।' स्त्रिभि: अर्थात् अनुचित ढंग से भी गृहीत स्त्रियों को भी श्राद्धाधिकार होता है । ये मृतपुरुष के श्राद्धाधिकार कहा गया । अब मृत स्त्री के श्राद्धाधिकारी बतलाते हैं । स्त्रियों के श्राद्ध का प्रथम अधिकारी उसका औरस पुत्र होता है । औरस पुत्र के अभाव में सौत के बेटे का अधिकार होता है । अगर उसका भी अभाव हो तो कृत्रिमादि पुत्र का अधिकार बनता है ।

वामदेव उपाध्याय धृत स्मृति का वचन है—'अपनी माता की और्ध्व दैहिक क्रिया औरस पुत्रों को करनी चाहिए । उसके अभाव में सौतेले बेटे और उसके भी अभाव में कृत्रिमादि पुत्रों का अधिकार होता है ।' औरस और सौतेले बेटे के बिना यह अर्थ हुआ । इनके अभाव में पति और पति के अभाव में पुत्र बधू क्रिया करे । इनके अभाव में क्रमश: पोते, परोते और उनके भी अभाव में सपिण्डों का अधिकार होता है । शङ्ख का वचन है—

'पत्नी पति को और पति पत्नी को पिण्ड दे' सास आदि को पतोहू पिण्ड दान करे और पतोहू के अभाव में समानपितरों को पिण्ड देने वाला कोई व्यक्ति पिण्ड दे ।' शश्व्रादि पद से यहाँ ससुर पद का भी ग्रहण होता है । इसी से श्राद्धचिन्तामणि में वाचस्पति मिश्र ने लिखा है—

'भाई के रहते हुए पत्नी का, देवरादि का रहते हुए सास का श्राद्ध में सपिण्ड के रहते हुए ससुर के श्राद्ध में पतोहू का अधिकार सिद्ध होता है ।' सपिण्ड के अभाव में सगोत्र अर्थात् तीसरी पीढ़ी से आठवीं पीढ़ी तक का अधिकार है । इनके अभाव में भी पितृ सपिण्ड का अधिकार होता है । शुद्धि



श्राद्ध सम्पन्न कर आगामी दिन के श्राद्ध को पूर्व निर्धारित आगामी दिनों में ही उन श्राद्धों को सम्पन्न करना चाहिए ।

मैथिली—निम्नलिखित वचन सें—'अपुत्र लोकनिक जे पुत्री छथिन सेहो पिण्डप्रदा होयत छथि ।'

यदि बेटी सेहो नहि होथि तखन अष्टम पुरुषादि समान जल तर्पणक सन्तान श्राद्धाधिकारी होयत छथि । समान पितर लोकनिके जल देयऽवाली सन्तान अन्तिम पुरुष के चिन्हित कय, श्राद्धक अधिकारी होयत छथि । हिनको सभक अभाव में जलतर्पणक समान अधिकारी सन्तान श्राद्धाधिकारी होयत छथि । 'ई विष्णुपुराणक वचन अछि । मनुक कथन छैन्हि—

'समानोदक भाव चौदहम पीढ़ी में समाप्त भऽजायत अछि ।'

समानोदक भाव में प्रथम मातृपक्षीय सपिण्ड लोकनिक अधिकार छैन्हि । यदि हिनको लोकनिक अभाव होय तऽ मातृपक्षीय समान पितरक उद्देश्य सँ जल तर्पण करयवालाक श्राद्धाधिकार छैन्हि । उदाहरणार्थ विष्णुपुराणक वचन अछि—'मातृपक्षक जाहि व्यक्ति के पिण्ड एवं जल तर्पण सँ सम्बन्ध छैन्हि से सपिण्ड भेलाह एवं जल तर्पणक साथ जिनक सम्बन्ध छैन्हि ओ समानोदक व्यक्ति भेलाह । यदि मातृपक्षीय एवं पितृपक्षीय दुहूकुलक अभाव होय तखन माता श्राद्धाधिकारिणी होयत छथि—'माता पुत्रक एवं पुत्र माताक श्राद्धाधिकारी छैथि ।' अहि वचन सँ ई सिद्ध होयत अछि । 'तेषाम्' अर्थात् पुत्रों का । माताक अभाव में कोनो न कोनो तरहे परिगृहीता स्त्री अधिकारिणी छैथि ।

ई वचन अछि—'हे राजन्, यदि दुहूकुलक विनाश भऽ जाय तखन स्त्री लोकनि श्राद्धक क्रिया करथु ।' स्त्रीभिः अर्थात् अनुपयुक्त रूप सँ परिगृहीत स्त्री लोकनि सँ, ई सभ पुरुषक श्राद्धाधिकारी भेलाह । स्त्री लोकनिक श्राद्धक प्रथम अधिकारी हुनक औरस पुत्र भेलाह, औरस पुत्रक अभाव में सपत्नी पुत्रक अधिकार छन्हि, हुनको अभाव में कृत्रिमादिक पुत्रक अधिकार होयत छैन्हि । वामदेव उपाध्यधृत स्मृतिक वचन अछि—

'माताक और्ध्वदैहिक क्रिया पुत्र के करवाक चाही । पुत्रक अभाव में सपत्नी पुत्रक अधिकार होयत छन्हि । ई दुहूतरहक पुत्रक अभाव में कृत्रिमादिक पुत्रक अधिकार होयत छैन्हि । औरस एवं सपत्नी पुत्रक बिना ई अर्थ भेल । हिनक अभाव में पति एवं पतिक अभाव में पुत्रवधूक अधिकार होयत छन्हि । हिनको अभाव भेने क्रमशः पौत्र एवं प्रपौत्रक अधिकार होयत अछि । यदि इहोदुहुक अभाव भऽजाय तखन सपिण्डलोकनिक अधिकार होयत छन्हि ।

शङ्खक वचन छैन्हि—'पत्नी पति के एवं पति पत्नी के पिण्ड दैथि। श्वश्रू प्रभृति के पुत्रबधू दैथि, हिनको अभाव में सपिण्ड लोकनिक अधिकार होयत छैन्हि ।'

'श्वश्र्वादेः' इत्यादि पद सँ श्वशुर पदोक परिग्रह होयत अछि । ताँय, अहिवचनकबले भांय के रहलो उत्तर पत्नीक अधिकार होयत छैन्हि । देवरादि के रहलो उत्तर सासक श्राद्ध में, सपिण्ड लोकनिके रहलो उत्तर ससुरक श्राद्ध में पुत्रवधूक अधिकार होयत अछि । श्राद्धचिन्तामणि में वाचस्पतिमिश्रक ई विचार छैन्हि । सपिण्ड लोकनिक अभाव में एक हि गोत्रक मुदा दूरस्थ सम्बन्धीक अधिकार होयत छन्हि । हिनको अभाव में पितृपक्षीय सपिण्ड लोकनिक अधिकार होयत छन्हि । शुद्धिविवेक में ने लिखलगेल अछि—पुत्रक अभाव में पति, पतिक अभाव में सपत्नीक पुत्र ई आधुनिक मिथिलाक व्यवहारक विरुद्ध अछि, तांय ई मत उपेक्षणीय अछि । शुद्धिविवेककारी व्यवहार विरोधी अहिमत के उपेक्ष्य बुझि रत्नाकरक लेखक अहि सन्दर्भ में मान्यता देन छथि । जाहि स्त्री के पुत्र एवं सपत्नी पुत्रक अभाव होय हुनका सपिण्डनक अधिकार नहि छैन्हि । किञ्च वक्ष्यमाण अवीराकल्प श्राद्धक विधान सँ चतुर्थादि दिनक क्रम सँ श्राद्धकरवाक अधिकारी निश्चित करवाक चाही ।

उदाहरणार्थ सरोजकलिका में गोभिलक वचन अछि—'पुत्रहीन स्त्रीक मुइला उत्तर हुनक पति हुनकर सपिण्डनक अधिकारी छैथि । पुत्रक अभाव में अहि नारीक सपिण्डन पतिमात्रे करथु अन्यथा पुत्रहीना नारीक सपिण्डन नहि होय, ई नारद मुनिक वचन अछि ।' आनो वचन अछि—'स्त्रीक सपिण्डन पुत्र मात्रे करथि, पुरुषक सपिण्डन तऽ भातीजोलोकनि करथु । पुत्रक अभाव में पति अधिकारी छथि, मुदा पतिक अभाव में स्त्रीलोकनिक सपिण्डन नहि होय ।' अहिठाम पुत्र पद औरस पुत्र दुहूक उपलक्षक अछि । एक एवं अनेक पत्नीक मध्य यदि कोनो एकटा पुत्रिणी भेल तखन ताहि पुत्र सँ सब माता पुत्रिणी बुझल जायत छैथि ई मनुक विचार छैन्हि ।

मनुक अहिवचन सँ हुनका सभकलेल ओ पुत्र भेलाह । 'एक पत्नीनाम्' अर्थात् एकेटा पति छथिन जिनका सभक हुनका लोकनिकलेल । मार्कण्डेयपुराण में—'पुत्रक अभाव में हुनका सभक सपिण्डीकरण नहि होय ।' इति । तासाम् अर्थात् ताहि स्त्री लोकनिक । अहिठाम पुत्र पद अजहत् स्वार्थ लक्षणा सँ पति एवं सपत्नी पुत्र दुहूक उपलक्षण अछि । अतः पूर्वकथनक एकरा सँ विरोध नहि भेल । पुत्र, सपत्नी पुत्र दुहूक उपलक्षण अछि । अतः पूर्वकथनक एकरासँ विरोध नहि भेल ।

पुत्र, सपत्नी पुत्र एवं पतिक बिना अवीरा कल्पश्राद्ध कहलगेल अछि । ब्रह्मपुराण में—चारिम, पाँचम, नवम एवं ग्यारहम दिन श्राद्ध कयला उत्तर, सालोभरि प्रति मास श्राद्ध कयने बारह मासीय अवीराकल्प श्राद्ध होयत अछि । इति ।

अहि तरहें चारिम, पाँचम, नवम एवं ग्यारहम दिन श्राद्ध कय सालोभरि

प्रतिमास क्षयाहक दिन श्राद्ध करवाक चाही । चारिम दिन व्यतीत भेलाक बाद जाहि दिन मरणक सूचना भेटय ताही दिन बीतल दिनक एवं वर्त्तमान दिनक श्राद्ध कयला उत्तर अधिकारी आगामी दिनक श्राद्ध जाहि जाहि दिन पड़य ताही ताही दिन करवाक चाही ।

अथ तच्छ्राद्धप्रयोगः—चतुर्थदिनेऽस्थिसञ्चयनं कृत्वा ॐ अपवित्रः पवित्रो वेत्यादिना अन्नादीन् सिक्त्वा कुशादिकमादाय ॐ अमुकगोत्रायाः सपिण्डाया अमुकप्रेतायाः प्रेतत्वविमुक्तिकामोऽद्यादि यथाकालं षोडशश्राद्धान्यहं करिष्येति सङ्कल्प्य षोडशश्राद्धान्तर्गतचतुर्थदिनश्राद्धसङ्कल्पः । ततो गायत्रीं, देवताभ्य इति त्रिर्जपित्वा ॐ अद्यामुकगोत्रे सपिण्डे अमुकप्रेते चतुर्थदिनश्राद्धे इदमासनं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्, एवं क्रमेण चतुर्थादिदिनेषु ऊहेनैकोद्दिष्टं श्राद्धं कृत्वा एकादशदिने शय्याकाञ्चनपुरुषद्विजदम्पतीपूजन-कपिलादानवृषोत्सर्गान् कृत्वा एकादशाहश्राद्धं कुर्यात् । ततो द्वादशमासेषु क्षयतिथौ द्वादशमासिकानि कुर्यादिति श्राद्धविवेकाद्यनुसारीयः पन्थाः । (यदि विगोत्रः श्राद्धकर्त्ता तदा चतुर्थदिने काञ्चनपुरुषदानद्विजदम्पतीपूजनवृषोत्सर्ग-कपिलादानानि कुर्यात् तस्याशौचान्तद्वितीयदिनत्वादिति श्राद्धविवेकः) ।

अथ मृतस्य षोडशश्राद्धाकरणेऽधिकारिणः पातित्यं मृतस्य च प्रेतत्त्वम्।

तथाहि सरोजकलिकायाम्—

न करोति च यः श्राद्धं पित्रादीनां विशेषतः ।
पातित्यं जायते तस्य सर्वकर्मविगर्हितम् ॥'

अन्यच्च— 'यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोडश ।
प्रेतत्त्वं हि स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥' इति ।

एतच्चाधिकारिणः शौचे विहितकालजीवित्वे च सति बोध्यम् ।

अशौचे विहिते कालेऽजीवनेवाधिकाराभावात् । नैतादृशदोषप्राप्तिः ।

स्मृतिः— 'अशौचान्तद्वितीयेऽन्हि शय्यांदद्याद्विलक्षणाम् ।
कांचनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषितम् ।
वृषोत्सर्गस्तु कर्त्तव्यो देया च कपिला शुभा ॥' इति ॥

अत्र विगोत्रो यदि श्राद्धकर्त्ता चतुर्थदिने शय्याकांचनपुरुषकपिला—दानदम्पतीपूजनवृषोत्सर्गांश्च कुर्यात्तस्याशौचान्तद्वितीयदिनत्वादिति श्राद्धविवेकः। द्वैतनिर्णये तु एकादशाहोत्पन्नाशौचेन यद्याद्यश्राद्धप्रतिरोधस्तदा तदशौचान्ते श्राद्धकरणे शय्यादानादिवृषोत्सर्गश्च न भवति तद्दिने प्रापकाभावात् । प्रकृता-शौचमुपक्रम्याशौचान्तद्वितीयेन्हीति श्रवणात् । यत्र तु सङ्करेणाशौचवृद्धिः तत्र

द्वितीयसन्निपाते प्रकृताशौचस्याभिवृद्धिरिति सिद्धान्तात्तत्र शय्यादिकं भवतीति वाचस्पतिमिश्राः ।

वृषोत्सर्गफलमाह—सरोजकलिकाधृतस्मृतिः—

'वृषभस्य तु शब्देन पितरः सपितामहाः ।
वर्तमानाः प्रदृश्यन्ते स्वर्गलोके न संशयः ॥
जलं प्रविश्य लाङ्गूलैर्यत्तोयं वहते वृषः ।
दशवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥' इति ।

तत्र नीलवृषः श्रेष्ठः । तल्लक्षणमाह स्मृतिः—

'चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः ।
लाक्षारससवर्णश्च तन्नीलमिति निर्दिशेत् ॥'

गोपतेर्वृषभस्य । लाक्षा लाहीति प्रसिद्धा । वर्णानां विशेषतो विहितवृषभमाह स्मृतिः—

'वर्णतस्ताम्राकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते ।
स्निग्धरक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।
काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णेनाप्यन्त्यजन्मनः ॥'

अन्त्यजन्मनः शूद्रस्यः एतेन शूद्रस्य वृषविशेषोपदेशात् वृषोत्सर्गाधिकारे सिद्धेऽत्र वैदिकमन्त्राऽपि तेन पठनीयाः, वृषोत्सर्गान्यथानुपपत्तेः, 'तयैवोत्सृजेरन्' इति वचनाच्च । तयैव वैदिकऋचैव । तद्वृषोत्सर्गान्यथानुपपत्त्याऽत्र 'शूद्रस्य वृषोत्सर्गवाक्ये एव वेदपाठो नान्यत्र' इति श्राद्धविवेकाच्च। शूद्रवत् स्त्रिया अधिकारबोधने प्रमाणाभावान्न वृषोत्सर्गेऽधिकारः । एवमनुपनीतत्रैवर्णिकस्य वेदशून्यतया न वृषोत्सर्गेऽधिकार इत्यपि स एव । व्यवहारस्तु ब्राह्मणद्वारा रुद्राध्यायादिवैदिकमन्त्रपाठ इत्येव शूद्रस्य । वृषश्चात्र तरुणः वत्सतर्यश्च त्रिहायन्यः । 'एतं युवानं पतिं वो ददानि' इति ऋचः ।

हिन्दी—अब श्राद्ध का प्रचलित स्वरूप—चौथे दिन अस्थि सञ्चयन कर 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा' इत्यादि मन्त्र से अन्नादि मन्त्र से अन्नादि को सिक्तकर कुशादि हाथ मे लेकर 'ॐ अमुक गोत्र की समान पिण्ड वाकी यथानाम प्रेत का प्रेतत्त्व विमुक्ति की कामना से अद्यादि यथाकाल सोलह श्राद्ध मैं करुँगा' इतना सङ्कल्प कर सोलहश्राद्ध के भीतर चौथे दिन के श्राद्ध का संकल्प है । उसके बाद गायत्री एवं देवताभ्यः का तीन बार जप करे । इसके बाद ॐ अथा अमुक गोत्रीय सण्डि अमुक प्रेत के चौथे दिन के श्राद्ध में यह आसन मैं आपको देता हूँ, आप बैठें । इसी तरह क्रम से चौथे आदि दिनों में समझ-बूझ के साथ श्राद्ध सम्पन्न कर ग्यारहवें दिन शय्यादान, काञ्चन पुरुष, द्विजदम्पती पूजन, कपिला दान, वृषोत्सर्ग समाप्त कर एकादशाह श्राद्ध करे ।

इसके बाद बारह महीने में प्रतिमास क्षयतिथि में बारह मासिक करे । श्राद्ध विवेकादि के अनुसार यह मार्ग है ।

मरे हुए व्यक्ति का यदि षोडश श्राद्ध नहीं किया जाय तो अधिकारी की पदच्युति होती है तथा मृत का प्रेतत्त्व अर्थात् उसकी प्रेतयोनि नहीं मिलती है । उदाहरणार्थ सरोज कलिका में—'जो व्यक्ति खाशकर पित्रादि का श्राद्ध नहीं करता उसका पद या जाति का पतन हो जाता है तथा उसके सारे कर्म प्रतिषिद्ध हो जाते हैं ।' और भी'—'जिस मृतक के लिए ये षोडश प्रेत श्राद्ध नहीं दिये जाते, सैकड़ों श्राद्ध दिये जाने पर भी उस प्राणी का प्रेतत्त्व स्थिर हो जाता है ।' इति ।

और, यह उन अधिकारियों के लिए हैं जो शौच में विहित समय पर उपस्थित रहते हैं । अशौच में विहित समय पर उपस्थित नहीं रहने पर या अधिकार के अभाव में ऐसा दोष उन्हें नहीं लगता है । स्मृति का ऐसा वचन है—अशौचान्त के दूसरे दिन अनोखा शय्यादान करना चाहिए । फल एवं वस्त्र युक्त कांचन पुरुष दान करना चाहिए । फिर अनेक तरह के आभूषणों से विभूषित द्विज दम्पति की पूजा करना चाहिए पुनः अत्यन्त शुभा कपिला गाय दान करना चाहिए । इति ।

यदि श्राद्धकर्त्ता अन्य गोत्रोत्पन्न हो तो चौथे दिन शय्या, कांचन पुरुष, कपिला दान दम्पति पूजन तथा वृषोत्सर्ग करना चाहिए । उसका अशौचान्त का दूसरे दिन होने के कारण ऐसा श्राद्धविवेक का वचन है । द्वैतनिर्णय में तो कहा गया है कि एकादशाह में उत्पन्न अशौच से यदि आद्य श्राद्ध का प्रतिरोध हो तो उस अशौच के अन्त में श्राद्ध करने पर शय्यादान आदि और वृषोत्सर्ग नहीं होता है, क्योंकि, उस दिन इन सबों को पहुँचाने वालों की कमी होती है । आरम्भ किया गया अशौच का उपक्रम कर अशौचान्त के दूसरे दिन सुनने पर ऐसा करना चाहिए । जहाँ 'साङ्कर्य के कारण अशौच की वृद्धि होती है, वहाँ दूसरे अशौच के मिलने पर प्रकृत अशौच की अभिवृद्धि हो जाती है, ऐसा ही सिद्धान्त है । ऐसी स्थिति में शय्यादान प्रभृति कर्म होता ही है, यह वाचस्पति मिश्र का विचार है ।

वृषोत्सर्ग श्राद्ध का फल कहा गया है । सरोज कलिका में स्मृति का वचन है—साँड़ की आवाज से पितामह सहित पितर स्वर्ग में उपस्थित होकर यह दृश्य देखते हैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिए । साँड़ की पूँछ में प्रवेश कर जो पानी बहते हैं, उससे पितर दस हजार वर्ष तक तृप्त होते हैं । वहाँ नील साँड़ अत्यन्त श्रेष्ठ होते हैं । उसका लक्षण स्मृति में बतलाया गया

है—चारों पैर, मुँह और पूँछ जिस साँड़ का सफेद हो और सारी देह एक ही वर्ण का लाल या महावर रंग का हो उसे नील वृषभ कहा गया है । 'गोपते:' अर्थात् सांड़ का । लाक्षा अर्थात् लाही के नाम से ख्यात है । कर्ण विशेषे अर्थात् साँड़ विशेष के बारे में स्मृति में कहा है—

'ताँबे के रंग का या भूरे रंग का साँड़ ब्राह्मण के लिए प्रशंसनीय होता है । क्षत्रियों के लिए चमकीले लाल रंग के साँड़ प्रशस्त होते हैं । सुनहली आभा वाले साँड़ वैश्यों के लिए तथा शूद्रों के लिए काले साँड़ का व्यवहार उचित है ।'

'अन्त्यजन्मन:' अर्थात् शूद्रों का' इसे यह सिद्ध होता है कि शूद्रों को भी वृषोत्सर्गश्राद्ध करने का अधिकार है । चूँकि, वृषोत्सर्ग का अधिकार है, इसलिए उसे वैदिक मन्त्र का भी उच्चारण करने का अधिकर है ही अन्यथा वृषोत्सर्ग होगा ही नहीं, क्योंकि वैदिक ऋचा से ही साँड़ छोड़ने का विधान है। तयैव अर्थात् वैदिक ऋचा से ही । इसके बिना वृषोत्सर्ग नहीं हो सकता । अत: वृषोत्सर्ग के वाक्य में ही वैदिक मन्त्रों के पाठ का विधान शूद्रों के लिए है । दूसरी स्थिति में नहीं ऐसा श्राद्ध विवेक में कहा गया है । शूद्रों की तरह स्त्रियों का भी अधिकार बोधक किसी प्रमाण के अभाव के कारण स्त्रियों के लिए वृषोत्सर्ग का अधिकार नहीं है । इसी तरह अनुपनीत तीनों वर्णों के किशोरों को भी वेद शून्यता के कारण वृषोत्सर्ग का अधिकार नही है । यह भी वही है । व्यवहार में ब्राह्मण द्वारा रुद्राध्याय आदि वैदिक मन्त्रों का पाठ कराया जाता है । यही शूद्रों के लिए भी होता है । साँड युवा होना चाहिए और उसके साथ की बाछियाँ भी कम से कम तीन साल की होनी चाहिए । क्योंकि, इसके लिए वेद की यह ऋचा ही प्रमाण है—'एतं युवानं पतिं वो ददानि' ।

आठ सवत्सा गायों से युक्त अथवा क्रमश: चार त्रिवर्षा धेनु युक्त स्वरूपवान् सुशोभित साँड़ छोड़ना चाहिए ।' द्वैतनिर्णय में इसका उल्लेख किया गया है । त्रिहायनी अर्थात् तीन साल की । अगले पैरों की दाहिनी ओर चक्र से तथा पिछले पैरों की बायीं ओर त्रिशूल से सांड़ को दाग कर छोड़ना चाहिए । श्राद्धरत्नाकरादि में इसका उल्लेख है ।

एकादशाह श्राद्ध एवं वार्षिक श्राद्ध सिद्धान्न से ही करना चाहिए—उदाहरणार्थ—'अपने हाथ से बनाये गये पाक से ही सर्वदा एकोद्दिष्ट करना चाहिए । पाकपात्रों के अभाव में उस दिन उपवास रखना चाहिए ।' हारीत का यह वचन है । एकोद्दिष्टम् अर्थात् किसी एक पुरुष के निमित्त किया गया

कर्म । पहले कहे गये के अनुसार अनुपनीत अर्थात् जिस व्यक्ति का अपने वर्ण के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ हो, उसे भी आद्य श्राद्ध एवं साम्वत्सरिक श्राद्ध सिद्धान्त से ही करना चाहिए । वह अन्न चाहे गाय को खिला दे या पानी में बहा दे । मासिक का एक व्यक्ति के उद्देश्यक होने से भी व्यवहार में प्रचलित होने के कारण माल पूए से भी करना चाहिए । जावाल का वचन है—संकट काल में, उपयुक्त आग के अभाव में, तीर्थ में, चन्द्रसूर्यग्रहण में, द्विजों को कच्चे अन्न से श्राद्ध कर लेना चाहिए । शूद्रों का सदैव अनप के अन्न से ही श्राद्ध करना चाहिए ।' इति ।

आपदि अर्थात् श्राद्धकर्त्ता को देश काल जन्य विपत्ति में । इसका अभिप्राय यह है कि देश काल जन्य अपनी अशक्तता में पाक क्रिया से श्राद्ध करने की असंभावना में अनपके अन्न से (आम) श्राद्ध कर लेना चाहिए । यह श्राद्ध विवेक का मत है । आम श्राद्ध का अर्थ है असिद्ध अन्न से श्राद्ध । अनग्नौ का अर्थ है पाक करने योग्य आग के अभाव में आमश्राद्ध पिण्डादि भी अनपके अन्न से ही बनाना चाहिए । 'इसके लिए वचन है—'तेनाग्नौ करणं कुर्यात् पिण्डाँस्तेनैव निर्वपेत् ।' जावालमुनि । अमावास्यादि में भी काम्यश्राद्ध अनपके अन्न से ही करना चाहिए ।'

'श्राद्ध में विघ्न होने पर द्विजातियों के लिए आम श्राद्ध ही कहा गया है। अमावास्यादि के लिए तो यह नियत ही है, मासिक एवं साम्वत्सरिक श्राद्ध के लिए भी यह उपयुक्त है ।' यह लघुहारीत का वचन है । आम श्राद्ध में मांसादि व्यञ्जन आमावस्या में ही देना चाहिए ।' यह श्राद्ध पल्लव का वचन है । साम्वत्सरिक एवं एकोद्दिष्ट श्राद्ध बटें हुए नहीं रहने पर भी सभी भाईयों को करना चाहिए । किन्तु पार्वण श्राद्ध सम्मिलित रहने पर केवल बड़े भाई को ही करना चाहिए । बटे रहने पर सबों को करना चाहिए । उदाहरण स्वरूप—'बटे हों या सम्मिलित विश्वेदेवरहित एकोद्दिष्ट श्राद्ध सबों को करना चाहिए । मघा में तथा पार्वण श्राद्ध में बिना बटवारे का अधिकर नहीं है । इति ।' अदैविकम् अर्थात् विश्वेदेव कर्म रहित एकोद्दिष्ट श्राद्ध में । मघासु अर्थात् मघानिमित्तक श्राद्ध में । अन्यत्र अर्थात् उससे भिन्न पार्वण श्राद्ध में, पृथक् बिना अर्थात् बंटवारे के बिना सबों को अधिकार नहीं है ।

मैथिली—आव श्राद्ध कोना करवाक चाही? अथवा श्राद्धक प्रचलित स्वरूप—चारिम दिन अस्थि सञ्चयनक बाद 'ॐ अपित्र: पवित्रो वा' इत्यादि मन्त्र सँ ताहिठाम राखल अन्नादिकें सिक्तकय हाथ में कुशादिलय 'ॐ अमुक गोत्राया: सपिण्डाया: इत्यादि सँ संकल्प करी । ई संकल्प षोडश श्राद्धक अन्तर्गत चारिमक श्राद्धक संकल्प भेल । तदुपरान्त गायत्री एवं देवताभ्य:' इत्यादि मन्त्रक तीन वेर

जप करी । तकर बाद 'ॐ अद्यामुकगोत्रे' इत्यादि वाक्य पढि आसन दी । अहितरहे चारिम आदि दिन में क्रमशः बूझि समझि कय एकोद्दिष्ट श्राद्धकय ग्यारहम दिन शय्या, काञ्चन पुरुष, द्विजदम्पति पूजन, कपिलादान एवं वृषोत्सर्ग कय एकादशाह श्राद्ध करवाक चाही । तकर बाद बारह मास में मरण दिन में बारहो मासिक करवाक चाही । ई श्राद्ध विवेकादिक अनुसार मार्ग अछि ।

मृतकक षोडशश्राद्ध नहि कयने श्राद्धाधिकारी लोकनिके पतित्य एवं मृत प्राणी के प्रेतत्त्व भेटैत छन्हि । उदाहरण स्वरूप सरोजकलिकाक वचन—विशेष रूपेण जे व्यक्ति मृत पित्रादिक श्राद्ध नहि करैत छथि ओ पतित भऽ जायत छथि तथा हुनका द्वारा कयलगेल सभटा कर्म निन्दित होयत अछि ।

दोसरो वचन अछि—जाहि मृत प्राणीक निमित पूर्व वर्णित ई षोडश श्राद्ध नहि देल जायत अछि, ताहि प्राणीकलेल शत श्राद्ध देलो उत्तर हुनक प्रेत योनि सँ मुक्ति नहि होयत छैन्हि ई सबटा नियम अधिकारी लोकनिक जीवित रहला उत्तर शौच में विहित काल बुझवाक चाही । अशौच काल में अधिकारी लोकनिक जीवनाभाव में अथवा अधिकार भाव में एतादश दोषक प्राप्ति नहि होय ।

स्मृतिक वचन अछि—अशौचान्तक दोसर दिन विलक्षण शय्या दान करवाक चाही, तहिना फल वस्त्र समन्वित काञ्चन पुरुष दान करवाक चाही, अनेक तरहक आभूषण सँ आभूषित द्विजदम्पत्तीक पूजा कय वृषोत्सर्ग करवाक चाही । तत्पश्चात् कपिला गाय सेहो दान करी ।

आव यदि अपन गोत्र सँ भिन्न व्यक्ति श्राद्धकर्त्ता होयथि तखन चारिम दिन शय्या, काञ्चन पुरुष, कपिला दान, दम्पत्ती पूजन एवं वृषोत्सर्ग करवाक चाही । कियेक बाद एकरई अशौचान्तक द्वितीय दिनकय कार्य होयत अछि । श्राद्धविवेकक ई विचार अछि ।

द्वैतनिर्णयानुसार एकादशाहक दिन उत्पन्न अशौच से यदि आद्य श्राद्धक प्रतिरोध होय तखन ताहि अशौचक समाप्तिक उपरान्त श्राद्ध में शय्या दानादि वृषोत्सर्ग प्रभृति नहि होय कियेक ताहि दिन प्रात करावयवालाक अभाव कहलगेल अछि । ई कार्य प्राकृत अशौचान्तक दोसर दिन सुनल जायत अछि जाहिठाम सांकर्य अशौचक कारणे अशौचक अभिवृद्धि होय ताहिठाम दोसर अशौचक सम्पर्क भेने प्रकृत अशौचक अभिवृद्धि भजायत अछि, अहि सिद्धान्त सँ ताहिठाम शायादानादिक होयत अछि, ई वाचस्पति मिश्रक विचार अछि ।

वृषोत्सर्गक फल कहलगेल अछि । सरोजकलिका में स्मृतिंक वचन अछि—'साँड़क शब्द सँ पितामहसहित पितरलोकनि स्वर्ग में समुस्थित दृष्टिगत होयत छथि, एकरा में कोनो तरहक संशय नहि करी ।' जल में प्रवेशकयला उत्तर साँड़क नांगरि सँ जे जल खसैत अछि ताहि जल सँ साँड़ छोड़निहारक पितरलोकनि दसहजार साल धरि तृप्त होयत छथि ।' इति ।

साँड़क बीच नील वर्णक सांड़ अतिश्रेष्ठ कहलगेल अछि । तंकरलक्षण स्मृति में—'जाहि साँड़क चारु पैर, मुँह, नांगरि श्वेत वर्णक होय तथा सम्पूर्ण शरीर ताही सन लाल वर्ण होय तकरे नील साँड़ कहलगेल अछि ।' गोपते: अर्थात् सांड़क । लाक्षा अर्थात् लाहीक नामे प्रसिद्ध । रंगक विशेषता में सांडक विशेषता कहलगेल अछि । स्मृतिक वचन अछि—ताम्र एवं कपिल वर्णक सांड़ ब्राह्मणकलेल प्रशंसनीय कहलगेल अछि । चिक्कणलालरंगक सांड क्षत्रिय कलेल, स्वर्णाभ वैश्य कलेल तथा कारी रंगक साँड़ शूद्रकलेल प्रशंसनीय होयत छैक ।

अन्त्यजन्मन: अर्थात् शूद्रकलेल, अहि वचन में शूद्र कलेल साँड़क रंग केहन हयवाक चाही, एकर उल्लेख सँ ई सिद्ध होयत अछि जे शूद्रो के वृषोत्सर्गक अधिकार छैकि । ते वैदिक मन्त्रोक पाठकरवाक हुनका अधिकार छैन्हि । कियैक तऽबिना वैदिक मन्त्रक पाठ कयने वृषोत्सर्गे व्यर्थ भऽजायत । 'तयैवोत्सृजेरन्' अहि वचन में 'तयैव' अर्थात वैदिक ऋचे सँ । दोसर रीति सँ वृषोत्सर्गक सिद्धि नहि होय ताँय शूद्रकलेल वृषोत्सर्गक वाक्ये में वैदिक मन्त्र पाठक विधान अछि, अन्यत्रनहि । ई श्राद्ध विवेक में लिखल अछि ।

शूद्रे जकां स्त्रीलोकनिके सेहो वृषोत्सर्गक अधिकार होय एकर कतौ प्रमाण नहि भेटैत अछि । स्त्री लोकनिके वृषोत्सर्गक अधिकार नहि होयत छैन्हि । अहिना तीनो वर्णकलोकके अनुपनी तरहनों वेद शून्यताक कारण वृषोत्सर्गक अधिकार नहि होयत छैन्हि इहो सैह छथि । व्यवहार में, शूद्रक वृषोत्सर्ग में ब्राह्मण द्वारा रुद्राध्याय आदि वैदिक मन्त्रक पाठ करादेलजायत अछि । युवा साँड़ एवं तीन वर्षक बांछी हैवाक चाही । 'एवं युवानं पतिं वोददानि' ई ऋचा अछि । 'वृषोत्सर्ग में आठटा अथवा क्रमश: चारिटा सुन्दर वत्सरी सँ सुशोभित साँड हयवाक चाही।'

ई वचन द्वैतनिर्णय में अछि । त्रिहायनीक अर्थ अछि त्रिवर्षीया । आमुक पैरक दक्षिण दिशि चक्र सँ तथा पछुक पैरक वाम दिशि त्रिशूल सँ साँड़ के दागि छोड़वाक चाही । श्राद्धरत्नाकरादिक ई वचन अछि । एकादशाह श्राद्ध एवं वार्षिकश्राद्ध सिद्धान्ते सँ करवाक चाही । उदाहरणार्थ—

'सर्वदा स्वयं पाक सँ एकोद्दिष्ट करवाक चाही । कोनो तरहें यदि पाक पात्रक अभाव भऽजाय तऽ अहिस्थिति में स्वयं उपवास करी ।' (हारीत)

एकोद्दिष्ट अर्थात् एक पुरुषकय उद्देश्य कय, कयलगेल कर्म । अनुपनीतो व्यक्ति के द्वारा आद्यश्राद्ध एवं सांवत्सरिक श्राद्ध सिद्धान्ते सँ करवाक चाही । ई पहिने कहल जा चुकल अछि । ओ अन्न गाय के खुआ दी अथवा जल में बहा दी । मासिको एकोदेश्यकत्वे होयत अछि, तांय व्यवहार में मालुओसे करवाक चाही । जावालक वचन अछि—आपत्काल में, पाकयोग्य अग्निक अभाव में, तीर्थ मे, चन्द्र सूर्यक ग्रहण काल में, द्विजलोकनिके आमश्राद्ध अर्थात् अपक्वान्न सँ श्राद्ध करवाक चाही, शूद्र लोकनिके सर्वदा आम श्राद्धे करवाक चाही । इति ।

आपदि अर्थात् श्राद्धकर्त्ता के देशकाल सम्बन्धी कोनो तरहक विपत्ति में । एकरा से ई सिद्धहोयत अछि जे स्वयं अशक्त रहला र, देश एवं काल जन्य कोनो व्यवधान उस्थित भेने, ाकक्रिया से श्राद्ध करव यदि असंभव होय तऽअक्वात्र सँ श्राद्ध करवाक चाही ई श्राद्ध विवेवक मत अछि । आम श्राद्धक अर्थ भेल असिद्धान्त सँ श्राद्ध करव । अनग्नौक अर्थ अछि पाक करवाक योग्य अग्निक अभाव में पिण्डादि को असिद्धान्नेक हयकाक चाही । जावालक वचन छैन्हि—'तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डाँस्तेनैव निर्वपेत् ।' अमावास्यादिक काम्य श्राद्धो अमात्रे सँ करवाक चाही ।

'श्राद्ध में कोनो तरह विघ्न भेने द्विजातिकलेल आमश्राद्ध कहलगेल अछि। मासिक एवं वार्षिक श्राद्ध के छोड़ी अमावास्यादिक निश्चित श्राद्ध असिद्धान्ने सँ हयवाक चाही ।' ई लघु हारीतक वचन अछि । आम श्राद्ध में मांसादि व्यञ्जन केवल अमावास्या में देय अछि अन्यत्र नहिं । ई श्राद्ध पल्लव में कहलगेल अछि। सांवत्सरिक एकोद्दिष्ट परिवार में सबभांय के सम्मित रहलो उत्तर सबभांयक करवाक चाही । मुदा, पार्वण श्राद्ध अविभाजितो रहला उत्तर जेठे भांयक कर्त्तव्य होयत अछि। यदि सबभांय बांटल होथि तखन ई पार्वण सभकलेल कर्तव्य अछि। उदाहरणार्थ—बांटल रहथु या सम्मिलित विश्वेदेव रहित श्राद्ध सभगोलेके करवाक चाही । अहिना मघा निमित्तक श्राद्ध सेहो सभकलेल कर्त्तव्य अछि । मुदा, अनयत्र बिन बाँटल अधिकार नहि छैन्हि । इति । अदैविकम् अर्थात् विश्वेदक कर्म रहित एकोद्दिष्ट श्राद्ध (मघासु अर्थात् मघानिमित्तक श्राद्ध में । अन्यत्र अर्थात् एकरा सँ भिन्न पार्वण में, पृथग्विना = बिना बाँटने सभक अधिकार नहि होय ।

विमर्शः— बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिण्यो मनुरब्रवीत् ।।

इति मनुवचनमभिधाय मदीयसम्बन्धिना पण्डित प्रवरेण झोपाह्व स्व० रामचन्द्र शर्मणा लिखितमिदम्—'वस्तुतस्त्वनादरणीयमेवेति वक्ष्यमाणं मिश्रमतत्र युक्तिसहम्, अशौचनिर्णये म.म. वाचस्पतिमिश्रा अपीत्थमेव प्राहुः । मिश्रमते तु 'वह्वीनामेकपत्नीनाम्'

इतिवत्— भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् ।
सर्वे तेनैव पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ।।'

इति मनूक्तवचनात् 'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् तदभावे सहोदरः' इति शंखोद्धृतवचनस्य जागरुकत्वेऽपि, तत्रापि औरसपुत्राभावे भ्रातृपुत्रस्यैव श्राद्धाधिकारापत्तेः । तस्मात् 'अपुत्रस्य सपिण्डीकरणं नास्ति' इति नारदोक्तवचने पुत्रत्वारोपेणैव तयोर्जागरुक-त्वमित्यवसेयम् । किंच कृत्रिमपुत्रकरणं भ्रातृपुत्रस्य, स्त्रीपक्षे सपत्नीपुत्रस्य सत्त्वे नान्यस्ये-त्येतदर्थत इति ।'

जीवत्पितृकश्राद्धमुद्दिश्य पारस्करः—पित्रादि त्रिषु जीवत्सु श्राद्धं न कर्त्तव्यमत्र षण्णां पुरुषाणां मध्ये यो यो जीवति, तं तं विहाय पुरुषान्तरमाधाय श्राद्धं कर्त्तव्यम् । मातामहादि त्रिषु जीवत्सु पित्रादित्रिकमात्रश्राद्धं कर्त्तव्यमिति ।

'अष्टाभिर्धेनुभिर्युक्तश्चतुर्भिरथ वा क्रमात् ।
त्रिहायनीभिर्द्धन्याभिः स्वरूपाभिः सुशोभिताः ॥'

इति द्वैतनिर्णयधृतवचनाच्च । त्रिहायनी त्रिवर्षा । अग्रिमपाददक्षिणपार्श्वे चक्रेण, पश्चिमपादवामपार्श्वे त्रिशूलेन वृषमङ्कयेदिति श्राद्धरत्नाकरादयः ।

एकादशाहश्राद्धं सांवत्सरिकं च सिद्धान्नेनैव कर्त्तव्यम् । तथाहि—

'एकोद्दिष्टं तु कर्त्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम् ।
अभावे पाकपात्राणां तदहस्समुपोषणम् ॥' इति हारीतवचनात् ।

एकोद्दिष्टमेकपुरुषोद्देश्यकं कर्म, अनुपनीतेनापि आद्यश्राद्धं सांवत्सरिकं च सिद्धान्नेनैव कर्त्तव्यं प्रागुक्तत्वात् तदन्नं तु 'गोभ्यो दद्याज्जलेऽपि वा । मासिकस्यैकोद्देश्यकत्वेऽपि व्यवहारादपूपेनापि कर्त्तव्यत्वम् । जाबालः—

'आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि ॥' इति ।

'आपदि श्राद्धकर्त्तुर्देशकालयोश्चोपप्लवे । तेन स्वाशक्तौ देशे काले च पाकक्रियया श्राद्धासंभावनायामामश्राद्धम्' इति श्राद्धविवेकः । आमश्राद्धं असिद्धान्नेन श्राद्धम् । अनग्नौ पाकयोग्याग्न्यभावे आमश्राद्धे पिण्डादिकमप्यामान्नेनैव 'तेनाग्नौ करणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्' इति जाबालवचनात् । अमावास्यादिकाम्यश्राद्धमामान्नेनैव ।

'श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्त्तितम् ।
अमावास्यादिनियतं मासंसंवत्सरादृते ॥'

इति लघुहारीतवचनात् । आमश्राद्धे मांसादिव्यञ्जनानि आमान्येव देयानि इति श्राद्धपल्लवः । सांवत्सरिकैकोद्दिष्टमविभक्तैरपि सर्वैरेव भ्रातृभिः कर्त्तव्यम्, पार्वणं तु—

अविभक्तेषु ज्येष्ठेनैव । विभक्तैः सर्वैरेव कर्त्तव्यम् । तथा हि—

'विभक्ता अविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धमदैविकम् ।
मघासु च तथाऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना ॥' इति ।

अदैविकं विश्वेदेवकर्मरहितम् एकोद्दिष्टमिति यावत् । मघासु मघानिमित्तकश्राद्धेषु अन्यत्र तद्भिन्नपार्वणे पृथग्बिना विभागं बिना सर्वेषां नाधिकार इत्यन्वयः । अथ श्राद्धे प्रशस्तद्रव्याण्याह मत्स्यपुराणे—

'उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वान्तं च मृतकर्पटम् ।
श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः ॥'

उच्छिष्टं गव्यदुग्धादि । शिवनिर्माल्यं गङ्गाजलम् । वान्तं मधु ।

मृतकर्पटं पट्टवस्त्रम् । दौहित्रः खड्गपात्रम् । कुतुपो मध्याह्नवेला । अथ वा दौहित्रो दुहितृसुतः । कुतुपो नेपालकम्बलः । तथा हि स्मृतिः—

'व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ।
कुतुपं चासनं दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ।।' इति ।

मिताक्षरायां याज्ञवल्क्यः—

'हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ।।
ऐणरौरववाराहशाशमांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्याऽभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ।।
खड्गामिषमहाशल्कं मधु मुन्यन्नमेव च ।
लौहामिषं महाशाकं मांसं वार्द्धीणसस्य च ।।
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमश्नुते ।'

हविष्यान्नं हविर्योग्यतिलव्रीह्यादि, मासं मासपर्यन्तम् । अस्य च पितामहाः पितरः तृप्यन्तीति परेणान्वयः । एवं वत्सरेणेत्यादावप्यन्वयः । मात्स्यं मत्स्यसंबन्धि, अस्य मांसैरिति परेणान्वयः । हरिणस्ताम्रमृगः ।

'एणः कृष्णमृगो ज्ञेयस्ताम्रो हरिण उच्यते ।'

इत्यायुर्वेदस्मरणात् । उरभ्रो मेषः, शाकुनं भक्ष्यपक्षिसम्बन्धि, वृषच्चित्रमृगः तत्संबन्धि पार्षतम् । रुरुः साबर इति प्रसिद्धः । शशस्येदं शाशम् । खड्गो गण्डकः (गेंडा) महाशल्को मत्स्यभेदः मुन्यन्नं नीवारादिः । नीवार ओइरी इति प्रसिद्धः । लोहो रक्तच्छागः महाशाकं कालशाकम् । वार्द्धीणसो वृद्धः श्वेतइन्द्रियक्षीणछागः । तथा हि—

'त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ।
वार्द्धीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मणि ।।' इति ।

पिबतः कर्णौ जिह्वा च यस्य स्पृशति स त्रिभिः पिबतीति त्रिपिबः अन्यत्सुगमम् ।

श्राद्ध में प्रशंसनीय वस्तुओं के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में कहा गया है—गाय का दूध, गङ्गाजल, मधु, दौहित्र अर्थात् नाती या खड्गपात्र, कुतुप अर्थात् नेपाली कम्बल या दोपहर का समय तथा तिल से सात वस्तुएँ श्राद्ध में पवित्र मानी जाती हैं ।

उच्छिष्टम् = गाय का दूध, शिवनिर्माल्यम् = गङ्गाजल, वान्तम् = मधु, मृत कर्पट = पट्ट वस्त्र अर्थात् रेशमी कपड़ा, दौहित्र = खड्गपात्र, कुतुम =

मध्याह्नवेला, अथवा दौहित्र = नाती, कुतुप = नेपाली कम्बल । इसीलिए स्मृति में कहा गया है—धरती पर तिल विखेरकर उस पर कम्बलासन डालकर व्रतस्थ रहने के बावजूद प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध में नाती को भोजन करान चाहिए ।

मिताक्षरा में याज्ञवल्क्य ने लिखा है—मास पर्यन्त वर्ष पर्यन्त काले हिरण, हविष्यान्न अर्थात् तिल एवं जौ देने से एक महीने तक तथा खीर देने से साल भर पितर तृप्त होते हैं । मछली का, छोटे हिरण का, भेड़ का, खाने योग्य पक्षी का, बकरे का, चितकबरे हरिण का, बारहसिंघे हिरण का, सावर अर्थात् काले हिरण का, शूकर का और खरहे के मांस यथाक्रम या परम्परा के अनुसार मास वृद्धि की स्थिति में देने परपितर सन्तुष्ट होते हैं । गेंडा के मांस, समुद्री केकरा या झींगा मछली, मधु, नीवार अर्थात् तिन्नी धान, लाल बकरे का मांस, कालेशाक एवं बार्घीनस अर्थात इन्द्रियक्षीण सफेद बूढे बकरे या पक्षी विशेष का मांस गयास्थ पितरों के निमित्त देता है, वह आनन्त्य सुख का उपभोग करता है ।

हविष्यान्नम् = तिल, जौ प्रभृति हविष्य योग्य अन्न । मासम् = मासपर्यन्त । इसके पितामहा: अर्थात् पितर सन्तुष्ट होते हैं, बादके पद के साथ इसका अन्वय है । इसी तरह 'वत्सरेण' इत्यादि में भी अन्वय है । मात्स्यम् = मछली सम्बन्धी, इसके मांस से 'इसका' परपद से अन्वय है । ताम्रमृग = हरिण । काले हिरण को एण कहते हैं और ताम्रवर्णवाला हिरण होता है ।' ऐसा आयुर्वेद का वचन है ।

उरभ्र: = भेंड़, शाकुनम् = खाने योग्य पक्षी विशेष: का सम्बन्ध पृषत् = चित्रमृग, उसके सम्बन्धि पार्षत् । रुरु अर्थात् साबरमृग । शश का यह शाश = खरहे सम्बन्ध का । खड्ग = गेंडा, महाशल्क: = मछलियों का भेष्ठ । मुन्यन्न = नीवार आदि । नीवार 'ओइरी' नाम से प्रसिद्ध है । लौह: = लाल छाग । महाशाकम् कालाशाक । वार्घीणस = बूढे इन्द्रिय क्षीणछाग ।

उदाहरण स्वरूप—तीन तरह से पीने वाला, क्षीणइन्द्रिय वाला, सफेद, बूढ़ा बकरे को याज्ञिक लोग पितृकर्म में वाद्घ्रीसास कहते हैं । इति । त्रिपिबम् अर्थात् दो कान और जीभ से जो पीता है; वह त्रिपिब है। इसके बाद सुगम है।

मैथिली—श्राद्ध में प्रशंसनीय वस्तुक सन्दर्भ में मत्स्यपुराण में कहलगेल अछि—गायक दूध, गङ्गाजल, मधु, रेशमी वस्त्र, दौहित्र एवं नेपाली कम्बल ई सातटा वस्तु पवित्र मानल गेल अछि । उच्छिष्ट = गायक दूध । शिवनिर्माल्य = गङ्गाजल । वान्तम् = मधु । मृतकर्पटम् = रेशमी कपड़ा अर्थात् पट्टवस्त्र । दौहित्र =

खड्गपात्र । कुतुप = मध्याह्नवेला । अथवा दौहित्र = नाति । कुतुप = नेपाली कम्बल । जेना कि स्मृति में कहलगेल अछि—

तिल के धरती पर छींटि, नेपाली कम्बलक आसन बिछा दी तखन ब्रतस्थो दौहित्र कय प्रयासपूर्वक श्राद्ध में भोजन करयवाक चाही । इति ।

मिताक्षरा में याज्ञवल्क्यक कथन छैन्हि—हविष्यान्न अर्थात् तिल, जौ प्रभृति सँ मांस पर्यन्त, पायस सँ वर्षभरि पितर सन्तुष्ट होयत छथि । मांछ, छोट हरिक मांस एवं गेंडाक, भक्ष्य पक्षीक, छागक, चितकवरा हरिणक, बारहसिंघाक, सावरक, शूकरक, एवं खरहाक मांस जे श्राद्धक अवसर पर दैत छथि हुनक पितर लोकनि अत्यन्त सन्तुष्ट होयत छथि । गेंडाक मांस, झींगा मांछ, मधु, नीवार अर्थात् ओइनी, ललका छागक मांस, कालशाक, इन्द्रिय क्षीणबूढ सफेद छागक मांस जे श्राद्ध में दैत छथि हुनक गया पहुँचलो उत्तर पितरलोकनि आनन्त्य सुख प्राप्त करैत छथि । इति ।

हविष्यान्नम् = हविक योग्य तिल एवं जौ प्रभृति । मासम् = मास पर्यन्त । एकरा सँ पितामहा; अर्थात् पितर तृप्त होयत छथि' एकर परक साथ अन्वय अछि । अहिना 'वत्सरेण' इत्यादिक साथ अन्वय अछि । मात्स्यम् = मांछक सम्बन्ध में, एकर परपदगत मांसक साथ अन्वय अछि । हरिण: = ताम्रमृग ।

'एण: अर्थात् कृष्णमृग बुझवाक चाही । ताम्र हरिणक कहलजायत अछि ।' ई आयुर्वेदक स्मरण सँ । उरभ्र: = भेंड, शाकुनम् = खयवायोग्य पक्षिक सम्बन्ध में, पृषत् = चितकबरा हरिण । तत्सम्बन्धि पार्षत् । रुरु: = साबरक नामें विख्यात अछि । शशस्येदं शाशं अर्थात् खरहा सँ सम्बन्धित । खड्ग = गण्डक: (गेंडा) । महाशल्क: = मांसक भेद । मुन्यन्नम् = नीवारादि । नीवार ओइरीक नामे प्रख्यात अछि । लोह: = ललका छाग । महाशाकम् = करकाशाक । बार्ध्रीणस: = वृद्धश्वेत एवं इन्द्रिय सँ क्षीण छाग । उदाहरणार्थ तीन तरहें पिपतवाला, क्षीण इन्द्रियवाला, श्वेतवर्णक, बूढ़ सागर बाद्ध्रीणस कहवैत अछि । याज्ञिक लोकनिक पितृकर्म में एकर उपयोग कहैत छथि । जकर कुहूकान एवं जिह्वा पिवय एवं स्पर्श करय से तीन तरहे पिवयवाला त्रिपिव भेल ।

विमर्श:—तद्यथा वाध्रीणस:—

कृष्णग्रीवो रक्तशिरा श्वेतपक्षो विहङ्गम: ।
स वै वाध्रीणस: प्रोक्त इत्यैषा नैगमी श्रुति ।।

श्राद्धे निषिद्धद्रव्याण्याह—

'कूष्माण्डं महिषीक्षीरं बिल्वपत्रमगद्विजा: ।
श्राद्धकाले समुत्पन्ने पितरो यान्ति निराश्रया: ।।' इति ।

मगद्विजा: शाकद्वीपिब्राह्मणा: बिल्वपत्रमगद्विजा इति पाठस्य प्रामादि-

कल्पे तु अगद्विजा: पर्वतीयब्राह्मणा इत्यर्थः । श्राद्धोत्तरं त्याज्यानाह—

'पुनर्भोजनसञ्चारं निद्राध्ययनमैथुनम् ।
होमं प्रतिग्रहं सन्ध्यां श्राद्धं कृत्वाष्ट संत्यजेत् ॥' इति ।

पुनर्भोजनं गलकवलसंयोगरूपम् । सञ्चारं क्रोशादूर्ध्वं गमनमिति रसमालया: । अध्वगमने क्रोशपूरणमिति हारीतोक्ते: । श्राद्धे तदूर्ध्वगमने दोष इति संख्यापरिमाणे केशवमिश्रा: ।

हिन्दी—श्राद्ध के वर्जित वस्तुओं के सन्दर्भ में कहा गया है—श्राद्धकाल में यदि कुम्हड़ा, भैंस का दूध, बेल के पत्ते, शाकद्वीपि ब्राह्मण, यदि आ जाय तोश्राद्धकर्त्ता के पितर निरवलम्ब होकर चले जाते हैं । मगद्विजा: अर्थात् शाकद्वीपिब्राह्मणा 'बिल्वपत्रमगद्विजा:' इसमें मगद्विजा इस पाठ को प्रामादिकत्व अर्थात् असावधानता वश प्रयोग मानलें तो मग की जगह अगद्विजा: होगा तब इसका अर्थ पर्वतीय ब्राह्मण होगा ।

श्राद्ध के दिन श्राद्धोपरान्तकर्त्ता के लिए त्याज्य वस्तुओं के सम्बन्ध में कहा गया है—श्राद्ध के दिन कर्त्ता श्राद्ध कर दुबारा भोजन, बहिर्गमन, निद्रा, अध्ययन, मैथुन, होम, किसी का दान स्वीकार करना, और सन्ध्या ये आठ काम न करें ।

यहाँ पुनर्भोजन का अर्थ है किसी तरह का खान पान । सञ्चार का अर्थ है एक कोस से अधिक दूरी की राह तय करना, यह रसमाला का विचार है । हारीत के भी वचनानुसार मार्ग सञ्चरण में एक कोस का पूरा होना आवश्यक होता है । श्राद्ध में एक कोस से अधिक दूरी तय करने में, गिनती और मापजन्य दोष केशव मिश्र ने भी कहा है ।

मैथिली—श्राद्ध में निषिद्ध वस्तुक सम्बन्ध में कहलगेल अछि—कुम्हड़, महिषक दूध, बेलपात, शाकलदीपी ब्राह्मण, यदि श्राद्धकाल में आविजाथि, तऽहिनका सबके देखतहि पितर निराश्रित भय चलजायत छैथि । मगद्विजाक अर्थ भेल शाकद्वीपि ब्राह्मण । 'बिल्वपत्रमगद्विजा:' अहि पाठ में यदि समासिक पद के प्रमादिकत्व बुझी तखन 'अगद्विजा:' होयत अछि, अगद्विजा: क अर्थ पर्वतीय ब्राह्मण होयत अछि न हि शाकद्वीपी ।

श्राद्धकदिन श्राद्धकयलाक बाद त्याज्य वस्तुक सम्बन्ध में कहलगेल अछि—पुनर्भोजन, गमन, निद्रा, अध्ययन, मैथुन, होम, दानकस्वीकार एवं सन्ध्या, श्राद्धकयलाक बाद ई आठ वस्तुक परित्याग करी । पुनर्भोजनक अर्थ होयत अछि, एकबेरि भोजन कयलाक बाद कोनो वस्तु पुन: कण्ठगत कयनाय । सञ्चार शब्दक अर्थ होयत अछि, कोस भरि सँ अधिक मार्ग कहव ई रसमालाक

कथन अछि । हारीतक वचनानुसार अध्वगमन में कम सँ कम कोसभरि चलव आवश्यक होयत अछि । श्राद्धोपरान्त कोसभरि सँ अधिक चलवा में केशव मिश्र दोष कहने छथि ।

विमर्श:—'अगद्विजा' इति पाठस्य समर्थने पद्मपुराणस्यापि वचनमस्ति—

ये चान्ये पर्वतीयाश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् । अत्र केतनपदस्यार्थ: निमन्त्रमस्ति ।

'निवापाञ्जलिदानेन केतनै: श्राद्धकर्मभि: ।' वेणी०—३/१६/

धर्मप्रदीपधृतमरीचिवचनम्—
काषायं खण्डवस्त्रञ्च रक्तवस्त्रं तथैव च । एवंविधानि वस्त्राणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणिं ।।'

कर्मपुराणे— कुक्कुटा: सूकरा: श्वानो वर्ज्या: श्राद्धेषु दूरत: ।
वीभत्समशुचिं नग्नं मत्तं धूर्त्तं रजस्वलाम् ।
नीलकाषायवसनं पाखण्डाँश्च विवर्जयेत्' ।।

अथ श्राद्धकरणानर्हतामाह—

'सव्रण: सूतकी सूयी मत्तोन्मत्तरजस्वला: ।
मृतबन्धुरबन्धुश्च वर्ज्यान्यष्टौ स्वकालत: ।।'

इति वचनात् । सक्षतस्य श्राद्धनिषेध: । 'व्रणसत्त्वे एव स्वकालत:' इति श्रुते: । 'तद्दिने निर्व्रणीभावे' इति वचनाच्च व्रणान्ते व्रणाधिकरणदिनेऽपि श्राद्धकरणे न दोष इत्यायाति ।

अथमासिकादिद्वादशमासे क्षयतिथौ—

द्वादशमासिकानि, दिनैकोनषष्ठमासे ऊनषाण्मासिकम्, दिनैकोनद्वादशमासे ऊनवार्षिकमिति गौडदेशीयसमुदाय: । मुख्यं श्राद्धं मासि मासीति वचनात् । मैथिलसमुदायस्तु द्वादशदिने एव सर्वमासिकानि सपिण्डनं च ।

'आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुष: क्षयात् ।
अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाह: प्रशस्यते ।।'

इति व्याघ्रपादवचनात्तस्यापि प्रशस्तत्त्वात् । द्वादशाहपदमत्राशौचान्ततृतीयदिनोपलक्षकम् । नातस्त्रयहाद्यशौचिन: पञ्चमादिदिने सर्वमासिककरणेऽप्राशस्त्यम्। अत्र द्वितीयपक्षे पञ्चममासिकानन्तरम्—ऊनषाण्मासिकमेकादशमासिकानन्तरम् ऊनवाषिकं कर्त्तव्यम् ।

मृतसंबन्धिपित्रादित्रयपिण्डे मृतपिण्डमेलनं सपिण्डने कर्त्तव्यम्। तथाहि—

'पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चय:'।। इति ।

तत्र पुत्रेण सपिण्डीकरणे क्रियमाणे पितरममुकप्रेतं पितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहामुकामुकशर्मन्निति वाक्यम् । भ्रातृभ्रातृजादिभि: क्रियमाणे तु

भ्रातुरमुकप्रेत पितृव्यामुकप्रेत इत्यादिवाक्येन तत्तत्सम्बन्धमुच्चार्यपिण्डमेलनम् । कृत्रिमपुत्रेण क्रियमाणे तु मत्पुत्रत्वकरपितरमुकशर्म्मन् इत्यादिवाक्येन तत्तत् संबन्धमुच्चार्य पिण्डमेलनं कुर्यात् । सपिण्डीकरणपर्यन्तमेव प्रेतपदप्रयोगः ।

तथा हि— 'सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतः प्रेत इति स्मृतः ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं शर्म्मवर्म्मादिभाग्भवेत् ।।' इति ।।

हिन्दी—अब श्राद्ध करने में अयोग्यता कही गई है—जिसकी देह में घाव हो, सूतक लगा हो मवाद निकलता हो, नशे में चूर पागल हो, जिसका रिश्तेदार मरा हो, जिसका कोई बन्धु न हो, तथा रजस्वला ये आठ श्राद्ध करने योग्य नहीं हैं ।

इस वचन से जिसकी देह में घाव लगा हो उसे श्राद्ध नही करना चाहिए । 'घाव रहने तक ही अनर्हता होती है । श्रुति के इस वचन से भी । 'तद्दिने निव्रणीभावे' इस वचन से भी घाव छूट जाने पर व्रणाधिकरणक दिन में भी श्राद्ध करने में कोई दोष नहीं होता है ।

अब मासिकादि बारह महीने के क्षय तिथि में—बारह मासिकों के सम्बन्ध में, छः महीने पूरा होने में एक दिन कम जिस दिन हो उसी दिन ऊनषाण्मासिक होता है तथा बारहमा महीने में एक दिन जब कम हो तो ऊन वार्षिक मासिक सम्पन्न होता है । किन्तु, यह प्रक्रिया गौड़देशीय सम्प्रदाय में प्रचलित है । 'श्राद्धं मासि मासीति' इस वचन से मुख्य रूप में महीने महीने ही मासिक श्राद्ध होता है । मैथिल समुदाय तो बारहवें दिन ही सभी मासिक और सपिण्डनक्रिया सम्पन्न कर लेते हैं । 'कुलधर्म की अनन्तता, पुरुषों की आयुक्षयता, शरीरों की अस्थिरता को देखते हुए द्वादशाह कर्म प्रशंसनीय है ।'

व्याघ्रपाद के इस वचन से भी उसकी पुष्टि होती है । द्वादशाह पद यहाँ अशौचान्त का तीसरा दिन होता है । अतः इससे यह नहीं समझना चाहिए कि त्र्यहादि अशौची पाँचवें आदि दिन में ही सभी मासिक कर ले, यह प्रशस्त नहीं है । यहां दूसरे पक्ष में पाँचवाँ मासिक करने के बाद ऊनषाण्मासिक, ग्यारवाँ मासिक के बाद ऊनवार्षिक करना चाहिए । मृतप्राणी के पिण्ड को उससे ऊपर तीन पित्रादि के पिण्डों के साथ मिलाना सपिण्डन करना चाहिए । उदाहरण स्वरूप—'पितामह के साथ पिता का सम्मिलन करना चाहिए ।' इति ।

यहाँ पुत्र के द्वारा सपिण्डीकरण में करने वाला पिता अमुक प्रेत, पितामह, प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह अमुक अमुक शर्मन् ऐसा वाक्य पढ़ना चाहिए । कर्त्ता यदि भाई, भतीजा हो तो भ्राता अमुक प्रेत, चाचा अमुक प्रेत,

इत्यादि वाक्य से उन सबों का अलग अलग नामोच्चार कर पिण्ड मिलाना चाहिए । यदि कृत्रिम पुत्र सपिण्डन करे तो कर्त्ता मुझे पुत्र बनाने वाले पिता अमुक शर्मा इत्यादि वाक्य से उनके सम्बन्ध का उच्चारण करते हुए पिण्ड मिलाये । सपिण्डीकरण तक ही प्रेत पद का प्रयोग करना चाहिए । उदाहरण स्वरूप सपिण्डीकरण तक प्रेत पद का उच्चारण कहा गया है । सपिण्डीकरण के बाद शर्मा, वर्मा आदि शब्द के अधिकारी होते हैं ।

मैथिली—आब श्राद्धकर्त्ताक अनधिकारिताक सन्दर्भ में कहलगेल अछि—जिनक देह में कोनो तरहक घावलागल होन्हि, सूतक होन्हि, वा शरीर सँ लहूया तीत शसैत हो, मादक पदार्थक सेवन कयने रहथि, पागल, रजस्वला, मृतबन्धु एवं बान्धव रहित व्यक्ति कथित कालावधि में श्राद्धक अधिकारी नहि छथि ।

अहिवचन सँ जिनक देह में कोनोतरहक घाव लागल होय ओ व्यक्ति श्राद्ध करवाक अधिकारी नहि छथि । 'व्रणसत्त्वे एव स्वकालतः' श्रुति के इस वचन से भी यही सिद्ध होता है । 'तद्दिने निव्रणीभावे' अहूवचन सँ व्रण समाप्त भऽगेला उत्तर व्रणाधिकरणक दिनों में श्राद्ध कयने कोनो तरहक दोष नहि होय 'ई सिद्ध होयत अछि ।

आव मासिकादि बारह मासक क्षय तिथिक सम्बन्ध में—बारह मासिक छः मास पूरवाक एक दिन पूर्व ऊन षाण्मासिक तथा बारहम मास पूरवाक एक दिन पूर्व ऊनवार्षिकक विधान गौड़देशीय समुदाय में प्रचलित अछि । मुख्यतः श्राद्ध प्रतिमास करवाक वचन सँ । मुदा, मैथिल समुदाय बारहवें दिन सबटा मासिक एवं सपिण्डन करैत छथि ।

'कुलधर्मक अनन्तता, लोकक आयुक क्षयिष्णुता, एवं शरीरक अस्थिरता के देखैत द्वादशाहे प्रशंसनीय कहलगेल अछि ।' व्याघ्रपादक अहि वचन सँ ओकरो प्रशंसनीये मानलगेल अछि । अहिठामद्वादशाह पद अशौचान्तक तेसर दिन परक होयत अछि । एकरा से ई नहिं सिद्ध होयत अछि तीन दिनादिक अशौची पञ्चमादि दिन में सबटा मासिक एक साथ करय ई अप्रशस्त मानलगेल अछि । अहिठाम दोसर पक्ष में पञ्चम मासिकक बाद ऊन षाण्मासिक, एवं ग्यारहम मासक बाद ऊनवार्षिक करवाक चाही ।

मरल व्यक्तिक पिता आदि तीन पीढ़ीक पिण्ड में मृत व्यक्तिक पिण्डक मेलन अर्थात् सपिण्डन करवाक चाही । उदाहरणार्थ—'निश्चयपूर्वक पितामहादिक संगपिताक पिण्डक सम्मेलन करवाक चाही ।' सपिण्डीकरण यदि पुत्र करथु तऽकर्त्ता पिता अमुक प्रेत, पितामह, प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह अमुकामुक शर्मन् ई वाक्य पढथु । यदि भांय या भातीज सपिण्डन करय तऽ **भ्राता अमुक प्रेत, काकाअमुक प्रेत इत्यादि वाक्य सँ तत्तत् सम्बन्धक उच्चारण**

करैत पिण्ड मेलन करथि । कृत्रिम पुत्र यदि कर्त्ता होयथि मत्पुत्रत्व कर पिता अमुक शर्मन् इत्यादिवाक्य सँ हुनक सम्बन्धक उच्चारणकय पिण्ड मेलन करवाक चाही । सपिण्डीकरणे धरि प्रेत पदक प्रयोग करवाक चाही । उदाहरणार्थ—यावत् कालधरि सपिण्डीकरण नहि होयत तावतेकाल धरि प्रेतपदक उच्चारण करी । सपिण्डीकरणक बाद शर्मा वर्मा आदि पदक ओभागी भऽ जायत छथि ।

स्त्रियास्तु जीवति पत्यौ मृतस्त्रीश्वश्रूप्रश्वश्रूवृद्धप्रश्वश्रूपिण्डेषु स्त्रीपिण्डमेलनम् । तथा हि गोभिल:—

'अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम् ।
श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥' इति ।

पत्यौ मृते तु पतिश्वशुरप्रश्वशुरपिण्डेषु स्त्रीपिण्डमेलनमिति समाचारः।

अथ चतुर्थीहोमात्प्रागेव स्त्रिया मरणे सपिण्डीकरणान्तानि तस्याः श्राद्धानि पत्या तद्गोत्रेणैव कार्याणि, सांवत्सरिकारिण तु स्वगोत्रेणैव ।

'संस्थितायां तु भार्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम् ।
पैतृकं भजते गोत्रमूर्ध्वं तु पतिपैतृकम् ॥' इति श्रुतेरिति ।

एवं तदानीं पतिप्रयाणेऽपि न्यायतौल्यात् विगोत्रयाऽपि भार्यया श्राद्धानि कार्याणीति दिगिति द्वैतपरिशिष्टम् ।

'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत् ।
तावदेव न भोक्तव्यं श्राद्धीयान्नं क्षयेऽहनि ॥
प्रथमाब्दे तु मांसानि द्वितीयस्थीनि चैव हि ।
तृतीये रुधिरं भुङ्क्ते चतुर्थेऽन्नं विशुद्ध्यति ॥'

इति वचनाद् वाद्वर्षिकत्रय एव श्राद्धीयोत्सृष्टान्नभक्षणे दोषः। चतुर्थवत्सरीयक्षयाहश्राद्धान्नभक्षणदोषश्च मैथिलव्यवहारादेवेति न किञ्चिदनुपपन्नम् ।

अथ जलादिशुद्धिः । तत्र मनुः—

'आपः शुद्धा भूमिगता वितृष्णा यत्र गौर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥
दिवा सूर्यांशुभिः शुद्धं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ।
सन्ध्ययोरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥' इति ।

देवलः—'एकरात्रोषितास्तास्तु त्यजेदापः समुद्धृताः ।' इति ।

उषिताः पर्युषिताः । स्कान्दे—

'वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।
अवर्ज्यं जान्हवीतोयमवर्ज्यं तुलसीदलम् ॥'

तोयं जलं, पर्युषितं (बासी) इति प्रसिद्धं 'दलं पत्रं छदः पुमान्' इति अमरकोषात् । दलं पत्रम् । यमः—

'प्रपामरण्ये घटकं च कूपे द्रोणीजलं कोशगतास्तथापः ।
ऋतेऽपि शूद्रात्तदपेयमाहुरापद्गता भूमिगताः पिबेत्ताः ॥' इति ।

प्रपा पनिशाला इति प्रसिद्धा । 'द्रोणी काष्ठांबुवाहिनी' इति कोषः । कोशः चर्मपुटः । बृहस्पतिः—

'वापीकूपतडागेषु दूषितेषु विशोधनम् ।
घटानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत् ॥' इति ।

हिन्दी—स्त्रियों का यदि पति जीवित हो तो मृत स्त्री का पिण्ड उसके सास, परसास, वृद्धपरसास के पिण्डों में मिलाना चाहिए । उदाहरणार्थ गोभिल का वचन है—पुत्रहीन नारी के मरने पर उसका पति सपिण्डन करे । सास प्रभृति के साथ ही मृत नारी का सपिण्डन करे । इति । पति के मरने पर पति, ससुर, पर ससुरादि के पिण्डों में स्त्री को पिण्ड मिलाने का आचार है ।

अब यदि चतुर्थी होम से पहले ही पत्नी मर जाय तो उसका सपिण्डीकरणान्त, उनके श्राद्ध पति के साथ उनके गोत्र के साथ करना चाहिए । साम्वत्सरिक श्राद्ध अपने गोत्र के साथ करना चाहिए । पति के साथ रहने वाली पत्नी का सपिण्डीकरण तक पैत्रिक गोत्र के साथ कर्म होना चाहिए । सपिण्डीकरण के बाद पति के पैत्रिक गोत्र के साथ कर्म करना चाहिए । श्रुति का यही विधान है । इसी तरह उसी समय पति के प्रयाण करने पर भी तुल्यन्याय से पत्नी के विगोत्रा रहने के बावजूद उसी के साथ श्राद्ध करना चाहिए । ऐसा द्वैतपरिशिष्ट का मत है ।

'सपिण्डीकरण के बाद जब तक तीन साल पूरा न हो जाय तब तक क्षयाह में श्राद्धीय अन्न नहीं खाना चाहिए । प्रथम वर्ष में श्राद्धीय अन्न मांस तुल्य होता है । दूसरे वर्ष में हड्डी चबाने की तरह तथा तीसरे साल लहू भक्षण की तरह माना गया है । चौथे साल मे वह शुद्ध अन्न भक्षण होता है ।'

इस वचन के अनुसार तीन साल तक ही श्राद्ध में उत्सृष्ट अन्न खाने में दोष होता है । चौथे वर्ष में क्षयाह श्राद्ध में अन्न भक्षण में दोष होता है । मैथिलों के व्यवहार से ही ये सारी बातें स्पष्ट है ।

मनु का वचन है—भूमिगत पानी पवित्र होता है, जहाँ गायें पानी पीकर सन्तुष्ट होती हैं । गन्दगी के कारण यदि किसी जल का अपर्याप्त विकास हो किन्तु, सुगन्धि, रंग और स्वाद युक्त हो तो वह दिन में सूर्य की

किरणों से पवित्र होता है और रात में यह नक्षत्र और हवा से पवित्र होता है । सन्ध्या के समय ये दोनों मिलकर इन्हें पवित्र बनाते हैं । इसलिए येजल सदैव पवित्र माने गये हैं ।

देवल—निकालकर रक्खे गये पानी एक रात में बासी हो जाता है, उसे छोड़ देना चाहिए । उषिता: का अर्थ है बासी । स्कन्दपुराण में—बासी पानी छोड़ देना चाहिए, वासी पत्ते भी छोड़ देना चाहिए । लेकिन, गङ्गा का जल एवं तुलसी का पत्ता कभी वर्जनीय नहीं होता । जंगली प्याऊ अर्थात् पौसला का पानी, कूप में घटक का पानी, काठ की कुप्पी का पानी, चमड़े के मशक का पानी शूद्र से अलग रहने के बावजूद पीने योग्य नहीं कहा गया है । आपत्ति की स्थिति में या भूमिगत होने पर ये ही पेय होते हैं ।

प्रपा = पनिशाला । द्रोणी = काठ की कुप्पी । कोश: = मशक या चमड़े का पानी का थैला । वापी, कूप एवं तड़ाग के जल अशुद्ध होने पर शुद्धि के लिए उससे सौ घड़ा पानी बाहर निकाल कर पञ्चगव्य छिड़क दें ।

मैथिली—पतिक जीविते यदि पत्नीक मृत्यु भऽजाय तऽ हुनक पिण्डक मेलन, सास, पर सास एवं वृद्ध पर सासक पिण्डक संग होन्हि । उदाहरणार्थ गोभिलक वचन—पुत्रहीन नारीक सपिण्डन हुनक पतिक करवाक चाही । सासु प्रभृतिक संगहिन को सपिण्डीकरण हयवाक चाही । इति ।

पतिक मुइले पति, श्वसुर एवं प्रश्वसुरक पिण्ड में मृतस्त्रीक पिण्ड मेलनक आचार अछि । आवचतुर्थी होम सँ पूर्वहि स्त्रीक मुइने सपिण्डीकरणान्त धरि, हुनक श्राद्ध पतिक पतिक द्वारा ताही गोत्रक संग करवाक चाही एवं साम्वत्सरिक श्राद्ध स्वगोत्रे में करी । साथ साथ रहवाली पत्नीक मुइला उत्तर सपिण्डीकरण पर्यन्त क्रिया पैत्रिक गोत्रक संगहोय तथा सपिण्डीकरणक बादक क्रिया पतिक पैतृक गोत्रक संग होय । ई श्रुतिक वचन अछि । अहितरहें ताहिकाल पतिक प्रयाण कयला उत्तर तुल्य न्याय सँ विगोत्रीया रहलो पर पत्नी के श्राद्ध करवाक चाही । संक्षेप में द्वैतपरिशिष्टक मत अछि ।

'सपिण्डीकरणक बाद यावत् काल धरि तीन साल पूरय तावतेकालधरि क्षयाह में श्राद्धीय अन्न नहि खयवाक चाही । प्रथमवर्ष में जोखाय तऽ ओभक्ष्य मांस वत् होय, दोसर वर्ष में हाड़ जकां, तेसर वर्ष में रुधिरवत् ओ भोजन होय । चारिम साल में ओ अन्न विशुद्ध अन्न जकां होयत अछि ।'

अहिवचन सँ तीने वर्ष धरि श्राद्धक उत्सृष्टान्न भक्षण में दोष कहलगेल अछि । चारिम वर्षक क्षयाह श्राद्धक अन्नभक्षण में दोष मैथिलेक व्यवहार में अछि । तांय अहि सम्बन्ध में आव किछु अनुपपन्न नहि रहिगेल । मनुक वचन अछि—'भूमिगतजल शुद्ध होयत अछि, जतय गाय सन्तुष्ट होथि । अपवित्रताक

कारणें जाहि जलक पर्याप्त प्रसारक अभाव होय, सेहो जल दिन में सूर्य किरण सँ राति में नक्षत्र मण्डल एवं वायु सँ एवं सान्ध्य वेला में दुहू सँ सर्वदा पवित्र मानल जायछि देवलक वचन छैन्हि—'राखलजल एक राति में वासी भऽजायत छैक ।'

उषिता = वासी । स्कन्दपुराणक वचन अछि—'वासी जल एवं पात दुहूवर्जनीय अछि किन्तु, गङ्गाजल एवं तुलसीक पात वासी नहि होयत अछि ।'

तोयम् = जल, पर्युषितम् = वासी । अमरकोषक अनुसारदलक अर्थ पात अछि । यमक वचन अछि—'जंगलक पनिशाला, कूपगत घटक, काठकुप्पीक जल चामक थैलाक जल शूद्र सँ अलगो रहला पर अपेय मानलगेल अछि । विपत्तिक स्थिति में किम्वा भूमिगत भेला पर ई जल पीवयोग्य भऽ जायत अछि । प्रपा = पनिशाला । द्रोणी = काठककुघी । कोश = चामक थैली । बृहस्पतिवचन अछि—वापी, कूप, तड़ागक जल यदि मारल जाय तऽ ओकरा सँ एक सेय घट जल बाहर फेंकि पञ्चगव्यक सिञ्चन कयने ओशुद्ध भऽ जायत अछि । इति ।

विमर्शः—दूषितजलशोधनप्रकारमाह बृहस्पतिः—

मृतपञ्चनखात्कूपादन्त्यजोपहतात्तथा । अपः समुद्धरेत्सर्वाः शेषं वस्त्रेण शोधयेत् ॥
वह्निं प्रज्वालनं कृत्वा कूपे पक्वेष्टा काचिते। पञ्चगव्यं न्यसेत्पश्चान्नवतोयसमुद्भवे।। इति

देवलोऽपि—
श्वश्रृगालखरोष्ट्रैश्च कत्यादिभिश्च जुगुप्सितम् । उद्धरेदुदकं सर्वं पञ्चपिण्डान् मृदस्तथा ॥

आपस्तम्बोऽप्याह—
उपानच्छलेष्मविण्मूत्रस्त्रीरजोमद्यमेव च । एभिर्दूषिते कूपे कुम्भानां षष्टिमुद्धरेत् ॥'

हारीतोऽपि—
वापीकूपतडागेषु मानुषं यदि शीर्यते । अस्थिचर्मविनिर्मुक्तं दूषितं श्वश्वरादिभिः ॥
उद्धृत्य तज्जलं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ।'

वापी सोपानयुक्तः कूपः। यत्र शतघटन्यूनमेव जलं तत्र सर्वोद्धारमात्रम्।

मरीचिः— 'येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः ।
तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥
येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः ।
येषु स्थानेषु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ॥'

इति मृत्तिकेत्यस्य तत्र तन्नावमन्येत इति पूर्वेणान्वयः । यमः—

'अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।
दशरात्रेण शुध्यन्ति भूमिष्ठं च नवोदकम् ॥'

याज्ञवल्क्यः—'भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोभ्रमणादपि ।
सेकनोल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् ॥'

कालादिति अपवित्रताप्रयोजककारणक्षयो यावत्कालेन भवति तावत्कालादित्यर्थः । सेकः प्रक्षालनम् । उल्लेखनं तक्षणम् । मनुः—

'सम्मार्जनेनाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः ॥'

अञ्जनं गोमयोपलेपनम् । बौधायनः—'घनाया भूमेरुपलेपनम् । शुषिरायाः कर्षणम्, क्लिन्नाया अमेध्यमाहृत्य प्रच्छादनम् ।' घना अविषमा, समेति यावत् । शुषिरा विवरयुक्ता 'सुषिरं विवरं बिलम्' इत्यमरकोषात् । क्लिन्ना अमेध्या तस्या अमेध्यमाहृत्य मृदन्तरेण पूरणे शुद्धिः । ब्रह्मपुराणे—

'सुवर्णरूप्यशंखाश्मशुक्तिरत्नमयानि च ।
कांस्यायस्ताम्ररैत्यानि त्रपुसीसमयानि च ॥
निर्लेपानि च शुध्यन्ति केवलेनोदकेन तु ।
शूद्रोच्छिष्टानि शोध्यानि त्रिधा क्षाराम्लवारिभिः ॥
सूतिकाशवविण्मूत्ररजस्वलाहतानि च ।
प्रक्षेप्तव्यानि तान्यग्नौ यच्च यावत्सहेदपि ॥' इति ।

अश्म प्रस्तरम्, अयो लौहम्, रीतिः पित्तलम्, तर्दघटितपात्रं रैत्यम् । त्रपु रङ्गम् । निर्लेपम् अनुपहतम् । उच्छिष्टानि उच्छिष्टस्पृष्टानि, उच्छिष्टे शंखवचनेन शुद्ध्यन्तरस्य वक्ष्यमाणत्वात् । क्षारो भस्म अम्लवारिभिः जम्बीरादिरसैः । तत्र क्षरं कांस्यादौ, अम्लोदकं ताम्रादौ । अत एव शंखः—

'उष्णोदकेन ताम्रस्य शीशस्य त्रपुषुस्तथा ।
क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य लौहस्य च विनिर्दिशेत् ॥' इति ।

हिन्दी—वापी = सीढ़ी वाला कुआँ, जहाँ सौ घड़ा से कम पानी हो, वहाँ सारे पानी उलीच देना चाहिए । मरीचिका कथन है—'जिन स्थानों में जैसा शुद्धिकरण है और जिस स्थान में धर्म की जैसी प्रथा है, वहाँ उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहए । वहाँ के लिए वही धर्म है । जिन देशों में जो देवता हैं; जिन स्थानों में जो ब्राह्मण हैं, जहाँ के जो पानी हैं, और जहाँ की जो मिट्टी है उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए ।

'मिट्टी' इस पद तक का अन्वय पूर्वकथित अवहेलना के साथ है । यम की उक्ति है—बकरी, गायें, भैंस, जच्चाब्राह्मणी और धरती का ताजा पानी दस रात में शुद्ध होते हैं । याज्ञवल्क्य का कहना है—धरती की शुद्धि, सफाई एवं तेल के छींटे देने से, आग जलाकर दाह से अपवित्रता प्रयोजक कारण के विनष्ट होने के समय से, गायों के घूमने से, धोने से, रगड़-खुरचकर छीलने से, लीपने-पोतने से, घर की सफाई एवं पुताई से होती है । कालात् =

अपवित्रता प्रयोजक कारणों के विनष्ट हो जाने के समय से । सेक: = प्रक्षालन । उल्लेखन का लक्षण मनु ने कहा है—

सम्मार्जन अर्थात् ठीक ढंग से झाड़-बुहार कर सफाई कर, गोबर से लीपकर, धोकर, रगड़-खुरचकर, गायों के आवास से, इन पाँच विधियों से धरती शुद्ध होती है ।' अञ्जनम् = गाय के गोबर से लीपना । बौधायन का विचार है—सघन अर्थात् समतल धरती का पवित्रीकरण उपलेपन से होता है। शुषिरा = अमरकोष के अनुसार 'बिल' वाली धरती क्लिन्ना अर्थात् अमेध्या (अपवित्रवस्तु) उसे अलग हटाकर दूसरी मिट्टी से मलने पर वह पवित्र होती है। ब्रह्मपुराण में लिखा है—

सोना, चाँदी, शङ्ख, पत्थर, सीप एवम् रत्नजटित बर्त्तन, कांसा, लोहा, ताँबा, पीतल, रांगा, एवं शीशे के पात्र केवल पानी से धोकर साफ कर देने से पवित्र हो जाते हैं । किन्तु, शूद्र के जूठे बर्त्तन क्षार अर्थात् भस्म एवं अम्लवारि अर्थात् नीबू, इमली आदि के खट्टे पानी से साफ करने पर शुद्ध होते हैं । प्रसूति का शव, विष्ठा, मूत्र एवं ऋतु मतीनारी द्वारा प्रयुक्त बर्त्तन को आग में तब तक जलाना चाहिए जब तक वह जल कर पवित्र न हो जाय । अश्म = पत्थर । अय: = लोहा, रीति: = पित्तल, उससे बने बर्त्तन रैत्य, त्रपु = रांगा, निर्लेपम् = अप्रयुक्त जल से । उच्छिष्टानि = जूठे के स्पर्श से । जूठे की शुद्धि शङ्ख के वचन से आगे स्पष्ट होगा । क्षार = राख । अम्लवारिभि: = नीबू आदि के रस से । इनमें कांसा आदि के वर्त्तन राख में, तांबे आदि के वर्त्तन खट्टेरस में । इसीलिए शङ्ख का वचन है—

ताँबे, शीशे और रांगे के बर्त्तनों की गर्म जल से साफ करने पर शुद्धि होती है और कांसे एवं लोहे की शुद्धि राख से करने का निर्देश मिलता है ।

मैथिली—वापी = सीढ़ी लागल, जलाशय, कूप जाहिठाम एकसर घैल से कम जल होय, तखन ताहि कूपक सभटा जल बाहर निकालि दी । मरीचिक वचन अछि—जाहि स्थानक जे शौच अछि, जतऽक जे धर्माचार अछि, सेह ताहि स्थानक धर्म एवं ओकर आचार अछि, एकर अवहेलना नहि हयवाक चाही । जाहि स्थानक जेदेवता छथि, ताहि देशक जे ब्राह्मण छथि । जाहि स्थानक जे जल अछि एवं जतऽक जे माटि छैक तकरे मान्यता हयवाक चाही । एकर अवहेलना नहि करी ।' अहि पदक साथ एकरो अन्वय छैक । यमक उक्ति छैन्हि—बकरी, गाय, महिषी एवं प्रसूति ब्राह्मणी तथा भूमिस्थ नव जल दशरात्रि में शुद्धि होयत अछि ।'

याज्ञवल्क्य—सम्मार्जन सँ, दाह सँ अपवित्रता प्रयोजक कारणक क्षय सँ, गायक वथान सँ, जल सँ धोला उत्तर, उल्लेखन एवं लेपन सँ धरती पवित्र होय

तथा मार्जन एवं लेपन सँ घरऽक शुद्धि होय । कालात् = अर्थात् अपवित्रता प्रयोजक कारणक जाहिकाल क्षय भऽजाय ताहिकाल सँ । सेकः = प्रक्षालन । उल्लेखनक लक्षण मनु कहने छथि—

झाड़ि, बोहरि कय स्वच्छ कयला उत्तर, गायक गोबर सँ नीपिपोति कय, धोय देलाक बाद, रगड़ि-घसि के, तथा गायक बथान सँ, अहि पाँच तरहे धरतीक शुद्धि होयत अछि । अञ्जनम् = गायगोव सँ नीपने । बौधायन—'समतल धरतीक शुद्धि उपलेपन सँ, बिल अहि धरती में होय ओकर शुद्धि कोरला उत्तर होय । क्लित्रा अर्थात् अपवित्र स्थन के पवित्र बनौलाक बाद अलग सँ मांटि छिटलाक बाद ओ शुद्ध होयत अछि । घना = अविषमा अर्थात् समस्थल । शुषिरा = बिल वाली धरती । अमरकोषक वचन अछि—'शुषिरं विवरं बिलम् ।' क्लित्रा = अपवित्रा, तकर अपवित्रता प्रयोजक वस्तु के हटौला उत्तर दोसर मांटि सँ भरला पर शुद्धि होयत अछि । ब्रह्मपुराणक वचन अछि—सुवर्ण, चाँदी, शङ्ख, पाथर, सीपि, रतन, कांसा, लोह, तांबा, पित्तर, रांगा, एवं शीशाक वर्त्तन-वासन केवल जल सँ धेय देलाक पवित्र भऽ जायत अछि । शूद्रक ऐंठ तीन तरहे राख, खट्टा एवं जल सँ पवित्र होय, सूतिकाक शव, विष्ठा, मूत्र एवं रजस्वला सँ आहत वासन के अगि में तावत्काल धरि जरावी यावत्काल धरि सहय करवाक शक्ति ओकरा में होय ।

अश्म = पाथर, अयः = लोह, रीतिः = पित्तल, तद्घटित पात्र रैत्यभेल, त्रपु = रांगा, निर्लेप = बिनाकलई कयल, धोने शुद्धिकरण, उच्छिष्टानि = ऐंठक स्पर्श सँ उच्छिष्ट में शङ्खक वचन सँ दोसर तरहें शुद्धि आगू कहव । क्षर = राख, अम्ल वारिभिः = नीमू आदिक रस सँ । कांसा आदिक पात्र राख सँ, ताँबा आदिक पात्र नीबू आदि सँ । ताँय शङ्खक वचन अछि—ताम्र, शीशा तथा रांगाक शुद्धि गर्म जल सँ, कांसा एवं लोहक पात्र राख सँ शुद्ध होय अर्थात् साथ कयल जाय।

विमर्शः—तत्र शङ्खः— घृतं तु पायसं क्षीरं तथैवेक्षुरसो गुडः ।
शूद्रभाण्डस्थितं तक्रं तथा मधु न दुष्यति ।।

अन्योऽपि—सूतिकोच्छिष्टभाण्डस्य सुरामद्यहतस्य च ।
त्रिसप्तमार्जनाच्छुद्धिर्जतुकांसस्य तर्पणम् ।।

पराशरोऽपि— चैत्यवृक्षश्चितिर्यूपश्चाण्डालसोमविक्रयी ।
एताँश्च ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ।

आदिपुराणे— 'शूद्राच्छिष्टानि शुद्ध्यन्ति त्रिधा क्षाराम्लवारिभिः ।।'

यमः—अजीर्णोऽभ्युदिते चान्ते श्मश्रुकर्मणि मैथुने ।
दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमित्यभिधीयते ।।

यमः—यदि मूत्रपुरीषाभ्यां रेतसा रुधिरेण वा ।
चैलं समूपहन्येत अद्भिः प्रक्षालयेत्तु तत् ।।

यद्यम्भसा न शुद्ध्येत्तु वस्त्रं चोपहतं दृढम् ।
छेदनं तस्य दाहो वा यावन्मात्रमुपहन्यते ॥

बौधायनः— 'तैजसानां तु पात्राणामुच्छिष्टोपहतानां त्रिस्सप्तकृत्वः परिमार्जनम्, पुनः परिमार्जनं मृद्गोमयभस्मभिः' इति । मूत्रपुरीषरेतः प्रभृत्युपहतानां पुनः करणं गोमूत्रे वा सप्तरात्रं संस्थाप्य पूर्ववन्मार्जनम् । शातातपः—

'गवाघ्रातेषु कांस्येषु शूद्रोच्छिष्टेषु वा पुनः ।
दशभिर्भस्मभिः शुद्धिः श्वकाकोपहतेषु च ॥'

अङ्गिराः— 'गण्डूषं पादशौचं च यः कुर्यात्कांस्यभाजने ।
भूमौ निःक्षिप्य षण्मासान् पुनराकरमादिशेत् ॥' इति ।

आकरमादिशेद्वन्हौ क्षिपेत् । शंखः—

'सूतिकोच्छिष्टभाण्डस्य सुरामद्यहतस्य च ।
त्रिःसप्तमार्जनैः शुद्धिर्न तु कांस्यस्य भाजने ॥'

देवलः— 'काष्ठानां तत्क्षणाच्छुद्धिर्मृद्गोमयजलैरपि ।
मृण्मयानां तु पात्राणां दहनाच्छुद्धिरिष्यते ॥'

इदमत्यन्तोपहते । देवलः—

'तान्तवं मलिनं पूर्वमद्भिः क्षारैश्च शोधयेत् ।
अंशुभिः शोधयित्वा वा वायुना वा समाहरेत् ॥
ऊर्णापट्टांशुकक्षौमदुकूलाविकचर्मणाम् ।
अल्पाशौचे भवेच्छुद्धिः शोषणप्रोक्षणादिभिः ॥'

अल्पोपघातमिदम् । ब्रह्मपुराणे—

'प्रत्यहं क्षालयेद्वस्त्रं दैवे पैत्र्ये च कर्मणि ।
सर्वं विण्मूत्रशुक्रैश्च दूषितं तु मृदम्बुभिः ॥'

शुष्यतीति शेषेण पूरणीयः । शुक्रं वीर्यम् । मनुः—

'चरुणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥
अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥ इति ।

स्फ्यः खादिरः खड्गः । बहूनामिति बहुवचनत्वं च पुरुषभारहार्याधिकत्वमिति । स एव—

'चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च ।
शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥

चर्मणामिति स्पृश्यपशुचर्मणामित्यर्थः । वैदलानां वंशादिदलनिर्मितानामिति मनुटीकायां कुल्लूकभट्टः । मनुः—

'प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलाशश्च विशुध्यति ।
मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥'

उपाञ्जनं लेपनम् । बौधायनः—

'आसनं शयनं यानं नावः पन्थास्तृणानि च ।
मारुतार्केण शुध्यन्ति पक्वेष्टखचितानि च ॥'

आसनादिकं स्वीयमेवात्र बोध्यम् । बौधायनः—

'बहूनां कुसुम्भकार्पासगुडलवणानां सर्पिषां कठिनीभूतानां श्वचाण्डालस्पर्शे प्रोक्षणेन शुद्धिः । मनुः—

'शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि: स्नानेन स्त्री रजस्वला ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति ॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजनी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥' इति ।

प्रथमेऽहनि रजोयोगारम्भदिने चाण्डालीति चाण्डालीवदस्पृश्या न तु वस्तुगत्या चाण्डालीति ।

हिन्दी—बौधायन का वचन है—यदि चमकीले धातु के बरतन चूठे से दूषित हो तो उन्हें इक्कीस बार मिट्टी, गोबर और राख से शुद्ध करना चाहिए । परिमार्जन का अर्थ होता है मिट्टी, गोबर और राख से । पेशाब, पाखाना एवं वीर्य आदि से दूषित होने पर शुद्धिकरण के लिए गोमूत्र में सात रात तक रखने के बाद पहले की तरह मार्जन करना चाहिए ।

शातातप—'कांसे के बरतन को गायों के सूंघने पर, शूद्र के जूठे करने पर, कौए और कुत्ते के दूषित करने पर राख से दस बार मलने से शुद्धि होती है ।' अङ्गिरा—कांसे के बरतन में यदि कोई शराब पीले या पैर धोले तो छः महीने तक उसे धरती पर छोड़ दे फिर उसे आग में जलाकर शुद्ध करले । आकरमादिशेत् = आग में जलाये ।

शङ्ख—प्रसूति के जूठे बरतन और मदिरा पीने से दूषित बरतन इक्कीस बार धाने से शुद्ध होता है; कांसे के बरतन नहीं । काठों के बरतन मिट्टी, गोबर और पानी से धोने पर उसी क्षण शुद्ध हो जाते हैं औरी मिट्टी के बरतन को जलाने से शुद्धि होती है ।' यदि यह बहुत ज्यादे विकृत हो जाय । देवल का कहना है—गन्दे सूत के बुने हुए कपड़े को पहले पानी से फिर

शोरा या राख से धोकर धूप से या हवा में सुखाकर रखना चाहिए । ऊनी कपड़े, रेशमी, मलमल या रंगीन कपड़े, भेंड की खाल के वस्त्र में यदि अल्पाशौच हो तो उन्हें सुखाकर, या जल छिड़क कर शुद्ध किया जाता है । ये बहुत कम दूषित होते हैं ।

ब्रह्मपुराण में लिखा है—देवकर्म एवं पितृकर्म में प्रतिदिन वस्त्रों को धोना चाहिए । पेशाब, पखाना और वीर्य से दूषित सारे कपड़ों को मिट्टी और पानी से स्वच्छ करना चाहिए । 'शुष्याति' यह शेष पद के साथ अन्तिम है । शुक्रम् = वीर्य । मनु का वचन है—चरु (देव निमित्तक उबले चावल की बनी आहुति) स्रुक् = सुवा (हवन कुण्ड में आहुति जलने के लिए लकड़ी का करछुल) की शुद्धि गर्म जल से होती है । स्फ्य: अर्थात् यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली होनेवाली खैर की लकड़ी की एक प्रकार की तलवार; सूप, बैलगाड़ी, मूसल, ओखली, का शुद्धिकरण जल सिञ्चन से होता है और अनेक धान की टोकरियाँ मात्र प्रक्षालन से पवित्र होती हैं किन्तु यदि ये अल्प संख्यक हैं तो उन्हें जल से धोकर पवित्र बनाने का विधान है ।' इति । स्फ्य: = खैर लकड़ी की तलवार । बहूनां का बहुत्व भारहारी पुरुषों की अधिकता होती है । वहीं—कपड़े की तरह चमड़े की भी शुद्धि होती है उसी तरह बाँस की बनी टोकरियों का शाक, मूल, फलों की शुद्धि अनाज की तरह ही होती है । चमड़े से यहाँ तात्पर्य है स्पर्श योग्य पशुओं की चमड़ी । मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट के अनुसार वैदलानाम् का अर्थ बांस आदि की फट्टी से बनाई गई टोकरी या आसन होता है ।

मनु का कथन है—पानी के छिड़काव से घास, काठ और पलाश विशुद्ध होते है । मार्जन और लेपन अर्थात् लिपाई-पोताई से घर पवित्र होते हैं । फिर से पकाने पर मिट्टी की वस्तु पवित्र होती है । उपाञ्जन का अर्थ है लेपन । बौधायन का कहना है—आसन, शयन, सवारी, नाव, रास्ता, तिनका या घास हवा या धूप से पवित्र होती है, इकट्ठा की गई पकी ईटें भी इसी तरह पवित्र होती है । आसनादि को यहा स्वयं ही समझना चाहिए । बौधायन का कहना है—ठेर सारे के सारे कमण्डलु, रुई की बनी कोई वस्तु, गुड़, नमक और घी को कुत्ते या चाण्डाल यदि छू दे तो जल छिड़काव से शुद्धि होती है।

मनु का कथन है—रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नानोपरान्त पति के लिए पवित्र होती है । देव कर्म एवं पितृकर्म के लिए वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है। जिस दिन नारी को रजोदर्शन हो उस दिन वह चाण्डाली की तरह स्पर्श योग्य नहीं होती है । दूसरे दिन वह ब्रह्मघातिनी पतिता की तरह होती है । तीसरे

दिन वह धोबिन की तरह होती है । चौथे दिन वह शुद्ध होकर स्पर्श योग्य होती है ।

प्रथमेऽहनि = अर्थात् जिस दिन रजस्वला होती है । चाण्डाली = अर्थात् चाण्डाली की तरह अछूत होती है; नकि यथार्थतः वह चाण्डाली होती है ।

मैथिली—बौधायनक कथन अछि—यदि कोनो दिव्य धातुक पात्र ऐंठ सँ दूषित भऽ जाय तखन ओकरा एक्कैस बेर मांटि, गोबर एवं राख सँ मांजि कय पवित्र करी । परिभार्जनक अर्थ होयत अछि मांटि, गोबर एवं भस्म सँ मांजिकय पवित्र बनायक । मूत्र, विष्ठा एवं वीर्यादि सँ दूषित वस्तुक पुनः शुद्धिकरण हेतु, ओकरा सात राति पर्यन्त गोमूत्र में राखि पुनः पूर्ववत् मार्जन करी । शातातपक कथन छैन्हि—

यँदि कांसक कोनो पात्रके गाय सूंघि लिये, वा शूद्र ऐंठ के दिये, कुक्कुर या कौआ दूषित कय दिए तखन ओकरा दशवेर राख सँ मलिकय पवित्र करी । अङ्गिराक वचन अछि—कांसाक पात्र में यदि क्यो मदिरा पान करव बा पाद प्रलगलन कय दूषित करय तऽ ताहि दूषित पात्र के छः मासधरि धरती में गाड़ि दी पुनः आगि में जराय के शुद्ध करी ।' आकर मादिशेत् अर्थात् आगि में जरावी । शङ्ख का वचन—प्रसूतिक ऐंठ सँ दूषित या मदिरापान सँ अंशुच पात्र एक्कीस बेर मार्जन कय पवित्र बनावी, ताँय कांसक पात्रक नहि ।

देवल—काठक पात्र यदि दूषि भऽ जाय तऽ तत्क्षण मांटि, गोबर एवं पानि सँ पवित्र भऽ जाय मांटिक पात्र के पुनः आगि में जराकय शुद्धकऽली । ई यदि अत्यन्त दूषित भऽजाय । देवल—सूतक वस्त्र यदि मैल भऽजाय पहिने पानि सँ पुनः शोड़ा सँ साफ कयली । तकर बाद रौद या हवा में सुखाकय राखिली ।

ऊनी वस्त्र, रेशमी वस्त्र, एवं भेंड़क चामक वस्त्र में यदि अल्पाशौच हो ताँ जलसिक कय वा सुखाकय पवित्र करी । थोडेक दूषित भेला पर ई शुद्धि । ब्रह्मपुराण में—देवकर्म एवं पितृकर्म में प्रतिदिन वस्त्रक प्रक्षालन करवाक चाही । विष्ठा, मूत्र एवं शुक्र सँ दूषित सभतरहक वस्त्र के मांटि-पानि सँ साफ करी । शुद्ध्यतिक अन्वय पूर्व पदक साथ अछि । शुक्रम् = वीर्य ।

मनुक वचन—चरु एवं स्रुवाक शुद्धि गर्म जल सँ होयत अछि । खैरक खड्ग, कोनियाँ सूप, शकर, मुसल एवं उखरिक शुद्धि एवं अत्यधिक घान पात्रक शुद्धि जल सिंचित कय होयत अछि किन्तु औ धान्यपात्र यदि कम होय तऽ ओकरा जल से धोयकय शुद्धिकरणो विधान होयत अछि । इति । स्फ्यः = खैर काठक यज्ञ में उपयोगक बेल बनल तरुआरि । बहूनां = भारहारी पुरुषक बहुलताक द्योतक अछि । सेह—वस्त्रक जकां चामकशुद्धि तहिना वांस प्रभृतिक बना ओल खचिया, पथि या अथवा आसनक शुद्धि होयत अछि । शाक मुल एवं **फलक शुद्धि धान्ये जहाँ होय अछि** । चर्मणाम् = स्पर्श योग्य पशुक खाल ।

वैदलानाम् = एकर अर्थ मनुक टीकाकार कल्लूकभट्ट कहैत छथि 'वंशादिदल निर्मित वस्तु ।' मनुक मते—जलक सिञ्चन से, घास-पात, काइ एवं पलाशक शुद्धि होयत अछि । मार्जन एवं लेपन सँ घरऽक शुद्धि होयत अछि । माटिक बर्त्तनक शुद्धि पुनः पाकसे होयत अछि । उपाञ्जनम् = लेपनम् । बौधायनक वचन—आसन, विछावन, सवारी, नाव, मार्ग, तृण एवं पाकल पजेवाक शुद्धिमात्र सूर्यक किरणें या हवा सँ होयत अछि ।

आसनादिक अर्थ स्वयं बुझवाक चाही । बौधायनक मत में—अधिक मात्रा में कठिनीभूत केसर वा संन्यासी लोकनिक कमण्डलु कपास निर्मित कोनो वस्तु, गुड़, लवण एवं घीक स्पर्श यदि चाण्डाल कय दिए तखन ओकर शुद्धि जल सिञ्चन सँ होय । मनुक कथन अछि—

रजस्वला स्त्री अपन पतिकलेल चारिम दिन शुद्ध होयत छथि । देवकर्म एवं पितृ कर्मकलेल पाँचम दिन शुद्ध होयत छथि । रजोदर्शनक प्रथम दिन चाण्डाली, दोसर दिन ब्रह्मघातिनी, तेसर दिन धोबिन कहलगेल अछि, चारिम दिन जाके रजस्वला स्त्री शुद्ध होयत छथि । प्रथमेऽहनि अर्थात् रजोयोग आरम्भक दिन में चाण्डाली अर्थात् चाण्डाली जकां स्पर्श योग्य नहि होयत छथि, एतवहि अर्थ अछि, नकि यथार्थतः ओ स्त्री चाण्डाली होयत छैथि ।

ब्रह्मपुराणे— 'मक्षिकादंशमशका घुणाः सूक्ष्मपिपीलिकाः ।
आमिषाऽमेध्यसेवी च नैते कीटा विपत्तये ।।'

दंश दाश उडश इति प्रसिद्धः । आमिषामेध्यसेवी शरीरमांसोद्भवकीटः विपत्तये अन्नदोषाय ।

'आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः ।
म्लेच्छभाण्डस्थिता दूष्या निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ।।'

आमम् असिद्धम् । क्षौद्रं मधु । शातातपः—

'गोकुले कन्दुशालायां तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः ।
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु बालातुरेषु च ।।'

मीमांसा अत्र विचारः । अमीमांस्यानि अविचारितानि, तेषु शौचाशौचविचारो न कर्त्तव्यः । अविचारितान्येव शौचानीति भावः । बालः पञ्चवर्षवयस्कः । मनुः—

'नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ।।'

कारुः शिल्पी । पण्यं पणग्राह्यम् । प्रसारितं हट्टायाम् । तथा च एतत्सर्वममेध्यानुपहतं सर्वस्मिन् काले शुद्धमित्यर्थः ।

'श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचिस्तन्मनुरब्रवीत् ।
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥'

श्वभिः कुक्कुटैर्हतस्य खाद्यमृगादेर्यन्मांसं तच्छुचिरित्यन्वयः । क्रव्याद्भिर्व्याघ्रादिभिः । मनुविष्णू—

'नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥'

स्त्रीणां स्वस्त्रीणाम् । आस्यं मुखम् । प्रस्रवे गोस्तनपाने वत्सः, शुचिरित्यन्वयः । यमः—

'बालकैर्यत्परिक्रान्तं स्त्रीभिराचरितं च यत् ।
मशकैर्मक्षिकाभिश्च निलीनं नोपहन्यते ॥'

निलीनम् आक्रान्तम् ।

'आसनं शयनं यानं स्त्रीमुखं कुतुपं क्षुरम् ।
न दूषयति विद्वांसं यज्ञेषु च समं तथा ॥'

शयनं शय्या । क्षुरम् अन्यशिरोमुण्डकादि । देवलः—

'गोशकृच्छुद्धदेशस्थं श्मशानानुद्धतं शवम् ॥' इति ।

हिन्दी—बह्मपुराण में—'मक्खी, खटमल, मच्छर, घुन, छोटी चिटियाँ और चिल्लड़ ये कीड़े अन्न दोष के लिए नहीं होते ।' दंश = खटमल । आमिषामेध्य सेवी = शरीर के मांस से उत्पन्न कीड़े । विपत्तये = अन्न दोष के लिए ।कच्चामांस, घी, मधु, तेल और फल म्लेच्छों के पात्र में जब तक है वह दूषित है, बाहर निकलने पर पवित्र माने जाते हैं । आमम् = असिद्ध । क्षौद्रम् = मधु।

शातातप का कथन है—गोशाला, तंदूरशाला, तेल पेरने के कोल्हू, गन्ने के कोल्हू, आतुर स्त्री और बालकों में शौचाशौच का विचार नहीं करना चाहिए । मीमांसा = यहाँ विचार विमर्श । अमीमांस्यानि = विचार नहीं करना चाहिए । तेषु = शौच-अशौच के सम्बन्ध में विचार नहीं करना चहिए । अविचारि तानिएव = विचार नहीं ही करना चाहिए शौच अशौच के सम्बन्ध में । बालः = पाँच साल की उम्र तक का । मनु का कथन है—शिल्पी के हाथ की वस्तु, बाजार में फैलाई गई वस्तु, ब्रह्मचारी के हाथ में रक्खी हुई भीख—ये सारी वस्तु हर समय शुद्ध होती है । कारू = शिल्पी । पण्यम् = विक्रेय वस्तु, बाजार में फैलाई गई वस्तु । और इसी प्रकार ये सारी वस्तुएं दोष रहित हर समय शुद्ध होती हैं । व्याघ्रादि के द्वारा, चाण्डालादि अन्यों के

द्वारा, दस्युओं के द्वारा तथा कुत्तों के द्वारा मारे गये भक्ष्य मांस को मनु शुद्ध मानते हैं । श्वभिः = कुत्तों से मारे गये भक्ष्य मृगादि के मांस पवित्र होते हैं, यही अन्वय है । क्रव्याद्भिर्व्याघ्रादि से । मनु और विष्णु का वचन है—

स्त्री का मुख सदैव पवित्र होता है । पक्षियों के द्वारा गिरायेगये फल पवित्र होते हैं । गायों के स्तन पान के बाद बछड़े का जूठा दूध सदैव पवित्र होता है । कुत्ते से मारे गये हरिण भी पवित्र होते हैं । स्त्रीणाम् = अपनी पत्नी का, आस्यं = मुखम् । प्रस्रवे = गाय के स्तन पान में बछड़े 'शुचि' इससे अन्वय है । यम का कथन है—

बालकों के द्वारा परिक्रान्त, स्त्रियों के द्वारा आचरित, मच्छरों और मक्खियों के द्वारा अधिकृतवस्तु दूषित नहीं होते हैं । नीलिनम् = आक्रान्त । आसन, शय्या, सबारी, स्त्री का मुख, तेल डालने के लिए चमड़े की बनी कुप्पी उस्तरा तथा याज्ञिक कर्म के लिए बने लकड़ी के पात्र (चमस) को विद्वान् दूषित नहीं मानते हैं । देवल की उक्ति है—वह मृत शरीर जिसे श्मशान ले जाने के लिए उठाया न गया हो तथा गाय का गोबर अपनी जगह पर रक्खे शुद्ध होते हैं ।

मैथिली—ब्रह्मपुराणक वचन अछि—मछिका, मच्छर, उड़श, घुण, छोटकी चीटीं एवं चिल्लड़ सँ अन्न दूषित नहि होयत अछि । दंश = उड़शक नामे प्रसिद्ध अछि । आमिषा मेध्यसेवी = शरीरक मांस सँ उत्पन्न कीटाणु । विपत्तये = अन्न दोषकलेल । कांच मांस, घी, मधु, तेल एवं फल म्लेच्छक वासन में राखल अपवित्र होयत अछि, मुदा ओकरा बरतन वासन सँ बाहर पवित्र होयत अछि । उत्तमम् = असिद्ध; क्षौद्रम् = मधु । शातातपक वचन अछिः—गोशाला, तन्दूरशाला, तेलक कोल्हू, कुशियारक कोल्हू, बालक में, स्त्रीलोकनि में एवं आतुर व्यक्ति में शौचाशौचक विचार नहि करवाक चाही । मीमांसा = अहिठाम विचार । अमीमांस्यानि, विचारकरवाक योग्य नहिं । अहिसभ में शौचाशौचक विचार नहि करवाक चाही । बालः अर्थात् पाँच वर्ष पर्यन्तक बालक ।

मनुक कथन अछि—शिल्पीक हाथ में, बाजार में पसरल वस्तु ब्रह्मचारी लोकनिक हाथक भिक्षक सर्वदा शुद्धहोयत अछि । कारुः = शिल्पी, पण्यम् = किनवायोग्य, बाजार में पसरल । जेना ई सभटा वस्तु अमेध्यम् = दोषरहित, अर्थात् सर्वदा शुद्धहोयत अछि । कुकुरकमार, बाघ प्रभृतिक मारल, चाण्डालादि के द्वारा मारल, दस्युक द्वारा मारलगेल जीवक मांस मनुक दृष्टि में शुद्ध होयत अछि । श्वभिः = कुकुरादिक द्वारा मारलगेलं खाद्य मृगादिक जे मांस होयत अछि, से शुचि अछि, एकरासाथ अन्वय छैक । क्रव्यादिभिः अर्थात् व्याघ्र प्रभृति सँ मारल । मनु एवं विष्णुक वचन—स्त्रीक मुख, पक्षीक गिरावल फल, गायक दूध पिवैत वत्स, कुकुरक मारल मृग शुचि होयत अछि । स्त्रीणाम् = अपन पत्नीक,

आस्यम् = मुँह । प्रसवे = गायक स्तन पान में वत्स, शुचिक साथ अन्वित अछि ।
यमक उक्ति—

बालकक द्वारा परिक्रान्त, स्त्रीक द्वारा कयलगेल, मच्छर एवं मांछीक द्वारा पराभूत दूषित नहि होयत अछि । निलीनम् अर्थात् आक्रान्त । विछावन, शय्या, यान, स्त्रीक मुख, चमड़ाक कुप्पी, नापितक उस्तूरा, तथा यज्ञक चमस के विद्वानलोकनि दूषित नहि मानैत छथि । शयनम् = शय्या, क्षुरम्, आनक मांथ मुड़वाक उस्तूराप्रभृति । देवलक कथन—बथान परक गोबर तथा श्मशान कलेल बिना उठा ओल मृत शरीर शुद्धहोयत अछि ।

विमर्श:—शुद्धाशुद्धिविचारक्रमे अत्रिकथनम्—

मक्षिका: सन्तताधारा भूमिस्तोयं हुताशन: । मार्जारश्चापि दर्वीञ्च मारुतश्च सदा शुचि: ।।

तत्र वृहत्संहितायां पोष्य कुक्कुर लक्षणम्—

पादा: पञ्चनखास्त्रयोग्रचरणा: षड्भिनखैर्दक्षिण:,
ताम्रोष्ठाग्रनसोमृगेश्वरगतिर्जिघ्रन् भुवं याति च ।
जाङ्गलं ससरेहगृक्षसदृशाकर्णौ च लम्बौ मृदु,
यस्यस्यात्स करोति पोष्टुरचिरात्पुष्टां श्रियं श्वा गृहे ।।

तत्रैव कुक्कुरी लक्षणम्—पादे पादे पञ्च पञ्चाग्रपादे यामे यस्या: षण्नखा: मल्लिकाक्ष्या: ।
वक्रं पुच्छं पिङ्गला लम्बकर्णी या सा राष्ट्रं कुक्कुरी पाति पोष्टु: ।।

तैलादीनां शुद्धिकरणमुक्तम्—

तापनं घृततैलानां प्लावनं गोरसस्य च तन्मात्रमुद्धृतं शुद्ध्येत्कठिनं तु पयोदधि ।।

शब्दकल्पद्रुमे— केन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधि सक्तव: ।
द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि ।। इति ।

शातातप:— 'रैणव: शुचय: सर्वे वायुना समुदीरिता: ।
अन्यत्र रासभाजाविश्वसमूहनीवाससाम् ।।'

रेणवो धूलय: । रासभ: गर्दभ: । अविर्मेष: । श्वा कुक्कुर: । समूहनी मार्जनी । तथा च रासभादीनां षण्णां वातोद्धतधूलयोऽशुचय: तदन्या: शुचय इति भाव: । शंख:— 'मुखवर्जञ्च गौ: शुद्धा मार्जार: क्रमणे शुचि: ।'

मनु:— 'ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वश: ।
यान्यधस्थान्यमेध्यानि देहाच्चैव च्युता मला: ।।

खानि छिद्राणी । मेध्यानि पवित्राणि । अध: नाभेरध: ।

यम:— 'बलात्कारोपभोक्ता वा चौरहस्तगतोऽपि वा ।
स्वयं विप्रतिपन्ना वा अथ वा विप्रमादिता ।।
अत्यन्तदूषिताऽपि स्त्री न परित्यागमर्हति ।।'

याज्ञवल्क्यः— 'व्यभिचारादृतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते ।
गर्भभर्तृवधे तासां तथा महति पातके ॥'

व्याभिचारोऽत्र समानजातिकृत उत्तमजातिकृत मदमोहबलात्कारादि—प्रमादजन्यः । ऋतौ रजोयोगे । गर्भे व्यभिचारजातगर्भे त्याग इति तासामित्यनेनान्वयः । स एवाह—

'स्वच्छन्दगा च या नारी तस्यास्त्यागो विधीयते ।
न चैवं स्त्रीवधं कुर्यान्न चैवाङ्गविकर्त्तनम् ॥'

वसिष्ठः— 'चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुना च या ।
पतिघ्नी च विशेषेण जुङ्गितोपगता च या ॥'

जुङ्गितोपगता शूद्रान्त्यजादिगमनकर्त्री । मरीचिः—

'येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः ।
तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥
येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः ।
येषु स्थानेषु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ॥'

हिन्दी—शातातप—गदहे, बकरी, भेड़, कुत्ते, झाड़ू और कपड़े से हवा की झोंक में उड़ी धूल अपवित्र होती है । इससे भिन्न हवा में उड़ी सारी धूल पवित्र होती है । रेणवः = धूलि, रासभः = गदहे, अविः = भेंड़, श्वा = कुत्ते, समूहनी = झाड़ू, और इस प्रकार गदहे आदि छः से हवा की झोंक से निकली धूलि अपवित्र होती है और इससे भिन्न पवित्र कही गई है । शङ्ख का वचन है—'मुँह छोड़कर गायों की देह तथा बिलाय के पैर शुद्ध होते हैं।'

मनु का कथन है—ढोढ़ी से ऊपर शरीर में जो भी छेद हैं वे सभी बिल्कुल शुद्ध होते हैं और नाभि से नीचे का भाग से गन्दगी निकलने के कारण अपवित्र होते हैं । खानि = छेद, मेध्यानि = पवित्र, अधः = ढोढ़ी के नीचे का भाग ।

यम की उक्ति—बलपूर्वक भोगी गई, अथवा चोरों द्वारा अपहृत की गई, स्वयं की असहमति या सहमति से उपभुक्त हुई जैसी तैसी अत्यन्त दूषित रहने पर भी स्त्री छोड़ने योग्य नहीं होती है ।

याज्ञवल्क्य की उक्ति है—पति के बध जैसे महान पावक से गर्भ धारण करने पर या रजोयोग की स्थिति में व्यभिचार से गर्भधारण करने पर उस स्त्री का परित्याग कर देना चाहिए । यहाँ व्यभिचार समाज जातिकृत हो या उत्तम जातिकृत हो, मद, मोह या बलात्कार जैसी भूल के कारण हो ।

ऋतौ = रजोयोग के गर्भ में, व्यभिचार से गर्भधारण करने पर उस नारी का त्याग करना चाहिए, इसके साथ अन्वय है । उसी की उक्ति है—अपनी इच्छा से इधर उधर मुँह काला करने वाली औरत के परित्याग का विधान है । ऐसी औरत का नतो अङ्ग भङ्ग करना चाहिए और न वध ही करना चाहिए ।

वशिष्ठ की उक्ति है—चार तरह की औरतों के परित्याग का विधान है । शिष्य के साथ संभोग करने वाली, गुरु के साथ संभोग करने वाली, खाशकर पति की हत्या करने वाली तथा शूद्र एवं अन्त्य जाति के साथ संभोग करने वाली का । जुङ्गितोपगता = शूद्र एवं अन्त्य जाति के साथ गमन करने वाली । मरीचि का वचन है—

जिस स्थान में जो शौच का विधान है, जहाँ का जो धर्माचार है, वहाँ का जो धर्माचार है, वहाँ उसी की मान्यता होनी चाहिए । जिस देश के जो देवता हैं; जहाँ के जो ब्राह्मण हैं, जहाँ के जो पानी है जहाँ की जो मिट्टी है, वहाँ उसी की मान्यता होनी चाहिए ।

मैथिली—शातातपक वचन अछि—वायुक वेगक संग उड़लधूलि सभ पवित्र होयत अछि मुदा गदहा, छागर,मेष, कुक्कुर, बाढनि एवं शरीर में प्रयुक्त वस्त्र सँ प्रेरित वायु सँ उड़ल धूलि अपवित्र होयत अछि । रेणवः = धूलि, रासभः = गर्दभ, अविः = मेष, श्वा = कुक्कुर, समूहनी = वाढनि, एवं प्रकारेण गर्दभादि छाटाक शरीर से वायुधृतधूलि अशुचि एवं एकरा सँ भिन्न पवित्र होयत अछि । शङ्खक वचन अछि—मुँह छोरि कय गायक सभरा अङ्ग पवित्र होयत अछि तथा बिलाडिक पैर पवित्र सेवत छैक ।'

मनुक वचन अछि—नाभिकुण्ड से ऊपर अङ्ग में जे छिद्र अछि से सभटा पवित्र होयत अछि तथा नाभि कुण्ड से अधोभागक छिद्र शरीर सँ मलस्रावक कारणे अपवित्र कहलगेल अछि । खानि = छिद्र, मेध्यानि = पवित्र, अधः = नाभिकुण्डक निचला भाग ।

यमक कथन—बलपूर्वक जाहि नारीक उपभोग कयलगेल होय, चोरी से जकर अपहरण कयलगेल होय, आत्मसहमति या असहमति सँ जेकर उपभोग कयल गेल होय, एहन अत्यन्त दूषित रहलो उत्तर स्त्री परित्याग योग्य नहि होयत अछि । रजोयोग में व्यभिचार सँ जे गर्भधारण करय एवम् भर्तृवधादि जन्य महापातकोत्तर जे गर्भधारणकरय तकर परित्यागक विधान अछि । व्यभिचार सँ अहिठाम तात्पर्य अछि समान जाति कृत हो, या उत्तम जाति कृत हो, अथवा मद, मोह एवं बलात्कारादि जन्य भूल सँ कयलगेल व्यभिचार । ऋतौ = रजोयोगक बाद व्यभिचार से जे गर्भ धारण कर तकर त्याग कय देवाक चाही । तासाम् = ताहि स्त्रीक अहि शब्दक साथ एकर अन्वय छैकि ।

हुनके वचन छैन्हि—जे स्त्री स्वेच्छा चारिणी छैथि हुनक न त हत्या करी आओर नहि अङ्ग भङ्ग करी मुदा हुनक परित्याग अवश्य कय दी । वशिष्ठक वचन अछि—शिष्यक संग रमण करऽवाली, गुरुक सङ्गभ्रष्ट भेल, पतिक हत्या करऽवाली एवं शूद्र तथा अन्त्यजक संग गमन करऽवाली, ई चारि तरहक स्त्रीक परित्याग कयदेवाक चाही ।

जुङ्गितोपगा = शूद्र एवं अन्त्यजक संगगमन करऽवाली । मरीचिक वचन अछि—जाहि स्थानकलेल जे शौचक विधान छैक, जतय जे धर्माचार अछि, ओतय ओकरे मान्यता हयवाक चाही । ओतोक धर्म ओइ न हयवाक चाही । जाहि देशक जे देवता छथि, जाहि देश में जे ब्राह्मण छथि, जाहि स्थानक जे जल अछि जतय के जे मांटि अछि ओतय ओकरे सभक मान्यता हयवाक चाही ।

अथास्पृश्यस्पर्शशुद्धि: । मार्कण्डेयपुराणे—

'अभोज्यसूतिकाषण्ढमार्जाराखुश्वकुक्कुटान् ।
संस्पृश्य शुध्यति स्नानादुदक्याग्रामशूकरौ ॥'

षण्ढो नपुंसक: । मार्जारो बिडाल: । आखु: मूषक: । एतच्च मार्जारकर्मकस्पर्शे । मार्जारकर्तृकस्पर्शे तु न दोष: । 'मार्जारस्तु सदा शुचि:' इति वचनात् । ब्रह्मपुराणे—

'उच्छिष्टेनाथ विप्रेण विप्र: स्पृष्टस्तु तादृश: ।
उभौ स्नानं प्रकुरुत: सद्य एव विशुध्यति ॥'

तादृश:, उच्छिष्ट: । शातातप:

'रजकश्चर्मकृच्चैव व्याधजालोपजीविनौ ।
चैलनिर्णेजकश्चैव नट: शैलूषकस्तथा ॥
मुखेभगस्तथाश्वा च वनिता सर्ववर्णगा ।
चक्री ध्वजी वध्यघाती ग्रामकुक्कुटशूकरौ ॥
एभिर्यदङ्गसंस्पृष्टं शिरोवर्ज्जं द्विजातिषु ।
तोयेन क्षालनं कृत्वा आचान्त: शुचितामियात् ॥' इति ।

नटो नर्त्तक: । शैलूषो नाटकाद्यभिनेता । मुखे भगो मुखयोनिरिति प्रसिद्ध: । चक्री तैलिक: । ध्वजो शौण्डिक: । वध्यघाती चौरादिवधे नियुक्त: । अत्राजहत्स्वार्थलक्षणया शिर:पदेन नाभेरूर्ध्वमुपलक्ष्यते । तेन नाभेरधो रजकादिस्पर्शे प्रक्षालनमाचमनं च पर्यवसितम् । नाभेरूर्ध्वं श्वपाकादिस्पर्शे आह देवल:— 'श्वपाकं पतितं व्यङ्गमुन्मत्तं शवहारकम् ।
सूतिकां सूयिकां नारीं रजसा च परिप्लुताम् ॥
श्वकुक्कुटवराहांश्च ग्राम्यान् संस्पृश्य मानव: ।
सचैलं सशिर: स्नात्वा तदानीमेव शुध्यति ॥'

मनुः— 'अजीर्णेऽभ्युदिते वान्ते श्मश्रुकर्मणि मैथुने ।
दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते ॥'

तथा च पर्युषितवान्ते स्नानमित्यर्थः इति शुद्धिविवेकः । कालिकापुराणे—

'स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा आप्लुतः शुचिः ।'

निर्माल्यमत्रापनीतमिति रुद्रधरः । बृहस्पतिः—

'तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ।
नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥'

हिन्दी—अशुचि के स्पर्श करने पर शुद्धि का विधान, मार्कण्डेयपुराण में—अखाद्यवस्तु प्रसूता, नपुंसक या हिजरा, बिलाव, चूहा, कुक्कुर, पुर्गा, रजस्वला औरत और पालतू सूअर के स्पर्श हो जाने पर जल सिञ्चन से शुद्धि होती है । षण्डः = नपुसक, मार्जार = बिलाव, आखुः = चूहा, और ये दोष मार्जार कर्मक स्पर्श में होता है; मार्जार कर्तृक स्पर्श में ये दोष नहीं होते हैं । मार्जार सदैव शुचि होता है ।

ब्रह्मपुराण में—ऐसा वचन है । मुक्तावशिष्ट अन्न (जूठन) के साथ किसी ब्राह्मण से किसी अन्य ब्राह्मण का यदि स्पर्श हो जाय तो दोनों को सद्यः स्नानकर शुद्ध हो जाना चाहिए । तादृशः = वैसे जूठन । शातातप का वचन है—धोबी, चमार, बहेलिया, मछुए, कमीने, रंग साज या धोबी, नाच-गा-बजाकर जीवन यापन करने वाला, अभिनेता, मुखयोनि, कुत्ते, सभी वर्ण के लोगों के साथ गमन करने वाली औरतें, तेली, कलाल अधिक, पालतू मुर्गे और सूअर इनमें किसी से यदि किसी ब्राह्मण के शिर छोड़कर किसी अङ्ग का स्पर्श हो जाय तो जल से उसे धोकर तथा आचमन कर पवित्र बन जायें । इति । नटाः = नर्त्तक, शैलूषः = नाटकादि के अभिनेता, मुखेभगः = मुखयोनि नाम से प्रसिद्ध है । चक्री = तेली, ध्वजः = शौण्डिक, वध्यघाती = चौरादि वध में नियुक्त । यहाँ अजहत् स्वार्थ लक्षणा से 'शिरः' पद से नाभिकुण्ड से ऊपर का अङ्ग उपलक्षित है । इससे यह सिद्ध होता है कि नाभिकुण्ड से नीचे का अङ्ग यदि रजकादि से स्पृष्ट हो जाय तो प्रक्षालन और आमचन से शुद्धि का विधान है । नाभि से ऊपर के भाग का स्पर्श यदि श्वपाकादि से हो जाय तो उसके लिए देवल का वचन है—

चाण्डाल, पतित, विकलाङ्ग, पागल, मुर्दा ढोने वाला, प्रसूति, और रजः स्रावी अशुचनारीं, पालतू कुत्ते, मुर्गे और सूअर के स्पर्श हो जाने पर उसी क्षण सचैल माथे से नहाकर शुद्ध होना चाहिए । मनु का वचन है—अनपच के कारण कै होने पर, दाढ़ी मूँछ कटवाने पर, स्त्री सहवास करने पर, बुरे

स्वप्न देखने पर और दुष्टों के स्पर्श करने पर स्नान मात्र से शुचिता का विधान है । और इसी तरह बासी खाने से बमन होने पर स्नान का विधान शुद्धि विवेक में है ।

कालिकापुराण में—'रुद्र का निर्माल्य छूने पर सवस्त्र स्नान करने पर शुद्धि होती है । रुद्रधर के विचार से निर्माल्य का अर्थ यहाँ है शिवार्पित वस्तु का हटाये जाना । बृहस्पति = तीर्थस्थान में, विवाह में, यात्रा में, युद्ध में, देश की अशान्ति में, नगर या ग्राम दाह में छुआ छूत का दोष नहीं होता है ।

मैथिली—आव अशुचिक स्पर्शक शुद्धिविधान । मार्कण्डेयपुराण में—अखाद्यवस्तु, प्रसूता, नपुंसक, बिलाड़, कुक्कुर, मुर्गा, रजस्वला स्त्री एवं पालित शूकर—एकरा सभक स्पर्श भेला उत्तर जल सिञ्चन सँ शुद्धि होयत अछि ।

षण्ड: = नपुंसक, मार्जार = बिडाल, आखु = मूषक, ई सभटा मार्जारकर्मक स्पर्श मे दोष = दोषावह होयत अछि मुदा मार्जार कर्तृक स्पर्श में दोष नहि होयत अछि । 'मार्जार' सदा पवित्र होयत अछि अहिवचनक बले ।

ब्रह्मपुराण में कहलगेल अछि—उच्छिष्ट नेने ब्राह्मणक स्पर्श यदि कोनो आन ब्राह्मण के भऽ जाय तऽ दुहूगोठे सद्यः स्नानोत्तर शुचि होयत छथि । तादृशः = उच्छिष्ट । शातातपक वचन अछि—धोबी, चमार, व्याध, मछवाहा, दुष्ट, रंगरेज, नर्त्तक, अभिनेता, मुखयोनि, कुक्कुर, सभवर्णक संग रमण करऽवाली वनिता, तेली, मद्यविक्रेता, बधिक, पालित मुर्गा एवं शूकर ब्राह्मणक मांथ छोड़ि जाहि अंगक एकरा सम से स्पर्श भऽजाय, तकरा जल सें धोयि आचमन कय शुद्धिभऽजाय । इति ।

नटः = नर्त्तक, शैलूषः = नाटकादिक अभिनेता, मुखे भगः = 'मुखयोनि' चक्री = तेली, ध्वजः = शौण्डिक, वध्यघाती = चौरादिक वधकलेल नियुक्त, अहिठाम अजहत्स्वार्थ लक्षणा सँ 'शिर' पदे नाभि सँ ऊपरक अङ्ग उपलक्षित होयत अछि । तायं नाभि सँ अधोभागक अङ्गक रजकादिक स्पर्श में प्रक्षालन एवं आचमन विधान अछि । नाभि सँ ऊपर खपकादिक स्पर्श में देवलक कथन—चाण्डाल, पतित, विकलाङ्ग, उन्मत्त, शव हारक, सूतिका, सूथिका, रजोवती नारी, ग्राम्य कुक्कुर, मुर्गा, शूकर भेने सचैल माथ सँ स्नानोपरान्त शुद्धिक विधान अछि।

मनु—अजीर्णक कारणे वान्त भेला उत्तर, क्षौर कर्मकवाद, मैथुनोपरान्त, दुःस्वप्न देखला उत्तर, दुर्जनक स्पर्श भेला उत्तर स्नानक विधान अछि । एवं बासि भोजनक वान्त में स्नान आवश्यक ई शुद्धिविवेकक विचार अछि । कालिकापुराण में रुद्रक निर्माल्यक स्पर्श भेने सचैल स्नान करी । निर्माल्य पद अहिठाम रुद्रधर मिश्रक विचारे शिव निमित्तक अर्पित वस्तु होयत अछि । बृहस्पतिक वचन अछि—तीर्थ में, विवाह में, यात्रा में, संग्राम में, देशक अशान्ति में, नगर एवं ग्रामक दाह में स्पृष्टा स्पृष्टिक दोष नहि होय ।

विमर्शः—मार्जारस्तु सदाशुचिरितिवचनमभिधाय लिङ्गपुराणस्याऽपि वचनं द्रष्टव्यम्—

मार्जारस्तु गृहे यस्य सोऽप्यन्त्यजसमो नरः ।
भोजयेद्यस्तु विप्रेन्द्रो मार्जारान् सन्निधौ यदि । तच्चाण्डालसमं ज्ञेयं नात्र कार्या विचरणा ॥
स्फिग्वातं शूर्पवातं च वातं प्राणमुखानिलम् । सुकृतानि हरन्त्येते संस्पृष्टाः पुरुषस्य तु ॥

अथ दानम्

तत्र मनुः— 'तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम् ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ।
यत्किञ्चिदपि दातव्यं याचते नानुसूयया ॥'

परं श्रेष्ठं, कृतयुगे सत्ययुगे, शक्तितो वित्तानुसारेण, अनसूयया परगुणसहिष्णुतया । व्यासः—

'यद्दाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।
तत्ते वित्तमहं मन्ये धृतं कस्यापि रक्षसि ॥
आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः ।
एकैव गतिरर्थस्य दानमन्या विपत्तयः ॥'

गरीयसः अधिकस्य । अर्थ धनस्य ।

'ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किन्न दीयते ।
इच्छाऽनुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥'

अर्थिभ्यः याचकेभ्यः ।

'दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ।
अदाता पुरुषस्त्यागी सर्वं सन्त्यज्य गच्छति ॥'

गच्छतीत्यस्य परलोकमिति शेषः ।

'अनाहूतेषु यद्दानं यच्च दत्तमयाचितम् ।
भविष्यति युगस्यान्तः तस्यान्तो न भविष्यति ॥'

तस्य अयाचितदानस्य ।

'अदृष्टमश्रुते दानमुक्त्वा दानं न दृश्यते ।
पुनरागमनं नास्ति पुनर्दानमनर्थकम् ॥'

अदृष्टं कुत्रापि स्मृतौ न दृष्टम् । अश्रुते विद्याशून्ये । देवलः ।

'नाल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम् ।
श्रद्धाशक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे हि ते ॥
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम् ।
केवलं धर्मबुद्ध्या यत् तज्ज्ञ धर्मः प्रचक्षते ॥'

प्रयोजनं पुण्यातिरिक्तम् ॥

हिन्दी—अब दान के सम्बन्ध में—मनु का वचन है—सत्य युग में तपस्या श्रेष्ठ, त्रेता में ज्ञान उत्तम, द्वापर में यज्ञ तथा कलियुग में केवल दान का ही महत्त्व है । अच्छे पात्र को पाकर अपने विभव के अनुसार पूर्णरूपेण सन्तुष्ट होकर, जो कुछ भी बन सके दान देना चाहिए । परगुण सहिष्णुता के कारण याचना नहीं करने पर भी । व्यास ने कहा है—

विशेषगुण सम्पन्न व्यक्ति के लिए तुम जो कुछ देते हो, प्रतिदिन स्वयं जो खाते पीते हो, उसी धन को मैं धन कहता हूँ और जो केवल धन संचित करता है, वह तो कवल दूसरों के लिए धन जुटाता है । सैकड़ों प्रयास से प्राप्त, प्राणों से भी अधिक प्रिय धन की केवल एक ही उत्तम गति दान है, इससे भिन्न तो विपत्ति ही है । गरीयसः = और अधिक, अर्थस्य = धनकी । मांगने वाले को अपने एक कौर का आधा कौर भी क्यों न दे दिया जाय । क्योंकि, अपनी इच्छा के अनुसार भला, कब और किसे धन मिला है? अर्थिम्यः = याचकों के लिए ।

कुछ देने वाले को तो मैं कंजूस ही मानता हूँ, क्योंकि, मरने पर भी वह धन को नहीं छोड़ता है और जो कुछ भी नहीं देता है वही असली त्यागी पुरुष है, क्योंकि, वह अपना सब कुछ यहीं छोड़कर परलोक सिधारता है । 'गच्छति' इस क्रिया पद का अर्थ है परलोक सिधारना । बिना बुलाये और विनमांगे जो दान दिया जाता है उसका अन्त कभी नहीं होगा, युगका अन्त भले हो जाय । तस्य = उस विन मांगे दान का । (जिस दान के सम्बन्ध में कहीं भी स्मृतियों में नहीं देखा गया हो, जो विद्या शून्य हो ऐसा दान देखा नहीं जाता है, इसका पुनरागमन नहीं होता है क्योंकि पुनर्दान अनर्थक होता है ।) अदृष्टम् = कहीं भी स्मृति में जो न देखा गया हो । अश्रुते = विद्या शून्य में । देवल की उक्ति—

जो दान न कम हो और न ज्यादे वह अभ्युदय कारक होता है । श्रद्धा और शक्ति के अनुसार दिया गया दान विकास का आवास होता है । प्रयोजन की अपेक्षा किये बिना केवल धर्म बुद्धि से जो सत्पात्र को दान दिया जाता है, वही असली धर्म है । प्रयोजनम् = पुण्य के अतिरिक्त ।

मैथिली—आव दानक सन्दर्भ में । मनुक वचन—सत्ययुग में तपस्या के श्रेष्ठमानलगेल अछि । त्रेता में ज्ञान के उत्तम कहल गेल अछि; द्वापर में यज्ञ मुदा कलियुग में केवल दाने के महत्त्व देलगेल अछि । पर गुण सहिष्णुताक कारणे यदि क्यो याचना नहि करय तऽ ओहनो सत् पात्र के परितुष्ट भावना सँ अपनशक्तिक अनुसार यतवा भय सकय ओनवहु अवश्य देवाक चाही । परं = श्रेष्ठ, कृतयुगे = सत्युग में, शक्तितः = वित्तक अनुसार, अनुसूयया = परगुण सहिष्णुतापूर्वक ।

व्यासजीक वचन अछि—कोनो विशेषगुण सम्पन्न व्यक्ति के जे धन देल जाय तथा अपन दैनिक जीवन में जकर उपभोग कयल जाय सेह धन के हम धनकहैत छी, एकरा सँ भिन्न धनतऽ आनक छिकै जकर हम रक्षा मात्र करैत छी । शत शत प्रयास सँ प्राप्त, प्राणो सँ अधिक प्रिय धनक एकमात्र सुन्दर गति छैक 'दान' एकरा सँ भिन्न गति तऽ विपत्ति ये छैक । गरीयसः = अधिकक, अर्थस्य = धनक । अपन एक ग्रासोक आधग्रास याचक के कियेक न दे देल जाय कियेक तऽ अपन इच्छाक अनुरूप ककरा कखन धन प्राप्त होतय अछि । अर्थिम्यः = याचक कलेल ।

देनहार व्यक्ति के हम कृपण मानैत छी कियेक तऽ मरलो उत्तर ओ धन के नहि छोड़ैत छैथि, त्यागी पुरुष तऽ अदाता छैथि जे अपन सर्वस्व त्यागि परलोक प्रस्थान करैत छथि । 'गच्छति' अहि क्रिया पदक परलोक संग अन्वय छैक । बिना बजौने तथा बिना मांगने जे दान देल जायत अछि, युगान्तक वादो ताहि दानक अन्त नहि होयत छैक । तस्य अर्थात् बिन मांगल दानक । (कतौ स्मृति में जे दान नहि देखल जाय अथवा जाहि दानक श्रुति में उल्लेख नहि होय ताहि दानक पुनरागमन जहि छैक, दानक पुनरागमन तऽ अनर्थक कारण हे अदृष्टम् = कतौ स्मृति में जे नहि देखल जय; अश्रुते = विद्याशून्य में ।)

देवल का कथन—जाहि दान में न अल्पता होय आओर न बहुलता, एहन दान अभ्युदयकलेल होयत अछि । श्रद्धा एवं शक्तिक अनुसार कयलगेल दान वृद्धिक आवास स्थल होयत अछि । प्रयोजनक बिना अपेक्षा कयने केवल धर्म बुद्ध्या जे दान कयल जाय तकरे धर्म कहल जायत अछि । प्रयोजन = पुण्यक अतिरिक्त ।

अप्रतिग्राह्यानाह सुमन्तुः—'शौकाविकव्याधनिषादरजकबुरुडचर्मकाराः अभोज्यान्ना अप्रतिग्राह्याः ।' यमः—

'नटनर्तकतक्षाणश्चर्मकारः सुवर्णकृत् ।
शौण्डिकाः कण्डिकाः षण्ढा अभोज्यान्नाः प्रकीर्तिताः ॥
गन्धर्वो लौहकारश्च सूचिकस्तन्तुवायकः ।
चक्रोपजीवी रजकः कितवस्तस्करस्तथा ॥

ध्वजी मालोपजीवी च शूद्राध्यापकयाजकौ ।
कुलालश्च कुकर्मा च वार्द्धुषिश्चर्मविक्रयी ॥'

अप्रतिग्राह्या इत्यनेनैषां सम्बन्धः ॥

हिन्दी—नहीं ग्रहण करने योग्य वस्तु के सम्बन्ध में सुमन्तु का कथन है—चिड़ीमार, गड़ेरिया, बहेलिया, जंगली आदिम जाति, धोबी, बुरुड़, बूचड़ तथा चमार के अन्न अखाद्य होने के कारण अप्रतिग्राह्य हैं।

यम का कहना है—नट (तमाशा दिखलानेवाली एक जाति) नचनिया, बढ़ई, चमार, सुनार, कलाल, धान कूटने वाली जाति और नपुंसक इनके अन्न खाने योग्य नहीं कहे गये हैं । गवैया, लुहार, दर्जी, जुलाहा, तेली, धोबी, जुआरी, चोर, पताका वाहक या मद्य विक्रेता, माली, शूद्र अध्यापक एवं याजक, कुम्भार, कुकर्मी और सूदखोर और चर्म विक्रेता, इनके अन्न ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं । 'अप्रतिग्राह्या:' इसके साथ ही इनका सम्बन्ध है ।

मैथिली—अग्राह्य अन्नक सन्दर्भ में सुमन्तुक वचन—शौक, गड़ेरी, व्याध, निषाद, धोबी, बूचड़, चमारक अन्न ग्रहण करवा योग्य नहि होयत अछि ताँय एकरा अप्रतिग्राह्य कहलगेल अछि । यमक वचन अछि—नट, नर्त्तक, कमार, चमार, सोनार, कलाल, धनकुट्टा, एवं नपुंसकक अन्न अखाद्य कहलगेल अछि । गायक, दर्जी, लोहार, जोल्हा, तेली, धोबी, जुआरी, तस्कर, मद्य विक्रेता, माली, शूद्राध्यापक एवं याजक शूद्र, कुम्हार, कुकर्मी, सूदखोर तथा चर्मविक्रेताक अन्न खाद्य नहि अछि । अप्रतिग्राह्यक संग अहि पदक सम्बन्ध छैक ।

उत्तमादिदानान्याह—

'अन्नं मधु दधि त्राणं गोभूरत्नाश्वहस्तिनः ।
दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः ॥'

त्राणं रक्षणम् ।

'विद्यासंच्छादनावासपरिभोगौषधानि च ।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ॥
उपानत्प्रेङ्खयानानि क्षत्रपात्रासनानि च ।
दीपकाष्ठफलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ॥'

चरमम् अधमम् । ब्रह्मवैवर्त्ते प्रकृतिखण्डे—

'परकीयतडागे च तडागं यः करोति वै ।
उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः ॥'

तत्रैव—'यत्फलं च तडागेन पङ्कोद्धारेण तत्फलम् ।
पङ्कोद्धारेण वाप्याश्च वापीतुल्यफलं लभेत् ॥'

मत्स्यपुराणे—'वापीकूपतडागेषु देवतायतनेषु च ।
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौक्तिकं फलम् ।।'

शातातपः—'अभिगत्य तु यद्दानं यच्च दानमयाचितम् ।
विद्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ।।'

अभिगत्येति सम्प्रदानसमीपं स्वयमेव गत्वेत्यर्थः ।

'अन्यायाधिगतां गत्वा सकलां पृथिवीमपि ।
श्रद्धावर्जमपात्राय न किञ्चिद्दतिमाप्नुयात् ।।'

अधिगतामुपार्जिताम् ।

'प्रदाय मुष्टिशाकं वा श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
महते पात्रभूताय सर्वाभ्युदयमाप्नुयात् ।।'

याज्ञवल्क्यः—'गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् ।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ।।
विद्यावन्तश्च ये विप्राः सुव्रताश्च तपस्विनः ।
सत्यसंयमसंयुक्ता ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ।।'

दानपात्रा इति शेषः । संवर्तः—

'श्रोत्रियाय दरिद्राय अर्थिने च विशेषतः ।
यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ।।'

हिन्दी—उत्तमादिदान के सम्बन्ध में कहते हैं—अन्न, मधु, दही, रक्षण, गाय, धरती, रत्न, घोड़ा, हाथी, ये पान उत्तम द्रव्य दान की अपेक्षा अधिक उत्तम दान हैं । त्राणम् का अर्थ रक्षण होता है । विद्या, छिपाय या गोपन, घर, उपभोग और औषधि का दान मध्यम द्रव्य दान की अपेक्षा, मध्यम कोटि का दान कहलाता है ।

जूते, झूला, अधिराज्य, वर्त्तन, आसन, दीप, काठ फल इनका दान बहुत वर्षों तक रहने वाला अधम कोटि का दान कहलाता है । चरमम् = अधम । ब्रह्मवैवर्त के प्रकृति खण्ड में लिखा है—दूसरों के सरोवर में जो अपना सरोवर बनाता है और दुर्भाग्य से यदि उसे वह दान कर दे तो दाता मरणोपरान्त मूत्रमुण्ड में गिरता है । वहाँ ही—तालाब खुदवाने का जो फल होता है, उतना ही फल किसी के तालाब से कीचड़ निकलवाने पर मिलता है । इसी तरह किसी की बावड़ी से कीचड़ निकलवाने पर उसे बावड़ी खुदवाने का फल मिलता है । मत्स्यपुराण में—बावड़ी, कुँआ, तालाब एवं देव मन्दिरों का जो पुनरुद्धार करवाता है, उसे मौक्तिक फल मिलता है ।

शातातप—प्रतिग्राही के पास स्वयं जाकर जो दान देता है तथा बिना मांगे किसी सत् पात्र को दान देता है; सागरान्त हो जाता है, पर उस दान का अन्त नहीं होता है । अभिगत्य = प्रतिग्राही के पास स्वयं जाकर—अन्यास से यदि सारी धरती भी उपार्जित कर श्रद्धारहित होकर किसी अपात्र को दान में देदिया जाय तो वैसे दान से दानकर्त्ता को कुछ भी लाभ नहीं होता है । अधिगताम् = उपार्जित की गई ।

श्रद्धा और भक्ति के साथ किसी सत्पात्र को मुट्ठीभर साग ही यदि दान में दिया जाय तो वह दान प्रदाता के लिए हर तरह की समृद्धि का कारण बन जाता है । याज्ञवल्क्य का कथन है—गाय, धरती, तिल, सोना प्रभृति सत्पात्र की पूजाकर उन्हें दान में देना चाहिए । अपना कल्याण चाहने वाले तत्त्वज्ञ व्यक्ति अपात्र को दान नहीं देते । जो ब्राह्मण विद्वान्, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी, संयमी, ध्यानी और जितेन्द्रिय हों, वहीं दान के पात्र होते हैं । दान पात्र इसमें शेष है । संवर्त्त का कथन है—श्रोत्रिय, दरिद्र, खाशकर याचक ब्राह्मण के लिए जो दान दिया जाता है, वह दान शुभकारक होता है ।

मैथिली—आव उत्तमादिदानक विषय में कहलगेल अछि—अन्न, मधु, दही, रक्षणक वस्तु, गाय, धरती, रत्न, हाथी एवं घोड़ा उत्तम द्रव्य दानक अपेक्षा उत्तम दान कहलगेल अछि । त्राणम् अर्थात् रक्षणम् । विद्या, संच्छादन, आवास, परिभोग एवं औषधिक दान मध्यम द्रव्य दानक अपेक्षा मध्यम कोटिक दान कहवैत अछि । पनही, झूला, क्षत्र, बर्त्तन, आसन, दीप एवं काष्ठफलादिक दान बहुत वर्ष धरि रहो वाला अधम कोटिक दान कहवैत अछि । चरमम् = अधम । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणक प्रकृति खण्ड में—आनक पोखरि के अपन पोखरि बनाय जे दुर्भाग्य वश दान कय दैत छथि हुनका मूत्रकुण्ड में जाय पड़ैत छैन्हि ।

ताहिठाम—पोखरी खुनयवाक जे फल होयत अछि सेऽह फल पोखरिक पङ्कोद्धार कयने होयत अछि । तहिना बाउलीक पङ्कोद्धार कयने बाउली खुनयवाक फल भेटैत अछि । मत्स्यपुराणक वचन अछि—बाउली, कूप, पोखरि एवं देव मन्दिरक जे जीर्णोद्धार करावैत छथि हुनका मौक्तिक फल प्राप्त होयत छैन्हि । शातातप—प्रतिग्रही तथा याचकक लऽग स्वयं उपस्थित भय जे दान दैत छथि हुनक दानक अन्त सागरान्तक वादोधरि नहि होयत छैन्हि ।

अभिगत्य = प्रतिग्राहीक समीप स्वयं उपस्थित भऽ के । श्रद्धारहित भावनापूर्वक अन्यायोपार्जित सम्पूर्ण धरती यदि क्यो दान कय दथु तथापि अहिदान सँ हुनका किछु नहि भेटैत छन्हि । अधिगताम् = उपार्जित ।

श्रद्धाभक्तियुक्त जे व्यक्ति कोनो सत्पात्र के एक मुठिशाकक दान करैत छथि, हुनक सर्वविध अभ्युदय होयत छैन्हि । याज्ञवल्क्य—गाय, धरती, तिल,

सोन प्रभृति सत्पात्रक पूजाकय दान करवाक चाही । आत्मकल्याण कामी विचार शील व्यक्ति अपात्र के दान नहि दैत छथि । जे ब्राह्मण विद्वान्, सुव्रत, तपस्वी, सत्यवादी संयमशील एवं जितेन्द्रिय छथि, सेऽह दानक सत्पात्र होयत छथि, दान पात्र शब्द शेष अछि ।

संवर्त्तक वचन अछि—श्रोत्रिय एवं दरिद्र विशेषतः याचक ब्राह्मण के जे दान दैत छथि से दान शुभ कारक होयत अछि ।

विमर्श:—याज्ञवल्क्येनाह प्रतिग्राहीपात्रस्य यथार्थता—

न विद्यया केवलया तपसां वापि पात्रता ।
यत्र वृत्तिमिमे चोभे तद्धिपात्रं प्रकीर्त्तिता ।।

श्रोत्रियलक्षणमाह यमः—

'ओंकारपूर्विकास्तिस्रः सावित्रीं यश्च विन्दति ।
चरति ब्रह्मचर्यञ्च स वै श्रोत्रिय उच्यते ।।
अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भिक्षाचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदो हि सः ।।'

व्यासः— 'सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
अधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ।।'

अब्राह्मणो राजसेवकादिः । ब्राह्मणब्रुवमाह व्यासः—

'गर्भाधानादिभिर्युक्तस्तथोपनयनेन च ।
कर्मकृच्च न चाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ।।'

बृहस्पतिः— 'शूद्रे समगुणं दानं वैश्ये च द्विगुणं स्मृतम् ।
क्षत्रिये त्रिगुणं प्राहुर्ब्राह्मणे षड्गुणं स्मृतम् ।।
श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्ये द्विगुणं ततः ।
आत्मज्ञे शतसाहस्रमनन्तं त्वग्निहोत्रिणे ।।'

अल्पविद्यस्याल्पं बहुविद्यस्यं बहुदेयमिति चण्डेश्वरः । दाने व्यासः —

'मातापितृषु यद्दानं भ्रातृस्वसृसुतादिषु ।
जायात्मजेषु यद्दानं सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ।।'

असाधारणधनदाने फलमिदम् । दक्षः—

'दीनानाथविशिष्टेभ्यो दत्तं च सफलं भवेत् ।'

दीनः क्षीणनिर्वाहोपायः । अनाथः पोषकहीनः ।

व्यासः— 'दयामुद्दिश्य यद्दानमपात्रेभ्योऽपि दीयते ।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च तदानन्त्याय कल्प्यते ।।'

कृपणो विकल: । विष्णु:—

'न दानं यशसे दद्यान्न भयान्नोपकारिणे ।
न नृत्यगीतशीलेभ्यो धर्मार्थमिति निश्चय: ।।'

उपकारिणे इति प्रत्युपकारिणे धर्मार्थमित्यर्थ: । शातातप:—

'ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ।।'

ब्राह्मणातिक्रम इति दोषायेति शेष: । यम:—

'न प्रतिग्रहमर्हन्ति वृषलाध्यापका द्विजा: ।
शूद्रस्याध्यापनाद्विप्र: पतत्येव न संशय: ।।'

वृषल: शूद्र: । व्यास:—

'नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ।
रोदित्यन्नं दीयमानं मया दुष्कर्म किं कृतम् ।।'

हिरण्यविस्मरणे विस्मृततुल्यहिरण्यदानमाह । द्वैतपरिशिष्टे—

'प्रमादतस्तु यन्नष्टं तावन्मात्रं नियोजयेत् ।
अन्यथास्तेयभागी स्याद्धेम्न्यदत्ते विनाशिनि ।।'

उत्सृष्टाप्रतिपादितपर इति रत्नाकर: ।

साम्प्रदायिकास्तु—सर्वत्र संकोचात्प्रायश्चित्तमाचरन्ति चौर्यादिना केनापि हृतसुवर्णेन हृततुल्यहिरण्यदानं प्रमादत इत्यभिधानादित्यवगम्यते किन्तु विस्मरणादिना हिरण्यविनाशे विनष्टहिरण्यतुल्यहिरण्यदानम् । तस्यादाने हिरण्यचौर्यदोषभागित्वम् । तद्दानप्रकारस्तु ॐ प्रमादनष्टहिरण्यतुल्यहिरण्याय नम: ३ इति देयहिरण्योपरि अक्षतान्विकीर्य कुशोपरि ३ ॐ ब्राह्मणाय नम: ३ देयहिरण्यं सिक्त्वा कुशादिकमादाय ॐ अद्य मत्प्रमादनष्टहिरण्यतुल्यपरिमाणं हिरण्यप्रदानहेतुकहिरण्यस्तेयजन्यपापापनुत्तिकाम इदं प्रमादनष्टहिरण्यतुल्यपरिमाणं हिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाहं ददे । तादृशांशं षोडशांशं वा दक्षिणां दद्यात् । हारीत:—'तस्मादवोक्ष्य दद्यादालभ्य चेति' अवोक्ष्य सिक्त्वा, आलभ्य स्पृष्ट्वा । दद्यादित्यर्थ: । स्मृति:—

'दद्यात्पूर्वमुखं दानं गृह्णीयादुत्तरामुख: ।
नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो देवकीर्तनात् ।।
उदङ्मुखाय विप्राय दत्त्वान्ते स्वस्ति वाचयेत् ।'

नन्दिपुराणे— 'तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दद्यात्कनकदक्षिणाम् ।।'

एतच्च पितृकार्यातिरिक्ते । पितृकार्ये तु रजतमेव दक्षिणेति बोध्यम् ।

हिन्दी—श्रोत्रिय का लक्षण 'यम' ने कहा है—ॐकारपूर्वक व्याहृति त्रय के साथ सावित्री मन्त्र को जिसने त्रिकाल अधिगत कर लिया है तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए सतत् जो वेदाध्ययन में तत्पर रहता है, उसे ही श्रोत्रिय कहते हैं । जो ब्राह्मण धार्मिक संस्कार तथा अन्यधर्मानुष्ठान का पालन नहीं करता हो, वेदाध्ययन न करता हो, पर वह भीख मांगते हुए जिस गांव में घूमता हो, राजा को चाहिए कि वह उस गांव को दण्डित करे क्योकि वह चौरभक्त प्रद होता हैं ।

व्यास—अब्राह्मण अर्थात् राज सेवकादि ब्राह्मण को दिए गये दान का फल सामान्य होता है तथा ब्राह्मण ब्रुवम् अर्थात् बोलने भर के लिए ब्राह्मण को दिये गये दान उससे दूने फलदायक होते हैं, तथा खूब पढ़े लिखे अर्थात् निष्णात् ब्राह्मणों को दिये गए दान शत सहस्र गुना अधिक फलदायक होते हैं तथा वेद में पारङ्गत ब्राह्मण को दिये गये दान अनन्त फल दायक होते हैं । अब्राह्मण = राजसेवकादि । ब्राह्मणब्रुव का लक्षण व्यास जी ने कहा है—गर्भाधान से लेकर उपनयन तक सारे संस्कारों से सम्पन्न किन्तु, वेदाध्ययन विहीन ब्राह्मण ब्रुव कहते हैं ।

बृहस्पति का वचन है—शूद्र को दिया गया दान सामान्य होता है, वैश्य को दूना क्षत्रियों को तिगुना, ब्राह्मणों को छःगुना, श्रोत्रियों को हजार गुना, आचार्य को उससे दूना आत्मज्ञानी को शतसहस्र गुना अधिक और अग्निहोत्री को दिये गये दान अनन्त फलदायक होता है । चण्डेश्वर का मत है कि कम पढ़े लिखे लोगों का दान कम और ज्यादे पढ़े लिखे लोगों को दिये गये दान का अधिक फल मिलता है । दान के सम्बन्ध में व्यास का मत है—

माता, पिता, भाई, बहन, बेटी, बेटा और पत्नी प्रभृति को जो दान दिया जाता है वह अन्तहीन स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करता है । असाधारणधन दान का यह फल होता है । दक्ष की उक्ति है—विशेषरूप से गरीब और अनाथों को दिया गया दान सफल होता है ।' दीन = जीवन निर्वाह के उपाय जिसे नहीं हों । अनाथ = पालक विहीन ।

व्यास की उक्ति—तरस खाकर किसी अपात्र को भी जो दान दिया जाय, गरीबों, अन्धों और असहायों को दिया जाय वह दान अनन्तकालीन फलदायक होता है । कृपण: = विकल । विष्णुपुराण का वचन है—अपने यशोवर्द्धन के लिए, किसी से डरकर, अपने उपकारी को तथा नाच गाकर जीविकोपार्जन करने वाले को निश्चयपूर्वक धर्मार्थ दान नहीं देना चाहिए । धर्मार्थ उपकारियों का प्रत्युपकार करना चाहिए । शातातप का कथन है—**वेदज्ञान विहीन ब्राह्मणों का अतिक्रमण दोषावह नहीं होता है । क्योंकि,**

प्रज्वलित आग को छोड़कर राख में तो कोई हवन नहीं करता? ब्राह्मणातिक्रम = दोष के लिए । यम की उक्ति है—शूद्रों को पढ़ाने वाला ब्राह्मण दान लेने योग्य नहीं हो सकता है । क्योंकि, शूद्रों को पढ़ाने से ब्राह्मणों का पतन हो जाता है । इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए । वृषलः = शूद्र ।

व्यास का वचन है—खोई हुई पवित्रतावाले, व्रत से विचलित, वेदज्ञान विहीन ब्राह्मणों को जो दान दिया जाता है, वह दीयमान अन्न यह कहकर रोता है, हाय, मैंने यह कैसा दुष्कर्म किया? सोना खो जाने पर, जितना सोना खो जाये उतना ही दान करने के सम्बन्ध में द्वैतपरिशिष्ट में कहा गया है—

भूल से यदि कोई सोना खो जाये, तो उतने ही सोने का विनियोग करना चाहिए । नहीं तो वह चोरी का हकदार हो जाता है। यह भागीदारी सोना देने पर मिटती है । उत्सृष्ट = अप्रतिपादित पर । यह रत्नाकर का विचार है ।

परम्परा प्राप्त सिद्धान्त के अनुसार—हर जगह संक्षिप्त रूप से प्रायश्चित का विधान है । चौरादि के द्वारा किसी से अपहत सोने के बराबर सुवर्णदान 'असावधानी' से इस कथन से जानना चाहिए । भूल से यदि सोना कहीं खो जाये तो उतना ही वजन का सोना दान करना चाहिए, अन्यथा सोना चुराने के दोष का भागी होता है ।

दान कैसे किया जाय? वह बतलाते हैं—'ॐ प्रमाद नष्ट हिरण्य तुल्य हिरण्यायनमः' यह पढकर उस सोने पर तीन बार अक्षत छींटे । वही रक्खे कुश पर तीनवार 'ॐ ब्राह्मणायनमः' कहकर अक्षत छींटे, फिर देय सोने पर जल सींचकर हाथ में कुशादि लेकर पढ़े 'ॐ अद्य मत्प्रमादनष्ट हिरण्य तुल्य परिमाणं हिरण्याप्रदान हेतुक हिरण्यस्तेयजन्य पापानुत्पत्ति काम इदं प्रमाद नष्ट हिरण्यतुल्य परिमाणं हिरण्यमग्निदैवतं यथानाम गोत्राय ब्राह्मणायाहं ददे ।' यह पढकर स्वर्णदान करे । स्वर्ण का दसवाँ या सोलहवाँ भाग, उस स्वर्णदान का दक्षिणा के रूप में दे । हारीत का कहना है कि उस सोने पर जल छींटकर तथा उसे छूकर दानकर दें । इति । अवोक्ष्य = जल सिञ्चनकर, आलभ्य = छूकर दे दे ।'

स्मृति का वचन है—पूर्व मुख होकर दान दे, उत्तर मुँह दान स्वीकार करें । देवता का नाम कीर्त्तन करते हुए अपना नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर उत्तर मुख ब्राह्मण को देकर अन्त में 'स्वस्ति' कहवाना चाहिए । नन्दिपुराण में लिखा है—'इसीलिए पूराप्रयास कर सोना दक्षिणा में देना चाहिए ।' और इस तरह पितृकार्यातिरिक्त में सुवर्णदीक तथा पितृकार्य में चाँदी ही दक्षिणा में देना चाहिए ।

मैथिली—श्रोत्रियक लक्षण यम कहने छथि—ओङ्कारपूर्वक तीनू व्याहृति संग गायत्री मन्त्रक बोध जिनका होन्हि तथा ब्राह्मचर्य व्रतक जे पालन करैत होथि से श्रोत्रिय कहवैत छथि । जाहि ग्राम में बिना व्रतक पालन कयने विनावेदाध्ययन कयने ब्राह्मण भिक्षाटन करथि ताहि ग्राम के राजा दण्डित करथु, कियेक तऽओग्राम चौर भक्त प्रद होयत अछि । व्यासक वचन—राज सेवक प्रभृति ब्राह्मण के जे किछु दान देल जाय ओ दान सामान्य दान होयत अछि । ओकर दोवर फल ब्राह्मण अपना के कहनिहार व्यक्ति के दान देने तथा अध्ययनशील वा निष्णात ब्राह्मण के दान देने ओकर शत सहस्र गुना अधिक फल भेटैत छैक तथा वेदज्ञ ब्राह्मण के देलदान अनन्त फलदायी होयत अछि । अब्राह्मण = राजसेवकादि । ब्राह्मण ब्रुवः क लक्षण व्यास कहैत छथि—

गर्भाधानादि संस्कार सँ लऽक उपनयन धरि जाहि ब्राह्मणक विधिवत् संस्कार भेल होय मुदा अध्ययनहीन ब्राह्मण 'ब्राह्मणब्रुव' कहवैत छथि । बृहस्पतिक वचन—शूद्र के देल दान समगुण, वैश्यक द्विगुण, क्षत्रिय के देल त्रिगुण, ब्राह्मण के देल दान छः गुना अधिक, श्रोत्रिय के देल दान हजार गुना अधिक, गुरुक देल दान ओकर द्विगुण अधिक, आत्मज्ञ के देल दान शब सदृस गुणा अधिक एवं अग्निहोत्री ब्राह्मण के देलदान अनन्त फलदायी होयत अछि । चण्डेश्वर के विचार छैन्हि जे कम पढल लिखल लोक के दान देले अल्प फल एवं अधिक पढल लिखल लोकनिके दान देने अधिक फल भेटैंत छैक । दानक सम्बन्ध में व्यासक मत—माता, पिता, भांय, बहिन, पुत्री, पत्नी, तथा पुत्र के जे दान देल जाय वो दान अनन्त स्वर्गक सुख दिए । असाधारण धनक दान कयने दक्ष ई फल कहैत छथि—दीन एवं अनाथ लोकनिके विशेष रूपे देलदान सफल होयत अछि । दीनः = क्षीणनिर्वाहक उपायवाला जोक । अनाथः—पोषक विहीन लोक । व्यासक वचनः—दया सँ द्रवीभूत भय, अपात्रो के दान देल जाय तथा दरिद्र, आन्धर एवं असहाय के जे दान देल जाय से दान अनन्त फल दायक होयत अछि । कृपयाः = विकल । विष्णुपुराणक वचन अछिः—यशक कामना सँ दान नहि देवाक चाही, ककरो डर से सेहो दान नहि देवाक चाही, उपकारी व्यक्ति के दान नहि देवाक चाही, धर्मकलेल नाच–गान करनि हार लोकनिक निश्चयपूर्वक दान नहि देवाक चाही ई निश्चित बूझी । उपकारिणे = अर्थात् धर्मार्थ उपकारीक प्रत्युपकार करवाक चाही । शातातपक वचन—वेदविहीन ब्राह्मण में ब्राह्मणाति क्रम जन्य दोष नहि होयत अछि । कियेक तऽ प्रज्वलित आगि के त्यागि क्यो भस्म में तऽ हवन नहि करैत छथि । ब्राह्मणाति क्रम में दोषाय शेष अछि । यमक उक्ति अछि—

शूद्र के पढ़ौनिहार ब्राह्मण दान लेवा योग्य नहि होयत छथि । यतः शूद्र के पढ़ौने संशय रहित ब्राह्मणक पतन होय वेटा करैत अछि । वृषलः = शूद्र । व्यासक उक्ति अछि—जाहि ब्राह्मणक पवित्रता भङ्ग भऽ जाय, व्रतभ्रष्ट भऽ जाय

आओर ओ वेदविहीन होथि, हुनक निमित्त दीयमान अन्न ई कहि कनैत अछि, हाय, हम की दुष्कर्म कयने छी । सोन हेरौने, विस्मृत सोन तुल्य सोनदानक सम्बन्ध में द्वैतपरिशिष्ट में कहलगेल अछि—अनवधानताक कारणे जतवा सोन नष्ट भऽजाय ततवहि सोन दानक देवाक चाही । दान नहि कयने सोन चोरयवाक भागी होय । ओतवा सोन दान कयला उत्तर अहिदोष से मुक्ति होय अन्यथा नहि । प्रदत्त दानक अभाव परक बात रत्नाकर कहने छथि ।

परम्परा प्राप्त सिद्धान्तानुसार—सभठाम संक्षिप्त रूपे प्रायश्चित्त कयल जायत अछि । चौर्यादिक कये द्वारा अपहृत सुवर्ण तुल्य सुवर्णदान 'प्रमादत:' अहि शब्दक उल्लेख सँ बुझवाक चाही, मुदा विस्मरणादि सँ सोन विनष्ट भेला उत्तर विस्मृत सुवर्ण तुल्य सोनक दान करवाक चाही । ई दान नहि कयने चौर्य दोषक भागी होय । ओकर दानक प्रकार 'ॐ प्रमाद नष्ट ... ... दक्षिणान्दद्यात् ।' हारीतक वचन ताहि सोन पर जल सिक्तकय ओकरा छुवि दानकरी । इति अवोक्ष्य = सींचि । आलभ्य = स्पर्श कय देवाक चाही ई अर्थ भेल । स्मृति में कहलगेल अछि—

पूर्वमुखभय दान देवाक चाही, उत्तराभिमुखभय दान लेवाक चाही । देवकीर्त्तन करैत नाम एवं गोत्रक उच्चारण कय पूर्वाभिमुख भय, उत्तराभिमुख ब्राह्मण के दान देलाक बाद स्वस्ति वाचन करी ।' नन्दिपुराण में कहलगेल अछि—'ताँय प्रयासपूर्वक सुवर्णदक्षिणा देवाक चाही ।' ई सभ पितृकार्य सँ भिन्नकलेल कहलगेल अछि, पितृकार्य में 'रजत' दक्षिणा हयवाक चाही ।

विमर्श:—अपात्रदानप्रसङ्गे दक्षवचनम्—

'धूर्त्ते क्षद्मनि मल्ले च कुविद्ये कितवे शठे । चाटचारणचौरेषु दत्तं भवति निष्फलम् ।।'

प्रसङ्गेऽस्मिन् व्यासोऽपि—ऊषरे वापितं बीजं यच्च भस्मनि हूयते ।
क्रियाहीनेषु यद्दत्तं न च तत्प्रेत्य नो इह ।।

मूर्खाय दानप्रसङ्गे स्मृतिवचनम्—आहारादधिकं नान्नं देयं मूर्खाय कर्हिचित् ।
दाता नरकमाप्नोति दत्तवित्ताद्यत: ।।

कस्मैदानं देयमस्मिन् प्रसङ्गे वृद्धमनु:—

पात्र भूतोऽपि यो विप्र: प्रतिगृह्य प्रतिग्रह: । असत्सु विनियुञ्जीत तस्मै देयं न किंचन ।।
सञ्चयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समन्तत: । धर्मार्थं नोपयुंक्ते च न तं तस्करमर्चयेत् ।।

ब्राह्मणातिक्रमप्रसङ्गे नीतिवचनम्—विप्रोऽल्पज्ञोऽपि सम्पूज्यो नहि वेदविदन्त्यज: ।
बन्ध्याऽपि गौर्यथा पूज्या न तु दुग्धवती खरी ।।

बृहस्पति:— 'कुटुम्बभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते ।
मध्वाश्वादौ विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ।।'

तथा च पोष्यपोषणयोग्यं धृत्वा तदतिरिक्तमेव देयम्, न तु पोष्यपोषणयोग्यमपीति तात्पर्यम् । वृद्धशातातपः—

'द्रव्येणान्यायलब्धेन यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।
न तत्फलमवाप्नोति तस्यार्थस्य दुरागमात् ॥'

और्ध्वदैहिकं श्राद्धादि । अङ्गिराः—

'बहुभ्यो न प्रदीयन्ते गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।
विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयन्ति हि ॥'

जीर्णोद्धारे—'यत्र चैकोऽश्वो गौर्वा द्वयोर्देयत्वेन विहितस्तत्र मूल्यद्वारेण तद्विभागः संप्रदानेनैव कर्त्तव्यः' इति ।

महार्णवे तु—एका गौरनेकस्मै मूल्यद्वारेण दातव्या, न तु स्वरूपेण ।

'एका एकस्य दातव्या न बहुभ्यः कदाचन ।
सा विभक्ता च विक्रीता दहत्यासप्तमं कुलम् ॥'

इति निषेधादिति यदुक्तं तद्विहितेतरबहुसंप्रदानकगोस्वरूपदानपरमिति सिद्धान्तवागीशः । अङ्गिराः—

'देवतानां गुरुणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ।
पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं देशितं क्वचित् ॥

अपुण्यं पापम् । देशितं कथितम् । नन्दिपुराणे—

'पापदः पापमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा ।
पुण्यदः पुण्यमाप्नोति शतशोऽथ सहस्रशः' ॥

यमः— 'कन्याप्रदाने यज्ञे वा अन्यस्मिन् धर्मसङ्कटे• ।
विघ्नमाचरते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥
आसां दत्त्वाह्यदातारं दानकाले निषेधकम् ।
दत्त्वा सन्तप्यते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥'

दानकाले इत्युपलक्षणम् । तेन तत्पूर्वमपि दानप्रतिरोधकवाक्यादिकथनेऽपि दोष एव । आदित्यपुराणे—

'किं करिष्यत्यसौ मूढो गृह्णन्नुभयतोमुखीम् ।
सहस्रं वारुणाः पाशाः क्षुरधारासिसंयुताः ॥'

उभयतोमुखी निःसृतवत्समुखमात्रा । तद्दानकर्त्तुर्भूमिदानसमं फलं भवतीत्युक्तम् । एकादशाहे शय्यादानप्रकरणे—

'गृहीतायां तु तस्यां स पुनः संस्कारमर्हति ।
वेदेषु चपुराणेषु शय्या सर्वत्र गर्हिता ॥'

तस्यां शय्यायां पुनः संस्कारः पुनरुपनयनम् ।

षोडशमहादानान्याह—'आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम् ।
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ॥
कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम् ।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव हि ॥
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ।
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च ॥
द्वादशं विश्वचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम् ।
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च ॥
महाभूतघटस्तद्वत्षोडशः परिकीर्तितः ॥'

हिन्दी—बृहस्पति का वचन है—परिवार के अन्नवस्त्र की व्यवस्था पूरी करलेने के बाद जो कुछ बच जाय उसे दान करना चाहिए । खाने में शहद की तरह मीठा किन्तु 'पीछे जहर' इस नियम से भिन्न ही दाता का धर्म होना चाहिए । और इसी प्रकार संपालनीय व्यक्ति के पालन पोषण करने योग्य धन रखकर उससे बचे धन का दान करना चाहिए न कि पोष्य पोषण योग्य धन भी, यही इस कथन का अभिप्राय है । वृद्धशातातप का कथन है—अन्यायपूर्वक उपार्जित धन से जो श्राद्धादिक क्रिया करता है, उस क्रिया का फल उसे प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, वह धन अवैध अधिग्रहण से इसे प्राप्त होता है । आर्ध्व दैहिकम् = श्राद्धादिक । अङ्गिरा का वचन है—एक से अधिक लोगों के लिए, गाय, घर, शय्या, और स्त्री नहीं दान करना चाहिए । एक से अधिक प्रतिग्रहीता होने की स्थिति में जो दाता दक्षिणा बाँट कर अलग अलग देते हैं वे तर जाते हैं ।

जीर्णोद्धार में लिखा है—जहाँ एक घोड़ा या एक गाय दो व्यक्ति के लिए देना पड़े तो उनका मूल्य निर्धारित कर उनके बीच बांट देना चाहिए । महार्णव में तो लिखा है—एक गाय अनेक प्रतिग्रहीताओं के बीच यदि दान देने की स्थिति हो तो गाय का मूल्य निर्धारित कर मूल्याङ्कित द्रव्य ही उनके बीच बाँट देना चाहिए, न कि स्वरूप से गोदान करना चाहिए । एक गाय एक ही व्यक्ति को देना चाहिए । अनेक व्यक्ति के लिए एक गाय किसी भी स्थिति में नहीं देना चाहिए । उसका विभाजन और विक्रय दाता के सात कुल को जला डालता है इस निषेध से जो कुछ कहा गया है वह विहित दान भिन्न बहु संप्रादानक गोस्वरूप दानपरक ही हैं' ऐसा सिद्धान्त वागीश का विचार है । अङ्गिरा का वचन—

देवताओं, गुरुओं एवं मातापिताओं को प्रयत्नपूर्वक पुण्य प्रदान करना चाहिए, पाप प्रदान का कहीं भी कथन नहीं मिलता है । अपुण्यम् = पाप, देशितम् = कथित । नन्दिपुराण में लिखा है—पाप प्रदान करने वाला व्यक्ति हमेशा अपने दिये हुए पाप का लाख गुना अधिक पाप पाता है । पुण्य प्रदान करने वाला व्यक्ति, अपने दिये हुए पुण्य की सैकड़ों-सहस्रों गुना अधिक पुण्य फल प्राप्त करता है ।'

यम की उक्ति है—किसी के कन्यादान में अथवा यज्ञ में या कोई अन्य धर्म संकट में जो कोई विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है । दान की आशा दिला कर जो दान न दे या किसी तरह के दान का प्रतिरोध करे अथवा दान देकर प्रदत्त वस्तु के लिए जो सन्ताप करे, उसे ब्रह्मघाती कहते हैं । दानकाले = यह एक उपलक्षण है । इससे-उससे पूर्व भी दान प्रतिरोधक वाक्यादि कहने पर भी दोष ही होता है ।

आदित्यपुराण में लिखा है—इस व्यक्ति के लिए हजारों वरुण पाश जकड़ नहीं सकते, पनियल तीव्र तलवार की धार भी उसके सामने जड़ीभूत बन जाती है जिसने व्याती हुई गाय दान करे । उभयतोमुखी = व्याती हुई गाय । (इस सन्दर्भ में कहा गया है—यावद्वत्सोयोनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति । तावद्वौ: पृथिवीज्ञेया सशैलवनकानना । चतरर्णाभवेदत्ता पृथिवी नात्र संशय:) व्याती हुई गाय दान करने वाले व्यक्ति को समस्ती भूमि दान का फल मिलता है । एकादशाह में शय्यादान प्रकरण में कहा गया है—शय्यादान जो ग्रहण करता है, उसका फिर से उपनयन संस्कार करने पर ही शुद्धि होती है । वेदों और पुराणों में सर्वत्र शय्या निन्दित कही गई है ।

तस्यां = शय्या में, पुन: संस्कारम् = फिर से उपनयन हो ।

अब सोलह तरह के महादान के सम्बन्ध में बतलाते हैं—सर्वप्रथम तुला दान पश्चात्, सुवर्णनिर्मित ब्रह्मा का दान, उसके पश्चात् ब्रह्माण्ड का दान, इन्द्र का स्वर्गदान या कल्पवृक्ष का दान, हजारों गाय का दान, सोने की कामधेनु का दान, तथा सोने का घोड़ा, उसी तरह सोने का अश्वयुक्तरथ, सोने का हाथी, सोने का रथ, उसी तरह पञ्चलाङ्गलक तथा सम्पूर्ण धरती का दान, बारह सुवर्ण विश्व चक्र, उसके बाद सुवर्णकल्पलता का दान, सप्तसागर दानउसी तरह रत्न निर्मित धेनुदान उसी तरह महाभूत घटदान, ये सोलह वस्तुओं का दान महादान कहलाता है ।

मैथिली—ई सुवर्णादि दान पितृकार्य सँ भिन्न कार्य कलेल कहल गेल अछि, पितृकर्म में तऽ चाँदीक दक्षिणा सेह बुझवाक चाही । बृहस्पतिक वचन

अछि—परिवारक भरण पोषणक अतिरिक्त जे किछु वौचि जांय तकरे दान करवाक चाही । आस्वाद में मधुक तुल्यमीठ किञ्च परिणाम में तत्पश्चात् जहर सन एकरा सँ भिन्ने दाताक धर्म बुझवाक चाही ।

अहिमा पोष्यपोषण योग्य राशि तदतिरिक्ते देवाक चाही । नकि परिवरक भरणपोषण योग्यों वस्तक दान करी ई तात्पर्य भेल ।

वृद्धशातातपक कथन अछि—अेक्या और्ध्व दैहिक क्रिया अन्यायोपार्जित धन सँ करैत छथि हुनका लोकनिके ताहि क्रियाक फल नहिं भेंटैत छन्हि । कियेकतऽ ओधन अवैध अ़धि ग्रहण सँ उपलब्ध होयत छैक । और्ध्वदैहिकम् = श्राद्धादिकक्रिया । अङ्गिराक वचन—गाय, घर, शय्या, स्त्रीक दान अनेक प्रतिगृहीतीकलेल नहिं करवाक चाही । यदि दान प्रतिगृहीता अनेक होय तऽ उपयुक्त वस्तु दक्षिणा निर्धारित कय हुनका लोकनिक बीच वितरितक देवाक चाही । एहन कनिहार दाताक उद्धार होयत छैन्हि ।

जीर्णोद्धार में—जाहिठाम एकटा घोड़ा या गाय दुई लोकक बीच वाँटवाक होय ताहिठाम ओकर मूल्य निर्धारित कय दान कयदेवाक चाही ।' महार्णव में कहलगेल अछि—'एकटा गाय अनेक व्यक्तिकलेल मूल्य निर्धारण कय देवाक चाही न कि स्वरूपेण ।' एकटा गाय एके व्यक्ति के दान में देवाक चाही, कोनो स्थिति में एकटा गाय अनेक व्यक्ति कलेल नहि देवाक चाही । यदि ओगाय वाँटल जाय किम्बा वेचल जाय तऽ दाताक सात कुल के जलादिये । अहिनिषेध सँ पूर्वाक्त विहित भिन्न बहुसम्प्रदानक गोस्वरूप दान परक अछि ई सिद्धान्त वागीशक मत अछि ।

अङ्गिराक वचन अछि—देवता, गुरु एवं माता—पिताकलेल प्रयासपूर्वको पुण्ये देय होयत अछि पापो देय होयत अछि एकर कतौ कथन नहि अछि । नन्दिपुराणक वचन अछि—पापदेनिहार व्यक्ति अपन देल पापक लाखगुना अधिक पाप सदा पावैत छथि अहिना पुण्यप्रदाता व्यक्ति अपनदेल पुण्यक शतसहस्रगुना अधिक पुण्य प्राप्त करैत छथि ।

यमक कथन छैन्हि—कन्यादान में, या में अथवा कोनो आन धर्म संकट
में जे व्यक्ति कोनो तरहक विघ्न उपस्थित करैथि ओ ब्रह्मघाती कहवैत छथि ।
आश दऽके जे निराश करैथि, दानकाल में जे क्यों निषेध करथि तथा किछु दऽकै
सन्तापकरथि हुनका ब्रह्महत्याक पाप लगैत छन्हि । 'दान काले' ई पद उपलक्षण
अछि । एकरा सँ पूर्वो दान प्रतिरोधक वाक्यादि कहला उत्तर दोष होयत अछि ।
आदित्यपुराणक कथन अछि—जे क्यो बच्चा दैत गाय दान करैत छथि
का सहस्र वारुणपाश वा तीव्रधारक तरुआरि की विगाड़तैन्हि, अर्थात् किछु
नांहे । उभयतोमुखी = विआवैत गाय । एकर दान कनिहार व्यक्ति के पृथ्वीदानक
फल भेटैत छैन्हि । एकादशाह में शय्यादान प्रकरण में कहलगेल अछि—

जे क्यो एकादशाह में दान कयल शय्या ग्रहण करैत छथि ओ व्यक्ति पुनः संस्कार कयने पवित्र होयत छथि' वेद एवंपुराण में सर्वत्र शय्या निन्दित अछि । तस्याम् = अर्थात् शय्या में, पुनः संस्कारम् = पुनः आनयन ।

आव सोलह तरहक महादानक सम्बन्ध में—सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठदान तुलापुरुष दान, तस्पश्चात् हिरण्य गर्भ दान, ब्रह्माण्ड दान, कल्पपादप दान, पञ्चम सहस्त्र गोदान, स्वर्णनिर्मित कामधेनु दान, सुवर्ण निर्मित अश्वदान, सोनक अश्वक संग रथक दान, अहिना सोनक हाथीक संग रथक दान पाँचटा स्वर्ण निर्मित हलक दान, तहिना पृथ्वीक दान, बारहम विश्व चक्रक दान, कल्पलताक दान, सप्त सागरक दान, रत्न धेनुक दान, सोलहम महाभूतघटदान, ई सोलहटा महादान कहवैत अछि ।

विमर्श:—याज्ञवल्क्यस्मृतिवचनम्—

सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम् । दाताऽस्याः स्वर्गमाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत् ॥
यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते । तवाद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥

अन्यच्च—यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति ।

तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकाननम् । चतुरर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥

तुलापुरुषदानञ्च—'तुलापुरुषस्य तुलोन्मितपुरुषभारसमपरिमिति द्रव्यदानम् ।'

तत्र द्रव्यभेदेन फलभेदाः—

अष्टानामपि धातूनां यस्तुलां कुरुते नरः । सर्वपापैः प्रमुच्येत मनोवाक्कायसंभवः ॥

अथ दानदेशानाह—

'तीर्थे चायतने गोष्ठे कूपारामसरस्सु च ।
गृहे वाऽपि वने वापि तडागे रुचिरे तथा ॥
महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा ।
अनित्यं जीवनं यस्माद्वसु चातीव चञ्चलम् ॥
केशेष्विव गृहीतस्तु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।'

तडागे इत्यादौ सामीप्ये सप्तमी, तेन तडागादिसमीप इत्यर्थः 'वटे गावः सुशेरते' इतिवत् ।

'अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।
युगादौ वोपरागे च तथा मन्वन्तरादिषु ॥
संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ॥
यज्ञात्मके विवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ।
द्रव्यब्राह्मणलाभे च श्रद्धा वा यत्र जायते ॥'

अत्र गुरुशुक्रबाल्यवार्द्धक्यास्तमयसिंहादित्यगुर्वादित्यपौषादिमासचतुष्टयान्यतमैकद्वित्रितदधिकान्यतमदिनवृष्ट्युत्तरैकद्वित्रिसप्तान्यतमादिनिषिद्धसमयादन्यस्मिन इति दानरत्नाकरः ।

'श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रा   नागदैवतमस्तके ।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः षडुच्यते ॥'

हिन्दी—अब दान देने के स्थान का उल्लेख—तीर्थस्थान में, आवास में, गोशाला में, कुँए के समीप, बगीचे में, सरोवर के समीप घर में जंगल में भी सुन्दर पोखरे के समीप भी संसार के भय से डरे व्यक्ति को महादान देना चाहिए । जीवन तो क्षणभंगुर है । धन-सम्पति चञ्चल है । मौत चोटी पकड़ रक्खी है, ऐसा सोचकर धर्म का आचरण करना चाहिए । 'तडागे' इत्यादि में सामीप्यार्थक सप्तमी है । इससे तड़ाग आदि के समीप अर्थ का बोध होता है । जैसे 'वटे गावः सुशेरते' । अयन में (अर्थात् सूर्य के मार्ग में, सूर्य की विषुवत् रेखा सें उत्तर या दक्षिण की ओर गति को अयन कहते हैं, जैसे उत्तरायण या दक्षिणायन) विषुव में (मेषराशि या तुला राशि का प्रथम विन्दु जिसमें सूर्य शारदीय या वासन्तिक विषुव में प्रविष्ट होता है, विषुवीय बिन्दु) । पुण्यकाल में, व्यतीपात योग में, दिनक्षय में, युगादि में, वा उपराग में तथा मन्वन्तरादि में, संक्रान्तिकाल में, वैधृति में, चतुर्दशी और अष्टमी में, शुक्ल पञ्चदशी में पूर्णिमा या शुक्ल प्रतिपदा, द्वादशी में और अष्टका अर्थात् पूर्णिमा के पश्चात् सप्तमी से आरम्भ करके आने वाले तीन दिन 'सप्तमी, अष्टमी और नवमी में, यज्ञात्मक अर्थात् ईश्वर निमित्तकता में, विवाह में, अद्भुत दुःस्वप्न दर्शन में, द्रव्य एवं ब्राह्मण मिलने पर अथवा जहाँ श्रद्धा हो वहीं दान करना चाहिए ।

यहाँ गुरु और शुक्र के बाल्य और वार्द्धक्य, अस्तमय सिहादित्य एवं गुर्वादित्य पौषादि चार महीनों में से कोई एक महीने, एक, दो, तीन या उससे अधिक अन्यतम दिन, वृष्ट्युत्तर एक, दो, तीन और सातके अन्यतम दिन निषिद्ध समय होने के कारण इससे भिन्न दिनों में दान करना चाहिए, यह दान रत्नाकर का विचार है ।

श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, श्लेषा लक्षत्र यदि अमावास्या तिथि में रविवार के दिन हो तो उसे व्यतीपात योग कहते हैं ।

मैथिली—आव दान देशक स्थानक सम्बन्ध में—तीर्थस्थान में, आवास में, गोशाला में, कूपक समीप में, वाटिका में सरोवर में, घरऽ में, जंगल में, पोखरिक मुहार पर, संसारक भय सँभीत व्यक्ति के महादान देवाक चाही । ई जीवन क्षणभंगुर अछि, धनऽ, वित्त अति चंचल होयत अछि । मृत्युकेश पकड़ने

अछि, ई भुक्ति सतत्—धर्माचरण करवाक चाही । 'तड़ागे' कं सप्तमी सामीप्यार्थक अछि । वटे गाव: सुशेरवे जहाँ सामीप्य बोधक सप्तमी अछि ।

अयन में, विषुवीय दिन में, पुण्यकाल में, व्यतीपात योग में, दिनक्षय बिन्दु में युगादि में वा उपराग में तथा मन्वन्तरादि में, संक्रान्तिकाल में, वैधृतियोगक दिन में, चतुर्दशी एवं अष्टमी में, शुक्ल पञ्चदशी में, पूर्णिमा या शुक्ल प्रतिपदा में द्वादशी में, कृष्णपक्षक सप्तमी अष्टमी एवं नवमी में, यज्ञात्मक विवाहादि में, अद्भुत दु:स्वप्न दर्शन में अथवा जतय श्रद्धा हो ताहिठाम दान करवाक चाही ।

अहिठाम गुरु एवं शुक्रक वाल्य या वार्द्धक्य एवं अस्त काल में, सिंहादित्य एवं गुर्वादित्य में, पौषादिमास चतुष्टयक अन्यतम, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तदधिक कोनो एक दिन, वृष्ण्युत्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीय सातम में कोनो एकदिन, निषिद्ध समयक अतिरिक्त कोनोदिन दान करवाक चाही ई दान रत्नक कथन अछि । श्रवणा, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा एवं आश्लेषा नक्षत्र में यदि अमावास्या रविवार युक्त होय त व्यतीपात योग कहल गेल अक्षि ।

अथ युगादि: । ब्रह्मपुराणे—

'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम् ।
कार्तिके शुक्लपक्षे च त्रेता तु नवमेऽहनि ।।
अथ भाद्रपदे कृष्णचतुर्दश्यां तु द्वापरम् ।
माघे तु पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं तथा ।
युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन कीर्त्तिता: ।।'

अथ मन्वन्तरादिमाह मत्स्यपुराणे—

'अश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिकेद्वादशी तथा ।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।।
श्रावणस्य त्वमावस्या पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ।।
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता ।
मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारका: ।।'

भूमिदाने जाबालि:—

'महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै: ।
दशहस्तां महीं दत्त्वा मुच्यते सर्वकिल्विषै: ।।
यत्किञ्चित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षित: ।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ।।'

अथ गोचर्मप्रमाणमाह—

'दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डैस्तथायतम् ।
दश तान्येव विस्तारो ब्राह्मं गोचर्मलक्षणम् ॥'

बृहस्पतिः— 'षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः ।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकं व्रजेत् ॥'

आक्षेप्ता हरणकर्त्ता। तान्येव षष्टिवर्षसहस्राण्येव । संख्यापरिमाणम्—

मात्स्ये— 'तडागानां सहस्रेण अश्वमेधशतेन च ।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता न शुध्यति ॥
स्वदत्तां परदत्तां च योऽहरेद्वै वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥
दाता दानं स्मरेन्नैव प्रतिग्राही न याचते ।
उभौ तौ नरकं यातो यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥'

ब्रह्माण्डे— 'यद्रोदानं तपो जप्यं श्राद्धं च सुरपूजनम् ।
गङ्गायां यत्कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥'

भविष्ये— 'यश्चाक्षयतृतीयायां गङ्गातीरे ददाति वै ।
घृतधेनुं विधानेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
सहस्रादित्यसंकाशः सर्वकामसमन्वितः ॥
तथैव गोप्रदानं च विधिना कुरुते तु यः ।
गोलोमसंख्यया तावत्कल्पान्यर्बुदसंख्यया ॥
गोलोके शिवलोके वा कामधेनुप्रजान्वितः ।
भुञ्जानः सर्वकामांस्तु दिव्यान्नानाविधान् बहून् ॥'

गङ्गायां निवर्त्तनद्वयभूमिदानमभिधाय तीर्थचिन्तामणौ । ब्रह्माण्डे—

'तद्भूमिपरमाणूनां संख्या याऽयुतसंख्यया ।
सोमेन्द्रब्रह्मलोकेषु विष्णुलोके तथैव च ॥
शिवलोके तथा श्रीमान् भोगं भुङ्क्ते तथाविधम् ॥'

अथ निवर्त्तनलक्षणमाह मात्स्ये—

'सप्तहस्तेन दण्डेन विंशद्दण्डान्निवर्त्तनम् ।
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ॥'

तथा— 'ग्रामं गङ्गातटे याऽसौ विप्रेभ्यः संप्रयच्छति ।
ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यश्च दुर्गायै भास्कराय च ॥
सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वव्रततपस्सु च ॥
सहस्रगुणितं तत्र फलं स्याद्ग्रामदानतः ।'

तत्रेति गङ्गायामित्यर्थः । तथा—

'यावत्तु ग्रामभूमेर्वै परमाणुषु संख्यया ।
भोगान् भुक्त्वा तथा लोके जायते योगिनां कुले ॥
अणिमादिगुणैर्युक्तः स्वयंभोगी भवत्यपि ।
देहान्ते निर्मले नित्ये परे ब्रह्मणि लीयते ॥'

तथा—'गोभूहिरण्यदानेन भक्त्या गङ्गातटे सकृत् ।
नरो न जायते भूयः संसारे दुःखसंकटे ॥
दीर्घायुष्ट्वं च वासोभिरन्नदानेन सम्पदः ॥

अथ दशधेनूनाह मात्स्ये—

'प्रथमा गुडधेनुः स्यात् घृतधेनुस्तथापरा ।
तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिका ॥
क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथाऽपरा ।
सप्तमी शर्क्कराधेनुर्दधि धेनुस्तथाष्टमी ॥
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ।
स्वरूपधेनुमन्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥'

गुडधेन्वादौ गुडादिप्रमाणमाह मात्स्ये—

'उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयम् ।
वत्सं भावेन कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ॥
अर्द्धभारेण वत्सःस्यात्कपिलाभारकेण तु ।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवृत्तानुसारतः ॥'

मुख्यकल्पशक्तस्य गौणकल्पकरणे दोषमाह कात्यायनः—

'प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ।
न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥'

सांपरायिकं पारलौकिकम् । एतदेव घृतादिनवधेनुघृतादिप्रमाणमपि । 'विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ।' इति । सामान्येनातिदेशात् ॥

हिन्दी—अब युगादि के सम्बन्ध में ब्रह्मपुराण का वचन है—कृतयुग, का प्रारम्भ वैशाख शुक्ल पक्ष तृतीया से, त्रेता युग कार्त्तिक शुक्ल नवमी से, द्वापरयुग भाद्रकृष्ण चतुर्दशी से तथा घोर कलियुग माघ पूर्णिमा से प्रारम्भ माना गया है । पूर्वोक्त तिथियों में क्रमशः पूर्वोक्त युगों का प्रारम्भ है, इसलिए ये तिथियाँ युगादि कहलाती है । (किन्तु नारदपुराण में इसका इससे भिन्न क्रम का उल्लेख मिलता है । जैसे—कार्तिके शुक्ल नवमी चादिः कृतयुगस्यसा । त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्य सम्मिता । कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादि-रुदीरिता । कल्पाद्धि स्यांत्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी ।)

अब मन्वन्तरादि के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में कहा गया है—

कार्त्तिक शुक्ल नवमी तथा द्वादशी अश्विनी नक्षत्र युक्त, चैत्र और भादो महीने की तृतीया, सावन महीने की अमावस्या, पौष महीने की एकादशी, तथा आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, तथा श्रावणकृष्ण अष्टमी एवं आषाढी पूर्णिमा भी, तथा कार्त्तिक, फागुन, चैत और जेठ महीने के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा—ये सभी मन्वन्तरादि कहलाते हैं । इन तिथियों में दिया गया दान अक्षय होता है ।

भूमिदान के सम्बन्ध में जाबाल का कथन है—महापापी हो या हर तरह के पापकर्मी हो, केवल दस हाथ धरती दान कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है । जीविका के अभाव में अत्यन्त दुःखी मनुष्य जो कुछ भी पाप करता है, उन पापों से गोचर्मभर भूमि दान कर, छुटकारा पा जाता है । (गोचर्म विशेषमाप के लिए एक पारिभाषिक शब्द है ।

वशिष्ठ के अनुसार—'दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः, पञ्चचाभ्यधिकान् दद्यादेतत् गोचर्मचोच्यते ।')

गोचर्म का अब प्रमाण कहा गया है—ब्रह्म के मत में दस हाथ के डण्डे से तीस डण्डे लम्बाई और दस डण्डे चौड़ाई की सतह को गोचर्म भर माप कहा गया है अर्थात् १० × ३० = ३०० डण्डे भूमि । (प्रजापति के मतसे भी गोचर्म का मापदण्ड २० × २० = ४०० इन में चतुर्थांश घटाने पर ३००)

बृहस्पति का कथन है—बृहस्पति के अनुसार भूमिदान करने वाला व्यक्ति साठ हजार साल तक स्वर्ग में निवास करता है । धरती का अपहरण करने वाल तथा उसका अनुमोदन करने वाला भी साठ हजार साल तक नरक भोगता है । आक्षेप्ता = हरणकर्त्ता, तान्येव = साठ हजार साल तक ही ।

मत्स्यपुराण में—हजारों तालाब खुदवाने से, सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ करने से करोड़ों गायें दान करने से भी भूमिहर्त्ता पाप मुक्त नहीं होता है ।

अपनी दी हुई या दूसरों की दी हुई धरती का जो अपहरण करता है, वह साठ हजार साल तक गू का कीड़ा होता है । भूमि का दान लेने वाले तथा भूदान करने वाला दोनों ही निश्चित रूप से पुण्यकर्मी एवं स्वर्गगामी होते हैं । दाता जो दान का चिंन्तन नहीं करता, जो प्रतिग्राही याचना नहीं करता, वे दोनों ही धरती पर जब तक सूर्य और चन्द्र दृष्टिगोचर होते रहेंगे तब तक नरक में निवास करेंगे ।

ब्रह्माण्डपुराण में—जो व्यक्ति गोदान, तप, जप, श्राद्ध एवं देवताओं की पूजा गंगा के समीप करते हैं वे सभी करोड़ों गुना अधिक हो जाते हैं ।

भविष्यपुराण में—घृतधेनु विधान से जो व्यक्ति अक्षय तृतीया के दिन गङ्गा तीर में दान करता है, उसका फल सुनो—जो व्यक्ति विधवत् गोदान करता है, वह सैकड़ो, हजारों, करोड़ों कल्प हजारों सूर्य की तरह प्रदीप्त, हर तरह की कामनाओं के साथ एक गाय की देह में जितने रोएँ हैं उतनी संख्या तक, अरबों कल्प तक गोलोक या शिवलोक में सभी अभिप्सित वस्तुओं के साथ, सप्रजा कामधेनु प्राप्त करते हुए दिव्य पदार्थों का उपभोग करते हैं । गङ्गातट में दो निवर्त्तन अर्थात् चालीस बांस लम्बी भूमि दान को लक्ष्य कर तीर्थचिन्तामणि के ब्रह्माण्डखण्ड में कहा गया है—उस भूमि के परमाणुओं की जो संख्या है । या अनगिनत वर्षों तक चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक में दिव्य सुख का उपभोग करते हैं ।

निवर्त्तन का लक्षण मत्स्यपुराण में कहा गया है—सात हाथ के डण्डे से बीस डंडा लम्बी भूमि निवर्त्तन कहलाता है । और, प्रजापति ने २० × २० = ४०० सौ में त्रिभागहीन को गोचर्म कहा है । इसी तरह—जो व्यक्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और दुर्गा के लिए ब्राह्मणों को गङ्गा तटवर्त्ती ग्राम दान करता है, उस दान से जो पुण्य हर तरह के दानों में मिलता है, जो फल सभी तरह के यज्ञों को सम्पादित करने से मिलता है, हर तरह के तीर्थाटन से जो फल प्राप्त होता है, हर तरह के व्रत एवं तपस्या से जो फल प्राप्त होता है, वे सारे फल हजारों गुना अधिक होकर गङ्गातटवर्त्ती ग्राम दान से उसे मिलता है ।

तत्र = गङ्गा में । तथा—

वह दानी व्यक्ति धरती और ग्रामों के परमाणुओं की जितनी संख्या है, उतने वर्षों तक इस संसार में हर तरह के भोग्य वस्तओं का उपभोग कर अन्त में योगियों के कुल में जन्म लेता है । वह अणमादि गुणों से युक्त स्वयंभोगी भी होता है । देहान्त होने पर वह निर्मल और नित्य परब्रह्म में लीन हो जाता है । इसी तरह—भक्तिपूर्वक गङ्गाके तट पर जो व्यक्ति एक बार भी गाय,

धरती, सोना दान करता है, उसके प्रभाव से इस संसार के दुःख संकट में वह जन्म नहीं लेता है । अन्नदान करने से सम्पदा की वृद्धि होती है । सुन्दर आवास मिलते हैं और लम्बी आयु मिलती है । मत्स्यपुराण में दस प्रकार के धेनुओं के सम्बन्ध में कहा गया है—पहली गुड़धेनु होती है, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवीं क्षीरधेनु नाम से विख्यात है, छठी मधु धेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवमी रसधेनु और दसवीं स्वरूपतः धेनु । अन्यत्र कुछ लोग स्वरूप धेनु ही चाहते हैं ।

गुड़धेन्वादि में गुड़ादि का प्रमाण मत्स्यपुराण में कहा गया है—उत्तम कोटि की गुड़धेनु होती है, वह चार तोले सोने की होती है । बछड़े भावना के अनुसार दो तोले सोने के मध्यम भार के होते है । आधे तोले सोने के बछड़े के साथ एकतोले सोने की कपिला गाय होती है । घर के विहित नियमों के अनुसार पाँचसौ पल सोने अर्थात् एक चौथाई तोले भर के भी होते हैं ।

प्रमुख कल्प की शक्ति रहने पर भी गौण कल्प करने में दोष माना गया है, कात्यायन का वचन है—प्रथम विधान के अनुसार दान देने में सक्षम व्यक्ति यदि गौण कला का आश्रय लेता है तो उस दुर्मति को पारलौकिक फल नहीं मिलता है । सांपरायिकम् = पारलौकिक । इतना ही घृतादि नवधेनु के लिए घृतादि प्रमाण भी है । सामान्याति देश से सभी धेनुओं का यही त्रिधान कहा गया है ।

मैथिली—ब्रह्मपुराण में युगादिक सम्बन्ध में—वैशाख शुक्ल पक्षक तृतीया से कृत युगक आदि मानलमेल अछि । ताँ ई युगादि कहवैत अछि ।

मत्स्यपुराण में मन्वन्तरादिक सन्दर्भ में कहलगेल अछि—अश्विनीनक्षत्र युक्त कार्त्तिकशुक्ल पक्षक नवमी तथा द्वादशी, चैत्र तथा भादवक तृतीया, श्रावणक अमावास्या तथा पौषक एकादशी, आषाढ़क दशमी, माघक सप्तमी, श्रावणकृष्णक अष्टमी तथा आषाढ़क पूर्णिमा, कार्त्तिक फाल्गुण, चैत्र एवं ज्येष्ठ शुक्लक पूर्णिमा, ई समय तिथि मन्वन्तरादिकहवैत अछि । मन्वन्तरादि में कयलदान अक्षयकारक होयत अछि ।

भूमिदानक सम्बन्ध में जाबालक उक्ति—महापापी होय किम्बा सभतरहक पाप कयने हो, एहनो व्यक्ति यदि मात्र दशहाथ धरती दान करय तऽ ओ सभटा पाप कर्म सँ ३० लग्गी लम्बी तथा दश लग्गी चौड़ी धरती के ब्रह्मणोधर्म कहने छथि । (प्रजापतिक मते २० × २० = ४०० एकरा में तृतीयांश घटा देला उत्तर ओतवहि उत्तर होयत अछि ।)

बृहस्पतिक वचन अछि—भूमिदानकर्त्ता व्यक्ति साठि हजार वर्ष धरि स्वर्ग में निवास करैत छथि । भूमिक अपहरणकर्त्ता, तथा ओकर अनुमोदनकर्त्ता दुहू

व्यक्ति ओतवहि वर्ष धरि नरकवास करैत छथि । आक्षेप्ता = अपहरणकर्त्ता, तान्येव = उतवही साठ हजार साल धरि । परिमाण ।

मत्स्यपुराण में—हजारों पोखरि, सैकड़ों अश्वमेध या, करोड़ों गाय दान कयला उत्तरो भूमि हर्त्ता पवित्र नहि भऽ सकैऽथ । अपनदेल अथवा दोसरोक देल ककरो भूमिक जे अपहरण ओसाठि हजार साल धरि मुककीड़ा होयत छैथि । धरतीक जे प्रतिग्रहण करैत छथि तथा धरती जे दान करैत छथि ओदुहू गोटे निश्चित रूपेण स्वर्ग गामी होयत छैथि । ई दुहू पुण्य कर्मीछथि । जे दाता अहिदानक स्मरण नहि करैत छथि तथा प्रतिग्राही लोकनिक एहन दानक याचना नहि करैत छथि ओ दुहू यावत् काल धरि नरकवासी होयत छथि ।

ब्रह्माण्डपुराण में गङ्गाकात में जे गोदान करैत छथि, तप, जप, श्राद्ध एवं देवताक पूजन करैत छैथि हुनका सामान्य सँ करोड़ो गुना अधिक फल भेंटैत छैन्हि । भविष्यपुराणक वचन अछि । अक्षय तृतीयाक दिन घृतधेनु विधान सँ जे गङ्गाकात में किछु दान करैत छथि हुनक पुण्यफल सुनू ।

शत—सहस्र धार्मिक विधानक पराकाष्ठा, सहस्रों सूर्यक सदृश, सभतरहक कामना सँ युक्त विधिवत् जे गोदान करैत छथि ओ व्यक्ति गायक देह में जतेक लोम छैक तावत् दस करोड़कल्प धरि, सवत्सा कामधेनु युक्त गोलोक में अथवा शिवलोक में अनेक तरहक दिव्य पदार्थक उपोग करैत निवास करैत छथि। गङ्गाकात में निवर्त्तन द्वय भूमिदानक लक्ष्यकय तीर्थचिन्तामणिक ब्राह्मण्ड खण्ड में कहलगेल अछि—

निवर्त्तन द्वय भूमिक जे अयुत परमाणुक संख्या छैक ततेक वर्ष धरि ओदान कर्त्ता व्यक्ति चन्द्रलोक, इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक एवं शिवलोक में समृद्धशाली लोकनिक उपभोग्य वस्तुक उपभोग करैत छथि ।

मत्स्यपुराण में निवर्त्तन लक्षण कहलगेल अछि—प्रजापतिक मते सात हाथक दण्ड से बीस दण्ड निवर्त्तन कहवैत अछि । जेमा २० × २० = ४०० । एकरे में तेसर भाग घटा देला उत्तर ओ गोचर्मक परिमाप कहलगेल अछि । (लीलावती में निवर्त्तन लक्षण अछि—'निवर्त्तन विशति वंश संख्यै: क्षेत्रं चतुर्भिश्च भुजैर्निबद्धम् ।) तहिना—

जे व्यक्ति ब्रह्म, विष्णु—शिव, दुर्गा एवं सूर्यक निमित्त गङ्गाकांतक ग्राम ब्राह्मणके दान करैत छथि हुनका सभतरहक दान कयने जे पुण्यभेंटैत छैन्हि, सभतरह यज्ञ कयला उत्तर जे पुण्य फल भेंटैत छैन्हि, सभतरहक तीर्थाटन से जे पुण्य फल भेटैत छैन्हि; सभतरहक व्रत या तप कयने फल भेंटैत छैन्हि ओसभ सहस्रगुणितभय ग्राम दानका निहारके भेटैं छन्हि । तत्र = गङ्गाक समीपवर्त्ती ।

तथा—ताहिग्रामक भूमिक परमाणुक जवेक संख्या होय ततेक वर्षधरि ओ ग्राम दाता सभतरहक भोग्यवस्तुक उपभोग कय लोक में योगी जनक कुल में

जन्म ग्रहण करैत छथि । अणिमादि दैवी शक्ति जन्य गुण सँ सम्पन्नभय स्वेच्छापूर्वक संसारक उपभोग कर्त्ता सेहो भऽजायत छथि । देहान्तभेला उत्तर नित्यनिर्मल परब्रह्म में लीनभऽजायत छैथि । तहिना—

गङ्गाकात में भक्तिपूर्वक थोड़ बहु सोन, धरती, गाय, अन्न, वस्त्रादि दानकयने व्यक्ति दु:ख संकट के पारकय जायत छैथि, सभतरहक समादा हुनका स्वत: उपलब्ध भऽजायत छैन्हि, ओ दीर्घायु होयत छथि, मुइला उत्तर संसार में हुनक पुनर्जन्म नहि होयत छैन्हि । आव मत्स्यपुराण में दसधेनुक सन्दर्भ में कहने छथि—

पहिल गुड़धेनु, दोसर घृतधेनु, तेसर तिलधेनु, चारिम जलधेनु, पाँचम क्षीरधेनु, छठम मधुधेनु, सातम शर्करा धेनु, आठम दधि धेनु, नवमरसधेनु, स्वरूपत: दशम धेनु कहलगेल अछि । अन्यत्र किछु लोकनिस्वरूपत: धेनुमात्रे कहैत छथि । मत्स्यपुराण में, गुडधेन्वादि में गुड़ादिक प्रमाण कहलगेल अछि— चारितोला सोनक बनाओल गुड़धेनु उत्तम कोटि कहलगेल अछि । तकरवत्स भावनानुकूल मध्यम भारक बनयवाक चाही । आधातोलाक वत्स, एकतोलाक कपिलागाय, गृहवृत्तानुसार पचासपल अर्थात् एकतोलाक चतुर्थांश सोनक ओकर वत्स हयवाक चाही । मुख्यकल्पानुसार दान में समर्थ रहलो उत्तर जे व्यक्ति गौणकल्पानुसार दान करैत छथि, ओ दान दोषावह कहलगेल अछि ।

कात्यायनक मत में—प्रथमकल्पक दान में समर्थ रहितो जे दोसर कल्पक दान करैत छथि, ताहि दुर्मति के पारलौकिक फलक प्राप्ति नहि होयत छन्हि ।

सांपराधिकम् = पारलौकिक । एतवहि घृतादिनौटा धेनुक सम्बन्ध में घृतादिक से ही प्रमाण बुझवाक चाही । सामान्यातिदेश सँ सभटा धेनुकलेल ई विधान मानलगेल अछि ।

अथ दानप्रकार:

गोमयोपलिप्तायां भूमौ कुशानास्तीर्य तत्र प्राग्ग्रीवं चतुर्हस्तं कृष्णाजिनं धेन्वर्थं पातयित्वा तत्समीपे लघुकृष्णाजिनं प्राग्ग्रीवमेव वत्सार्थे धृत्वा तदुपरि शक्त्यनुसारेण भारचतुष्टयादिनां घृतादिना घटेषु स्थापितेन धेनुं शक्त्यानुसारे-णैकभारादिना घृतादिना घटे स्थापितेन च वत्सं परिकल्प्योभावपि शुक्लवस्त्रेण वेष्टितौ शुक्तिमयकर्णौ इक्षुमयपादचतुष्टयौ सुवर्णशृंगौ रूपरुखुरौ सुरभिद्रव्य-निर्मितघ्राणौ धेनुवत्सौ निर्मायाक्षतपुष्पाभ्यां ॐ या सोपकरणसवत्सधेनवे नमः ३ ॐ ब्राह्मणाय नमः ३ ॐ इमां सोपकरणां सवत्सां घृतधेनुं ददामीति द्विज-करे जलं दत्त्वा ददस्वेति तेनोक्ते धेनुं संप्रोक्ष्य ॐ या लक्ष्मीरित्यादिपञ्च-श्लोकं पठित्वा ॐअद्याक्षयतृतीयां कल्पकोटिसहस्रबहुकल्पकोटिशतावच्छिन्न-

हेमरत्नमयहंसभूषितविमानाधिकरणकस्वकीयपितृगणसहितसहस्रादित्यसङ्काश-सर्वकामसमन्वितस्वकीयरुद्रलोकसहितत्त्वतदुत्तरंगङ्गाधिकरणान्वितविप्रत्वभवनान्त-कालिकब्रह्मविष्णुभवनानन्तरमोक्षप्राप्तिकाम इमां गोमयोपलिप्तास्तृतकुशस्थितां घृतधेनुं सवत्सां तत्तदुपकरणयुक्तामित्यादि । ततः सुवर्णदक्षिणां दद्यात् । एवं गुडधेन्वादावपीति श्राद्धचिन्तामणौ गुडधेन्वादीनां प्रकारः ।

हिन्दी—अब दान करने का तरीका—गाय के गोबर से लिपी पुती धरती पर कुश फैलाकर वहाँ पूरब की ओर गर्दन करके ही काले हिरण का चर्म चार हाथ का गाय के लिए फैलाकर उसके समीप ही छोटे काले हिरण के चर्म पूर्व की ओर गर्दन करके ही बछड़े के लिए फैलाकर उस के ऊपर शक्ति के अनुसार चार तोले सोने के बने घृतादि विधि से स्थापित धेनु को तथा शक्ति के अनुसार ही एक तोले सोने के घृतादिविधि से निर्मित घड़े पर बछड़े को रखकर, दोनों गाय और बछड़े को सफेद कपड़ों से ढँककर मोती की सीप के दोनों कान, गन्ने के बने चारो पैर, सोने के बने दोनों सींग, चाँदी के खुर, मधुर सुगन्ध युक्त द्रव्यों से बनी नाक वाली गाय तथा वैसे ही बछड़े बना कर हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर—ॐ सब प्रकार के आवश्यक सामान या उपकरणों से युक्तबछड़े के साथ गोदेवता को प्रणाम (यह तीन बार कहे) फिर ब्राह्मण देवता को प्रणाम (तीनबार कहे) पुनः ब्राह्मण के हाथ में जल गिराते हुए कहे सारे उपकरणों के साथ यह सवत्सा गौ मैं आपको देता हूँ । दो, ब्राह्मण की इस अनुमति के बाद गाय को उसी जल से पोंछकर 'ॐ लक्ष्मी रित्यादि पाँच श्लोकों को पढकर, मूल में लिखे 'ॐ अद्याक्षय तृतीयायाम् से लेकर ... ... तदुपकरण युक्तां' तक पढ़े । फिर, सोना ही दक्षिणा में दें । इसी तरह गुड़धन्वादि के सम्बन्ध में भी श्राद्धचिन्तामणि में गुड़धेन्वादिदान की विधि बतलाई गई है ।

मैथिली—गुड़धेनु प्रभृतिक दानक रीति—

गायक गोबर स उपलिप्त धरती पर कुश बिछादी । ताहि कुा पर चारि हाथक कृष्ण मृगचर्म प्राग्ग्रीव गायकलेल बिछा दी । तकर समीपे में छोट कृष्ण मृगचर्म पूरवे ग्रीवा कय बाछाकलेल विछा दी । अपनशक्तिक अनुसार तकरा ऊपर चारितोला सोनक घृतादिविधि से निर्मित गाय के स्थापित कय दी । तत पश्चात् अपनशक्तिक अनुसार धृतादिविधि सँ निर्मित स्थापित एक तोला सोनक घट में वत्सक परिकल्पना करी । गाय-वत्स दुहू के श्वेत वस्त्र सँ झांपि दी । दुहूक कान शुक्तिमय, इक्षुमय चारुपैर, सोनक सींघ, चाँदीक खुर सुरभि द्रव्यक नाक बनाय अक्षत पुष्प हाथ में लय, तीन बेरि पढ़ी—ॐ सोपकरण धेनवे नमः । तीनि वेर ॐ ब्राह्मणाय नमः । पुनः इमां सोपकरणां सवत्सां घृतधेनुं ददानि' ब्राह्मण के

हाथ में जलदेथि, 'ददस्व' ब्राह्मण कहेथि, तत्पश्चात् हाथक जल से धेनु के संप्रोक्षण कय ओं या लक्ष्मी: इत्यादि पञ्चश्लोक पढ़ी । तकरबाद मूलस्थ—'ओं अद्याक्षयतृतीयायाम् सँ ल5 क तत्तदुपकरण युक्तामित्यादि पर्यन्त पढी । पश्चात् दक्षिणा में सुवर्ण दान दी । अहिना गुड़धेन्वादिक दानक विधान श्राद्धचिन्तामणि में लिखल गेल अछि ।

अथोभयमुखीगोदानम्

मात्स्ये— 'रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गुलभूषिताम् ।
कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुङ्गवे ।।
प्रसूयमानां यो दद्याद्धेनुं द्रविणसंयुताम् ।
यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति ।।
तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ।
चतुरर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ।।
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप ।
तावत्संख्ययुगानेव देवलोके महीयते ।।
पितृन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् ।
उद्धरिष्यत्यसंदेहो नरकाद्भूरिदक्षिणः ।।'

इत्यादिद्रविणसंयुक्तां दक्षिणाद्रव्यसंयुक्तां भूरिदक्षिण इत्यग्रेऽभिधानात् इति लक्ष्मीधरः । सोपकरणप्रसूयमानोभयमुखीगोपूजादिकं विधाय ॐ अद्य सप्तसमुद्रसशैलवनकाननचतुरर्णवपृथिवीदानजन्यसमफलैतद्धेनुवत्सरोमसंमसंख्ययुगगणावच्छिन्नदेवलोकमहितत्त्वपितृपितामहप्रपितामहनरकोद्धरणघृतक्षीरवहकुल्याकदधिपायसकर्दमकदेशाधिकरणकेप्सितकामदात्मगोलोकसुलभत्वब्रह्मलोकसुप्रापत्वाजस्रचन्द्रवक्त्रसुतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णमहानितम्बस्तनवृत्तममध्यनलिनाभनेत्रानेकदेशाधिकरणकेप्सितं त्रिसेव्यमानत्वकाम इमां रुक्मशृंगीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषितां कांस्योपदोहनां सवत्सां प्रसूयमानामुभयतोमुखीं गा रुद्रदैवताम् इत्यादि । ततो दक्षिणां दत्त्वा पुच्छग्रहणं कारयित्वा कामस्तुतिं पाठयेत् इति दानवाक्यावली ।

हिन्दी—अब उभयमुखी गोदान के विषय में—मत्स्यपुराण की उक्ति है—हे राजन्! श्रेष्ठ ब्राह्मण को सवत्सा गौ दान में देना चाहिए । दान में देय गाय के दोनों सींघ सोने से मढ़ा होना चाहिए, खुर चाँदी से तथा पूँछ मोती की लड़ी से विभूषित होना चाहिए । साथ में कांसे या जस्ते के पात्र दूहने के लिए भी होना चाहिए । जब तक बछड़ा गाय की योनि गत है, जब तक उसे गर्भ से मुक्ति नहीं मिली है, ऐसी व्याती हुई गाय दक्षिणा के साथ जो दान करता

है, उसे समस्त पृथ्वी दान का फल मिलता है । जब तक बछड़ा योनि से बाहर नहीं आ जाता तब तक वह गाय पर्वत एवं जंगलों के साथ समस्त पृथिवी की तरह होती है । उस गाय को चारों सागरों से घिरी समस्त धरती मानने में सन्देह नहीं करना चाहिए । हे नरपति उस गाय और बछड़े की देह में जितने रोएँ हैं उतने युगों तक ऐसी गाय के दान कर्त्ता देवलोक में विराजमान होते हैं, इतना ही नहीं, वह अपने पिता, पितामह और प्रपितामह को भी प्रभूत दक्षिणा देकर असन्धिग्ध रूप से नरक से, उद्धार करता है ।

द्रविण संयुताम् = दक्षिणा द्रव्य के साथ । भूरिदक्षिण: (मूल्यवान् पुरस्कार या उपहारों से युक्त अथवा प्रचुर दक्षिणा ।) इसका आगे उल्लेख से लक्ष्मीधर उपकरणों के साथ बच्चा देती हुई उभयमुखी गाय की पूजादिक सम्पन्न कर ॐ अद्य से लेकर ... ... रुद्रदैवतम् इत्यादि पर्यन्त मूलस्थ वाक्य पढ़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देकर पुच्छग्रहण करवाकर कामस्तुति का पाठ करे यह दानरत्नावली में लिखा है ।

मैथिली—मत्स्यपुराणक वचन अछि—हे राजन्! द्विजश्रेष्ठ व्यक्ति के सवत्सा गाय दान देवाक चाही । गायक सींघ पर सोन मेढल होय, खुर पर चाँदी तथा गायक नागरि मोती सँ सुशोभित होय, तथा कांसा या जशताक दूध दुहवाक पात्र सेहो होय । वियाति गाय दक्षिणाक साथ दानक अत्यधिक महत्त्व छैक । बच्चा यावत् काल धरि योनिगत होय गर्भ सँ ओ मुक्त नहि होय ताहि स्थिति में जे गाय दान कयलजाय ताहि गाय के पर्वत एवं सकलवन प्रान्तरक साथ समस्त पृथिवी बुझवाक चाही । चारु समुद्र सँ घेरल समस्त धरती ई गायक बुझवाके सन्देह नहि करवाक चाही । हे राजन् ई गाय एवं बछड़ाक शरीर में जतेव रोमक संख्या छैक ततेक युगधरि उभयमुखीगो दानकर्त्ता देवलोक में निवास करैत छथि संगहि संग प्रचुर दक्षिणा प्रदानकय दाता अपन पिता, पितामह एवं प्रपितामह लोकनिकें नरक सँ उद्धार करैत छथि । ताहि में सन्देह नहि करवाक चाही ।

द्रविण संयुताम् = दक्षिणा द्रव्यक संग । 'भूरिदक्षिण:' ई आगूक अभिनाधान से लक्ष्मीधर कहने छथि । उपकरणक साथ बियाकैत गायक पूजादि कय मूलस्थ—ओं अद्य सँ लऽके ... ... रुद्र दैवताम् इत्यादि पर्यन्त पढ़ी । तकरबाद दक्षिणा दय उभयमुखी गायक पुच्छग्रहण करवाकय कामस्तुतिक पाठ करी । ई दान वाक्यावली में लिखल अछि ।

विमर्श:—गोदानस्य महत्त्वं भारते—

न गोदानात्परं किञ्चिद्विद्यते वसुधाधिप! । गौर्हि न्यायागता दत्ता सा हि तारयते कुलम् ।।

उभयमुखी गोर्लक्षणं याज्ञवल्क्य:— यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते ।
तावद्गौ: पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ।।

अथगोपालनप्रकारमाह भारते व्यासः—
प्रचारे वा निवाते वा बुधो नोद्वेजयेत गाः । तृषिता ह्यभिवीक्षन्ते नरं हन्युः सबान्धवम् ॥
आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रे तथा खले । भक्षयन्तीं न कथयेत् पाययन्तीं च वत्सकम् ॥

तत्रैव गोदोहनप्रकारः— द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ।
द्वौ मासौ त्वेकवेलायां शेषकाले यथारुचि ॥

कस्मै विप्राय गौर्देयेत्युक्तं भारते— ददेच्च बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
दत्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥

कस्मै विप्राय गौर्न देयेत्युक्तं तत्रैव— असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने ।
हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ॥

अथ द्रव्यदैवतानि विष्णुधर्मोत्तरे—

'अभयं सर्वदवैत्यं भूमिर्वै विष्णुदैवता ।
कन्यांदासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः ॥
प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ।
तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतम् ॥
महिषश्च तथा याम्य उष्ट्रो नैर्ऋतकस्तथा ।
रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छाग आग्नेय उच्यते ॥
मेषं तु वारुणं विद्याद्वराहो वैष्णवः स्मृतः ।
आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदेवताः ॥
जलाशयानि सर्वाणि विविधानि कमण्डलुः ।
कुम्भं च करकं चैव वारुणानि विनिर्दिशेत् ॥
समुद्रजानि रत्नानि समुद्राणि तथैव च ।
आग्नेयं काञ्चनं प्रोक्तं सर्वलौहानि वाऽप्यथ ॥
प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि च द्विजाः ।
ज्ञेयानि सर्वगन्धानि गान्धर्वाणि विचक्षणैः ॥
बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौमान्यथ रसानि च ।
पक्षिणश्च तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः ॥
विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपस्करणानि च ।
सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकाद्यानि पण्डितैः ॥
सर्वेषां शिल्पभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतम् ।
द्रुमाणामथ पुष्पाणां शाकस्य हरितस्य च॰॥
फलानामपि सर्वेषां तथा ज्ञेयो वनस्पतिः ।
मत्स्यमांसं विनिर्दिष्टं प्राजापत्यं तथैव च ॥

छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथमासनमेव च ।
उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणवर्जितम् ॥
उत्तानाङ्गिरसं त्वेतत्प्रतिगृह्णीत मानवः ।
शूरोपयोगि यत् सर्वं शस्त्रवर्मध्वजादिकम् ॥
रणोपकरणं सर्वं कथितं शक्रदैवतम् ।
गृहं तु सर्वदैवत्यं यदनुक्तं द्विजोत्तमाः ॥
तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा विष्णुदैवतम् ॥' इति ।

द्विजोत्तमा इति संबोधनम् ॥

हिन्दी—विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार कौन वस्तु किस देवता से संबन्धित है—सभी देवताभय मुक्त करते हैं । भूमि का सम्बन्ध या धरती के रक्षक विष्णु देवता हैं । कन्या, दास एवं दासी प्रजापति देवता से संरक्षित कहे गये हैं । हाथी प्रजापति से सम्बद्ध है और घोड़े यम देवता से । इसी तरह एक खुरवाले सभी जीवों के देवता यमराज ही कहे गये हैं । भैसों के देवता भी यमराज ही बतलाये गये हैं । ऊँट नैर्ऋतक दैत्य से सम्बन्धित हैं । गायें रुद्र जैसे प्रचण्ड देवता के साथ विनिर्दिष्ट हैं । बकरे और बकरीयाँ अग्नि देव से सम्बन्धित कहे जाते हैं । भेंड़ वरुणदेव से सम्बद्ध हैं । सूअर विष्णु से सम्बद्ध कहे जाते हैं । जंगली सारे जानवर पवन देव के अधीन कहे जाते हैं । हर तरह के जलाशय और मिट्टी या लकड़ी के बने हर तरह के जलपात्र, घड़े और संन्यासियों के जलपात्र वरुणदेव से सम्बद्ध बतलाये जाते हैं । समुद्र से उत्पन्न सारे के सारे रत्न, सागर एवं सोने अग्नि देव से सम्बद्ध बतलाये जाते है । सभी लोहे, हर तरह के अन्न, फल या उपज, पकाये गये अन्न भी और द्विज प्रजापति देव से सम्बद्ध हैं । हर तरह के गन्ध को बुद्धिमान् व्यक्ति गन्धर्व से सम्बद्ध मानते हैं । हर तरह की सुगन्ध या निवास स्थन बृहस्पति से सम्बद्ध बतलाये गये हैं । हर प्रकार के रसों का सम्बन्ध चन्द्र देव के साथ है । इसी तरह सभी चिड़ियों के देवता वायु कहे जाते हैं । विद्या सरस्वती से सम्बद्ध हैं तथा विद्या के सभी उपस्कर पुस्तक प्रभृति के देवता पण्डितों के द्वारा देवी सरस्वती ही कही गई है । सभी तरह के शिल्पमाण्डों के देवता विश्वकर्मा हैं । हर तरह के पेड़ पौधे, हरी भरी साग-सब्जियाँ, हर तरह के फलों के देवता वनस्पति को जानना चाहिए । इसी तरह मत्स्य और मांस के देवता प्रजापति हैं । छाते, काले मृगचर्म, शय्यरथ, आसन, जूत, सवारी तथा अन्य प्राणहीन वस्तुओं के देवता अङ्गिरा को मनुष्य मानते हैं । शूर-वीरों के उपयोग में आने वाले जितने भी तरह के हथियार, कवच, झंडे या पताके हैं, तथा युद्ध के अन्य सारे उपकरणों के देवता इन्द्र को कहा जाता है । घर के देवता शुक्र हैं ।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! इन के अतिरिक्त जो छूट गये उनके देवता विष्णु हैं । या यों कहिए सब के देवता विष्णु ही हैं । द्विजोत्तमाः = सम्बोधन पद है ।

मैथिली—विष्णुधर्मोत्तर में वस्तु सभक देवताक सम्बन्ध में—देवता सभ अभयदाता छथि । समस्तधरती देवता भगवान् विष्णु छथि । कन्या, दास एवं दासीक देवता प्रजापति छैथि । हाथीक देवता प्रजापति कहलगेल छथि । घोड़ाक देवता यमराज छथि । एक खुरवाला जन्तु सभक देवता सेहो यमराजे छथि । महिषक देवता सेहो यमराजे छथि । ऊँटक देवता नैर्ऋतक छैथि । गाय सभक देवता प्रचण्ड रौद्री छथि । छागरक देवता अग्नि कहवैत छथि । मेषक देवता वरुण छथि । शूकरक देवता भगवान् विष्णु छथि । जंगल में रहो वाला जतेक पशु छैक तकर सभक देवता वायु कहलगेल छथि । सभतरकह जलाशय, सभतरहक कमण्डलु, घट एवं जल पात्रक देवता वरुणदेव निर्दिष्ट छथि । समुद्र में उत्पन्न सभतरहक रत्न, स्वयं समुद्र एवं सोन तथा सभ तरहक लौह पदार्थक देवता अग्नि कहलगेल छथि । काँच एवं पाकल अन्न एवं द्विजक देवता प्रजापति कहलगेल छथि । विद्वान् लोकनि सभतरहक गन्धक देवता गन्धर्वके बुझैत छथि । वासक देवता बृहस्पति छैथि तथा रसक देवता चन्द्रमा छैथि । सभतरहक पक्षीक देवता वायु कहलगेल छथि । विद्याक अधिष्ठात्री देवी ब्राह्मी छथि तथा विद्याक उपस्करण पुस्तकादिक देवता पण्डित लोकनि देवी सरस्वती के जानति छथि । सभतरहक शिल्पभाण्डक देवता विश्वकर्मा छैथि । सभतरहक वृक्ष फल—फूल, साग पातक देवता वनस्पतिक बुझऽवाक चाही । मत्स्य एवं मांसक देवता तहिना प्रजापति छैथि । छाता, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, जृता, सवारी आओर जे कोनो उत्तान प्राणवर्जित जीव छैथि हुनका सभक देवता अङ्गिरा के बुझैत छथि । शूर—वीर लोकनिक उपयोगी सभ तरहक शस्त्र, कवच, ध्वजादिक आन युद्धक सब उपकरणक देवता इन्द्र छथि । घरक देवता शुक्र छथि तथा अहिसूची में जकरगणना नहि कयल गेल अछि ताहि सभटा वस्तुक देवता विष्णु छथि अथवा हे द्विजश्रेष्ठ! भगवान् विष्णु सभक देवता छथि ।

द्विजोत्तमाः = ई पद सम्बोधनक अछि ।

अथ गवादिमूल्यम्

छन्दोगपरिशिष्टे—

'द्वात्रिंशत्पणिका गावश्चतुःकार्षापणो वरः ।
वृषे षट्कार्षापणकश्चाष्टावनडुहि स्मृताः ॥
दशकार्षापणं धेनोरश्वे पञ्चदशैव तु ।
हिरण्ये कार्षापणकः पणा नव तथाधिकाः ॥

वस्त्रे कार्षापणः छागेऽष्टौ पणा द्वादशाधिके।
वृषल्यामथ पञ्चाशन्मूल्यं कार्षापणाः स्मृताः।।
निष्के पञ्चाशदेव स्याद्गजे पञ्चशतानि वै ।
पञ्चकार्षापणाः प्रोक्ता दोलायां षड्रथे तथा ।।
गृहेऽष्टकार्षापणकास्ताम्रे कार्षापणः स्मृतः ।
कार्षापणाः षोडश ते इति मूल्यप्रकल्पना ।।
अधिकं कल्पयेन्मूल्यं नूनं वित्तानुसारतः ।
पञ्चकार्षापणा दासी दासः स्यात्पञ्चमाषकः ।।'

महिषी वृषवदिति ।

हिन्दी—छन्दोगपरिशिष्ट में लिखा है—पुराने बत्तीस पैसे आधुनिक पचास पैसे गाय की कीमत होती है । चार कार्षापण अर्थात् चौबन्नी अर्थात् एक रुपये उससे श्रेष्ठ कीमत है । बैल की कीमत डेढ़ रुपये होती हैं । दो रुपये गाय की कीमत होती है । गाय की कीमत दो रुपये पचास पैसे, घोड़े की कीमत तीन रुपये पचहत्तर पैसे होती है । सोने की कीमत सवा छः आना होती है । कपड़े की कीमत चार आने तथा बकरे की कीमत दो आने और भेड़ की कीमत तीन आने निर्धारित की गई है । वृषली अर्थात् शूद्र की पत्नी या शूद्रा स्त्री (अथवा = पितुगेहे चया नारीरजः पश्यत्य संस्कृताः, भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता) की कीमत साढे बारह रुपये माने गये हैं । स्वर्ण सिक्के की कीमत साढ़े बारह रुपये, हाथी की कीमत एक सौ पचीस रुपये होती है । पालकी या पालने की कीमत सवा रुपये, छः रथ की कीमत डेढ रुपये होती है । घर की कीमत दो रुपये होती है । सोलह कार्षापण इनके मूल्य की परिकल्पना की गई है । ऊपर निर्धारित मूल्य से अधिक की परिकल्पना की जा सकती है । वित्तानुसारकीमत कम भी की जा सकती है । दासी की कीमत सवा रुपये और दास की कीमत पाँच रुपये होती है । भैंस की कीमत बैल की तरह ।

मैथिली—गाय प्रभृतिक मूल्य—छन्दोगपरिशिष्ट में—बत्तीस पाई अर्थात् आना गायक मूल्य निर्धारित कयलगेल अछि सवा टका उत्तम मूल्य भेल । बरदक मूल्य डेढ़ टका, तथा दुई टका गायक मूल्य । धेनुक मूल्य अढ़ाई टका, घोड़ाक मूल्य पौनेतीन टका । सोनक मूल्य सावा छः आना । वस्त्रक चारिआना, छागरक दुई आना, भेड़क तीन आना, वृषणीक साढे बारह टका अशर्फीक साढे बारह टका, हाथीक एकसेइ पच्चीस टका, पालकीक सवाटका, छरथक डेढ़टका, घरऽक दुई टका, सोलह कार्षापण हिनका सभक अहितरहें मूल्यक परिकल्पना कयल गेल अछि । अहिसभक निर्धारित मूल्य सँ अधिक मूल्यक निर्धारण या

कम मूल्यक निर्धारण वित्तानुसार करवाक चाही । अहि तरहे दासीक मूल्य सबाटका एवं दासक मूल्य पाँचटका निर्धारित करवाक चाही । महिषीक मूल्य बरदक मूल्य जकाँ हैवाक चाही ।

अथ संस्कारा:

गौतम:— 'गर्भाधानं पुंसवनं सीमान्तोन्नयनं तथा ।

जातकर्म नामकरणमन्नप्राशनं चूडोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि । स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोग:' सहधर्मचारिणीसंयोगो विवाह: । सुमन्तु:—'ब्राह्मण-क्षत्रियविशां वृत्ति: गर्भाधानसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशन-चूडोपनयनव्रतचरणाध्ययनसमावर्तनविवाहश्लोष्यन्तीयज्ञदानादि:' । श्लोष्यन्ती सुखप्रसवार्थंकर्म प्रसवशूलहरम् । याज्ञवल्क्य:—

'गर्भाधानमृतौ पुंस: सवनं स्यन्दनात्पुरा ।'

पुंस: सवनं पुंसवनं, स्यन्दनात् गर्भचलनात्, बैजवाप: 'सप्तमे मासि प्रथमे वा गर्भे सीमन्तोन्नयनम् ।' स्मृति:—

'एतस्मान्नाधिकारोऽस्य न वेदे न स्मृताविति ।
विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां स्वयम् ।।'

अस्य शूद्रस्य, मात्रपदं विशेषविहितविवाहान्यसंस्कारव्यवच्छेदकम् ।

विष्णुपुराणे—'सचैलस्य पितु: स्नानं जाते पुत्रे विधीयते ।
जातकर्म तत: कुर्याच्छ्राद्धमाभ्युदये च यत् ।।'

गौतम:—'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे सम्वत्सरे वा नामकरणम् ।' व्युष्टे व्यतीते, दशरात्रं स्वस्वाशौचान्तिमदिनपरम् । 'अशौचव्यपगमे नामधेय-मिति' विष्णुवचनात्। गृह्यपरिशिष्टे द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाभ्यन्तरस्थमध्यं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितान्तम्' वर्गाणां तृतीयचतुर्थपञ्चमा यरलवा हकारश्च घोषवन्तस्ते नाम्न आदौ देया: यरलवा अन्तस्थास्ते नाम्नो मध्ये, कृतं कृदन्तम् ।

शङ्खलिखितौ—'कुलदेवतानक्षत्रादिसबद्धमिति' नाम कुर्यादिति शेष: । कुलसंबद्धं वसिष्ठ इति, देवसंबद्धं केशव इति, नक्षत्रसंबद्धं चैत्र इति ।

यम:— 'ततोऽन्नप्राशनं मासि षष्ठे कुर्याद्यथाविधि ।'

देवल:— गर्भाष्टमे उपनयनार्होऽपि भवति इति ब्राह्मणस्य मुख्यकाल: ।

गौणस्तु पञ्चदशवर्षपर्यन्त: । तथा हि याज्ञवल्क्य:—

'आषोडशादाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः स्मृतः ॥
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ।'

आषोडशादिति पञ्चदशवर्षपर्यन्तमित्यर्थः । एवमाद्वाविंशादित्यादावपि । तथा च ब्राह्मणादित्रयाणां क्रमेण पञ्चदशैकविंशतित्रयोविंशतिवर्षमुपनयनस्य गौणः कालः । अत ऊर्ध्वमुपनयनं व्रात्यप्रायश्चित्तं कृत्वा कर्त्तव्यम् । क्षत्रिय-वैश्ययोर्मुख्योपनयनकालमाह याज्ञवल्क्यः—

'राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ।'

सैके एकसहिते, तथा च राज्ञां द्वादशवर्षो मुख्यः कालः । मनुः—

'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा न्याय्या द्विजजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥'

दारकर्मणि विवाहे, मैथुने रतौ । याज्ञवल्क्यः—

'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।
सपिण्डता निवर्त्तेत सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥' इति ।
'पितृतः सप्तमीं वर्जयेत् मातृतः पञ्चमीं त्यजेत् ।'

विवाह इति शेषः। व्यवहारात्पितृतः सप्तम्यपि विवाह्या, व्यवहारे बल-वत्त्वस्य प्रागुक्तत्वात्। सुमन्तुः—'सर्वाः पितृपत्न्यो मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्त दुहितरो भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि ताश्च न परिणेतव्याः । ताः परिणीताः सङ्करकारिण्यस्तथाध्यापयितुरेतदेव । एतेन सपत्नीमातुर्भ्रातृपुत्री तत्पुत्री न विवाह्येति पर्यवसितम् । सपत्नीमातुर्भगिनीपरिणयने न दोषः । प्रापकाभावात् ।

हिन्दी—अब संस्कार के सम्बन्ध में गौतम की उक्ति—गर्भधारण संस्कार पुंसवन अर्थात् स्त्री के प्रथम गर्भधारण के चिह्न प्रकट होने पर किया जाने वाला शुद्धिकरण संस्कार, तथा गर्भाधान के चौथे, छठे या आठवें मास में वालों का विभाजन जन्य संस्कार ।

बच्चा के जन्म लेते ही अनुष्ठेय जात कर्म संस्कार, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन संस्कार उपनयन संस्कार, चारों देवव्रत स्नान एवं विवाह संस्कार । सहचारिणी संयोग का अर्थ विवाह है । सुमन्तु का मत है—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की यह कार्य पद्धति है—गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन चूड़ाकरण । उपनयन वेदव्रत, अध्ययन, समावर्त्तन, विवाह, सुख प्रसवार्थ कर्म, जिन्हें श्लोष्यन्ति' कहा जाता है, यज्ञ और दानादि विहित है । श्लोष्यन्ति अर्थात् प्रसववेदना निवारणार्थ अनुष्ठेय कर्म । याज्ञवल्क्य का कथन है—उपयुक्त समय में गर्भधान से लेकर

गर्भसञ्चरण से पूर्व, पुत्रोत्पत्ति के उद्देश्य से किया जाने वाला पुंसवन संस्कार करना चाहिए । पुंसवन का अर्थ होता है—पुंसः = पुत्र का सवनम = जननकर्म = पुंसवना स्यन्दनात = गर्भ के सञ्चलन से ।

वैजनाथ का कथन है—गर्भधारण के पहले या सातवें महीने में सीमन्तोन्नयन करना चहिए । स्मृति में लिखा है—शूद्रों के लिए ये संस्कार वाञ्छित नही है । वेद और स्मृति अध्ययन का भी अधिकार नहीं है । उन्हें तो केवल विवाह संस्कार का ही अधिकार है । अस्य = शूद्रों का । मात्र पद विवाह के अतिरिक्त अन्य संस्कारों का विभेदक है ।

विष्णुपुराण में लिखा है—पुत्र जन्म के उपरान्त पिता को सचैल अर्थात् पहने हुए वस्त्रों के साथ स्नान करना चाहिए । जात कर्म संस्कार सम्पन्न कर आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए । गौतम मुनिका कथन है—जन्म से दस रात बीत जाने पर या सौरात बीत जाने पर अथवा एक वर्ष बीत जाने पर नामकरण संस्कार करना चाहिए । व्युष्टे अर्थात् बीत जाने पर, दशरात्रम् = अर्थात् अपने अपने अशौच के दिन बीत जाने पर । विष्णुपुराण का भी वचन है—'अशौच बीत जाने पर नामकरण करना चाहिए ।'

गृह्यपरिशिष्ट में लिखा है—दो अक्षर का अथवा चार अक्षर का घोष की तरह अर्थात् वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय वर्ण को छोड़कर शेष व्यञ्जन तथा सभी वर्णों से प्रारम्भकर आभ्यन्तर प्रयत्न वाले दीर्घाभिनिष्ठान कृदन्त प्रत्ययान्त नामकरण करना चाहिए । न कि तद्धितप्रत्ययान्त । सभी वर्गों के तीसरे, चौथे और पाँचवें अक्षर य,र,ल,व, और हकार ये घोषवन्त हैं । अतः नाम के प्रारंभ इन्हीं घोष वन्त अक्षरों से होना चाहिए । य,र,ल और व ये अन्तस्थ हैं, अतः इन्हें नाम के बीच में आना चाहिए । कृत अर्थात् कृदन्त प्रत्यय को अन्त में रहना चाहिए ।

शङ्ख के अनुसार—कुल, देवता, नक्षत्र आदि से सम्बद्ध नामकरण होना चाहिए । जैसे—कुल संबद्ध = वशिष्ठ आदि । देव संबद्ध = केशव प्रभृति, नक्षत्र सम्बन्द्ध = चैत्र प्रभृति । यम का कथन है—इसके बाद छठे महीने में यथाविधि अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए । देवल की उक्ति—गर्भ से लेकर आठवें वर्ष में ब्राह्मणकुमार मुख्य उपनयन काल माना गया है और पन्द्रह साल तक गौण काल कहा गया है । उदाहरणार्थ याज्ञवल्क्य की उक्ति सोलह साल तक ब्राह्मणों का बाइस वर्ष तक क्षत्रियों का तथा चौबीस साल तक वैश्यों का उपनयन काल माना गया है । इससे ऊपर, इनका पतन हो जाता है और हर तरह के धर्म कार्य में बहिष्कृत माने जाते हैं ।

आषोडशात् का तात्पर्य है पन्द्रह वर्षपर्यन्त । इसी तरह बाईस वर्षादि में भी समझना चाहिए । उदाहरणस्वरूप ब्राह्मणादि वर्णत्रयों का क्रमशः पन्द्रह, बीस एवं तेईस वर्ष उपनयन का गौणकाल माना जाता है । इससे ऊपर की उम्र होने पर व्रात्य (प्रथम तीन वर्णों में से किसी एक वर्ण का पुरुष जो मुख्य संस्कार या शोधक कृत्यों का अनुष्ठान न करने के कारण पतित हो गया है अर्थात् जिसका उपनयन संस्कार नहीं हुआ हो वह जाति से बहिष्कृत के लिए किया गया शोध प्रायश्चित्त) प्रायश्चित्त करके उपनयन करना चाहिए । क्षत्रिय और वैश्य वर्णों के लिए मुख्य उपनयन काल याज्ञवल्क्य ने कहा है— क्षत्रियों के लिए बारह साल तथा वैश्यों के लिए एक सहित कुलाचार के अनुसार करना चाहिए । सैके = एक सहित उदाहरणार्थ क्षत्रियों के लिए बारह वर्ष मुख्यकाल कहा गया है ।

मनुका वचन है—जो नारी माता का असपिण्ड हो तथा पिता का असगोत्र हो, वह द्विजातियों के लिए विवाह एवं मैथुन के योग्य मानी जाती है । दारकर्मणि अर्थात् विवाह, मैथुन अर्थात् रतिक्रिया ।

याज्ञवल्क्य का वचन है—माता से पाँच पीढ़ी एवं पिता से सात पीढ़ी ऊपर जाने पर सपिण्डता समाप्त हो जाती है । सभी वर्णों के लिए यही विधान निश्चित है ।

पिता से सातवीं पीढी और माता से पाँचवीं पीढी से सपिण्डता छूट जाती है । 'विवाह' शेष है । व्यवहार में पिता से सातवीं पीढ़ी में भी विवाह योग्य मानी गई है । व्यवहार को अधिक बलवान् पहले माना जा चुका है ।

सुमन्तु का कथन है—'पिता की सारी पत्नियाँ माता होती है । उनके भाई मामा होते हैं । उनकी बेटियाँ बहन होती हैं । उनकी सन्तान भागिनेय होते हैं । इनके साथ विवाह नहीं करना चाहिए । ये विवाहिता स्त्री वर्ण सङ्कर उत्पन्न करने वाली होती हैं । इससे सौतेली माता के भाई की बेटी और उसकी बेटी के साथ विवाह नहीं करना चाहिए । सौतेली माँ की बहन से विवाह करने में कोई दोष नहीं है । क्योंकि, इससे प्रापक का अभाव है ।

मैथिली—आव संस्कारक सम्बन्ध में गौतमक विचार—गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोनयन प्रमुख संस्कार मानलगेल अछि । जातकर्म, नामकरण, अन्न प्राशन, चूड़ोपनयन, चारु वेदव्रत, स्नान एवं विवाह । सुमन्तकमते—ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यक कार्य शैली संस्कारक सम्बन्ध में अछि—गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ोपनयन, व्रतचरण, अध्ययन, समावर्त्तन, विवाह, प्रसवशूलहर, यज्ञ एवं दानादि ।' श्लोष्यन्ती = सुख प्रसवार्थ कृत संस्कार, प्रसव शूलहर ।

याज्ञवल्क्यः—'ऋतुकालमें गर्भाधान संस्कारक बाद तथा गर्भ सञ्चरण सँ पूर्व पुंसवन संस्कार करवाक चाही ।' पुंसः—पुरुषक सवनम् = जनन, पुंसवन । स्यन्दनात् = गर्भचलन सँ पूर्व । वैजवापक कथन अछि—गर्भक प्रथम मास में वा सातम मास में सीमन्तोन्नयन करवाक चाही । स्मृतिक वचन अछि—

शूद्रलोकनिके अहिसबक अधिकार नत वेदे में छैक न स्मृति में कतौ एकर उल्लेख छैक । विवाह संस्कार मात्रे शूद्रो अधिकारी छैथि । अस्य = शूद्रवर्णक, मात्र पद अहिठाम विशेष विहित विवाहान्य संस्कारक व्यवच्छेदक अछि । विष्णुपुराण में लिखल अछि—

पुत्र जन्मक बाद पिता के सचैल स्नान करवाक विधान अछि । तकरवाद जातकर्म करवाक चाही । तत्पश्चात् आभ्युदयिक श्राद्धादिक विधान अछि । गौतमक विचारेजन्मक दशरात्रि व्यतीत भऽ गेलाक बाद अथवा शत रात्रि वा एक वर्ष बीतगेलाक बाद नामकरण संस्कार करवाक चाही । व्युष्टेक अर्थ भेल बीतगेला उत्तर 'दशरात्रम्' क तात्पर्य अछि, अपन अपन अशौचक अन्तिम दिनक बाद' विष्णुपुराणक अनुसार अशौच बीतगेलाक बाद नामकरण करवाक चाही । गृह्यपरिशिष्ट में लिखल अछि—दुई अक्षर वा चारि अक्षरक नाम हयवाक चाही । मध्यम अक्षर घोषवत् आभ्यन्तरस्थ हयवाक चाही । नामक अन्तिमाक्षर कृदन्तान्त हयवाक चाही न कि तद्धितान्त । वर्गक तेसर, चारिम एवं पांचम वर्ण, य,र,ल,व एवं ह ई सभटा अक्षर घोषवन्त छैथि, एकरा में से कोनो एक वर्ण नामक आदि अक्षर हयवाक चाही । य र ल व अन्तस्थ वर्ण अछि । एकर प्रयोग नामक मध्य में हयवाक चाही । कृतम् अर्थात् कृदन्तान्त । शङ्खक वचन अछि—

कुल, देवता, नक्षत्र आदि सँ सम्बद्ध नाम रखवाक चाही । जेना, कुल सम्बद्ध वशिष्ठादि । देव सम्बद्ध केशव प्रभृति । नक्षत्र सम्बद्ध चैत्र प्रभृति । यमक उक्ति अछि—तत्पश्चात् छठम मास में यथाविधि अन्नप्राशन करवाक चाही । देवलक कथन अछि—

गर्भक आठम वर्ष ब्राह्मण कुमारकलेल यज्ञोपवीतक मुख्यकाल मानलगेल अछि । पन्द्रहम वर्ष धरि गौण काल कहलगेल अछि ।

उदाहरणस्वरूप याज्ञवल्क्यक वचन अछि—ब्राह्मणकलेल सोलहवर्ष, क्षत्रियकलेल बाईसवर्ष तथा वैश्यकलेल चौबीसम वर्ष धरि उपनयन कलेल मुख्यकाल होयत अछि । एकरा सँ ऊपर काल भेने ओ व्यक्तिं पतित भऽजायत छथि तथा सभतरहक धर्म कर्म सँ बहिस्कृत बुझलजायत छथि । आषोडशात् अर्थात् पन्द्रहम वर्ष धरि ई अर्थभेल । अहिमा द्वाविंशात् प्रभृतिक सेहो अर्थ बुझवाक चाही । अही तरहें ब्राह्मणादि तीनू वर्णक क्रमशः पंद्रहम एक्कीसम्, तेईसम वर्ष उपनयनक गौण काल कहलगेल अछि । एकरा सँ ऊपर उपनयन व्रात्यप्रायश्चित्त कयलाक वादे करवाक चाही । क्षत्रिय एवं वैश्यक मुख्य उपनयन काल याज्ञवल्क्य कहने छथि—बारहम वर्ष क्षत्रियक एवं **बाईसम वर्ष**

वैश्यकलेल उपनयनक मुख्य काल कहलगेल अछि । सैके अर्थात् एक सहित । उदाहरणार्थ क्षत्रियकलेल बारहम वर्ष मुख्य काल मानलगेल अछि । मनुक अनुसार—माताक असपिण्डा तथा पिताक असगोत्रा जे कन्या छथि द्विजातिकलेल ओकन्या विवाह एवं मैथुनक योग्य मानलजायत छैथि । दारकर्मणि = विवाहकलेल, मैथुने = रतिक्रिया में । याज्ञवल्क्यक वचन अछि—

माता स पाँचम एवं पिता सँ सातम पीढ़ीक बाद सपिण्डता समाप्त भय जायत छैक । सभवर्णकलेल एतवहि विधान छैक । इति ॥ पिता सँ सातम पीढ़ी छोड़ि दी एवं माता सँ पाँचम पीढ़ी छोड़ि दी । विवाह पद शेष छैक । व्यवहार में पिता सँ सातमो पीढ़ी विवाहक योग्य मानलगेल अछि । पहिने कहल गेल अछि, सिद्धान्त एवं व्यवहार में व्यवहार अधिक बलवान् होयत अछि । सुमन्तुक विचार छैन्हि—पिताक सभटा पत्नी माता छैथि, हुनक भांय सब मामा भेलाह, हुनक बेटी बहिन, हुनक अपत्य भागिनेय—ई विवाह योग्य नहि कहलगेल छथि । यदि हिनका संग विवाह होय तऽहिनक सन्तान वर्ण संकर होयत अछि । एकरा सँ सिद्ध भेल कि सौतेली माताक भ्रातृपुत्री एवं हुनक पुत्रीक संग विवाह वर्जित अछि । किन्तु सौतेली मातक बहिनक संग विवाह कयने कोनो तरहक दोष नहि कहलगेल अछि । अहि में प्रापकक अभाव होयत छैक ।

विमर्श:—अथ संस्कारनिरूपणम् । संस्कारदीपके तद्यथा—तत्र संस्कारो नाम आत्मशरीरान्तरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेषः । गर्भाधानादौ संस्कारपदं च लाक्षणिकम् । स च द्विविधः—एकस्तावत् कर्मान्तराधिकारेऽनुकूलः । यथा उपनयनजन्यो वेदाध्ययनाधिकारापादकः, अपरस्तु—उत्पन्नदुरितमात्रनाशकः, यथा बीजगर्भसमुद्भवैयो-निबर्हणो जातकर्मादिजन्यः । हारीतस्तु—'द्विविधो हि संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिः स्मार्त्तो ब्राह्मः, पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सौम्याश्च दैवः ।' तत्र ब्राह्मण संस्काराः षोडश । तथा च जातूकर्णाः—

आधानपुंससीमन्तजातनामान्नचौलकाः । मौञ्जीव्रतात्रिगोदान समावर्तविवाहकाः ॥
अन्यच्चैतानि कर्माणि प्रोचन्त्ये षोडशैवतु । शूद्राणाञ्चैव भवति निवासश्चान्त्य कर्म च ॥

अङ्गिरास्तु पूर्वोक्तान्येव गर्भाधानादीन् षोडशसंस्कारानुक्त्वा—आग्रयणम् अष्टकाः, श्रावणीकर्म, आश्वयुजीकर्म, प्रत्यवरोहणम्, दर्शश्राद्धम्, वेदारम्भः, वेदोत्सर्जनम्, प्रत्यहं क्रियमाणः पञ्चमहायज्ञाः, इत्येवं नवान्यानुक्त्वा पञ्चविंशति संस्कारानाह । गौतमस्तु, अष्टाचत्वारिशत्संस्कारामाह । मनुस्तु संस्कारस्यावश्यकतामाह—

'गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः । बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ।'

अथ जातस्य जन्मनि अनिष्टफलदान्याह भल्लाटः—
अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् । समाष्टकं पिताऽथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥
तदाद्यपादके पिता द्वितीयके जनन्यथ । धनक्षयतृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥
प्रतीपमन्त्यपादतः फलं तदेवसार्प मे ।'

मुहूर्त्तचिन्तामणौ रामाचार्यः—

गण्डान्तेन्द्रभशूलपातपरिघव्याघातगण्डावमे,
संक्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके ।
वज्रे कृष्णचतुर्दशीषु यमघण्टे दग्धयोगे मृतौ,
विष्टौ सोदरभे जनिर्न पितृभे शस्ता शुभाशान्तितः ॥
आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननीतृतीये ।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ॥
स्वर्गे शुचिप्रौष्ठपदेषु माघे भूमौ नभः कार्त्तिकचैत्रपौषे ।
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ॥
अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठाऽन्त्यमूलादिभवं हि नारदः ।
वशिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटी प्रमाणकम् ॥
अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य संक्रान्तिम पञ्चनाड्यः ।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पिताऽस्याष्टसमान पश्येत् ॥

तत्र भल्लाटः—अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् ।
समाष्टकं पिताऽथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥

प्रयोगपारिजाते— मूलजा श्वसुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् ।
महेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैव ॥

अथ जातस्योर्ध्वपंक्तौ प्रथमदन्तजनने वा सदन्त बालोत्पत्तौ दोष उक्तः पाद्मे—
उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः । दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्मभार्गवसत्तम ॥'
द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा । यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम् ॥
मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च । (पित्रोर्मातुः स्वस्य च प्रणाशम् ।' इति पाठान्तरम्)।

ब्रह्मयामले—
प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरुर्ध्व बालस्य चेद् भवेत् । क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः ।
सौवर्ण राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा । दध्योदनेन संपूर्ण पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥
समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येत् मातुलः शिशुम् । सालङ्कारं सवस्त्रं च शिशुमालिङ्ग्यसादरम् ।

तत्र मन्त्रः— रक्ष मां भागिनेयत्वं रक्ष मे सकलं कुलम् ।
गृहीत्वा भाजनं सान्न प्रसन्नो भव सर्वदा ।
निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नं च स्वमातरम् ॥
मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरञ्जीव मया सह ।
एवं कृते विधाने च विघ्नः कोऽपि ना जायते ॥ इति ।

अथ कन्यादानाधिकारिण आह कात्यायनः—

'स्वयमेवौरसीं दद्यात्पित्रभावे स्वबान्धवाः ।
दीर्घप्रवाससक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु ॥

माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम् ।'

बान्धवाः पितामहपितृव्यभ्रात्रादयः । दीर्घप्रवाससक्तेषु अतिदूरविदेशस्थितेषु पौगण्डेषु व्यवहारासमर्थेषु । स्मृतिः—

'पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ।
एते कन्याप्रदातारः पूर्वाभावे परः परः ॥' इति ।

राजमार्तण्डे—'षोडशाब्दे गर्भधराष्टमे मासि प्रसूतिका ।
उभयोरपि मरणं सत्याचार्यः प्रभाषते ॥
अब्दे पञ्चदशे गर्भे प्रसवः षोडशेऽपि वा ।
दम्पत्योश्चैव नाशः स्यादेकस्मिन्नेकनाशनम् ॥
षोडशाब्दगता नारी भवेद्गर्भसमन्विता ।
अग्रतो म्रियते माता पश्चात्पुत्रो विनश्यति ॥'

अथ तच्छान्तिः—'दद्याद्गर्भवतीं छागीं वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
पुंसवेन विधानेन संक्रमे शिवसन्निधौ ॥
गौरीं तु सम्यक् सम्पूज्य काञ्चनीं कांस्य भाजने ।
दासीं गर्भवतीं दद्याद् दैवज्ञाय च गोयुताम् ॥

उपनयनविवाहादिसंस्कारे आभ्युदयिकश्राद्धमावश्यकम् । तथा हि स्मृतिः— 'नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धे कर्म वैदिकमाचरेत् ॥' इति ।

तच्च पित्रा तदन्येन वा कर्त्तव्यमिति । तथा हि—

'पिता कुर्यात्तदन्यो वा तस्याभावे तु तत्क्रमात् ।' इति ।

तत्र क्रममाह कात्यायनः—

'स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मणि ।
पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥' इति ।

पिण्डानिति पिण्डपदं श्राद्धोपलक्षकम् । आभ्युदयिके पिण्डरहितत्त्वात् पिण्डान् आ उद्वाहनात् इत्यत्र गुणे कृते पिण्डानोद्वाहनादिति सिध्यति । उद्वाहनं विवाहः आविवाहाद्विवाहपर्यन्तमिति यावत् । तस्याभावे माणवकपितुरभावे । अभावोऽत्र विनाशरूपः । तत्क्रमात् माणवकादिसंस्कार्यक्रमादित्यर्थः । तथा च पितृकर्तृके आभ्युदयिके जीवति पितरि तत्प्रतिनिधिकृते वा संस्कार्यपितामह्यादितिसृणां पितामहादित्रयाणां पितृमातामहादित्रयाणामेव श्राद्धम् । संस्कार्यपितरि मृते तु आभ्युदयिके संस्कार्यमाणवकादिमात्रादीनां पित्रादीनां संस्कार्यमाणवकादिमातामहादीनां श्राद्धं पर्यवसितम् । तत्रापि यो यो जीवति तं तं परित्यज्य तदूर्ध्वन्तेन श्राद्धं कर्त्तव्यम् । अत्र तस्याभावे संस्कार्यपितुरभावे ।

न तु तस्मिन् प्रमीते तद्वदेव कार्यमिति द्वैतपरिशिष्टे । तस्मिन् प्रमीते पितरि प्रमीते तद्वदेव पितृवदेव अस्य न त्विति पूर्वेणान्वयः । स्मृतिः—

'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् ।
ततो मातामहादीनां वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥'

मातृश्राद्धं मात्रादित्रयश्राद्धम् । एवमग्रेऽपि । तथा च प्रथमं मातृपितामहिप्रपितामहीनां, ततः पित्रादित्रयाणां, ततो मातामहादित्रयाणामिति क्रमेण श्राद्धं कर्तव्यमिति भावः ।

'अर्घे गन्धादिदाने च अवनेजनपिण्डयोः ।
प्रत्यवनेजने सूत्रे ये चात्र षट्सु योजयेत् ॥'

इति वचनात्सामगानां ये चात्रेति पाठः । श्राद्धे विहितः, स चाभ्युदयिकादौ नास्ति । तथा हि स्मृतिः—

'प्रेतश्राद्धे स्त्रियः श्राद्धे वृद्धिश्राद्धे तथैव च ।
तथा स्त्रीकर्तृके श्राद्धे ये चात्र नाभियोजयेत् ॥' इति ।

प्रेतश्राद्धे प्रेतोद्देश्यके एकादशाहादिश्राद्धे, वृद्धिश्राद्धे आभ्युदयिके ।

अथ बालानां प्राथमिककेशकर्तनम् । राजमार्तण्डे—

'जन्मादौ सममासि पुत्रविषये स्त्रीणां तु तद्व्यत्यये
कार्यं चादिमकेशखण्डनमिदं सूर्ये च सौम्यायने ।
आदित्यद्वयदस्रपौष्णशशभृद्विष्णुत्रयार्कत्रये
पूर्वाह्णे शुभवासरे जयतिथौ ह्यष्टम्यमावर्जिते ॥' इति ।

आदित्यद्वये पुनर्वसुपुष्ये, दस्र अश्विनी, पौष्णं, रेवती, शशभृन्मृगशिरा, विष्णुत्रयं श्रवणादित्रयम् (श्र. ध. श.) अर्कत्रये हस्तत्रये (ह. चि. स्वा.) अमा अमावास्या युग्मवर्षत्याग इति समाचारात् ।

हिन्दी—अब कन्यादान के अधिकारियों के सम्बन्ध में कात्यायन ने कहा है—विवाहिता अपनी पत्नी से उत्पन्न कन्या का दान स्वयं करना चाहिए । पिता के अभाव में पिता के सोदर भाई को कन्यादान का अधिकार है पिता यदि लम्बी अवधि तक प्रवासी हो और भाई बन्धु पाँच से सोलह साल के भीतर की उम्र की हो, तो ऐसी स्थिति में अपनी कोख से उत्पन्न बेटी का कन्यादान करने का हक माता को है ।

बान्धवाः का तात्पर्य है दादा, चाचा, भाई प्रभृति । दीर्घ प्रवास सक्तेषु = अत्यन्त दूर विदेश में रहने पर । पौगण्डेषु = सोलह साल से कम उम्र वाले व्यवहार में असमर्थ होने पर ।

स्मृति का वचन है—पिता, पितामह, भ्राता तथा एकही परिवार के कोई व्यक्ति तथा माता इनमें से कोई एक पहले के अभाव में दूसरा और दूसरे के अभाव में तीसरा क्रमशः कन्यादान का अधिकारी होते है । राजमार्तण्ड में कहा गया है—सोलहवाँ साल में कन्या गर्भवती हो या आठवें महीने में प्रसूति बन जाय तो इन दोनों की मृत्यु निश्चित है । आचार्य का यह कथन सत्य है । पन्द्रहवां साल में गर्भ धारण करे और सोलहवां साल में प्रसव हो तो ऐसी स्थिति में पति-पत्नी दोनों का विनाश होना निश्चित है, या दो में से किसी एक की मृत्यु अवश्यंभावी है । सोलहवां साल में जो नारी गर्भवती होती है पहले उसकी माता और पीछे पुत्र का विनाश होता है ।

अब उसकी शान्ति बतलाते हैं—वस्त्र और अलङ्कार से विभूषित गाभिन युवा बकरी पुसवन विधान से संक्रान्ति के अवसर पर किसी शिवालय में दान करना चाहिए । सोने की गौरी की मूर्त्ति कांसे के पात्र में रखकर उनका सम्यक् पूजन कर गाय और गर्भवती दासी किसी दैवज्ञ को दान करना चाहिए । उपनयन विवाह आदि संस्कार के अवसर पर आभ्युदयिक श्राद्ध आवश्यक है ।

उदाहरण स्वरूप स्मृति का वचन है—'पितरों के अमङ्गल की कामना नहीं करते हुए वैदिक विधान के अनुसार श्राद्धकर्म करना चाहिए ।' इति । इसका क्रम कात्यायन ने कहा है—बेटे के उपनयन विवाहादि संस्कार कर्म में पिता पितरों के लिए आभ्युदयिक श्राद्ध करें । विवाहादि संस्कार में पिता को आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए । पिता के अभाव में उस क्रम का अनुसरण करना चाहिए । पिण्डानिति में पिण्डपद श्राद्ध का उपलक्षक है । आभ्युदयिक में पिण्ड रहित कर्म होता है । पिण्डान् अर्थात् पिण्डों को आउद्वाहनात् अर्थात् विवाह पर्यन्त गुण सन्धि का विशिष्टता स्पष्ट करने से पिण्डानोद्वाहनात पद की सिद्धि होती है ।

उद्वाहनम् = विवाह, आतिवाहात् अर्थात् विवाह पर्यन्त, अस्याभावे का तात्पर्य है शिशु के पिता के अभाव में । अभाव का अर्थ यहाँ पिता की मृत्यु से है । तत्क्रमात् = अर्थात् बालकों के संस्कारादि क्रम से' यह अर्थ हुआ । और इस तरह पितृकर्तृक आभ्युदयिक श्राद्ध में पिता के जीवित रहने पर वा उनके प्रतिनिधि द्वारा किये जाने पर, आमंत्रित किये जाने वाले पितामहादि तीन पीढ़ी एवं मातामहादि तीन पीढ़ी के लिए ही यह श्राद्ध है । संस्कर्त्ता पिता के मरने पर आभ्युदयिक में संस्कार्य बालक के मामादि एवं पित्रादि, अर्थात् संस्कार्य बालक के माता महादि का ही श्राद्ध होता है । इनमें भी जो जो जीवित हैं उन्हें छोड़कर उनसे ऊपर पीढ़ीवाले मृत व्यक्ति का ही आभ्युदयिक

श्राद्ध करना चाहिए । यहाँ तस्याभावे अर्थात् संस्कार करने वाले पिता के अभव में, न कि उनके मरने पर उसी की तरह करना चाहिए, यह द्वैतपरिशिष्ट का वचन है । तस्मिन् प्रमीते अर्थात् पिता के मरने पर, तद्व देव अर्थात् पिता की तरह ही, इसका न कि इसका पहले के साथ अन्वय है ।

स्मृति का वचन है—मात्रादि तीन का श्राद्ध पहले, फिर पित्रादि तीन का तत्पश्चात् माता महादि का श्राद्ध करना चाहिए । आभ्युदयिक श्राद्ध में यही तीन श्राद्ध कहा गया है । 'मातृश्राद्धम्' का अर्थ है, माता आदि तीन पीढ़ी का श्राद्ध, इसी तरह आगे भी । और, इसी प्रकार पहले माता, पितामही एवं प्रपितामही तीन का श्राद्ध । इसके बाद पिता, पितामह, प्रपितामह तीन का, इसके बाद माता महादितीन का क्रमश: श्राद्ध करना चाहिए ।

अर्घ में गन्धपुष्पादि दान, पिण्डों पर अवनेजन अर्थात् स्तरीय कुशों पर जल छिड़काव, सूत्र पर प्रत्यवनेजन प्रभृति छ: की योजना करनी चाहिए । इस वचन के अनुसार सामगान का पाठ श्राद्ध में विहित है । पर यह सामगान आभ्युदयिक श्राद्ध में निषिद्ध है ।

उदाहरणस्वरूप स्मृति का वचन—प्रेतोद्देश्यक एकादशाहादि श्राद्ध में, स्त्रियों के श्राद्ध में, आभ्युदयिक श्राद्ध में तथा स्त्रियों के द्वारा किये गये श्राद्ध में ऊपर लिखित सामगान की योजना नहीं करनी चाहिए । प्रेतश्राद्ध अर्थात् प्रेतोद्देश्यक एकादशाहादि श्राद्ध में, वृद्धि श्राद्धे = आभ्युदयिक श्राद्ध में बालकों का प्रथम केशकर्त्तन के सम्बन्ध में राजमार्त्तण्ड में—

सूर्य के सौम्यायन रहने पर, पुनर्वसू, पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रों में, पूर्वान्ह में, शुभ दिन में, जयतिथि में, अष्टमी आवर्जित कर जन्म से सम महीने में पुत्र का तथा विषम महीने में पुत्री का प्रथम केशकर्त्तन कराना चाहिए । अमावास्या एवं युग्मवर्ष का त्याग समाचार है ।

मैथिली—आव कन्यादानक अधिकारीक सम्बन्ध में कात्यायन कहने छथि—अपनबेटीक कन्यादान स्वयं करवाक चाही, बापकअभाव में अपनबान्धव कन्यादान करय । पिता यदि दूरस्थ विदेश में प्रवासी होय अपन बन्धु किशोरावस्था में होय तखन अपन कोखिक बेटीक स्वयं माता कन्यादान करय ।

बान्धवक अर्थ भेल दादा, चाचा एवं भांय प्रभृति । दीर्घप्रवाससक्तेषु = अत्यन्त दूर विदेश में अवस्थित । पौगण्डेषु = व्यवहार में असमर्थ व्यक्ति ।

स्मृतिक वचन अछि—पिता, पितामह, भ्राता, अपना कुलक लोकनि तथा माता, ई सभटा क्रमश:पूर्वक अभाव में पर कन्यादानक अधिकारी छथि ।

राजमार्त्तण्ड में—जे नारी सोलहम वर्ष में गर्भधारण करय या जे आठम मास में प्रसूति होय, ई दुहूक मरण अवश्य होयत । आचार्यक ई वचन सत्य अछि । पन्द्रह वर्ष में गर्भधारण करय तथा प्रसव सोलहम साल में करय तऽ पति एवं पत्नी दुहूक विनाश निश्चित होय । अथवा कोनो एक में एकक विनाश अवश्यं भावी अछि । सोलह सालक उम्र में यदि क्यो नारी गर्भवती होय तऽ पहिने माता तथा पश्चात् शिशुक मृत्यु अवश्य होय ।

एकरशान्ति—वस्त्र अलङ्कार सँ विभूषित कय गाभिन पाठी दान करवाक चाही । कोनो संक्रान्ति में, भगवान् शिवक सान्निध्य में गौरीक सोनक प्रतिमा कांसाक पात्र में राखि, हुनक पुंसवनक विधान सँ हुनक नीक जकां पूजा कय तत्पश्चात् गायक संग गर्भवतीदासी कोनो दैवज्ञ ब्राह्मण के दानकय देवाक चाही । उपनयन विवाह आदि संस्कार में आभ्युदयिक श्राद्ध आवश्यक है उदाहरणस्वरूप स्मृति में—यदि पितरक अनिष्ट नहि चाही तऽ वैदिक विधान सँ आभ्युदयिक कर्म करवाक चाही । ई आभ्युदयिक पिता अथवा कोनो आनलोकनिक द्वारा अनुष्ठित हयवाक चाही । उदाहरणार्थ स्मृतिक वचन अछि—सर्वप्रथम पिता को आभ्यदयिक करवाक चाही अथवा तकर भिन्न आत्मीय जन तथा तकर अभाव में ताही क्रम में । ई क्रम कात्यायन कहने छथि—अपन पुत्रक संस्कार जन्म क्रम में अपन पितरकलेल पिता के स्वयं आभ्युदयिक श्राद्ध करवाक चाही । विवाह पर्यन्त ई संस्कार करवाक चाही । बालक पिताक यदि मृत्यु भऽजाय तखन बालकक संस्कार्य क्रम से ई अनुष्ठान करणीय अछि । इति ।

'पिण्डान्' एकरा में पिण्ड पद श्राद्धक उपलक्षक अछि । यदि कही आभ्युदयिक श्राद्ध वऽपिण्ड रहिते होयत अछि तखन पिण्डान् आ उद्वाहनात् में गुण सन्धिकयला उत्तर पिण्डानो द्वाहनात् एक सिद्धिहोयत अछि । उद्वाहनक अर्थ विवाह होयत अछि, आ विवाहात् अर्थात् विवाह पर्यन्त । तस्या भावेक अर्थ अछि संस्कार्य बालकक पिताक अभाव में, अहिठाम अभाव पिताकमृत्युपरक अछि । तत्क्रमात् अर्थात् बालकादिक संस्कार्य क्रम सँ । आओर अहिना पितृकर्तृक आभ्युदयिक में पिताक जीवित रहला उत्तर अथवा हुनक प्रतिनिधि द्वारा संस्कार्य पितामही आदि तीन पीढीक, पितामहादि तीन पीढीक, पितृमातामहादि तीनक आभ्युदयिक श्राद्ध करवाक चाही । संस्कार करनिहार पिताक मृत्यु भऽ गेला उत्तर आभ्युदयिक श्राद्ध में जाहि बालकक उपनयनादि संस्कार होयत तकर मात्रादि, पित्रादि मातामहादि तीनपीढीक आभ्युदयिक श्राद्ध ई पर्यवसित भेल । ताहू में जे जे जीवित होथि तिनका सभके त्यागि हुनका सँ ऊपर पीढ़ीक श्राद्धकरी ।

अहिठाम तस्याभावे अर्थात् संस्कार्य पिताक अभाव में, नकि हुनक मृत्युक उपरान्त हुनके जकां करी, ई द्वैतपरिशिष्टक कथन अछि । तस्मिन् प्रमीते अर्थात् पिताक मुइला उत्तर, तद्वदेव अर्थात् पिता जकां, अस्य न एकरपूर्वक साथ अन्वय अछि । स्मृतिक वचन—

माताक आभ्युदयिक श्राद्ध प्रथम करवाक चाही । पितरक तत्पश्चात्, तकर बाद मातामहादिक श्राद्ध । ई तीनटा श्राद्ध आभ्युदयिक में होयत अछि ।

मातृश्राद्धम् अर्थात् माता आदि तीनक श्राद्ध । अहिना अगिलो में बुझवाक चाही । अहिना पहिने माता, पितामही एवं प्रतिपामहीक श्राद्धकरी, तकरबाद पिता, पितामह एवं प्रपितामह तत्पश्चात् मातामह, प्रमातामहादि तीनक क्रमशः श्राद्ध करवाक चाही ।

अर्घ में गन्धादि देवाक चाही, पिण्डोपरि प्रसरित कुश पर जल छिड़काव करवाक चाही, सूत्र पर प्रत्यवनेजन सभटा छः क योजना करवाक चाही । अहिवचन सँ 'सामगानां ये चात्र' ई पाठ श्राद्धकलेल विहित अछि, अभ्युदयि कलेल नहि । उदाहरण स्वरूप स्मृतियों प्रेतोंद्देश्यक एकादशाहादि श्राद्ध में, स्त्री लोकनिक श्राद्ध में, तथा आभ्युदयिक श्राद्ध में, तथा स्त्रीकर्तृक श्राद्ध में, ये चात्र अर्थात् सामगानक योजना नहि करवाक चाही । इति ।

प्रेतश्राद्धे = प्रेतोद्देश्यक एकादशाह आदि श्राद्ध में, वृद्धिश्राद्धे = आभ्युदयिक श्राद्ध में । बालकलोकनिक प्रथम केशकर्त्तनक सन्दर्भ में । राजमार्त्तण्डक वचन—

जन्ममास सँ कोनो सम मास में पुत्रकलेल तथा विषम मास में पुत्रीक यदि सूर्य सौम्यायन में होथि, पुष्य, पुनर्वसू, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, नक्षत्र होय, अष्टमी त्यागि जयतिथि एवं शुभ दिन में अष्टमी त्यागि पहिलबेर केशकर्त्तन करयवाक चाही । अमा = अमावास्या, युग्मवर्षक त्याग सभ्यलोकनिक आचार अछि ।

विमर्शः—उपनयनविहितवर्षसन्दर्भे मनुस्मृतौ—

'आषोडषात् ब्राह्मणस्य सावित्रीं नातिवर्त्तते । आद्वाविशेर्क्षत्रबन्धो आचतुर्विंशतेर्विंशः ।।'

राजमार्त्तण्डे नवमवर्षेऽपि व्रतबन्धस्य विधानमुक्तम्—
प्रायः संस्करणं प्राप्ते पञ्चमे हायने हितम् । व्रतं गर्भाष्टमे कार्यमष्टमे नवमेऽपि वा ।।

मुहूर्त्तचिन्तामणौ उपनयनस्य गौणकालप्रतिपादनम्—

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे
वर्षे वाऽप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे ।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहूर्वुधाः ।।

अथ स्त्रीस्वभावः । तत्र मनुः—

'अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च संसक्त्यः संस्थाप्यात्मानमात्मना ।।'

संशक्त्यः प्रसक्ताभवन्त्यः । नारदः—

'स्वातन्त्र्याद्धि प्रणश्यन्ति कुले जाता अपि स्त्रियः ।
अस्वातन्त्र्यं यतस्तासां प्रजापतिरकल्पयत् ॥'

स्वान्तत्र्यं स्वेच्छया गमनाचारादिकर्तृत्वम् । कुले सत्कुले । मनुः—

'सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्याः प्रयत्नतः ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥
इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्त्तारो दुर्बला अपि ॥
स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।
स्वधर्मेण प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥
स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥'

याज्ञवल्क्यः—'रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्राश्च वार्द्धके ।
अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातन्त्र्यं क्वचित्स्त्रियः ॥'

कन्यां कुमारीं, विन्नां विवाहितां, तेषां पुत्रादीनाम् अभावे इत्यनेनास्य सम्बन्धः । हारीतः—

'जीविते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः ।
तस्माद्रेतोपघाताच्च जायां रक्षेत्प्रयत्नतः ॥

जीविते इत्यस्य भर्त्तरीत्यग्रिमेणान्वयः । जारः पतिभिन्नः । 'जारस्तूपपतिस्समौ' इत्यमरः । मृते भर्तरीति जारज इति पूर्वेणान्वयः । रेतोपघातात्, परपुरुषवीर्यजनितवर्णसंकरदोषात् ।

बृहस्पतिः— 'अप्रयच्छन् पिता काले पतिश्चानुपयनृतौ ।
पुत्रश्चाभक्तदो मातुर्गर्ह्यदण्ड्याश्च धर्मतः ॥'

अप्रयच्छन् कन्यादानमकुर्वन् । काले दशवर्षाभ्यन्तरे । अनुपयन् मैथुनमकुर्वन्, ऋतौ रजोयोगानन्तरचतुर्थादिदिने । अभक्तदः भरणमकुर्वन् ।

'नैता रूपं प्रतीच्छन्ते नैता वयसि संस्थितिम् ।
न रूपं रूपवन्तं वा पुमांसञ्चापि भुञ्जते ॥'

रामायणे— 'नैवाङ्गनानां दयितो नापि द्वेष्योऽस्ति कश्चन ।
सर्वमेवावलम्बन्ते लता गहनजा इव ॥'

अङ्गनानां स्त्रीणां, दयितः प्रियः । तथा च वयोरूपाद्यपेक्षा नास्त्येव स्त्रियाः । किन्तु पुरुषमात्रस्यापेक्षेति भावः । दक्षः—

'साशङ्का बालभावे तु यौवनेऽभिमुखी भवेत् ।
तृणवन्मन्यते नारी वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥'

वृद्धभावे वार्द्धकावस्थायाम् ।

'स्वकाम्ये वर्त्तमाना सा स्नेहात्र च निवारिता ।
अपथ्याभिभवेत्पश्चाद्यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥'

स्वकाम्ये स्वेच्छायां, सा स्त्री, अपथ्या दुःखदायिनी ।

तथा च प्रथमं स्वछन्दचारिणी चेत्तदा पश्चाद्दुःखदायिनी भवतीति तात्पर्यम् । महाभारते—

'कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः ।
मर्यादासु न तिष्ठन्ति दोषश्च स्त्रीषु नारद ॥'

नारदेति सम्बोधनम् ।

'अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च ।
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥
अलाभात्पुरुषाणां च भयात् परिजनस्य च ।
वधबन्धभयात्, नैव स्वयं गुप्त्या भवन्ति ताः ॥'

भयादिभिरेव रक्षिता भवन्ति, न स्वभावाद् इति भावः । तथा च—

'नाग्निस्तृष्यति काष्ठनां नपगानां महोदधिः ।
नान्तकस्सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥'

आपगा नद्यः, अन्तको यमः, वामलोचना स्त्री । मनुः—

'एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥' स्त्रिया इति शेषः ।

तस्मात् स्त्री अस्वतन्त्रैव कर्त्तव्या, स्वातन्त्र्ये बहुदोषस्य पूर्वमभिहितत्वात् ।

हिन्दी—स्त्री स्वभाव के बारे में मनु का कथन है—अपनी आत्मा से आत्मा को जोड़कर स्वयं दिन रात विषयों में आसक्त व्यक्ति को भी स्त्री को स्वतन्त्र नहीं बनाना चाहिए । संसक्त्यः = आसक्त होते हुए भी । नारद की उक्ति है—कुलीन औरतें भी स्वतन्त्र होने पर विनष्ट हो जाती है । इसीलिए स्रष्टा ने स्त्रियों के लिए आजादी की कल्पना ही नहीं की है ।

स्वतन्त्र्य का अर्थ यहाँ है अपनी इच्छा से जहाँ तहाँ घूमना या आचरण करना । कुले का अर्थ है, अच्छे खानदान में । मनु का कथन है—

सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रसंग में भी स्त्रियां प्रयासपूर्वक रक्षणीय होती हैं । क्योंकि अरक्षित औरतें दोनों कुल के लिए शोक का कारण बन जाती हैं । यह सभी वर्णो के लिए उत्कृष्ट धर्म है कि दुर्बल पति भी पत्नी की रक्षा का प्रयास करें ।

मनु का कथन है—अपने धर्म से प्रयासपूर्वक जो पत्नी की रक्षा करते हुए अपनी सन्तान, चरित्र, कुल और अपनी रक्षा करता है, उसी की रक्षा रक्षा है । हे नारद, औरतों का सतीत्व केवल इसीलिए सुरक्षित है कि उसे मिलने जुलने का एकान्त स्थान नहीं मिलता है, मिलने का अवकाश नहीं मिलता है या प्रार्थी पुरुष का अभाव होता है ।

याज्ञवल्क्य का कथन है—कुमारी कन्या की रक्षा पिता का कर्त्तव्य है, विवाहिता की रक्षा पति तथा वृद्धावस्था का रक्षक पुत्र होता है । इन सबों के अभाव में पैतृक सम्बन्ध वाले सगोत्री जन रक्षा करते है । स्वेच्छाचारिणी स्त्रियां कभी नहीं होती हैं । कन्या = कुमारी, विन्नाम् = विवाहिता, इनके अभाव में, इसके सम्बन्धी ।

हारीत का कथन है—पति के जीवित रहने पर व्यभिचार द्वारा किसी दूसरे पुरुष के संयोग से उत्पन्न जारज पुत्र कुण्ड तथा विधवा का जारज पुत्र गोल से बचाव के लिए पर पुरुष वीर्य जनित वर्ण संकर दोष से बचने के लिए प्रयासपूर्वक पत्नी की रक्षा करनी चाहिए ।

'जीविते' इसका आगे के मर्तुः पद के साथ अन्वय है । जारः = पति से भिन्न पुरुष । अमरकोश के अनुसार जार उपपति को कहते हैं । पति के मरने पर जारज पूर्व के साथ अन्वित है । रेतोपघातात् = परपुरुष वीर्य जनित वर्ण संकर दोष से । बृहस्पति का कथन है—

पिता यदि समय पर कन्यादान न करे, रजोयोग के चौथी रात यदि पति पत्नी के साथ संगम न करे बेटे यदि मां का भरण पोषण न करें तो ये तीनों धर्मतः निन्दनीय होते हैं । अप्रयच्छन् = कन्यादान नहीं करते हुए । काले = दस साल की उम्र के भीतर, अनुपयन् = मैथुन नहीं करते हुए । ॠतौ = रजोयोग के बाद चौथे दिन । अभक्तदः = भरण पोषण नहीं करते हुए ।

ये औरतें न तो रूप ग्रहण करती है, और न उम्र की परवाह करती है यह न रूप देखती है और न रूपवान् यह तो केवल पुरुषों का उपभोग करना जानती है ।

रामायण में—औरतों का न कोई प्रिय है और न किसी से उसे द्वेष है, वह तो जिस किसी के सहारे उसी तरह लटकती हैं जैसे जंगलीलता किसी

भी पेड़ के सहारे लिपट जाती है । अङ्गनानाम् = औरतों का, दयितः = प्रिय । जैसे उसे रूप और उम्र की कोई अपेक्षा ही नहीं होती । किन्तु, उसे पुरुष मात्र की अपेक्षा होती है ।

दक्ष का कथन है—बचपन में डरती है और जवानी में साथ लगी रहती है और बुढ़ौती में अपने पति को तिनके की तरह तुच्छ समझती हैं । वृद्धभावे = बुढ़ौती में । पहले वे औरतें जो अपनी स्वेच्छा से विचरण करती हैं उन्हें स्नेह से रोका नहीं जा सका पीछे चलकर वे ही दुःखदायिनी बन जाती है, ठीक उसी तरह जैसे उपेक्षित रोग हो । स्वकाम्ये = अपनी इच्छा के अनुसार, सा = वह औरत, अपथ्या = दुःखदायिनी । और इसी प्रकार पहले स्वेच्छाचारिणी होती हैं और फिर पीछे दुःखदायिनी होती है । यही इसका अभिप्राय है ।

महाभारत में लिखा है—उत्तम परिवार में जन्म लेने वाली हो, या सुन्दरी हो, अपने पति की आश्रिता हो, फिर भी हे नारद! ये औरतें शिष्टाचार या औचित्य का नियम नहीं पालती हैं ।

यहाँ नारद पद सम्बोधन परक है । मनुष्यों की अनुपयुक्तता से, परिजनों के डर से पति के साथ ये अमर्यादित औरतें मर्यादा में रहती हैं । प्रार्थी पुरुष के अभाव में, अनुयायि वर्गों के भय से, बध या बन्धन के भय से ये औरतें मर्यादित रहती हैं, न कि अपने स्वभाव से मर्यादित होती हैं ।

डर की वजह से ये सुरक्षित रहती हैं, नकि अपने स्वभाव के कारण । और इसी तरह काठ से आग कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं, नदियों से सागर, कभी परितुष्ट नहीं होता, प्राणियों को समाप्तकर यमराज कभी तुष्ट नहीं होते ठीक उसी तरह पुरुष से औरतें सन्तुष्ट नहीं होती हैं । आपगाः = नदियाँ, अन्तकः = यमराज, वामलोचना = औरतें ।

मनु का वचन है—प्रजापति प्रदत्त इनका यह नैसर्गिक स्वभाव जानकर पुरुषों को प्रयासपूर्वक इनकी रक्षा करनी चाहिए ।

'स्त्रियाः' पद शेष है । इसलिए स्त्रियों को कभी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए । क्योंकि, इनकी स्वतन्त्रता से उत्पन्न अनेक दोष पहले ही बतलाये जा चुके हैं ।

मैथिली—आव स्त्रीक स्वभाव सम्बन्ध में—मनुक वचन—

अपन आत्मा में आत्मा के संस्थापित कय सदिखन विषयासक्त रहलो उत्तर कोनो पुरुष के दिवा रात्रि कौखन स्त्रीक स्वतन्त्र नहि करवाक चाही । संसक्त्यः = अत्यन्त आसक्त भेलो उत्तर ।

नारदक वचन अछि—उत्तम कुल में उत्पन्नो नारी यदि स्वतन्त्र भऽ जाथि तऽ हुनक विनाश निश्चित छैन्हि । ताँय विधाता नारीकलेल अस्वातंत्र्यक कल्पना कयने छथि ।

स्वातन्त्र्यम् = अपन इच्छाक अनुसार कतौ जयनाया एवं आचरण । कुले = उत्पन्न कुल में ।

मनुक वचन—अत्यन्त लघु प्रसङ्गों में प्रयासपूर्वक स्त्रीक रक्षा करवाक चाही । अरक्षित स्त्री दुहू कुलकलेल शोकक कारण होयत छथि । सभटा वर्णकलेल ई उत्तम धर्म कहलगेल अछि कि दुर्बलो पति के अपन पत्नीक रक्षा करवाकलेल सतत प्रयत्न करवाक चाही ।

मनुक वचन अछि—अपन सन्तान, अपन चरित्र, अपन वंश, अपन आत्मा एवं अपन पत्नीक जे धर्मपूर्वक रक्षा करैत छथि ओ व्यक्ति स्वयं रक्षित होयत छथि । हे नारद स्त्री लोकनिके स्थानक सुविधा नहि भेंटैत दन्हि, अवकाश नहि भेटैंत छैन्हि तथा प्रार्थना वाला पुरुष नहि भेटैंत छैन्हि ताँय हुनक सतीत्वक रक्षा होयत छन्हि अन्यथा नहि ।

याज्ञवल्क्य कथन छैन्हि—कन्याक रक्षाक भार पिता पर होयत छैन्हि, विवाहिता पत्नीक रक्षाक भार, पति पर तथा वृद्धावस्था में रक्षाक भार पुत्र पर होयत छन्हि, हिनका सभक अभाव में जाति सम्बन्धीलोकनि हिनक रक्षक होयत छथिन्ह । ताँय स्त्री लोकनिक हेतु कोनो स्थिति में स्वातन्त्र्य नहि छैन्हि । कन्या = कुमारी बालिका ।

विन्नाम् = विवाहिता स्त्री । तेषाम् = पुत्रादिकों का, एकर सम्बन्ध अछि ।

हारीतक वचन अछि—पतिक जीवितावस्था में जार अर्थात् उपपति सँ उत्पादित पुत्र कुण्ड होयत अछि तथा पतिक मरला उत्तर उपपति सँ उत्पादित विधवाक पुत्र गोलक कहवैत अछि । ताँय पर पुरुषवीर्य जनित वर्ण संकर सन्तान नहि होय एकरालेल प्रयत्नपूर्वक स्त्री लोकनिक रक्षा करवाक चाही । 'जीविते' अहि पदक अग्रिम पद भर्त्ताक साथ अन्वय छैक ।

जारः = पति सँ भिन्न पुरुष । अमरकोशक अनुसार जार उपपतिक कहल जायत अछि । मृते भर्त्तर्हि जारजः' एकरपूर्वक साथ अन्वय छैक । रेतोपघातात् = परपुरुषवीर्यजनित वर्णसंकरक दोष सँ ।

बृहस्पतिक वचन छैन्हि—दस वर्षक भीतर समय पर जे पिता कन्यादान नहि करैत छथि, रजोवती भेलाक चारिम दिन जे पति पत्नीक उपभोग नहि करैत छथि तथा जे पुत्र माता पिताक भरण-पोषण नहि करैत छथि ओ सब धर्मदृष्ट्या समाज में निन्दनीय होयत छथि अर्थात् हुनकालोकनिके गर्ह्यदण्ड देवाक चाही ।

अप्रयच्छन् = कन्यादान नहिकरैत छथि । काले = दस सालक भीतर । अनुपयन् = मैथुन नहिं करैत छथि । ऋतौ = रजोवतीभेलाक बाद चारिम दिन में, अभक्तद: = भरण पोषण नहिं करैत छथि ।

ई स्त्री लोकनिक करो रूपक प्रति इच्छुक नहि छथि, नहि कोनो अवस्थाक हिनका प्रतिबद्धता छैन्हि, हिनका न रूप चाही और न रूपवान्, मुदा ई पुरुषक उपभोग करैत छथि ।

रामायण में—स्त्रीलोकनिके न क्यो प्रिय छैन्हि तथा न ककरो सँ द्वेष छैथि बनलात जेना कोनोवृक्ष आश्रय लैत अछि तहिना ई स्त्री लोकनि कोनो पुरुषक आश्रय ग्रहण करवामें कोनो तरहक संकोच नहि करैत छथि । अङ्गनानाम् = स्त्री गणक । दयित: = प्रिय । अहिना अवस्था एव रूपादिक अपेक्षा स्त्री लोकनिके नहिं होयत छन्हि । किनतु, पुरुष मात्रक हिनका अपेक्षा छैन्हि ।

दक्षकक वचन छैन्हि—स्त्रीगण बचपन में भयाक्रान्त रहैत छथि, युवावस्था में देहलागल रहैत छथि आओर वृद्धावस्था में अपन पति के ई खरपात जकां बुझैत छथि । वृद्धभावे = वृद्धावस्था में ।

स्वेच्छाचारिणी स्त्री के यदि स्नेह सों नहि रोकल जाय तऽ आगूचलि के ओतहिना विनाशक कारण भऽ जायत· छैथि जेना उपेक्षित रोग । स्वकाम्ये = अपनइच्छा में । सा = स्त्री, अपथ्या = दु:खदायिनी । जेना प्रथमत: स्वेच्दा चारिणी एवं पश्चात् दु:खदायिनी भऽजायत छैथि । कहवाक एतवहि तात्पर्य अछि ।

महाभारत में कहलगेल अछि—हे नारद! स्त्रीलोकनि कुलीन होथि वा रूपवती या नाथवती होयथि ओ मर्यादाक अभ्यन्तर नहि रहि सकैत छथि, ई स्त्री मात्रक दोष अछि । नारद पद सम्बोधन परक अछि ।

मनुष्यक अनभिलाष सँ, परिजनक भय सँ उचित सीमा के पार करयवाली महिला पतिक संग मर्यादा मे रहैत छथि अन्यथा नहि । अभीप्सित पुरुषक अभाव में, परिजनक भय सें, वध एवं बन्धनक भय सँ स्त्रीलोकनिक रक्षित होयत छथि नकि स्वभाव से । भयादि सँ स्त्रीलोकनिक सतीत्व सुरक्षित रहैत अछि नहि स्वेच्छा सँ जेना—अग्निक तृप्ति काठ सँ नहि होयत अछि, सागरक तृप्ति नदी सँ नहि होयत छैक एवं यमराजक तृप्ति प्राणी मात्र सँ नहि होयत अछि तहिना स्त्री लोकनिक तृप्ति पुरुष सँ नहि होयत अछि ।

आपगा: = नदी सभ, अन्तक: = यमराज, वामलोचना = स्त्री ।

प्रजापतिप्रदत्त स्त्रीलोकनिक ई नैसर्गिक स्वभाव बुझि पुरुषलोकनिके हिनक रक्षाक प्रति परम यत्नशील रहवाक चाही । अहिठाम स्त्रिया: पदशेष छैक । ताँय, स्त्रीगण के अस्वतन्त्रे करवाक चाही । स्वतन्त्र भेने अनेक तरहक दोषक उल्लेख पूर्वहि कयल जा चुकल अछि ।

अथ तीर्थविधिः

महाभारते— 'बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ।
प्राप्यन्ते पार्थिवैरेव समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ॥
नार्थन्यूनैरवगणैरेकात्मभिरसंहतैः ॥'

अवगणैः सहायशून्यैः । एकात्मभिः स्त्रीरहितैः । तथा च पत्नीरहितेन न विशिष्टफलं प्राप्यत इति भावः । तत्रैव तीर्थाभिगमनात्पुण्यं यज्ञैरपि विशेष्यम् । ब्रह्मपुराणे—

'गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति ।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात् ॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा ॥'

गङ्गादौ भावनयैव फलमिति तात्पर्यम् ।

'गोयाने गोवधः प्रोक्तो हययाने तु निष्फलम् ।
नरयाने तदर्द्धं स्यात्पद्भ्यां तच्च चतुर्गुणम् ॥'

पद्भ्यामिति उपानहादिव्यतिरेकेण सातिशयं तीर्थफलं भवति, न तु तत्परिधाने दोषो निषेधाश्रवणात् । मिताक्षरास्वरसोऽप्येवम् ।

यत्त्वर्द्धं हरति पादुकेति पठन्ति तन्निबन्धकृद्भिरनादरणादनाकरमिति निर्णीयते, एवं च—

वर्षातपादिके छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च ।
शरीरत्राणकामस्तु सोपानत्कः सदा व्रजेत् ॥'

इति । विष्णुपुराणीयवचनेन तीर्थयात्रायामपि उपानत्परिधानमनिषिद्ध-मावश्यकमिति । तीर्थचिन्तामणौ तीर्थप्राप्तौ तन्निमित्तकश्राद्धमर्घावाहनवर्जितं कर्तव्यमाह देवीपुराणे—'श्राद्धं च तत्र कर्त्तव्यमर्घावाहनार्जितम्' ।

तथा— 'अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं तथा नरैः ।
प्राप्तैरेव सदा कार्यं कर्त्तव्यं पितृतर्पणम् ॥' इति ।

तत्रेति निमित्तसप्तमी तन्निमित्तकश्राद्धमित्यर्थः । अकालेऽपि निषिद्ध-कालेऽपि । तथा च तीर्थप्राप्तौ बिहिततिथ्यादिविचारो न कर्त्तव्य इति भावः । सायाह्नादौ तीर्थप्राप्तौ उत्तरदिने तीर्थश्राद्धं कुर्यात् प्रात्युत्तरविहितमुहूर्ते एवं तीर्थे श्राद्धविधानात् । तीर्थोपवासः काम्यः, न त्वावश्यकः 'त्रिरात्रमुषित्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते' इति देवलवचनात्फलश्रवणात् मुण्डनं च प्रयागावच्छिन्न-गङ्गायामेव नान्यत्र । 'गङ्गायां भास्करक्षेत्रे' इत्यादि 'वर्जयित्वा 'गयां गङ्गाम्' इत्यादि वचनानामविगीतशिष्टाचारविषयत्वात् ।

हिन्दी—अब तीर्थविधि के सम्बन्ध में महाभारत में—यज्ञ में अनेक उपकरणों की आवश्यकता होती है, अनेक अपेक्षित वस्तुओं का विस्तार होता है, ऐसे यज्ञ कोई राजा ही सम्पादित कर पाता है या कोई समृद्धशाली व्यक्ति ही सम्पादित कर पाता है । इस यज्ञ में धन की कमी नहीं होनी चाहिए । सहायता शून्य नहीं होना चाहिए । पत्नी रहित होकर ही यज्ञ सम्पादित होने के कारण कठिन है । अवगणैः = सहायता शून्य, एकात्मभिः = स्त्री रहित, और इस तरह पत्नी रहित होने पर यज्ञ का विशिष्ट फल नहीं मिलता है । वहाँ ही तीर्थाटन से यज्ञ की अपेक्षा अधिक पुण्यफल मिलता है ।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है—गङ्गा आदि तीर्थों में मछलियाँ निवास करती हैं, देवालय में घोंसले बनाकर चिड़ियाँ रहती हैं । तीर्थ से या देवायतन में निवास रहने के बावजूद भावना के उभाव में उन्हें तीर्थ का फल नहीं मिलता है । इसीलिए समाहितात्मा अपने हृदय कमल में पुण्यभावना रखकर तीर्थ का सेवन करते है । इसका तात्पर्य यह है कि गङ्गा आदि तीर्थों में भावना से ही फल मिलता है ।

बैलगाड़ी की सवारी से तीर्थाटन करना गोवध के समान कहा गया है । घोड़ा गाड़ी से तीर्थाटन निष्फल कहा गया है । मानव सवारी से तीर्थ का आधाफल मिलता है । पैदल चल कर तीर्थाटन का चौगुणा अधिक फल मिलता है । बिना जूते का पाँव पैदल तीर्थाटन का अतिशय फल कहा गया है । नकि किसी तरह के वस्त्र धारण करने में दोष है । क्योंकि, इसका निषेध कहीं नहीं सुना गया है । मिताक्षरा का भी यही मत है । और जो 'आधा पुण्य तीर्थाटन के जूते हर लेते हैं, ऐसा वचन मिलता है वह निबन्धकारों का अनादर है । अतः यह मान्य नहीं है । और इसी तरह—

वर्षा और धूप से बचने के लिए छाते, जंगल में रात में आत्मरक्षा के लिए डंडे तथा शरीर रक्षा के लिए जूते सदैव धारण करना चाहिए । विष्णुपुराण के इस वचन के अनुसार तीर्थयात्रा में भी जूते एवं वस्त्र का निषेध करना आवश्यक नहीं है । तीर्थचिन्तामणि में लिखा है तीर्थस्थान में, तीर्थ निमित्तक श्राद्ध अर्घ और आवाहन वर्जित करना चाहिए । देवीपुराण का वचन है—'तीर्थस्थल में श्राद्ध अर्घ और आवहन वर्जित करना चाहिए ।' तथा—उचित अवसर हो या अनवसर यदि तीर्थ स्थान में कोई व्यक्ति पहुँच जाय तो उसे तीर्थ श्राद्ध तथा पितृतर्पण अवश्य करना चाहिए । इति ।

तत्र इति का अर्थात् है निमित्त सप्तमी अर्थात् तन्निमित्तक श्राद्ध अर्थ हुआ । अकालेऽपि अर्थात् निषिद्ध काल में भी । और इसी प्रकार तीर्थ स्थान

में विहित तिथि आदि का विचार नहीं करना चाहिए । सायाह्न में यदि तीर्थ स्थान में पहुँचे तो दूसरे दिन तीर्थ श्राद्ध करें, अगले दिन विहित मुहूर्त्त में ही तीर्थ श्राद्ध का विधान है । तीर्थ में उपवास वांछनीय है आवश्यक नहीं । 'तीन रात उपवास कर सब पापों से मुक्त हो जाता है' यह देवल का वचन है और फलश्रुति भी है । और मुण्डन प्रयाग में गङ्गा के किनारे करवाना चाहिए । दूसरी जगह नहीं । 'गङ्गायाम् भास्कर क्षेत्रे' इत्यादि वचनों को छोड़कर 'गयाङ्गङ्गाम्' इत्यादि वचनों का शिष्टाचार के विरुद्ध नहीं होने के कारण मान्य है ।

मैथिल—आव तीर्थ विधिक उल्लेख महाभारत में—अनेक संभार सँ विस्तृत, अनेक उपकरण साध्य यह होयत अछि । एहन यज्ञ क्यो राजे करैत अछि अथवा कोनो कोनो समृद्धशाली व्यक्ति द्वारा सम्पन्न कयल जा सकैछ । ई यज्ञ अधिक अर्थ साध्य होयत अछि । सहायक शून्य होयत अछि । असंयुक्त होयत अछि । स्त्री रहित भऽ क एकात्मके सम्पादित करय पड़ैत छैक । आओर जेना पत्नीरहित भेने यज्ञक विशिष्ट फल नहिं भेटय । ताहीठाम यज्ञकअपेक्षा तीर्थाटन कयने अधिक पुण्यफल भेटय एह प्रमाण छैक । ब्रह्मपुराण में—

गङ्गादि तीर्थ में माछसभ रहैत अछि, देवालय में अपन खोंता बनाय पक्षीण निवास करैत छैथि । मुदा तीर्थ में या देवायतन में निवास कयले उत्तरभावना शून्यताक कारण एकर फल हुनका नहि भेंटैत छन्हि । गङ्गादितीर्थ में भावने से फल भेंटैत छैक कहवाक तात्पर्य एतवहि छैक ।

बैलगाड़ीक सवारी सँ जो तीर्थाटन करी तऽ ओ व्यक्ति के गोहत्याक पाप लागय। घोड़ागाड़ी सं तीर्थाटन निष्फल होयत अछि। मानुषक सवारी सँ तीर्थाटनक आध फल भेंटैत छैक पैरे तीर्थाटनक चारिगुणा अधिक फल भेंटैत अछि ।

जूता रहित खाली पैरें तीर्थाटन कयने अतिशय तीर्थक फलभेंटैत अछि । नकि वस्त्रादिकलेल कोनो दोष कहलगेल अछि । एकर निषेध कोनो वचन नहिं सुनल गेल अछि । मिताक्षराक अभिमत सेहो एतवहि अछि ।

'अर्द्धं हरति पादुका' ई वचन निबन्धकारक अभिमत नहिं छैन्हि तें ई अकरणीय अछि ।' एहन दोसर वचन—धूप एवं वर्षा सँ वचाव कलेल छाता, राति में जंगलक राह पार करवाकलेल डंडा एवं शरीर रक्षक निमित्त जूता पहिर चलवाक चाही । विष्णुपुराणक अहि वचन सँ तीर्थ यात्रो में जूता या परिधानक निषेध नहि कयलगेल अछि प्रत्युत आवश्यके मानलगेल अछि । तीर्थचिन्तामणि में लिखल गेल अछि तीर्थ स्थान में तीर्थ निमित्तक श्राद्ध अर्थ एवं आवाहनरहित करवाक चाही । देवीपुराण में—

'अर्घ एवं आवाहन वर्जित तीर्थश्राद्धकरवाक चाही ।' तथा—निषिद्ध काल होय वा विहित काल तीर्थस्थान पहुँचि गेला उत्तर तीर्थ श्राद्ध एवं पितृतर्पण

व्यक्ति के अवश्य कऽ लेवाक चाही । इति । तत्र इति निमित्त सप्तमी, एकर अर्थ भेल तीर्थ निमित्त श्राद्ध । अकालेऽपि = निषिद्ध कालो में । अहितरहे तीर्थ स्थान में विहित तिथ्यादिक विचार नहि करवाक चाही । यदि सायाह्नादि में तीर्थस्थान जायतऽ ओकर दोसर दिन तीर्थश्राद्ध करवाक चाही । तीर्थ श्राद्धकलेल जाहि दिन सायंकाल में तीर्थ स्थान पहुँची तकर प्रात: काले ओकर विहित मुहूर्त मानलजायत अछि । तीर्थमें उपवास अभीप्सित अछि, आवश्यक नहि । 'तीन राति तीर्थस्थान में उपवास कयने सभतरहक पाप सँ मुक्ति भेंटि जायत छैक' देवलक ई वचन एवं फल श्रुतिक कारण सँ । प्रयाग गङ्गो में माथ मुरयवाक चाही अन्यत्र नहि माथ मुरयवाक चाही । 'गङ्गायाम् भास्करे क्षेत्रे' इत्यादि छोड़िकय 'गयाङ्गङ्गाम्' इत्यादि वचनक अनिन्दित शिष्टाचारक विषयक भेने ई सिद्ध होयत अछि ।

अथ प्रयागविधि: । पद्मपुराणे—

'पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिंद्या सह सङ्गता ।
हन्ति कल्पशतं पापं सा माघे नृपदुर्लभा ॥
अमृतं कथ्यते राजन् सा वेणी भुवि कीर्त्तिता ।
तस्यां माघे मुहूर्तं तु देवानामपि दुर्लभम् ॥'

पश्चिमाभिमुखी प्रयागे वटशाखादौ, क्वचित् कालिन्द्या सह सङ्गता तु प्रयागे । तत्रैव—

'पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुर्य: सन्तीह या: पुन: ।
स्नातुमायान्ति ता वेण्यां माघे मासि नराधिप ॥
सर्वतीर्थानि कृष्णानि पापिनां सङ्गदोषत: ।
भवन्ति शुक्लवर्णानि प्रयागे माघमज्जनात्' ॥

माघस्नानमन्त्रस्तु— 'मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव ।
स्नानेनानेन देवेश यथोक्तफलदो भव ॥' इति ।

तथा— 'त्रीणि कुण्डानि राजेन्द्र तेषां मध्ये तु जान्हवी ।
प्रयागस्य प्रवेशेन पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥'

त्रीणीति एकं प्रयागनगरे, द्वितीयं प्रतिष्ठाननगरे (झूँसीति भाषया प्रसिद्धम्) तृतीयं यमुनादक्षिणे ।

'प्रयागे वपनं कुर्याद्गयायां पिण्डपातनम् ।
दानं दद्यात्कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां तनुं त्यजेत् ॥
किं गयापिण्डदानेन काश्यां वा मरणेन किम् ।
किं कुरुक्षेत्रदानेन प्रयागे मुण्डनं यदि ॥ इति ।

केशानां यावती संख्या छिन्नानां जान्हवी जले।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।
यावन्ति नखलोमानि वायुना प्रेरितानि वै ।
पतन्ति जान्हवीतोये नराणां पुण्यकर्मणाम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ।।'

अत्र स्त्रिया अपि समूलसर्वकेशमुण्डनमेव । न च—

'सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ।
एवमेव हि नारीणां मुण्डमुण्डनमादिशेत् ।।'

इति प्रायश्चित्तप्रकरणे श्रुतस्य आकांक्षातौल्यात्तद्द्वयङ्गुलकेशकर्तनमेव प्रयागेऽप्युचितमिति वाच्यम्—

'केशमूलान्युपाश्रित्य सर्वपापानि देहिनाम् ।
तिष्ठन्ति तीर्थस्नानेन तस्मात्तां वापयेत्तु वै ।।'

इत्यादिना तीर्थे समूलकेशवपनस्यैव विशिष्टविहितत्त्वात् । एतच्च मुण्डनं स्नाननित्यकर्मादि कृत्वा सङ्कल्प्य कर्तव्यम् ।

सङ्कल्पस्तु ॐ अद्येत्यादि छेदनीययावल्लोमसमसंख्यबहुवर्षसहस्रावच्छिन्नस्वर्गलोकमहितत्त्वकामो गङ्गायां वपनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्यवपेत् ।

ततः श्राद्धाधिकारिणा तीर्थप्राप्तिनिमित्तकपार्वणं कार्यम् तदसंपत्तौ षट्पुरुष पिण्डदानमपि कर्तव्यम् । तदुत्तरदिने ऋणमोचनतीर्थे स्नायात् । ॐ अद्येत्यादि सकलर्णविमुक्तिस्वर्गलोकावाप्त्यमृतत्त्वकामः ऋणमोचनतीर्थे स्नानमहं करिष्ये । ॐ अद्येत्यादि सर्वपापविमुक्तिपूर्वकस्वर्गगमनकामोऽद्यादि माघेत्र्यहं प्रातः स्नानमहं करिष्ये ।

प्रयागपश्चिमे कम्बलाश्वतरसमीपे यमुनोत्तरकूले यमुनास्नाने—

ॐ अद्येत्यादि सर्वपापविमुक्तिकामः कम्बलाश्वतरसमीपे यमुनायां स्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्पः । स्नानानन्तरं तर्पणं तत्रापि, अत्र जलपानेऽप्येतदेव फलम् । अत्रैव महादेवदर्शनम् ।

ततो दशाश्वमेधिकस्थलं गच्छेत् । ॐ अद्येत्यादि अश्वमेधजन्यफलसमफलप्राप्त्याढ्यत्वरूपवत्त्वदक्षत्वदातृत्वधार्मिकत्वभवनकामोदशाश्वमेधिकतीर्थस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्पः ।

ततः स्नानतर्पणे कुर्यात् । प्रयागे हेमशृङ्गिसवत्सगोदाने गोब्राह्मणौ संपूज्य । ॐ अद्येत्यादि गङ्गायमुनासङ्गमे एतद्गोवत्सोभयरोमसमसंख्यकवर्षसहस्रावच्छिन्नस्वर्गलोकमहितत्त्वनरकादर्शनोत्तराक्षयसकलहर्षबहुदारपुत्रभृत्यवर्गबहुविष-

घोरमहापातकसंक्रमपरित्राणकाम इमां स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरां चैलकण्ठी पयस्विनीं कपिलां गां रुद्रदैवतामित्यादि । ततो दक्षिणा ।

'तीर्थे न प्रतिगृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च ।
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो भवेद्द्विजः ॥'

निमित्तेषु संक्रान्त्यादिषु । अप्रमत्तः प्रमादशून्यः ।

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्वरानने! ॥

अतो जिह्वाहस्तमनश्चक्षुषां शुद्धौ तीर्थफलमन्यथा नेति ।

हिन्दी—अब पद्मपुराण के अनुसार प्रयाग का कृत्य—प्रयाग में यमुना के साथ गङ्गा पश्चिमाभिमुख बहती हैं । हे राजन्! माघ महीने में इस गङ्गा में स्नान दुर्लभ है । क्योंकि, यह स्नान सैकड़ों कल्प (एक कल्प में मनुष्य का ४३२०००० वर्ष की अवधि होती है) में किये गये पाप विनष्ट हो जाते हैं । हे राजन्, यह तीर्थ अमृत कहलाता है । संसार में यह त्रिवेणी के नाम से ख्यात है । माघ महीने में इसका सम्पर्क मुहूर्त्त भर भी देवताओं के लिए दुर्लभ है । प्रयाग में पश्चिमाभिमुखी गङ्गा वट शाखादि में कहीं कहीं यमुना के साथ साथ बहती हैं । वहाँ ही—

पृथिवी पर जितने तीर्थ स्थान हैं या फिर अन्य नगरों में जो तीर्थ स्थान है, हे राजन्! माघ महीने में वे सभी इसी त्रिवेणी में स्नान करने आते है । पापियों के सङ्ग दोष से सारे के सारे तीर्थ काले हो जाते हैं । माघ महीने में वे प्रयाग तीर्थ में स्नान कर पुनः शुक्ल अर्थात् दिव्य वर्ण हो जाते हैं ।

माघ स्नान के मन्त्र—हे माधव, हे अच्युत, हे गोविन्द माध महीने में मकरस्थ सूर्य के रहने पर जो व्यक्ति प्रयाग में स्नान या दान करता है, उसे यथोक्त फल देनेवाले बनो । इति और—तीन कुण्डों के बीच गङ्गा नदी बहती हैं, हे राजन्, इस प्रयाग में प्रवेश करते ही सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । तीन कुंड में एक प्रयाग में है, दूसरा झूंसी नगर में है और तीसरा यमुना के दक्षिण में है । (कूर्मपुराण में लिखा है—उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य च दक्षिणे । ऋण प्रमोचनं नाम तीर्थं तु परमं स्मृतम् ॥) ।

प्रयाग में केश कटवाना चाहिए । गया में पिण्डदान करना चाहिए । कुरुक्षेत्र में दान देना चाहिए । वाराणसी में शरीर त्यागना चाहिए । किन्तु गया में पिण्ड दान करने से क्या लाभ? काशी में मरने से क्या फायदा? कुरुक्षेत्र में दान करने से क्या लाभ? यदि प्रयाग में केश कटवा लिया तो सभी फल तो उसे इसीसे मिल गया । इति ।

गङ्गा के जल में जिन के कटे केश गिरते हैं; उनके केशों की जितनी संख्या होती है, उतने हजार वर्षों तक वे स्वर्ग का उपभोग करते हैं । पुण्यकर्मी व्यक्ति व्यक्ति के जितने प्रयाग में कटे केश और नाखून हवा में उड़कर गङ्गा के प्रवाह में गिरते हैं उतने ही हजारों वर्ष वे ब्रह्म लोक में निवास करते हैं । यहाँ—स्त्रियों को भी समूल सारे केश कटवाना चाहिए । नह्नि— सारे केशों को छोड़कर मात्र दो अंगुल बाल कटवाना चाहिए । इसी तरह औरतों के मुड़ मुड़वाने का शास्त्रीय आदेश है । प्रायश्चित्त प्रकरण में जो ऐसा वर्णित है उसमें भी इच्छा की तुलना से दो अंगुल केश कर्त्तन प्रयाग में भी उचित है, ऐसा कहा जाय तो—'देहधारियों के सारे पाप केश की जड़ में ही टिके रहते हैं, वे तीर्थ स्नान से भी नहीं धुलते, अत: उन्हें समूल कटवा ही डालना चाहिए ।' इत्यादि वचनों से तीर्थ स्थल में भी समूल केश कटवाने का विशेष विधान है । यह मुण्डन स्नान एवं नित्य कर्म करने के पश्चात् सङ्कल्प करना चाहिए । सङ्कल्प वाक्य—ओं अद्येत्यादि ... . करिष्ये । इस संकल्पवाक्य को पढ़कर तब बाल कटवायें ।

इसके बाद श्राद्ध के अधिकारी तीर्थ प्राप्ति निमित्तक पार्वणश्राद्ध करें । अपनी गरीबी की स्थिति में भी कम से कम छः पुरुषों तक का पिण्ड दान भी करना चाहिए । उसके दूसरे दिन भी ऋण मोचन तीर्थ में स्नान करना चाहिए । स्नान से पूर्व दो संकल्प ओं अद्येत्यादि पढ़ना चाहिए । फिर मूलस्थ दूसरा सङ्कल्प वाक्य पढ़कर तीन दिन प्रातः स्नान करें । प्रयाग से पश्चिम कम्बलाश्वतर के समीप में यमुना नदी के उत्तरीय किनारे पर यमुना स्नान करें । स्नान से पूर्व यमुना स्नान का मूलस्थ सङ्कल्प वाक्य पढ़े । स्नानोपरान्त यहाँ ही तर्पण करे । यहाँ यमुनाजल पीने का भी वही पुण्य फल होता है । यहाँ ही महादेव का भी दर्शन करना चाहिए ।

इसके बाद दशाश्वमेधिक स्थान जाय । वहाँ तीर्थस्नान से पूर्व मूलस्थ सङ्कल्प वाक्य पढें । फिर सङ्कल्प के बाद स्नान एवं तर्पण करें । फिर प्रयाग में, बछड़े के साथ दुधारू गाय जिसका सींग सोने से मढवाकर उसकी एवं ब्राह्मण की पूजाकर 'मूलस्थ संकल्प वाक्य पढकर दान कर दें । फिर गोदान की दक्षिणा दें ।

तीर्थ में दान नहीं लेना चाहिए । खाशकर पूण्यभूमि, देवालय एवं हर संक्रान्ति में, इस अवसरों पर ब्राह्मणों को प्रमाद शून्य होना चाहिए ।

निमित्तेषु = संक्रान्त्यादि में, अप्रभत्तः = प्रमाद शून्य । दूसरे का अन्न खाने वाली की जीभ जल जाती है । दान लेने से दोनो हाथ जल जाते हैं । पर स्त्री के प्रति आकर्षण से व्यक्ति का मन जल जाता है । तो फिर, हे

वरानने! ऐसे लोगों को सिद्धि कैसे मिलेगी । इसलिए जीभ, हाथ, मन एवं आंखों की शुद्धि में ही तीर्थ का फल मिलता है, अन्यथा नहीं ।

मैथिली—आव प्रयागक कृत्य, पद्मपुराण में—यमुनाक संग गङ्गा प्रयाग में पश्चिमाभिमुख भय वहैत छथि । हे राजन्, माघ मास में प्रयाग में ई गङ्गा दुर्लभ छैथि, अहि में माघ स्नानजे व्यक्ति करैत छथि, हुनक शतकल्पक पाप विनष्ट भऽ जायत छैन्हि । हे राजन्! हिनका परम मुक्तिक स्थान कहल जायत अछि । संसार में ई त्रिवेणीक नामे ख्यात छथि । देवता लोकनिकलेल माघमास में एको मुहूर्त्तकलेल ई दुर्लभ छथि । बटशाखादि में, प्रयाग में पश्चिमाभिमुख ई गङ्गाकतौ यमुनाक सङ्गे वहति छथि । ताहीठाम—हे राजन्! अहि धरती पर जतेक तीर्थ छथि वा जतेक तीर्थ नगर छैथि ओसभटा माघ मास में त्रिवेणी में स्नानकलेल आवैत छथि । पापी लोकनिक संगदोष सँ सभटातीर्थ कृष्णवर्ण भऽ जायत छथि, मुदा प्रयाग में माघ स्नान कयला उत्तर ओ सभटा शुक्ल वर्ण भऽजायत छैथि ।

माघस्नानक मन्त्र—हे गोविन्द, हे अच्युत, हे माधव माघ मास में रविक मकरस्थ रहला उत्तर, हिनका में स्नान कयने हे देवेश, ई यथोक्त फलप्रद होथु । इति । तथा—हे राजेन्द्र, तीन कुण्डक मध्य में ई गङ्गा वहैत छथि । प्रयाग में प्रवेश भेनहि तत्क्षण पाप विनष्ट भऽजायत छैक । तीन कुण्ड, इन में एक प्रयाग नगर में है, दूसरा प्रतिष्ठा नगर अर्थात् झूँसी में है और तीसरा यमुना के दक्षिण में है ।

प्रयाग में केशकटयवाक चाही । गया में पिण्ड दान करवाक चाही । कुरुक्षेत्र में दान देवाक चाही तथा शरीरक त्याग वाराणसी में करवाक चाही । गया में पिण्डदानक की महत्त्व, काशी में मरवाक की फल कुरुक्षेत्र में दानक की प्रयोजन, यदि प्रयाग में एक बेर मुण्ड मुड़ाली तऽ अहि सभक कोनो प्रयोजन नहि होयत अछि । गङ्गाक जल में काटल केशक जतेक संख्या छैक ओ प्राणी ओत वहि हजार वर्ष धरि स्वर्ग में निवास करैत छथि । पुण्यकर्मी मानुषक जतेक नख एवं लोम वायु प्रेरित भय प्रयागक गङ्गा में खशैत छन्हि तायत् हजार वर्ष ओ व्यक्ति ब्रह्मलोक में निवास करैत छथि । प्रयाग में स्त्री लोकनिके सेहो समूल सभटा केश कटा लेवाक विधान अछि । यदि सभटा केश छोडिकय स्त्री लोकनिक प्रयाग में दुई आंगुर मात्रेकेश कटावैत छथि तऽ स्त्री जोकनिकलेल एहनो विधान छैक । ई प्रायश्चित्त प्रकरण में वर्णित छैक । मुदा, इच्छाक तुलना सँ प्रयागों में दुई आंगुर केश कटायवे उचित अछि, ई कही तऽ 'देहधारी लोकनिक सभ तरहक पाप हुनक केश मूलक आश्रय ग्रहण कय निवास करैत अछि । ताँय, तीर्थ स्नान एवं मुण्डमुडालेवाक चाही ।' इत्यादिवचनक अनुसार तीर्थ में समूल केश कटयवाक विशेष विधान अछि । मुण्ड मुडैवाक वाद स्नान

नित्यकर्मादिकय सङ्कल्प करवाक चाही । मूलस्थ ओं अद्येत्यादि संकल्प कयलाक बादे केशकटावी ।

तकरबाद श्राद्धाधिकारी तीर्थ प्राप्ति निमित्तक पार्वण श्राद्ध करी । सम्पतिक अभावो में छः पुरुषक पिण्ड दानों अवश्य करी । ओकर दोसर दिन ऋणमोचन तीर्थ में—(कूर्मपुराणक वचन छैक—उत्तरे यमुना तीरे प्रयागस्य च दक्षिणे ऋण प्रमोचनं नाम तीर्थन्तु परमं स्मृतम्) स्नान करवाक चाही । मूलस्थ सङ्कल्प वाक्य पढ़ि तीन दिन प्रातः स्नान करवाक चाही ।

प्रयागक पश्चिम में कम्बलाश्वतरक समीप में यमुनाक उतरवारीकात में यमुनास्नान करवा सँ पूर्व मूलस्थ ओं अद्येत्यादिक सङ्कल्प वाक्य पढ़ि स्नान करी। तत्पश्चात् ताहीठाम तर्पणो कयलेवाक चाही । यमुनाक अहिठाम जल पीवाक फलो ओतवहि छैक । अहीठाम महादेवक सेहो दर्शन करी ।

तकरवाद दशाश्वमेधिक स्थल जयवाक चाही । ओहूठाम पहिने मूलस्थ सङ्कल्प वाक्य पढ़ि तखन स्नान करवाक चाही । पश्चात् तर्पण सेहो करी । पुनः अहि क्षेत्र में बछड़ा लागल कपिला गाय जकर सींग सोन सँ मेढावल होय तकर पूजाकय, ब्राह्मण पू५ाकय, सङ्कल्पवाक्य पढ़ि कऽ देवाक चाही । तत्पश्चात् दक्षिणा दी ।

पुण्य क्षेत्र में, देवालय में, सभटा संक्रान्ति में एवं तीर्थ में कोनो ब्राह्मण के प्रमादरहित भऽके दान नहि स्वीकार करवाक चाही । निमित्तेषु = संक्रान्ति आदि में । अप्रमत्तः = प्रमाद रहित भऽ के । परान्न भोजन कयने जीभ जरि जाय दान लेने दुहू हाथ जरि जाय, परस्त्रीक अभिलाश कयने मन जरि जाय, हे वरानने कहू एहन पुरुषक सिद्धि कोना होय ।

अत एव जाहि व्यक्तिक जिह्वा, हाथ, मन एवं आंखि शुद्ध होय तकरे तीर्थक पुण्य फल भेंटैत छैक, अन्यथा नहिं ।

अथ गयाविधिः

तत्राविभक्तानां मध्ये ज्येष्ठस्य तदाज्ञया कनिष्ठस्यापि श्राद्धेऽधिकारः । विभक्तानां तु सर्वेषामेवाधिकारः ।

तत्र नारदः— 'भातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते ।
विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ।।' इति ।

एवमेव पार्वणेऽपि । एकोद्दिष्टे तु सर्वेषामेव पृथगधिकारः । द्वैतपरिशिष्टे तु—'एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ।
तेषां वै समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।।'

इति वचने समवेतानामविभक्तानामिति व्याख्याय गयाश्राद्धे अविभक्तानामपि पृथगधिकरमाहुस्ते भ्रान्ताः । भ्रातृणामविभक्तानामित्यादि नारदवाक्यबलाद्बाधसापेक्ष्यविध्यापत्तेः । किंच समवेतानामित्यस्य तदर्थकत्वे मानाभावात् मिलितानामित्यस्यैव तदर्थकत्वात् लिखितवचनादेव संसर्गानन्तरं न पृथधिकारो द्रष्टव्य इति गयाश्राद्धे कालनियमः । तथा हि वायव्ये—

'गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।
अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः ॥
न त्यजेच्च गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ।'

अत्रार्घावाहनवर्जितं श्राद्धम् । तथा हि—

'पायसेन गयायां च सक्तुना पिण्डकेन वा ।
चरुणा तण्डुलाद्यैर्वा पिण्डदानं विधीयते ॥'

श्राद्धासम्पत्तौ पिण्डमात्रमपि दद्यात् ।

'पिण्डदानं ततः शस्तं पितृणां चातिदुर्लभम् ।
बिलम्बो नैव कर्त्तव्यो नैव विघ्नं समाचरेत् ॥ इति स्मृतेः ।

अत्र पतितानामसंस्कृतानामपि श्राद्धम् । तथाहि गारुडे—

'ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
पापं तत्सङ्गमं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥
असंस्कृता मृता ये च पशुचौरहताश्च ये ।
सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते ॥'

अत्र ब्रह्महत्येत्यादेर्यमुद्दिश्य गयाश्राद्धं क्रियते तस्य महापातकमपि नश्यति इति तात्पर्यम् । असंस्कृता इति ते हि गयाश्राद्धात् सुगतयो भवन्तीति तात्पर्यमिति तीर्थचिन्तामणिः । संवत्सरानन्तरं पतितस्वर्गकामनया गयाश्राद्धम् । तथा हि ब्रह्मपुराणे— 'क्रियते पतितानां तु गते सम्वत्सरे क्वचित् ।
देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाकूपेषु बन्धुभिः ॥'

फलमाह मात्स्ये— 'पितृतीर्थं गया नाम सर्वतीर्थवरं स्मृतम् ।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः ॥
यत्रेषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः ।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥
यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥'

गारुडे— 'ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥

सकृद्गयाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रपातनम् ।
दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः ॥' इति ।

अपुत्रं विशालराजानं प्रत्याह वाराहे—

'राजन् पितॄंस्तर्पय पुत्रहेतोर्गत्वा गयायां विधिवच्च पिण्डैः ।
ध्रुवं सुतस्ते भविता नृवीर! सहस्रदाता सकलक्षितीशः ॥'

अत्र महापातकिनोऽपि श्राद्धोद्देश्यस्य गयाश्राद्धेन सद्गतिर्भवति कर्तृपुत्र-कामत्वे तस्य पुत्रोऽपि भवतीत्यर्थ इति तीर्थचिन्तामणिः । गारुडे—

'गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः ।
न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥' इति ब्रह्मवाक्यम्।

बृहस्पतिः— 'काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भयभीरवः ।
गयां यास्यति यः पुत्रः सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥
गयायां धर्मपृष्ठे च सदसि ब्रह्मणस्तथा ।
गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितृदत्तमथाक्षयम् ॥
ब्रह्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च ।
दृष्ट्वैव तानि पितॄंश्च वशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥'

वायव्ये—'महाकल्पकृतं पापं गयायां च विनश्यति ।'

महाभारते पुलस्त्ययात्रायाम्—

'ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
अश्वमेधमवाप्नोति गमनादेव भारत ॥
यत्राक्षयवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
यत्र दत्तं पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमित्युत ॥'

तथा— 'शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नृप ।
पुनात्यासप्तमं तत्र कुलान्यत्र न संशयः ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
तत्तारयति सन्तप्तान् दशपूर्वान् दशावरान् ॥'

अवरान् अधःस्थान् पुरुषानिति शेषः । अत्र पितुः पृथगेव मात्रादिश्राद्धम् तथा हि वायव्ये—

'अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च क्षयाहनि ।
मातुः श्राद्धे पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥'

वृद्धौ आभ्युदयिके, क्षयाहनि वार्षिके । तथा चैतच्चतुष्टये पृथगेव एतद्भिन्ने सर्वकर्मणि पार्वणादौ न मातॄणां पृथक् श्राद्धकरणम् पितृश्राद्धेनैव

तच्छ्राद्धसिद्धेरिति भावः । स्मृतिः—

'ब्रह्मणा प्रेषितो विष्णुः फल्गुको ह्यभवत्पुरा ।
दक्षिणाग्नौ हुतं नूनं तद्भवं फल्गुतीर्थकम् ॥
तीर्थानि यानि सर्वाणि भुवनेष्वखिलेष्वपि ।
तानि स्नातुं समायान्ति फल्गुतीर्थं सुरैः सह ॥
गङ्गा पादोदकं विष्णोः फल्गुर्यदि गदाधरः ।
इयं हि रुद्ररूपेण तस्माद् गङ्गाऽधिकं विदुः ॥
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ।
नासौ तत्फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्यते ॥
फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोति स्नानमादृतः ।
पितृणां विष्णुलोकाय भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥'

तथा— 'फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
आत्मानं पितृभिः सार्द्धं यत्रयेद्वैष्णवं पदम्' ॥

हिन्दी—अब गया का कर्म बतलाते हैं—सम्मिलित परिवार में बड़े बेटे को ही गया श्राद्ध का अधिकार है और बड़े बेटे की आज्ञा से छोटे को भी गया श्राद्ध का अधिकार है । विभक्त परिवार में सभी बेटों को गया श्राद्ध का अधिकार है ।

इस सन्दर्भ में नारद की यह उक्ति दर्शनीय है—बिना बड़े भाईयों में एक ही धर्मानुष्ठान का अधिकारी है । बटवारा हो जाने पर उन सबों का धार्मिक कृत्य भी अलग—अलग होता है । इति । इसी तरह पार्वण श्राद्ध में भी । एकोदिष्ट में तो सबों को अलग—अलग अधिकार है ही । द्वैतपरिशिष्ट में लिखा है—

किसी यदि बहुत सारे शीलवान् एवं गुणवान् बेटे आपस में बटे नहीं हैं तो उनमें से कोई एक भी गया जाकर संस्कार जन्य कोई धार्मिक अनुष्ठान कर सकता है । इस वचन में समवेतानाम् अर्थात् बिना बटवारा किये ऐसी व्याख्याकर गया श्राद्ध में विना बटवारा किये भी अलग—अलग जो गया श्राद्ध का अधिकार मानते हैं । वे भ्रान्त हैं । 'भ्रातृणांमविभक्तनाम्' इत्यादि नारद के कथन के बल से बाध सापेक्ष विध्यापत्ति होगी । किन्तु 'समवेतानाम्' इसका तदर्थकत्व नहीं होगा क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं है । ठीक इसके विपरीत लिखित वचन के अनुसार मिलितानाम्' इसी का तदर्थकत्व सिद्ध होता है । क्योंकि, संमिश्रण के बाद अलग अधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता है । गया श्राद्ध में किसी भी समय की प्रतिबद्धता नहीं है ।

उदाहरणार्थ वायुपुराण में—लोग गया में सभी समय पिण्ड दान करते हैं । अधिमास हो जन्मदिन शुक्रास्त हो या गुर्वस्त, सिंहस्थ बृहस्पति के रहने पर भी बुद्धिमान व्यक्ति गया श्राद्ध नहीं छोड़ते हैं ।

गया में अर्घ एवं आवाहन वर्जित श्राद्ध करते हैं । उदाहरणार्थ—खीर से, सत्तू से, चरु से, अथवा चावल से पिण्ड बनाकर पिण्ड दान का विधान है । सम्पूर्ण श्राद्ध नहीं करने की स्थिति में भी कम से कम पिण्डदान अवश्य करना चाहिए—गया में पिण्ड दान ही प्रशस्त है ।

पितरों के लिए अत्यन्त दुर्लभ पिण्ड दान ही गया में प्रशस्त है । इसमें न तो विलम्ब करना चाहिए और न तो विघ्न ही डालना चाहिए । यह स्मृति का कथन है । यहाँ पतितों का एवं संस्कारहीनों का भी श्राद्ध होता है ।

उदाहरणार्थ गरुड़पुराण में—ब्रह्महत्यारा, शराबी, चोर, गुरुपत्नाभिगामी, उनकी संगति से उत्पन्न सारे पाप (उनके द्वारा कृत पाप) गया श्राद्ध से विनष्ट हो जाता है । संस्कारहीन मरे व्यक्ति, पशुओं से मारे गये व्यक्ति, चोरों से मारे गये व्यक्ति या सांप के काटने से मरे व्यक्ति भी गया श्राद्ध से पाप मुक्त होकर सीधे स्वर्ग पधारते हैं ।

यहाँ ब्रह्म इत्यादि को उद्देश्य बनाकर गया श्राद्ध करता है उसका महापातक भी विनष्ट हो जाता है । इस कथन का यही तात्पर्य है । जो व्यक्ति संस्कार विहीन ही मर गये हो उनकी भी गया श्राद्ध से सुगति होती है, इसका यही तात्पर्य तीर्थचिन्तामणि में लिखा है । एक साल के भीतर ही पतितों की स्वर्ग कामना से गया श्राद्ध करना चाहिए ।

उदाहरणार्थ ब्रह्मपुराण में—एक साल निकल जाने पर यदि कहीं किसी पतित का गया श्राद्ध कोई करे तो वह बन्धुओं के साथ गया कूप में गिरता है । इसका फल मत्स्यपुराण में कहा गया है । पितरों के तीर्थ का नाम गया है । सभी तीर्थों में यह श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है । जहाँ देवताओं के देवता स्वयं पितामह निवास करते हैं । जहाँ अपने भाग के अभिलाषी पितर यह गीत गाते है, 'बहुत सारे बेटों में यदि एक भी पुत्र गया जाय तो उसे अवश्य ही गया श्राद्ध करना चाहिए । अथवा अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए या नीलाबैल दान करना चाहिए ।

गरुड़पुराण में लिखा है—ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, गया श्राद्ध, गाय की पूंछ पकड़े मृत्यु, तथा कुरुक्षेत्र में निवास, पुरुषों के लिए ये चार तरह की मुक्ति है । एक बार भी गया जाना, एक पिण्ड भी गया में देना दुर्लभ है फिर जो नित्य ही वहाँ व्यवस्थित है, उनका क्या कहना? इति ।

वाराहपुराण में पुत्रहीन राजा विशाल के प्रति कहा गया यह वचन—हे राजन्! पुत्र प्राप्ति के लिए पितरों को सन्तुष्ट करो। विधिवत् गया में पिण्ड दान करो। हे नरवीर! तुम्हें निश्चित पुत्र होगा। सारी धरती के तुम स्वामी हो, सहस्रों को दान देनेवाले हो। यहाँ महापापी भी श्राद्ध के उद्देश्य से गया में श्राद्ध करे तो उसे सद्गति मिलती है। पुत्र की कामना से गया श्राद्ध करने पर कर्त्ता को पुत्र भी होता है, ऐसा तीर्थचिन्तामणि में लिखा है।

गरुड़पुराण में लिखा है—गया में पिण्ड दान करने से जो फल मनुष्य प्राप्त करता है, उस का वर्णन मैं सैकड़ों करोड़ों कल्प तक करने में समर्थ नहीं हो सकता। यह ब्रह्म वाक्य है।

बृहस्पति का वचन है—नरक के डर से डरे हुए पितर अपने पुत्रों से यही चाहते हैं कि जो मेरा बेटा गया जायेगा वही हमें तारेगा। गया में धर्मपृष्ठ में, तथा ब्रह्मा के आवास में तथा गया शीर्ष अक्षय वट के नीचे पितृनिमित्तक जो कुछ दिया जाय वह अक्षय होता है। ब्रह्मारण्य, धर्मपृष्ट तथा धेनुकारण्य के यहाँ जो दर्शन करते हैं। इनके दर्शन के फल स्वरूप पितर द्रष्टा के बीस पीढ़ियों का उद्धार कर देते हैं। वायुपुराण में लिखा है—'महाकल्प कृत पाप गया में विनष्ट हो जाते हैं।'

महाभारत में पुलस्त्ययात्रा में कहा गया है—गया पहुँचकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जो जितेन्द्रिय बना रहता है। उसे गया जाने से ही हे भारत, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। तीनों लोक में विख्यात जहाँ अक्षय वट वृक्ष है; यहाँ पितर निमित्तक जो कुछ दिया जाय वह अक्षय होता है अर्थात् उस दान का कभी विनाश नहीं होता। और—

गया में कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष दोनों जो बिताता है अर्थात् गया में जो रहता है उसके सात कुर्सी पवित्र हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिए। जिन्हे, अनेक बेटे हैं, उनमें एक भी यदि गया जाय तो उसे गया श्राद्ध करना चाहिए। ऐसा करने वाले दस पीढ़ी ऊपर एवं दस कुर्सी नीचे तक को तार देते हैं। अवरान् = अपने से नीचली पीढ़ी के लोगों को। यहाँ मात्रादिश्रा से पिता का अलग ही श्राद्ध करना चाहिए।

उदाहरणार्थ वायुपुराण में—गया में अष्टका अर्थात् पूर्णिमा से लेकर आने वाले तीन सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी दिनों में पितृपक्षीय श्राद्ध एवं आभ्युदयिक श्राद्ध, अर्थात् ये वार्षिक श्राद्ध माता का पिता से अलग ही करना चाहिए और अन्यत्र पति के साथ। वृद्धौ = आभ्युदयिक श्राद्ध में, क्षयाहनि = वार्षिक श्राद्ध में। जैसा कि इन चारों में अलग ही, इससे भिन्न सभी कर्मों में

पार्वणादि में माता का अलग श्राद्ध नहीं करना चाहिए । पितृश्राद्ध के साथ ही माता के श्राद्ध की भी सिद्धि होती है । स्मृति में—

बहुत पहले ब्रह्मा के द्वारा विस्तारित विष्णु ही फल्गु के रूप में अवतरित हुए । उन्होंने दक्षिण की ओर स्थापित अग्नि में, जिसे 'अन्वाहार्य पचन' भी कहा जाता है, हवन किया, असन्दिग्ध रूप से उसी हवन से फल्गु तीर्थ की उत्पत्ति हुई । अखिलभुवन के सारे तीर्थ देवताओं के साथ फल्गुतीर्थ में स्नान के लिए आते हैं । गङ्गा यदि भगवान् विष्णु का चरणोदक हैं और फल्गु यदि स्वयं भगवान् गदाधर हैं । तो रुद्र रूप से यह फल्गु गङ्गा से अधिक पवित्र है । हजारों अश्वमेध यज्ञ करने वाले व्यक्ति को भीवह पुण्य फल प्राप्त नहीं प्राप्त होता जो एकवार फल्गुतीर्थ स्नान कर पा लेता है । जो व्यक्ति आदरपूर्वक फल्गुतीर्थ के विष्णुजल से स्नान करता है उसके पितर भुक्ति मुक्ति के लिए प्रसिद्ध विष्णु लोक पहुँच जाते हैं । और भी—जो व्यक्ति फल्गुतीर्थ में स्नान कर भगवान् गदाधर के दर्शन करते हैं वे पितरों के साथ स्वयं वैष्णव पद की प्राप्ति करते हैं ।

मैथिली—आव गया कृत्यक वर्णन—सम्मिलित परिवारक बीच ज्येष्ठ पुत्रक गया श्राद्धक अधिकार होयत छैन्हि । हुनक अनुज्ञा सँ छोटो भायक ई अधिकार भऽ जायत छैन्हि । बांटलाक बाद सभभांय के स..ाने अधिकार भऽजायत छैन्हि । अहि सन्दर्भ में नारदक उक्ति छैन्हि—

अविभक्त भांय सभक बीच एकेटा भांय धर्मकर्माधिकारी होयत छथि, वांटला उत्तर सभभांयक भिन्न भिन्न धार्मिक कृत्य होयत छैन्हि । इति । अहिना पार्वणश्राद्धो में बुझवाक चाही । एकोद्दिष्ट में सभकलेल भिन्न भिन्न अधिकार हैते छैक । द्वैतपरिशिष्टक वचन छैक—

अविभाजित शीलवन्त एवं गुण समन्वित अनेक पुत्रक मध्य यदि एकोय पुत्र गया जाथि तऽ हुनका अवश्य गया श्राद्ध करवाक चाही ।

अहिवचन में समवेतानाम् अर्थात् अविभक्तानाम् व्याख्याकय गया श्राद्ध में विन बँटलोभांय सभक भिन्न भिन्न अधिकार जे मानैत छथि ओ हुनक भ्रान्ति छैन्हि । नारदक 'भ्रातृणामविभक्तानाम्' ई वचनक बले बाध सापेक्ष्य विध्यापत्ति भऽ जायत । मुदा 'समवेतानाम्' अहिपदक तदर्थकत्व में कोनो तरहक प्रमाणक अभाव सँ 'मिलितानाम्' अहि पदक तदर्थकत्व लिखित वचन सँ सिद्ध होयत अछि । ताँय संसर्गक बाद भिन्न अधिकार नहि देखवाक चाही । गया श्राद्ध में कालक कोनो नियम नहि अछि । उदाहरणार्थ वायुपुराण में—

बुद्धिमान व्यक्ति के गया में समय निरपेक्ष्य भऽ के सभदिन पिण्डदान करवाक चाही । जो समय अधिमास हो वा जन्मदिन, शुक्रास्त हो वा गुर्वास्त, वा

सिंहस्थ बृहस्पति, कोनो स्थिति में गया श्राद्ध नहिं छोड़वाक चाही । गया में अर्घ एवं आवाहन वर्जित श्राद्ध करवाक चाही । खीर, सत्तू, चरु, या चावल सँ निर्मित पिण्डदान गया में करवाक विधान छैक ।

श्राद्ध करवा में असमर्थ लोकनि कम सँ पिण्डदान गया में अवश्य करथु । पितरकलेल अति दुर्लभ गया में पिण्डदान अति प्रशस्त अछि । अहिकार्य में विलम्ब नहि करवाक चाही या कोनो तरह विघ्नो नहि करवाक चाही । ई स्मृतिक वचन अछि । गया में पतित एवं असंस्कृत व्यक्तिक सेहो श्राद्ध करवाक चाही । उदाहरणार्थ गरुड़पुराण में कहलगेल अछि—

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीक सङ्ग अवैध सम्बन्ध एवं एकरा सभक संसर्ग से उत्पन्न सभ तरहक पाप गया श्राद्ध सँ विनष्ट भऽजायत अछि । संस्कारविहीन मरलहालोकनि, पशु एवं चोर द्वारा मारल गेल लोकनि, संपकटुआ लोकनिक गया श्राद्ध भेने मुक्ति भेंटैत छन्हि तथा ओसभ स्वर्ग जायत छैथि ।

अहिठाम ब्रह्महत्यादिके उद्देश्य बनाकय तन्निमित्तक जे गया श्राद्ध करैत छथि, हुनक महापातको विनष्ट भऽजायत छैन्हि ई तात्पर्य भेल । असंस्कृताः अर्थात् संस्कारविहीन लोकनि गया श्राद्ध सँ सुगति प्राप्त करैत छथि ई तात्पर्य तीर्थचिन्तामणि में अछि । सालभरिक वाद पतितक स्वर्ग कामना सँ गया श्राद्ध करी ।

उदाहरणार्थ ब्रह्मपुराण में—संवत्सर व्यतीत भऽ गेला उत्तर देशधर्मक प्रमाणानुसार गयाकूप में पतितक बन्धु श्राद्ध करैत छथि । एकर फल मत्स्यपुराण में कहलगेल छैक—पितृतीर्थक नाम गया अछि जे सभतीर्थ में श्रेष्ठ तीर्थ कहल जायत अछि । जाहिठाम देवदेवेश्वर पितामह स्वयं निवास करैत छथि । जाहिठाम अपन भाग प्राप्त करवाक अभिलाषी पितर लोकनि ई गीत गावैत छथि । बहुतों पुत्रक मध्य यदि एकोटा पुत्र गया जाथि तऽ हुनका गया श्राद्ध अवश्य करवाक चाही । अथवा अश्वमेध यज्ञ करवाक चाही या नील वृषभ दान करवाक चाही ।

गरुड़पुराणक वचन छैक—ब्रह्मज्ञानक प्राप्ति, गयाश्राद्ध, गायक नागरिधयने मृत्यु, कुरुक्षेत्रक निवास, पुरुषकलेल ई चारितरहक मुक्तिक विधान छैक । एकबेर गया जयनाय, एकटा पिण्ड देनाय लोकलेल दुर्लभ छैक, पुनः गया में जे निवास करैत छथि हुनक की कहल जाय ।

पुत्रविहीन राजा विशालक प्रति वाराहपुराणक कथन छैक—

हे राजन्! पुत्र प्राप्तिक हेतु गया जाके विधिवत् पिण्डदानकय पितर लोकनिके प्रसन्न करू । हे नृवीर! निश्चित रूप सँ अहाँकय पुत्र प्राप्ति हैत सम्पूर्ण धरतीक स्वामी सहस्त्रदाता छैथि ।

तीर्थचिन्तामणिक वचन अछि—महापात की व्यक्ति सेहो यदि श्राद्धक उद्देश्य सँ गया जाके पिण्डदान करथि तऽ हुनको सद्गति भजायत छैन्हि । पुत्रक

कामना सँ यदि क्यो व्यक्ति गया में पितर निमित्तक श्राद्ध करय तऽ कर्त्ता पुरुष कें निश्चित रूपेण पुत्रक प्राप्ति होय ।

गरुड़पुराणक वचन अछि—गया में पिण्डदान कयने जोकर जे पुण्य फल लोक के प्राप्त होयत छैक तकर वर्णन शत कल्प कोटियों में हम नहि कय सकैत छी । ई ब्रह्मवाक्य बुझू ।

बृहस्पतिक वचन छैक—नरक कभय सँ भयाक्रान्त पितरलोकनिक पुत्र सँ चाहैत छथि जे पुत्र गया जैताह ओहमर उद्धार कर्त्ता हयताह । गया में धर्म पृष्टपर, ब्रह्मसदन में, गयाशीर्ष अक्षयवट में पितर निमित्त कयल दान अक्षय होयत अछि । ब्रह्मारण्य, धर्मपृष्ट तथा धेनुकारण्य ई सभक दर्शन मात्र सँ प्रसन्न भय पितर बीस पीढीक उद्धार करैत छथि ।

वायुपुराणक वचन अछि—महाकल्प में कयल पाप गया में विनष्ट भऽजायत छैक । महाभारत में पुलस्त्य यात्राक क्रम में—हे भारत! जे ब्रह्मचारी जितेन्द्रि भऽ के गया जायत छैथि, हुनका गया गमन मात्रे सँ अश्वमेध यज्ञक फल प्राप्त होयत छैन्हि । जाहि गया में तीनों लोक में विख्यात अक्षयवट वृक्ष अछि । जाहि गया में पितृनिमित्तक देल दान अक्षय होयत अछि । तथा—हे राजन् जे व्यक्ति गया में शुक्ल एवं कृष्ण दुहू पक्ष में निवास करैत छथि ओ सात कुल के पवित्र करैत छथि एकरा में कोनो तरहक संदेह नहि करी । बहुतो पुत्रक मध्य यदि एकोटा पुत्र गया जाय तऽ हुनका गया श्राद्ध अवश्य करवाक चाही । एहन कय अपन सन्तप्त दशपीढी पूर्व एवं दश पीढी पश्चात् के उद्धार करैत छथि ।

अवशन् = नीचला पीढीक पुरुष । गया में पिताक श्राद्ध मात्रादि सँ भिन्ने करवाक चाही । उदाहरणार्थ वायुपुराण में—अष्टका, आभ्युदयिक, वार्षिक श्राद्ध, माताक श्राद्ध गया में पिता सँ भिन्ने करी, एतदतिरिक्त माताक श्राद्ध पिताक सङ्ग करवाक चाही । वृद्धौ = आभ्युदयिक में, क्षयाहनि = वार्षिक श्राद्ध । ई चारु में माताक श्राद्ध पिता सँ भिन्न करवाक चाही । एकरा सँ भिन्न सभकर्म में पार्वणादि में माताक पृथक् श्राद्धक विधान नहि छैक । पितृश्राद्धेक संग ओकर गतार्थता सिद्ध छै ।

स्मृति में लिखल अछि—प्राचीन काल में ब्रह्माक द्वारा प्रथित भगवान् विष्णु फल्गुक भेलाह ओ अन्वाहार्य पचन नामक दक्षिण दिश स्थापित अग्नि में हवन कयलन्हि ताहि हवन कुण्ड सँ फल्गु तीर्थक उत्पत्ति भेल । अखिलभुवन में जवेक तीर्थ छथि से सभटा मिलि देवता लोकनिक संग फल्गुतीर्थ में स्नान करवाक हेतु गया आवैत छथि । गङ्गा यदि भगवान् विष्णुक चरणोदक छथि तऽ फल्गु स्वयं भगवान् विष्णु छथि । ताँय रुद्ररूपेण विराजित फल्गु गङ्गाक अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण बूझल जायत छथि । हजारो अश्वमेघ यज्ञ करनिहार व्यक्ति ओ पुण्य फल नहि प्राप्त करैत छथि, जे फल फल्गुतीर्थ में स्नान करनिहार व्यक्ति के भेंटैत छन्हि । फल्गुतीर्थ में विष्णु जल में आदरपूर्वक जे स्नान करैत छथि ओ

अपन पूर्वज के मुक्तिकलेल प्रसिद्ध विष्णुलोक पठावैत छथि । तथा—फल्गुतीर्थ में जे व्यक्ति स्नानकय भगवान् विष्णुक दर्शन करैत छथि ओ अपन पूर्वजक सङ्ग स्वयं वैष्णव पद के प्राप्त करैत छथि ।

विमर्श:—अथ वृद्धिश्राद्धनिमित्तम् । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—

जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पित्तृन्नान्दीमुखान्नामत्तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥
वेदव्रतेषु चाधानं यज्ञपुंसवनेषु च । नवान्नभोजने स्नाने ऊढाया: प्रथमार्त्तवे ॥
देवारामतडागादि प्रतिष्ठासूत्सवेषु च । राजाभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञिकाम् ॥
वनस्थाद्याश्रमं गच्छेन् पूर्वेद्यु: सद्य एव वा । पितृन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत्कर्मसिद्धये ।

तथा च विष्णुपुराणे— यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासुमेखलाबन्धमोक्षयो: ।
पुत्रोत्पत्तौ वृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥

तत्रैव— 'नामकर्मणि बालानां चूड़ाकर्मादिके तथा ।'

किञ्च मैथिलसम्प्रदाये— 'निष्क्रमणान्नप्राशनयोर्न नान्दीश्राद्धम् ।'

तथा च गरुड़पुराणे— तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम् ।
अब्दमध्येन कुर्वीत मातागुरुविपत्तिषु ॥

पूर्वोक्तवचनानुसारेण गयायां सदैव श्राद्धं प्रशस्तम् । तथापि वायुपुराणे विशेषफल-
जनककालोऽप्याह— मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे ।
नारद! त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम् ॥

तथा गयायां पिण्डदानद्रव्याणि—
पायसेनाथ चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा । तण्डुलै: फलमूलाद्यै: गयायां पिण्डपातनम् ॥
तिलकल्केन खण्डेन गुड़ेन सघृतेन च । केवलेनैव दघ्ना वा अन्नेन मधुनाऽथ वा ॥
पिण्याकं सघृतं खण्डं पितृभ्योऽक्षयमित्युत ॥

अथ पितृकार्यस्य महत्त्वं मत्स्यपुराणे—पितृन् प्रीणाति यो भक्त्या ते पुन: प्रीणयन्ति तम् ।
यच्छन्ति पितर: पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजाफलम् ।
देवकार्यादपि पुन: पितृकार्यं विशिष्यते ॥

अथ वाराणसी

ब्रह्मपुराणे— 'वरणा चाप्यसिश्चैव द्वे नद्यौ सुरवल्लभे ।
अन्तराले तयो: क्षेत्रं भूमावपि विशेन्न तत् ॥
पञ्चक्रोशप्रमाणं तत् क्षेत्रं दत्तं मया तव ॥'

एतेन असीवरणयोर्मध्यं वाराणसीक्षेत्रमिति नियम: । असीबाह्यस्य वाराणसीक्षेत्रत्वाभाव: सिद्ध: ।

'द्वियोजनं तु तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्थितम् ।
अर्द्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम् ॥'

योजनं चतुःक्रोशम् । स्कान्दे—

'ब्रह्मघ्नगोघ्नगुरुतल्पगभिन्नवृत्तन्यासापहारिकुहकादिनिषिद्धवृत्तिः ।
संसारभूतदृढपाशविमुक्तदेहो वाराणसीञ्च समुपैति हि योऽपि लोकाः ॥'

मात्स्ये— 'प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत्तरम् ।
अल्पायासेन चैवात्र मोक्षप्राप्तिः प्रजायते ॥'

इदं वाराणसीक्षेत्रम् । लैङ्गे—

'ब्रह्महा योऽभिगच्छेत्तु अविमुक्तं कदाचन ।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् ब्रह्महत्या निवर्तते ॥'

अविमुक्तं वाराणसी ।

तथा हि मात्स्ये—'विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते न कदाचन ।
महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम् ॥'

तथा— 'अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा ।
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना ॥
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्क्षणं भस्मसाद्भवेत् ।'

अत्र वासफलमाह लैङ्गे—

'सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा तपस्वी भवति ह्यविमुक्ते स्थितो नरः ॥
न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे न पुष्करे ।
या गतिर्विहिता पुंसामविमुक्तनिवासिनाम् ॥
सर्वात्मता तपः सत्यं प्राणिनां नात्र संशयः ।
अविमुक्ते वसेद्यस्तु मम तुल्यो भवेन्नरः ॥
अविमुक्ते स्थितो नित्यं पांसुभिर्भस्मनेरितैः ।
स्पृष्ट्वा दुष्कृतकर्माणो यास्यन्ति परमां गतिम् ॥
स्वर्गापवर्गयोर्हेतुरेतत्तीर्थवरं भुवि ।
यस्त्वत्र पञ्चतां याति मोक्षं यात्ति न संशयः ॥
जन्मान्तरसहस्रेण मुञ्चन्योगी यदाप्नुयात् ।
तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ॥'

पञ्चतां मरणम् । इहैव इह जन्मन्येव । अन्यच्च—

'प्राणांस्त्यजन्ति ये त्वत्र प्राणिनस्तत्त्वतस्तथा ।

रुद्रत्वं ते समासाद्य मोदन्ते भवता सह ॥
अकामो वा सकामो वा अपि तिर्यग्गतोऽपि वा ।
अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते ॥' इतीश्वरोक्तिः।

लैङ्गे— 'अविमुक्ते स्थिता रुद्रा भक्तानां प्रीतिदायकाः ।
कर्णजापं प्रयच्छन्ति तिमिचण्डेश्वरादयः ॥'

कर्णजापस्तारकब्रह्मोपदेशः । अत्र मरणस्य यद्यपि परममुक्तिसायुज्य सारूप्यसालोक्यानि फलत्वेन श्रूयन्ते, तथापि शुचीनां परमात्मभक्तानां तदर्पित-कर्मणां परममुक्तिस्तथा अपकृष्टानाम् अग्निप्रविष्टानां सायुज्यं, तिर्यक्प्रभृती-नामत्यन्तपापीयसां च सारूप्यम् । ततोऽप्यधमानां पतितादीनां सालोक्यमिति द्रष्टव्यमिति तीर्थचिन्तामणिः । लैङ्गे—

'नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी ।
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥'

तत्रैव— 'दशानामश्वमेधानां यज्ञानां यत्फलं स्मृतम् ।
तदवाप्नोति धर्मात्मा स्नात्वा तत्र वरानने ॥'

तत्रैव— 'स्वल्पमप्यत्र यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ।
शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते ॥
दश सौवर्णिकं पुष्पं योऽविमुक्ते प्रयच्छति ।
अग्निहोत्रफलं धूपगन्धदाने शृणु प्रिये ॥
भूमिदानेन तुल्यं च गोप्रदानफलं समृतम् ।'

दश सौवर्णिकेत्यादि एकपुष्पप्रदाने दशसुवर्णदानजन्यफलमित्यर्थः ।

तथा— 'किमर्थं बहुनोक्तेन यद्दानं क्रियते नरैः ।
धर्मकामार्थमुद्दिश्य तदनन्तफलं लभेत् ॥
उपवासं तु यः कृत्वा विप्रान् सन्तर्पयेन्नरः ।
स सौत्रामणियज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥'

ब्राह्मे— 'तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानवत्स्फुरतीन्द्रियम् ।'

तत्रेति काश्यामित्यर्थः । तथा—

'एकाहमुपवासं यः करिष्यति यशस्विनि ।
फलं वर्षशतस्येह लभते तत्परायणः ॥'

वर्षशतस्योपोषितस्येत्यर्थः ।

'अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्मरन्ति ये ।
सर्वपापविमुक्तास्ते सन्तिष्ठन्त्यजरामराः ॥

अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः ।
कल्पकोटिशतैश्चापि तस्य नास्ति पुनर्भवः ॥'

पुनर्भवः पुनर्जन्म । कापिलह्रदमुपक्रम्य ईश्वर आह—

'तत्रापि स्वयमेवाहं वृषध्वज इति स्मृतः ।
कपिलाह्रदतीर्थेऽस्मिन् स्नात्वा संयतमानसः ॥
वृषध्वजमिमं दृष्ट्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
स्वर्लोकतां मृतश्चापि अर्चयित्वा तु मामिह ॥
लभते देहभेदेन गणत्वं चातिदुर्लभम् ।'

कापिलह्रदः काश्या उत्तरे पञ्चक्रोशपथि, पञ्चक्रोशेऽनेके देवा अनन्तफलदायिनो विस्तरभयान्नेह तेषां फलान्यभिहितानि, पञ्चक्रोशस्तु त्रिपञ्चसप्तदिनेन वा यथाशक्ति कुर्यात् । गङ्गास्नाने विष्णुपुराणे—

'स्नातस्य सलिले यस्याः पापं प्रणश्यति ।
अपूर्वपुण्यावाप्तिस्तु सद्यो मैत्रेय जायते ॥'

भरते— 'स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गाङ्गेयैः प्रयतात्मनाम् ।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥'

व्युष्टिः पुण्योपचयः ।

'अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहत्य पापानि भाति गङ्गाजलोक्षितः ॥
अनेकजन्मसम्भूतं पुंसां पापं प्रणश्यति ।
स्नानमात्रेण गङ्गायाः सद्यः स्यात्पुण्यभाजनम् ॥
महापातकसंयुक्तो युक्तो वा सर्वपातकैः ।
गङ्गास्नानेन विधिना मुच्यते सर्वपातकैः ॥'

महापातकं जन्मान्तरीयम् न त्वैहिकम्, अन्यथाऽनधिकारापत्तिः ।

आग्नेये— 'यो गृहे वर्तमानोऽपि त्वां स्नाने कीर्तयिष्यति ।
स यास्यति दिवं नित्यमित्याह वरुणस्त्विह ॥'

हिन्दी—अथ वाराणसी—हे सुरवल्लभे! असिं और वरणा ये दो नदियाँ हैं । इन दोनों नदियों के बीच का क्षेत्र धरती पर रहकर भी धरती पर बसा नहीं है । पाँच कोस का यह क्षेत्र मैने तुम्हें दिया । इससे असि और वरणा के बीच वाराणसी क्षेत्र का नियम है । असी से बाहर की भूमि वाराणसी क्षेत्र से बाहर की भूमि है । यह क्षेत्र दो योजन अर्थात् आठ कोस पूरब से पश्चिम की ओर लम्बा है तथा उत्तर से दक्षिण की ओर दो कोस चौड़ा है । योजन अर्थात् चारकोस ।

स्कन्दपुराण का वचन है—ब्राह्मण की हत्या करने वाला, गाय की हत्या करने वाला, गुरुपत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध रखने वाला महापातकी, बुरा जीवन व्यतीत करने वाला,परित्यक्त, किसी की धरोहर उड़ा ले जाने वाला, धोखा-धड़ी जैसे निषिद्ध कर्म करने वालो, जैसे महापातकी जन भी यदि वाराणसी पहुँच जाँय उनकी देह संसार रूपी मजबूत बन्धन से भी मुक्त हो जाती है ।

मत्स्यपुराण में लिखा है—तीर्थों में प्रमुख एवं महत्तर प्रयाग से भी अधिक श्रेष्ठ वाराणसी है । यहाँ थोड़े से प्रयास से भी मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । इदम् = वाराणसी क्षेत्र लिङ्गपुराण का वचन है—ब्रह्महत्या करनेवाला व्यक्ति भी कदाचित् यदि वाराणसी पहुँच जाय तो उस क्षेत्र के प्रभाव से ब्रह्महत्या का पाप मिट जाय । अविमुक्तम् = वाराणसी । मत्स्यपुराण में कहा गया है—जिसे मैने कभी नहीं छोड़ा जो मुझ से कभी अलग नहीं हुआ, वही यह महत् क्षेत्र है । इसीलिए इसे अविमुक्त कहा जाता है ।

मानवीय बुद्धि के कारण जाने या अनजाने पुरुष या औरतें जो कुछ गलत काम करते हैं, उनके वे सारे अपकर्म वाराणसी क्षेत्र में प्रवेश करते ही जल कर राख हो जाता है ।

काशीवास का फल लिङ्गपुराण में कहा गया है—यज्ञ से हमेशा विजयी होता है । हमेशा दान देता है । सदैव तपस्वी बना रहता है । वाराणसी में निवास करने वाले की यह स्थिति होती है । जो गति काशीवासी को मिलती है, वह गति कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार अर्थात् हरिद्वार या पुष्कर क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्ति को नहीं मिलती है । प्राणियों का पूरी तरह तप यहाँ सिद्ध होता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए । काशीवासी मनुष्य शङ्कर के तुल्य होता है । नित्यकाशी में निवास करने वाले व्यक्ति वहाँ के धूलिकण एवं भस्म के स्पर्श से दुष्कर्म करने पर भी परमगति प्राप्त करते हैं । स्वर्ग एवं अपवर्ग (मुक्ति) की प्राप्ति के काशी वास साधन है । धरती पर तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ काशी है । यहाँ मरने वाले व्यक्ति को मुक्ति मिलती है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए । हजारों जन्मान्तर को पार करते हुए योगी जब यहाँ ही जन्म लेता है तो मरणोपरान्त उसे यहाँ की परममोक्ष की प्राप्ति होती है ।
पञ्चाम् = मरण, इहैव = यहाँ जन्म लेने पर ही । दूसरा भी—

वस्तुत: जो प्राणी यहाँ प्राण छोड़ते हैं वे रुद्रत्व प्राप्तकर तुम्हारे साथ ही आनन्द प्राप्त करते हैं । निष्काम भाव से अथवा सकाम भाव से यहाँ तक की पाप योनिगत होने पर भी जो प्राणी यहाँ मरते हैं, वे सीधे शिवलोक पहुँचते हैं । यह साक्षात् शिव का ही कथन है ।

लिङ्गपुराण का वचन है—भक्तों को प्रसन्नता देने वाले वाराणसी में स्थित रुद्रदेव हैं, वहाँ तिमिचण्डेश्वरादिदेव मृत्युपूर्व तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं । कर्णजाप: = तारक ब्रह्म का उपदेश । यहाँ मरण का यद्यपि परममुक्ति, सायुज्य सारूप्य एवं सालोक्य फल की प्राप्ति होती है, ऐसा सुना जाता है । फिर भी, पवित्रात्मा, परमात्मा के भक्तों का ईश्वर में समर्पित कर्मों का फल परममुक्ति होता है तथा नीचकमी ने जिनका दाह संस्कार वाराणसी में हुआ हो उसे सायुज्य मुक्ति मिलती है । तिर्यक् प्रभृति अर्थात् अत्यन्त पापियों को सारुप्यमुक्ति मिलती है । और इससे भी अधम पतितादि को सालोक्य मुक्ति मिलती है । ये सारे निर्णयतीर्थचिन्तामणि में द्रष्टव्य हैं ।

लिङ्गपुराण में लिखा है—कोई पापी काशी से भिन्न स्थानों में मरने पर नरक ही जाता है किन्तु जिन पर ईश्वर का अनुग्रह होता है वे सभी परमगति प्राप्त करते हैं । वहाँ ही दशाश्वमेध यज्ञ का जो फल कहा गया है, हे वरानने, वह फल कोई धर्मात्मा काशी में केवल गङ्गा स्नान से प्राप्त करता है । फिर वहाँ ही—वेद में पारङ्गत ब्राह्मणों को थोड़ भी जो यहाँ दान देता है, उसे शुभ गति प्राप्त होती है वह आग की तरह प्रदीप्त होता है ।

दश सोने के मुद्रा के दान करने पर जो पुण्यफल मिलता है उसके बराबर पुण्यफल काशी में शिव पर एक फूल चढ़ाने से मिलता है । हे पार्वति सुनो, धूप गन्धदान देने पर अग्नि होत्र का फल मिलता है, गोदान करने पर भूमिदान का फल मिलता है ।

दश सौवर्णिकेत्यादि = दस सोने के सिक्के दान जन्य पुण्य फल के बराबर एक पुष्प दान का फल होता है । और,—अधिक कहने से क्या लाभ? धर्म, अर्थ और काम के उद्देश्य से मनुष्य यहाँ जो दान करते हैं वे दान अनन्त फलदायक होते हैं । जो व्यक्ति यहाँ उपवास कर ब्राह्मणें को सन्तुष्ट करता है, उसे सौत्रामणि यज्ञ का फल निश्चित रूप से मिलता है । ब्रह्मपुराण में—काशी में दीपदान करने से ज्ञान की तरह इन्द्रियां स्फुरित होती हैं । तत्र का अर्थ यहाँ काशी में होता है । तथा वैसे ही—ईश्वर में अनुरक्त होकर यहाँ जो एक दिन का व्रत करता है उसे सौ साल व्रत का फल मिलता है । वर्ष शतस्य सौ साल के व्रत का फल अर्थ है ।

काशी में महादेव की पूजा एवं उनका स्मरण जो व्यक्ति करता है, वे सारे पापों से मुक्त होकर अजर अमर की तरह हो जाते हैं । काशी पहुँचकर जो व्यक्ति शिवलिङ्ग की पूजा करता है सैकड़ों कल्पकोटि तक उनका पुनर्जन्म नहीं होता है । पुनर्भव = पुनर्जन्म । कपिलसरोवर की प्रस्तावना कर ईश्वर ने कहा है—

वहाँ भी मैं स्वयं वृषध्वज के नाम से विख्यात हूँ । कपिला ह्रद नामक इस तीर्थ में संयत मन से स्नानकर, वृषध्वज शिव का दर्शन कर सभी यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं । यहाँ मेरी पूजाकर मरने के बाद स्वर्ग पहुँचे व्यक्ति भी देहान्तर से दुर्लभ शिवगणत्व प्राप्त करते हैं । पञ्चक्रोशी की राह में काशी से उत्तर कापिलह्रद है । इस पञ्चक्रोशी में अनेक देवता अनन्त फलदायी हैं, विस्तार के भय से उनके दर्शन जन्य फलों का उल्लेख नहीं किया जा रहा है । इस पञ्चक्रोशी की परिक्रमा तीन, पाँच वा सात दिन में अथवा यथाशक्ति करनी चाहिए । गङ्गा स्नान का फल विष्णुपुराण में—

जिस गङ्गा के जल से स्नान करने से सद्यः पाप विनष्ट हो जाते हैं । हे मैत्रेय! इस स्नान से अपूर्व पुण्य फल की सद्यः प्राप्ति होती है । महाभारत का वचन है—

गङ्गा के पवित्र जल से जिस प्रयतात्मा ने स्नान किया है, उसके जो पुण्य संचित होते हैं, वह सैकड़ों यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होता है । व्युष्टि का अर्थ पुण्योपचय होता है ।

प्रभात काल में जैसे सूर्य घोर अन्धकार को विनष्ट कर शोभते हैं उसी तरह पापों को विनष्ट कर सिंचित गङ्गा जल शोभता है । ये अनेक जन्म संभूत पापों को विनष्ट कर देते हैं । गङ्गा में स्नानमात्र से सद्यः व्यक्ति पुण्य का भाजन हो जाता है । महापाप से संयुक्त हो या हर तरह के पापों से युक्त हो गङ्गा स्नान मात्र से सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

महापातकम् = जन्मान्तरीय पाप नकि इस जन्म का पाप । अन्यथा अनधिकारापत्ति दोष होगा ।

अग्निपुराण में लिखा है—जो घर में रहकर भी स्नान करते समय तुम्हारे नाम का कीर्त्तन करते हैं, वे अविनाशी स्वर्ग पहुँचेगे, ऐसा वरुणदेव का कहना है ।

मैथिली—आव वाराणसीक माहात्म्य कहैत छी—ब्रह्मपुराण में लिखल अछि—हे सुरबल्लभे! असि एवं बरुणा नामक दुईटा नदी वहैत छैक । ई दुहूनदीक मध्यवर्त्ती क्षेत्र धरती पर रहितो धरती सँ भिन्न अछि । ई पाँच कोसक क्षेत्र हम अहाँ के देने छी । एकरा सँ ई सिद्ध होयत अछि जे असी एवं वरणाक मध्यवर्त्ती क्षेत्र वाराणसी कहवैत अछि । असी सँ बाहरक क्षेत्र वाराणसी सँ बाहर अछि । पूर्व सँ पश्चिम धरि आठ कोसक ई क्षेत्र अछि; अहिना आध योजन अर्थात्, दुई कोस विस्तृत अर्थात् चौड़ा ई क्षेत्र वाराणसी नाम सँ ख्यात अछि । योजनम् = चारिकोस । स्कन्दपुराण में—

ब्राह्मणक हत्यारा, गोहत्या कैनिहार, गुरु पत्नीक सङ्ग अवैध सम्बन्ध रखनिहार, असद्जीवन व्यतीत करऽवाला, ककरो अमानतक अपहर्त्ता वंचकादि निषिद्ध कर्म कर्त्ता लोकनि में से जे क्यो वाराणसी पहुँचि जायत छथि हुनक देह सांसारिक दृढबन्धन सँ मुक्त भऽजायत छैन्हि । मत्स्यपुराणक वचन अछि—तीर्थ राज प्रयागो सँ ई वाराणसी क्षेत्र महत्तर अछि । कियेकतऽ अहिठाम थोड़वो प्रयास कयने लोकके मोक्ष भेंटि जायत छैक । इदम् = अर्थात् वाराणसी क्षेत्र ।

लिङ्गपुराणक वचन अछि—ब्राह्मणक हत्या कयनिहारो व्यक्ति यदि कोनो तरहें वाराणसी पहुँचि जाथि तऽ ताहि क्षेत्रक माहात्म्य सँ हुनक ब्रह्महत्या जन्य जघन्य पाप सेहो मेटि जायत अछि । अविमुक्तम् = वाराणसी । उदाहरणार्थ मत्स्यपुराण में—अहि क्षेत्र के नत हम कौखन छोडैत छी आओर न ई क्षेत्र हमारा सँ मुक्त होयत अछि ताँय ई महत्क्षेत्र अविमुक्त कहवैत अछि । अहिना—

मानवबुद्धि से जेक्यो पुरुष अथवा स्त्रीगण जानि या बिनजान ने कोनो अशुभ कर्म करैत छथि, ओ सभटा वाराणसी में प्रवेश करितहि भस्मसात् भऽ जायत छैन्ह । काशीवासक फल लिङ्गपुराण में कहलगेल अछि—

काशी में अवस्थित व्यक्ति सर्वदा यज्ञ सँ जयी होयत छथि । सादिखन दान करैत छथि । सतत् तपस्वी बनल रहैत छथि । जे गति कुरुक्षेत्र में, हरिद्वार में, पुष्करक्षेत्र में निवास कयने नहि भेंटय से गति काशीवासी के अनायास भेटैंत छन्हि । अहिठाम प्राणी मात्र के सर्वात्मता तप एवं सत्यक उपलब्धि होयत छैन्हि, ताँय काशीवासी व्यक्ति साक्षात् शंकर तुल्य होयत छथि । काशी में अवस्थित व्यक्ति वायु प्रेरित धूलिकण या भस्मक स्पर्श मात्र सँ, दुष्कर्मी व्यक्ति सेहो परम गति प्राप्त करैत छथि । अहि संसार में काशीं श्रेष्ठतीर्थ छैथि, ई धरती पर स्वर्ग एवं अपवर्गक हेतु छैथि । जे व्यक्ति काशी में मरैत छथि, हुनका मुक्ति भेटने करैत छैन्हि, में सन्देह नहि करवाक चाही । योगी हजारों जन्म जन्मातर में भ्रमण करैत अहिठाम आवैत छथि, हुनका अहिठाम मरला उत्तर परममोक्ष भेंटैत दन्हि । पञ्चताम् = मरण । इहैव = अहीजन्म में । दोसरो—

यथार्थरूपेण जे प्राणी काशी में प्राणत्याग करैत छथि ओ सभ रुद्रत्व प्राप्त कय अहींक सङ्ग आनन्दित रहैत छथि । भगवान् शिव कहनाय छैन्हि जे अकाम होय, वा सकाम, या अत्यन्त पापाचारी होय, काशी में जे प्राणत्याग करैत छथि ओ हमरा लोक में निवास करैत छथि ।

लिङ्गपुराणक वचन छैक—भक्तलोकनिक प्रीतिदायक रुद्रदेवक निवास काशी में छैन्हि । काशी में शरीर त्याग करनिहार लोकनिके तिमिचण्डेश्वरादि मृत्यु पूर्व तारक ब्रह्मक उपदेश दैत छथिन्ह ।

कर्णजापः = तारक ब्रह्मक उपदेश । अहिठाम मृत्युक फल यद्यपि परम मुक्ति, सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य सुनैत छी, तथापि जे व्यक्ति पवित्र छथि,

परमात्माक परम भक्त छैथि एवं हुनके में समर्पित कर्मक कर्त्ता छथि हुनका परम मुक्ति भेंटैत छैन्हि तथा जे व्यक्ति दुष्ट या नीच प्रकृतिक छैथि, काशी में मृत्यु भेलाक उपरान्त हुनका सायुज्य मुक्ति अर्थात् जीवात्मा परमात्मा में लीन भऽजायत छैथि; तीर्यक् प्रभृति अर्थात् अत्यन्त पापी लोकनि के काशी में प्राण त्याग कयने सारूप्य मुक्ति भेंटैत छैन्हि, अर्थात् अन्त में अपन उपास्यदेवक रूप प्राप्त करैत छथि, एकरो सँ अधम पतित लोकनिके सालोक्य मुक्ति भेंटैत छैन्हि, अर्थात् अपन आराध्यक सलोकता भेंटैत छैन्हि । ई सभतीर्थचिन्तामणि में द्रष्टव्य अछि ।

लिङ्गपुराणक वचन अछि—काशी में जिनक मृत्यु नहि होयत छैन्हि ओ पापी नरक जायत छथि । किन्तु, जिनका पर परमात्माक अनुग्रह छैन्हि ओ परमगति के प्राप्त करैत छैथि । ताहीठाम—दसटा अश्वमेध यज्ञक जे फल कहलगेल अछि, हे वरानने, से फल काशीक गङ्गा में स्नानोपरान्त अहिना धर्मात्मा के प्राप्त भऽजायत छैन्हि । ओहीठाम पुनः—वेद पारङ्गत ब्राह्मण के काशी में जे स्वल्पो मात्रा में दान करैत छथि, ओ व्यक्ति शुभगति प्राप्त कय, अग्नि जकां प्रदीप्त होयत छथि ।

हे प्रिये! काशी में शिव लिङ्ग पर जे एकटा फूल मात्र चढवैत छथि, हुनका दसटा सुवर्ण मुद्रा दान करवाक पुण्य फल प्राप्त होयत छैन्हि । धूप एवं गन्धदान कयने अग्निहोत्रक फल भेंटैत छैन्हि तथा गोदान कयने भूमि दानक फलभेटैत छैन्हि ।

मात्र एक पुष्प चढौने दस स्वर्णमुद्रादानक फल भेंटैत छैन्हि । तथा—अधिक कहला सँ की लाभ? धर्म, काम एवं अर्थक उद्देश्य सँ जे व्यक्ति अहिठाम दान करैत छथि ओ अनन्त फलदायक होयत अछि । अहिठाम उपवासोपरान्त जे ब्राह्मण के दान करैत छथि, निश्चित रूप सँ ओ सौत्रामणि यज्ञक फल प्राप्त करैत छथि ।

ब्रह्मपुराण में—काशी में दीपदान कयने ज्ञान जकाँ इन्द्रियक स्फुरन् होयत छैक । तनक अर्थ काशी में होयत छैक । ताही तरहे—जे यशस्वी काशी में एक दिनक उपवास करैत छथि, हुनका सौ साल उपवासक फल प्राप्त होयत छैन्हि । वर्ष शतस्य = सौ साल उपवास व्रतक ।

काशी में महादेवक जे पूजा करैत छथि तथा हुनक स्मरण करैत छथि । काशी पहुँचि जे व्यक्ति शिवलिङ्गक अर्चना करैत छथि, हुनक शत कल्पकोटि पुनर्जन्म नहि होयत छैन्हि । पुनर्भवः = पुनर्जन्म कापिलाह्रद उपक्रम कय, महादेव स्वयं कहने छथि—

कपिलाह्रद नामक तीर्थ में स्वयं हम वृषध्वज नाम सँ ख्यात छी । संयत मन से जे अहि तीर्थ में स्नानकय, वृषध्वजकदर्शन करैत छथि, हुनका सर्व यज्ञ करवाक पुण्य फल प्राप्त होयत छन्हि । काशी में हमर अर्चना कय जे प्राणत्याग

करैत छथि हुनका स्वर्ग लोकते भेंटतहि छन्हि, देहभेद सँ दुर्लभ भगवान् शिवक गणत्व सेहो प्राप्त होयत छैन्हि ।

पञ्चक्रोशीक मार्ग में काशी सँ उत्तर दिशि कापिलाह्रद अछि । अहि मार्ग में अनन्त फलदायक देवता सभ छथि, विस्तारक भय सँ हुनका सभक वर्णन नहि करैत छी । ई पञ्चक्रोशक परिक्रमा तीन, पाँच, सात दिन में अथवा अपन शक्तिक अनुसार जतवा दिन में होय पूर्ण कऽलेवाक चाही । गङ्गास्नानक संबन्ध में विष्णपुराणक वचन—काशीक गङ्गा में स्नान करितहि सभटा पाप विनष्ट भऽ जायत अछि । हे मैत्रेय! तखन एक अपूर्ण पुण्यफलक प्राप्ति होयत अछि ।

महाभारत में लिखल अछि—आत्म नियंत्रित व्यक्ति के काशीक पवित्र गङ्गा में स्नान कयने जे पुण्य फलक उपलब्धि होयत छैन्हि से सैकड़ो यज्ञ कयलो उत्तर लोक के नहि भेंटैत छैक । व्युष्टि: अर्थात् पुण्यक सञ्चय ।

समस्त अन्धकार के विनष्ट कय प्रभात काल में जेना सूर्य सुशोभित होयत छथि तहिना गङ्गाजल सँ सिंचित व्यक्तिक सम्पूर्ण पाप विनष्ट भऽ जायत छैन्ह तथा ओ सूर्य जकाँ सुशोभित होयत छथि । मात्र गङ्गा स्नान सँ मनुष्यक अनेक जन्मार्जित पाप विनष्ट भऽजायत छैक तथा ओ सद्यः पुण्य भाजन भऽ जायत छैथि । जनमान्तरीय पाप संगृहीत व्यक्ति होय अथवा सभ तरहक पाप कयने व्यक्ति होय, विधिवत् गङ्गा स्नान कयला उत्तर ओ सभटा पाप सँ मुक्त भऽ जायत छैथि । महापातकम् = जन्मान्तरीय पाप, नहि ऐहिक पाप, अन्यथा अनधिकारापत्ति भऽ जायत ।

अग्निपुराण में लिखल अछि—अपन घरोऽ में रहैत स्नान काल में जे अहाँक स्मरण करैत अछि ओ व्यक्ति शाश्वत स्वर्ग जायत छथि, ई वरुणदेव कहैत छथि ।

अथ पुरुषोत्तमक्षेत्रम्

'तत्रास्ते भारते वर्षे दषिणोदधिसंस्थितः ।
औड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥
समुद्रस्योत्तरे तीरे तस्मिन् देशे द्विजोत्तमाः ।
आस्ते गुह्यं परं क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम् ॥
सर्वत्र बालुकाकीर्णं पवित्रं सर्वकामदम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वैनतेयस्तु पक्षिणाम् ।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् ।

पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भः सकृन्मतम् ॥
ब्रह्मविद्यां सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते ।'

पुरुषाख्यं पुरुषोत्तमं जगन्नाथमिति यावत् ।

'धन्यास्ते विबुधप्रख्या ये वसन्त्युत्कले वराः ।
तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ॥
स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न तु ते राजसालये ।'

तीर्थराजः समुद्रः । राजसालये मनुष्यलोके । तथा—

'दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ।
यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महदुल्कानिबर्हणे ॥
विनाशं नैवमस्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः ।
दृष्टमात्रे वटे तस्मिन् छायामाक्रम्य वा सकृत् ॥
ब्रह्महत्या प्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा ।
प्रदक्षिणं कृतं यैस्तु नमस्कारं तु जन्तुभिः ॥
सर्वे विधूतपापास्ते गताः स्युः केशवालयम् ।'

न्यग्रोधो वटः । भगवद्वचः—

'इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसम्भवम् ।
यत्र स्नात्वा सकृल्लोकः शक्रलोकमवाप्यते ॥
दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटे तस्मिन् नरः शुभे ।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शक्रलोकं गमिष्यति ॥' इति

तीर्थचिन्तामणौ— 'मार्कण्डेयह्रदं गत्वा स्नात्वा चोदङ्मुखः शुचिः ।
निमज्जयेत् त्रींस्तु वारान् इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
संसारसगरे मग्नं पापग्रस्तमचेतसम् ।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥
नाभिमात्रे जले स्थित्वा विधिवद्देवता ऋषीन् ।
तिलोदकेन मतिमान् पितॄनन्यांश्च तर्पयेत् ॥
मार्कण्डेयह्रदे चैव स्नात्वा दृष्ट्वा च शंकरम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥
दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।
संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम् ॥
मार्कण्डेयं वटं कृष्णं रौहिणेयं महोदधिम् ।

इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थविधिः स्मृतः ॥
यत्फलं सर्वदेवेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥
किं चात्र बहुनोक्तेन माहात्म्यं तस्य भो द्विजाः ।
दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥
पापैर्विमुक्तः शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः ।
श्रिया परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥
सर्वकामसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥
ततः कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान् मनोरमान् ।
गन्धर्वाप्सरसैः सार्द्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥'

तत्रैव— 'श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम् ।
मत्स्याख्यं माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥'

श्वेतो नाम राजा । तथा—

'देवान्नृषीन् मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य यत्नतः ।
तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित् ॥
स्नात्वैवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥' इति ।

हिन्दी—अब पुरुषोत्तमक्षेत्र के सम्बन्ध में—भारत के दक्षिणी सागर के तट पर उड़ीसा नामक प्रदेश में स्वर्गमोक्ष प्रदायक पुरुषोत्तम क्षेत्र हैं । समुद्र के उत्तरीय किनारे पर, हे द्विजोत्तम उड़ीसा में ही एक परम गुह्य क्षेत्र है जोमुक्ति देने वाला, तथा पाप नाशक क्षेत्र है । हर जगह बालुओं से आच्छांदित, अत्यन्त पवित्र, सभी कामनाओं को पूरा करने वाला दस योजन अर्थात् चालीस कोस तक फैला हुआ परमदुर्लभ यह क्षेत्र है ।

वर्णों में जैसे ब्राह्मण और पक्षियों में जैसे गरुड जी श्रेष्ठ होते हैं, उसी तरह सारे तीर्थों में वरिष्ठ तीर्थ पुरुषोत्तम तीर्थ ही है । मैं सत्य की दुहाई देकर कहता हूँ कि यह क्षेत्र परम महत्त्वपूर्ण है । पुरुषोत्तम जगन्नाथजी के तथा सागरजल के जो एक बार दर्शन कर लेते हैं, थोड़ा भी ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वे माता के गर्भ में फिर वास नहीं करते हैं । पुरुषाख्यम् = पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी ।

वे प्रसिद्धि प्राप्त विद्वान् धन्य हैं जो श्रेष्ठ उड़ीसा के इस क्षेत्र में निवास करते हैं, तीर्थ राज के जल में स्नान कर पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी के दर्शन करते हैं । ऐसे पुरुष धरती पर रह कर भी स्वर्ग में निवास नकि धरती पर ।' तीर्थ

राज = समुद्र । राजसालये = धरती पर । तथा = वैसे ही दक्षिण सागर के किनारे जहाँ कल्पान्त स्थायी प्रलय सूचक पुच्छलतारा के विनष्ट हो जाने पर स्वयं समुत्पन्न वट वृक्ष, जिसका कभी विनाश नहीं होता, वहाँ ही स्वयं आकर मौजूद हैं । उस वट वृक्ष के दर्शन मात्र से या कम से कम एक बार भी उसकी छाया में जुड़ा लेने पर ब्रह्महत्या जैसे पाप से भी मुक्त हो जाता है । फिर, दूसरे तरह के पापों का कहना ही क्या? जिसने इस वट वृक्ष की प्रदक्षिणा की तथा जिसने इसे प्रणाम किया वे सभी तरह के पापों से मुक्त होकर वैकुण्ठ धाम पधारता है । न्यग्रोध अर्थात् वट वृक्ष । श्रीभगवान् का कथन है—

भगवान् विष्णु से समुत्पन्न इन्द्रद्युम्न सरोवर नाम का एक तीर्थ है, जिसमें एक बार भी स्नान कर मनुष्य इन्द्रलोक प्राप्त कर लेता है । इस शुभ सरोवर के किनारे जो पिण्ड दान करता है, वह इक्कीस कुलों का उद्धार कर इन्द्रलोक जाता है । इति । तीर्थचिन्तामणि में लिखा है—

मार्कण्डेयसरोवर में जाकर पवित्र होकर उत्तर मुख हो स्नानकर, निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन बार स्नान करें । 'हे भगनेत्रघ्न' मैं संसार रूपी सागर में डूबा हूँ, पापग्रस्त हूँ, और चेतना शून्य हूँ, मेरी रक्षा करो । हे त्रिपुरारि तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ । मैं शान्त शिव एवं सर्वपाप हर शिव को प्रणाम करता हूँ । हे देवेश मैं इस तीर्थ में स्नान करता हूँ, मेरे सारे पापों को आप विनष्ट कर दें ।

नाभिमात्र जल में खड़ा होकर विधिवत् पहले देव और ऋषियों का तर्पण करे फिर वह बुद्धिमान् व्यक्ति तिल और जल से पितरों और अन्य जनों का तर्पण करे । मार्कण्डेय सरोवर में स्नान कर तथा भगवान् शिव का दर्शन कर मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।

बटवृक्ष एवं गरुड जी को देखकर जो भगवान् श्रीकृष्ण बलराम एवं सुभद्रा के दर्शन करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं । मार्कण्डेय वट, श्री कृष्ण, बलराम, महासागर और इन्द्रद्युम्नसरोवर ये पाँच तीर्थ विधिनाम से ख्यात हैं । जो फल सभी देवताओं की पूजा से मिलता है और जो फल हर तरह के यज्ञानुष्ठान से मिलता है वही फल मनुष्य को श्रीकृष्ण को प्रणाम करने से मिलता है ।

हे ब्राह्मणदेव, इनके महात्म्य के सम्बन्ध में अधिक कहने से भला क्या लाभ? भक्ति भाव से श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से मनुष्य को दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति होती है । करोड़ों जन्म में किये गये पापों से मुक्त होकर वह शुद्धात्मा

हो जाता है । परम अलौकिक शक्ति सम्पन्न होकर, सभी उन्नत गुणों से युक्त होकर, सभी कामनाओं से समृद्ध होकर, सुन्दर वर्चस्व के साथ अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर मनुष्य देवयान से विष्णुलोक प्रस्थान करते हैं । उस के बाद सैकड़ों कल्प तक चतुर्भुज भगवान् विष्णु की तरह गन्धर्व और अप्सराओं के साथ उत्तम भोगों का उपभोग करते हैं । वहाँ ही—जो व्यक्ति श्वेत गङ्गा में स्नान कर श्वेतमाधव एवं मत्स्य नामक माधव के दर्शन करते हैं, वे सीधे श्वेत दीप पहुँचते हैं । श्वेत नामक राजा । तथा—देवता, ऋषि, मनुष्य और पितरों का नाम और गोत्रोच्चार के साथ विधिवत् तिल जल लेकर स्नानोपरान्त तर्पण करते है वे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते है ।

मैथिली—आव पुरुषोत्तम क्षेत्रक सम्बन्ध में—

भारतवर्षक दक्षिणी तट पर अवस्थित स्वर्ग एवं मोक्षदायक उड़ीसा नामक एक विख्यात प्रान्त अछि । हे द्विजश्रेष्ठ! ताहिप्रान्त में समुद्रक उत्तरीय तट पर मुक्ति देवऽ वाला, पापनाशक एक परम गूढ क्षेत्र अछि । सर्वत्र बालुका सँ आच्छादित, पवित्र एवं सभ तरहक कामनाक पूर्त्तिकर्त्ता, दश योजन अर्थात् चालीस कोस धरि विस्तृत परम दुर्लभ एकटा क्षेत्र अछि । जाति में जेना ब्राह्मणश्रेष्ठ होयत छथि, पक्षी में जेना गरुड़ श्रेष्ठ मानल जायत छथि, तहिना समस्त तीर्थ में वरिष्ठ ई पुरुषोत्तम तीर्थ छैथि । ई ध्रुव सत्य अछि कि ई क्षेत्र परम महत्त्वपूर्ण छैथि । ई पुरुषाख्य जगन्नाथक सकृद्दर्शन, एकवेर सागर जलक दर्शन, थोड़वहु ब्रह्मविद्याक ज्ञान जिनका छैन्हि ओ पुनः मातृगर्भ में वास नहि करैत छैन्हि । पुरुषाख्यम् = पुरुषोत्तम जगन्नाथ ।

धन्य ओ ख्याति प्राप्त विद्वान् पुरुष छथि जे श्रेष्ठ उत्कल प्रदेश में निवास करैत छथि । तीर्थराजक जल में स्नान कय जगन्नाथक दर्शन करैत छथि । एहन पुरुष धरती पर रहितो स्वर्ग में निवास करैत छथि ।

तीर्थराज = समुद्र । राजसालये = मनुष्य लोक में ।

तथा—दक्षिण सागरक किनार में जतय एकटा वट वृक्ष छैक । ई वट वृक्ष कल्पान्त स्थायी छैक, विनाश कारी पुच्छलताराक विनाश भेला उत्तर ई वृक्ष स्वयं प्रादुर्भूत अछि । अहि वृक्षक विनाश नहि होयत छैक । ई वृक्ष स्वयं ओतय अवस्थित छैक । अहि वटवृक्षक दर्शन मात्र सँवा एकर छाया में क्षणभरि विश्राम कयने, ब्रह्महत्या जन्य पापो सँ मुक्ति भेंटि जायत छैक पुनः आन पापक की कथा? जे जीव अहिवृक्षक प्रदक्षिणा कय हिनका प्रणाम करैत छथि, हुनक सभटा पाप कम्पित भऽ विनष्ट भऽ जायत छैन्हि, आओर ओ विष्णुलोक प्रस्थान करैत छथि । न्यग्रोधः = वटवृक्ष ।

भगवान्क वचन छैन्हि—भगवान् विष्णु सम्भूत इन्द्रद्युम्नसरोवर नामक अहिठाम एकटा तीर्थ छथि । जाहि तीर्थ में एको वेर स्नान कयने ओ व्यक्ति इन्द्र

लोक प्राप्त करैत छथि । अहि शुभ सरोवरक तट पर जे व्यक्ति पिण्ड दान करैत छथि ओ अपन इक्कीस कुलक उद्धार कय स्वयं इन्द्रलोक प्राप्त करैत छथि । इति।

तीर्थचिन्तामणि में लिखल अछि—मार्कण्डेय सरोवर में जाय, पवित्र भावना सँ उत्तराभिमुख भय तीन बेर स्नान कय, निम्नलिखित मन्त्रक पाठ करवाक चाही—हे भगनेत्रघ्न! हम संसार रूपी सागर में डूबल छी, हम पाप ग्रस्त छी, चेतना शून्य छी, हमर अहाँ रक्षा करू । हे त्रिपुरारि । हम अहाँ के प्रणाम करैत छी । शान्त स्वरूप भगवान् शिव के हम नमस्कार करैत छी । ओ हमर सभटा पाप विनष्ठ कऽ देताह ।

हे देवेश! हम अहि मार्कण्डेय सरोवर में स्नान करैत छी, हमर सभटा पाप अहाँ विनष्ट कदिय । बुद्धिमान् व्यक्ति मार्कण्डेय सरोवर क नाभिमात्र जल में ठाढभय विधिवत् देवता एवं ऋषिक तर्पण करथु तत्पश्चात् तिल एवं जल लऽके अपन पितर एवं आन लोकनिक तर्पण करथु ।

मार्कण्डेय सरोवर में स्नान कयने तथा भगवान् शिवक दर्शन कय मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ करवाक फल प्राप्त करैत छथि । पहिने वटवृक्ष एवं गरुड़जीक दर्शन कय जे व्यक्ति श्री जगन्नाथ, बलभद्रजी एवं सुभद्राजीक दर्शन करैत छथि हुनका परमगतिक प्राप्ति होयत छैन्हि । मार्कण्डेय वट, श्रीकृष्ण, रोहिणी पुत्र बलभद्र, महासागर एवम् इन्द्रद्युम्न नामक सरोवर, ई पाँचटा तीर्थ विधि कहल जायत अछि ।

सभदेवक दर्शन कयने जे फल भेंटय, सभ तरहक यज्ञ कयने जे फल भेंटय से सभटा फल मनुष्य के एक मात्र श्रीकृष्ण कें प्रणाम कयने भेंटैत अछि । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, हुनक माहात्म्यक सन्दर्भ में बहुत अधिक कहने की लाभ? भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णक दर्शन कय मनुष्य दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करैत छथि । कोटि कल्प समुद्भूत पाप सँ विमुक्त भय मनुष्य शुद्धात्मा भऽ जायत छैथि ।

परम अलौकिक शक्ति सम्पन्न भऽ, सभ तरहक उन्नत गुण सँ सम्पन्न भऽ, सभ तरहक कामना सँ समृद्ध भऽ के, सुन्दर वर्चस्वक सङ्ग अपन इक्कीस कुलक उद्धार करैत देव यान सँ विष्णु लोक प्रस्थान करैत छथि । ओतय शत कल्पधरि चतुर्भुज भगवान् विष्णुजकां गन्धर्व एवं अप्सराक सङ्ग मनोरम उपभोग्य वस्तुक उपभोग करैत छथि । ताहीठाम—

जे व्यक्ति श्वेत गङ्ग में स्नान कय, श्वेत माधव एवं मत्स्य माधवक दर्शन करैत छथि श्वेत द्वीप जायत छथि । श्वेतनामक राजा ।

तथा—ताहिठाम जे व्यक्ति विधिवत् नाम एवं गोत्रक उच्चारण करैत प्रयत्नपूर्वक विधिवत् तिल एवं जल लऽके देवता, ऋषि, मनुष्य एवं पितरक तर्पण करैत छथि हुनका अश्वमेध यज्ञ करवाक फल भेंटैत छन्हि ।

अथ गङ्गामाहात्म्यम्

भारते— 'ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
येषां भागीरथी गङ्गा मध्ये याति सरिद्वरा ॥
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः ।
शेषे गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥
तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ।
मासमेकं तु गङ्गायां समौ स्यातां न वा समौ ॥'

गङ्गायामिति तिष्ठेदिति शेषः । भविष्ये—

'कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं वरम् ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥

'वरमिति सर्वत्र सम्बध्यते । ब्रह्मपुराणे—

'कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः ।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित् ॥'

सा देवी गङ्गेत्यर्थः । स्कान्दे—

'योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपीजनार्दनः ।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः ॥'

गङ्गम्भो जलम् ।

'वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।
अवर्ज्यं जान्हवीतोयमवर्ज्यं तुलसीदलम् ॥'

पूर्वदिनोद्धृतमुत्तरदिने पर्युषितं तोयं जलम् दलं पत्रम् । अवर्ज्यमत्याज्यम् । तथा च गङ्गाजले पर्युषितत्त्वदोषो नास्तीति भावः ।

मात्स्ये— 'तीर्थयात्राविधिं कृत्स्नमकुर्वाणोऽपि यो नरः ।
गङ्गातोयस्य माहात्म्यात्सोऽप्यत्र फलमाप्नुयात् ॥'

भविष्ये— 'सर्वयज्ञतपोदानयोगस्वाध्यायकर्मभिः ।
यत्फलं लभते भक्त्या गङ्गातीरे निवासतः ॥
समातृपितृदाराणां कुलकोटिमनन्तकम् ।
गङ्गाभक्तिस्तारयति संसारार्णवतो ध्रुवम् ॥'

भविष्ये— 'कन्यादानैस्तथाऽन्यत्र भूमिदानैश्च भक्तितः ।
अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा ॥

वराश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं परिकीर्तितम् ।
ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गागण्डूषतो भवेत् ॥
चान्द्रायणसहस्राणां यत्फलं परिकीर्त्तितम् ।
ततोऽधिकफलं गङ्गातोयपानादवाप्यते ॥'

स्कान्दे— 'गण्डूषमात्रपानेन अश्वमेधफलं लभेत् ।
स्वच्छन्नं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम् ।
नार्मदं दशभिर्मासैर्गङ्गा वर्षेण जीर्यति ॥'

त्रिभिरित्यादिस्तृतीयान्तत्रयं मासैर्जीर्यतीत्यनेनान्वेति ।

महाभारते— 'वाङ्मनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतस्तत्र मे नास्ति संशयः ॥
सप्तावरान् सप्तपरान् पितॄंश्चापि यमालयात् ।
पुमांस्तारयते गङ्गां सम्यग्दृष्ट्वावगाह्य च ॥
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।
पुण्यात्पुनाति पुरुषान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥'

भविष्ये— 'सहस्रयोजनस्थाश्च गङ्गां भक्त्या स्मरन्ति ये ।
गङ्गा गङ्गेति च ब्रूयुर्मुच्यन्तेऽपि च पातकात् ॥
ये स्मरन्ति च वै गङ्गां गङ्गाभक्तिपराश्च ये ।
तेऽप्यशेषैश्च पापैश्च मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥'

ब्रह्माण्डे— 'एकेन स्नानमात्रेण विधिना भक्तिमान्नरः ।
अश्वमेधफलं सद्यो गङ्गायां प्राप्नुयाद्ध्रुवम् ॥'

तथा— 'अन्यस्थानकृतं पापं गङ्गातीरे विनश्यति ।
गङ्गास्थानकृतं पापं गङ्गास्नानेन नश्यति ॥'

अत्र स्नाने इत्यनन्तरं नञ्पदं न तु स्नानेति तृतीयान्तम् ।

भविष्ये— 'संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
गङ्गास्नातो नरः कामात् ब्राह्मणः सदनं व्रजेत् ॥'

ब्रह्माण्डे— 'चन्द्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जान्हवीम् ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम् ॥
गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य तत्फलम् ।
तत्फलं जान्हवीस्नाने राहुग्रस्ते निशाकरे ॥'

मात्स्ये— 'कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता ।
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र विन्ध्येन सङ्गता ॥
विन्ध्याच्छतगुणा प्रोक्ता काशीपुर्यां तु जान्हवी ।'

विन्ध्यसङ्गता तु विन्ध्यवासिनीसमीपे कर्णतीर्थे ।

तथा— 'विन्ध्याच्छतगुणा प्रोक्ता यत्र पश्चिमवाहिनी ।
तस्मात्सहस्रगुणिता यत्र चोत्तरवाहिनी ॥'

पश्चिमोत्तरवाहिनी तु प्रयागे वटेशादौ च ।

भविष्ये— 'गङ्गाद्वारे कुशावर्ते स्नाने पुण्यफलं शृणु ।
सप्तानां राजसूयानां फलं स्यादश्वमेधजम् ॥'

गङ्गायां सन्ध्यातर्पणयोः फलमाह—'गङ्गायां शतसाहस्रम्' इति गङ्गायामिति सन्ध्यादिकरणे इति शेषः। शतसाहस्रमिति तथा चान्यत्र सन्ध्यादिकरणफलं लक्षगुणफलं गङ्गायामित्यर्थः ।

विष्णुपुराणे—

'दत्ताः पितृभ्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः ।
अक्षयं तु प्रयच्छन्ति तृप्तिं मैत्रेय दुर्लभाम् ॥
यावन्तश्च तिला मर्त्यैर्गृहीताः पितृकर्मणि ।
तावद्वर्षसहस्राणि पितरः स्वर्गवासिनः ॥'

पितरः पितृलोकवासिन इति तीर्थचिन्तामणिः ।

भविष्ये— 'गङ्गातर्पणसुप्रीताः श्राद्धे पिण्डसु तर्पिताः ।
आरुह्य सहसा यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥'

श्राद्धादिकं जलोपकण्ठे कर्त्तव्यम् ।

गङ्गान्तर्जले मरणे फलमाह । आग्नेये विष्णुवाक्यम्—

'ये मुञ्चन्ति नराः प्राणान् तिष्ठन्तः सन्निधौ तव ।
ते मे लोकं गमिष्यन्ति पूज्यमाना दिवौकसैः ॥'

तथा— 'अर्द्धोदके तु जान्हव्यां म्रियतेऽनशनेन यः ।
स न चैति पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च ॥'

अर्द्धोदकं चरणान्नाभिपर्यन्तमुदकम् ।

ब्रह्माण्डे—

'या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्य सुमनीषिणः ।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायां तु शरीरिणः ॥

अनशनं गृहीत्वा यो गङ्गातीरे मृतो नरः ।
सद्य एव परं मोक्षं प्राप्नोति पितृभिः सह ॥
अत्र दूरे समीपे च सदृशं योजनद्वयम् ।
गङ्गायां मरणेनेह नात्र कार्या विचारणा ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कामतोऽकामतोऽपि वा ।
गङ्गायां तु मृतो मर्त्यः स्वर्गं मोक्षं च विन्दति ॥'

महाभारते—

'तीर्थं च सौकरं नाम महापुण्यं मुने शृणु ।
यस्मिन्नाविरभूत्पूर्वं वाराहाकृतिरच्युतः ॥
शतमग्निचितां पुण्यं ज्योतिष्टोमद्वयस्य च ।
अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमत्राप्नुयान्नरः ॥'

अत्र निवासदिनदर्शनादिलघुगुरुफलभेदेन फलभेदः ।

तथा—'तत्रैव ब्रह्मणस्तीर्थं ज्योतिष्टोमायुतस्त्य च ।
अश्वमेधत्रयस्यापि स्नातस्तत्र फलं लभेत् ॥'

तथा—'गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।
तीर्थे कनखले स्नात्वा धूतपापो दिवं व्रजेत् ॥'

काशीमभिध्याय तत्रैव—

'पवित्राख्यं ततस्तीर्थं सर्वतीर्थात्पवित्रकम् ।
द्वयोर्विश्वजितस्तत्र स्नानात्पुण्यं लभेन्नरः ॥
वेणीवाह्यं ततस्तीर्थं सरयूर्यत्र सङ्गता ।
सुपुण्या च महापुण्या स्वसा स्वस्रेव सङ्गता ॥
हरेर्दक्षिणपादाब्जक्षालनत्वमवाप ह ।
वामपादोदकं विद्धि सरयूं मानसोद्भवाम् ॥
तीर्थे तत्रार्चयन् रुद्रं विष्णुर्विष्णुत्वमाप्नुयात् ।
पञ्चाश्वमेधफलदं स्नानं तस्मिन्नघापहम् ॥'

वेणीवाह्यं दर्दरीति प्रसिद्धम् ।

'तत्रैव गाण्डकं तीर्थं गण्डकी यत्र सङ्गता ।
गोसहस्रस्य दानं च तत्र स्नानेन सम्मतम् ॥
रामतीर्थं ततः पुण्यं बैकुण्ठो यत्र सन्निधौ ।
सोमतीर्थं ततः पुण्यं यत्रासौ ज्मुद्गलो मुनिः ॥
पञ्चकाख्यं ततस्तीर्थं यत्र गङ्गोत्तरायणी ।

तथा— 'गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ।
स्नात्वैव ब्रह्मणो विष्णोः शिवस्य च पुरं व्रजेत् ।।'

महाभारते—'गङ्गायास्त्वथ राजेन्द्र सागरस्य च सङ्गमे ।
अश्वमेधदशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।'

अश्वमेधं दशगुणं फलमिति शेषः ।

।। इति 'मिथिला'-देशावयव-'भागलपुर'-मण्डलान्तर्गत-'चयनपुर'-
ग्रामनिवासिगुलवाडकुलोत्पन्नसच्छाब्दिकश्रीमानिकशर्म्मात्मज-
सत्तार्किकमहामहोपाध्यायश्रीअमृतनाथशर्मकृतसार-
समुच्चयार्णवे कृत्यसारसमुच्चयः समाप्तः ।।

।। इति कृत्यसारसमुच्चयः समाप्तो जातः ।।

हिन्दी—अब गङ्गा के महात्म्य का वर्णन—

इस सन्दर्भ में महाभारत में लिखा है—वे देश, वे जनपद, वे पहाड़ और वे आश्रम धन्य है जिनके बीच से यह श्रेष्ठ नदी भागीरथी गङ्गा गुजरती हैं । जो व्यक्ति अपने प्रारम्भिक जीवन में अनेक पापकर्म करते हैं और शेष जीवन में गङ्गा सेवन करते हैं, उन्हें भी उत्तम गति मिलती है ।

सहस्र युग तक एक पैर पर खड़ा होकर जो एक व्यक्ति तपस्या करता है और दूसरा व्यक्ति एक महीने तक निष्ठापूर्वक गङ्गा सेवन करता है; उन्हें दोनों का पुण्य फल बराबर होता है । 'गङ्गायाम्' में तिष्ठेत् शेष है ।

भविष्यपुराण में—कृतयुग में सारे तीर्थ, त्रेता में अजमेर के निकटस्थ पुष्कर तीर्थस्थान का सेवन श्रेष्ठ है, द्वापर में यज्ञ का ही महत्त्व है तथा कलियुग में केवल दान का ही महत्त्व है । वरम् अर्थात् श्रेष्ठ का सबके साथ सम्बन्ध है ।

ब्रह्मपुराण में लिखा है—कलियुग में सारे तीर्थ अपना अपना पराक्रम गङ्गा में ही छोड़ते हैं और गङ्गा अपना पराक्रम किसी को नहीं देती है ।

सो देवी = गङ्गा, यही अर्थ होता है ।

स्कन्दपुराण का वचन है—वे जो सर्वव्यापक परमात्मा भगवान् विष्णु जनार्दन हैं, वहीं विष्णु पनीले बनकर गङ्गाजल हैं, इसमें कतई सन्देह नहीं करना चाहिए । गङ्गाम्भो = गङ्गाजल ।

बासी जल एवं बासी पत्ते वर्जित है । किन्तु गङ्गा जल और तुलसी दल वर्जित नहीं है । पहले दिन का रक्खा पानी दूसरे दिन बासी हो जाता है।

दलम् = पत्ते, अवर्ज्यम् = नहीं छोड़ने योग्य । फिर उसी तरह गङ्गा जल में वासी होने का दोष नहीं लगता । मत्स्यपुराण में—जिस व्यक्ति ने विधिवत् सम्पूर्ण तीर्थ यात्रा नहीं की है किन्तु गङ्गा सेवन किया है, उस गङ्गाजल के माहात्म्य से उसे भी वह फल प्राप्त होता है ।

भविष्यपुराण में—हर तरह के यज्ञानुष्ठान से, तप, दान, योग एवं स्वाध्याय जैसे कर्म से जो पुण्य फल मनुष्य प्राप्त करता है, वह फल भक्तिपूर्वक गङ्गा के किनारे निवास करने से मिलता है । माता, पिता और पत्नी के साथ का नि:सीम करोड़ों कुल के पुरुषों को गङ्गा की भक्ति संसार सागर से निश्चित रूप से पार कर देती है । भविष्यपुराण में—कन्यादान से, अन्यत्र भक्तिपूर्वक भूमिदान से, अन्नदान से, गोदान से, सोने दान से, सुन्दर घोड़े और हाथी दान से जो फल कहा गया है, उससे सौ गुना अधिक फल चुल्लूभर गङ्गा जल पीने से मिलता है । हजारों चान्द्रायण व्रत करने से जो फल मिलता है, उससे भी अधिक फल गङ्गा जल पीने से मिलता है ।

स्कन्दपुराण में—एक चुल्लू गङ्गा जल पीने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और यथेच्छ जो गङ्गा जल पीता है उसके तो हाथ में ही मुक्ति है । सरस्वती का जल तीन महीने के बाद जीर्ण हो जाता है । इसी तरह यमुना का जल सात महीने में, नर्मदा का जल दस महीने में, किन्तु गङ्गा जल वर्ष भर के बाद जीर्ण होते हैं ।

इस श्लोक में त्रिभि: इत्यादि तृतीयान्त पद तीन महीने में जीर्ण होता है—इत्यादि के साथ अन्वित है ।

महाभारत में—मनसा, वाचा, कर्मणा जो व्यक्ति पाप में ही डूबा है, वह भी इस संसार में गङ्गा दर्शन से ही पवित्र हो जाता है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है । जो व्यक्ति उपयुक्त रीति से गङ्गा के दर्शन कर उनमें स्नान करता है, वह अपने सात कुल ऊपर और सात नीचे के पितरों को यमगृह से उद्धार करता है । गङ्गा के दर्शन, स्पर्श, पान तथा नाम कीर्त्तन के पुण्य से व्यक्ति सैकड़ों हजारों बार पवित्र हो जाते हैं ।

भविष्यपुराण में लिखा है—हजारों योजन दूर रहने पर भी जो भक्तिपूर्वक गङ्गा का स्मरण करते हैं, गङ्गा, गङ्गा बोलते है वे पापों से मुक्त हो जाते हैं । जो गङ्गा का स्मरण करते हैं, गङ्गाभक्ति परायण होते हैं, वे अशेष पापों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—भक्तिभाव सम्पन्न व्यक्ति विधिपूर्वक एक बार स्नान मात्र से गङ्गा की कृपा से सद्यः अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं, यह निश्चित है । और भी अन्य स्थानों में किया गया पाप, गङ्गा के तीर में निवास करने से नष्ट हो जाते है, किन्तु गङ्गा के किनारे किया गया पाप, गङ्गा स्नान से भी नहीं मिटता है । यहाँ स्नान के बाद न नकारात्मक है, न कि तृतीयान्त स्नानेन ।

भविष्यपुराण में—दोनों पक्ष के अन्त में चन्द्र और सूर्यग्रहण में, संक्रान्ति काल में गङ्गा स्नान से मनुष्य अभिलषित ब्रह्मलोक पहुँचता है ।

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—जिसने चन्द्र और सूर्य ग्रहण में गङ्गा स्नान कर लिया उसे सभी तीर्थों में स्नान का फल अनायास मिल जाता है । उसे धरती पर तीर्थाटन के लिए घूमने से क्या लाभ ? हजारों करोड़ गायें दान करने का जो फल मिलता है, वह फल चन्द्रग्रहण के अवसर पर गङ्गा में स्नान करने से मनुष्य को मिल जाता है ।

मत्स्यपुराण में लिखा है—जहाँ कहीं गङ्गा में स्नान का फल कुरुक्षेत्र स्नान के समान होता है । विन्ध्यवासिनी के समीप कर्ण तीर्थ में स्नान का फल कुरुक्षेत्र स्नान का दस गुना अधिक होता है । विन्ध्यसंगता का अर्थ विन्ध्याचल के समीप कर्ण तीर्थ में होता है ।

तथा—विन्ध्याचल से भी सौ गुना अधिक उस गङ्गा में स्नान का फल मिलता है जहाँ वह पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है । उससे भी हजार गुना अधिक फल उत्तरवाहिनी गङ्गा में स्नान करने से मिलता है । पश्चिमोत्तर वाहिनीगङ्गा प्रयाग एवं वटेशादि में है ।

भविष्यपुराण में लिखा है—हरिद्वार कुशावर्त्त में स्नान का फल सुनो । अश्वमेध यज्ञ सम्भूत सात राजसूययज्ञों का फल उसे मिलता है । गङ्गा में सन्ध्यातर्पण का फल कहा गया है—गङ्गायाम् शतसाहस्रम् अर्थात् गङ्गा में सन्ध्यादि करने पर यह शेष है, सैकड़ों, हजारों, इसी तरह दूसरी जगह सन्ध्यादि करने के फल से लाख गुना अधिक गङ्गा में सन्ध्यादिक करने का फल होता है ।

विष्णुपुराण में लिखा है—श्रद्धासमन्वित पुत्रों के द्वारा जहाँ पितरों को जल दिया जाता है, हे मैत्रेय! वह जल पितरों को अक्षय तृप्ति प्रदान करता है। इस धरती पर मनुष्य पितृकर्म में जितने तिल ग्रहण करते हैं, उतने हजार वर्ष तक पितर स्वर्ग में निवास करते है। पितर: से यहाँ तात्पर्य हैं पितृलोक में निवास करने वाले व्यक्ति। यह तीर्थचिन्तामणि में लिखा है।

भविष्यपुराण में कहा है—गङ्गा में तर्पण से सन्तुष्ट होकर तथा श्राद्ध में पिण्ड दान से सन्तुष्ट होकर सहसा पितर सनातन ब्रह्मलोक को प्रस्थान करते हैं। श्राद्धादिक कण्ठभर जल में करना चाहिए।

गङ्गान्तर्जल में मरने का फल भगवान् विष्णु ने अग्निपुराण में कहा है—जो व्यक्ति गङ्गा किनारे अपने प्राण छोड़ते हैं, वे देवताओं से पूजित होकर विष्णु लोक पहुँचते हैं। तथा—जो व्यक्ति बिना भोजन किये भर ढोढ़ी गङ्गा जल में खड़े प्राण त्याग देता है, उसका धरती पर पुनर्जन्म नहीं होता है और वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। अर्द्धोदकम् = पैर से नाभि पर्यन्तजल में।

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—योग युक्त विचारशील व्यक्ति की जो गति होती है, वही गति देहधारी उन पुरुषों को मिलती है जो गङ्गा में अपने प्राण छोड़ते हैं। गङ्गा किनारे जो व्यक्ति उपवास करते हुए प्राणत्याग करता है, उसी क्षण वह अपने पितरों के साथ मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जहाँ दो योजन तक दूर हो या समीप गङ्गा में ही मरण माना जायेगा, इसमें कोई विचार नहीं करना है। जाने अनजाने, या इच्छा-अनिच्छा से गङ्गा में मृत प्राणी स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है।

महाभारत का वचन है—हे मुने! सौकर नाम का महापुण्यप्रद एक तीर्थ है, जिसके सम्बन्ध में सुनो। पहले वराह रूप भगवान् विष्णु यहीं प्रादुर्भूत हुए थे। यहाँ सैकड़ों अग्निष्टोम का पुण्य, दो ज्योतिष्टोम, हजारों अग्निष्टोम का फल यहाँ मनुष्य प्राप्त करते हैं। यहाँ निवास दिन, दर्शन आदि लघु गुरुत्व के भेद से फल भेद होता है। और भी—वहाँ ही एक ब्रह्म तीर्थ भी है, जो ज्योतिष्टोम युक्त है। इस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य तीन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

और इसी प्रकार—हरिद्वार में, कुशावर्त में, बिल्वकतीर्थ में, नील पर्वत क्षेत्र में तथा कनखल तीर्थ में स्नान कर मनुष्य अपने पापों को धोकर स्वर्ग प्रस्थान करता है।

काशी को ध्यान में रखकर वहाँ भी—सभी तीर्थों में श्रेष्ठ, एवं पवित्र, जिसका नाम ही पवित्र तीर्थ है, इसमें स्नान करने से दो विश्वजित यज्ञ का

फल प्राप्त होता है । उसके बाद वेणी वाह्य तीर्थ है जहाँ सरयू आकर मिली हैं, ये सुपुण्या एवं महापुण्या हैं, जैसे एक बहन दूसरी बहन के साथ मिल गई हो । भगवान् शिव के दाहिने चरणकमल के प्रक्षालन से ही एक ने अपना स्वरूप धारण किया और इसी तरह शिव के बायें पाद प्रक्षालन जल से मन से उत्पन्न सरयू को जानो । इसी तीर्थ में भगवान् विष्णु ने शिव की पूजाकर अपने विष्णुत्व का पद प्राप्त किया है । इस तीर्थ में स्नान करने से शरीर के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं तथा स्नान कर्त्ता को पाँच अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ।

वेणीवाह्य का अर्थ दर्दरी विख्यात है ।

वहाँ ही गाण्डक तीर्थ है, यहाँ से ही गण्डकी नदी जुड़ी है । यहाँ स्नान करने से हजारों गोदान का फल मिलता है । उसके बाद वहाँ ही पुण्यप्रद रामतीर्थ है, जिसके निकट ही वैकुण्ठ है । उसके बाद सोमतीर्थ है, जिस पुण्यप्रद तीर्थ में मुद्गल मुनि का निवास है । इसके बाद चम्पक नाम का तीर्थ है, यहाँ गङ्गा उत्तरायणी हैं ।

और इसी प्रकार—हरिद्वार में, प्रयाग में, और गङ्गासागर सङ्गम में स्नान मात्र करने से मनुष्य, ब्रह्म, शिव एवं विष्णुलोक को प्रस्थान करते हैं ।

महाभारत में लिखा है—हे राजेन्द्र! गङ्गा और सागर के सङ्गम में अश्वमेध यज्ञ दस गुना अधिक फलदायी होता है । अश्वमेध दस गुना अधिक फल देने वाला होता है ।

मैथिली—आव गङ्गा माहात्म्यक वर्णन—अहि सन्दर्भ में महाभारतक उक्ति—ओ देश, ओ जनपद, ओ पर्वत, ओ आश्रम धन्य अछि, जकरा मध्य नदि श्रेष्ठ भागरथी गङ्गा वहैत छथि । जे व्यक्ति जीवनक पूर्वावस्था में अनेक तरहक पाप कर्म कयला उत्तर शेष जीवन जे गङ्ग सेवन करैत छथि, हुनको उत्तम गति प्राप्त होयत छैन्हि । जे पुरुष एक हजार युग धरि एक पैर पर ठाढभऽ के तप करैत छथि तथा दोसर गोंटे एक मास धरि गङ्गा में ठाढ भऽ के तप करैत छथि दुहूक पाप फल समाने होयत छैक, कोनो को कम वा अधिक नहि । गङ्गायाम् = गङ्गा में वा गङ्गातट पर, तिष्ठेत् = पद ओकरा में शेष छैक ।

भविष्यपुराण में—कृतयुग में तीर्थाटन उत्तम, त्रेता में पुष्कर तीर्थ श्रेष्ठ द्वापर में यज्ञेक विशेषता छैक, तथा कलियुग में केवल दान मात्रक महत्ता छैक । 'वरम्' पदक सम्बन्ध सभक साथ छैक । ब्रह्मपुराण में—

स्वभावत: सभटातीर्थ अपन अपन पराक्रम कलियुग में गङ्गा में राखि दैत छथिन किन्तु ओ देवी गङ्गा कतौ अन्यत्र अपन पराक्रम नहि छोड़ैत छथि ।

सा देवी अर्थात् गङ्गा ई अर्थ भेल । स्कन्दपुराणक वचन अछि—

चित्स्वरूप भगवान् विष्णु जे सभक देह में आत्मस्वरूप अवस्थित छैथि सेह भगवान् विष्णु जल रूप में गङ्गा वनल छैथि, एकरा में कोनो सन्देह नहि करवाक चाही ।

गङ्गाम्भो अर्थात् गङ्गाजल ।

बासी जल परित्यक्त अछि, वासी पत्रो वर्जनीय अछि । मुदा, गङ्गा जल एवं तुलसी दल अवर्ज्य होयत अछि ।

पूर्व दिन में राखल जल एवं पत्र दोसर दिन वासि भऽ जायत छैक, अवर्ज्यम् = अत्याज्य होयत अछि । तहिना गङ्गाजल में वासि भेलाक दोष नहि होयत छैक ।

मत्स्यपुराण में लिखल छैक—जे व्यक्ति कोनो तरहक थोड़बहु सविधि तीर्थयात्रा नहिं कयने छथि, सेहो व्यक्ति गङ्गाजलक माहात्म्य सँ अहिठाम सुन्दर फल प्राप्त करैत छथि ।

भविष्यपुराणक वचन अछि—सभतरहक यज्ञानुष्ठान, तप, दान, योग एवं स्वाध्याय प्रभृति कर्म सँ जे फल प्राप्त होयत अछि, से फल भक्तिपूर्वक गङ्गाकात में निवास सँ प्राप्त होयत अछि । माता, पिता एवं पत्नीक सङ्ग निःसीम करोड़ो कुलक निश्चित रूपेण संसार सागर सँ गङ्गा भक्ति तारैत अछि ।

भविष्यपुराणक वचन छैक—कन्यादान कयने, भक्तिपूर्वक गोदान, भूमिदान, अन्नदान, गोदान, स्वर्ण प्रभृतिक दान, सुन्दर घोड़ा एवं हाथीक दान सँ जे पुण्यफल कहलगेल अछि, ओकरो सँ अधिक फल व्यक्ति के मात्र गङ्गाजल पान कयला सँ भेंटैत छैक ।

स्कन्दपुराणक वचन छैक—चुरूभरि गङ्गाजल पीने अश्वमेध यज्ञ करवाक फल भेटैत छैक तऽ जे व्यक्ति यथेच्छ गङ्गाजल पिबैत छथि, हुनका तऽ हाथे में मुक्ति रहैत छैन्हि । तीन दिन में सरस्वतीक जल, सात दिन में यमुनाक जल, दस दिन में नर्मदाक जल तथा वर्षभरि में गङ्गाक जल जीर्ण होयत अछि ।

'त्रिभिः' इत्यादि पदक तृतीयान्त तीन मासादि में जीर्णक सङ्ग अन्वय छैक । महाभारत में कहल गेल अछि—

अहि संसार में जे व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा सदिखन पापकर्म में लीन रहैत छथि तऽ पवित्र भऽजायत छैथि, अहि में सन्देह नहि । जे व्यक्ति यदि गङ्गाक उचित रूप सँ दर्शन कय स्नान करैत छथि ओ पितरलोकनिक सात कुल ऊपर एवं सात कुल अवरक यमलोक सँ उद्धार करैत छथि । गङ्गाक दर्शन, स्पर्श गङ्गाजलक पान हुनक नाम कीर्त्तनक पुण्य सँ सैकड़ों हजारों प्रकारेण हुनका लोकनिके पवित्र बना दैत छथिन ।

भविष्यपुराणक वचन अछि—हजारों योजन दुरि रहलो उत्तर जे व्यक्ति भक्तिपूर्वक गङ्गाक स्मरण करैत छथि, गङ्गा, गङ्गा वाजैत छथि ओहो, अशेष पाप सँ मुक्त भऽ जायत छैथि, एकरा में सन्देह नहि करवाक चाही ।

ब्रह्माण्डपुराणक वचन छैक—भक्तिभाव सम्पन्न व्यक्ति के मात्र एक बेर विधिपूर्वक गङ्गा स्नान कयने निश्चितरूपेण सद्यः अश्वमेध यज्ञक फलप्राप्त होयत छैन्हि । ताही तरहें—

अन्य स्थान में कयल पाप गङ्गातीर में विनष्टभऽ जायत छैक मुदा गङ्गाकात में कयल पाप गङ्गा स्नानो सँ नहि धुलैत छैक । अहिठाम स्नाने सप्तम्यन्त पदकवाद नञ् पद छैक नहि स्नानेन तृतीयान्त पद ।

भविष्यपुराण में—संक्रान्ति में, दुहूपक्षक अन्त में चन्द्र सूर्य ग्रहणक अवसर पर गङ्गा स्नान कयनहार व्यक्ति अभिलषित ब्रह्मलोक जायत छैथि ।

ब्रह्माण्डपुराणक वचन अछि—चन्द्र एवं सूर्य ग्रहणक अवसर पर जे गङ्गास्नान करैत छथि, हुनका सभतीर्थ में स्नानक फल भेटैत छन्हि, ओ कयिला तीर्थाटन कलेल पृथ्वीक परिक्रमा करताह ।

चन्द्रग्रहणक अवसर पर गङ्गास्नान कय निहार व्यक्ति के सम्यग्रूपेण करोड़ो गाय दान करवाक फल प्राप्त होयत छैन्हि ।

मत्स्यपुराणक वचन छैक—जतय ततय गङ्गास्नान कयने कुरुक्षेत्र में स्नानक फल भेटैंत छैक । विन्ध्यवासिनीक समीप गङ्गा में स्नान कयने कुरुक्षेत्र स्नानक अपेक्षा दसगुना अधिक फल प्राप्त होयत अछि तथा काशीनगरीक गङ्गा में स्नान कयने विन्ध्यवासिनीक गङ्गास्नानक अपेक्षा सइगुना अधिक फल कहलगेल अछि ।

विन्ध्यसंगताक अर्थ भेल = विन्ध्यवासिनीक समीपवर्त्ती गङ्गा अर्थात् कर्णतीर्थ में—अहिना—विन्ध्यवासिनीक अपेक्षा सौगुना अधिक फल कहल गेल अछि । जाहिठाम पश्चिमवाहिनी गङ्गा छैथि, एकरो सँ हजार गुना अधिक फल भेटैत छैकि जाहिठाम पश्चिम वाहिनी गङ्गा छैथि ।

पश्चिमोत्तरवाहिनी गङ्गा प्रयाग वटेशादि में छथि ।

भविष्यपुराणक वचन अछि—हरिद्वार एवं कुशावर्त्त में स्नानक पुण्य फल सुनू । अश्वमेधज सात टा राजसूय यज्ञक फल गङ्गा स्नान कयने भेटैत अछि । गङ्गा में सन्ध्यातर्पणक फल कहल गेल अछि—गङ्गा में शतसाहसी सन्ध्याकरणे ई पदशेष अछि । अहिना आनठाम सन्ध्या तर्पणक अपेक्षा गङ्गा में सन्ध्या तर्पणक फल लाख गुना अधिक होयत छैक ।

विष्णुपुराण में लिखल अछि—श्रद्धा समन्वितभय पुत्र जतय पितरकलेल तिलजल समर्पित करैत छथि ओसभ अक्षय भऽ जायत छैक, हे मैत्रेय! दुर्लभ

तृप्ति पितर लोकनिके भेटैत छन्हि । मनुष्य पितृकर्मकलेल जतेक तिलग्रहण करैत छथि, ततेक हजार वर्ष पितर लोकनि स्वर्ग में निवास करैत छथि । आहिठाम पितर सँ पितृलोक निवासीक तात्पर्य अछि । ई तीर्थचिन्तामणिक वचन अछि ।

भविष्यपुराण में कहलगेल अछि—गङ्गा में तर्पण सँ अत्यन्त प्रसन्न श्राद्ध में देलगेल पिण्ड सँ पूर्णसन्तुष्ट भय पितर व्योमयान पर चढि सहसा सनातन ब्रह्मलोक हेतु प्रस्थान करैत छथि । श्राद्धादिक कण्ठभरि जल में करवाक चाही ।

गङ्गाजल में मरलाक फल भगवान् विष्णु अग्निपुराण में कहने छथि—जे व्यक्ति गङ्गाक सन्निधि में प्राण त्याग करैत छथि ओ देवताक द्वारा पूजनीय भय विष्णुलोक जायत छैथि ।

तहिना—उपवास कयने भरिडार गङ्गाजल में जे प्राणत्याग करैत छथि हुनक पुनर्जन्म नहि होयत छैन्हि ओ ब्रह्म में लीन भऽजायत छैथि । अर्द्धोदकम् = चरण सँ लऽके नाभि पर्यन्त जल में ।

ब्रह्माण्डपुराणक वचन अछि—जे गति योग युक्त विचक्षण विद्वानक होयत छैन्हि, सेह गति गङ्गा में शरीर त्याग करनिहार व्यक्तिक होयत छैन्हि । उपवास कयने गङ्गाकात में जे व्यक्ति अपन शरीर त्याग करैत छथि, ओ अपन पितरक सङ्ग ताही क्षण मोक्ष प्राप्त करैत छथि । दूरी में या समीप में एकर समान सीमाक निर्धारण दुई योजन कयल गेल अछि, अहि सीमाक अभ्यान्तर मृत्युक गङ्गा में मरण कहल जायत अछि, अहि विषय में कोनो तरहक विचार नहि करवाक चाही । जान अनजान में, इच्छा अनिच्छापूर्वक गङ्गा में मृत व्यक्ति एवं मोक्ष प्राप्त करैत छथि ।

महाभारत में लिखल अछि—हे मुने! सुनू, शौकर नामक एकटा महापुण्यप्रद तीर्थ अछि । जाहि तीर्थ में प्राचीन काल में भगवान् विष्णु स्वयं शूकर रूप में प्रादुर्भूत भेल छलाह । अहि शूकरतीर्थ में मनुष्य कें सैकड़ों अग्निष्टोम, दुइटा ज्योतिष्टोम एवं हजारों अग्निष्टोम यज्ञक पुण्यफल प्राप्त होयत अछि ।

अहि शूकरतीर्थ निवास करवाक दिने तथा दर्शनप्रभृतिक लघु एवं गुरुत्वादि भेद सँ फलक भेद होयत छैक ।

अहिना—ताहीठाम ब्रह्मतीर्थ सेहो अछि, अहि तीर्थ में स्नान कयने दस हजार ज्योतिष्टोम, यज्ञक एवं तीनटा अश्वमेध यज्ञ कयलाक पुण्य फल मनुष्य प्राप्त करैत अछि ।

ताही तरहें—गङ्गाद्वार (हरिद्वार) कुशावर्त्त, विल्वक, नीलपर्वत एवं कनखल नामक तीर्थ में स्नान कयने पापरहित भय मनुष्य स्वर्ग जायत अछि ।

काशीक लक्ष्य कय ताहीठाम—तत्पश्चात् पवित्राख्य तीर्थ अछि, जे सभटा तीर्थ सँ अधिक पवित्र तीर्थ अछि, ताहि तीर्थ में स्नान कयने मनुष्य दुइटा

विश्वजित् यज्ञक फल प्राप्त करैत छथि । तकरवाद वेणीवाह्य नामक तीर्थ अछि जतय सरयू आवि कय मिल गेल छथि से ई सुपुण्या एवं महापुण्या तहिना मिलल छथि जेना एक वहिन से दोसर वहिन ।

एकटा भगवान् शिवक दक्षिण चरण कमलक प्रक्षालन जल सँ समुद्भूत छथि, दोसर सरयू शिवक वाम पैरक प्रक्षालन जल सँ मानसोद्भूता छथि । अहि तीर्थ में भगवान् विष्णु शिवक अर्चनाकय विष्णुत्व प्राप्त कयने छथि, अहितीर्थ में स्नान कयने मनुष्यक पाप विनष्ट भऽजायत छैक तथा हुनका पांचटा अश्वमेध यज्ञ करवाक फल प्राप्त होयत छैन्हि ।

वेणीवाह्यम् = दर्दरी नाम सँ ई स्थान प्रसिद्ध अछि ।

ताहीठाम गण्डक तीर्थ सेहो अछि, जतय गण्डकी जाके मिलल छथि । अहि गण्डक तीर्थ में स्नान कयने हजार गाय दान करवाक पुण्य फल प्राप्त होयत अछि । तकरवाद पुण्यप्रद रामतीर्थ अछि, एकर सन्निधि में वैकुण्ठ अछि । तत्पश्चात् पुण्यप्रद सोमतीर्थ अछि, मुद्गल मुनिक निवास अहीठाम छैन्हि । तत्पश्चात् चम्पक नामक तीर्थ अछि । अहिठाम गङ्गा उत्तरवाहिनी छथि ।

आओर एहि तरहे—हरिद्वार में, प्रयाग में, और गङ्गासागर सङ्गम में स्नान मात्र कयने मनुष्य, ब्रह्म, शिव एवं विष्णुलोक प्रस्थान कयने अछि ।

महाभारत में वचन अछि—

हे राजेन्द्र गङ्गा एवं सागरक जतय सङ्गम अछि, ताहि तीर्थ में स्नान कयने विद्वान् लोकनिक मतें अश्वमेध यज्ञक दस गुना अधिक पुण्य फल प्राप्त होयत अछि । अश्वमेधक दसगुना अधिक फल ई शेष छैक ।

खिष्ट्रे सागरद्वारशेवधि सुधा सङ्गुम्फिताब्दे शुभे
आषाढ़ेऽवलक्ष पक्षविहिते वारे रवौ लोचने ।
नत्वा गजमुखविघ्ननारकपदं ध्यात्वा भवानीं मुदा
डाक्टरश्रीजगदीशचन्द्रसुधिया, व्याख्याऽलेरवीदियं स्वकम् ॥

॥ शुभम् ॥